ॐ

तत्त्वदर्शन.

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः ।
बन्धाय वासना युक्तमबन्धायाप्यवासनम् ॥

प्रयोजक,

पूज्य ब्रह्मनिष्ठ स्वामीश्री आत्मानंदजी महाराज.

प्रकाशक,

शेठ श्री रणछोडदास भवानभाई.

प्रथमावृत्ति ५००. * ** संवत १९७८.

परमार प्रीन्टींग प्रेस–राजकोट, (काठियावाड).

प्रकाशक पत्र.

इस तत्त्वदर्शन ग्रंथके प्रयोजक ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री आत्मानंदजी-तत्त्ववेत्ता (आर्यन फीलोसोफर) के साथ कइ दफा चर्चा होने पर ज्ञात हुआ कि, धर्म-मत पंथके विषयमें वे तटस्थ स्वतंत्र पुरुष हैं, उन्होंने अनेक मतोंका अवलोकन किया है, इनकी फीलोसोफी वेदांत तत्त्वको स्पर्श करती हुइ सिद्ध पदार्थविज्ञान, सृष्टिनियम, युक्ति और परीक्षाके उपर निर्भर है; आइडियल (भावना मात्र) किंवा शब्द प्रमाणके सरकलमें घिराइ हुइ नहीं है. (नमूनेमें उनका "कर्मयोग–सांख्ययोग" हिंदी, इंग्रेजी भाषाका ग्रंथ है), इस वास्ते मेरी दृष्टिमें पसंद करने योग्य और उपयोगी जान पडती है.

स्वामीजीका बनाया हुआ यह **तत्त्वदर्शन ग्रंथ** 'यथा नामा तथा गुणाः' इस कहावतको चरितार्थ करता है.' दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टिसे निर्मापित किया हुआ यह उच्च कोटिका ग्रंथ है. जिसमें केवल कार्यवादकी विवक्षा न करते हुए मूल तत्त्वोंका (कारणवाद) निरूपण किया गया है, इसके तीन अध्यायोंमें ईश्वर, जीव, प्रकृति, बंध, मोक्ष, सृष्टि उत्पत्ति और लय-इतने विषयोंकी चर्चा और परीक्षा, विना संकोच छूटके साथ की गई है, अत एव (१) जो धर्ममतके स्वतंत्र शोधक हैं उनके लिये अत्युपयोगी हो, (२) शोधक उनके मूलतत्त्व शोधनेमें शक्तिमान हो यानि इसको सहकारी माने, (३) पाठकको धर्मके विषयमें अंधश्रद्धा न रहे, किन्तु विज्ञानपूर्वक श्रद्धा होवे, और (४) इसका अभ्यासी सत्य तत्त्वको खोज ले, एसी मैं आशा रखता हुं.

चोथे अध्यायके पूर्वार्द्धमें (१) जिन विषयोंको सर्व धर्म मानलें उनका संग्रह किया है, (२) स्वधर्ममें रह कर भी धर्मद्वेष न हो, एसी रीति बताइ है. (३) सब धर्मोंकी एकता होनेकी रीतिभी दर्शाइ है. (४) नाना विध मतपंथोंसे उपेक्षा रखते हुए भी अशक्त जिज्ञासुको और स्वतंत्र सशक्त शोधकको भी शान्ति मिले ऐसे प्रकार बताये हैं, (५) व्यावहारिक सुधारणा और सामाजिकउन्नतिके तत्त्वभी दर्शाये हैं. (६) और कर्मयोग (प्रवृत्ति मार्ग) की प्रधानता सयुक्त सिद्ध की है. पूर्व सिद्ध तत्त्वका परीक्षापूर्वक अनुभव होजावे एसी रीति चोथे अध्यायके उत्तरार्द्धमें बतलाई है.

इस ग्रंथके प्रथमाध्यायोक्त अवांतर भागोंको छोडकर इसके मुख्य तीन भाग (३ वोल्यूम) हैं. अध्याय १, २ का पहिला, अध्याय ३ व चोथे अध्यायका पूर्वार्द्ध मिल कर दूसरा, और चौथे अध्यायका उत्तरार्द्ध तीसरे भागमें है, जो तैयार हो रहा है.

उपरोक्त कारणोंको ले कर उपरोक्त दोनों भाग मैं छपवा कर प्रसिद्ध करता हुं. आशा है कि इस ग्रंथ संबंधी मेरा मनोरथ और ग्रंथकर्त्ताका परिश्रम भी सफल होगा.

प्रकाशक,

रणछोडदास भवानभाई. (फ्लॉर मिल, डंकन रोड-मुंबाई.)



पू० ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री आत्मानंदजी महाराज.

શ્રી "હિંદુસ્થાન" પ્રેસ, કોટ, મુંબઈ.

तत्त्वदर्शन.

भाग १.

(अध्याय १, २.)

तत्त्वदर्शन ग्रंथ भाग १की संक्षेपमें अनुक्रमणिका.

पक्षाध्याय १ की अनुक्रमणिका.

नियमाध्याय २ की अनुक्रमणिका.—

इस अध्यायमें उपोद्घातादि ५ प्रकरण हें, प्रकरण प्रति अधिकरण हें, अधिकरण प्रति अनेक गुण हें. यहां अधिकरणका क्रम हे. गुणोंको प्रसंग देखके जानलेना. कहीं इशारा यहांभी किया हे.—

अध्याय २ समाप्त.

भाग १ ला (पहली बुक) समाप्त.

विचारअध्याय ३ की अनुक्रमणिका.—

इस अध्यायकी अनुक्रमणिका विस्तारपूर्वक सपृष्ट दूसरी बुकके आरंभमें हे यहां संक्षेपमें—

इस अध्यायमें अ. २ का उपयोग हे. उस अनुसार असिद्ध ओर सिद्ध विषयोंपर विचार किया गया हे.

अनुभूमिका (सू. १ से १३ तक), अध्याय संबंधी सूचना.

असिद्ध प्रतिपक्ष ओर उनकी असिद्धि (सू. १४ से ३६४ तक), तदंतर गत ६ प्रकरण हें.

(१) उपोद्घात ५. (२) प्रमाण ९. (३) सृष्टिनियम ३१. (४) जीव नियम ३०. (५) सूचना १४. (६) विषय—ईश्वरादि ८ विषय २९ ॥ एवं ६ प्रकरणोंमें ११८ विषयोंका प्रतिपक्ष ओर उनकी असिद्धि दिखाई हे (यहही गिनतीमें १८० वा ३३४ होजाते हें).

सिद्धपक्ष (सू. ३६५ से ५८८ तक) ४० ॥

सारांश प्रचलित तमाम धर्म मत पंथोंकी निरीक्षा ओर निर्णय दरसाया गया हे.

फल अध्याय ४ की अनुक्रमणिका.—

इस अध्यायकी विस्तारवाली अनुक्रमणिका सपृष्ट बुक २ (भाग २) के आरंभमें हे. यहां संक्षेपमें—

इस अध्यायमें व्यष्टि ओर समष्टिको सुख शांतिरुप फलकी प्राप्ति हो एसे प्रकारका ओर कर्तव्यका वर्णन हे.

(१) अ. २ । ३के योक्तिक विचारसे, (२) पंचदशांग पूर्वक विभूषकमतानुसार वर्तनसे, (३) सब धर्म—मत—पंथ—संमत संग्रहवादसे (सर्व संमत विषयोंका संग्रह किया हे) ओर पंच दशांग हुये हरेक धर्ममें रहनेसे, (४) धर्म प्रवृत्ति द्वारा त्रिवादसे, (५) व्यष्टि, समष्टिको जीवनमतानुसार वर्तनसे, (६) अशक्त जिज्ञासुको प्रौढिवादसे (इसमें तमाम धर्म मत पंथों प्रति एक—शांति परिणाम निकाला हे), (७) साधन संपन्न अधिकारी (आरण्यक) को अवस्थाके अन्वयव्यतिरेकरुप विवेक द्वारा चिदचिद्की विवेकख्यातिसे, ओर (८) स्वतंत्र शोधक—विवेकीको सर्वतंत्रसाधन द्वारा विवेकख्यातिसे सुख शांति फल मिलसकता हे, ऐसे ८ प्रकार बताये हें. ओर ज्ञानी वा अज्ञानीका कर्तव्य दरसाया हे. एवं सू. १ से २७७ की विगत हे.

परिशिष्ट.

तत् पश्चात २ परिशिष्ट हें (१) अधिकार ओर मौन. (२) नोधा भक्ति जो के यथाशक्ति अज्ञानी ज्ञानीको कर्तव्य हे.

उसपीछे जिनसे ग्रंथ उपकृत हुवा उनको धन्यवाद हे याने धन्दवादपत्र हे

उसपीछे एक क्षमापत्र हे जिसमें ३ विषय हैं—

(१) प्राचीन ओर अर्वाचीन हिंदी भाषाका भेद (२) लिखित मूलतत्वदर्शन ओर उसके इस साररुप ग्रंथका भेद तथा इसका ओर मुद्रित संस्कृत सूत्रावलीका भेद (३) असाधनताका भेद.

उपर कहे अनुसार दूसरी बुकके विषय हैं.

तत्वदर्शन भाग ३ की संक्षेपमें अनुक्रमणिका.—

दर्शनसंग्रह (तत्वदर्शन अध्याय १ गत)

इसकी विस्तारवाली सपृष्ट अनुक्रमणिका दर्शनसंग्रह–बुक नं. ३ (भाग ३) के आरंभमें हे ओर उसकी संक्षिप्त अध्याय १ पृष्ट २२१से २२८ तकमें हे सो वांच लीजीये. इसमें भरतखंड ओर परखंडोंमें जो धर्म मत पंथ हैं उनका वर्णन हे ओर अनेक धर्म--मत--पंथोंके दूषण तथा भूषणभी जनाये हैं यहांतक के हरकोई धर्म मत पंथ, पंचदशांग पूर्वक पालनेमें आवे तो उस व्यक्तिका कल्याण–उसको सुख होसकता हे.

——:०:——

ब्रह्मसिद्धांत नाम भाग ४ की संक्षेपमें अनुक्रमणिका.—

इस ग्रंथके पूर्वार्द्ध ओर उत्तरार्द्ध एवं २ भाग हैं. इस ग्रंथकी विस्तारपूर्वक सपृष्ट अनुक्रमणिका ब्रह्मसिद्धांत नाम बुकके आरंभमें हे, यहां संक्षेपमें—

भूमिका—ग्रंथके अधिकारी, संबंध, विषय, प्रयोजन वगेरे. ग्रंथके संज्ञागण॥

तत्वअनुशासनकी प्रतिज्ञा, शब्दादिका अग्रहण, ईश्वर--जीव--प्रकृति ओर मुक्ति तथा मुक्तिके साधनका सामान्य वर्णन, कर्मयोग ओर उससे मुक्ति, उपासना (भक्ति) योग ओर उससे मुक्ति॥ उससे विवेकबुद्धिकी उत्पत्ति, प्रमाणका बयान, अप्रमाका बर्णन, युक्तिका बयान, ईश्वर--जीव--पुनर्जन्मकी सिद्धि, गंधादि १० पदार्थोंका, देशकाल ओर तमका, संयोगादि ८ अवस्थाका, रागादि ८ अवस्थाका ओर आकर्षणका बयान. सामान्य (जाति) विशेष ओर अभाव स्वरुपतः वस्तु नहीं, इसका वर्णन. सृष्टिकी उत्पत्ति-ग्रह--बनस्पति--मन--ओर इंद्रियोंकी उत्पत्ति, सृष्टिके आरंभमें अमैथुनी सृष्टि ओर विशेषज्ञान, कर्मयोग ओर उपासना (ध्यान) योग विषे शंका समाधान, मुक्तिसे अनावृत्ति ओर आवृत्तिभी. परतोग्रहवादका मंडन ओर स्वतोग्रहवादका खंडन. पूर्वार्द्ध समाप्त.

अधिकारीका अरण्यमें गमन. सत्संग. तत्वशोधक मध्यस्थका श्रवण. पूर्वार्द्धमें जीवादि जो विषय कहे उनमेंसे वा उनके अंशमें जो असमीचीनता–दोष उसका वर्णन. परमाणुवादका निषेध, स्वतोग्रहकी सिद्धि, परतोग्रहका निषेध.

अहंत्वके ज्ञानकी जिज्ञासा, अध्यात्मविद्या प्राप्ति करनेवाले अधिकारीके लक्षण, विवेकख्याति अनुसार कथन.—

अथ अवच्छेदवाद (चिदचिद्वाद, व्यवहारमें विशिष्टवाद). अधिष्ठान (प्रकाश) ओर तदेतर प्रकाश्य (विषय–करण–प्रधान–मनस्) ॥ सूक्ष्माका बयान. ग्रह उपग्रहकी सनियम गति होनेका कारण आकर्षण नहीं; किंतु शेषा, उसकी लचक ओर ग्रहोंका गुरुत्व-इस विषयका विस्तार. सूक्ष्म भूत, बीज ओर मनस्का वर्णन. प्रमाता (चिदग्रंथी), प्रत्यगात्माका बयान. जीव वृत्ति, उसके रागादि, कृत्यादि ओर भावनादिका वर्णन, शरीरमें जीववृत्तिका व्यापार. पुनर्जन्म, इदंका ग्रहण अहंत्वका नहीं, मनस्की प्रावाहिक नवीन उत्पत्ति ॥

प्रधानविशिष्ट चेतन-ईश्वर (विशिष्ट तंत्री) का बयान. सृष्टिकी उत्पत्ति स्वप्नक्रमवत् । महाप्रलय, ओर महाप्रलय नहीं; किंतु ग्रहादिका प्रवाहसे उपचयापचय-इन उभयका वर्णन. सृष्टिका व्यापार. जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्छा, ओर मरण अवस्थाओंका बयान. विश्व, तैजस, प्राज्ञ, समचेतन तथा वैराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर ओर ब्रह्मका बयान. दुःख सुख अर्थात क्या.

परतःप्रमाण ओर स्वतःप्रमाणका वर्णन. प्रमात्व अप्रमात्व. **स्वतोग्रह**के लक्षण. अहंत्व, रागादि, अपरोक्षत्व (सू. ३७२), ज्ञेयत्वादि, प्रमात्व, अप्रमात्व, भोग, उपभोग, ज्ञातृत्वादि, ज्ञातादि, अनुभव, स्मृति, सुषुप्ति, प्रमाणता, परिमाणता, तुर्या, शेष इन अहंत्वादिके लक्षण ओर उनका प्रकार ओर उनका व्यापार तथा उनके अनुभव होनेकी शैली; जिससे विवेकख्याति हुये चिदग्रंथीका भंग होना. जीवन मुक्ति. जीवनमुक्तका व्यापार, उसकी अनुत्क्रांति (मुक्तिसे अनावृत्ति), उसके मनस्का उपयोग.

उक्त सिद्धांतमें अनेक शंका उनका समाधान. लक्ष्यालक्ष्य सिद्धांत. अधिकारीको आत्मानुभववास्ते वा जितना चाहिये कहा गया-बस हे.

उत्तर फिलोसोफी—(द्वैताद्वैतका झगडा)-सृष्टि ब्रह्मका परिणाम, ईश्वरद्वारा अभाव जा, एक क्षणिकका परिणाम, ईश्वरकी शक्तिका परिणाम, इन ४ सत्यद्वैतकी असमीचीनता ॥ आगे अध्यस्तवाद.—

जगत भ्रमरुप, अध्यासरुप, अध्यासवत्, ब्रह्मसे विलक्षण, विवर्त्तरुप, दृष्टिरुप सृष्टि, इन छ अध्यस्तवादोंमें चेतनमें जो अज्ञानादि दोष माने हें उनका निरीक्षण ओर अत्रवत्तत्र तत्रवत्अत्र, एवं स्वाभाविक अवभासवाद (बाधवाद) की सिद्धि ॥ वस्तुतः **ब्रह्म** (सम-प्रकाश) **नेतिनेति**का ओर **अध्यस्त** (जगत्-माया-प्रकाश्य) **अन्यथा अन्यथा**का विषय ॥ अत्रवत्तत्र तत्रवत्अत्र ॥ वर्त्तमाने वर्त्तमानवत् ॥

परिशिष्ट—समष्टि नोधाभक्ति ॥ ग्रंथ समाप्त.

उपर अनुसार चार बुकोंकी संक्षेपमें अनुक्रमणिका दरसाई गई. ॥ इति ॥

ओ३म्.

तत्त्वदर्शन.

भूमिका.

मङ्गल—शालिनी.

तत्त्वज्ञानां सज्जनानां समानं, सत्यं लक्ष्यं चैकमस्मात्प्रणौमि ।
इष्टस्यैषां सद्गुणानांनिधीनाम्, सत्कारोऽतः स्याद्योग्यो विचारः ॥१॥

भावार्थ—दोहा.

तत्त्वदर्शि सज्जनोंका, लक्ष्य समान निदान ;
नमस्कार उनको करूं, सद्गुणकी हें खान. ॥ १ ॥
हो गया उनके इष्टका, नमनेसे सत्कार ;
नहिं आवश्यक्ता यहां, करना शोध विचार. ॥ २ ॥

शालिनी ओर दोहाका भावार्थ—तत्वज्ञानी सज्जनोंका सत्य, समान ओर एक लक्ष्य होता हे, इसलिये में उनको नमस्कार करता हूं; इस नमनेसे उन सदगुणोंकी खानके इष्टकाभी सत्कार हो जाता हे; अन्य[1] शोध विचार करनेकी इस प्रसंगमें आवश्यकता नहीं हे । १ ।[2]

तत्त्व बोधक होनेसे तत्त्वदर्शन ॥ २ ॥ पूज्य गुरुका प्रसाद होनेसे उनके नामसे सुशोभित ॥ ३ ॥ भाषा सूत्रवृत्ति ओर विवेचनसे आशय ॥ ४ ॥ संस्कार प्रसिद्ध दृष्टि ॥ ५ ॥ उपयोग अनुपयोग यथारुचि ॥ ६ ॥ श्रेय ओर तत्त्वका जिज्ञासु अधिकारी ॥ ७ ॥ तत्त्वनिर्णय विषय ॥ ८ ॥

---

[1] ईश्वर, शक्ति, वा उनके अवतार, वा देव, वा दूत, वा वेदादि पवित्र ग्रंथोंको किंवा श्रीगुरुवर्यको नमस्कार क्यों नहीं किया? असमान संप्रदाय वा असमान धर्म मत वाला तत्त्ववेता हो तो? इत्यादि ॥

[2] वक्ष्यमाण सूत्रोंका अनुवाद संस्कृतमें हे, सो जुदा हे ॥

तत्त्वज्ञानजन्य परमशांति (श्रेय) प्राप्ति प्रयोजन ॥ ९ ॥ प्राप्यप्रापकादि संबंध ॥ १० ॥ दुःख दोष अदर्शिको अग्राह्य ॥ ११॥ पामर विषयीकोभी, अनुकूल न होनेसे ॥ १२ ॥ शब्दमात्रके विश्वासीकोभी, शब्दका ग्रहण न होनेसे ॥ १३ ॥ तत्वज्ञकोभी, अपेक्षा न होनेसे ॥१४॥ जीवनमत परंपरा[1] साधन ॥१५॥ पक्ष, नियम, विचार ओर फल यह अध्याय ॥१६॥ प्रथममें पक्ष दर्शन वर्णन ॥१७॥ दूसरेमें निर्णयकी नियमादि सामग्री ॥१८॥ तीसरेमें सिद्धासिद्धपक्षका विचार ॥ १९ ॥ चोथेमें परोक्षअपरोक्ष-शांति-फलकी प्राप्तिका प्रकार ॥ २० ॥ [2]धर्मसे [3]विज्ञान ओर इनउभयसे तत्व [4]विद्याकी उत्पत्ति ॥२१॥ निषेध विधान दोनों रूपमें [5]दर्शन ॥२२॥ यहां धर्म तत्वका[6]विवेक ॥ २३ ॥ ओर ईश्वरादिका विशेष व्याख्यान ॥ २४ ॥ मतादिके शोधकोंकोभी उपयोगी ॥ २५ ॥ अभ्यास ओर ज्ञानका प्रभाव प्रसिद्ध ॥ २६ ॥ इसमें नवीन नहीं पूर्वके विषय होनेसे ॥ २७ ॥ नियम संग्रहादि विशेष ॥२८॥ पक्षारोप भावनावश पुनरुक्ति ॥ २९ ॥ अभ्यास ओर सुगमतार्थभी ॥३०॥ आरंभमें संज्ञाप्रकरण (सुगमता वास्ते) ॥ ३१ ॥ अर्थसहित उसका उपयोग विवेचनमें ॥ ३२ ॥ मनुष्य क्षमापात्र, अपूर्ण होनेसे ॥३३॥ ओर सत्यमेरा, न मेरा सत्य एसी भावना होनेसे ॥ ३४ ॥ रुच्यल्पताऽपवादा, विचित्रताभावनेचाऽपि; एकान्तमनेकान्तामिव संदर्शयति चैतानि[7] ॥ ३५ ॥ गम्यागम्यमनिश्चितमगम्यमथवाऽनिर्वचनीयमपि, एषामादरकरणं, मत्स्वल्पमतेर्हितत्कार्यम्.[8] इति. ॥ ३६ ॥

भावार्थ–दोहा—रुची, भावना, अल्पता, विचित्रता, अपवाद । अनेकांत एकांतको दरसावत कर वाद ॥ ३५ ॥ गम्यागम्य अगम्य वा, अनिर्वचनीय नाम; कहूं अनिश्चित वा किसे मुझ लघुमतिका काम ॥ ३६ ॥ इति-प्रयोजक.

सूत्रार्थ—पहले छंदरुप सूत्रका अर्थ उपर कहा गया ॥ १ ॥ इस ग्रंथके विचार द्वारा तत्त्वका बोध होता हे, इसलिये इसका नाम **तत्त्वदर्शन** हे ॥ जो अमिश्रित समस्वरूप हो उसे तत्व कहते हें. देखाजाय जिससे उसे किंवा आत्मज्ञानका जो साधन वा शास्त्र उसे दर्शन कहते हें ॥२॥ इस ग्रंथमे अन्योंके मतके सिवाय जो लिखा हे वोह पूज्य गुरुश्रीका प्रसाद हे, इसलिये इस ग्रंथको उनके

[1]बहिरंग. [2]रीलीजीयन. [3]सायंस. [4]फिलोसोफी. [5]नेगेटिव पोजीटीव. [6]रीलिजीयनफिलोसोफी. [7]आर्यमेद. [8]मुख्यार्था.

नामसे सुशोभित किया गया हे[१] ॥ ३ ॥ इस ग्रंथके मूलवाक्य आर्य (हिंदी) भाषामें हें, उनका अनुवाद संस्कृतमें हे. उनका आशय भाषा सूत्रवृत्ति ओर विवेचन से जानाजाता हे; क्योंकि सूत्र तो सूत्ररुप[२] ही होते हें (यहां हिंदीसूत्र ओर उनका अर्थ तथा संक्षेपमें विवेचन हे.[३] संस्कृतानुवाद जुदा हे) ॥ ४ ॥ जो संस्कार ओर अनुभव प्राप्त हुये हें वे परीक्षक, शोधक ओर जिज्ञासुओंके सामने प्रसिद्ध हों, इस दृष्टिसे यह ग्रंथ गूंथा गया हे, इससे इतर अन्य उद्देश नहीं हे (क्योंकि प्राचीन ऋषि, मुनि ओर फिलोसोफर–महात्मा बहुत कुछ कह गये हें, हम अल्पज्ञ नवीन क्या कहेंगे). ॥५॥ इस ग्रंथका उपयोग अनुपयोग यथारुची हे याने अधिकारी ओर पाठककी रुचीपर आधार रखता हे ॥६॥ (ग्रंथके अनुबंध जानेविना उसमें प्रवृत्ति वा निवृत्ति निष्फल होनेकी संभावना हे; इसलिये अनुबंध जनाते हें–) जिसको श्रेय ओर तत्वज्ञानकी जिज्ञासा हो वोह इस ग्रंथका मुख्य–**अधिकारी** हे. (अ. ४ । १४३ देखो)[४] ॥७॥ तत्वनिर्णय, यह इस ग्रंथका **विषय** हे ॥८॥ तत्वज्ञानजन्य जो परमशांति होती हे उसकी प्राप्ति यह इसका मुख्य **प्रयोजन** हे ॥ ९ ॥ परमशांति ओर अधिकारीका प्राप्य (प्राप्त करने योग्य) प्रापक (विशेष करके जो प्राप्त करे सो) भाव संबंध हे. अधिकारी विचार करनेयोग्य ओर विषय विचारणीय हे, इसलिये उनका विचारक–विचारणीयभाव संबंध हे. अधिकारी ओर विचारका कर्तृ–कर्तव्यभाव संबंध हे. ग्रंथ ओर विषयका प्रतिपादक–प्रतिपाद्यभाव संबंध हे. विचार ओर अभ्यास द्वारा, ग्रंथ ज्ञानका जनक हे, इसलिये ज्ञान ओर ग्रंथका जन्यजंनकभाव संबंध हे. इत्यादि **संबंध** हें ॥१०॥ जिसकी संसारके ३ ताप (२ । सू. ७३७) ओर धर्मपंथके क्लेशोंपर तथा उसके गुह्य दोषोंपर कभी खास दृष्टि न गइ हो

---

[१]संस्कृत अ. २ । ३ प्रथमावृत्ति देखो.

[२]सूक्ष्म गूंथेहुये, अनेक तरफ जानेवाले, पूर्वापरसे संकलित ओर लघुवाक्य.

[३]इस ग्रंथमें जो सूत्रोंका अर्थ, भावार्थ वा विवेचन हे उसे कोई खास प्रकारकी वृत्ति वा टीका वा भाष्य नहीं समझना चाहिये; क्योंकि सबजघे इनके लक्षण नहीं मिलते; किंतु पाठकको आशयका बोध होजाय एसी शैलीमें लिखा हे, साधन मिले तो दूसरी आवृत्तिमें पद्धतिपूर्वक छपाया जायगा.

[४](शं.) अधिकारी तो विवेकसंपन्न होता हे ओर इस ग्रंथमें तो विवेकका बोधभी हे. (उ.) विवेकके प्रकार हें. इसका पाठक सामान्यविवेकवाला हो तो बस हे. ओर इष्टका साधन होनेसे इसमें विवेकका वर्णन हे, इसलिये शंका व्यर्थ हे.

उसको यह ग्रंथ ग्रहण करने योग्य नहीं हे; क्योंकि उसकी रुचीके अनुकूल न होगा ॥११॥ जो सर्वथा अशिक्षित हें किंवा संसारी विषयोंमेंही रुचे पुचे–विषयासक्त हें, उनकोभी अग्राह्य हे; क्योंकि उनके अनुकूल नहीं हे ॥१२॥ जो केवल स्वमान्य शब्दप्रमाण (मनकूल-ऑथरेटी) मात्रपरही विश्वास रखते हें अर्थात अपने वा दूसरेके स्वतंत्र विचारको अवसर नहीं देते वा नहीं देसकते उनकोभी यह ग्रंथ अग्राह्य हे; क्योंकि इसमें कहींभी प्रमाणरुपमें शब्दकी साक्षी नहीं ली हे[1] ॥१३॥ जहां दूसरेके मतोंका दिग्दर्शन हे वहां उनके मान्य ग्रंथकी साक्षी उनके लिये बताना यह दूसरी बात हे; जेसेके अ. १ में इसराईली मत बताने वास्ते बायबल ओर कुरानके वाक्योंकी साक्षी दी हें. शब्दप्रमाणको बीचमें न लेनेका कारण ब्रह्मसिद्धांत (सू. २, ५)में जनाया हे ॥ १३ ॥ जो विद्वान विवेकी अनुभवी हें उनकोभी अग्राह्य हे; क्योंकि उसको इसकी अपेक्षा नहीं होती ॥१४॥ जीवनमत (अ. ४ सू. १४)का अभ्यास इस ग्रंथके आशय जान्नेमें बहिरंग साधन हे ॥१५॥ इस ग्रंथमें चार अध्याय ओर उनके कुल २०८४ सूत्र हें[2] [१] पक्षाध्याय, [२] नियमाध्याय, [३] विचाराध्याय, [४] फलाध्याय ॥१६॥ **प्रथम**अध्यायमें सू. ४ के अनुसार अध्यारोपकी रीतिसे चेतन–जडवादके ४५ पक्ष दरसाये हें. ओर उस पीछे प्रचलित बडेबडे ३६ मत चेतनवादके ओर ३ जडवादके पक्ष ओर यूरोपके ७५ प्रसिद्ध फिलोसोफरोंके मत बताये हें; इसप्रकार भरतखंड ओर परखंडोंके १३७ पक्षका वर्णन हे ओर साथही साथ कितनोंकका अपवादभी हे. आगे उनके कालक्रमकाभी विचार कियागया हे. फेर विदूषक तथा विभूषक मत लिखके अध्यायका उपसंहार किया हे. इस अध्यायके कुल सू. ४७२ हें, जिसमें १०० अवतारादि विषयके उदाहरणरुप हें ॥१७॥ **दूसरे** अध्यायमें उक्त पक्षोंका वा सत्य तत्वका केसे निर्णय हो, इस जिज्ञासावश निर्णायक (शोधक) सामग्री याने सृष्टिनियम, जीवनियम ओर तत्संबंधी सामग्री, हेतु, दृष्टांत उदाहरणके सहित बताई हे याने नियमादि सामग्रीका बयान हे. इस अध्यायके सूत्र ७४७ हें ॥१८॥ **तीसरे** अध्यायमें दूसरे अध्यायके उपयोगके उदाहरण हें– याने नियमाधीन कितनेक असिद्ध, सिद्धपक्षका विचार दरसाया हे. इसके ५८८ सूत्र हें ॥ १९ ॥ यह अध्याय १ लेकी शोधक, परीक्षक हे–दूसरे अध्यायका इसमें आंदोलन ओर उपयोग हे; परंतु शोधक परीक्षकको विशेषपरिश्रम न हो

[1] सृष्टिनियम, व्याप्ति ओर परीक्षाको मध्यस्थ माना हे. अ. २ । १९९ ॥

[2] मूलमें ३५००के आसरे सूत्र थे, उनको इस सारमें २०८४में समादिया हे.

ओर ग्रंथ न बढे, इसलिये पहले अध्यायमें जहां आरोप ओर मंतव्य-पक्ष लिखे हैं वहांही उनका (योरोपीयदर्शनसे इतरका) अनुवाद दरसा दिया गया हे; इसलिये इसमें थोडे विषय लिखे गये हें ॥ १९ ॥ चोथे अध्यायमें शांति-सुखफलके ८ प्रकार हें, उनमेंसे आत्मज्ञान होके विवेकजा शांति हो यह ओर दूसरा प्रकार एसा बयान किया हे कि आत्मानुभव कियेविनाभी मत-पक्षोंका परिणाम निकालके जीव-ईश्वरादि विशयमें न उतरना पडे ओर परोक्षज शांति होजाय. इस अध्यायके सूत्र २७७ हें ॥२०॥ धर्म (रीलीजीयन) भावनासे विज्ञान (**सायंस**) की ओर इन दोनोंसे तत्वविद्या (**फिलोसोफी**) की उत्पत्ति हुई हे, एसा पाया जाता हे [१]॥ २१ ॥

---

[१] **धर्म** यह संस्कृत भाषाका शब्द हे, इसका अर्थ दूसरी भाषामें न होनेसे अनेकार्थी हो पडा हे.— कर्तव्य (ड्यूटी) वा ज्ञातव्य-प्राप्तव्य-कर्तव्यार्थ जो कृति सो. चलता अर्थ-ईश्वरादिकी अमुक भावना ओर उसके अनुसार वर्तन; किंवा किसीका विश्वास होके उसके कहे अनुसार ईश्वरादिमें भावना ओर तद्अनुसार वर्तन॥ **सायंस** (दर्शन) विस्तृतअर्थवाला शब्द हे. सामान्यतः यह भाव हे कि प्रत्यक्षसिद्धका उपयोग किस प्रकारसे हो यह जिस विद्यासे पाया जावे उसे सायंस कहना. यथा फिजिकल सायंस, केमिस्टरी ई. हिंदीमें इसे **विज्ञानशास्त्र** ओर उसके अभ्यासीको वैज्ञानिक कहते हें ॥ **फिलोसोफीका** शब्दार्थ-ज्ञानकी चाहना. जिसको ज्ञानकी चाहना सो फिलोसोफर (ज्ञानका आशक). परंतु रुढीमें इसके अनेक अर्थ हें, यथा-तत्वविद्या, मर्मविद्या, आत्मविद्या इ. पुनः व्यवहार फिलोसोफी, इत्यादि; एवं विषयप्रति नाम पडते हें; परंतु सार यह हे के सायंसका विषय कार्य तत्व (एलीमेंट) हे ओर फिलोसोफीका कारण (मूल) तत्व विषय हे. धर्म (रीलीजीयन) भावनासे सायंसका ओर उन दोनोंसे फिलोसोफीका जन्म हुवा ओर फेर सुपूत होनेसे दोनों स्वतंत्र होगये. यथा-जीव, शरीरसे भिन्न हे एसी धर्मभावना दृढ होने पर शरीरकी शोध चली ओर उसमें भौतिक-रसायणीय मिश्रण, यंत्र, कला पाये जानेसे उसके तत्वोंके शोध द्वारा अनेक उपयोग होने लगा. अभी सायंस मनस् (मन) ओर चेतन भागपर नहीं पहोंची हे तोभी व्यवहारमें बहुत उपयोगी होपडी; ओर धर्मके आधीन न रही. एसे ही फिलोसोफीका इतिहास हे. यथा-धर्म भावनामें चेतन शरीरसे इतर हे यह भाव लेके उसके पृथक्करणमें प्रयत्न चला, उधर सायंस जिनका उपयोग बताती हे उनका मूल क्या हे इसपर दृष्टि गई ओर बयान होने लगा; ओर फेर स्वतंत्र होगई. यह सिलसिला नवीन शैलीके अनुसार संक्षेपमें

तत्वविद्या (फिलोसोफी) दो प्रकारकी मानी जाती हे. (१) विधान (पोजीटीव, ध्रुव वा मुसबित) ओर (२) निषेध (नेगेटीव, रण वा मनफी); इस विषयमें विवाद हे. किसीके मतमें जिससे उन्नति हो एसे विचारोंके समूहका नाम पोजीटीव. दूसरेके मतमें खंडनविना जो मंडन सो पोजीटिव. इ. इस ग्रंथमें विधान ओर निषेध उभय रुप हें ॥ २२ ॥ इस ग्रंथमें धर्म-तत्व (रीलीजीयन फिलोसोफि) का विवेक हे, कार्यरुप पदार्थोंपर विशेष द्रष्टि नहीं दीगइ हे ॥२३॥ इस ग्रंथमें सूत्रोक्त ईश्वरादि (ईश्वर, जीव, प्रकृति (माया), बंध, मोक्ष, पुनर्जन्म, मोक्षके साधन, सृष्टि पूर्व-उत्तर-उत्पत्ति स्थिति लय इन ८) विषयोंका विशेष वर्णन हे, इनसे अन्य विषय गौण हें ॥२४॥ मत (स्वबुद्धिसे मान लिया जाय सो), संप्रदाय (परंपराकी रुढी वा चलनकी सूचक), धर्म (सृष्टिनियम तथा आत्माके अनुकूल ओर परिणाममें सुखप्रद जो कर्तव्य सो), पंथ (दूसरेके कथन वा लेखपर विश्वास करके उसपर चलना), मार्ग (जो चला आ रहा हे उसपर चले जाना). रीलीजियन, मजहब ओर तरीका-इन शब्दोंका समावेश मत ओर धर्ममें नहीं होता; किंतु पंथ, मार्गमें वा संप्रदायमें समावेश होता हे. इन मतादिके शोधक परीक्षकोंकोभी व्यवहारमें यह ग्रंथ उपयोगी हे; क्योंकि उनके मूल सिद्धांतोंका इसमें वर्णन हे ॥२५॥ जिसको इसका अभ्यास ओर मर्मका ज्ञान होगा वोही इसका उपयोग ले सकेगा; क्योंकि अभ्यास ओर ज्ञानकी महिमा प्रसिद्ध हे ॥ २६ ॥ इस ग्रंथमें कोई नवीनता नहीं हे; क्योंकि ग्रंथोक्त विषय पूर्वके हें ॥२७॥ परंतु (१) नियमोंका संग्रह, (२) किसी नियमकी नवीन योजना, (३) धर्म फिलोसोफीमें सृष्टिके नियमोंका उपयोग (अ. २, ३),

---

कहा हे. ईश्वरवादि एसा नहीं मानते; किंतु हरेक विषयके मूलका उपदेशक किसी सर्वज्ञको मानते हें. एसा माना जाता हे के धर्म, सायंस (विज्ञान) ओर फिलोसोफी (अध्यात्म विद्या) इन तीनोंका मूल आर्यप्रजा हे; उसकी द्दष्टिमें धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष इन चारपदोंमें तीनोंका समावेश हे; परंतु उसकी द्दष्टि आदि (धर्म) ओर अंत (मोक्ष संपादक तत्वविद्या) परही रही हे, विज्ञान (अर्थशास्त्र-सायंस) पर ज्यादा नहीं रही हे; इसलिये यह दोनों विषय जेसे इसप्रजामें शोधे हुये हें वेसे दूसरी प्रजामें नहीं जान पडते, साक्षीमें वेद ओर उपनिषद् देख लीजिये. ओर सायंसका शोध जेसे यूरोपकी प्रजा (अमेरीकन तदंतरगत हें) ने किया हे वेसा दूसरी प्रजामें नहीं जान पडता. अफसोस! वर्त्तमानमें आर्यप्रजा अपने उन दोनों विषयमेंभी पडतीपर हे. ओर शुकर हे के दूसरी प्रजा चढतीपर हे.

[४] स्वरुप निर्णय करनेका प्रकार (याने दूसरे अध्याय (स्वरूपसंभावना)में १२९ विभाग किये हें), [५] मुमुक्षुके लिये सब धर्म मतोंका एक परिणाम (अ. ४ में हे), [६] शब्दप्रमाणको न लेके संप्रदायोंके विषयका निर्णय, [७] जेसे ओर विषयोंकी सायंस हे एसे धर्म (रीलीजीयन)कीभी सायंस होने योग्य हे; अ. २ से यह विचार स्पष्ट होजाता हे[१]; इसप्रकार ७ नवीन रुप हें ॥२८॥ यह ७ भी कुछ नूतन नहीं हें; अर्थात पक्षकारोंने जानके वा न जानके जो सृष्टिनियम उनके प्रतिकूल थे वे न लिये उन सबको एकत्र करदिया हे ताके शोधक ओर परिक्षकको निर्णयमें सुगमता पडे, यह संग्रहमात्र नवीनता हे; इसीप्रकार शेष षड्प्रसंगके संबंधमें यथायोग्य जानलेना चाहिये ॥२८॥ एकही विषयको आरोप-भावनामें ओर पक्षकारोंने एक रुपमें तथा जुदाजुदा रुपमेंभी माना हे इसवास्ते उनका विवेचन, खंडनमंडनभी वेसेही उनकी रीतिसे यथाप्रसंग होना चाहिये इसलिये १, पाठकवृंदकी सुगमताकेलिये वहां वहां ही विषय लिख दिया हे ताके दूसरे अंकपर न जाना पडे इसलिये २, ओर विषय उपस्थित रहे इसलिये ३, कोई कोई जघे इच्छापूर्वक पुनरुक्ति हुई हे; सो सफल जानके क्षमाके योग्य हे ॥२९।३०॥ इस ग्रंथ गत ईश्वरादिवत जो अनेक संज्ञा गण हें वे वाचककी सुगमताके लिये अकारादि क्रमसे संस्कृतानुवादमें तो ग्रंथकी भूमिकाके अंतमें लगादिये हें ओर हिंदीमें उनकी अनुक्रमणिका, अध्याय प्रति जुदाजुदा हे तथा उनका अर्थ, विवेचन ओर उपयोग यथाप्रसंग हुवा हे. संज्ञाके विना सूत्र, सूत्ररुपमें नहीं आसकते ओर उनके भावार्थ जानेविना प्रसंगका आशय विदित नहीं होता, इसलिये एसा करना योग्यही हुवा हे ॥३१।३२॥ मनुष्य क्षमाका

[१] **विज्ञप्ति**—अनेक विषयोंकी सायंस ओर बाजे अपवादको छोडके अनेक विषयोंके मूल-सिद्धांत हें [जेसे के शरीर ओर केमिस्तरी आदिके हें]; परंतु रीलीजीयनकी सायंस वा फिक्स मूलसिद्धांत नहीं हे!! यदि अनुभवी-विद्वान एकत्र होके उपसिद्धांतोंको ओर कर्म-उपासनाकी डीगरी यथाअधिकार जानके धर्मकी सायंस ओर मूल-सिद्धांतको शोधें तो यह विषयभी उभयरुप धारण करनेके योग्य होसकता हे. किंवा हाईस्कूलोंकी पुस्तकोंमें सृष्टिनियमोंको दाखिल किया जावे तोभी इष्टपरिणाम निकल सकता हे. अथवा जापान, अमेरीका, फ्रेंच, इंगलेंड वा जरमनीमें प्राथमिकशिक्षणकी जो पुस्तके हें उनका हिंदीमें अनुवाद करके प्रचार करना चाहिये, एसा होनेसेभी इष्टपरिणाम निकल सके; क्योंकि उनसे स्वतंत्रताका बीज बोया जासकेगा ओर फिर नियमादिका ग्रहण होसकेगा.

पात्र हे; क्योंकि अल्पज्ञ ओर अपूर्ण हे (अ. २ । ४०६, ४६९, ४७० देखो). मैंभी जेसातेसा मनुष्य हुं, इसलिये विद्वान–बुद्धिमान–अनुभवी–तत्ववेता–सज्जन ओर परीक्षकोंसे क्षमा मांगनेका अधिकारी होसकता हूं ॥३३॥ तथाहि **"जो सत्य हे सो मेरा हे,"** याने मुझको इष्ट हे–ग्राह्य हे; नहींकि " जो में मान बेठूं वोह **मेरा सत्य** हे, " एसी मेरी भावना हे; इसलियेभी क्षमाका अधिकारी हूं ॥ ३४ ॥ दोनों संस्कृत छंद ओर दोहोंका यह अर्थ हे कि जो विषय एकांत (निश्चित, सिद्ध, ठीक, सत्य) हो वोहभी जो अपनी रुची वा भावनाके प्रतिकूल हो वा अनुकूल न हो तो बुद्धिकी रुची वा भावना उसकी प्रतिपक्षी बनके यथासामर्थ उसको अनेकांत (अनिश्चित–असिद्ध) बतानेकी कोशिश करती हे; इसीप्रकार बुद्धिकी अल्पज्ञता ओर अल्पताभी [खालीचना बाजे घना–इस समान] करती हे; ओर विषयोंकी विचित्रताभी एकांतको अनेकांत दरसानेमें निमित्त होजाती हे; क्योंकि साधन अपूर्ण ओर दृश्य विचित्र हे; इसलिये कुछकाकुछ माननमें आजाता हे. ओर हरेक विषयके साथ अपवादभी लगा हुवा देखते हें, सो यह अपवादभी एकांतको अनेकांत दरसानेका हेतु बनाजाता हे. इसप्रकार रुची, भावनादि एकांतको अनेकांत दरसानेके निमित्त होजाते हें ॥ तो फेर अन्यके लिये तो क्या कहना !! इसका विवेचन स्पष्ट हे याने अधिकारी–शोधक स्वयं करसकता हे ॥३५॥ किसी विषयको अनिश्चित बताना वा अगम्य [अननोयबल] समझना वा कहना वा गम्यागम्य बताना किंवा अनिर्वचनीय हे एसा दरसाना, वोह मुझ अल्पमतिवालेका काम हे अर्थात घटित हे; क्योंकि अल्पज्ञ हे ॥३६॥

ओर उपर कहे हुये आशयसमान क्षमा करना तथा अल्पज्ञताको सुसधारना यह बुद्धिमान विद्वानोंका काम हे. इसलिये जिन ज्ञात विद्वानोंके संगसे ओर जिन ज्ञात वा अज्ञात विद्वान बुद्धिमान अनुभवियोंके बनाये हुये ग्रंथोंसे मुझे सहायता मिली हे–उनके अनुग्रहका पात्र हूवा हूं, उन सबको **धन्यवाद** देके अंतःकरण पूर्वक उनका उपकार मानता हूं[१]. ओर अब जो क्षमा करके सुधारनेकी कृपा करेंगे अर्थात अपने अनुग्रहका पात्र बनावेंगे तो अपनेको उपकृत मानूंगा) ॥३६॥

[१]वस्तुतः तो यूं हे कि उपकारका प्रतिउपकार नहीं होसकता जबके वोह अर्थार्थी, इस दृष्टिसे न हो. उसमेंभी माता, पिता, गुरु, वैद्य ओर प्राणरक्षक तथा आद्यशिक्षक वेदका तो प्रत्युपकार होना असंभव जेसा हे; तथापि शिष्टाचारकी दृष्टिसे कहाजाता हे–अर्थात जिन ग्रंथोंसे मुझको सहायता मिली उनके कर्ताका

विशेष.

जो के इस ग्रंथकी कितमीक बुक जुदा जुदा हैं, पाठकको एक भाग पढनेसे कोइ संशय उत्पन्न न हो इस लिये इस ग्रंथ संबंधी विशेष बातें--ग्रंथ पढने पीछे उपयोगी बाबत यहां लिखदेना आवश्यक समझा, वे नीचे अनुसार हैं.

(१) मनुष्य मंडलकी द्रष्टिसे यह कहा जासकता हे कि सत्य तत्त्वका शोध (निर्णय) प्राचीन कालमें होचुका हे ओर वोह **वेदांत** (ज्ञानका अंत वा सार) फिलोसोफीमें माना गया हे. मानव मंडलमें जितने फिलोसोफर (तत्त्ववेता) हुए हैं उन सबको वेदांति कहा जासकता हे कारणके वे तत्त्वज्ञानके अंत –सार पर पहोंचे हैं एसा माना जाता हे, तथापि तत्त्व (अनुत्पन्न, अखंड, अविनाशी, निर्विकार, अमिश्रित, कैवल्य-सम) में उनका मतभेद पाया जाता हे जो इस ग्रंथके पढने पर जान सकोगे. एसा क्यों हुवा ? उनकी एक वाक्यता हो सकती हे वा नहीं ? इसकी चर्चा प्रस्तुत प्रसंगके अनुकूल नहीं हे, प्रसंगमें जो आर्य प्रजामें श्रुति (वेदोपनिषद), ब्रह्मसूत्र, ओर भगवद्गीताको प्रमाण मानते हैं वे वेदांती कहे जाते हैं. यद्यपि सर्व आर्य तत्त्ववेताको मान्य जो उपनिषद् वे वेद बोध्यका ही व्याख्यान करतें हैं ओर ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता जुदा जुदा नइ नइ प्रकारकी--शैली प्रक्रियासे उपनिषदोंके बोध्यका ही विस्तार करते हैं याने नवीन शोध नहीं करते, तथापि उनके अनुयायी उनके वाक्योंका अर्थ ओर भाव कोइ द्वैत कोइ अद्वैत वादमें लगाता हे, सारांश उनमेंभी मतभेद हे इसलिये जिज्ञासुको उनमेंसे सत्य जाननेकी जिज्ञासा होती हे. इसमें भी तत्व, श्रेय ओर श्रेय साधन के जाननेकी विशेष इच्छा होती हे. एसा ही इस ग्रंथके वास्ते जानना चाहिये अर्थात इसमें कुछ नवीन शोध-नवीन सत्य नहीं हे तथापि शब्दप्रमाणके बिनाभी शब्दबोधित सत्य तत्व तिर आनेकी अनेक प्रकारकी सामग्रीका संग्रहरुप यह ग्रंथ हे, यहही इसमें नवीनता हे (उपर लिख आयहैं). उस सामग्रीके उपयोगसे सत्य तत्व पर ही हाथ पडनेका हे, इस लिये यह ग्रंथ संग्रहरुप हे. यद्यपि संग्रह रुपमें वक्ष्यमाण ४ श्रेणीका क्रम नहीं रखा हे तथापि उनके उपयोगका क्रम तो हे ही.

(२) उपर कहे हुये कारणकी द्रष्टिसे इस ग्रंथका लेख ४ श्रेणीके रुपमें हे. वे श्रेणी यह हैं—

पृष्ट ८ की टीपनका शेषभाग पेज ९ में वांचो.

(क) **व्यवहार** (अविवेक) दशा. इसमें सत्य कार्यवाद हे, जेसा के अध्याय १ में विभूषक मत ओर अध्याय ४ में संग्रहवाद, प्रौढीवाद हे. जिनका समावेश द्वैतवादमें होजाता हे. सब प्रकारकी उत्तम प्रवृत्ति, जनमंडलका प्रेयस् इसीके अंतर्गत हे.

(ख) **विचारदशा.** इस शैलीमें " एक ब्रह्म सम चेतन दृष्टा ज्ञाता ओर सबका अधिष्ठान हे उससे इतर जितने (देशकाल वस्तु) परिच्छिन्न परिवर्तनात्मक हें याने जितने नाम रुप हें अर्थात माया (प्रकृति) उस समचेतनसे विलक्षण ओर दृश्य हें. यहां विलक्षण* शब्दका अर्थ विस्तारवाला हे इसका वाच्यार्थ (ब्रह्मसत्‌चित्, माया उससे विलक्षण याने सत् नहीं चित् नहीं) अध्याय ३ में जनाया हे ओर लक्ष्यार्थ‡ अध्याय ४ में स्पष्ट किया हे. सार दोनोंका समान निकलता हे.

तमाम कर्मयोग (निष्काम प्रवृत्ति) का तमाम सृष्टि नियमों (अ. २ में हें) का तमाम मतोंका खंडन (अ. १–३ में हे) ओर उनकी अपूर्णताका इसके वाच्यार्थमें समावेश होजाता हे. इस शैलीमें द्वैत, द्वैताद्वैतकी समाप्ति ओर विलक्षणाद्वैतका दर्शन होते हुये **दहली दीपक** न्याय समान दुतरफी प्रकाश करते हुये कैवल्याद्वैतके प्रभावका आरंभ होजाता हे, ओर उसके लक्ष्यार्थ पर पहोंचने पीछे अंतिम परिणाम निकल पडता हे. इस श्रेणीका नाम विलक्षणवाद--प्रकाश प्रकाश्यवाद, अध्यस्तवाद ओर मायावादभी रुपांतरसे कहा जाता हे.

(ग) **विवेकदशा.** इसश्रेणीमें (१) यह सब ब्रह्मही हे (२) सब उसीमें हे (३) सबमें वोह हे (४) सब उससे हे ओर (५) वोह सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदरहित अद्वैतरुप असंग हे. एसे पांचो विरोधी सिद्धांतोंकी एक वाक्यता होजाती हे. तमाम नामरुप (क. ख. रुप माया) का अपवाद हो जाता हे. इस श्रेणीमें ध्यानयोग (भक्ति योग) का समावेश होजाता हे. इसको **विवर्त्तवाद** कहते हें. कारणके ब्रह्म सबका विवर्तोपादान कारण जान

* दृगदृश्यौ द्वौ पदार्थौस्तः विलक्षणौ, दृग्ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्व वेदांत डिण्डिमः ॥ शंकराचार्य कृत ब्रह्मनामावली.

इसीको **विलक्षणवाद–मायावाद–विवर्तवाद** कहा गया हे.

‡ एक अविषय–अज्ञेय होते हुयेभी अपरोक्ष. दूसरा प्रतीति कालमेंभी नहीं. **केसी विलक्षणता !**

पडता हे. संप्रज्ञात समाधीमें इसकी परीक्षा होजाती हे, इसका सार अ. ४ में कहा हे.

(घ) **अनुभवदशा** (परीक्षाकाळ). इस चोथी श्रेणीपर जब अधिकारी-शोधक पहोंचता हे तब **समचेतन** से इतर सब नामरुप **बाध** (प्रतीत काळमैंभी नही एसे अत्यंताभावका प्रतियोगी) रुप ओर समचेतन ब्रह्मकी दृष्टिसे **अजात** एसा अनुभव होजाता हे. इसकी परीक्षा **असंप्रज्ञात** समाधीसे होजाती हे. यहही इस ग्रंथका **मुख्य सिद्धांत-निष्कर्ष हे.** यह चोथे अध्यायमें शब्द प्रमाणको बीचमें न लेके वस्तुस्थिति ओर युक्तिवादद्वारा स्पष्ट किया हे. शब्दकी साक्षी इस लिये नहीं ली हे के सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, लय ओर कर्मवादकी जितनी थीयरी (श्रेणी) हें वे जिज्ञासुओंकी बुद्धिकी शांति अर्थ कल्पित हें; वस्तुतः **अध्यस्तवाद** में कोइ थीयरी सिद्ध नहीं होती किंतु वस्तुस्थितिहीका बयान होता हे. जिनकी द्रष्टिमें निवृत्तिभी प्रवृत्ति हे अर्थात निवृत्ति प्रवृत्ति दोनों समान हें उनके लिये यह सिद्धांत व्यवहारद्रष्टिसे निर्भ्रांत निष्काम **उत्तमप्रवृत्तिवाद** हे.

उपरोक्त चारों शैलीके अधिकारीके लक्षणोंमें थोडा थोडा भेदभी होता हे इसलिये तत्त्वजिज्ञासु ओर मुमुक्षु (परम शांति चाहनेवाला) इस ग्रंथका अधिकारी, एसा सामान्य लक्षण बताया हे; इसमें चारों श्रेणीके लक्षणोंका समावेश होजाता हे. ओर जहां तत्त्व साक्षात्कार हे वहां अर्थात अध्याय ४ के उत्तर भागमें तत्त्व साक्षात्कार करनेवाले अधिकारीके लक्षण दरसाये गये हें. ओर जेसे गीता वगेरे संग्रह ग्रंथमें वस्तुप्राप्ति यथा अधिकार होती हे परंतु तत्त्व वस्तु (मुख्य सिद्धांत) अधिकारीकोही शिक्षकद्वारा अभ्यास करनेपर मिलती हे इसी प्रकार इस ग्रंथके संबंधमें जान लेना चाहिये. यद्यपि इस ग्रंथमें उपरोक्त चार शैलीका क्रम नहीं हे तथापि उपयोगका क्रम हे इसलिये उनके अधिकारियोंके विशेष लक्षण वहांही जनाये गये हें.

(३) इस ग्रंथका मुख्य सिद्धांत ओर प्रयोजन उपर कहा गया हे. वोह नीचे लिखे हुये पक्षों (मत--सिद्धांत--मंतव्य) से जुदा हे, एसा ध्यानमें रखना चाहिये--तमाम ग्रंथ वांचनेसे जान सकोगे.

(१) नानाचेतनवादी (२) निरवयव, अपरिणामी, अखंड, अविनाशी, निरीह, अक्रिय, असंयोगी, असंग, एसे एकसमचेतनसे इतरकोभी वेसा वा

उससे विरुद्ध सत्य तत्त्व माननेवाले (३) क्षणिक परिणामवादी (४) शून्यवादी (५) केवल जडवादी (६) अनाधारवादी (७) अनिश्चितवादी (८) एकसे अधिक तत्व मानते हैं याने अनेक तत्ववादी (९) जो ब्रह्मचेतनको वा उसके घटाकाश महाकाशवत् उपहित अंशको अज्ञानी भ्रांत, सक्रिय, इच्छु, दुःखी सुखी मानते हैं अर्थात भ्रमवादी (१०) जीवको कर्ताभोक्ता ओर वर्णाश्रमकी मर्यादाको नहीं स्वीकारते अर्थात मनमुखी ॥ यह तमाम बातें तमाम ग्रंथके विचारने पीछे विदित होसकेंगी.

(४) परंतु उपरोक्त ४ श्रेणीकी द्रष्टिसे कहा जाता हे के इस ग्रंथमें जहां खंडन मंडनमें अपूर्णताका किंवा पूर्वापर विरोधका आभास जान पडे वहां यथा प्रसंग ओर यथा अधिकार समाधान करलेना चाहिये ओर समाधान होसकेगा एसा प्रकार रखा हे, कारणके जिस शोधकका दूसरी श्रेणी के लक्ष्यमें प्रवेश होगया वोह जान सकेगा के उन सबका यहांतकके सृष्टिनियमों (अ. २) काभी अंतमें अपवाद होजाता हे ओर किसी धर्म-मत-पंथ वा किसी भावनाके साथ विरोध नहीं आसकता. इसका कारण यह हे के जिस व्यक्त माया (प्रकृति) सत्तामें शंका, सृष्टिनियम ओर समाधान किंवा वादविवाद हैं उसका परमार्थ सत्तामें अपवाद होजाता हे—पताभी नहीं लगता. यहां दोतीन उदाहरण देना उचित जाना गया.

(क) विलक्षणवाद—(अ. १ सूत्र २०१ से २०५ तक) विलक्षणके वाच्यार्थमें यह खंडनमंडन अपूर्ण हे. जब विलक्षणके लक्ष्यार्थमें गये के आपही समाधान होके विलक्षणवाद ठीक होजाता हे.

(ख) ब्रह्मवाद (पेज ६३), उपाधिवाद (पेज ६४), अध्यासवाद (पेज ६६), एकजीववाद (पेज ६७), विलक्षणवाद (पेज ६९), समष्टि-भ्रमवाद (पेज ७६५ से ७७७), व्यष्टिभ्रमवाद (पेज ७७८–७८१) इन सबका खंडन हे। विलक्षणवाद ओर बाधवाद (पेज ७२ अ. ३ सूत्र ५८३) को छोडके तमाम पक्षोंमें समचेतन (ब्रह्मचेतन वा कूटस्थ साक्षीचेतन) को अज्ञान-अविद्या लगाइ हे उसको सामान्यज्ञानी विशेषअज्ञानी कहके उसको संस्कारी ठेराके उसको अध्यास याने भ्रम माना हे, परंतु यह बात असंभव हे अथवा यह अध्यारोप वा शैली ठीक नहीं हे, एसा अ. ३ में जनाया हे ओर कहीं भ्रमवादकी रीतिसे जो अजातवाद हे उसकाभी निषेध किया हे. अब यदि पूर्वोक्त भ्रमवाद

वगेरेमें यह (उपरोक्त) दोष-कल्पना निकालदो तो विलक्षणवाद (मायावाद)के साथ उक्त सब पक्ष मिलजायंगे ओर फेर विलक्षणवादका लक्ष्यार्थ लेवें तो बाधवादके साथ सबकी एकता होजायगी ओर चेतन ब्रह्मकी द्रष्टिसे कहने लगें तो बाधवाद ओर अजातवादकी एकता सिद्ध होजायगी. (शं.) तो खंडन क्यों किया. (उ.) शैली (भ्रम) का, नहीं के अद्वैताचार्योंके सिद्धांतका, कारणके उन सब वादोंका सिद्धांत अद्वैत निकलता हे. उक्त शैली (ब्रह्मको अज्ञान, कर्ता भोक्ता जीव ब्रह्मकी एकता) इस तर्ककालमें शोभित नही होती. उपरांत जिसको उक्त शैली वा उस प्रक्रियासे तत्त्वबोध होके परम शांति प्राप्त होसकती हे तो हमको उसके निषेधमें आग्रह नहीं हे, उनको वही मुबारक हो. इसी प्रकार दूसरे खंडनमंडनमें सारद्रष्टि लेना जेसाके संग्रहवाद ओर तुष्टिवाद (अ. ४) में प्रकार रखा हे.

वेदांत प्रक्रियाओमें उत्तम पक्ष बाधरुप मायावाद (विलक्षणवाद) में एक **जीववाद** जिसे दृष्टि सृष्टिवादभी कहेते हें उत्तम सिद्धांत हे ओर युक्तिसे तथा वस्तुस्थितिसे सिद्ध होता हे. इस बाधबाधका वर्णन अ. ४ में होगा.

(ग.) अ. २ में सृष्टिनियमोंको **अटल** माना हे ओर स्वतः सिद्ध कहा हे (सूत्र २८--२९--४६--६८ देखो) ओर फेर जगतको विलक्षण कहके ब्रह्मका विवर्त्त बताया हे, यह अयुक्त जान पडता हे, **परंतु** जेसे स्वप्न व्यक्त हुये स्वप्न सृष्टिमें **देशादि** ((देश ससीम असीम, काल अनादि अनंत, सादिसांत), वस्तु (लंबाइ चोडाइ मोटाइ रुपकी व्यक्ति आकृति), परिमाण (अणु-मध्यम-विभु), गति - (पदार्थोंकी क्रिया), **संबंध** (पदार्थोंका कारण कार्यभाव, आधाराधेय भाव, व्यापक व्याप्य भाव, तादात्म्य भाव, समवाय आदि संबंध), बाह्यांतर भाव (स्थूल सूक्ष्म शरीरसे बाहीर अंदरमें पदार्थ हें, वृत्तिका शरीरसे बाहिर गमन होता हे वा नहीं होता), प्रमात्व, अप्रमात्व, विद्या, अविद्या यह ११ देशादि) विना वहां के पदार्थ याने देशादि पाये जाते हें परंतु वस्तुतः प्रतीत कालमेंभी वेसे भाव प्रकार वाले नहीं होते जैसेके भावप्रकारवाले हम मानते थे वा प्रतीत होते थे. सारांश प्रतीत कालमेंभी जाग्रत होनेके पीछे जेसे माने जाते हें वेसे थे. इसी प्रकार मायाके व्यक्त हुये उसके अस्तित्व तक (सृष्टिकाल--कल्पनाकाल तक) अटल स्वतः सिद्ध कहे जाते हें ओर माननाही पडता हे, यह बात याने जाग्रत स्वप्न उभय समान हें यह बात--कथन मात्रसे नहीं मानी जाती किंतु सयुक्ति सिद्ध हे (ग्रंथमें बांचोगे) इसलिये तदंतर्गत जो नियम--माया जेसी सत्तावाले मायाकी

काभी बयान हे, तथापि अधिकार भेदसे वहां स्पष्ट रुपमें नही जनाये गये हैं इसलिये अ. ४ के उत्तरार्धके आरंभमें इसके अधिकारीके विवेकादि खास लक्षण कहके जिस प्रकारसे ब्रह्मज्ञान (ब्रह्म आत्माका ऐक्य--चिद्बोध) का स्वयंप्रकाश हो ओर उससे इतर तमाम नामरुप (माया) बाधरुप हैं, इस बाधरुपका भान हो तथा इस बाधरुपका अपवाद हो ओर इस अपवादका स्वयंबोध हो, इस प्रकारका विस्तार अ. ४ के उत्तरार्धमें किया जायगा.

(६) वेदांतके कोइ कोइ ग्रंथोंमें बहुधा बाजीगरोंके वा पुराण कल्पित कथाओंके दृष्टांतोंसे मायाका स्वरुप कह बताते हैं ओर उससे पंचतंत्र ग्रंथ समान 'कल्पितसेभी लाभ होता हे' याने उत्तम अधिकारीको मायाके स्वरूपका सुखेन भान, यह लाभभी होता हे तथापि वर्तमान---तर्ककाल---शोधकालमें उससे बोध वा शांति नहीं होती किंतु संशयही रहता हे कारणके उपरोक्त द्रष्टांतोंमें इंद्रजाल (मसाला, चालाकी, तंत्र) होता हे अनुपादान नहीं होता.--यथा छुहारे वा आंबका सफल वृक्ष अेक घंटेमें लगादेना, हथेली वा काचपर मेथी उगाना, रातको मकानमें उडते सांप नजर पडना, आकाशमेंसे मनुष्यके अंग कटे हुये पडना, अग्निमें शरीर जलादिया जावे पुनः जीवता दूसरे मकानमेंसे निकले, आकाशमें राजा वा देवताकी छबीका दर्शन कराना, अग्निमें देवताके दर्शन होना. इ.॥ परंतु इस ग्रंथमें मायाके स्वरुपका बोध होने वास्ते इस प्रकारके द्रष्टांत उदाहरण नहीं दिये गये हैं प्रत्युत वर्त्तमानमें जेसी परीक्षा (मेस्मेरेझम वगेरे) होती हे वेसे साइन्टीफिकट दाखले दिये गये हैं. कारणके सृष्टिमें कोइ अघटित घटना नहीं होती क्योंके जब होता देखा तब उसी समय अघटित पद काफूर होजाता हे, जिसको बुद्धि नही जान सकती उसको अघटित घटना कहना स्वाभाविक हे यथा—

माया (प्रकृति) को अनादि अनंत, अनादिसांत, सादिअनंत, सादिसांत, अणु, विभु, मध्यम, सावयव, निरवयव, देशकालवाली, नहीं कह सकते तथा ब्रह्म अमुक विशेषणवाला कहनाभी नहीं बनता कारणके यह सब भाव मायाके अंतर्गत हैं ओर बुद्धि मायाका कार्य हे. जेसाके स्वप्नसृष्टिमें देशादिका भावप्रकार देखते हैं उनसे उनके मूल मायाका निर्णय नहीं होसकता एसाही यहां हे. याने अनिर्वचनीय कही गई हे.

(७) वेदांत यह जैसे सर्वोपरी सिद्धांत हे ओर दुर्बोध्य तथा सहेलभी हे वेसेही उसपर कटाक्ष (शंका)भी क्लिष्ट हैं, उनका समाधान यद्यपि अधिकारीके लिये सहेल होजाता हे तथापि दूसरों वास्ते दुस्तर हे, यहां उदाहरण लिखदेना उचित हे.

(१) जबके ब्रह्म सजातीय विजातीय रहित हे तो अद्वैत वक्ता श्रोता कोन? (२) जबके ब्रह्मसे इतर ज्ञाता दृष्टा अन्य नहीं हे तो ब्रह्मज्ञान बोधक ओर श्रोता कोन? (३) जबके ब्रह्म (क) मन वाणी रहित अक्रिय समचेतन हे निर्विकल्प, निर्विशेष, निर्गुण, इच्छा रहित, अपरिणामी, अविनाशी, निर्विकार हे, (ख) चेतनतत्व वस्तु एकही हे, अनेक चेतन नहीं हैं, (ग) कूठस्थ ब्रह्म चेतन कर्ता भोक्ता नहीं हे उसको बंध वा उसकी मोक्ष नहीं हे, (घ) ब्रह्म ओर आत्मा (स्थूल सूक्ष्म-कारण शरीर अवच्छिन्न चेतन वा तद्विशिष्ठ चेतन) एक हे अर्थात नाना चेतन नहीं हैं, (च) ब्रह्मसे इतर सर्व (माया--बुद्धि, चित्त--अंतःकरण, प्रतिबिंब, आभास) जड हैं, मिथ्या हैं, (छ) ब्रह्मसे इतर भ्रम हे, (ज) ब्रह्मचेतन असंग हे, (झ) ब्रह्मचेतन शुद्ध हे, अज्ञान बलसे उसको अपने कूठस्थ (आत्मा) स्वरुपमें कर्ता भोक्ता पना, गति होना तथा बंध मोक्ष भासता हे, (ट) ओर जबके अज्ञान बलसे याने उपाधि (माया--अविद्या) करके शुद्ध कूठस्थ चेतनमें कर्तृत्वादि भासते हैं, (जो उपर लिखे अनुसार हो) तो नीचे लिखे अनुसार सवाल उठते हैं याने—

(१) जबके (१। २। क। ख। ग। घ। च। छ। ज) हे तो ब्रह्मकी जिज्ञासा करनेवाला कोन, मोक्ष किसकी, मोक्षसे अनावृत्ति किसकी, इनका वक्ता श्रोता कोन? ब्रह्मज्ञान किसको? (२) जबके म। घ। हे तो ब्रह्मके एक भाग (प्रत्यगात्मा)को अल्पज्ञ--अज्ञानी, कर्ता भोक्ता ओर दूसरे भागको शुद्ध सर्वज्ञ, सक्रिय तथा तीसरे भागको उभय धर्म रहित असंग कहना वा मानना असंभव हे कारणके वोह शुद्ध चेतन एक रसही हे. (३) जबके घ। ट। हे तो विशिष्ट चेतन (जीव) कर्ता भोक्ता नहीं माना जासकता कारणके मिथ्या--जड उपाधिमें बंध मोक्ष नहीं बनता, उसको दुःख सुख होना नहीं कह सकते ओर चेतन तो शुद्ध हे अतःउभयमें बंध मोक्षका अभाव हे. (४) जबके च. हे तो ब्रह्म चेतन हे ओर वोह एसा एसा हे यह कोन कहेता हे. ब्रह्म तो निर्विकल्प हे. सारांश ब्रह्मका नाम कथनभी नहीं बनता. (५) जबके (२। च। क) हे तो ब्रह्म आत्मा (ब्रह्म जीव एक "ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या" कोन कहता कोन सुनता ओर कोन मानता हे. जड--मिथ्यामें एसा ज्ञान होना असंभव ओर प्रमाण--तर्क--युक्ति तो मायाके अंतर्गत हैं.

(६) जबके अंतःकरण वा मायाको पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तरके फोनोग्राफ समान मानें तो ब्रह्मके स्वरुपका अन्यसे भेद वा अभेद, ओर फोनोग्राफ हे, यह कोन कहता हे. ब्रह्मतो क. स्वरूप हे तथा अन्यको एसा ज्ञान नहीं होसकता. (७) जबके नं. २ हे तो ब्रह्म ज्ञेय नहीं होनेसे ब्रह्मके ज्ञानका उपदेश व्यर्थ हे ओर मोक्ष प्राप्तिका साधान नहीं मानाजासकता. (८) जबके झ. ट. अनुसार मानें तो यह भ्रांति किसको? भ्रमको भ्रम नहीं होता ओर चेतन--ज्ञान स्वरुपको भ्रम नहीं बन सकते, कारणके उसमें अज्ञानादि जो भ्रमकी सामाग्री उसका उसमें अभाव हे (अध्याय ३ में विस्तार हे) तथा इसकी निवृत्ति अर्थ अन्य उपदेष्टा सिद्ध नहीं होता (क) याद करो. भ्रमको भ्रम मानें तो उसकी निवृत्ति असंभव तथा उससे इतरको जो श्रवन मनन होता हे सो वा मोक्ष मानते हो सोभी भ्रमरुप मानना होगा, भ्रमको भ्रम होनेकी सामग्री न होसकनेसे भ्रमको भ्रम होना नहीं माना जासकता. योग्य संबंधके अभावका नाम अज्ञान हे ओर ज्ञानस्वरुप (चेतन) का अपनेसे इतरमें उपयोग होना याने अन्यको प्रकाशित करने वा इस स्थितिको अज्ञान नहीं कहा जासकता. इस स्थितिको अपने ज्ञान स्वरूपका अज्ञान कह देते हैं, यह भूल हे वा कथन मात्र हे वा शैली मात्र हे. सारांश अज्ञान कोइ पदार्थ नहीं हे ओर उसका कार्य जो भ्रम सोभी स्वरुपतः पदार्थ नहीं हे. अतः जगत भ्रमरुप नहीं हे. ओर ज्ञान स्वरुप चेतनको अपने स्वरुपका अज्ञान नहीं हे. अब जो ट. अनुसार मानें तो कूटस्थात्मा तो उपाधी कालमें अर्थात उपदेशके पूर्वभी ओर उपदेश कालमेंभी शुद्ध हे. उपाधिके बलसे आत्माको यदि कोई दूसरा केसाभी माने वा दूसरेको आत्मा केसाभी भासे इससे उसमें कुछ विकार नहीं होता अतः उपदेशकी आवश्यकता नहीं. ओर जिसने भ्रमसे आत्मामें कर्तृत्वादि माने उसका भ्रम यदि उपदेशसे निवृत्त हुवा तोभी शुद्ध ब्रह्म-आत्माको उससे लाभ नहीं होता ओर जिसका (माया--बुद्धि--अंतःकरण--आभास--प्रतिबिंबका) भ्रम गया वोह स्वयं जड मिथ्या हे, इसलिये उसका बंध मोक्षभी सिद्ध न हुवा, इसवास्तेभी ब्रह्म विद्याका कथन श्रवण व्यर्थ हे, तथाहि चेतनके एक देश (जीव चेतन) को अज्ञान भ्रांत मानें वा उस अंशमें अज्ञान करके गति बंधमोक्ष भासना मानें तो उपाधि (अंतःकरणादि) के फिरते रहनेसे क्षण क्षणमें एक चेतन भाग बंध दूसरा मुक्त तीसरा बंधे चोथा मुक्त एसे बंधमुक्त होता रहेगा इसलिये उपदेश व्यर्थ हे. जो समष्टि चेतनमें अज्ञान जन्यबंध मोक्ष मानें तो किसी एक ब्रह्मवित्के ज्ञानसे सब

जगतकी निवृत्ति होजानी चाहिये परंतु आजतक एसा न हुवा न देखा न सुना. इसलिये जगत सत्य ओर जीव चेतनका भेद माननाही होगा, नहीं तो व्यवस्था न होगी. (९) जबके च. अनुसार ब्रह्मसे इतर मिथ्या मानें तो आद्य उपदेशक श्रुति (वेद) गुरुभी मिथ्या ओर यह उपदेशभी मिथ्या होगा याने व्यर्थ हे. पुनः जो यह मिथ्यात्व (ब्रह्ममें जगतका अत्यंताभाव) सत्य तो द्वैतापत्ति यदि असत्--कल्पनामात्र तो अद्वैत सिद्धांतकी हानी. (१०) वेदांतका सिद्धांत एक प्रकारका जडवाद (प्रकृतिवाद--नास्तिकवाद--परलोकका निषेधक) हे क्योंके चेतन कूटस्थ एक रस ओर अक्रिय निर्गुण माना हे अर्थात निष्फल हे. कारणके त्रिपुटी मात्रकी व्यवस्था जड मायामेंहीकी जाती हे इसलिये बंधमोक्ष परलोककोभी मिथ्या कहा हे. जो ब्रह्मचेतनको जगतकर्त्ता वा जीवरूपसे भोक्ता मानें तो वोह विकारी ठेरेगा ओर अकर्ता अभोक्ता माना तो जडवाद स्पष्ट होगया. जबके ब्रह्म चेतन निर्विकल्प हे तो वोह जगतका कर्त्ता नहीं हुवा. याने अनिश्वरवाद ठेरा. यदि माया विशिष्ट चेतन वा मायोपहित चेतनको ईश्वर माना तो कर्तृत्व तो मायामेंही आवेगा अर्थात जगतकी सृष्टा माया ठेरी. यहही जडवाद हुवा. (११) माया मानी वा द्रष्टा द्रश्यका भेद माना तो द्वैतापत्ति. जो न मानें तो दृष्ट विरुद्ध दोष. (१२) देशके विना गति नहीं होती, देशकाल मायाके कार्य, इसलिये मायाके व्यक्त कालके पूर्व गति वा देशकाल? उभयथा जवाब नहीं बनता. (१२) यदि माया अनादि अनंत तो द्वैतापत्ति यदि सादि तो उसके उपादानकी अव्यवस्था (अनवस्था) कारणके अभाव जन्य कहना वा मायाको ब्रह्मका टुकडा मानना असंभव ओर अनुत्पत्ति (अ. २) बाधक, अनादिसांत वा सादिसांत कहना असंभव. (१३) माया यदि अणु परिमाण तो उससे आकाशादि यदि विभु परिमाणतो उससे परमाणु आदिकी उत्पत्ति असंभव. यदि मध्यम परिमाण तो जन्य होनेसे नाशवान ओर उपर १२ में कहे अनुसार उपादानकी अव्यवस्था. (१४) यदि माया, ब्रह्मकी शक्ति (स्वभाव वा गुण) तो शक्तिमान (वा गुणी) सत्य नित्य तो उसकी शक्ति माया (स्वभाव वा गुण) भी सत्य--नित्य, इसलिये उसको मिथ्या, अजात नहीं कहसकते. यदि सांत तो ब्रह्मकी शक्ति नहीं, यदि अक्रिय तो नाम रुपात्मक नहीं, यदि सक्रिय तो शक्तिवान ब्रह्मकी गति विना उसमें गति नहीं होसकती. यदि ब्रह्म, ईश्वररुप सक्रिय तो किसीका आधेय ठेरेगा निदान द्वैतापत्ति. (१५) मायाका स्वरूप किसने जाना ओर कोन वकता हे?

ब्रह्म तो निर्विकल्प साक्षी मात्र रहा. बुद्धि ओर वाणी मायाके उत्तर याने कार्य रुप इसलिये वे उसको नहीं जानसकते याने उसका स्वरुप नहीं कह सकते. (१६) जो प्रमात्व अप्रमात्व यह दोनों माया बुद्धिके भेद तो तुम्हारा अद्वैत सिद्धांतभी मायारुप मिथ्या--छल. जो माया बुद्धिसे इतर (पर) तो माया-बुद्धि उसकी सिद्धि करनेमें असमर्थ. अर्थात उभयकी सिद्धि न होनेसे अनिश्चितवाद रहेगा. (१७) अध्यस्तकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप होती हे यह बात किसने जानी? कोन कहता हे? याने अध्यस्ताभावकालमें वा भावकालमें, यह नहीं कहा जासकता, क्योंकि भावकालमें प्रतीतरुप हे; ओर अभावकालमें वक्ता श्रोताही नहीं रहता, इसलिये यह कथन कल्पना मात्र हे. (१८) जगत वा मायाका मिथ्यात्व उसके कार्य (स्वप्न, स्थाणु पुरुष, रज्जुसर्प, नभनीलता) के दृष्टांतसे सिद्ध करते हो परंतु जब मायाही साध्य हे तो उसका कार्य साध्यरुप हो इसमें क्या कहना! इसलिये वेदांत सिद्धमें साध्य समदोष आजाता हे. (१९) माया यदि स्वभावतः नाम रूपात्मक होती हे याने त्रपुटिरूप जगतकल्पती हे तो बौद्धोंके क्षणिक विज्ञान समान स्वतंत्र ठेरी ओर सत्यमाननी होगी कारणके उसके स्थिर ओर नाश होजानेका कारण नहीं मिलता. ओर यदि शुद्ध सत्व माया विशिष्ट चेतन (ईश्वर) जगतको कल्पता हे, एसा मानें तोभी माया सत्य ठेरी कारणके सर्वज्ञ सत्य चेतन, मिथ्या मायाका केसे उपयोग कर सकता हे, क्या स्थाणु वाले पुरुषको स्थाणु गति देसकता हे? वेसे. परमार्थतः मायाको शून्य (अजात) कहते हो उससे नामरूप होना असंभव हे. (२०) ब्रह्म ओर जगतको जो स्थाणु पुरुष वा रज्जुसर्प समान मानें तो ब्रह्ममें नामरूपका अध्यारोप ओर अपवाद करनेवाला ओर जगतको कल्पनेवाला कोन? तहां ब्रह्म तो नहीं, कारणके निर्गुण, निर्विकल्प, अक्रिय ओर निर्विशेष हे, उससे इतर सर्व अध्यारोप हे. यदि मायाको (बुद्धिको) वेसा करनेवाली मानें तो मायाको सत्य मानना पडेगा--द्वैतापत्ति होगी. इसलिये उन दोनोंसे भिन्न तीसरा तत्त्व परिच्छिन्न जीवचेतन स्वीकारना पडेगा याने द्वैतवाद होगया. जो एसाभी न मानें तो वेदांत, उपर कहे अनुसार एक प्रकारका जडवाद सिद्ध होगा कारणके द्वैतमात्र (त्रिपुटी--बंध मोक्ष वगेरे) माया हे सब व्यवस्था मायासे होती हे. वा करते हें. परंतु वोह अपनेको आस्तिक--जीवकी बंधमोक्ष माननेवाला कहता हे ओर इसीलिये ब्रह्मकी जिज्ञासा ओर मोक्षसे अनावृत्ति मानता हे; इसवास्ते उसको चाहिये के जगतको सत्य माने, उसकी निवृत्ति (याने बंधाभाव) ज्ञानसे नहीं होती

किंतु कर्मसे होती हे, एसा कह बतावे. कारणके जो सृष्टिकी उत्पत्ति जीवोंके कर्मानुसार (वेदांत सूत्र देखो) होती हे तो जीव अनादि अनंत होनेसे नाना जीव चेतन सत्य मान्ने होंगे--अर्थात द्वैतापत्ति स्पष्ट हे, परंतु जो सृष्टि कर्मानुसार नहीं मानोगे तो ईश्वरवादका खंडन होजायगा वा तो ईश्वरभी जीवोंके समान सादिसांत मानना पडेगा. (२१) वेदांतिओंका अद्वैतवाद निराशावाद हे, प्रवृत्ति मार्ग (कर्मयोग) का शत्रु ओर आलस्यका हिमायती हे तथा निवृत्ति मार्गका प्रवर्तक हे; अतःजगतका हितकारक न होनेसे उपेक्षणीय हे. जो कहो के बडे बडे वेदांताचार्य उत्तरके मुमुक्षु जनों वास्ते ग्रंथ बनागये, वेद प्रचार करगये, इ. तो यह साबित होजाता हे के वे दृश्य जगतको मिथ्या नहीं मानते थे किंतु जीव जगतको सत्य मानते थे. जो एसा न होता तो उनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती.*

यहांतक नं. ७ के अंतर्गत २१ सवाल उदाहरणरुपमें जनाये, इससे इतरभी अनेक हें. इन सबका समाधान अध्याय ४ में एक जीववादकी दृष्टिसृष्टिवाद ओर बाधवादकी शैलीसे किया गया हे ओर अधिकारी--शोधक अपने आपही समाधान करने योग्य हो जाय एसा प्रकार लिखा हे. याने जब जीवको जीवके स्वरुपका भान याने चिद्बोध होजाय ओर स्वतोग्रह प्रक्रिया अनुभवमें घुसजाय, अपरोक्षत्व क्या, स्वप्नसृष्टि क्या केसी, नभकी पहाडकी नीलता क्या, इन सबका तादृश्य भान होजाय तब उभय (चिदाचिद)के साक्षात्कारसे इष्टकी सिद्धि होजाती हे अर्थात सब सवाल--विपरीत भावना ओर संशयका समाधान होजाता हे. ओर निर्भ्रांत परम शांतिको पाता हे.

(८) परंतु एसे सत्यपर पहोंचनेके लिये अधिकार प्राप्तिकी अपेक्षा हे. जेसे बालक इस नवीन दुनियामें आता हे यदि उसका माता पिता गुरु+ ओर सृष्टि नियमपर श्रद्धा विश्वास न हो तो वोह यातो पशु समान रहता हे यातो उसका जीवन कुचेष्टा वश होके दुःखरुप होजाता हे, परंतु जो श्रद्धा भावनाके साथ

* यद्यपि वेदांती निवृत्ति मार्गवालेभी हुये हें तथापि विशेष निर्भ्रांत प्रवृत्तिवाले, जगत उपकारक हुये हें. यथा श्रीराम महाराज, षोडषकळा संपन्न श्रीकृष्ण महाराज, व्यास देव, पूज्य शंकराचार्य महाराज इत्यादि. वेदांत सिद्धांतके रहस्यको नहीं जाननेवाले २१ नंबर जेसा आरोप करते हें. इसका समाधान अ. ४ में हे.

+ उत्तम ग्रंथ, उत्तम सोसाइटी, उत्तम उपदेशक.

उनकी छायामें पला तो परवरश होने पीछे वोह स्वयं विचार पूर्वक जीवनयात्रा सफल करने योग्य बनजाता हे. इसी प्रकार जिज्ञासु बालकके लिये वेदांत प्रवेश यह नवीन दुनियामें प्रवेश हे (शं) क्यों ? (उ.) विचारो (१) ब्रह्म अविषय होते हुये अपरोक्ष ओर जगत प्रतीत होते हुयेभी नहीं, एसा विलक्षण सिद्धांत बताता हे (२) जिसको सत्य माना जाता हे वा जानते हैं उसे मिथ्या ओर जिसे असत देखते हें उसे सत्य कहता हे (३) सब, विषय सुखकोही इष्ट--प्रेयस् समझते हें, वेदांत इसको अनिष्ट दुःखरुप समझाता हे (४) जीव चेतन जुदा जुदा याने नाना नहीं, एसा स्पष्ट कर बताता हे (५) वोह समचेतन ब्रह्म सदा शुद्ध हे उससे इतर सब मिथ्या हे, एसा कहता हे तोभी वर्णाश्रमके धर्म, नाना जीव, कर्म उपासना ज्ञान, ओर बंध मोक्ष इनका हिमायती हे (६) अंतमें सबका अपवाद करके नेतिके शेषको केवलाद्वैत कहता हे. इसलिये इस वेदांत (ज्ञानका सार--निचोड--मर्म) को अद्भुत् नवीन दुनीया माननाही पडता हे. इस नवीन दुनियामें आनेपर जिज्ञासुको उसके बोधक आद्यशिक्षक--वेद--‡ ब्रह्मनिष्ठ गुरु ओर सर्वतंत्र सृष्टि नियमोंपर आस्ता-श्रद्धा-(विश्वास) होनी चाहिये. ओर उनके बताये हुये विवेकादि ४ साधन (अ. ४ में कहेंगे) संपादन करके अधिकारी होजाना चाहिये. उसके पीछे स्वतंत्र होनेपर उन सबका अपवादभी आप करलेता हे. परंतु जो उपर कहे अनुसार प्रथम श्रद्धा विश्वास न हो किंतु उपर जेसी शंका-व्यर्थ सवाल किये हें वेसे करे वा उनके जेसे अन्य सुनकर बांचके कुतर्कमें पडजाय अथवा अधिकार प्राप्त न होनेसे इस विद्याके कायदे (नियम--व्याकरण--सेन) को छोडके दूसरे ढंगपर चलपडा तो उसको वेदांतकी नवीन दुनियासे लाभ नहीं मिलसकता प्रत्युत इस लोक ओर परलोकके मार्ग ओर सुखसे वंचित होजाता हे वा वेसा होनेकी संभावना रहती हे.

इसलिये जेसे समझु रोगी, वैद्य--डाक्टरके कहे अनुसार उसकी दवा लेता हे तथा पथ्य पालता हे, तो रोग नष्ट होजाता हे परंतु जो वोह एसा न करे किंतु रोग क्या, किसको, क्यों हुवा, उससे दुःखी कोन, रोग केसे हुवा, किस प्रकारसे ओर कब जायगा, इस वैद्यकी दवाई ठीक हे वा नहीं, इत्यादिके निर्णय

‡ वेद् नाम हे ब्रह्मका याने ज्ञान स्वरुप जो ब्रह्म, जिसमें सब स्वतोग्रह होते हें. ओर उसके ज्ञेय (अर्थ) को जो संकेत प्रतिपादन--कथन करते हें उसे मंत्र तथा श्रुतिभी कहते हें.

करने पीछे दवाई लेना चाहे तो दुःखीही रहेगा, रोग न जायगा. (शं.) वैद्य अनाडी होतो रोगीको विशेष दुःख होजायगा (उ.) प्रतिष्ठित नामांकित, ओर आयुर्विद्यामें लोकमान्य होना चाहिये. फेरभी जो उसकी दवाईसे रोग न जाय तो प्रारब्ध ‖ किसीके पेरमें थोहरका कांटा लगा हो तो उसको चाहियेके जो सुई, नकचूंटी हाजिर न हो तोभी किसी कांटेसे उसको तुरत निकलवाले परंतु जो कांटा क्या, क्यों, उससे किसको दुःख, दुःख क्या, कब किस महूर्तमें निकलना चाहिये, केसे निकालना इत्यादिके निर्णय करने पीछे निकलवानेका इरादा रखे तो दुःखी होजायगा. इसी प्रकार प्रस्तुत प्रसंगमें समझनेका हे याने प्रथम अधिकारी होके गुरुद्वारा श्रुतिका श्रवण करे ओर फेर सृष्टिनियम लेके मनन करे उस पीछे क्रियायोग वा सांख्ययोगसे उसकी परिक्षा याने निदिध्यास--विवेक ख्याति करे, उससे सब शंका निवृत्त होजायंगी. उस पीछे स्वतंत्र होके जेसे करना उचित हो वेसा करे.

(९) (शं) शुद्ध चेतन एक हे, उसको उपदेशका अभाव हे, तो यह उपदेश किसको ओर कोन अधिकारी बने ? (उ.) जल विशिष्ठ मछलीको खाने वास्ते आटेकी गोली डालते हें वेसी मछली हलती फीरती, देखती, स्पर्श करती जलमें विचिरती हे ओर उसको राग द्वेष होते हें. जलके विना मुरदा कुछभी नहीं. इसी प्रकार चेतन विशिष्ठ कारण शरीर (अंतःकरणादि)को अथवा जिसको राग, द्वेष, इच्छा, दुःख सुख होते हें उसको अथवा जो अपनेको बंध मानता हे ओर मोक्ष चाहता हे उसको सब प्रकारका उपदेश हे; ताके बंधनसे मुक्त हो. जो सत्वग्रंथी, चेतन विशिष्ठ नहीं उसके लिये उपदेश नहीं हे. (शं.) जो श्रुति नहीं जानता उसके लिये क्या उपाय ? (उ.) श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु$ ओर सुप्रसिद्ध सृष्टिनियम.

(१०) जेसे द्रष्टा ओर द्रश्य याने ब्रह्म ओर माया परस्परमें विलक्षण हें इसलिये ब्रह्मकी परा (परमार्थ) सत्ता ओर मायाकी उससे विलक्षण अपरा सत्ता कहनी--माननी पडती हे. इस अपराके दो भेद हें (१) व्यावहारीक (ब्रह्मके ज्ञान विना जिसका बाध न हो). यथा घट सूर्यादिकी (२) प्रातिभासिक (ब्रह्मके ज्ञान विना जिसका बाध होता हो) यथा रज्जुसर्प स्वप्नादिकी. बालकको हाउ, बेठा हे एसा कहें तो बालकको भ्रम ओर रुदन होता हे, यह हाउ असतख्यातिका

$ गुरुके लक्षण ग्रंथमें कहे हें.

विषय हे परंतु उसकी उक्त दोनों सत्ता नहीं बनती, तो शून्य सत्ता मानें वा तीसरी कोइ अन्य मानें ? इसी प्रकार यदि शब्दवादि नामके वेदांतीको जब 'जीवब्रह्मका भेद' एसा हाउ बतावें तब राग द्वेषके वश हुवा कंप उठता हे. ओर जो किसी द्वैतवादि वा जडवादि (प्रकृतिवादि--विकासवादि) वा प्रवृत्तिवादिको ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या कह देवें तो वोह उपर कहे हुये बालक समान कंप उठता हे, द्वेषकी अग्निमें जलने लगता हे. यद्यपि इन दोनोंकी व्यावहारिक सत्ताही हे तथापि उनको हाउ जेसा जान पडता हे, उनकी द्रष्टिसे यहां सत्ताका विचार करना व्यर्थ हे तथापि वे इन सिद्धांतोंको सुनके विक्षेपको प्राप्त न हों एसा कुछ लिखते हें.

(१) परिच्छिन्न मतिमत जगतके अधिष्ठान आधाररुप ब्रह्म चेतन (अज्ञेय शक्ति) की सिद्धिमें विशेषतः विवाद नहीं हे, हठीले वा दो चार जडवादियोंके सिवाय बाकी सब मनुष्य उसको कोइ न कोइरुपमें मानते हें.

(२) जीवके स्वरुपमेंभी विशेष विवाद नहीं हे. यद्यपि संप्रदायी भाववाले खेंचा तानीसे उसके स्वरूप संबंधमें विवाद चलाते हें तथापि तत्त्व अतत्त्व ओर परिमाण इन तीन पदोंपर ध्यान देनेसे आपही फेसला होजाता हे (अ. १ । ३ ओर अ. ४ के तुष्टिवादमें वांचोगे.)

(३) नाम रुपात्मक द्रश्य जो जगत हे उसके स्वरूपमेंभी विवाद नहीं हे. कारणके ईश्वर, घटादि नाम तो कल्पित हें, यह हरकोई समझ सकता हे, बाकी शब्दादि विषय ओर पृथ्वी आदि भूत जो विषय होते हें वे सब रुप (आकार) पूर्व उत्तरमें नहीं होते ओर नाशवान हें, इसलिये वर्त्तमानमें उनको मिथ्या कहते हें (वेदांत परिभाषामें सत्, असत्से अन्यथा नाम देते हें.)

(४) परंतु सत्यके (परमाणुओंके वा सत्व रजतमके) संयोगसे उक्त कार्यरुप द्रश्य--आकार (आकृति) होते हें, एसा माननेवालेकी द्रष्टिसे उन द्रश्य--कार्यरुप आकारोंके मूल यामे प्रकृति--मायाके स्वरुपमें विवाद हो पडता हे. यद्यपि बुद्धि उसका कार्य हे अतः वोह उसके स्वरुपके फेसले करनेमें अशक्त हे, परंतु जब कार्यसे कारणका शोध, इस थीयरी--शैलीका आश्रय लेवें तो उसका स्वरुप अनुमानका विषय होजाता हे ओर जब तर्क युक्ति प्रमाणको छोडके वस्तु स्थिति पर जावें तो उसके स्वरुपका अनुभव होजाता हे ओर जब संप्रज्ञात समाधिमें जाके परीक्षा करें तो निर्विवाद होजाता हे. परंतु एसा हरकोइ नहीं करसकता १, तथा

जेसे शक्तिका स्वरुप कोइ नहीं कहसकता हे, इसी प्रकार मायाके स्वरुपकी परीक्षा हुयेभी वोह मन वाणीका विषय नहीं, इसलिये मायाको अनिर्वचनीय कहके पीछा छुडाया जाता हे. ओर इसीलिये उसे अन्यथा अन्यथा कहके चुप होजातें हें, क्योंकि जो अनुभव करेगा सोही जान लेगा, वोह विवादमें नहीं आता, (शं) तो फेर उसके स्वरुपमें मतभेद क्यों? (उ.) यद्यपि हरकोइ प्रकारके सिद्धांत जानने वा निर्णय करनेमें संस्कृत, अरबी, झिंद, हिब्रु, लाटिन वा फारसी भाषाका गौरव नहीं हे, कारणके पद कल्पित संकेत हें ओर तत्त्व फीलोसोफीके ग्रंथ संस्कृत वगेरे ओर फारसी वगेरेमेंभी हें तथापि उन उनके लेखक-वक्ता आचार्योंकी शैली ओर पारिभाषिक पदोंका यथावत् पदअर्थ ओर भावार्थ समझना आवश्यक हे, परंतु बहुधा आचार्योंके पारिभाषिक पदअर्थ भावार्थ ओर शैलीको नहीं समझके वितंडावाद चल रहा हे, इसलिये एकद्रष्टिवाले जिज्ञासु-शोधकको असल रहस्य–तत्त्व नहीं मिलता. उदाहरण.—

(१) ब्रह्मसंबंधमें (क) अक्रिय ओर कर्त्ता (ख) अकर्त्ता परंतु उसके विना नहीं होता (ग) अक्रिय सक्रिय (घ) निर्गुण, गुणोंका भोक्ता, गुणोंका भोक्ता हुवा असंग (च) उससे इतर द्रष्टा ज्ञाता नहीं ओर वोह ज्ञेय (छ) पूर्व उत्तर वही, अन्य नहीं ओर द्वैत, अकल. इनके भाव चिद्बोध (ब्रह्मज्ञान) हुये विना नहीं जाने जाते (याने परस्पर विरोधी जान पडते हें), ब्रह्मचेतनकी अचिंत्य महिमा हे. (अ. ४ में कहेंगे.)

(२) अपरोक्षत्व, स्वतःप्रमाण, स्वयंप्रमाण, स्वप्रकाश, स्वयंप्रकाश, स्वतोग्रह.

(३) मायाके स्वरुपसंबंधमें माया, शक्ति, अन्यथा, अज्ञानादिविना अध्यास, विलक्षण, स्वाभाव अधिकरणमें अवभास, स्वाभाविक अन्यथा अवभास, मिथ्या, बाध रूपा, विवर्त्त, विवर्त्तोपादान, अनुचरा, सत्या, तुच्छा, प्रकृति, अव्यक्त, अव्याकृत, मूला, तूला, अज्ञान, अजात, बंध, अकला, अध्यारोप, अपवाद, इ. यदि इन पारिभाषिक पदोंका लक्ष्यार्थ अनुभवमें आजाय तो कोइ विवाद नहीं रहता. इनमेंसे जिनकी जरुरत समझी जायगी, उनका बयान अ. ४में किया जायगा.

(४) दूर कहां इसी ग्रंथमें अनेक जगह अविद्या, प्रकृति ओर मूळ अज्ञान इनकी जगह उनके पर्याय माया शब्दका ओर मिथ्याकी जगह विलक्षण (सद्ब्रह्मसे विलक्षण याने सदसद्से विलक्षण) शब्दका अथवा बाध शब्दका ओर जीवचेतन ब्रह्म-

चेतनकी एकता (जीवब्रह्मकी एकता) की जगह "आत्माब्रह्म एक" वा "समचेतन एक" इस वाक्यका प्रयोग हे, अबयदि प्राचीन शैलीके अभ्यासी इस रमूजको न समझें तो अवश्य चोंक के अन्यथा भान लेंगे. सारांश वक्ताका तान समझना जरुरी हे.

(११) इस ग्रंथमें विषय सिद्धि अर्थ शब्दकी साक्षी पर आधार नहीं रखा हे, यदि साक्षी लेकेही लिखना होता, तो इस विषयके संस्कृत, हिंदी, फारसी, उरदू भाषामें एसे ग्रंथ हें के जिनमें शब्दके आधार परही यह विषय प्रतिपादन किया हे, अर्थात इस ग्रंथ लिखनेकी अपेक्षा नथी याने व्यर्थ हे; तथा शब्दप्रमाणपर विश्वास न रखनेवाली नोरंगी प्रजाको इस विद्याका संस्कार वा लाभ नहीं मिलता, ओर शब्दमें विवादभी हे, इसलिये शब्दको बीचमें नहीं लिया हे.

(१२) चोथे फलाध्यायमें सुख शांतिफल प्राप्तिका प्रकार ओर उत्तरार्द्धमें केवल निर्णित सत्य तत्त्वदर्शन होनेका प्रकार हे, इसलिये उसमें खंडन मंडन नहीं हे.

(१३) भूमंडलके दो अर्बुद मनुष्योंमेंसे ज्यादे भाग अद्वैतवादियोंका हे याने अद्वैत माननेवाले ओर पसंद करनेवाले ज्यादे हें (जेसेके आर्य प्रजाका बडा भाग, इरानी प्रजा, याहूदी प्रजा, ख्रस्ति संसार, कुरानी प्रजा, बौद्ध, ब्रह्मु वगेरे हें) उनकी भावना- खिंचाव तो भक्ति याने द्वैतमें हे ओर वर्तन विशेष प्रकृतिवादमें हे. द्वैतवादि एक क्रोडभी नहीं होंगे, जिनका कोइ मत (धर्म) नहीं एसे १ लाखभी न होंगे ओर जडवादि तो हजारोंकी गिनतीमेंही होंगे. परंतु अफसोस यह हे के अद्वैत, शब्द मात्रमें हे ज्ञान वा वर्तनमें नहीं हे इसलिये मतभेद, नाना धर्म, पंथका पसारा होगया हे. यदि अद्वैतको मुख्य अन्यको गौण मानने लगें तो साम्यभावका सूर्य प्रकाशने लगजाय. इस ग्रंथका कटाक्ष इसीपर हे. इसलिये वेसाही ढंग लिया हे.

प्रयोजक.

आभारी हुं ओर प्रसिद्ध कर्ताकाभी ममनून (उपकृत) हूं. उन ग्रंथोंमेंसे कितनोंकके नाम यह हैं.—

(१) उपनिषद् ५२ (हिंदी ओर फारसीमें भाष्य), कर्ममीमांसामें कर्मकांड (यज्ञ प्रसंग) छोडके, न्यायादि ५ शास्त्र, सर्वदर्शनसंग्रह, षडदर्शनसमुच्चय, श्रीमद्भगवद्गीता, चिद्घनानंदकृत न्यायप्रकाश, गीता, आत्मपुराण ओर तत्वानुसंधान; वेदांतपदार्थमंजूषा, विचारसागर, वृत्तिप्रभाकर, पंचदशी, मुक्तिशास्त्र, स्वामी दयानंदकृत सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, यजु. इत्यादि; सांख्य कौमुदी. (२) वंदिदाद, अवस्ता, चराग. (३) धम्मग्रंथ, कल्याणमार्ग. (४) जैनतत्वादर्श, अज्ञानातिमरभास्कर, अगमनिगमप्रकाश, मोक्षतत्व, संठानसूत्र, स्याद्वादमंजरी, पंचास्तिकाय, समयप्राभृत, सम्यक्ज्ञानदीपिका. (५) तरजुमे-तोरेत, इंजील ओर कुरान. (६) पंडित लेखरामकृत कुल्लियात—आर्यमुसाफिर (उनके ३३ ग्रंथोंका मजमूया), पंडितश्री राजारामकृत ९—नवदर्शनसंग्रह, साहित्याचार्य पंडित श्री रामअवतार शर्मा एम. ए. कृत योरोपीयदर्शन, पंडितश्री आर्यमुनिकृत न्यायादि ५ दर्शनोंके आर्यभाष्य. (७) मडमश्री वलेवत्स्की की ज्ञानसंहिताका तरजुमा, मडमश्री एनीबीसांतके पुराणीप्रज्ञा, अवतार, हिंदुधर्म, मुमुक्षुमार्ग, सनातनधर्म, ओर सप्तप्रन्सपाल वगेरे. (८) हठप्रदीपका, योग—भोजवृत्ति, तिलस्मफिरंग (मेस्मेरेझम). (९) मि. हर्वर्टस्पेंसर साहेबका परोपकार ओर नीतिसिद्धांत; अर्वाचीनशास्त्र ओर प्राचीनविचार, विज्ञान ओर धर्म. (१०) हिंदुस्थानकदीम, दुनियाकीसेर, दलायल अरस्तु. (११) सत्यामृतप्रवाह. (१२) भागवत, शिव ओर देवीपुराण, मनुस्मृति, मिताक्षरा. (१३) जपसाहब, सुखमणि. (१४) विकासक्रम, जीवतत्व, पश्चिम तर्क. (१५) सिद्धांतसार, वचनामृतप्रवाह. (१६) तवारीख—मिसर, फिरश्ता, हिंद, जापान ओर इरानकी, राजतरंगनी, वाल्मीकीरामायण, महाभारत, मुद्राराक्षस, लाइफमुहम्मद, खोजापंथ, टाडराजस्थान, मेदपाटइतिहास, शंकरदिगविजय, दयानंद जीवनचरित्र. (१७) पुष्टिमार्गके ब्रह्मबोध, शुद्धाद्वैतमार्तंड वगेरे. स्वामीनारायणके वचनामृत, शिक्षापत्री; कबीरादिकोंके बीजक, ज्ञानसमाजादि. (१८) स्वामी विवेकानंदका कर्मयोग—सांख्ययोग, स्वामी रामतीर्थके व्याख्यान. (१९) वायुसागर, सिद्धपदार्थविज्ञान, जर्रसकील, सूर्यसिद्धांत, शांकरभाष्य. (२०) इत्यादि. उक्तग्रंथोंमें कितनेक हिंदी, कितनेक गुजराती, कितनेक उर्दु ओर कितनेक फारसीभाषामें हें.

इस ग्रंथमें अपने किये हुये ग्रंथोंमेंसे कितनेक ग्रंथोंका हवाला दिया हे, उनके नाम.—मानसिकयोग २ भाग, भ्रमनाशक २ भाग, अद्वैतादर्श, सांख्य योग—कर्मयोग, प्रकृतिविवरण, श्रीभानुशंकरजीकी नोटों सहित—व्यवहारदर्शन, रामरटण, ज्योतिदर्शन, भिक्षुकनिबंध, मूर्तिपरीक्षा, ब्रह्मसिद्धांत, (बस.); इनमेंसे मानसिकयोगका उत्तरार्द्ध ओर बस. नहीं छपे हें, बाकी सब प्रसिद्ध हें.

गण अ. १ (भू. सू. ३१.)

गणसंज्ञा सुगमतावास्ते बनाई जाती हे. इस पक्षाध्यायके सूत्रोंमें जिन गणोंका नाम लिया हे उनकी संख्या ओर उपयोग सूत्रोंकी वृत्ति ओर विवेचनमें हे. गण तीनप्रकारके होते हैं-(१) संज्ञागण (यथा ईश्वरादि ८ हैं). (२) आकृति गण (यथा अ. ३ में ईशभावनामें १४ हैं). (३) परिभाषागण (यथा षड्विकार ६ हैं). चारों अध्यायके गण, अध्यायप्रति आरंभमें लिखे हैं जेसे-के यहां नीचे लिखते हैं.

गण नाम.	संख्या.	सूत्रांक.	गणनाम.	संख्या.	सूत्रांक.
अकारादि. भू.		३१	पूर्वज्ञातादि	१२	२१७
अवतारादि	१६	८१	पश्चादि	३	३१५
अपवर्गादि	६	३५५	परिस्थिति आदि....	३	३५६
आरंभादि	४	८	परिवर्तनादि	५	३६१
आकर्षणादि	८	१९८।	पौषणादि....	८	३५८
		२४४।	भेदग्रहणादि	१२	२६०
		२६८	मतादि. भु.	५	२५
ईरान्यादि	५	१६।	योग्यसंबंधाभावादि		
		४५२	[अज्ञानादि]	६	४१६
ईश्वरादि....	८	२४ भु.	रागादि	८	३६९
		३। ४२५	रज्जुसर्पादि	३	४०९
एकेश्वरवादादि	१२	१२	रचनादि....	३	३५७
एमीबादि....	१२	३५३	वीर्यादि [संस्कारादि]	८	२२६
कर्मादि	५	१८	वेदादि ४६ }		४४७से
कप्यादि	३	३०९	विकल्पे ५१ }	५१	४५०तक
जात्यादि	५	३५४।	श्राद्धादि....	३	१३४
		३७८.	शरीरादि....	५	२६१
देवादि	३	१५७	षड विकार }	६	३२१
त्रिवाद	४	३५। ३७	षड परिणाम }		३४८
ध्रुआदि	३	१८१	सालोक्यादि	४	११२
नियमादि....	५	भु. १८	सूर्यादि	२	२८१
		४७२	स्वप्नादि....	२	४१९
नियमसंग्रहादि	७	भु. २८	स्पर्धादि....	३	३६२
नालादि....	९	३६७	समचलनादि	४	३६७
प्राप्यप्रापकादि भू.	४	१०	होटेन्टोआदि	४	३४४
पित्रादि	३	१३२	हिमप्रलयादि	३	३७९

ओ३म्.

अथ तत्त्वदर्शन-पक्षअध्याय १.

अथ सत्य जिज्ञासा ॥ १ ॥ तत्व श्रेय ओर साधनमें अनेकांत ओर विरोधिभावना दर्शनसे ॥ २ ॥

अर्थ.—अब (वर्तमान विषे) सत्य जाननेकी जिज्ञासा होती हे ॥१॥ क्योंकि तत्व (मूल स्वरुप) ओर श्रेय (इष्ट-मोक्ष) ओर श्रेयके साधनोंमें नाना मतभेद हें. उन मतभेदोंमेंभी एकही विषयमें विरोधीभावना देखते ओर सुनते हें; इसलिये सत्य तत्व ओरसत्य श्रेय ओर इस श्रेयके साधन जाननेकी इच्छा होती हे ॥ २ ॥

विवेचन.—अतत्वसे जो अन्य लक्षणवाला उसे तत्व कहते हें अर्थात अ-मिश्रित, अज, अमर, निरवयव, अखंड, अपरिणामी, जो हो उसे **तत्व** कहते हें. यथा ब्रह्म वा मूल वस्तु. ओर किसी प्रसंगमें सारकोभी तत्व कहते हें. अबाधित अर्थको **सत्य** कहते हें[२] अर्थात परीक्षा करनेपरभी पूर्ववत् सिद्ध हो सो सत्य हे.

---

[१]अब याने तर्कदृष्टशिष्यकी सत्य जाननेकी जिज्ञासा (अधिकार काल) होनेपर पूज्यशिक्षककी तरफसे उसके कनिष्टजिज्ञासु-शिष्यके वास्ते शिष्यके अधिकारअ-नुसार (फ्रीथिंकर-ओरीजनल-इन्डीपेंन्डन्ट-तर्कबाज-युक्तिबाजके अधिकार अनुसार) ओर उसकी दृष्टिसे उपदेश हे; क्योंकि मतमतांतरका वर्णन (आगे वांचोगे) उसकी दृष्टिसे हे (तद. अ. ३ । ओर प्रयोजककी भूमिका सू. ३।५ देखो), यूं हे. इसलिये दूसरेकी उपयोगी अनुपयोगी, अन्यकी रुचीका पात्र वा अपात्र, ओर अन्यकी दृष्टिसे दूषण भूषण, इन विकल्पोंकी अनुत्पत्ति हे. प्रयोजकने तर्कदृष्टिके संस्कारप्रसारअर्थ ग्रंथरुपमें उसको गूंथा हे यह प्रयोजकका (मेरा) आशय हे, सो भूमिकामें कहागया हे.—

[२]यथार्थ, सत्य, अयथार्थ, असत्य, ओर अन्यथाका भेद.—इन शब्दोंके अर्थमें मतभेद हे. वस्तुतः कुदरतमें हो ओर जो जेसा हो वेसा उसका ज्ञान हो उसे **सत्यज्ञान** (यथार्थज्ञान) ओर इस ज्ञानके विषयको **सत्यार्थ** (यथार्थ) कहते हें, इन उभयको **सत्य** ओर **यथार्थ**भी कहते हें. इससे अन्यथाको अयथार्थ वा असत्य कहते हें. अपनी हस्ति (में हुं एसा सामान्यरुप) सत्यार्थ हे ओर उसका भान सत्य ज्ञान हे. में नहीं, एसा भाव असत्यार्थ ओर वेसा ज्ञान असत्यज्ञान हे.

जीवसृष्टिका अर्थ.—अबाधित ज्ञानको **प्रमा**—यथार्थज्ञान (सत्यज्ञान) ओर वेसे

ज्ञानके विषयको प्रमेय (सत्यार्थ) कहते हैं; इन उभयका नाम सत्य हे. परीक्षा-कालमेंभी जिसका प्रभाव पूर्ववत् हो उसको अबाधित कहते हें; यथा—सूर्य ओर उसका ज्ञान सत्य हे. इससे भिन्न अयथार्थ—असत्य हे.—याने जो ज्ञानबाधित हो उसे अप्रमा (भ्रमज्ञान) ओर उसके विषयको असत्--अयथार्थ--असत्यार्थ कहते हें; यथा--डोरीका सर्प.

किंवा मनुष्यने जेसा देखा, सुना, समझा ओर माना सो उसकी अपेक्षासे सत्य कहता हे, इसे यथार्थ कहना मुशकिल हे. यथा--ध्रु स्थिर हे; चक्षुवृत्ति शरीरसे बाहिर जाती हे ॥ जो वस्तुतः हो सो वेसा विषय न हो किंतु अन्यथा प्रतितीका विषय हो सो अयथार्थ. यथा डोरीका सर्प वा काचमें सामानसहित कमरा; स्फटकमणि रक्तपुष्पके प्रतिबिंबसे लालनकशवाली भासती हे. यह उभय (विषय ओर उनका ज्ञान) अयथार्थ हें. इसेही बाधितज्ञान ओर बाधितविषय कहते हें ओर अन्यथा, तथा निष्फलप्रवृत्तिका जनकभी कहते हें ॥ किंवा जेसा देखा, सुना, समझा ओर माना हो उससे अन्यथाकथन असत्य कहाता हे. यथा डोरीको जानके उसे सर्प बताना वा कहना. अर्थशून्यकोभी असत् कहते हें. यथा डोरीमें सर्पका कल्पन होजाना. सदसद्रुप कोई वस्तु नहीं होती. जो भावरुप हो ओर जिसका बाध होजाता हो उसे सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय कहते हें. यथा स्वप्नसृष्टि ओर आकाशकी नीलता हे; अ. २, ३, ४, में स्तिार बांचोगे.

एक मकानमें अंधेरेमें डोरी हे ओर दिनको एक मकानमें लालपुष्पके समीपवाला काचका गोला, विचित्र लालफल जेसा जनाय एसा हे. क. वहां गया, सर्प ओर लाल गोला जानके आके वेसाही कहा. यहां क. यद्यपि यथार्थवेत्ता नहीं हे तथापि उसे असत्यवादि नहीं कहसकते. ग. वहां गया, डोरी ओर श्वेतकाच जानके आके वेसाही कहे तो सत्यवादि (यथार्थ वेत्ता) हे; परंतु जो सर्प ओर लालगोला कहे तो असत्यवादि हे. ज. वहां गया, सर्प ओर लालगोला जाना ओर आके कहे कि वहां एक लकडी ओर खानेका फल पडा हे तो वोह असत्यवादि हे.

इसीप्रकार सत्य प्रसंगमें हे. अर्थात विद्वान--बुद्धिमान--शोधक--परीक्षक जो आप्त हें वे जेसा देखते, सुनते, समझते वा मानते हें सोही कहते हें; इसलिये वे सत्यपर हें, कुदरतमें वेसाही हे वा नहीं इसके उत्तरदाता वे नहीं होसकते याने किसी व्यक्ति (योगी, दूत, अवतारादि) को यथार्थवेत्ता कहना मुशकिल हे; परंतु सत्यज्ञाता, सत्यवक्ता अवश्य होसकते हें, सोही यहां प्रसंग हे.

अक्षशब्दके पारिभाषिक कितनेही अर्थ लिये जाते हैं[१]. यहां वर्तमानाधिकार वा मंगलमें आशय हे ॥ आप्तविद्वानों द्वारा परंपरासे सुनते आते हैं कि तत्वकी प्राप्तिसे श्रेय (सुख, कल्याण, मोक्ष, दुःखाभाव) होता हे इसलिये, तथा मनुष्यकी बुद्धिमें योग्यता हे उसका उपयोग हो एसा सृष्टिनियम हे इसलिये, तत्व ओर श्रेयकी इच्छा होती हे; परंतु तत्वके स्वरुपमें मतभेद हे इतनाही नहीं, किंतु श्रेय क्या, श्रेयके साधन कोनसे , इनमेंभी मतभेद हैं; ओर वे भेद विरोधीपक्षवालेभी हैं.–यथा (१) ब्रह्म–निराकार, साकार, सगुण, निर्गुण, सक्रिय, अक्रिय, कर्ता, अकर्ता, अवतारधारी, अनवतारी, वा ब्रह्म वस्तुही नहीं-इत्यादि ब्रह्मतत्वमें मतभेद हैं. **देशकाल**-वस्तु, अवस्तु, प्रभाव (चित वा मगजका इम्प्रेशन) वा कल्पना; तथा शब्द द्रव्य, गुण, वा वायुकी लहर; तथा परमाणु तत्व हैं, परमाणु हैं ही नहीं; इत्यादि जड तत्वोंमें मतभेद हैं (२) **जीव**—अणुचेतन, विभु, मध्यम, अनादिअनंत, सादिअनंत, अनादिसांत, सादिसांत, क्षणिक, वा जीव कोई वस्तु नहीं, इत्यादि जीवके स्वरुपमें मतभेद हैं. (३) **प्रकृति**—जगतका उपादान–जुदा जुदा परमाणु, एक शक्ति परिणामी, सत्वरजतममिश्रितपदार्थ, वा प्रकृति (माया) कोई वस्तुही नहीं किंतु भ्रममात्र हे, इत्यादि बंधसामग्रीमें मतभेद हैं. (४) **बंध**–जीवकी इच्छाके विरुद्ध होना, प्रतिकूलका ज्ञान, दुःख प्राप्ति वा भ्रम, इत्यादि बंधके स्वरुपमें मतभेद हैं. (५) **मोक्ष** (श्रेय-सुख)–दुःखाभाव; सुखप्राप्ति; दुखाभाव (अनृतकी निवृत्ति) ओर परमानंदकी प्राप्ति; स्वरुपज्ञान, स्वस्वरुपमें स्थिति, वैभव प्राप्ति, इष्टका लोक वा उसकी समीपता वा उसमें जुडना वा तद्रुप होजाना (अर्थात सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारुप्य), जीवनपर्यंत सुख, किंवा मरजाना (शरीरभंग), इत्यादि मोक्षके स्वरुपमें मतभेद हैं. (६) **मोक्षके साधन**–कर्म, उपासना (भक्ति), योग, ज्ञान, विश्वास, इष्टकृपा वा इनमेंसे अमुक अमुकका समुच्चय वा तनमनके पालक ११ इंद्रियोंका यत्न, इत्यादि श्रेयसाधनमें मतभेद हैं. (७) एसेही सृष्टि-उत्पत्ति पूर्व ओर प्रलयप्रसंगमें मतभेद हैं जिसका संबंध बंध मोक्षके साथ हे ॥ (इनका विस्तार आगे वांचोगे). इसप्रकार तत्व, श्रेय ओर श्रेयसाधनमें मतभेद हे[२]; इस-

[१]यथा--परिपाटिमें--आरंभविषे शिष्टाचार, अधिकारप्राप्तिकाल, अब-वर्तमान, पक्षमें मंगल सूचक संकेत. ॥ कोश, वृद्धव्यवहार, परिभाषा, ओर रुढीपर ध्यान देवें तो यहां विवादको अवसर नहीं मिलता. [२]विशेष अ० ३ में.

लिये सत्य तत्व क्या, उसका सत्य स्वरुप क्या, सत्य श्रेय क्या, श्रेय किसमें ओर श्रेयका सच्चासाधन कोनसा, इनके जान्नेकी जिज्ञासा होती हे ॥ १ । २ ॥

इसलिये ईश्वरादिका[1] विचार ॥ ३ ॥

अर्थ.—पूर्वोक्त कारणवश ईश्वर, जीव, प्रकृति, बंध, पुनर्जन्म, मोक्ष, मोक्षके साधन; सृष्टि पूर्वोत्तर वर्तमान; इन आठ विषयके संबंधमें विचारकी अपेक्षा होती हे; क्योंकि इनके विचारसे इष्ट-सत्य स्वयं जाननेमें आजाता हे ॥ ३ ॥ (शं.) यदि ज्ञाता ओर ज्ञेय उभय तत्व तो तत्वप्राप्ति श्रेय नहीं; क्योंकि स्वयं तत्वस्वरुप हे तथा प्राप्तिकी अप्राप्तिभी होनी हे. ओर यदि ज्ञाता अतत्व हे तो सत्यतत्व जानना ओर उसकी प्राप्ति व्यर्थ हे. (उ.) अध्यारोप ओर अपवादमें इत्यादि शंकाओंका समाधान होजाता हे सो आगे लिखते हें.—

आद्यमें अध्यारोप अपवाद ॥ ४ ॥ भावनाका क्रम न मिलनेसे ॥ ५ ॥ ओर मतभेद होनेसे ॥ ६ ॥

अर्थ.—इस पहले पक्षाध्यायमें पहेले, भावनाओं (पक्षों) का अध्यारोप अपवादकी पद्धतिसे कथन होगा ॥ ४ ॥ क्योंकि कोनसी भावना (पक्ष) कब ओर कहां उत्पन्न हुई यह क्रम वा इसका इतिहास ठीक ठीक नहीं मिलता ॥ ५ ॥ ओर जो क्रम मिलता हे उसमें मतभेद हे (यथा बौद्ध पक्ष पहेले वा जैन पक्ष पहेले इत्यादिमें विवाद हे) ॥ ६ ॥ इसलिये प्रथम उक्तपद्धतिसे वर्णन होगा. उसके पीछे प्रचलितभावना[2] (पक्ष-मत-पंथ-धर्म) का विस्तार लिखाजायगा । ४ । ५ । ६ । **अध्यारोप**—वस्तुमें अवस्तुका आरोप करना वा होजाना, किंवा कुछ रुपकी कल्पना करना ॥ इस आरोपके अनुसार हे वा नहीं, इसके लिये पहले अपेक्षा नहीं होती[3] ॥ वोह कोनसा अंक हे कि जिसको १ से लेके १०

---

[1]ईश्वरादि एसी संज्ञावाले पदका विवेचन यथाप्रसंग करनेमें आवेगा इसलिये जुदा नहीं लिखा हे. संज्ञावाले पद सुगमता वास्ते होते हें अन्यथा सूत्र बढ जावे (अ. २ सू. ४ देखो).

[2]मानव मंडल विषे ईश्वरादि विषयमें जितने प्रचलितपक्ष हें वे तमाम अ. ३ में जनाये हें.

[3]अध्यारोप अपवाद–राशीका दूसरा दाखला.—वोह कोनसा अंक होगा कि

तकका भाग देवें तो किसी भागमेंभी कुछ शेष न रहे? अब उक्त अंक जाननेके लिये इष्ट गिणितकी रीतिसे अध्यारोप (अंकोंकी कल्पना) करें ओर उसमेंसे पूर्वकल्पित अनुपयोगी, असिद्ध अंकका अपवाद (कल्पित अंकका निकाल डालना) करें तो अंतमें इष्ट अंक प्राप्त होजायगा. वोह अंक ३६२८८०० निकलता हे॥ इसीप्रकार इष्ट विषय याने ईश्वरादिके स्वरुप संबंधमें मनुष्यकी बुद्धि-योग्यताकी सीमा तक **अध्यारोप** करके यथाबुद्धि यथाप्राप्तप्रमाण उसमें **अपवाद** (अध्यारोपमें जितना अंश असमीचीन, अयुक्त, असिद्ध, सदोष, अनुपयोगी, अनुचित, अलीक, असंभव वा असत् हो उसको निकाल डालना—छोड देना) करें तो उसके परिणाममें यदि प्राप्ति होगी तो सतरुपकीही होगी ओर उस पद्धतिमें किसीको उद्देश के खंडन मंडन नहीं होता, इसलिये किसीको प्रतिकूलभी नहीं होती; इस द्रष्टिसे प्रथम उक्त

जिसके $\frac{1}{3}$ को उसमें जमा करें उस पुंजमें १ ज्यादा करें तो १६ हो. अब मानो के वोह १८ वा १२ होगा. इन अंकोंपर कहे अनुसार वर्तन किया.— १८+१२ + १ = ३१ − १६ = १५॥ ओर १२ + ८ + १ = २१ − १६ = ५॥ अब इष्टराशीके कायदे अनुसार किया; वोह कायदा यह हे, दो अंक कल्पके (अध्यारोप करके) उनमेंसे प्रश्न कर्ताका अंक निकालो, जो शेष रहे उसको एक दूसरेमेंसे बाध करो; बाकीको भाजक मानलो; ओर फेर शेष रहे हुये अंकको दूसरी तरफके कल्पितअंकसे गुणा करो ओर ज्यादेमेंसे कमको निकालो; जो शेष रहे उसको भाजकपर भाग दो; भाज्य उत्तर होगा. यथा—पूर्वोक्त उभय अंकपर यह क्रम किया तो यह रुप होता हे.—१५ शेष × १२ कल्पित=१८० ॥ ओर शेष ५ × १८ कल्पित = ९०॥ १८० − ९० = ९०॥ यह शेष ९० ÷ १० = ९ यह उत्तर हे. अर्थात ९ + ६ + १ = १६ ॥ जब ९ का इष्ट अंक निकल आया तब १८ असंभव कल्पना ओर १२ संभव कल्पना तथा उनकी क्रिया ओर फल १५, ५ यह सब निकाल डाले—छोड दिये, इसका नाम अपवाद हे.

इसी प्रकार ईश्वरादिविषयके स्वरुपको कल्पना इसका नाम अध्यारोप हे, फेर उनपर अमल करके सृष्टिनियममें उनको तोलना; अध्यारोपका जो अंश उसमें न तुले उसको छोड देना, इसका नाम अपवाद हे. ओर सृष्टिनियमकी रीतिसे जो परिणाम निकले वोह फल हे. यह तत्वफिलोसोफीकी गिनती वा हिसाबकी तथा फल निकालनेकी रीति हे॥

रीति ली हे ॥ अध्यारोप अपवाद करनेके योग्य कोन योग्यअधिकारी होता हे यह बात विचारसे बाहिर न होनी चाहिये[१] । ४ । ५ । ६ ।

चेतनवादमें चार भावना ॥ ७॥ आरंभ, प्रवाह, अनादि ओर उपचयापचय ॥ ८ ॥ आरंभसे इतर अचिदवादमेंभी ॥ ९ ॥

अर्थ.—जिस मत, पक्ष वा प्रक्रियामें जड (ज्ञानशून्य परतंत्र) से भिन्न प्रकारका, जडसे भिन्न, जडका अविषय ओर जडका द्रष्टा ज्ञाता अर्थात ज्ञान-दर्शन लिंगवाला वा केवल तत्व पदार्थ माना गया वा सिद्ध किया गया हो उसका नाम **चेतनवाद** हे. ओर जिसमें एसा तत्व पदार्थ न माना गया हो वोह **जडवाद** हे ॥ चेतनवादमें आरंभादि चार प्रकारकी भावना (पक्ष-मंतव्य-मत-कल्पना) हें ॥ ७ । ८ ॥ ओर आरंभवादसे इतर शेष ३ भावना जडवादमेंभी हें ॥ ९ ॥

चेतनवादके ४ पक्ष.

(१) **आरंभवाद**—वर्तमान-सृष्टिही पहेले पहेल हुई हे उसके पूर्व कभीभी नहीं हुई. यह सृष्टि (जीव, जिन तत्वोंसे ग्रहादि बने वे ओर लोक) ईश्वरने अपनी इच्छाशक्तिसे अभावमेंसे बनाई हे (इसराइलीमतमें वांचोगे-पढोगे).

(२) **प्रवाहवाद**—इसके ४ भेद हें, द्वैत अद्वैतका झगडा इसीमें हे. (१) ब्रह्मचेतन नामका पदार्थही अपनी शक्तिसे जगत (कर्ता-भोक्ता-जीव ओर ग्रहादि विषय) रुप परिणामको पाता हे अर्थात जलतरंगवत् वा दूधदहीवत् वा मकडीवत् वा सर्पकुंडलवत् आपही अभिन्ननिमित्तोपादानरुप हे. कभी उत्पत्ति स्थितिरुप होता हे ओर कभी प्रलय (जब सब जीव मोक्ष होजावें तब वा अन्य इच्छादि कारणसे) करता हे अर्थात पूर्वरुपमें आजाता हे; एसे उत्पत्ति स्थिति ओर प्रलयका अनादि अनंत प्रवाह हे. (आगे वांचोगे). (२) ब्रह्म नहीं परंतु उसके आश्रित जो माया सो (**स्वप्न सृष्टिवत्**) जगतरुप होती हे ओर अमुक निमित्तसे प्रलयरुप याने जीव समान **सुषुप्तिवत्** पूर्व रुपमें आती हे; एसे उत्पति स्थिति लयका प्रवाह हे. (आगे वांचोगे). (३) जीव ईश्वर ओर उपादान (प्रकृति) यह तीनों अनादिअनंत हें; ईश्वर, जीवके पूर्व कर्मके फल भोगानेवास्ते सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति ओर लय

---

[१] बहु दृष्टश्रुत, अनेकका समागमी, बुद्धिमान, विद्वान, शोधक, तटस्थ, फ्री थिंकर, ओरीजनल, इन्डीपेन्डन्ट, धर्मद्वेषवर्जित, वा धर्मआग्रहरहित, जिज्ञासु इत्यादि लक्षणवाला होना चाहिये; अन्यथा व्यर्थ हे.

करता हे एसा अनादि अनंत प्रवाह हे [आगे त्रिवादमें वांचोगे.] (४) सृष्टि क्षणिक हे याने क्षण क्षणमें उत्पत्ति नाश होती हे स्वप्नवत् (आगे वांचोगे).

(३) **अनादि वाद**---पृथ्वीआदि ग्रह उपग्रह अनादिसे हें ओर एसेही अपनी कक्षाओंमें रहेंगे. इनका कोई कर्ता नहीं हे. उनमें बीजानुसार वृक्षादि होते रहते हें योनिये बनती हें. जीव अविनाशी ओर चेतन हे सो यथा कर्मवासना, कर्म फल भोगनेके लिये योनियोंमें आता हे [आगे वांचोगे] किंवा पृथ्वी वगेरेका अपने केंद्र ओर समूह पुंजमेंही उपचयापचय होता रहता हे [आगे वांचोगे]. ओर यदि ईश्वर हे एसा मानें तो अनादि सृष्टिका व्यवस्थापक हे, कर्ता नहीं.

(४) **उपचयापचय वाद**—किसी स्वयंभु आधारके आश्रित अव्यक्त [प्रकृति] का अमुक भाग अधिष्ठानगत अमुक सीमामें समुद्रके समान पसरा हुवा हे ओर वोह स्थिति स्थापक गुणवाला हे [जिसे **हिरण्यगर्भ-शेषा-प्रधान वा इथरभी** कहते हें] प्रकृतिके स्थूल भागके गोले [ग्रहादि] उसमें हें. शेषाकी लचक ओर ग्रहोंके गुरुत्वादिसे परसपरमें गति होती रहती हे. ओर इस गतिसे ग्रहोंमें सनियम गति होती रहती हे [इस स्थितिका नाम आकर्षण हे] ओर भूकंपादि कारणोंसे ग्रहोंमेंका भाग दूसरी तरफ चला जाता हे उसमेंसे जो भाग अन्य ग्रहमें न जा सके वोह शेषाके अमुक भागमें जाके गतिमें रहता हे, इस प्रकारके पुंजसे दूसरा ग्रह बनता हे, सारांश मारवाडके टीबों समान ग्रह बनते बिगडते रहने [शनैं शनै उपचयापचय होने] का अनादिसे प्रवाह हे ओर रहेगा. महाप्रलय कभीभी न हुई ओर न होगी. प्रकृतिका तीसरा विभाग छूटा विभक्त हे जिसे पृथ्व्यादी [जल, अग्नि, विजली प्रकाश, शद्बादि विषय, ४ भुत] कहते हें उनका शेषा द्वारा उपयोग होता हे. अब इस वादमें दो पक्ष हें. (१) ग्रहोंमें जीव ओर बीजका प्रवाहभी अनादिसे हे याने प्रवाहसे अनादि हें, प्रकृति शेषा ओर चेतनकी सत्ता ओर नियमसे जीवोंके कर्म ओर सृष्टिकी व्यवस्था होती रहती हे. जहां जहां जिस जिस स्थितिमें मनसहो वहां वहां वेसी स्थितिमें वेसा विभु चेतनका उपयोग होता हे अर्थात जीव होता हे. उद्भिजादि चार योनी कहाती हें उनका मूल एकही हे, ४ भेद पीछे पडते हें, उनमें जीव कर्म फल भोगते हें. [२] जीव चेतन स्वरुपसे अनादि अनंत हे. प्रवाहसे नहीं. ओर मूल बीजभी बनाये जाते हें प्रवाहसे स्वयं नहीं. शेष पूर्ववत [इस वादका विस्तार ब्रह्म सिद्धांतमें हे].

अचिदवादके ४ पक्ष.

अचिदवादमें आरंभ वाद [नं. १] नहीं हे ओर न हो सकता हे.

(२) **प्रवाहवाद**—इस सृष्टिसे पूर्व यह सब, कहीं गोल केंद्रमें अथडाताथा याने टुकडे टुकड होंके घात प्रत्याघातमेंथा. एसा होते हुये गरमी बाहिर जानेसे उसके साथ परमाणुभी निकले ओर आकर्षणसे सजातीय मिलने लगे, उनमें विजातीयका मिश्रणभी होता रहा, घात प्रतिघातसे दूर पडतेथे, उधर पोजीटिव विजलीभी दूर हटाने लगी, इधर दूर हुयोंकी परस्परकी गुरुत्वाकर्षणने बल किया इसलिये वे विक्षिपत मूल केंद्रमें जानेसे रह गये. इस प्रकार असंख गोले जुदा पडे, वे समान नहींथे न्यूनाधिकथे ओर गोल नहींथे किंतु बेडोलथे. पीछे शनै २ गोल बने, आकर्षणके नियममें आगये ओर ठंडे पडे तब उनमें जो बीजथे उनका उपयोग होने लगा याने वनस्पति, त्रियक, पक्षी, पशु, मनुष्य वगेरे क्रमशः बने, एसे उन्नति क्रम चला. इस पक्षमें किसी कर्ता वा चेतन जीवका स्विकार नहीं हे. अभी केतु [दुमदार सितारे] पूरे रुपमें नहीं आये हें ओर दूसरे गोलोंके बाहिर वा दरमियानी प्रदेशमें आते जाते रहते हें, इसलिये आकर्षणका नियम भंग नहीं होता. जब सब ग्रह बन चुकेंगे तब अंतके ग्रहोंमें पिछले भागमें आकर्षणकी रस्सी न होनेसे याने तीनही रस्सी होनेसे वे उत्तरके ग्रहोंमें मिलने लगेंगे. होते होते शीघ्र गतिमें आके सब अथडाके टुकडे २ होजायंगे ओर पूर्व कहे समान कहीं अथडावेंगे [इसीका नाम महाप्रलय हे). फेर पूर्वमें कहे समान दूर पडके गोले बनेंगे (इसका नाम उत्पत्ति हे). एसे अनादिसे प्रवाह हे अर्थात पूर्वमें एसा होता रहा ओर भाविष्यमें एसा होता रहेगा (संक्षेपसे कहा).

[३] **अनादिवाद**—उपरोक्त नं. ३ मेंसे जीव चेतन शब्द निकालके नं. २ अनुसार वनस्पति आदिकी बीजसे उत्पत्ति मान लेनेसे जडवादका पहेला अनादि वाद बनता हे ॥ ग्रह अन्योऽन्यके आश्रय हें यह दूसरा अनादिवाद ॥ अन्योऽन्यकी आकर्षणसे रहे हुये हें यह तीसरा अनादिवाद ॥ चूंके विना अधिष्ठानाधारके ब्रह्मांडरुपी गोला नहीं रह सकता', इसलिये आकर्षणबद्ध गोला [ब्रह्मांडकी गेंद] एक तरफसे चला आ रहा ओर चलाजा रहा हे. यह तीसरा पक्ष हे.॥ कोइ पक्ष बीजोंका अनादि प्रवाह नहीं मानता किंतु प्रोटोपलाजम वगेरे

'जडवाद वा चेतनवादका कोई पक्षभी असीम स्वयंभु अधिष्ठानके विना सिद्ध नहीं होसकता.

बीज स्वभाविक नवीन बनते बिगडते रहते हें एसा मानता हे. कोइ पक्ष पूर्व कहे समान सबके बीज प्रवाहसे अनादि मानता हे.

(४) **उपचयापचय**—उपरोक्त नं. ४ मेंसे अधिष्ठान भाग ओर जीव भाग निकालके शेषाको परमाणु पुंजकी जुडी हुई चादर ओर उसमें ग्रहोंका उपचापचय मानके नं. २ अनुसार ग्रहोंमें वनस्पति वगेरेका उन्नत्ति कर्म समझ लेनेसे जडवादका उपचयापचयवाद होता हे.

(५) एकही स्वयंभु शक्ति हे जिसका रुपांतर गत्यात्मक यह जगत हे, होता रहता हे याने प्रवाहसेहे [कोई उत्पत्ति लयभी मान लेता हे].

उपरके पक्षोंके ४ विभाग होजाते हें—[१] **एक विभु वाद**—एक ब्रह्म चेतन किंवा एक अचिद शक्ति हे सोही नाना रुप [जड चेतन, जगत जीव वा त्रिपुटी रुप] धारती हे वा उसका नाना रुप परिणाम होता हे. [२] **केवल परिच्छिन्न वाद**—सब जड वा जड चेतन उभय प्रकारके नाना परिछिन्न पदार्थोंका समूह यह जगत हे. [३] **उभय वाद**—(विभु परिछिन्न वाद) विभु अधिष्ठान चेतनके आश्रित सब परिछिन्न (सब जड वा जड चेतन उभय) रहे हुये हें ॥ नाना जीव विभु ओर जगत परिछिन्न हे. इसको **नाना विभु वाद** कहते हें ॥ इसका समावेश नं. ३ में हो सकता हे. क्षणिक वादका समावेश नं. २ में ओर अभावसे सृष्टि कर्ता ईश्वर वादका समावेश नं. ३ में होजाता हे. (४) **विलक्षण वाद**—विभु चेतन (ब्रह्म) से विलक्षण अस्तित्व प्रकारवाली एक शक्ति (**माया-प्रकृति-अचिद-अव्यक्त**) का परिणाम यह जगत हे ओर चेतनकी संनिधिसे सचेत ओर सत्य रुप जान पडती हे ॥ इसका नं. ३ में अंतरभाव होसकना मुशकिल हे.

उक्त पक्षोंमें सत्, असत्, सदसद्, नसद् नअसद् ओर सदसदसे विलक्षण एसे भेद शामिल करनेसे अनेक पक्ष होजाते हें.[१]

(नोट)—ग्रहोंमें कब, कहां ओर केसे (योनिज अयोनिज, बीजसे वा विना बीज) नाना वनस्पति, त्रियक, पशु, पक्षी, मनुष्य पेदा हुये. एक जघे वा अनेक खंडोंमें जुदा जुदा हुये. निदान भूमीके खंडोंमें भूकंप, जल प्रलय ओर हिम प्रलय होने रहनेसे नवीन सृष्टि होती हे वा नही वा क्या? इत्यादि विषयका पता लगाना मुशकिल हे इसलिये इन विषयोमें बुद्धि विवाद हे.

[१] मूल ग्रंथमें एक नकशा बनाया गया हे जिससे लाखों मतकी कल्पना हो सकती हे.

तमाम **तत्व फिलोसोफीमें** ४ विषय एसे हें कि जिनका खुलासा होनेसे **सब** मंतव्योंका सहजमें फेसला होजाता हे. वे चार यह हें. (१) **सर्वाधिष्ठानाधार.** (२) गति सबुद्ध वा अन्यथा. (३) चेतन शक्ति तत्व वा परिणाम जन्य. (४) द्रव्य एकका रुपांतर वा नानाका पुंज ॥ इसमें नं ४ वाला कठिन सवाल नहीं हे.

चिद् भावना.

तत्र चिद् भावनागत आरंभमें त्रिवाद ॥ १० ॥ श्रुति इतिहाससे ॥ ११ ॥ पीछे एकेश्वरवादादि ॥ १२ ॥ यहां सुगमतार्थ अन्यथा ॥ १३ ॥

अ.—मानव सृष्टिमें जो चिद्‌वाद चल रहा हे उसमें सबसे पहेले त्रिवाद चला हे याने जगतका निमित्त कारण एक ईश्वर ओर उपादान कारण प्रकृति हे ओर कर्ता भोक्ता परिच्छिन्न जीव हे यह तीनों अनादि हें जीवों के कर्मानुसार सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति लय होता हे. ॥ १० ॥ क्योंकि परंपराके इतिहासमें एसाही सुनाहे किंवा वेद इतिहाससे एसाही जाना गया हे. ॥ ११ ॥ वेदसे पहेलेका कोई ग्रंथ नहीं हे. न उसके पहेलेका जडवाद वा कोई प्रकारका चेतनवाद नहीं हे. ओर उसमें त्रिवाद चेतनवाद हे. ॥११॥ उसके पीछे वक्ष्यमाण एक ईश्वर वादादि (एकेश्वरवाद, एक जीववाद, द्वै (चिदचिद्) वाद, त्रिवाद, भावनावाद, अनिश्चितवाद, शक्तिवाद, प्रकृति(जड)वाद, उत्क्रांतिवाद, अध्यासवाद, विलक्षणवाद, मायावादादि) भावना चली हें ॥१२॥ चाहिये था कि अध्यारोपमें प्रथम त्रिवाद लेते परंतु यहां सुगमताकी द्रष्टिसे एक, दो, तीन इत्यादि क्रमसे **अध्यारोप अपवादका कथन** होगा ॥ १३ ॥ तथाहि भावनाके क्रमका यथावत इतिहास नहीं मिलता इसलियेभी यह शैली रखी हे ॥ १३ ॥

विज्ञापना—यहांसे आगे (सु. १४ से) चिद्‌वादके अध्यारोपापवादका आरंभ हे. (१) संकेतमें (**आ.**) का आरोप (अध्यारोप) ओर (**अप.**) का अपवाद अर्थ लगा लेना. (२) मूल ग्रंथमें उपर कहे अनुसार अध्यारोप अपवादका विस्तार हे परंतु इस सार ग्रंथमें सुगमतार्थ यह पद्धति रखी हे कि यहां प्रसंगपर सूत्रकी वृत्ति मात्र हे. ओर उसका (अध्यारोप अपवादका) विस्तार आगे जहां पक्षकारोंका मंतव्य (आरोप) लिखा हे वहांहि अपवाद इस संज्ञासे उसके अपवादका विस्तार लिख दिया हे. ताकि शोधक परिक्षकको सुगमता हो. जो अध्यारोप वा अपवाद आगे पक्ष प्रसंगोंमें नहीं आवेगा उसको यहांही लिख दिया हे. ओर

जो अनेक अध्यारोपोंमें विषय हे उसका अपवाद एक जघे अवतारादि प्रसंगमें लिखा हे अध्यारोप प्रति नहीं लिखा हे.

(आ.) **सबमें सर्वज्ञका शब्द ॥ १४ ॥ कर्ता भोक्ता जीवभी ॥१५॥ इरान्यादि विना पुनर्जन्मभी ॥ १६ ॥ एक इतर अनावृतिभी ॥ १७॥ कर्म उपासना, योग, ज्ञान यथायोग्य तत् समुच्चय वा कृपा साधन ॥ १८ ॥**[1]

अ.—वक्ष्यमाण चेतनवादके सर्व अध्यारोपों विषे किसी निभ्रांत सर्वज्ञका शब्द अर्थात शब्द प्रमाण सबमें माना गया हे ॥१४॥ ओर जीव राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, ज्ञान, संस्कार लिंगवाला हे अर्थात कर्ताभोक्ता हे, एसा आशयभी सर्वमें हे ॥ १५ ॥ ओर ईरानी, याहूदी, किरानी तथा कुरानी मतसे इतर पुनर्जन्मभी सबमें हे ॥ १६ ॥ ओर एक आवृत्ति त्रिवादसे इतर मोक्षसे अनावृत्तिभी सबमें हे ॥ १७ ॥ ओर मोक्षका साधन कर्म हे वा उपासना (भक्ति) हे वा योग हे वा ज्ञान [तत्वज्ञान] हे वा इनमेंसे अमुकका समुच्चय [कर्मज्ञान, भक्तिज्ञान, योगज्ञान, कर्म भक्तिज्ञान, योग भक्तिज्ञान इत्यादि] वा ईश्वर कृपा हे, इनमेंसे कोई न कोई अवश्य हे ॥ १८ ॥ एसा जान्ना चाहिये. सारांश इनको सर्व प्रसंगमें नहीं लिखेंगे. अब भावना वा अध्यारोपापवाद लिखते हें. [आ.] अध्यारोपका ओर [अप.] अपवादका चिन्ह जान्ना चाहिये.

(आ.) **अद्वितीयकी इच्छासे भोक्ता भोग्य अभाव जन्य ॥ १९ ॥ ओर जीवको एक जन्म ॥ २० ॥ अन्यमें पुनर्जन्म ओर प्रवाहभी ॥ २१ ॥**

सजातीय, विजातीय ओर स्वगत भेद रहित अद्वितीय, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, स्वयंभु, स्वतंत्र, विभु, सक्रिय, शुद्ध ओर सगुणकी इच्छासे देव, जिन ओर मनुष्यवाले असंख्य जीव ओर भोग्य अर्थात ग्रह, उपग्रह, वनस्पति, पशु, पक्षी ओर स्वर्गादि लोक अभावमेंसे उत्पन्न हुये याने ईश्वरने इच्छाकी ओर हो गये ॥ १९ ॥ मनुष्यवाले जीवोंको यथेच्छा मनुष्य शरीरमें जन्म दिया. मरने पीछे वे पुनः जन्म न लेंगे. महाप्रलयमें उनके कर्मानुसार हमेशेके लिये स्वर्ग वा नरक होगा ॥ २० ॥ दूसरा अध्यारोपभी एसाही हे. अर्थात जीवोंका पहेला जन्म ईश्वरने अपनी तरफसे दिया उस पीछे यथा कर्म जन्म मिलेगा महाप्रलय पीछे पूर्ववत होगा. एसा मान्ना चाहिये ॥२१॥ [वि.] सफलत्व ओर सनियम कार्य देखनेसे ईश्वरकी सिद्धि हे. जीवके कर्म वा प्रकृति-उपादान, देवता वा बुद्धि आदिभी सृष्टि करनेमें

[1] सू. १४ से १८ तकका अपवाद जुदा जुदा स्थानमें आवेगा.

मानें तो ईश्वर सापेक्ष असमर्थ ठेरता हे. उसकी इच्छा हुई तब अनुपादान सृष्टि रची. भोक्ता असंख्य जीव बनाये. जीव अर्थात ईश्वरकी फूंक वा स्फूर्ण हे. चार तत्त्वोंके समूह रुप ग्रह लोक बनाये. धातू मूल ओर प्राणीमात्र जीवके लिये भोग्य हें. भोक्ता जीवको देव, जिन. मनुष्य यह पदवि अपनी इच्छासे दी. मनुष्य जीवोंको अपनी इच्छा अनुसार शरीरमें जन्म दिया. उसकी आयुष्य भोग्य ओर साधन तथा फलभी नियतकर दिये॥ आकाशवाणि, देव, दूत द्वारा वा स्वयं उपदेश दिया, उसके शद्धानुसार चलने वालेको महाप्रलयमें नित्य स्वर्ग मिलेगा. किंवा ईश्वरोपासकको किंवा उसपर विश्वास रखने वालेको नित्यके लिये स्वर्ग मिलेगा अथवा उसकी इच्छामें आवे जिसे स्वर्ग देगा वा नरक देगा. क्योंकि वोह यथेच्छा कर्ता, स्वतंत्र हे. उसकी आज्ञासे, उपासनासे ओर विश्वाससे जो विपरीत वर्तनेवाला हे उसको महाप्रलयमें नित्यके लिये नरक मिलेगा. जीवका पुनर्जन्म नहीं हे क्योंकि जो होता तो उसकी कोइ वात स्मरणमें आती. विस्मृतिमें पुनर्जन्म देना अन्याय हे. बालक मरता हे उसे स्वर्ग मिलेगा क्योंकि कर्म कर्ता नहीं हुवा हे. ईश्वर ओर देव [फिरशते]की प्रीति संपादन करनेके लिये उनके नामपर पशुवध [बलीदान-कुरबानी] करना चाहिये। आरंभमें जवान नर-मादा बनाये उनसे मैथुनि सृष्टि चली. पृथ्वी ध्रुसे इतर सब गोले गतिमान हें. लोकके कल्याण ओर अपनी महिमा जनानेके वास्ते ईश्वर अवतारभी लेता हे उसके विना निराकार ईश्वरका ज्ञान नहीं हो सकता. तदंतरगत एक भावना यूं होजाती हे के ईश्वर अवतार नहीं लेता किंतु दर्शन देता हे. मनुष्यकी कसोटी वास्ते कुदेव (बहकाने वाले)की रोकटोक नहीं. जगत सत्य हे असत नहीं, क्योंकि ईश्वरका कृत असत नहीं होता. प्रलयके पीछे क्या होगा एसी कल्पना असंभव हे क्योंकि ईश्वर स्वतंत्र अन्यथा कर्ता हे उसकी शक्ति ओर भेद कोइ नहीं जान सकता॥ १९। २०॥

नं. २१का अध्यारोप=यथेच्छा अनुपादान जीव जगत के तत्व बनाये. जीव परिच्छिन्न रागादिवाला हे. पंचभूतसे सृष्टि [ग्रहादि] रची. धातु मूल ओर योनी बनाई. सबके बीज यथायोग्य किये. गुरुत्वादिका नियम रखा. उसानुसार सृष्टिका व्यवहार हे. पहेले भोक्ता जीवको देव, वीर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पदवी दी ओर फेर उनको यथेच्छा शरीरमें जन्म दिया. नियम ओर साधनभी यथेच्छा किये ओर दिये, उस पीछे यथा कर्म जन्म देने लगा. क्योंकि स्वतंत्र हे अन्यथा कर्ता हे. पुनर्जन्म व्याप्तिसे सिद्धि हे. पूर्व जन्म भूलनेमें अवस्था बदलना यह कारण हे ओर

१९ इसका नाम—**यम, कलीम, रुह** वा **शाफी** अध्यारोप.

उपदेश तथा कानून कुदरत, मार्ग दर्शक हे. किसी योगीको पूर्व जन्मका कुछ भानभी होता हे. ईश्वरने परोक्ष [आकाशवाणी वा मनमें प्रेरणा] से उपदेश दिया, अच्छा बुरा मार्ग बताया हे. किसी कल्पमें अपरोक्ष होकेभी विधि निषेधका उपदेश करता हे. विधि अनुसार वर्तनसे सुख ओर निषेध वर्तनसे दुःख होता हे. इस प्रकार यथा कर्म स्वर्ग नरक होता हे, भोगने पीछे वहांसे आवृत्ति होती हे. इस प्रकार प्रवाह चलता हे. कर्म, उपासना, ज्ञान यह ३ मोक्षके साधन हें. ईश्वरकी प्राप्ति इसका नाम मोक्ष हे. मोक्षसे आवृत्ति नहीं होती. पशु वधसे लेके शेष नं. १९वत जानो. जब सबकी मोक्ष होजायगी तब पूर्ववत पुनः लीला करेगा. एसा मान सकते हें परंतु उसकी महिमा ओर शक्ति अचिंत्य हे कुछ कहा नहीं जाता ॥ २१ ॥

(अप.) अव्याप्ति, असंभव ओर अन्याय होनेसे नहीं ॥ २२ ॥

अ.–पूर्वोक्त अध्यारोप ठीक नहीं हे क्योंकि अभावसे भावरुप होनेकी कोई व्याप्ति नहीं मिलती-असंभव हे. ओर यथेच्छा बनाने ओर जन्म देनेमें ईश्वरमें विषमता ओर अन्यायकी आपति होती हे. [सादी वस्तु अनंत नहीं हो सकती] ॥ २२ ॥ शेष इसराइली मत ओर पुराण मतमें ओर अवतारादि प्रसंग सु. ८१ में वांचोगे. इस पक्षमें जीव जवाबदार नहीं ठेरता यह बडा दोष हे ॥ २२ ॥

[आ.] अतः सर्व सच्चिदानंद रुप ॥ २३ ॥ वा तरंगवत् परिणाम स्वेच्छासे ॥ २४ ॥ [अप.] एसा नहीं विभु अक्रिय ओर विरोध दर्शनसे ॥ २५ ॥

अ.–इसलिये सच्चिदानंद ब्रह्म आपही जगतका उपादान ओर निमित हे यह सब [जगत जीव] उसीका स्वरुप हे. अपनी इच्छासे लीला करता हे. इसलिये त्रिपुटी मात्र जगत लीला मात्र हे. उसके सत अंशसे पंच भूत ग्रहादि ओर चिद् अंशसे अणु जीव बनते हें ओर आनंद अंश व्यवस्थापक प्रभु हे. इ. [विशेष शुद्धाद्वैतमें वांचोगे] ॥ २३ ॥ किंवा जैसे समुद्रके तरंग बुदबुदे वेसे ब्रह्म अपनी इच्छासे जगतरुप होता हे. विभाग नहीं ॥ २४ ॥ किंवा ब्रह्मके एक भागमेंसे उसके ३ परिणाम होते हें. [१] देवता जीव, [२] जगतका उपादान, [३] जगत स्थापक शक्ति ॥ देवता उपादानमेंसे लोक रचते हें, जीव [आत्मा बुद्धि] लोकमें आके उन्नति क्रमानुसार शरीर धारते वनस्पति, पशु, पक्षी आदि योनियोंको पाते देवों द्वारा मनुष्य शरीर ओर मनसको प्राप्त होते कर्मके फल पानेके अधिकारी होते हें .अंतमें सर्वानु-

२१ यमनाध्यारोप. २३ शुद्धाध्यारोप.

भव लेके मुक्त होते हें. इ. [थीओसोफीमें वांचोगे]. किंवा यह जगत ब्रह्मका स्फुर्ण संकल्प मात्र हे [योगवासिष्टमें आगे वांचोगे]. यह चारों भावना समान हें इसमेंसे कोइ एक मानना चाहिये ॥ २४ ॥

[अपवाद]—यह अध्यारोप ठीक नहीं हे क्योंकि विभु (ब्रह्म)में गति ओर परिणाम नहीं होते. ओर वोह एक तत्व स्वरुप हे उसके विरोधी रुप नहीं हो सकते, परंतु जगतमें तम प्रकाश, शीतोषण, सुगंध दुर्गंध, उंच नीच, दुःख सुख, राग द्वेष. ज्ञाता ज्ञेय. इत्यादि विरोध भाववाले देखते हें [ओर ईश्वरमें इच्छा, कारण के विना व्यर्थ नहीं होती] अतः यह भावना ठीक नहीं ॥ विशेष अपवाद उपनिषद् , शुद्धाद्वैत ओर थियोसोफी प्रसंगमें वांचोगे ॥ २५ ॥

[आ.] अतः उभय अनादि अनंत ॥ २६ ॥ जीवसादि दीपकवत् ॥ २७ ॥ वा चिदावृत होनेसे ईश्वरत्व जीवत्व ॥२८॥ वा उपाधि भावसे ॥ २९ ॥ वा अधिष्ठानाश्रित अनादिसे उपचयापचय ॥ ३० ॥ ओर जीवत्वं मनससे ॥ ३१ ॥ [अप.] एसा नहीं, जीव कर्ता भोक्ता ओर सम सम होनेसे ॥ ३२ ॥

अ.—इसलिये ब्रह्म ओर माया दोनों अनादि अनंत हें ॥ २६ ॥ जीव जैसे दीपकसे दीपक होता हे वेसे ब्रह्मकी संधिसे जीव बनता हे ॥ २७ ॥ किंवा ब्रह्म. मायासे आवृत होजानेसे ईश्वरत्व जीवत्वको प्राप्त होता हे ॥ २८ ॥ किंवा मायाकी उपाधिसे जीवत्व ईश्वरत्व जान पडता हे. ॥ २९ ॥ किंवा ब्रह्माधिष्ठानके आसरे रही हुई मायामें उपचयापचय रुपसे सृष्टि अनादिसे होती रही हे ओर होगी, महाप्रलय न हुई न होगी ओर चेतन विशिष्ट मनससे जीव व्यवहार होता रहता हे ॥३१॥ इन अध्यारोपोमेंसे कोई मान लेना चाहिये. ॥ ३१ ॥ (अप.) यह आरोप ठीक नहीं हें. क्योंकि जीव कर्ता भोक्ता हे. ओर सम ब्रह्म एक रस होता हे उसमें कर्ता भोक्ता पना वा जगत कर्तृत्व किंवा अभिमान अज्ञान नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥

विवेचन—इस **आवृत्ताध्यारोप** ओर **उपाधि** अध्यारोपमें वक्ष्यमाण **क. ख. ग** ओर **घ** चार आरोप हें. वेसेही उनका अपवाद हे.

[**क**] ब्रह्म, उपादानमेंसे जगत (ग्रह शरीरादि) ओर चित (अंतःकरण) अपनी इच्छासे बनाता हे. मन शुद्ध सत्व हे इसलिये जेसे दीपकसे दीपक होता हे वेसे चेतन संबंधसे चित, चेतन (वा चेतन जेसा) होजाता हे. जेसे चंबुककी संनिधिसे जडलोहा गति करनेके योग्य होजाता हे वेसे चित, स्वयंगति करने योग्य होजाता हे. एसे असंख्य

(अनेक) जीव होजाते हें उक्त दोनों कारणसे वे रागादिवाले होते हें. ओर उपादानमेंसे जो ग्रह वगेरे बनाये गये उनमें प्रथम शरीर ईश्वरकी इच्छानुसार प्राप्त होता हे फेर पीछे यथा कर्म जन्म होता हे स्वर्ग नरकादि भोगता हे. जब सब मोक्ष होजाते हें— अपने मूलमें लयको प्राप्त होजाते हें तब सृष्टिकाभी लय होजाता हे. ओर फेर उपर अनुसार जगत रचना होती हे. प्रकृति पुरुषकी योग्यताका उपयोग हो, यह जगतकी उत्पत्ति स्थिति लयमें निमित्त हे ॥

(क) अपवाद—जहां दीपकसे दीपक होता हे वहां दूसरा प्रकाश (तेज-पुंज) उद्भव होता हे, पहेले दीपकका प्रकाश उसमें नहीं जाता. ओर न उसकी शक्ति जाती हे क्योंकि शक्ति. शक्तिवानसे भिन्न नहीं होती ओर न जाती हे. इसी प्रकार जो चित्त चेतन हो जाताहो तो दूसरे चेतनका प्रवेश मान्ना पडेगा परंतु दूसरा चेतन नहीं माना हे. तथा चेतनकी शक्तिभी चित्तमें नहीं जाती. तथा व्यापक चेतन (प्रकाश) में अन्य चेतन वा अन्यमें शक्ति जाना कहनाही नहीं बनता. इसलिये जडचित्त, चेतन नहीं हो सकता ॥ लोह पास विजलीकी किरणें जानेसे लोह खिंचाता हे. लोहमें स्वयं गति करनेकी योग्यता नहीं हे, एसेही चितमें मान्ना होगा अर्थात वोह स्वयं जीव रुपसे गति नहीं करता किंतु चेतन कराता हे. वा चेतन द्वारा होती हे. ॥ इस प्रकार उभय शक्तिका अभाव होनेसे जड चितको रागादिवाला नहीं मान सकते. परंतु जीवमें ज्ञान. दर्शन, दुःख, सुख इत्यादि लिंग जान पडते हें अतः चितरुप नहीं ॥ तथाहि चित मध्यम उत्पत्ति नाशवाला होनेसे उसकी बंध मुक्ति मान्ना व्यर्थ हे. उपरके वर्णनसे स्पष्ट होजाता हे कि जीव जड नहीं ओर न उत्पतिवाला हे तथा ब्रह्म सम (एकरस) होनेसे अक्रियहे परिवर्तनको प्राप्त नहीं होता उसमें न्यूनाधिकता नहीं होती इसलिये उक्त आरोप ठीक नहीं हे. ॥१॥

(ख) दूसरा आरोप—माया (प्रकृति-शक्ति) ओर ब्रह्म चेतन यह दोनों अनादि अनंत ओर सत्य हें. सत्वरजतमात्मक माया अनेक विभागवाली हे उसमेंसे मुख्य ३ भाग हें. (१) रजतमसे न दबा हुवा शुद्ध सत्व ब्रह्मांडमें व्यापक हे. (२) रजतमसे दबा हुवा मलिन सत्व अणु अणु हे इसे अविद्याभी कहते हें. (३) जिसमें सतरज दबा हुवा एसा तम भाग, जो परिणामी ओर जगतका उपादान हे ॥ नं. १ से आवृत्त (दबा हुवा-वशीभूत हुवा) जो ब्रह्म भागसो ईश्वर कहाता हे. वोह शुद्ध सत्वसे आवृत्त हे इसलिये काचकी हांडीवाले दीपकके समान निरावरण हे. पंचक्लेश तीन ताप कर्म विपाकादिसे रहित अर्थात नित्य मुक्त स्वरुप हे ॥ नं.

२ से आवृत्त जो चेतनांश वोह जीव कहाता हे. जीव परिछिन्न (मध्यम) नामा ओर रागादि लक्षणवाले हें. यद्यपि ईश्वरमें सर्वज्ञत्व सर्व शक्तिमत्व जगत कर्तृत्वादि मायाको लेके हें क्योंकि आप शुद्ध अक्रिय हे तथापि उक्त कारणसे उसका अभिमानी हे ओर चेतनके विना मायाका उक्त उपयोग नहीं हो सकता; इसलिये ईश्वर संज्ञा चेतनकीही हे. वेसेही यद्यपि राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, संस्कार यह जीवमें अविद्याकरके हें अविद्यावृत्त चेतन शुद्ध अक्रिय हे तथापि उक्त कारणको लेके उसका अभिमानी हे ओर चेतनके विना अविद्याका उपयोग नहीं होसकता इसलिये जीव संज्ञाका पात्र हे ॥ इस प्रकार उभयके संबंधसे जगत व्यवहार होजाता हे. ॥

उपरोक्त ब्रह्म चेतन, ईश्वर, जीव, प्रकृति [तमांश] चिदचिदका संबंध, इनका भेद यह अनादिसे हें इनका उपयोगहो अतः सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति लय होता हे.

जीवोंके पूर्व कर्मके अनुसार ईश्वर उक्त तमांशमेंसे सृष्टि [पंचभूत गुण परमाणु उनसे लोक बीज इत्यादि] रचता हे ओर स्थित रखता हे ओर लय करता हे एसे प्रवाह हे.

अब आगे इस (ख) में दो पक्ष होते हें. [१] **आवृत्ति त्रिवाद समान** (आगे वांचोगे) अर्थात जीव कर्म करनेमें स्वतंत्र फल भोगनेमें परतंत्र हे इसलिये यथा कर्म योनियोंको व स्वर्ग नरक लोकको प्राप्त होता हे ओर भोग पश्चात आवृत्ति होती हे. ईश्वरकी उपासनासे मोक्ष होता हे याने स्वतंत्र होके विचिरता हे ओर ईश्वरके आनंदको भोगता हे. फेर वहांसे संसारमें आवृत्ति होती हे क्योंकि अविद्या अंशका आवरण कभी दूर नहीं होता इसलिये वासना वा मानसिक कर्म होनेपर पुनः संसार होता हे एसे प्रवाह हे [इस आरोपमें ज्ञानको गौण माना हे क्योंकि अपना ज्ञान अपनेको नहीं होता] ओर ईश्वर जेसाका तेसा रहता हे. परंतु प्रलय कालमें चेतनाश्रित मायाका शुद्ध सत्व मलिन सत्व ओर तम बीजरुप होजाते हें याने ईश्वर जीव जगत बिंदुरुप होजाते हें. फेर अवसर आनेपर संस्कारी ईश्वर विस्तारवाला होके यथा कर्म सृष्टि पेदा करता हे. एवं प्रवाह हे [२] **अनावृत्ति त्रिवाद समान** (आगे वांचोगे) अर्थात कर्म उपासना ओर ज्ञान यह तीन साधन हें. कर्मसे जन्म स्वर्ग नरक ओर आवृत्ति होती हे. कर्म उपासनासे सालोक्य, सामीप्य ओर सायुज्यरुप मुक्ति होके वहांसेभी आवृत्ति होती हे क्योंकि अविद्याका आवरण हे. परंतु जब कोइभी कारणसे विवेक वैराग होके योग करे तब विवेक ख्याति

होती हे याने माया अविद्या ओर जीवके स्वरुपका भान होता हे. सारांश अपने आत्मा स्वरुपका अनावृत्त निरावरण रुपमें साक्षात होनेपर अविद्याका वशिभूत नहीं होता, जीवनमुक्त होजाता हे ओर प्रारब्ध भोग याने देह त्याग पीछे शुद्ध स्वरुप रहता हे ॥ परंतु उस अविद्या अंशका चेतनके दूसरे भागमें उपयोग होता हे अर्थात जीवत्व होता हे ओर मानसिक कर्म वासना होनेसे जन्मका पात्र हे (उद्भिजादि शरीर मिलता हे] फेर यथा कर्म आवागमन चलता हे ओर पूर्ववत मोक्ष होता हे. इस रीतिसे **जीव प्रवाहसे अनादि अनंत** हे स्वरुपसे नहीं ओर ईश्वर स्वरुपसे अनादि अनंत हे.

(ख)का **अपवाद—ख** आरोपके दोनों पक्ष (आवृत्ति—अनावृत्ति) का अपवाद संक्षेपसे यह हे. (१) अविद्या जड ओर चेतन सम होनेसे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं बनता, दोनोंमें न होनेसे उभयके मिश्रणमेंभी नहीं होसकता. तद्वत ईश्वरत्व वास्ते योजलीजे. (२) ब्रह्म चेतन मायाका वशीभूत वा उससे आवृत्त नहीं होसकता क्योंकि ब्रह्म अनादिसे शुद्ध स्वतंत्र निरवयव अमूर्त ओर विभु हे. माया परिणामी जड परतंत्र सावयव मूर्त ओर परिच्छिन्न हे. (३) समचेतनमें अज्ञान, संस्कार, अभिमान, जीवत्व ओर ईश्वरत्व भाव नहीं आसकता. [४] जहां जहां चेतन उसमें ईश्वरत्व (शुद्ध सत्व) ओर जीवत्व (मलीन सत्व) यह दोनों समाधिकरणमें नहीं होसकते. (५) यदि माया अविद्याका संबंध ओर आवृतपना अनादि तो सांत नहीं होसकता. हठसे सांतपना मानें तो पुनः होगा अर्थात आदि ठेरा. जो एसा न मानें तो जब तब सृष्टिका अभाव होगा. निमितोपादान निष्फल रहेंगे परंतु निष्फलत्वका अभाव हे. (६) अविद्याअंश मध्यम हे. इसलिये नित्य नहीं, अनित्यका अनादि संबंध नहीं होसकता. सादि संबंध होनेमें हेतु नहीं मिलता. (७) मुक्तसे जुदा होनेपर अविद्याका पुनः उपयोग माना हे, इससे ब्रह्मका देश हमेशे बंध मुक्त होता रहेगा. इसलिये स्वरुप शुद्धि न होगी. (८) ज्ञान स्वरुप ब्रह्ममें अज्ञान संस्कार अभिमान वा ज्ञान कहना नहीं बनता. ओर यादिज्ञाता द्रष्टा हे तो माया अविद्यासे आवृत होके अपने स्वरुपको भूलके अविद्या मायाके वश नहीं होसकता हे. ओर यदि होसकता हे तो हमेशे भूलता रहेगा. क्योंकि भूलका उत्पति नाश हे. [९] उक्त ईश्वर जीव, संकोच विकासवाले होनेसे नाशवान ठेरते हें नाशवानका ईश्वरत्व वा मोक्ष नहीं होसकता. [१०] जब अविद्या स्वर्ग नरकादि अन्य लोक वा अन्य शरीरमें गई तो वहांके चेतनको जीवत्वका अभिमान होगा, गत संस्कार न होंगे. क्योंकि पूर्व संबंधी

चेतन दूर पड गया, एसा मान्ना व्यर्थ बकवाद हे. जो चेतनका एकही अभिमान मानें तो जीवोंका नानात्व न होगा. ईश्वर जीवका भेद न रहेगा. जो अविद्याका गमन नहीं किंतु एकही जघे चेतनपर शरीर चढता हे, स्वर्ग नरक प्राप्त होता हे एसा मानें तो द्रष्टविरुद्ध हे. शरीरादिकी क्रिया ओर कर्म देखते हें. [११] जो ज्ञानसे अविद्याका नाश मानें तो अनावृत्तिसे सृष्टिका उच्छेद होगा. ब्रह्म उपादान निष्फल रहेंगे जो नाश न मानें तो अविद्या नाश न होनेसे जीवत्व भाव नवीन होनेसे उपर कहे अनुसार ब्रह्म हमेशे बंध मुक्त होता रहेगा. [१२] ब्रह्म, मायावश इच्छासे रचे ओर आपही बंध हो यह कपोल कल्पना हे. अन्याय हे. ओर यदि अनादिसे एसा हे तो उपरोक्त दोष आवेंगे याने ब्रह्म हमेशे बंध मुक्त होता रहेगा. इ.

(ग) उपर ख आरोपमें चेतनको माया अविद्यावृत मानके उसका वशीभूत मानाहे परंतु सो उक्त अपवादसे दुषित हे किंतु वे चेतनकी उपाधी हें (एसा मान्ना चाहिये) जेसे के घट मठ वादल यह महा आकाशकी उपाधि हें उपाधिके धर्म उपहितमें जान पडते हें इसलिये आकाश परिच्छिन्न, हस्ती आकार चलता फिरता लंबा गोल जान पडता हे. वेसेही चेतनमें शुद्ध सत्वकी उपाधिसे ईश्वरत्व ओर अविद्या उपाधिसे जीवत्व जान पडता हे वस्तुतः चेतन वेसा नहीं हे किंतु उसका अधिष्ठान हे. अव्यक्त उसकी संनिधिसे अनेक परिणामको धार सकता हे एसी उसमें अनादि योग्यता हे अर्थात शुद्ध सत्व पूर्व पूर्व संस्काराभ्यासवश सृष्टि रचनामें निमित ओर मलिन सत्व कर्ता भोक्ता होता हे तथा तम अंश जगतका उपादान होता हे. यथा-स्वप्नमें चेतन संबंधी पूर्व संस्कारी जड मन, स्वप्न सृष्टिका निमित कारण हे, सूक्ष्म प्रकृति (शेषा) मेंसे संस्कारानुसार नामरुपात्मक भूत पंचीकृत सूर्यादि शरीरादि ओर अपंचीकृत इंद्रिय अंतःकरणादिरुप[१] जगत बनता हे ओर मलिन सत्वसे मनस वगेरे प्राणी बनते हें फेर उनमें परस्परमें त्रिपुटी व्यवहार होता हे. परंतु द्रष्टा चेतनकी संनिधिसे वेसा होता हे अन्यथा नहीं. इतनाहि नहीं किंतु स्वप्न कालमें जीव मनादिको नहीं जानते तोभी कोइ परोक्ष शक्ति [मन] ईश्वर हे ओर शरीरोंमें जीवत्व हे, कर्तृत्व भोक्तृत्व हे ओर सूर्यादिमें कार्यत्व हे एसा भासता हे. यथा कर्म जन्म मरणादिका निश्चय होता हे. क्योंकि वहां द्रष्टा ज्ञाता चेतन एकही हे अन्य नहीं. उसीको लेके अन्योंमें एसा जान पडता हे. जब संस्कार बंद होनेका अवसर आता हे तब सुखोप्ति [याने प्रलय] होजाती हे फेर स्फुर्णका निमित्त

[१]पंचीकृत अपंचीकृतकी रचनाका प्रकार भ्रमनाशकके उत्तरार्द्धमें लिखा गया हे.

होता हे तब दूसरी सृष्टि होती हे एसे प्रवाह हे. इसी प्रकार द्रश्य ब्रह्मांडमें होता हे. यथा कर्म जन्म मरण उत्पत्ति स्थिति लय होते हैं एसा होनेमें पूर्व पूर्वके संस्काराभ्यास सहकारी वा निमित्त हें ॥ जब चेतन विशिष्ट अविद्यामें साधन संबंध (संस्कार) होते हें अर्थात कर्म उपासना नामक संस्कारसे मल विक्षेपका अभाव होताहे ओर विवेक वैराग्यादि संस्कार होते हें तब 'आत्म ज्ञान' इस संस्कारके होनेसे जीवनमुक्ति होती हे ओर शरीर त्यागने पीछे विदेह मुक्ति होती हे वहांसे पुनः आवृत्ति [जन्म मरण] नहीं होती किंतु अविद्या [चित्त] अपने उपादान मायामें लय होजाती हे. यद्यपि उपरोक्त मलादिका अभाव ओर विवेकादिका भाव तथा मुक्ति यह सब मायाके परिणाम हें परंतु चेतनके तादात्म्य संबंधसे घटाकाशकी क्रिया समान उनका पर्यवसान शुद्ध चेतनमें जान पडता हे जड संज्ञामें नहीं, इसलिये बंध मुक्तका व्यवहार चेतनमें कहा जाता हे क्योंकि दुःख सुख भोग अर्थात बंध मोक्षरुप स्थितिका भोग केवल प्रकृतिमें नहीं घटा सकते. यथा स्वप्नके व्यवहार, द्रष्टा साक्षीमें नहीं तोभी उसका पर्यवसान उसमें किया जाता हे एसेही यहां हे. इसी प्रकार मुक्तिसे आवृति ओर अनावृत्ति प्रसंगमें स्वप्नवत घटा लेना चाहिये. जेसे जीव संबंधमें कहा वेसे जगतकी उत्पत्ति स्थिति ओर लयका पर्यवसान ब्रह्ममें कहा जाता हे. इस वास्ते कोई दोष नहीं आता अर्थात स्वप्न द्रष्टावत अकर्ता परंतु कर्ता जेसा, अभोक्ता परंतु भोक्ता जेसा जान पडता हे, कूटस्थमें एसे ईश्वरत्व जीवत्वका व्यवहार होता हे उससे उसमें [घटाकाशवत वा स्वप्नद्रष्टा समान] कोई विकार नहीं होता.

[ग] **अपवाद**—अध्यारोपमें माया ब्रह्मको सत माना हे. ओर स्वप्न मिथ्या होता हे. इसलिये विषम द्रष्टांत हे. ओर मायासे इतर न होनेसे साध्यसम दोष आता हे. यदि मायासे इतरका द्रष्टांत होता तो सुन्नेके योग्य होता परंतु वेसा नहीं हे अतः मान्य नहीं होसकता. कर्तृत्व भोक्तृत्व सत्य जान पडता हे स्वप्न समान किसीकोभी नहीं जान पडता. चेतन जबके निर्लेप हे तो उसमें दुःखादि ओर जगत कर्तृत्वका पर्यवसान मान्ना अलीक हे. यथा घटाकाशमें क्रियाका पर्यवसान मान्ना अनुचित हे वेसे यहांभी हे. पर्यवसानका अभाव होनेसे दुःखादिकी व्यवस्था प्रकृतिमें नहीं होसकती. विचित्र ओर सनियम जगतकी रचना कर सके एसी योग्यता प्रकृतिमें सिद्ध नहीं होती. जबके जीवत्व ईश्वरत्व बंधमोक्षमायाकेही कार्य मानें तो बंध मोक्ष ओर शिक्षाका अभाव होनेसे व्यवहार नीति मर्यादामें विकार होगा इसलिये उक्त आरोप ठीक नहीं. ॥ ३२ ॥

[घ] अध्यारोप—अर्थात चेतन ब्रह्माश्रित उसकी सम सत्तावाली सत् प्रकृति [माया] हे उसका सूक्ष्म हिरण्यगर्भ भाग ब्रह्मके अमुक भागमें ब्रह्मकी शक्तिसे आकर्षित हुवा अमुक मर्यादामें पसरा हुवा रहता हे तालाव समान लचकवाला हे उसमें ग्रह उपग्रह गोले हें इनके गुरुत्व ओर हिरण्यगर्भकी लचकसे गति होती रहती हे. गोले मारवाडके टीबें समान धीरे धीरे बनते बिगडते रहते हें उसमेंभी गुरुत्व लचक भूकंपादि कारण हें [विस्तार पूर्वक थीयरी ब्रह्म सिद्धांतमें हे] ओर गोलोंमें अनादिसे बीज ओर मनस होते हें वेभी कारणवशात न्यूनाधिक होते रहते हें तथा प्रवाहसे उत्पन्न नाश अर्थात प्रवाहसे अनादि अनंत होते हें. शुद्ध सत्वांशका बना हुवा जो मनस तद्विशिष्ट चेतन किंवा चेतन विशिष्ट मनसकी जीव संज्ञा होती हे वोह यथा कर्म पुनर्जन्मके चक्करमें रहता हे. उसमें जब वासनाका अभाव हो तब जन्म नहीं होता. उसका रुपांतर हुये अन्य प्रकारसे उपयोग होता हे. बीज ओर मनसोंकी रचनामें ईश्वर शक्तिका हाथ होता हे. इस प्रकारसे अनादि अनंत प्रवाह हे. महाप्रलय कभी न हुई न होगी ॥

[घ]का **अपवाद**—मनस, प्रकृतिका कार्य हे उसमें कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मान सकते. ओर समचेतनमेंभी कर्ता भोक्तापना असिद्ध हे परंतु कर्तृत्व भोक्तृत्व तो देखते हें. दो सम सत्तावाले समान अधिकरणमें नहीं रह सकते. इत्यादि दोष आनेसे यह भावना ठीक नहीं ॥ ३२ ॥

(आ.) अतः ईश्वर जीव अनादि ओर यथा कर्म भोग्या अभावसे ॥ ३३ ॥ (अप.) नहीं, अभावसे भावरुप न होसकनेसे ॥ ३४ ॥

अ. — इसलिये सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान असीम ओर सक्रिय एक ईश्वर तथा रागादि लिंगवाला परिच्छिन्न जीव संख्यासे अनंत, यह दोनों अनादि अनंत हें ओर सर्गके आरंभमें जीवोंके पूर्व कर्मके भोगने वास्ते ईश्वर भोग्या याने पंचभूत अभावसे भावरुप उत्पन्न करता हे क्योंकि सर्व शक्तिमान हे ॥ ३३ ॥ उन पंचभूतसे ईश्वरकी शक्ति द्वारा ग्रहादि लोक बनते हें. उनमेंसे जीवोंके भोग्य पदार्थ [शरीरादि विषय] होते हें भोग काल पीछे प्रलय होजाता हे. एसा मान्ना चाहिये; क्योंकि व्यवस्थापक लाघव कल्पना हे ॥ ३३ ॥ यह आरोप ठीक नहीं हे क्योंकि अभावसे भावरुप भोग्य होना असंभव हे इसमें कोई व्याप्ति नहीं मिलती ॥ ३४ ॥ इस आरोपमें (भोग्याध्यारोपमें) वक्ष्यमाण त्रिवादवत कल्पना हे. अंतर इतना हे कि उपादानको अभाव जन्य माना हे जोके अलीक हे ॥ ३४ ॥

त्रिवाद [सप्रलय । अप्रलय].

[आ.] अतः तीनों अनादि अनंत और अनावृत्ति ॥ ३५ ॥ वा अवतारी त्रिवाद, अन्यथा अप्राप्तिसे ॥ ३६ ॥ आवृत्ति त्रिवाद, उच्छेद न होनेसे ॥ ३७ ॥ [अप.] नहीं, अणु जीवसे सर्व व्यापार न होसकनेसे ॥३८॥ ओर अपरिच्छिन्न परिच्छिन्न न होनेसे ॥ ३९ ॥

अ.—इसलिये ईश्वर जीव ओर प्रकृति यह तीनों अनादि अनंत हें ओर जीवकी मोक्षसे अनावृत्ति हे एसा मान्ना चाहिये ॥ ३५ ॥ किंवा निराकार ईश्वरको जीव नहीं जान सकता इसलिये उनके कल्याणार्थ ईश्वर अवतार लेता हे एसा त्रिवाद मान्ना चाहिये ॥ ३६ ॥ किंवा जो जीव मोक्षसे पीछे न आवें तो सृष्टिका उच्छेद होजाय इसलिये मोक्षसे आवृत्ति होती हे एसा त्रिवाद मान्ना चाहिये ॥३७॥ यह तीनों आरोप ठीक नहीं हें क्योंकि इनमें जीवको अणु चेतन तत्व मान्ना पडता हे अन्यथा आवृत्ति वा अनावृति नहीं मान सकते. परंतु अणुमें जीवके रागादि सर्व व्यापार सिद्ध नहीं होते अर्थात जीवका अणुत्व सिद्ध नहीं होता ॥३८॥ ओर अपरिच्छिन्न (ईश्वर) परिच्छिन्न (अवतारधारी) नहीं होसकता. अतः उक्त त्रिवादमें यह अपवाद हें ॥ ३९ ॥

विवेचन—त्रिवाद आरोपमें वक्ष्यमाण **क**, **ख**, **ग**, तीन मुख्य भेद हें इसलिये लक्षणोंमें कुछ अंतर हे.

(क)—[१] ईश्वर निराकार, विभु चेतन, अखंड, सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान, सर्वाधार, अज, अमर, जगतकर्ता धर्ता हर्ता, अमूर्त, निरवयव, सक्रिय सगुण उसके जैसा अन्य नहीं सो एक उपास्य हे ॥ जीवरागादि लिंगवाले परिच्छिन्न [अणुचेतन] चेतन नित्य ओर संख्यासे अनंत हें. ॥ ज्ञात अज्ञात यह सब प्रकृति हे (यथा देश-काल सगुण परमाणु) ॥ यह तीनों अपने धर्म [गुणकर्म स्वभाव] सहित अनादि अनंत हें. विभु ईश्वरमें दोनों व्याप्य हें. तीनोंकी सफलता सृष्टि हे. जीव कर्म मर्यादामें स्वतंत्र हे ओर फल भोगनेमें परतंत्र हे. उसके कर्मानुसार उसका आवागमन [योनि शरीर वा लोक परलोक प्राप्ति] होता हे. जीव सब सजातीय हें.

[२] सृष्टिके आरंभमें ईश्वर जीवोंके कर्म फल भोगार्थ प्रकृति (उपादान) मेंसे जगत रचता हे क्योंकि सर्व शक्तिमान हे. [हाथ पेट शरीर विनाका जो मन उस द्वारा अद्भूत स्वप्न सृष्टि होती हे तो ईश्वरकी अचिंत्य शक्ति द्वारा किसी अगम्य प्रकारसे रचना हो इसमें क्या आश्चर्य, क्या शंका] परमाणुके एकत्र होने

वा उनके पुंजमें गति होनेसे देशकालकी अविभक्ति होती हे यही उनकी ईश्वरसे उत्पत्ति हे. देशकाल पीछे वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी यह सगुण पंचभूत विभक्त होते हें उनके संयोगसे (रसायणीय ओर भौतिक संयोगसे) पदार्थ बनते हें उनसे ग्रह उपग्रह, धातु मूल (वनस्पतीके बीज वगेरे) प्राणी [पशु पक्षी आदिक शरीर] बनते हें ओर उनका उपयोग होता हे. पदार्थोंकी गुरुत्वादि योग्यतासे सृष्टिकी व्यवस्था की जाती हे. जीवोंके कर्मानुसार जन्म मरण होता हे चार खान (योनी) ओर लोक परलोकमें गमनागमन होता हे.

[३] सृष्टिके आरंभमें देव (उत्तम संस्कारी) मनुष्य, पशु पक्षी आदिको उनके बीजात्मक शरीरकी प्राप्ति होती हे अर्थात मैथुन विना एकदम युवान नरमादा होजाते हें. (एसा क्रम ओर नियम संसारमें देखते हें ब्र. सि. के पूर्वार्द्धमें विस्तार हे) उनमें पूर्व शिक्षित संस्कारी उपदेष्टाभी होते हें. उक्त मानसिक अमैथुनि सृष्टिसे मैथुनि सृष्टि चलती हे.

(४) श्रुतिका शब्द मान्य हे क्योंकि सृष्टि नियमानुकूल ओर हितकारी उपयोगी हे. यह उक्त देवोंद्वारा सुने जानेसे श्रुति कहाती हे. उत्पन्न प्रजामें देशकाल स्थिति संग संबंध भेदसे उन्नति अवनतिका क्रम चला. सुर असुर आर्य दस्यु इत्यादि भेद ओर झघडे चले. शुभ्रा श्यामा इत्यादि भेद हो गये (यहां तकके वर्तमानमें अन्यथा जान पडता हे).

(५) सत्य, धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इंद्रिय निग्रह, धीवृद्धि, विद्यावृद्धि, अक्रोध, इत्यादि सामान्य ओर तदनुकूल [पंचमाहायज्ञादि) विशेष धर्म हें वे यथा देशकाल स्थिति पालने चाहिये. विधि निषेध श्रुतिमें हे. कर्म उपासना [ईश्वर भगति ध्यान ओर योग—चितनिरोध] ओर ज्ञान यह ३ उन्नति के साधन हें. कर्म उपासनासे सत्संकल्प होनेपर विदेहीको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती हे. सत्संकल्प होनेसे स्वतंत्र भोग भोगता हे. फलकी अवधि होनेपर वहांसे पुनः संसारमें आता हे. जब इसको जिस तिस लोकमें ब्रह्मात्माका ज्ञान होजाता हे तब ब्रह्मको प्राप्त होता हे इसका नाम मोक्ष हे. वहांसे आवृति (पीछे संसारमें लोटना) नही होती. आकाश ओर ईश्वर असीम होनेसे तदगत जीवभी संख्यामें अनंत हें इसलिये सृष्टिका उच्छेद नहीं होसकता.

(६) जब जीवोंके कर्मभोगका काल न होगा तब ईश्वरद्वारा जगतकी प्रलय

होजायगी. ओर कर्म भोगके काल आनेपर सृष्टिकी पूर्ववत् उत्पति होगी. इस प्रकार अनादि अनंत प्रवाह हे.

(७) शब्द (श्रुति – वेद) पौरुषय वा अपौरुषय, देवता पितृ हें वा नहीं, देवार्थ बलिदान (पशु यज्ञ) कर्तव्य वा अकर्तव्य, पहेले मनोमय सृष्टि वा बीजसे, आरंभमें उद्भिज स्वेदज अंडज वा जरायुज वा अन्य प्रकार, कबसे ओर किस प्रकारसे सृष्टि, ईश्वर साकार वा निराकार, निर्गुण वा सगुण, मोक्षसे आवृत्ति[1] वा अनावृत्ति इत्यादि विषय में विवाद ओर मतभेद बहुत कालसे चले आ रहे हैं.

(क. का अपवाद)—-विभु असीम ईश्वर, सक्रिय नहीं होसकनेसे उसमें जगत कर्तृत्व नहीं माना जासकता. उपादान ओर जीवके कर्माधिन तथा संस्कार न्याय नियमके आधीन होनेसे वोह सापेक्ष ठेरता हे स्वतंत्र नहीं॥ जीव अणु परिमाण हे एसा सिद्ध नहीं होता (बस २११ में विवेचन हे) क्योंकि अणुमें भोक्तृत्व ओर शरीरका तमाम व्यापार सिद्ध नहीं होता. आरंभमें विना संसर्ग के जवान नरमादा नहीं होसकते किंतु यदि हों तो अज्ञबालकही होंगे. मोक्षसे अनावृति हे एसा सिद्ध नहीं होता (वेद प्रसंग अंक ९ में वांचोगे). विशेष दंडीमत याने त्रिवादावृत्तिमें वांचोगे.

(ख) ईश्वर साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण ओर अन्यथा कर्ताभी हे क्योंकि लोकके कल्याणार्थ अवतार [शरीर धारण] धारण करके मानव मंडलमें रहता हे. ओर अपनी सेवा पूजा करने वालेको सालोक्यादि मुक्ति देता हे. इसलिये वेद समान उस अवतारी के शब्दभी मान्य हें. जीव अणु हे, विशेष अवतारी त्रिवादमें आगे वांचोगे.

[ख, का अपवाद] अन्यथा कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता क्योंकि परिच्छिन्न (साकार) कभीभी ओर किसी प्रकारसेभी अपरिच्छिन्न (निराकार विकासी) ओर अपरिच्छिन्न (निराकार), परिच्छिन्न (संकुचित—साकार--अवतारधारी) नहीं होसकता यह स्पष्ट हे. ओर न एसी व्याप्ति मिलती हे. मोक्षसे अनावृति नहीं होसकती किंतु आवृतिही होगी. अवतार सालोक्यादिके वास्ते आगे अवतारादि प्रकरणमें वांचोगे.

[ग] नं. १, २, ५, ६ क. अनुसार मानना चाहिये. परंतु मोक्षसे आवृत्ति

[1] मोक्षसे आवृत्ति इस पर विशेष ध्यान दंडी स्वामी दयानंदजीके समयसे चला हे.

होती हे क्योंकि सादि साधनका फल सांतहीं होगा. आवृत्ति होनेका निमित्त यह हे के जीवमें जो राग द्वेष इच्छा यह संसार कालमें उत्तम ओर कनिष्टभी होते हैं मुक्तिकालमें उत्तम [ईश्वरमें राग, संसारसे अरुची, ईश्वरानंद भोगमें इच्छा, प्रकृति भोगमें अनेच्छा)ही होते हैं परंतु एक काल एसाभी आता हे के उभय प्रकारसे उदासीन हो याने राग द्वेष इच्छा नहीं, उस समय यदि गुप्त वासनासे वा प्रकृति के पदार्थके साथ संबंधसे प्रकृतिमें मानसिक राग होजाय तो संसारमें आना पडता हे. (विशेष बस १७८ में विवेचन हे) जो अनावृति न मानें तो सृष्टिका उच्छेद होजाय (वेद नं. ९ देखो) ॥ जीव अणु परिमाण हे. आरंभमें ईश्वरकी शक्तिसे अमैथुनी जवान नरमादा हुये उनसे मैथुनी सृष्टी चली, सृष्टि आरंभमें जीवोंके कल्याणार्थ विधिनिषेधक बोध अर्थात वेद योग्य पुरुषोंके हृदयमें प्रेरा. उनसे अन्योंने सुना. ईश्वरकी प्रार्थना स्तुति ध्यानसे अपने गुणकर्म सुधरते हैं ईश्वरको उसकी अपेक्षा नहीं ईश्वर न्यायकारी हे उसके सब कार्य सनियम हैं. वेद [४ संहिता] ईश्वरीय बोध होनेसे स्वतः प्रमाण हे. देवता, पितृ, भूत, प्रेत नहीं हैं क्योंकि जीवका पुनर्जन्म होता हे शरीरके विना नहीं रहता. देवार्थ बलिदान वा यज्ञमें पशुवध पाप हे. ईश्वर निराकार हे. जीवोंके कर्मानुसार सृष्टिकी उत्पत्ति लय करता रहता हे. [शेष आवृतित्रिवादमें वांचोगे].

(**ग का अपवाद**)—क. अनुसार हे. ओर आगे त्रिवादावृत्ति (दयानंद मंतव्य) में वांचोगे.

(**घ**) उपरके तीनों पक्षोंमें यथा कर्म सृष्टिकी उत्पत्ति लय मानी हे. परंतु इस घ आरोपमें यह माना जाता हे कि उत्पत्ति लय नहीं होता किंतु उपर कहे हुये चेतनवादके उपचयापचय समान ग्रहोंका उपचयापचय होता हे ओर वोह परस्परकी गतिसे होता हे. ईश्वर अक्रिय अधिष्ठान हे. जगतकर्ता नहीं, किंतु व्यवस्थापक हे. जीवों के कर्मानुसार व्यवस्था कर देता हे. बीजोमें वा व्यवस्थामें अंतर पडे तब यथायोग्य योज देता हे.

[घ] **अपवाद**—जीवोंके कर्म विचित्र हैं इसलिये ग्रहोंका स्वयं उपचयापचय मानके उसमें जीवोंकी भोग सामग्री मान्ना अघटित हे तथा व्यवस्थापक मानके अक्रिय कहना अलीक हे. तथा क अनुसार सापेक्षता बनी रही. (शेष वक्ष्यमाण दंडी त्रिवादवत) इसलिये इस त्रिवाद (वा तीनों त्रीवाद) में उपचयापचयका स्वयं प्रवाह मान्ना ओर उत्पत्ति प्रलय न मान्ना व्यर्थ हे. कल्पना मात्र हे. ॥

[आ.] अतः जीव विभु ओर अनंत ॥४०॥ (अप.) एसा नहीं कर्ता भोक्ता होनेसे ॥ ४१ ॥ विभु अक्रिय होनेसे ओर मलीनका असंबंधी होनेसे ॥ ४२ ॥

अ.—इसलिये (जीव अणु असिद्ध हे इस वास्ते) जीव विभु परिमाण वा संख्यासे अनंत हें एसा मानना चाहिये [शेष अनावृत्ति त्रिवादवत अर्थात यह अध्यारोप न्याय वैशेषिकको मिलता हे. आगे वांचोगे] ॥४०॥ **इसका अपवाद**—जीव विभु नहीं होसकता क्योंकि जीव कर्ता भोक्ता हे ओर विभु सम एकरस होता हे उसमें क्रिया रागादि गुण वा उसकी रागादि अवस्था नहीं होसकती ॥ ४१ ॥ उपरोक्त ईश्वरभी विभु नहीं होसकता क्योंकि जो विभु हो तो उसमें क्रिया न होसकनेसे जगत कर्ता नहीं होसकता. ओर संसारमें तो मलिनता (दुर्गंधादि) तथा दुःख हे उसके साथ उस शुद्धका संबंध होना असंभव ओर अघटित हे ॥ ४२ ॥

[आ.] इसलिये तीनों परिच्छिन्न ओर राज्यवत व्यवस्था ॥४३॥ आधारकी अपेक्षा नहीं जितना उतना होनेसे ॥४४॥ (अप.) एसा नहीं, सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान न होसकनेसे ॥ ४५ ॥

अ.—इस वास्ते यह मानना चाहियेके ईश्वर, जीव ओर प्रकृति यह तीनों परिच्छिन्न हें. ईश्वर सृष्टिकी व्यवस्था राज्यके समान करता हे अर्थात देवताओं द्वारा जीवोंके कर्मानुसार व्यवस्था करता हे आप संसारसे जुदा अलोक देशमें विराजमान रहता हे ॥ ४३ ॥ **(शं.)** जबके परिच्छिन्न हे तो आधारके विना केसे रहसकती हे **(उ.)** उसको आधारकी अपेक्षा नहीं हे क्योंकि जिसे आधार मानोगे वोहभी जितना हे उतनाही होगा अर्थात ससीम होगा इसलिये उक्त परिच्छिन्न ईश्वर अपनी शक्तिसे स्वयं अनाधार रहता हे अपना आपही आधार हे. ओर जगतकोभी अपनी शक्तिके आधार टिकाये हुये हे ॥ ४४ ॥ **(अपवाद)**—यह आरोप ठीक नहीं हे क्योंकि परिच्छिन्न वस्तु सर्व शक्तिमान ओर सर्वज्ञ (ओर सर्वाधार) नहीं होसकती ॥ ४५ ॥

विवेचन—ईश्वर स्वयंभु, स्वतंत्र, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान इस दुःखमय मलीन संसारसे पृथक विराजमान हे. जीव परिच्छिन्न रागादिवान संख्यामें अनंत ओर नित्य हें. इस अध्यारोपमें पूर्वोक्त **आरंभवाद** नहीं हे किंतु **प्रवाहवाद, अनादिवाद** वा **उपचयापचयवाद**का ग्रहण होसकता हे. यानेतीनों पक्ष बनते हैं क्योंकि द्रव्य

४० न्याय त्रिवाद.

(उपादान) नित्य हैं. जेसे राजा, प्रधान अनुचरोंद्वारा सृष्टिका प्रबंध करता हे यथा कर्मफल भोगावता हे. गाम उजड करता वा बसाता हे इसी प्रकार सो ईश्वर जगतकी व्यवस्था कराता हे. (प्रवाहवादमें उत्पत्ति स्थिति लय तीनों करता हे. ओर अन्यवादमें केवल व्यवस्थापक हे एसा जान्ना चाहिये). प्रवृति निवृतिके कर्म उपासना ओर ज्ञान यह तीन साधन हें. जब कोई ईश्वरका उपासक शुद्ध होता हे तो ईश्वर यथेच्छा शरीर धारणकर भगतको दर्शन देजाता हे. जो साधन करके मुक्त होते हें उनको ईश्वरके लोककी वा ईश्वरकी समीपता प्राप्त होती हे स्वतंत्र रहते हें. किंवा ईश्वर जेसे परमेश्वरके आधीन होते हें. मुक्ति होनेका साधन ईश्वर भगति ओर विवेकादि होके ज्ञान प्राप्त होना हे. मोक्षसे अनावृति हे. जीव अनंत होनेसे सृष्टिका उच्छेद नहीं होता. जिस देवताके वा ईश्वरके जिस रुपमें दर्शन होते हें वेसी मूर्ति बनाके उसका पूजन करना हितकारी हे. क्योंकि देव प्रसन्न होके कामना पूरी करते हें.[1]

[अपवाद] परिच्छिन्न, सर्वज्ञ नहीं होसकता क्योंकि उसकी ज्ञान शक्ति उसको छोडके नहीं जानेसे उसे दूरका ओर गुप्तका ज्ञान नहीं होसकता. उसे सब पदार्थके फोटो नहीं मिल सकते ओर यदि मिलें तो एक कालमें सबका ज्ञान नहीं होसकता (विशेष अ. २. सु. ४०४. बस २०७ में देखो) तद्वत् वोह सर्व शक्तिमान नहीं होसक्ता (अ. २। ४०१ । बस २०७ देखो) शक्ति, शक्तिमानको छोडके नहीं जाती इसलिये परिछिन्न, जगतका आधार नहीं होसकता. ओर जगत परिच्छिन्न गतिमत हे इसलिये असीमाधारकी अपेक्षा हे. परिच्छिन्न ईश्वर यदि अणु हे तो उसमें कर्तृत्व व्यवस्थापकत्व नहीं होसकता. ओर यदि मध्यम हे तो नाशवान होगा. देवताओंमें असर्वज्ञता ओर रागादि होनेसे वे सर्वथा निर्दोष नहीं होसकते इसलिये प्रबंधमें अव्यवस्था वा अन्याय होगा. जीव यदि अणु तो पूर्वोक्त असिद्धिपर ध्यान दीजे. यदि मध्यम हे तो नाशवान होगा. मुक्तिसे पीछे न आते हों तो पूर्वोक्त दोष आवेगा. (शं) असीम आधार मानोगे तो आत्माश्रय दोष आवेगा ओर मलिन साथ संबंध होगा तथा आधेय (जगत) आधार (ईश्वर) जब तक जुदा करके न देखे जायं वहां तक आधाराधेय भाव मान्ना मुशकिल हे, तथा असीमपना असिद्ध हे क्योंकि जितना हे उतना हे. तथा व्यापक व्याप्य भाव संबंध नहीं बनता अतः या तो ईश्वर आधार नहीं वातो ईश्वर परिच्छिन्न

[1] परिच्छिन्न त्रिवाद वा तंत्राध्यारोप.

होगा एसा मान्ना पडता हे. (ऊ.) इन सब पांचों शंकाओंका समाधान बस. पूर्वार्द्ध ईश्वर प्रसंगमें ओर उत्तरार्द्ध उत्तर फिलोसोफीमें हे उससे विभु अधिष्ठान मान्नाही पडता हे. इसलिये प्रस्तुत परिच्छिन्नाध्यारोप-वाद ठीक नहीं हे. यूं हे, तथापि यहां आधारका प्रसंग नहीं हे किंतु परिच्छिन्न ईश्वर सर्व शक्तिमान सर्वज्ञ नहीं होसकता यह प्रस्तुत प्रसंग हे. अतः पूर्व प्रसंग याने आरोपवादपर आते हें. ईश्वरवाद समाप्त हुवा ॥ ४५ ॥ यहांसे आगे जीववाद चलता हे.

[आ.] इसलिये क्षणिक विज्ञान परिणामि वासनासे ॥ ४६ ॥ [अप.] एसा नहीं त्रिपुटी व्यवहार स्थाई दर्शनसे ॥ ४७ ॥ (आ.) अतः बाह्यानुमानसे ॥४८॥ (अप.) प्रत्यक्ष उपयोग दर्शनसे नहीं ॥ ४९ ॥ [आ.] पूर्व उत्तरके अभावसे द्रश्य शून्य ॥५०॥ (अप.) मध्यमें होनेसे नहीं ॥५१॥

अ.—(उपर कहे अनुसार जगत कर्ता विभु वा परिच्छिन्न ईश्वर सिद्ध नहीं होता ओर अधिष्ठान माननेमेंभी दोष हे) इसलिये विज्ञान नामका क्षणिक पदार्थ हे वोह स्वप्न सृष्टि समान क्षण क्षणमें जगतरुप होता हे याने पूर्व पूर्वकी वासनासे उत्तर उत्तर त्रिपुटीरुप क्षणिक परिणामी हे. एसा जान्ना चाहिये ॥ ४६ ॥ यह आरोप ठीक नहीं हे क्योंकि ज्ञाता ज्ञेय ज्ञानादिरुप व्यवहार समकाल ओर स्थाई देखते हें इसलिये **क्षणिक अध्यारोप** अलीक हे ॥ ४७ ॥ इसलिये शरीरसे बाह्य द्रश्य पदार्थभी हें एक विज्ञानही नहीं हे. परंतु बाह्य पदार्थ प्रत्यक्ष नहीं होते किंतु व्यवहार होनेसे अनुमानके विषय हें एसा मान्ना चाहिये ॥ ४८ ॥ यह आरोपभी ठीक नहीं हे क्योंकि बाह्य पदार्थोंका प्रत्यक्ष उपयोग होता हे इसलिये अनुमानके विषयही नहीं किंतु प्रत्यक्ष हें ॥ ४९ ॥ जैसे स्वप्न सृष्टि पूर्व उत्तरमें न होनेसे शून्यरुप हे वेसे उपरोक्त सब [जडचेतनात्मक सृष्टि ओर मंतव्य] पूर्व उत्तर न होनेसे शून्यरुप हे सो शून्यसत् (अबाध) प्रकाश रुप हे एसा जान्ना चाहिये. ॥५०॥ वक्ष्यमाण अध्यस्तवादमें इस शून्यवादमें यह अंतर हे कि शून्यवादमें अधिष्ठानाध्यस्त भाव नहीं माना जाता किंतु केवल शून्यही माना हे. अध्यस्तवादमें अधिष्ठानको नित्य माना गया हे इसलिये शून्यवादको अध्यस्तवादके अंतरगत नहीं लिखा. ओर शून्यको सत्य मानते हें इसलिये प्रस्तुत सत्यवादमें लिखा हे. तथाहि क्षणिक बाह्य अनुमानसे इस भावनाके पीछे शून्यवादकी भावना हुईथी इस वास्ते यहांही लिखना पडा ॥ ५० ॥ यह आरोपभी ठीक नहीं हे क्योंकि पूर्वके बीजके विना मध्यमें नहीं होसकती ॥ ५१ ॥ ओर शून्यका साक्षी उससे भिन्न सत्य मान्ना

पडता हे ॥ एसाही स्वप्न सृष्टिमें मूल उपादान ओर साक्षी है अतः शून्य नहीं शून्यका साक्षी सत्य सिद्ध होता हे अतः यह पक्ष सत्यवादके अंतरगत लिखा हे (क्षणिकादि चारों अध्यारोप ओर उन चारोंका अपवाद आगे बौद्ध प्रसंगमें विस्तार सहित लिखा देखोगे) ॥ ४५ से ५१ तक ॥

[आ] अतः पुरुषनाना विभु असंग ओर अजाभोग्य ॥ ५२ ॥ [अप] भोक्ता होनेसे नहीं ॥ ५३ ॥

अ.–(जीव अणु नहीं. जीव विभु कर्ता नहीं, सक्रिय नहीं, सगुण नहीं ओर जीव क्षणिक वा शून्यरुप नहीं यह उपर सिद्ध किया गया हे). इसलिये जीव (स्वयंभू अपरिणामी) विभु चेतन असंग ओर संख्यासे अनंत हें ओर त्रिगुणात्मक प्रकृतिके परिणाम उनके भोग्य हें [जीव भोक्ता हे] एसे दो पदार्थ अनादि अनंत हें एसा मान्ना चाहिये ॥५२॥ जेसे चंबुक जड हे तथापि लोहेको सन्मुख आतेही खेंच लेता हे एसी उसकी शक्ति ओर योग्यता हे वेसेही प्रकृति, पुरुषके लिये स्वतंत्र परिणामको पाके भोग्या बनती हे. एसा मानना चाहिये ॥५२॥ यह आरोपभी ठीक नहीं हे क्योंकि विभु सम होनेसे भोक्ता (रुप अवस्थावाला) नहीं होसकता. ॥ ५३ ॥ इस अध्यारोप ओर उसके अपवादका विस्तार आगे सांख्य ओर योग प्रसंगमें वांचोगे ॥ ५३ ॥

(अ.) इसलिये जीव मध्यम सगुण होनेसे, ओर अपरिणामी अनादि होनेसे ॥ ५४ ॥ ओर सृष्टि अनादि कर्ताकी असिद्धि होनेसे ॥५५॥ [अप.] शरीर समान होनेसे नहीं ॥ ५६ ॥ ओर संयोगजमें अनादित्व न होनेसे ॥ ५७ ॥

अ.–[जीव अणु वा विभु सिद्ध नहीं होता ओर जड होनेसे प्रकृतिमें सृष्टि उत्पत्ति ओर कर्तृत्वका अभाव हे तथा भोग्या होनेसे परतंत्रभी हे एसा उपरोक्तमें भाव हे] इसलिये जीव मध्यम हे क्योंकि गुणवाला हे ओर अनादि मध्यम हे इसलिये अपरिणामी हे ॥५४॥ गुण चेतन नहीं, जीव चेतन गुणवाला हे ओर कर्ता भोक्ता हे इसलिये मध्यम कहा ओर मध्यमत्वके विना भोक्तृत्व नहीं होता इसलियेभी मध्यम कहा ओर अनादिस्वरुप परिणामी नहीं होता इसलिये अपरिणामी कहा. इसलिये जीव मध्यम अपरिणामी हे एसा मानना चाहिये ॥५४॥ ओर जगत कर्ताकी असिद्धि हे [विभु ईश्वर वा जड प्रकृति जगतका कर्ता नहीं होसकते] इसलिये सृष्टि [ग्रह उपग्रहादि] अनादिसे एसीही हे एसा मानना चाहिये ॥५५॥ यह अध्यारोप ठीक

नहीं हे क्योंकि जीव शरीर समान संकोच विकासवाला होता हे. अर्थात जो शरीरमें व्याप्त न हो तो तमाम शरीरमें चेतनत्व न हो. शरीर छोटा बडा होता हे इसलिये जीवभी उस अनुसार परिणामको पाता हे, परिणामी मध्यम अनादि नहीं होसकता किंतु जन्य-सादि होता हे, जो सादि होता हे वोह सांत होता हे इसलिये प्रस्तुत जीव नाशवान होनेसे यह जीव पक्ष ठीक नहीं ॥ ५६ ॥ पृथ्वी वगेरे संयोगजन्य देखते हें इसलिये स्वरुपसे सम अनादि नहीं मान सकते क्योंकि संयोगजमें अनादित्व असिद्ध हे. इसलिये सृष्टि अनादि यह आरोप अयुक्त हे ॥५७॥ इस कर्माध्यारोप वादका ओर उसके अपवादका विस्तार आगे मैमांसिक मतमें वांचोगे ॥ ५४ से ५७ ॥

[आ.] अतः निरवयव चैतन्य परिणामी ॥५८॥ ओर अनादि लोकमें उपचयापचयका प्रवाह ॥ ५९ ॥ [अप.] विनाशी ओर अनाधार होनेसे नहीं ॥ ६० ॥

अ.—इसलिये जीव निरवयव चेतन ओर परिणामी हे ॥ ५८ ॥ ओर कर्ताके विना अनादिसे जो स्वतः सिद्ध पृथ्वी आदि लोक हें उनमें जीवोंके कर्मानुसार उपचयापचय होता रहता हे एसा मानना चाहिये ॥ ५९ ॥ यह आरोप ठीक नहीं हे क्योंकि जो यथा उपाधि (शरीर) समान संकोच विकासवाला याने परिणामी होता हे वोह सावयव होनेसे उत्पत्ति नाशवाला होता हे किंवा प्रकृतिके सत्वरजतमका मिश्रण ओर जड तथा परिवर्तन पानेवाला होता हे. सारांश परिणामी जीव नाशवान होनेसे बंध मोक्षकी व्यवस्थाका अभाव रहनेसे यह आरोप ठीक नहीं हे ओर परिच्छिन्न उपचयापचय होने योग्य जो लोक किसी स्वयंभू आधारके विना नहीं ठेर सकते इस वास्ते सृष्टि किसी नियामक अधिष्ठानके आश्रित होनी चाहिये, उसका अस्विकार हे इसलियेभी यह भावना समीचीन नहीं हे-अलीक हे ॥ ६० ॥ इस अनेकांत अध्यारोप ओर उसके अपवादका विस्तार आगे जैन सिद्धांतमें वांचोगे ॥ ६० ॥

पुराण भावना.

(आ.) तथा प्रमाणकी अपूर्णता ॥६१॥ अतः भावना विश्वास मान्य वा अनेकांत ॥ ६२ ॥ [अप.] एसा नहीं, एकांतमें अन्यथाकी प्राप्तिसे ॥ ६३ ॥

अ.—उपरांत (उपरोक्त दोषोंके सिवाय) प्रमाणकी अपूर्णता हे. याने विषय

निर्णायक प्रमाणोंमें पूर्णता नहीं हे ॥ ६१ ॥ इसलिये जैसी जिसकी भावना ओर जैसा जिसका विश्वास हो वैसाही उसको मान लेना चाहिये अथवा एक इष्ट वस्तु अनेक प्रकारकी होती हे एसा मानके समाधान करलेना चाहिये ॥ ६२ ॥ यह भावनाध्यारोप (मिथ्राध्यारोप)भी ठीक नहीं हे क्योंकि सिद्ध एकांत विषे अनेकांतत्व (अन्यथा)की प्राप्ति होती हे, सत्से अन्यथा अयथार्थका ग्रहण हो जाता हे ॥ ६३ ॥

विवेचन—तत्वका निर्णय प्रमाणके आधीन नहीं हे क्योंकि प्रत्यक्षमेंभी अपूर्णता देखते हें. सर्वज्ञ योगियोंके मंतव्य कथनमेंभी विरोधी मंतव्य पक्ष देखते हें. तो फेर अनुमानादि वास्ते तो क्या कहा जावे. युक्तिभी एकसे एककी बलवान हे. तर्क मात्र प्रतिष्ठित नहीं ओर तर्क मात्र बहक जानेका स्थान हे. ज्ञाता ज्ञेय भिन्न होनेसे अपना किसीकोभी ज्ञान नहीं होसकता. विशेष क्या कहें जो उपयोगी नित्य ज्ञेय हें उनके स्वरुपकाभी यथावत ज्ञान नहीं होता अगम्य रहते हें जेसेके शद्ध, अग्नि, वायु, देश, काल, मन इत्यादि पदार्थ हें उनमेंभी मतभेद हे. जब फिलोसोफीमें बारीक उतरते हें तो कुछ हाथ नहीं पडता. ओर मानो के तत्वबोध होजावे तोभी जीवन व्यवहारतो जेसेका तेसा हे ओर अनिर्वचनीय शब्द कहके चुप हो रहते हें- (बस १९.३ में अ. २ प्रमाण प्रसंग ८९ । ११५ में विस्तार हे) फिलोसोफर लोक जो मानते हें वोहभी तो एक प्रकारकी सुधरी हुई भावना हे. इस प्रकार भावनामय अन्य हें.

इसलिये जेसी जिसकी भावना ओर विश्वास हो वेसाही उसे मान लेना चाहिये. परंतु एसे पु. दूसरेके संसर्ग वर्जित ओर स्वरक्षित होने चाहिये, तो जीवन शांतिसे होता हे. जहां कहीं बुद्धि विरोध देखें वा सुनें उसको ग्रहण नहीं करना चाहिये, नहीं तो भावना विश्वास न रहेगा. जहां युक्ति पूर्वक माना जाय उसमेंभी फेर भावना विश्वासकोही आदर देना चाहिये क्योंकि अयुक्त सयुक्त दोनों परवश हें. जेसे संस्कार वेठ जावें उसके अनुसार मान्यता होजाती हे. विशेषत:आद्य संस्कार बलवान होते हें. प्राचीन स्वाभाविक विश्वासात्मिक भावनाका नाम **पुराण भावना** हे ओर युक्तिके अलंकार वाली नवीन भावना हे परंतु दोनों हें तो भावनाही. पुराण भावनामें कर्तव्य विषे कर्तव्य (धर्म–फर्ज–डयूटी) भाव होता हे. उस भावना विश्वासको लोक प्रचारार्थ पारता अलंकार रस रंगमें रंगा जाता हे [चाशनी दीजाती हे] तो सुखेन ग्रहण होती हे.

चलती आइ भावनाके विशेष भागका संक्षेपमें यह वर्णन हे—ब्रह्म शक्ति यह

दो सिद्धांत हें. जीव उनसे भिन्न नहीं. स्मार्त मार्ग [सर्व संग्रह] उसका प्रभाव हे.[१] यथा कर्म जीवका आवागमन हे. इष्टकी भगति ओर उसके विश्वासपर जीवन होता हे. इष्टकी कृपा यही श्रेयका साधन हे. इष्टके लोककी प्राप्ति, इष्टकी समीपता, इष्टमें जुडना वा इष्ट जेसा होजाना यह ४ मुख्य श्रेय हें. तर्क ओर अविश्वासको अवसर नहीं मिलता. मुख्य एक तत्त्ववाद हे. क्योंकि शक्ति शक्तिमान यह दोनों अभिन्न होते हें कभीभी जुदा नहीं होते. सगुण निर्गुण, साकार निराकारका भेद नहीं अ-भेद हे. जीव ईश्वर मायाकाभी समेद अभेद हे. क्योंकि भेद, द्रष्टि भेदसे हे. तेसेही तदंगरगत अनेक देव हें उनकाभी भेद नहीं, क्योंकि वे एककेही रुप हें, द्रष्टि अधिकार भेदसे जुदा जुदा कहे जाते हें. इसी प्रकार सृष्टि उत्पत्ति आदि क्रम [शेली] मेंभी भेद नहीं हे. ओर उपास्यमेंभी भेद नहीं हे. क्योंकि एक रुपही हें. जेसेके ब्रह्म ओर शक्ति के प्रसंगसे संज्ञाका भेद हे. ब्रह्मा, विश्नु, शिव, शक्ति, गणेश, सविता इत्यादि एककीही संज्ञा हे परंतु अधिकार ओर रुचीके भेदसे भेद रुपमें जुदा जुदा कथन किये जाते हें. वस्तुतः अभेद हे एक हें.

शब्दभी यथा भावना मान्य हे. अवतारादि [सु. ८१ में वांचोगे] भी भावनासे मान्य हें अन्यथा नहीं. नीती (सर्व तंत्र, लोक, राज्य, जाति ओर आश्र-मकी नीति) सदाचार यथा देशकाल सेवनीय हें. सबको सब नहीं.

उपरके गुह्य सूक्ष्म रहस्यमें उत्तरोत्तर विकार ओर तिरस्कार होने लगा उस अनुसार ग्रंथोंमें क्षेपक भाग बढा, यही संप्रदाय, पंथ, धर्म द्वेष ओर पक्षका हेतु हे. ओर कालांतरमें एसा होना अनिवार्य हे. तथापि परस्परमें त्रिस्कार हानीकारक हे. जो एक दूसरेमें अत्रिस्कार हो ओर स्वार्थ बाजी न हो तो हानीकारक नहीं. भावना विश्वाससे जीवन शांत ओर उत्तम होता हे. [विभूषक मतमें वांचोगे] [शं.] कोई जडवादकी भावना करे तो हानी होगी (उ.) यदि भावनाही होतो हानी न होगी क्योंकि सच्ची भावनाका परिणाम शुद्धि ओर विवेकका उदय होता हे. अथवा जो जो माना जाता हे वोह ठीक हे अर्थात जीव जडभी हे, चेतनभी हे, नहींभी हे, अणुरुपभी हे, दूसरा विभूरुपभी हे, कोई मध्यमरुपभी हे, शब्द अणुरुपभी हे. कोई गुण कोई वायुकी लहेररुपभी हे. कोई ईश्वर साकार हे ओर कोई निराकार हे, कोई

[१] अवतार, मूर्ति पुजा, श्राद्ध, देव, भूत, तीर्थ, वरुणी, मंत्र, दूसरे मतकी उत्तम वस्त इत्यादिका यथा अधिकार ग्रहण अग्रहण.

साकार निराकार हे. तद्वत मोक्षभी नाना प्रकारकी हैं इस प्रकार अनेकांत माननेसे विवाद नहीं होता ओर मनको शांति होती हे. ॥ ६२ ॥

[**अपवाद**]—भावना मात्रसे एकांतमें अनेकांतकी प्राप्ति होजाती हे—यथा साकार निराकार, एक अनेकरुप, जीव अणुविभुवा, पुनर्जन्म न पुनर्जन्म, ईश्वरेच्छासे होना अपने प्रयत्नसे होना, मोक्ष कर्म उपासना ईश्वर कृपा वा ज्ञानसे, मोक्षमें दुःखाभाव परमानंद प्राप्ति, सद्असद असदसद, मूर्तिपूजन ओर खंडन, साकार ओर निराकारभी इत्यादि रुपमें अनेकांतता आती हे. उससे व्यवहार परमार्थ ओर विश्वासमें हानी होजाती हे. तथा अनेकांतकी असिद्धिभी हे क्योंकि एकांत [जो हे सो हे, जेसा हे वेसा हेही] स्वतःसिद्ध हे. भावनासे वोह नहीं बदलता. यथा भावना फल हो, एसा नियमभी नहीं देख पडता. सरदी गरमीका यथा प्रकृति समान फल देखते हैं. दो शत्रु एक दूसरेका अनिष्ट इच्छते हैं परंतु उस अनुसार नहीं होसकता. इसी प्रकार तिसतिसमें उपर कहे अनुसार दोष आते हैं. इसी प्रकार त्रिवादमेंभी, जेसाके कहा गया ओर आगे वांचोगे. ॥ ६३ ॥

[आ.] इसलिये अनिश्चित ॥ ६४ ॥ वा जिसको जैसा उसको वैसा ॥ ६५ ॥ किंवा परहानी रहित यथा लाभ मान्य ॥ ६६ ॥ (अप.) सर्वांशमें एसा नहीं, निश्चितभी ओर उपयोग दर्शनसे ॥ ६७ ॥

अः—इस वास्ते वस्तुतः क्या हे, यह निश्चय नहीं होनेसे सर्व अनिश्चित हे एसा मान्ना चाहिये ॥ ६४ ॥ अथवा जो जिसको जेसा जान पडे वोह उसके वास्ते वेसाही हे, एसा मान्ना चाहिये ॥ ६५ ॥ अथवा जिसमें दूसरेकी हानी न होती हो ओर जिसमें स्वपरको लाभ मिलताहो सो वेसाही मान्ना चाहिये. (क्योंकि थोडाभी सुख मिले उसको न त्यागना चाहिये) ॥ ६६ ॥ (उक्त तीनों जध्यारोपका समावेश अनिश्चितमें होजाता हे) उपरोक्त मंतव्य सर्व अंशमे ठीक नहीं हे क्योंकि अव्याप्तिहे अर्थात बहुतसे विषय निश्चितभी ओर उनका उपयोग तथा एकांत फल देखते हैं ॥ ६७ ॥

विवेचन—पुराण भावनामें कहे अनुसार कुछ निर्णय नहीं किंतु मतभेद हैं. अमूर्त्त ओर परोक्ष पदार्थ (ईश्वरादि) का ज्ञान मनुष्य नहीं कर सकता. बाह्य उपयोमी पदार्थोंकाभी ज्ञान नहीं होता किंतु जेसे इंद्रिय ओर मगज हें वेसा बाह्य पदार्थोंके संबंधसे मगजका परिणाम होजाता हे—ईमप्रेशन होता हे. किंवा मनका परिणाम होजाता हे. सारांश बाह्य वस्तुका स्वरुप नहीं जाना जाता. अब वोह

इम्प्रेशन किसीको केसा किसीको केसा होता हे अर्थात एकही वस्तुकिसीको प्रिय [अनुकुल] किसीको अप्रिय [प्रतिकूल] किसीको वही कभी अनुकूल कभी प्रतिकूल जान पडती हे इसलिये वस्तुका स्वरुप अनिश्चित हे. हमको एसा मालूम होता हे, इसके सिवाय कुछ नहीं कह सकते. जब यूं हे तो **धर्म आचार** ओर **नीतिके** संबंधमेंभी एसाही जान लेना चाहिये. किसको धर्म, किसको अधर्म, किसको आचार, किसको अनाचार, किसको नीति, किसको अनीति, कहना वा मान्ना यह मुश्किल हे. संक्षेपमें अनिश्चित कहना पडता हे. परंतु लाभ हानी दुःख सुख तो होता हे. इसलिये जिसको जिससे सुख हो वोह उसकेलिये ठीक जिससे जिसको दुःख हो वोह उसकेलिये निषद्ध हे. परंतु परके वास्ते एसाही हे, एसा नहीं मानना चाहिये. इसका सार यह निकलता हे के जिससे अन्यको दुःख न हो ओर अपनेको परको लाभ हो वोहही मान्ना चाहिये [विशेष आगे वांचोगे].

अपवाद—उक्तमंतव्य सर्व अंशमें मान्य नहीं होसकता क्योंकि बहुतसी एसी बाते हें कि जो फिकस हें ओर उनका सबकेलिये परिणाम समान होता हे. यथा अग्निसे जलना, पानीसे प्यास बुझना, अमुक खानेसे तृप्ति होना. असत्य, चोरी, खूनसे हानी होना, व्यभिचारसे अशक्त ओर रोगी होना, द्रोह द्वेषसे भयमें पडना इत्यादि.

आकाश, आत्मा, विजली, आकर्षण, स्टीम, सूक्ष्म शरीर यह सब अमूर्त वा परोक्ष पदार्थ हें उनका उपयोग मनुष्य करता हे. भोजन दवाई शस्त्रका यथेच्छा उपयोग लेता हे. बेलको वृक्षरुपमें ओर कनेर, गुलाबादिकारुप बदल लेता हे. मकानादि बनाके यथेच्छा उपयोग लेता हे इत्यादि उदाहरणोंसे स्पष्ट होताहे के बाह्य पदार्थोंके कुछ गुण स्वभाव जानता हे. जो एसा न होता तो यथेच्छा उपयोग न होता. सारांश मगज वा मनका इम्प्रेशन मात्र नहीं हे (विशेष बस. सु. ९९।१०० ओर अ. २. ४५१ में विस्तार हे.) इसी प्रकार धर्म आचार नीति प्रसंगमें जान लेना चाहिये क्योंकि सत्यादि कितनीक बातें सर्वतंत्र होनेसे निश्चित हें ओर उनका फल होता हे. इस रीतिसे यथा मनेंद्रिय इम्प्रेशन वा जिसको जेसा उसको वेसा, यह मंतव्य सर्वांशमें ठीक नहीं. जिसमें दूसरेकी हानी नहीं ओर स्वपरका लाभ हो यह मंतव्य ठीकही हे. (निश्चितरुप हुवा). परंतु अपनी द्रष्टिसे परका लाभ हानी मान्ना ठीक नहीं किंतु समष्टि वा अमुक परकी द्रष्टिभी लेना चाहियें. एकसे एकको लाभ दूसरेको हानी होती हे. इस रीतिसेयह आरोप अनिश्चितमेंभी जाता हे.

यह स्पष्ट हे के जीव सर्वज्ञ नहीं तो सर्वथा अल्पज्ञभी नहीं हे इसलिये तमाम वस्तुओंका यथावत स्वरुप ओर उपयोग नहीं जान सकता तोभी कुछ जानता ओर उपयोग लेता हे अतः सर्वथा अनिश्चितवाद नहीं. इसी रीतिसे जिनमें योग्यता हो वोह यथायोग्यता ईश्वरादि प्रसंगमें पड सकते हैं. परंतु जो अगम्य विषय हैं वे उनकी मान्यताके अनुसारही हैं, एसा नहीं कहा जासकता. तथापि जो गम्यागम्य हैं (यथा आत्मा प्रकृति इत्यादि) उनके संबंधमें सर्वथा अनिश्चितवादभी नहीं माना जाता. मतभेद यह अनिश्चितका पूर्णलिंग नहीं हे क्योंकि साधारण ज्ञान वालेभी तत्वविद्या लिख डालते हैं, किंवा स्वमताभिमानी दूसरोंका निषेध करते हैं, उससे मुख्य वस्तुमें बाध नहीं आता. किंवा किसीने वस्तुका अमुक अंश जाना अमुक न जाना दूसरेने पहेलेके ज्ञातको न जाना अज्ञातको जाना इसलिये मतभेद जान पडता हे. इत्यादि.

इस वास्ते सर्वथा अनिश्चित भावना त्याज्य रहती हे क्योंकि अस्तित्व हे, संशय हानीप्रद हे, संसारमें उपयोग देखते हैं. जो अनिश्चितही हो तो प्रवृत्ति ओर जीवन तथा फल न हो. भोजन, संतान सेवा, प्रजा प्रबंध, भविष्य सुख साधन इत्यादि व्यवहार न हो. अलबत्ते अनिश्चित विषयका यथा शक्ति निर्णय कर्तव्य हे. यथा पूर्वस्थ प्रजाने पुनर्जन्म निश्चित किया सो पछमी प्रजाकोभी निर्णय करना चाहिये. जो एसा हो तो **पूर्व पच्छमका विनिमय होजाय,** कुछका कुछ परिणाम निकले. व्यवहार, राज्य, सोसाईटी के वर्तनमें अंतर पड जाय. इसी प्रकार अन्य ज्ञेय संबंधमें ज्ञातव्य हे. हां, जो सर्वथा अगम्य हैं उनमें पडनेकी आवश्यकता नहीं. तथापि जो परोक्षमें भावना हो तो वोहभी सयुक्त होनी चाहिये. तद्वत अपरोक्षमेंभी. ॥ ६७ ॥ सो आगे कहते हैं.

[आ.] **अतः सयुक्त भावना ॥६८॥ यथा यह एक शक्तिका रुपांतर ॥ ६८ ॥ वा उसकी गतिके भेदसे अवभास ॥ ७० ॥ किंवा एक शक्ति ओर असंख्य द्रव्य ॥ ७१ ॥ उनके संबंधसे शक्तिका रुपांतर ॥ ७२ ॥ वा संबंध जन्य गतिके भेदसे अवभास ॥ ७३ ॥ वा असंख्य द्रव्यप्रति शक्ति स्वतंत्र ज्ञान इच्छावाली ओर परिणामी ॥ ७४ ॥ (अप.) एकका परिणाम नहीं विरोध दर्शनसे ॥ ७५ ॥ अन्यथा उवभास नहीं गतिमें वैधर्म्य न होनेसे. ॥ ७६ ॥ अनेक स्वतंत्र तो प्रबंधाभाव ॥ ७७ ॥ यदि परतंत्र तो**

नाम भेद ॥ ७८ ॥ तद्वत् अन्य प्रसंगमेंभी विवेक ॥ ७९ ॥ कल्पितमेंभी लाभ दर्शनसे ॥ ८० ॥

अ.—इसलिये सयुक्त अध्यारोप (भावना) कर्तव्य हे ॥ ६८ ॥ जेसेके (क) यह जडचेतनात्मक जगत(त्रिपुटी) किसी एक शक्ति [ब्रह्म वा माया वा अन्य] का रुपांतर हे ॥ ६९ ॥(ख)किंवा उस शक्तिमें गति होती रहती हें उन गतिओंके संख्या मापके भेदसे नाना नामरुप भासते हें, वस्तुतः शक्तिकी गतिसे अन्य नहीं हें. ॥ ७० ॥ [ग] किंवा असंख्य द्रव्य (परमाणु) हें ओर एक शक्ति (ब्रह्म वा अन्य) हे ॥ ७१ ॥ उनके संबंधमे शक्तिका रुपांतर होता हे सो यह दृश्य जगत हे ॥ ७२ ॥ (घ) वातो रुपांतर नहीं किंतु संबंधमे गति होनेपर नं. ७० अनुसार नामरुप भासते हें ॥ ७३ ॥ (ङ०) किंवा असंख्य द्रव्य (ईश्वर परमाणु आदि) हें द्रव्य प्रति शक्ति होती हे वोह शक्ति स्वतंत्र इच्छावाली ओर परिणामिनि होती हे. इस समूहसे जगत बनता हे ॥ ७४ ॥ यह पांचों अध्यारोप ठीक नहीं हें क्योंकि जो तत्वतः एक वस्तु हो उसका परिणाम नहीं होता ओर यह जगत एकका परिणाम नहीं जान पडता क्योंकि नाना विरोधी परिणाम वा वस्तु देखते हें. एकके अनेक वा अनेक विरोधीरुप वा विरुद्ध धर्म नहीं होते ॥ ७५ ॥ गतिओंकी संख्यामें आभास होना मानें तो गति सब समान होती हें उनमें वैधर्म्य नहीं होता[१] इसलिये नाना रुपका अवभास असंभव ॥ ७६ ॥ तथा अनहुई वस्तु प्रतीत नहीं होती इसलिये उक्त गति जन्य प्रतीति नहीं होसकती. या तो भ्रम-अध्यासरुप मानें तो अध्यासकी सामग्री तद्भिन्न होनी चाहिये परंतु उसका स्विकार नहीं हे. ॥ ७६ ॥ नं. ७४ अनुसार जो अनेक स्वतंत्र शक्ति मानें तो जगत प्रबंध असंभव ॥ ७७ ॥ ओर जो उनको परतंत्र मानें तो पूर्वोक्त ब्रह्म माया वा त्रिवादसे इतर मंतव्य नहीं किंतु परिभाषाका भेद मात्र हे. उनका अपवाद वहांही लिखा हे वेसेही यहां जान लेना चाहिये ॥ ७८ ॥ इस प्रकार पांचो शक्ति अध्यारोप ठीक नहीं जान पडते. (६८ से. ७८ तक).

इसी प्रकार अन्य प्रसंगमेंभी विवेक कर्तव्य हे ॥ ७९ ॥ क्योंकि कल्पितमेंभी लाभ देखते हें. ॥ ८० ॥ अर्थात कल्पितका शब्द—कथनमात्रसे निषेध नहीं करना चाहिये किंतु उपयोग, लाभ, हानी, हित, अहित ओर सयुक्त अयुक्तभी देखना चाहिये. ॥ ८० ॥ आगे विवेचन हे.

[१] २ । २२५ में इसका वर्णन हे.

(क) शक्तिका रुपांतर—आकाशमें परिच्छिन्न शक्ति हे उससे इतर ईश्वर आत्मा वा अनात्मा कोई वस्तु नहीं हे. वही अंतर सृष्टि (चित्तादि) ओर बाह्य सृष्टि सूर्य चंद्रादिरुप होती हे उसीकी गति आकर्षण शक्ति हे उन द्रव्योंमें प्रकाश, गरमी, विजलीरसादि गुण होते हें. इसप्रकार शरीरादि बनते हें फेर सामाजिक व्यवहार चलता हे फेर अध्यात्मक भाव चलता हे. संक्षेपमें सब उसशक्ति गतिका रुपांतर हे.

(क) अपवाद—उस शक्तिकी गतिका यदि आरंभ स्थिति लय हो तो उसमें निमित्त नहीं बता सकते. यदि आदअंत नहीं तो सूर्यादिकी उत्पति स्थिति असंभव किंतु जलदी बदलना चाहिये. वे परिणाम इच्छासे हों तो हेतु होना चाहिये जो अनिच्छत याने स्वभावतः तो सनियम सृष्टि व्यवहार न होना चाहिये. सावयवके विना एक अनेकरुप वा विरुद्धरुप परिणाम पानेकी कोई व्याप्ति नहीं मिलती. कल्पना मात्रसे नहीं माना जाता. एकही वस्तुकी विरुद्ध देशमें गति नहीं होसकती. [विशेष आगे शुद्धाद्वैतमें].

(ख) जो प्रकार क में कहा वोह शक्तिका रुपांतर नहीं किंतु उसकी अमुक परिमाण ओर संख्यामें गति होतो अमुक प्रकारका द्रव्यगुण आकार प्रकार मालूम हो, एसा भाव हे. नहींके शक्तिका रुपांतर क्योंकि वोह स्वयं एक हे.

[ख] अपवाद—आधारके विना गतिवान सनियम गति नहीं करसकता. परंतु आधारका अस्वीकार हे. जेसे ईथरकी अमुक परिमाणमें गति हो तब आसमानी रंग जान पडे. वोह इथरका स्वरुप वा परिणाम नहीं किंतु गतिके प्रभावसे एसा ज्ञान पडता हे. एसे जगत (द्रव्य गुणादि) मानें तो अर्थ शून्य ठेरे. भ्रममूलक हुये, अध्यास वा भ्रमकी सामग्री होनी चाहिये परंतु सो याने अज्ञान, ज्ञान, इंद्रिय, मनादि सिद्ध नहीं होते क्योंकि वेभी गतिके प्रभाव ठेरते हें. सब गति [उपर, नीचे, इधर, उधर, मंद, तित्र] में गतिपना समान हे उससे पदार्थांतरकी प्रतीति अशक्य हे किंतु गतिओं करके पदार्थका रुपांतर होना संभव होता हे, तहांभी गतिसे अनेक रुप तबही होंगे जबके गतिवानमें सावयत्व होगा. एकसे अनेक (द्रष्टा द्रश्य, ज्ञाता ज्ञेय, तम प्रकाश, गरमी, शीत इत्यादि) नहीं होसकते. तथा क समान आद अंत, सेच्छा अनिच्छाका उत्तर नहीं होता.

(ग-घ)का अध्यारोप, अपवाद क, ख के अंतरगत होजाता हे.

(ङ) असंख्य द्रव्य, स्वतंत्र ज्ञान इच्छा शक्तिवाले हें ओर वोह शक्ति प-

रिणामी हे इस अध्यारोपका स्वरुप लीब्नीज फिलोसोफरसे मिलता हुवा हे (आगे योरोपीयन दर्श नं. ६१ में वांचोगे) उसका अपवाद लाकने किया हे.

यहां रुपांतरसे संक्षेपमें यह हे कि इस अध्यारोपमें जो शक्तियें स्वतंत्र मानी हें वे एक दूसरेका अनुकरण करतीं हें, उत्तम मध्यम मानी हें अंतमें एक ईश्वर-नामा द्रव्यकी शक्ति मानी हे उसे सबका केंद्र कहा हे उसके न्याय नियमसे संसार चल रहा हे, एसा माना हे. इससे सर्व शक्तियोंमें परतंत्रता सिद्ध होजाती हे. ईश्वर चेतन ओर परमाणु द्रव्य तथा जीव द्रव्य यह तीन याने त्रिवाद समान सिद्ध होजाता हे. अंतर इतनाही हे के परमाणुओंमेंभी ज्ञान इच्छा शक्ति मानली हे. इसलिये प्रकृत्ति पुरुषवाद होजाता हे. सारांश संज्ञा बदल मात्र अंतर हे. त्रिवाद ओर सांख्यके अपवादवत इसका अपवाद हे. शरीरका शक्ति केंद्र आत्मा हे. जब यूं हे तो शरीर नाश पीछे आत्म शक्ति द्रव्य विना रहना असंभव हे. इत्यादि कारणसे यह अध्यारोप कल्पना मात्र माना गया हे ॥ ७८ ॥

जिस प्रकार युक्तिवादीके अनुसार पांचों कल्पना अयुक्त ठेरी वेसे सर्वत्र विवेक किये विना स्वीकार नहीं करना चाहिये. ॥ ७९ ॥ क्योंकि बहुतसी एसी वातेंभी हें के जो कल्पित हें ओर वे उपयोगी लाभकारी हें (तो फेर अकल्पित सिद्धके लिये तो क्या कहना हे). इसलिये लाभ हानी, हित अहित, उपयोग अनुपयोग ओर युक्तअयुक्त सबहीका विचार कर्तव्य होता हे. (विशेष अ. २ कल्पना अधिकरण में हे.) ॥ ८० ॥

अब आगे इस ८० सूत्रके उदाहरणमें १६ विषय लिखते हें उनमें वेभी विषय आवेंगे जो उक्त अध्यारोपमें कइ जघे आते हें ओर उनका अपवाद नहीं हुवा हे.

यथा अवतारादि प्रकरणमें ॥ ८१ ॥

अ.—जेसेके १ ईश्वर अवतार. २ ईश्वरकी मूर्तिकी पूजा. ३ देव मूर्ति पूजा. ४ दत्त पदार्थका बलिदान. ५ अदत्तका बलिदान. ६ भक्ति. ७ उपासना. ८ सालोक्यादि ४ मुक्ति. ९ पितृ. १० देव. ११ मंत्रानुष्ठान. १२ सिद्धि. १३ तीर्थ. १४ दूत. १५ वर्ण व्यवस्था. १६ ग्रह गतिमान. इन १६ विषयोंके अध्यारोप अपवादमें

(नोट ८१) अवतारादि १६ विषयका विस्तार सहित वर्णन भ्रमनाशकके पूर्वार्द्ध ओर मूर्ति परीक्षामें प्रसिद्ध हे तथा मानसिक योगके उत्तरार्द्धमें लिखा गया हे. यहां तो संज्ञा मात्र जनाते हें.

विवेक हे. क्योंकि इसमेंसे कितनीही बातें कल्पित (जीव घडित) पाते हैं तोभी मानव मंडलको यथा देशकाल स्थिति उपयोगी हैं. ॥ ८५ ॥

अब आगे इन १६ बातोंका १०० सूत्र (८२ से १८१ तक) में अध्यारोप अपवाद हे ॥[1]

अथ अवतारादि प्रकरण [सू. ८२ से १८१ तक].

ब्रह्मका अवतार नहीं ॥ ८२ ॥ असीम होनेसे ॥ ८३ ॥ शरीर दोषकी आपत्तिसे ॥ ८४ ॥ संकोच असंभव होनेसे ॥ ८५ ॥ असमर्थताकी सिद्धिसे ॥ ८६ ॥ और मतभेद होनेसेभी ॥ ८७ ॥ परिच्छिन्नमें ईश्वरत्वका अभाव ॥ ८८ ॥ अतः मूर्तिपूजा इष्ट नहीं ॥ ८९ ॥ न प्रतिनिधि रुपा कल्पित होनेसे ॥ ९० ॥ देवोंकीभी ॥ ९१ ॥ उनकी शक्ति न आसकनेसे ॥ ९२ ॥ और समकाल अनेक स्थानी न होसकनेसे ॥ ९३ ॥ असाधारणकी देव अवतार संज्ञा ॥ ९४ ॥ उनकी महिमा लाभकारी ॥ ९५ ॥ उनके स्मरणार्थ कल्पिताकारभी ॥ ९६ ॥ उससे उनके अनुकरणार्थ अभ्यास ॥ ९७ ॥ न प्रचलित व्यवहारवत् ॥ ९८ ॥

दत्तका बलिदान नहीं ॥ ९९ ॥ अदत्तकाभी ॥ १०० ॥ अधिकारकी समानतासे ॥ १०१ ॥ और दोषापत्तिसे ॥ १०२ ॥ देशकाल स्थितिवश हिंसापदि ॥ १०३ ॥ अन्यथा निषेध ॥ १०४ ॥

स्वकृतकी भक्ति उपयोगी नहीं ॥१०५॥ योग्यता दत्त होनेसे ॥१०६॥ द्वैत भावमेंही भक्ति ॥१०७॥ भक्ति उपासनासे ईश्वर अनुकूल नहीं ॥१०८॥ मान प्रशंसाकी अनपेक्षासे ॥ १०९ ॥ और न्यायी होनेसे ॥ ११० ॥ स्व-उन्नति अर्थ कर्तव्य ॥ १११ ॥

सालोक्यादि तीनकी अपेक्षा नहीं ॥ ११२ ॥ सबको नित्य प्राप्त होनेसे ॥ ११३ ॥ सारुप्यकी असिद्धि, परिछिन्न विभु नहोनेसे ॥११४॥ और विरुद्ध धर्म होनेसे ॥ ११५ ॥ लटभ्रंगमें बीजकी समानता ॥११६॥ दो एक न होनेसे भेद. ॥ ११७ ॥ सद्भावमेंभी अव्याप्ति ॥ ११८ ॥ सांत

[1] यद्यपि अवतारादि १६ विषय फिलोसोफीके विषय नहीं हैं इसलिये सू. ८१ की टीप्पणिमें रखे गयेथे तथापि आरोपमें इनकी कल्पना हे तथा टिपणी सूत्रका क्रम नहीं हे इसलिये यह प्रकरण सूत्रांकमें जोडा गया हे. वस्तुतः टीपण वा उदाहरणरुप जान्ना चाहिये.

साधनका फल सांत होनेसे ॥ ११९ ॥ वैभव भावमें प्रकृतिका संबंध. ॥ १२० ॥ संकल्पजन्य भोग होनेसे ॥ १२१ ॥ भोग्यानंद स्वरुप ईश्वर नहीं ॥ १२२ ॥ अभोग्य होनेसे ॥ १२३ ॥ अभोग्य भावमें आवृत्ति ॥ १२४ ॥ निष्फलताकी आपत्तिसे ॥ १२५ ॥ एवं अन्य प्रसगमेंभी ॥ १२६ ॥ यदि ईश्वर परिच्छिन्न तो सालोक्यादि अनिष्ट ॥ १२७ ॥ विनाशी होनेसे ॥ १२८ ॥ तत् कल्पना रोचका ॥ १२९ ॥ वस्तुत्व न होनेसे ॥ १३० ॥ वा क्षणिक अवस्था मात्र ॥ १३१ ॥

भावना मान्य पित्रादि असिद्ध ॥ १३२ ॥ पुनर्जन्मकी प्राप्तिसे ॥ १३३ ॥ अतः श्राद्धादिकी अपेक्षा नहीं ॥ १३४ ॥ तदुद्देशित उसको अप्राप्त ॥ १३५ ॥ अन्यथा अकृतके फलका स्वीकार ॥ १३६ ॥ यदि क्षणिक तो अनुपयोगी ॥ १३७ ॥ संबंध न होनेसे ॥ १३८ ॥ स्मरण उपदेश ग्रहणार्थ कर्तव्य ॥ १३९ ॥ वस्तुतः विद्यमान वास्तेही ॥ १४० ॥ उपकारक होनेसे ॥ १४१ ॥ तद्वत् नाना देव भावनाभी ॥ १४२ ॥ देवत्व अनादि अनंत न होनेसे ॥ १४३ ॥ कर्म फलकी प्राप्तिसे ॥ १४४ ॥ और भोग पश्चात जन्म पानेसे ॥ १४५ ॥ अतः विद्यमान देव सेवनीय ॥ १४६ ॥

मंत्रानुष्ठान कल्पना मात्र ॥ १४७ ॥ फल अदर्शनसे ॥ १४८ ॥ कारियता और कर्ताके फलका भेद होनेसे ॥ १४९ ॥ दान उपदेश और विचारार्थ कर्तव्य ॥ १५० ॥ न वर्तमानवत् फल द्रष्टि ॥ १५१ ॥

सिद्धि मानसिक शक्तिका प्रभाव ॥ १५२ ॥ तैजस विद्याकी परीक्षासे ॥ १५३ ॥ योगसे शक्ति वृद्धि ॥ १५४ ॥ उससे उपयोगकी ॥ १५५ ॥ मंत्र जंत्र विश्वास रक्षार्थ निमित्त मात्र ॥ १५६ ॥ उभयका यदि तैजसानुकूल तो देवतादिका क्वचित संबंध ॥ १५७ ॥ अन्यथा नहीं ॥ १५८ ॥ परीक्षा विना सिद्धि अमान्य ॥ १५९ ॥

तीर्थसे मोक्ष नहीं ॥ १६० ॥ अन्योदक समान होनेसे ॥ १६१ ॥ और सेवकवत् पराधीन दर्शनसे ॥ १६२ ॥ उसमें देशाटन आशय ॥ १६३ ॥ लाभप्रद होनेसे ॥ १६४ ॥ न वर्त्तमानवत् हानीप्रद उद्देश ॥ १६५ ॥

अवतारवत् दूतकीभी अपेक्षा नहीं ॥ १६६ ॥ व्यापक शक्तिमत्त होनेसे ॥ १६७ ॥ आज्ञा भंगकी शिक्षा न मिलनेसे ॥ १६८ ॥ और दूतोंमें मतभेद देखनेसे ॥ १६९ ॥ महिमा अर्थ दूत रोचक बचन ॥ १७० ॥ यथा

देशकाल स्थिति बोधक होनेसे ॥ १७१ ॥ न कुदेव' उत्पत्ति ॥ १७२ ॥ दोषापत्तिसे ॥ १७३ ॥

वर्ण भेद बुद्धिकी कल्पना ॥ १७४ ॥ देशकाल स्थितिके आधीन होनेसे ॥ १७५ ॥ गुण कर्म स्वभावसे उपयोग ॥ १७६ ॥ वीर्यपर मान्यताभी परंपरा 'कुलीनताके प्रभावसे ॥ १७७ ॥ सोभी गुण कर्म स्वभावका परिणाम ॥ १७८ ॥ अत एव विपरीत दशामें मान्य नहीं ॥ १७९ ॥

परिच्छिन्न गति मतही विद्यासे ॥१८०॥ सूर्य ध्रु आदिवत् ॥ १८१ ॥

॥ इति अवतारादि प्रकरण ॥

सूत्र ८२ से १८१ तककी वृत्ति.

ईश्वरका अवतार (जन्म, गोचर रुपमें होना) नहीं होता ॥ ८२ ॥ क्योंकि वोह असीम (अपरिच्छिन्न–निराकार) हे अवतार परिच्छिन्न होता हे ॥ ८३ ॥ ओर जो उसका अवतार याने शरीर धारण करना मानें तो शरीर धारी समान दोषकी उसमें आपत्ति होगी परंतु ईश्वर तो उन दोषों (रागादि दोष) से रहित होता हे ॥ ८४ ॥ ईश्वर असीम निरवयय हे. उसका संकोच होके परिच्छिन्न हो तब अवतार हो. परंतु जेसे आकाशका तकिया नहीं होसकता वेसे–ईश्वरके स्वरुपमें संकोच विकास नहीं होसकता, इसलिये उसका अवतार नहीं होता ॥ ८५ ॥ ओरभी जो अवतार धरना मानें तो उसमें अशक्तिपना सिद्ध होजाता हे ॥ ८६ ॥ क्योंकि अवतार लिये विना अवतारवाले कार्य करनेको समर्थ हे तो अवतार क्यों ले. परंतु अवतार लिये विना वे काम नहीं होंगे तब लेना मानें तो यही उसमें असमर्थपना मान्ना होगा. रावण जेसे बलवानको अवतार लिये विना पेदा करसकता हे तो क्या उसके मारने वास्ते शस्त्रधारी होनेकी अपेक्षा हे ? कभी नहीं. सब अवतार शस्त्रधारी हुये हें तो क्या ईश्वर असमर्थ था ? उसको दूसरोंका भय था ? कभी नहीं. अवतारोंकी परस्परमें लडाईभी हुई हें एसा ग्रंथोंमें लिखा हे तो क्या ईश्वर अनेक हें ? ईश्वरके टुकडे होते हें ? वे अनेक ईश्वर अभिमानी द्वेषी थे ? सब अवतारियोंको स्त्रिकी अपेक्षा रही हे तो क्या ईश्वरकामी था ? कभी नहीं. सारांश ईश्वरका अवतार होनाही नहीं बनता. ओरभी आर्यावर्तमेंही अवतार हुये तो क्या दूसरे खंडोंकी प्रजासे ईश्वर डरता था वा उनके सुधारने-

---

'शेतान-अहरमन. 'कुलमें उत्तम निकृष्टका अभ्यास होता रहता चलता हे. रुढमें उत्तम कुल.

रक्षा करनेमें ईश्वरको विरोध वा वैरभाव था ? नहीं. तो फेर ईश्वरके अवतारकी कल्पना करना, ईश्वरमें दोषका आरोपन वा उसकी निंदा करना हे. ॥ ८६ ॥ कोई ईश्वरका अवतार होना मानता हे, कोई नहीं मानता याने निषेध करता हे तथा कोई किसीको, कोई उससे अन्यको अवतार मानता हे, पहेलेका नहीं इत्यादि मत-भेदभी हे इससेभी ईश्वरका अवतार न होना सिद्ध होता हे ॥ ८७ ॥ जो अवतार मनाने वास्ते ईश्वरको एक देश निवासी याने परिच्छिन्न मान लें तो उसमें सर्वज्ञत्व सर्व शक्तिमानत्वका अभाव होगा. एसा स्वीकारना पडता हे क्योंकि परिच्छिन्नमें एसी योग्यता नहीं होती. इत्यादि कारणोंसे ईश्वरका अवतार धारण करना याने मूर्तिमान होना सिद्ध नहीं होता ॥ ८८ ॥

इसलिये ईश्वरकी मूर्ति मानके मूर्तिपूजा अयोग्य हे ॥ ८९ ॥ क्योंकि ईश्वर अमूर्त हे उसकी मूर्ति नहीं होसकती ॥ ८९ ॥ ओर न उसकी प्रतिनिधि होसकती हे कारणके उसमें प्रतिनिधित्व रुपकी शक्ति नहीं, ईश्वरकृत प्रतिनिधि नहीं. किंतु हमारी कल्पित हे. जड हे. भावनासेभी उसमें चेतन शक्ति नहीं आती ओर न चेतन जेसा फल देसकती हे. इत्यादि ॥ ९० ॥ देवताओंकीभी मूर्तिपूजा उचित नहीं हे ॥९१॥ क्योंकि देवोंकी शक्ति उसमें नहीं आसकती हे, कारणके शक्ति, शक्तिमानसे जुदा नहीं रहती. ॥ ९२ ॥ ओर एक देवकी अनेक स्थानोंमें अनेक मूर्ति होती हें उन सबमें समकालमें एक देव नहीं आसकता क्योंकि एकही हे. तथा एकके नाना रुपभी नहीं होसकते ओर शत्रु मित्र उभयका सेव्य होनेसे व्यवस्था नहीं रहती ॥ ९३ ॥ असाधारणकी अवतार, देव संज्ञा हे ॥ ९४ ॥ जो साधारणों से असाधारण योग्यतावाले हुये वा हें उनकी अवतार वा देव संज्ञा हे. ॥ ९४ ॥ उनकी महिमा (गुण—कर्म—चरित्र) लाभकारी होती हे ॥ ९५ ॥ इसलिये उनके अनुकरणार्थ उनके गुण कर्मका स्मरण कर्तव्य हे, उस स्मरणके वास्ते मंद बुद्धि (जड बुद्धि) के लिये उनके कल्पित आकृति (मूर्ति वा छबी) बनाई जाती हे ॥ ९६ ॥ उसकी पूजादिकोंमें प्रयोजन नहीं हे किंतु यादगारी वास्ते जेसे वावले बनाते हें वेसे गुणकर्म स्मरणकी निमित मात्र हे. अन्य प्रयोजन नहीं ॥ ९६ ॥ जो स्थूल बुद्धि हें उनकी भावनामें उनके अनुकरणका अभ्यास हो, इस द्रष्टिसे आकार ओर स्मरण हे. परंतु सो प्रकार जड बुद्धिसे इतरके वास्ते नहीं हे ॥ ९७ ॥ परंतु वर्तमानमें जेसा मूर्तिपूजाके संप्रदायका व्यवहार-व्यापार चल रहा हे अर्थात् मंदिर, मूर्तिका

श्रृंगार, वैभव, भोग विलास, मूर्तिके नामसे लेन देन इत्यादि हैं वेसा न करना चाहिये ॥ ९८ ॥ (विशेषके वास्ते मूर्तिपरीक्षा ग्रंथ वांचो) मूर्ति प्रसंगका सार.—

जितने तत्ववेता, महात्मा, टीकाकार, पराक्रमी, उत्तम चरित्रवाले, सदाचारी ओर प्रतिष्ठित हुये हें (यथा राम, कृष्ण, महादेव, ब्रह्मा, विश्नु, मनु, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीष्मपिता, दलीप, पृत्थु, हरिश्चंद्र, बुद्ध, महावीर, शंकर, राणा प्रताप, गोविंदसिंह, शिवाजी, लोपामुद्रा, गार्गि, सीता, अंबिकावीरा, कालिकावीरा इत्यादि, पुरुष स्त्री हुये हें¹) उनकी कल्पित छबी एक साधारण मंदिरमें एकत्र करके रखें. वहां उनके चरित्रके पुस्तक हों. मकानमें बुहारी संध्याको दीपक ओर शुद्धि वास्ते धूप किया जाय. अन्य कुछ (पूजा—वैभव) न हो. जिसको इच्छा हो सवेर वा शामको वहां आके उनके गुण कर्मका स्मरण करे. पूजा वा दंडवतकी अपेक्षा नहीं. एसे मंदिर १००० एक हजार घरकी वसतीमें १ बस हे. एसा करनेसे उत्तम गुण कर्मकी प्राप्ति, संप ओर नेशनकी रक्षा फल होगा. (यदि फीसागोरस, इसु, नेपोलीयन, जरतोस्त वगेरेकी तसवीर ओर इतिहास हों तो वेभी हानीकारक नहीं होंगे).

जिस जड बुद्धिको मूर्ति विना संतोष न हो, उसको चाहिये के बटवेमें इष्टकी मूर्ति रखे. एक दिनमें एक वा दोबार एकांतमें बेठके उसके सामने उसके गुण कीर्तन करे. वा ध्यान करे. धूप देलेवे. बस. फेर बटवेमें बंद करके रख देवे. मूर्तिके नामसे पेसा न लेवें, न देवे. ओर जहां जहां मूर्ति हो वहां वहां दर्शन करने वास्ते स्त्री ओर बालकोंको न भेजे ओर न आप जावे. जिसको भावना हो अपने घरके बटवेवाले देवके दर्शन करलिया करे क्योंकि वही सर्वत्र एक हे.

सार यह हे के इस पूजामें जो कालका व्यय होगा उसका भोगता वोह स्वयं ही हे दूसरेको उसका असर न होगा. ओर यदि मूर्तिके विना ईश्वरोपासना (मानसिक ध्यान) करसके तो वोह उत्तम हे.

धर्म द्वेष, इर्षा, लडाई, खंडनमंडन, स्वार्थपरायणता, शिकारबाजी ओर अनेक हानी इत्यादि दोष वर्त्तमानवत प्रचारमें हे ॥ ९८ ॥

ईश्वरदत्त बलिदान नहीं याने जबकेपशु पक्षी ईश्वरने हमारे भोग वास्ते दिये तो इनका बलिदान ईश्वरार्थ करना नहीं बनता क्योंकि उसीका दान हे ॥ ९९ ॥

---

¹यदि विरोध न आता हो तो सब धर्मवालोंको सबके देव पुज्यकी मूर्ति रखनेमें दोष नहीं जान पडता. यथा चर्च, मसजीदोमें रामादिककी ओर मंदरोंमें इसु, नेपोलीयन आदिकीभी रखें. परंतु पूजा वास्ते नहीं.

जो अदत्त हैं अर्थात पशु पक्षीके जीव उनके कर्मानुसार शरीर धारी हैं तोभी उनका बलीदान करना नहीं बनता ॥१००॥ क्योंकि जेसेके हमको दुःख सुख वेसे उनकोभी हे. जेसे सृष्टि भोगमें [जीवनमें] हमारा अधिकार हे वेसे उनकाभी हे इसलिये हिंसा (बलीदान वा मांस भक्ष) न करना चाहिये ॥१०१॥ तथाहि हिंसा करनेसे दोषोंकी आपति होती हे, सो स्पष्ट हे अतः हिंसा वर्जित हे ॥ १०२ ॥ देशकाल स्थितिवश (आपतवश) हिंसाकी आपत्ति हे [१०३] अन्यथा निषेध हे, क्योंकि अपने दुःख समान दूसरोंके दुःखकीभी गणना हे ॥ १०४ ॥

बरफ स्थानमें अनाज नहीं होता, वहांके निवासी हिंसामें लाचार हैं. वेसेही समुद्र अंतरगत निवासी लाचार हैं. अभी मनुष्यकी वसतीके मापमें अनाजकी उत्पत्ति नहीं हे. यदि १५ दिन तक मांसाहारका सर्वथा निषेध हो तो लाखों आदमी, अनाजके विना मर जावें. यह सब आपत कालका उदाहरण हे.

बाज, तीतर, मुरगा, कुत्ता, सर्प, छीपकली इत्यादि मांस ओर अन्नके भक्षीभी हैं एसेही मनुष्यभी हे, इससे सिद्ध होता हे के इनको कुदरत मांस भक्ष अभक्षमें फर्ज नहीं डालती. हा, मनुष्यमें ओरोंसे ज्यादा बुद्धि हे, नेकबद, अधिकार अनधिकार जानता हे, इसलिये आपत प्रसंगके सिवाय इसको हिंसामें प्रवृत्त न होना चाहिये.

बल दुध घीमें हे, जनून निर्दयता मांसाहारमें हे इसलिये मिलटरी (क्षत्री) गुणकर्म स्वभाववालोंके वास्ते विधि कहते हैं क्योंकि एसा करनेसे याने शिकार करके खानेसे दुष्टके हननमें निर्दय रहें, प्रजाके शत्रुके नाश करनेमें जनूनी बने रहें. देखो राज्य मांसाहारीयोंके पद नीचे हे. इ. यह माइटज राइट [बलवानके दो भाग] का उदाहरण हे. तथाहि पशुओंके संतानका भाग (दूध) लेना, पशुओंको खस्सी करना, उनपर भार लादना, सवारी करना, खेती कराना, रेशम कराना, मधु पी लेना. इत्यादि कार्य होते हैं.

विना मांसके जीवन होता हो फेरभी जिह्वाके लिये वा विषय वासना वश खाना यह विषयासक्तिका उदाहरण हे ॥ १०४ ॥

जो जीवोंको ईश्वरने बनाया एसा हो तो उनकी भगति अनुपयोगी हे ॥१०५॥

'ताजीयेकी रसम, धर्म जोश स्थिर रहने वास्ते साधन हे. परंतु पबलिकमें होनेसे प्रसिद्ध अनेक हानी हैं. यदि भावना हो तो ताजीये विना किसी अहातेमें अलम (नेजा) मात्र रखके उसके सामने यादगारी ओर मातम करना बस हे. इष्ट उद्देश सिद्ध होजाता हे.

क्योंकि भगतिकी योग्यता ईश्वर दत्तही हे याने अपनी आप भक्ति करना हे. ईश्वरकी भगति के योग्य नहीं ॥ १०६ ॥ जो जीव जगत, ईश्वर स्वरुपही हे तोभी ईश्वर भगति व्यर्थ हे क्योंकि आपही सेवक आपही सेव्य हो यह नहीं बनता. इसलिये यदि भगति हे तो द्वैत (जीव ईश्वर जुदा जुदा) भावमेंही होसकती हे; अन्यथा बनावट वा कल्पना मात्र हे ॥ १०७ ॥

भगति उपासनासे ईश्वर अनुकूल नहीं होता (१०८) क्योंकि मान प्रसंशाकी उसे अपेक्षा नहीं हे. वोह मनुष्य समान स्वार्थी वा खुशामद पसंद नहीं हे. ॥ १०९ ॥ किंतु न्यायकारी हे. यथा कर्म फल देनेवाला हे ॥ ११० ॥ इसलिये ईश्वरकी स्तुति उससे प्रार्थना उसका ध्यान करना, यह सब अपने गुण कर्मकी उन्नति अर्थ होते हें इस वास्ते कर्तव्य हें. नहीं के ईश्वरकी प्रसन्नता अर्थ (विशेष विस्तार भ्रम नाशक पूर्वार्द्धमें हे). यदि ईश्वर नहीं हे एसा निश्चय हो तब तो भक्ति व्यर्थही हे याने करेगाही नहीं ॥ १११ ॥

सालोक्य, सामीप्य ओर सायुज्यरुप मोक्ष प्राप्तिकी अपेक्षा नहीं हे ॥११२॥ क्योंकि जबके ईश्वर व्यापक ओर जीव व्याप्य हे तो मुक्त अमुक्त सब उसके लोकमें, उसके समीप, उससे जुडे हुये हें ॥ ११३ ॥ ओर यदि जीव उसकाही परिणाम हे तो सारुप्य हेही. यदि उससे भिन्न परिच्छिन्न हे तो परिच्छिन्न कभीभी किसी प्रकारसेभी अपरिच्छिन्न नहीं होसकता, अतः सारुप्यतारुप मोक्ष नहीं बनता ॥११४॥ जीव ईश्वर विरुद्ध धर्मवालेभी हें इसलियेभी सारुप्यतारुप मोक्ष नहीं ॥ ११५ ॥ लट, भ्रंगकाही अंडा हे याने लटमें भ्रंग होनेका बीज हे ओर लटकी योग्यता भ्रंगकी राल (लाल) से उद्भव होती हे. परंतु जीव ब्रह्मका वेसा संबंध नहीं हे इसलिये जीव, ब्रह्मरुप (सारुप्य) होजानेमें लट भ्रंगका द्रष्टांत विषम हे ॥ ११६ ॥ दो कभी एक ओर एक कभी दो नहीं होते इसलियेभी एकता वा तद्स्वरुपता नहीं किंतु भेदही रहेगा ॥ ११७ ॥ यदि कोई अन्य द्रष्टि लेके सालोक्यादिको मोक्ष मानें तो वहांसे आवृति होगी ॥ ११८ ॥ क्योंकि सादि साधनका सांत फल होता हे (विशेष वेद मत गत नं. ९ देखो) ॥११९॥ यदि मोक्षकालमें ब्रह्मसे जुदा वैभव भोक्ता हे तो प्रकृतिके साथ संबंध होनेसे बंध होजायगा ॥ १२० ॥ क्योंकि संकल्प जन्य जो भोग्य हें वे अभाव जन्य नहीं होते किंतु उपादान प्रकृति हे ॥ १२१ ॥ ईश्वरके आनंद स्वरुपको भोग्य नहीं मान सकते ॥ १२२ ॥ क्योंकि वोह किसीका भोग्य (वा विषय) नही हे ॥ १२३ ॥ अतः

यदि मुक्तिकालमें जीव भोक्ता नहीं, शून्य रुपसे स्थित हे तो उसकी वहांसे आ-वृत्ति होगी ॥ १२४ ॥ क्योंकि निष्फलत्वकी आपत्ति होती हे परंतु निष्फल रह-नेका अभाव हे ॥ १२५ ॥ एसेही सब प्रकारके मोक्षमें दोष आते हें ॥ १२६ ॥ जो ईश्वर परिच्छिन्न हो तो सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य ओर सारुप्य मुक्ति इष्ट नहीं ठेरती ॥ १२७ ॥ क्योंकि ईश्वरका लोक नाशवान हे ओर परिच्छिन्न मध्यम ईश्वरभी नाशवान हे, नाशवानकी प्राप्ति किसीकोभी इष्ट नहीं होती ॥ १२८ ॥ एतद् द्रष्टि सालोक्यादि रुप मुक्तिकी कल्पना ओर महिमा रोचक जान पडती हे ॥ १२९ ॥ क्योंकि जेसा मानते वा कहते हें वेसा सिद्ध नहीं होता (ओर उस मुक्ति विषे पक्षकारोंका मत भेद हे [१]) ॥ १३० ॥ किंवा यदि उक्त कल्पना मानभी लेवें तो वोह मुक्ति सुषुप्ति वा उदासीन अवस्था समान एक प्रकारकी क्षणिक अवस्था ठे-रती हे अविनाशी परम पदरुप नहीं हे; इसलियेभी उसकी प्राप्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ १३१ ॥

जेसा भावनामें **पितृ आदि** [पितृ, भूत, प्रेत] का आना मानते हें वोहभी सिध्ध नहीं होता ॥ १३२ ॥ क्योंकि भूत (गत) जीव पुनर्जन्मको प्राप्त होता हे ॥ १३३ ॥ नरकमें हो तो कोन आने देगा. स्वर्गमें हो तो संसारी पदार्थ वास्ते क्यों आवेगा. योन्यांतर हो तो उसमेंसे नहीं आसकता. भोजन वहां पहोंचता हो तो व्याप्ति वा साक्षी नहीं मिलती ॥ १३३ ॥ इसलिये मरे हुयेके नामसे **श्रा-द्धादि** [श्राध्ध, तर्पण, सपिंडि] कर्म करनेकी अपेक्षा नहीं हे ॥ १३४ ॥ तथाहि उसके उद्देशसे जो किया जाय वोह उसको नहीं मिल सकता, अतःश्राध्धादि करना व्यर्थ हे. ॥ १३५ ॥ ओर जो मिलना मानें तो अकृतकाभी फल भोगना पडता हे, एसा स्वीकारना पडेगा. ॥ १३६ ॥ यथा **क** पांचसो मुद्रा छोडके मरा, उसके पुत्रने उस द्वारा घात कर्म किये तो उनके फलभी **क** को प्राप्त होंगे, यह अन्याय हे. जो पुत्रदत्त मिलना मानें तो उपरोक्त दोष आते हें (विशेष भ्रम नाशक पूर्वाध्र्धमें विस्तार हे) ॥ १३६ ॥ यदि शरीरसे निकलके दूसरा शरीर धारण करे वहां तक

[१] पक्षकारोंके मोक्ष धामके नाम—वैकुंठ, गोलोक, शिवलोक, शक्तिलोक, सूर्यलोक, हिरण्यगर्भलोक, बहिश्त, अक्षर धाम, स्वर्ग, सिद्ध शिला, ब्रह्मलोक. ई. इनके लक्षण, इन गत सामग्री, इन गत स्थितिमें मत भेद हे. इसीसे जान पडता हे कि मोक्षस्थान—इष्टस्थान यह कल्पना मात्र हें. आज तक किसिने संतोषकारक साक्षी नहीं दी.

आसकता हे, एसा मानें तो वोह क्षणिक समय हे संबंध होनेमें अनुपयोगी हे ॥ १३७॥ जो संबंध मानें तो संबंधकी व्याप्ति नहीं मिलती ॥१३८॥ लोकमें जो चल रहा हे सो अज्ञान, भ्रम वा स्वार्थ बाजी हे ॥ १३८ ॥ परंतु **श्राद्धादि कर्तव्य हें** अर्थात दागतिथि वा अन्य प्रसंगमें उत्तम पित्रोंके गुण कर्म स्मरणार्थ ओर विद्वानके उपदेश श्रवणार्थ, विद्वान सदाचारिका श्रध्धा पूर्वक सत्कार ओर उसकी तृप्ति कर्तव्य हे. (याने श्रवण करे, भोजन वस्त्रादि दान दे) ॥ १३९ ॥ वस्तुतः वर्त्तमानमें जो माता, पिता, गुरु, आचार्य वा वृध्ध संबंधी हें उनकी श्रध्धापूर्वक तृप्ति करे. इसका नाम श्राध्ध हे ॥ १४० ॥ क्योंकि यह पितृ अपनेको उपकार करें ओर उनकी सेवा, ऋणका प्रत्युपकार हे (विशेष श्र. पू. में विस्तार हे) ॥ १४१ ॥

एसेही **नाना देव**की भावना हे ओर उसमें विवेक हे ॥ १४२ ॥ क्योंकि देवयोनी अनादि अनंत नहीं होती ॥ १४३ ॥ ओर कर्मके फलसे प्राप्त हुइ हे ॥ १४४ ॥ कर्म भोगने पीछे उनको दूसरी योनी (जन्म) में आना पडता हे ॥१४५॥ इसलिये जो विद्यमान देव (विद्वान, बुद्धिमान, सदाचारी, परोपकारी) हें वेही सेवनीय हें (ओर भावना मान्य परोक्षदेव उनके भावी भक्तोंके लिये छोडदो) ॥ १४६ ॥

मंत्रानुष्ठान [वरुणी वगेरे] भी कल्पना मात्र हें ॥ १४७ ॥ क्योंकि करानेवालेको ओर करनेवालेको वेसा फल होना नहीं देखते जैसाके उन्होंने माना था ॥ १४८ ॥ ओर कारयिता तथा कर्ताके फलमें भेद होता हे उसका उसको नहीं मिलता (अतःवरुणी प्रयोग व्यर्थ हें) ॥ १४८ ॥ परंतु दूसरे विद्वान, निर्धन वा गरीबको सहायता मिले ओर अपनेको उपदेश प्राप्त हो तथा शुभ विचार उत्पन्न हों इसलिये कर्तव्य हे. याने अर्थ सहित वरुणी करावे ओर मंत्र याने लिखित श्रुतका विचार करे करावे ॥ १५० ॥ परंतु वर्तमानमें जेसे वरुणी, मंत्रानुष्ठान चल रहे हें वेसे फलकी द्रष्टिसे कराना योग्य नहीं जान पडता. ॥ १५१ ॥

सिद्धि यह मानस शक्तिका प्रभाव हे ॥ १५२ ॥ अन्य साधरणोंसे इतर किसी विरलमें होती हे इसलिये उसकी विशेष महिमा मानी जाती हे ओर चमत्कार रुपमें मानते हें ॥१५२॥ यह वात तैजस विद्या (मेस्मेरेझम–हेपनोटीजम) की परीक्षा करोगे तो जान सकते हो ॥१५३॥ योग विद्यासे चित शक्तिकी वृद्धि होती हे (आगे वांचोगे) ॥ १५४ ॥ इस प्रकार मानसिक शक्ति ज्यादे होनेसे उसके उपयोगकीभी वृद्धि [उन्नति] होती हे ॥१५५॥ जो मंत्र जंत्र तंत्र ओर

तत्संबंधि विलक्षण क्रिया चल रही हें वे भावना विश्वासकी रक्षा ओर निश्चय रहनेके लिये निमित्त मात्र हें. नहींके उनके फलमें सिद्धि होती हे क्योंकि वे कल्पित हें ॥ १५६ ॥ जो उपासक ओर उपास्य (देवादि) के तैजस (ओरा) की अनुकूलता हो तोही कहीं कभी क्वचित देवादि [देव, वीर, सूक्ष्म शरीर] का संबंध होता हे ॥ १५७ ॥ अन्यथा (मंत्रादिसे) नहीं होता ॥ १५८ ॥ किंतु मंत्रादिका प्रयोग करे तोभी तन, मन, द्रव्य, कालका उपयोग व्यर्थ रहता हे, कुछभी फल नहीं होता, प्रत्युत मगज खराब होके वहेम होजाता हे. इसलिये अर्थात तैजस संबंध क्वचित होनेसे सिद्धिभी क्वचित होती हे ॥ १५८ ॥ तोभी मानसिक शक्ति वा सिद्धि, परीक्षा किये विना विश्वास योग्य नहीं हें ॥ १५९ ॥ अर्थात कहने सुन्ने मात्रसे नहीं मान्ना चाहिये किंतु देख लेवे तोभी सायंस, सृष्टिनियमकी साक्षी ओर उपयोगके विना न मान्ना चाहिये.[१] तथा क्वचित ओर अकस्मात होनेसे विशेष उपयोगी नहीं इसलिये तन, मन, धनका उसमें व्यय नहीं करना चाहिये (विशेष मानासिकयोगके उत्तरार्द्धमें विस्तार हे.) ॥ १५९ ॥

गंगादी नदीरुप तीर्थोंसे मोक्ष नहीं मिलती ॥ १६० ॥ क्योंकि वे अन्य जलों समान जल हें अर्थात जो कोई अपने आप न तिर जानता हो तो वे डुबा देनेवाले हें ॥ १६१ ॥ ओर सेवकों समान पराधीन हें अर्थात जिनको तीर्थ माना जाता हे वे नहेर द्वारा मल लेजानेवाले, कलद्वारा चक्की पीसनेवाले देखनेमें आते हें याने जड ओर पराधीन हें इसलिये भवसागरसे तिरानेवाले तीर्थ नहीं हें ॥१६२॥ सच्चे तीर्थ तो वे माता पिता ओर गुरुजन होसकते हें कि जो भवसागरसे पार उतार सकें ॥ १६२ ॥ परंतु जो तीर्थ यात्रा मानी गई हे उसमें देशाटन होनेका आशय हे ॥१६३॥ क्योंकि देशाटन करना लाभकारी होता हे यह सुप्रसिद्ध

---

[१] हिंदकी माता ओर जीवन जो गाय उसका वध आज ९०० वर्षसे हो रहा हे, जो सिद्धि ओर मंत्र होते वा कोई सिद्ध करामाति हुवा होता तो गोवध बंद होजाता. परंतु कहवाति सिध्धि वा मंत्र अथवा वखणाते सिध्ध वा मंत्रशास्त्री यह सब दंतकथा जान पडती हे, यही समाधान हे. तद्वत पीर, ओलिया, कशफकरामाति वास्ते जान लेना चाहिये. क्योंके वे कुछ होते तो हिंदमें आज मूर्तिपूजा न होती. हिंदु नाम न मिलता सब मुसलमानही होते. यत्किंचित सिद्धि तो उदयपुरके राणा प्रतापकी (सत्ता-बल) के जो बीरबलकी मारफत अकबर बादशाहके समय गोवध बंद हुईथी.

हे ॥ १६४ ॥ जेसे वर्तमानमें तीर्थ यात्रा होती हे, वेसा हानीप्रद उद्देश नहीं था, वर्तमानवाला उद्देश ओर रीत हानीप्रद हे ॥ १६५ ॥ जेसेके बेमारी होना, लडाई दंगा होना, चोरी व्यभिचार होना, पंडे मुजावरोंमें काल द्रव्य व्यर्थ व्यय होना इत्यादि देखते हें. ॥ जहां उत्तम आब हवा स्थान होता वहां महात्मा रहतेथे वा सत्संगार्थ अमुक नियत समय एकत्र होतेथे, वोह लाभ गृहस्थकोभी मिले इसलिये यात्राथी. जब जाता के कमाता. पांच छ महीने लगते, इतनी समय घरकी हाय ओयसे, ओर वीर्यव्ययसे, वर्जित रहता. मार्गमें अनेक पदार्थोंका दर्शन ओर संग होनेसे व्यापार व्यवहारकी बुद्धि खिलती. तीर्थ स्थानमें उत्तम आब हवाका सेवन होता. सत्संगसे कुछ न कुछ ग्रहण होता उससे अमूल्य लाभ होता. महात्माकी सेवा याने सुकृतमें द्रव्यका व्यय होता ओर अपने द्रव्यका भाग सब देशियोंमें विभक्त होजाता. इत्यादि लाभथे. परंतु अब वेसा नहीं देखते. कर देना पडता हे, द्रव्यका भाग रेल ले जाती हे. महात्मा जनभी वहां नहीं आते किंतु उपर कहे अनुसार हानी होती हे. इसलिये जो तीर्थयात्रा वा धामयात्रा करना चाहे तो उक्त उद्देश वा रीतिसे ठीक हे, अन्यथा (वर्तमानवाली रीति) हानीप्रद जान पडती हे. ॥१६५॥

अवतारवत् दूतकीभी अपेक्षा नहीं हे ॥ १६६ ॥ क्योंकि ईश्वर व्यापक सर्व शक्तिमान माना गया हे, स्वयं प्रेरक होसकता हे अथवा कानून कुदरत, नित्य उपदेश कर रहा हे, यही ईश्वरका दूत हे ॥ १६७ ॥ माने हुये दूतकी आज्ञा भंग करनेपर उसके विरोधीको शिक्षा नहीं मिलती परंतु कानुन कुदरतरुपी दूतकी आज्ञा भंग करनेपर शिक्षा मिलजाती हे इसलिये माने हुये दूत, ईश्वरके दूत हें एसा सिद्ध नहीं होता ॥ १६८ ॥ ओर जितने दूत कहाये उनके मतोंमें मतभेद हे, इत्यादि द्रष्टिसे ईश्वरका भेजा हुवा दूत सिद्ध नहीं होता ॥ १६९ ॥ किंतु जो हितकारी वा पराक्रमी पुरुष हुये हें उनमें रुची वा श्रद्धा दिलाने वास्ते दूतादि[१] रोचकपदका प्रयोग हो, एसा जान पडता हे ॥ १७० ॥ क्योंकि वे बुद्धिमान, जिस देश जिस कालमें ओर जिस स्थितिमें जेसा चाहिये वेसा उपदेश करके मार्ग दरसातेथे. ओर यथामति यथासामर्थ काम करतेथे, वे ईश्वरके भगत वा योगशक्तिवाले होतेथे. ॥१७१॥ जिनमें स्वार्थ, मान, प्रतिष्ठा, अनाचार, छल, दंभ वा अज्ञान हो वे उपदेशक (दूत) नहीं होते वा नहीं होसकते अर्थात ईश्वरकी तरफसे कुदेव [शेता-

[१] ईश्वरका दूत, ईश्वरका पुत्र, ईश्वरका अवतार, ईश्वरका फिरशता.

नादि] कीभी उत्पति वा अपेक्षा नहीं होती ॥ १७२ ॥ क्योंकि एसा करनेसे ईश्वरमें अनेक दोष आते हें ॥ १७३ ॥

जातिभेद, व्यवहारवश बुद्धिकी कल्पना हे ॥ १७४ ॥ क्योंकि देशकाल स्थितिके आधीन होनेसे कल्पी जाती हे ओर उसका परिवर्तन होता रहता हे ॥ १७५ ॥ आरंभमें ओर अबभी समीप निवास, समविचार, समआचार, समधर्म, समदेश, संप, कुल, इत्यादि निमित्तोंसे रोटी बेटी व्यवहारकी मर्यादा ओर विश्वास होजाता हे. फेर वोह रुढीके रुपमें आके वीर्यपर मानलिया जाता हे, जेसेके वर्तमानमें हे. एसे परंपरा होही जाती हे. देखो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यभी यह अनेक जाति विभागवाले हें. ब्राह्मणोंमेंभी रोटी बेटी व्यवहार जुदा जुदा हे. ॥१७५॥ परंतु व्यक्तिका समष्टिमें जो उपयोग होता हे वोह उसके गुणकर्म स्वभावपरही होता हे, वीर्य मात्र पर नहीं होता ॥ १७६ ॥ वीर्यपरभी जातिकी मान्यता देखते हें वोह उपर लिखे अनुसार परंपरा कुलीनता [कुल] के प्रभावसे हे ॥१७७॥ वीर्यपर जाती यहभी वस्तुतः गुणकर्म स्वभावका ही परिणाम हे ॥१७८॥ इसलिये जो वोह गुणकर्म स्वभावके अनुकूल न हो तो अमान्य हे ॥१७९॥ यथा ब्राह्मणका पुत्र अविद्वान, मूरख, चोर, जार, हिंसक; घातकी, (खूनी) हो तो उसके साथ उसके समसंज्ञावाले ब्राह्मणको रोटी बेटी व्यवहारभी वर्जित होता हे. विशेष अ. २ । ५२९ । ५३३ । ओर मूलग्रंथ तथा भ्रम. पू. में विस्तार हे. जाति संबंधमें कितनीक वातें विचारणीय हें. जेसेकि एक समदर्शी, विद्वान, सदाचारीउपदेशक हिंदु साधु, मुसलमानका खाना खालेवे तोभी मुसलमानोंने उसके उपदेशका लाभ लेना नहीं हे ओर हिंदुओंको जो लाभ होताथा वोह अटक गया. इत्यादि विचारसे यह जान पडता हे के विद्या प्रचार विना जातिभेद तोडना भूल हे ओर यदि तोडनेसे टूटेभी तो फेर उक्त कारणसे पुनः होहीगा ॥ १७९ ॥ परिच्छिन्न पदार्थ गतिमान ही होता हे, यह वात विद्या ओर सृष्टिनियमसे सिद्ध हे[१] ॥ १८० ॥ जेसेके सूर्य, ध्रु ओर पृथ्वी वगेरे ग्रहे उपग्रह हें ॥ १८१ ॥ इस लिये पूर्वोक्त कितनेक अध्यारोपोंमें सूर्य, ध्रु ओर पृथ्वीको स्थिर माना हे सो ठीक नही हे ॥ १८१ ॥

यहांतक पूर्वके अध्यारोपोंमेंका अपवाद ओर कल्पित व्यवहारका आरोप कहा.

---

[१] वर्तमानके शोधक सूर्य ओर ध्रुको गतिमान मानते हें, दूरीके कारण स्थिर जान पडते हें एसा कहते हें.

इसी प्रकार अन्य विषयमेंभी हे. यथा [१] अमुक स्त्री अमुककी. [२] भाषा (३) सिक्का. [४] तोल, माप. (५) काम क्रोधादि, हानीकारक लाभकारक. [६] द्वैताद्वैतका मोहवश विवाद व्यर्थ हे. (७) हिंदु शब्द संस्कृत वा आर्यभाषाका नहीं हे, किसी कोशमें नहीं हे, तथापि रुढीमें आगया हे. इसलिये इसकी तकरारमें उतरना व्यर्थ हे. [विशेष भ्रम. पूर्वार्द्धमें.] (८) मानव सृष्टि कहां, कब, केसे, कितनीवार उत्पन्न हुई यह इतिहास नहीं मिलसकता, इसमें माथा मारना वा निश्चय मान लेना ठीक नहीं. (९) ईश्वर, मलीन दुःखरुप जगतमें व्यापक केसे होगा, एसी शंका व्यर्थ हे (बस. पूर्वार्द्धमें समाधान हे) ॥ सारांश वर्तमानमें सुख ओर भविष्यकी प्रजाको सुख मिले इसीमें कोशिश करना चाहिये. कल्पित अकल्पितादि विवादोंमें कुछ नहीं रखा हे ॥ १८१ ॥

चेतनवादांतरगत सत्यकार्यवादका अध्यारोपापवाद समाप्त हुवा.

चिद् उत्तर फिलोसोफी.

(अचिद्वादके अपवाद याने ३९१ सूत्रके पीछे हे.)

चेतनवादका सत्यवाद लिखने पीछे अब आगे चेतनवादकी समाप्ति पर्यंत जितने अध्यारोप अपवाद लिखें जावेंगे उनमें एक भ्रमवाद (अजातवाद) से इतर सब समान आशयवाले हें. सबका सार, अधिष्ठान सम चेतनसे इतर सब, ब्रह्मसे विलक्षण—अनिर्वचनीय अनादिमायाका स्वप्नवत आभास हे. सो शून्यरुप वा असत हे एसा नहीं हे ओर न किसीका स्वप्न हे. परंतु आरोपोंकी पद्धति—शैली के कथनमें अंतर होगा. क्योंकि व्यवस्थाकी द्रष्टिसे शैली भेद होजाता हे. (व्यवस्थाकी द्रष्टिसे वक्ष्यमाण विलक्षणवाद ठीक जान पडता हे.)

चाहिये तो यहथा के वक्ष्माण जडवादोंके अपवादके पीछे यह उत्तर फिलोसोफी लिखते तबही इस क्रमकी शोभा होती परंतु आरंभ चेतनवादसे हे इसलिये प्रकरणवश यहां लिखना पडा हे, इसलिये शोधक यदि वक्ष्यमाण अचिद्वादके अपवादको (२०९ से ३९१ तकको) वांचके यह उत्तर फिलोसोफी पढे तो ठीक होगा.

अध्यस्तवाद.—

सम चेतनाधिष्ठानके विना कोई प्रकारकाभी परिच्छिन्न गतिमत पदार्थ, अवस्थित नहीं होता—दोनोंकी सिद्धि हे ओर एकके स्वरुपमें दूसरेका स्वरुप नहीं आ-

सकता, इसलिये उभयकी व्यवस्था अर्थ अध्यारोप अपवाद किया जाता हे. **उस** व्यवस्था प्रकारमें अध्यस्त वाद हे.

सम अधिष्ठानसे विलक्षण सत्ता (अस्तित्व) वाला अन्यथारुप अधिष्ठानके स्वरुपमें अस्पर्श हुयेभी (बाधक न होते हुयेभी) अधिष्ठानका विवर्त्त हो उसे **अध्यस्त** कहते हें. जेसे स्थूल द्रष्टांतमें आकाशमें अध्यस्त धूवां वा विजली. **उससे** सूक्ष्म, जेसे द्रष्टा चेतनमें स्वप्न ओरभी आकाशमें नीलता अध्यस्त हे.

अध्यस्तवादमें अध्यस्त जो हे सो सत् अधिष्ठानसे विलक्षण **अनिर्वचनीय** हे. उसके बयानकी कितनीही शैली हें उनमेंसे यहां ६ लिखते हें.

(१) **भ्रमवाद**—अध्यस्त, अनहुवा भासता हे. (२) **मायावाद**–(**वि-** **वर्त्तवाद**) इसमें अधिष्ठानही नाम रुपात्मक भासता हे अध्यस्त कथन मात्र हे. **यथा** रज्जुसर्प वा कनककुंडलवत माया मात्र द्वैत हे, ब्रह्म केवल्याद्वैत हे. इस **प्रक्रियामें** माया अनादि सांत मानी हे. (३) **अध्यासवाद**—इस प्रक्रियामें अध्यस्त **माया** -अज्ञान, अध्यासरुप नहीं किंतु अध्यासका कारण हे. इस पक्षमें ज्ञानअध्यास ओर अर्थाध्यास उभय माने हें, माया सद्ब्रह्मसे विलक्षण अनिर्वचनीय हे. **अधि-** **ष्ठानाध्यस्तका** अन्योऽन्य अध्यास हे. (४) **द्रष्टिसृष्टिवाद**—(एकजीववाद) अध्यस्त दर्शनकालमें विद्यमान ओर अदर्शनकालमें कहींभी नहीं. द्रष्टि मात्रही **सृष्टि** हे. सृष्टिकी ज्ञात सत्ता हे अज्ञात सता नही, एसा द्रष्टिसृष्टिवाद हे. (५) **वि-** **लक्षणवाद** [विवर्त्तवाद] इस शैलीमें अधिष्ठानावृत्त हे, अध्यस्त भासता हे **ओर** वोह प्रवाहसे अनादि अनंत हे. प्रतीत ओर लय होता रहता हे, जेसेकि **स्वप्नसृष्टि,** मृगजल ओर आकाशकी नीलता. (६) **स्वाभाविक अवभासवाद**—(बाधवाद **याने** प्रतीतकालमेंभी बाधरुप) अधिष्ठानमें अध्यस्त भासे एसा स्वाभाविक हे, **यथा** आकाशमें नीलता. (उपरोक्त तमाम पक्षोंसे १ पक्ष याने मायावादमें **मायाको** **अनादि** सांत माना हे बाकी सबमें प्रवाहसे अनादि अनंत हे. क्योंकि **नैसर्गिक** अनादि अनंत अध्यास हे. इन सब वादोंका अंतर ओर समानत्व ब्रह्मसिद्धांतगत उत्तर फिलोसोफीमें लिखा हे ॥

उपरके अध्यारोपोंसे जाना गया होगा कि [१] शरीर, शरीरांग, मन, इं- द्रिय ओर द्रश्य यह चेतन नहीं हें. [२] चेतन उनसे भिन्न उनका ज्ञाता **द्रष्टा** हे उनके भेदों सहित उनको विषय करता हे. (३) जीव अणु विभु नहीं. (४) जीवका पुनर्जन्म यथा कर्म होता हे. (५) आवृतिवाली मुक्ति मोक्ष नहीं **किंतु**

अवस्था मात्र हे. (६) अधिष्ठानके विना परिच्छिन्न गतिमानकी व्यवस्था वा स्थिति नहीं. (७) तत्व वस्तुका बंध मोक्ष नहीं होसकता. (८) अतत्वका मोक्षही क्या. (९) जीव जगत किसी एकका परिणाम नहीं.

इतने विषय उपरके अध्यारोपसे ओर उत्तरके जडचेतनके विवेकसे स्पष्ट होजाते हें ओर सयुक्त विवेककी संगति चल रही हे याने सृष्टिद्रष्टिवाद उपर कहा. अब चेतनवादगत अध्यस्तवादका आरंभ हे.–

(आ.) ब्रह्मेतर भ्रमरुप, स्वरुप अप्रवेश होनेसे ॥१८२॥ (अप.) नहीं अशून्य ओर भावरुप होनेसे ॥१८३॥ ओर भ्रांतकी असिद्धिसे ॥१८४॥

अ.–ब्रह्म समचेतनसे इतर (ईश्वरादि अष्ट) भ्रम मात्र हे क्योंकि विभु समचेतनके स्वरुपमें अन्य (जीव प्रकृति वगेरे) का स्वरुप रह सके एसा नहीं होसकता. अर्थात एक स्वरुपमें दूसरेके स्वरुपका अप्रवेश हे वा यूं कहोकि दो सत्य समकाल विषे एक अधिकरणमें नहीं होसकते, इसलिये ब्रह्मेतर सब द्रश्य रज्जु सर्पके समान भ्रमरुप हे, एसा मान्ना चाहिये ॥ १८२ ॥ यह आरोप ठीक नहीं हे क्योंकि द्रश्य जगत ख पुष्प समान शून्यरुप नहीं हे किंतु भावरुपमें द्रश्य हे ॥ १८३ ॥ ओर भ्रम जब माना जाय के जिसको भ्रम हो वोह सिद्ध हो परंतु भ्रांतकी असिद्धि हे क्योंकि ज्ञान स्वरुप ब्रह्मको भ्रम होना यह मंतव्य प्रकाश, तम समान हे अतः द्रश्य भ्रमरुप नहीं ॥ १८४ ॥

वि.–जेसे रज्जुमें वस्तु नहीं कल्पना मात्र हे अर्थ शून्य हे पूर्व उत्तरमें न होनेसे यही कहा जायगा कि न था न हे न होगा याने अजात; इस प्रकारकी यह द्रश्य हे परंतु यह आरोप ठीक नहीं हे; क्योंकि भ्रममें अर्थ नहीं होता, द्रश्य अर्थ शून्य नहीं. भ्रममें नाम कल्पन मात्र होता हे, यहां ब्रह्ममें नाम कल्पनकी अनुत्पत्ति हे. अनहुयेकी प्रतीति नहीं होती. जो इसे भ्रम कहता मानता हे उसका यह कथन मंतव्यभी भ्रमरुप मान्ना पडेगा याने अमान्य रहेगा. भ्रम, भ्रमकालमें भ्रमरुपसे प्रतीत नहीं होता याने साक्षी चेतनका विषय नहीं होता इसलिये उसकी असिद्धि हे. आज तक अभाव न होनेसे भ्रम नहीं कहसकते. ओर बाध हुये पीछे साक्षी देनेवाला कोई न होगा इसलिये इसे भ्रम कहना भ्रम हे. जो ब्रह्मसे इतर नहीं तो ब्रह्म अनुपयोगी रहेगा कारणके दूसरेके विना अपना अपनेमें उपयोग नहीं होता ओर निष्फलत्वका अभाव हे. अभाव जन्य भावरुप प्रतीत नहीं होता. ब्रह्मको भ्रम ओर भ्रमको भ्रम असंभव, जीव नामरुप द्रश्य यह तो भ्रमके कार्य याने

उत्तरकालीन हैं उनको भ्रम होना असिद्ध हे. तो फेर भ्रम किसको? अर्थ शून्य विकल्प कर्ता कोन? इसका उत्तर नहीं मिलता. अनहुवा प्रतीत हो तो वंध्याके पुत्र, शशके शृंगभी प्रतीत होना चाहिये. भ्रम प्रसंगमें ज्ञानाध्यास हे अर्थाध्यास नहीं होता, प्रसंगमें द्रश्य (अर्थ) को भ्रमरुप कह रहे हो–सिद्धि कह रहे हो; इसलिये द्रश्यको अजात वा भ्रम कहना मात्रा ही भ्रम हे ॥ १८४ ॥ अलंकारमें वा मस्तीमें अजात वा भ्रम कहना यह दूसरी बात हे ॥

[आ.] अतःब्रह्मेतर उपाधि, विवर्त्त होनेसे ॥ १८५ ॥ अनादि सांत ज्ञान बाध्य होनेसे ॥ १८६ ॥ (अप.) नहीं अनादि अनंतही होनेसे ॥१८७॥ उपाधि परिणामके पश्चात जीव होनेसे ॥ १८८ ॥

अ.–इसलिये ब्रह्मसे इतर माया उपाधि मात्र होनी चाहिये क्योंकि किसीको विवर्त्त (अध्यस्त) पाते हैं ॥ १८५ ॥ वोह उपाधि या विवर्त्त (अध्यस्त) अनादि सांत हे क्योंकि अधिष्ठानके ज्ञानसे उसका बाध होजाता हे ॥ जो सत् होतो उसका बाध नही होता ॥ १८६ ॥ यह आरोप ठीक नहीं हे क्योंकि जो अनादि होता हे वोह सांत नही होता किंतु अनंतही होता हे ॥ १८७ ॥ ब्रह्मेतर जीव (ईश्वर, ब्रह्मजीवका, ईश्वरजीवका, माया ब्रह्मका भेद ओर संबंध यह सब) अनादि मानते हो परंतु मायाके परिणाम जन्य जो हों वे अनादि नहीं होसकते कारणके परिणामका आरंभ होता हे, जीव उपाधिके परिणाम पीछे होता हे इसलिये जीव अनादि न ठेरनेसे यह आरोप ठीक नहीं ॥ १८८ ॥

विवेचन—जेसे स्वप्नकालमें स्वप्नद्रष्टाको अपना भान नहीं होता ओर स्वप्नसृष्टि अनादिकालकी जान पडके दुःखी सुःखी होता हे. परंतु स्वप्नका हस्ति वा सिंह द्रश्य होनेपर जाग उठता हे, अपना भान होजाता हे, इसी प्रकार ब्रह्म ओर जगत प्रसंगमें जान लेना चाहिये. याने अपने भान होनेसे इसका अभाव होजाता हे. निदान ब्रह्मचेतन अनादि अनंत हे उससे इतर जो माया–अज्ञान अविद्या हे सो अनादि सांत हे. क्योंकि में अपने स्वरुपको नहीं जानता, एसा अज्ञान वा मायाका अंश अनादिसे हे ओर ज्ञान–विद्यासे इसका अभाव होजाता हे इसलिये सांत हे. अज्ञान–माया करके ही जीवत्व, ईश्वरत्व हे इसलिये यहभी अनादि सांत ठेरे. ओर इन (ब्रह्ममायादि) का संबंध ओर भेदभी माया–अज्ञान करके हें इसलिये अनादि सांत हें. स्वरुप ज्ञान होनेपर ब्रह्मेतर सबका अभाव होनेसे पांचों अनादि सांत हें. मायाके कार्य सादि सांत हें. अधिष्ठानसे विषम सत्तावाले अन्यथा

स्वरुपका नाम **विवर्त्त** हे. जेसे रज्जुमें जो सर्प वोह डोरीका, शुक्तिमें जो रजताभास सो शुक्तिका ओर कनकमें जो कुंडलाकारपना सो कनकका विवर्त्त हे. इस प्रकार माया ओर उसके सब परिणाम चेतनके विवर्त्त हैं. मायाके परिणाम जो नामरुप तिन रुपसे ब्रह्म भासता हे किंवा चेतनके विना वे आकार नहीं भासते इसलिये ब्रह्मचेतन **विवर्त्तउपादान** ओर अधिष्ठान हे, तोभी अविकारी शुद्ध स्वरुप हे क्योंकि अपने स्वरुपको न छोडके अन्य रुपसे जो भासे सो विवर्तोपादान कहाता हे. यथा डोरीका सर्प डोरीका विवर्त्त ओर डोरी उसका विवर्त्तउपादान हे. इसी प्रकार जीव ईश्वर प्रपंच बंध मोक्षादि सब नामरुप ब्रह्मचेतनके विवर्त्त ओर ब्रह्म उनका विवर्त्तउपादान हे. इसलिये नामरुपकी उपादान जो माया सो व्यवहारमें ब्रह्मचेतनकी उपाधि कहाती हे क्योंकि चेतनको अन्यथा (जीव ईश्वररुप) जनाती हे. जो उपहितके स्वरुपमें प्रवेश न करते हुये आप जितनी दूरमें हो उतने भागमें अपने सहित उपहितको जनावे उसे उपाधि कहते हैं, जेसेके घट उपाधि, आकाशको घटाकाशरुप [गोलाकार—परिच्छिन्न] जनाती हे. यहां घटाकाश उपहित हे घट उपाधि हे. वेसेही ब्रह्मचेतन उपहित हे माया उपाधि हे. उसके परिणाम नामरुप व्यष्टिचेतनकी उपाधि हैं. इसलिये ब्रह्म चेतन, जीव ईश्वर महाभूत वगेरे रुपमें भासता हे.

अब यहां, पूर्वोक्त सूत्र २९ में उपाधिको सत् मानके जो उसका अध्यारोप किया हे सो सब लगा लेना (योज लेना) चाहिये. अंतर इतना हे कि वहां (सु. २९ में) उपाधि सत् अनादि अनंत हे ओर प्रस्तुत आरोपमें मायाउपाधि सत्रुप नहीं किंतु **अनिर्वचनीय** ओर चेतनकी विवर्त्त तथा अनादि सांत हे.

अपवाद—यह वाद ठीक नहीं हे क्योंकि जीवत्व ईश्वरत्व मायाके परिणाम पानेपर होते हें इसलिये सादि हैं. ओर यदि माया अनादि हे तो उसको अनंतही मान्ना पडेगा. इसलिये यह आरोप ठीक नहीं हे ॥ अंतःकरण, आभास वा प्रतिबिंबभी कार्यरुप हें अतः उन उपाधिवाला जीव अनादि नहीं होसकता, तद्वत् ईश्वर. ब्रह्मचेतनको अज्ञान नहीं इसलिये अज्ञान अनादि नहीं. जीवका अज्ञान सादि सांत होसकता हे सो जीव, मायाका कार्य होनेसे मुक्तिपात्र नहीं. तथाहि माया विवर्त्त हे, इतनेमें ज्ञानसे इतर अन्य व्यवस्था नहीं होती. बंधमोक्षादि रज्जु सर्पवत प्रतीत मात्र मान्ना पडेगा ओर अनादि सादि तथा प्रस्तुत आरोपभी व्यवहारमें शैली मात्र कहना हे क्योंकि यहभी माया के परिणाम चेतनके विवर्त्त हैं. किसीको क्षणिक वाद, किसीको अभावशून्यवाद, किसीको त्रिवादादि द्वैतवाद किसीको अनेक

प्रकारका अद्वैतवाद (एकवाद) भासता हे, यह सबभी ओर विवर्तवादभी मायाका ही परिणाम ठेरा ओर अनेकांतकी प्राप्ति हुई याने अनिश्चित किंवा सर्वही ठीक, एसा विरोधी सिद्धांत ठेरने जाता हे, इसलिये क्या मान्ना यह निश्चय नहीं होगा. उपर जो स्वप्नके मिथ्यासिंह, मिथ्या स्वप्नकी निवृत्तिका हेतु हुवा होना लिखा सोभी प्रसंगको सिद्ध नहीं करता. क्योंकि रज्जुके सर्पकी निवृत्ति होके जलधारा भासने जैसा हे. याने स्वप्नजालसे जागके माया रचित जाग्रतमें अपनेको देखता हे. माया रहित कैवल्य न रहा. जो द्रष्टांतका एक देश मानें तोभी इष्ट सिद्ध नहीं होता अर्थात् अधिष्ठानका ज्ञान किसको हुवा जिससे मायाजालकी निवृत्ति हुई. जो कहोकि ब्रह्मको हुवा तो वामदेवादिकको ज्ञानसे माया निवृत्त होगई फेर क्यों भासती हे. अथवा आजतक ब्रह्मको अपना ज्ञान हुवा नहीं तो फेर भविष्यमें होगा, याने जब मायाजाल निवृत्त होगा तब अनादि सांत कहेंगे, परंतु आजतक सांतत्वकी सिद्धि न हुई अतःअनादिको सांत मान्ना कल्पना मात्र हे. जो यह मानें कि जिस जीवको अधिष्ठान ब्रह्मका ज्ञान होता हे उसकी माया निवृत्त होजाती हे, में ब्रह्मस्वरुप, एसा उसका रुप हे. तोभी इष्ट सिद्ध नहीं होता क्योंकि जेसे एक क. घट जिसमें धूवां हे सो म. देश देशमें जायतो क आकाश शुद्ध होजायगा ओर म आकाश धूवांवाला होजायगा, एसे घटके फिरनेसे आकाश शुद्ध मेला होता रहेगा. दूसरा म घटमें दीपक हे जो वोह क देशसे म देशमें जाय तो क आकाश प्रकाश शून्य ओर म आकाश प्रकाश युक्त होगा. इसी प्रकार बंध जीव-अंतःकरण विशिष्टचेतन वा अविद्या विशिष्ट वा साधिष्ठान साभास-अंतःकरणावीशिष्टचेतन जहां जहां जायगा वहांका शुद्ध चेतन मलिन ओर मलिन शुद्ध होता जायगा. तद्वत मुक्त (ज्ञानवान) जीवके संबंधमें जान लेना चाहिये. सारांश चेतन बंधमुक्तही रहा तो एक जीवके ब्रह्मज्ञानसेभी माया अनादि सांत न हुई, ओर न चेतन शुद्ध हुवा. अब जो मायाके अंश अविद्या, जीवप्रति जुदा जुदा मानें तो जब सब नष्ट होजायगें तब ब्रह्म कैवाल्याद्वैत रहेगा, वहांतक सोपाधही रहेगा. जब अकेला रहेगा तो निष्फल होगा जोके असंभव हे. अतःमाया अनादि अनंतही मान्ना पडेगा. जो कहो कि उक्त शंका समाधान, ज्ञान अज्ञान ओर त्रिपुटी यह सब माया मात्र हें तो आपका मंतव्यभी एसाही ठेरेगा ओर अनेकांतकी प्राप्ति होगी (शेष आगे) ॥ १८८ ॥

(आ.) इसलिये ब्रह्मेतर स्वप्नवत्अध्यास ॥ १८९ ॥ (अप) **सामग्रीकी अनुपत्तिसे नहीं** ॥ १९० ॥

अ.—अतः ब्रह्मसे इतर सब स्वप्नसृष्टि समान अध्यासरुप (अवस्तु) हे ॥१८९॥ स्वाभावाधिकरणमें अवभासका नाम अध्यास हे. जितना देशकालादि चाहिये उतनेके विना जो प्रतीत हो वोह वास्तिविक वस्तु नहीं किंतु अवस्तु हे. जेसेके स्वप्नकी सृष्टि योग्य देशकालादि सामग्रीके विना गतिरहित गतिमान जान पडती हे इसलिये अध्यासरुप ओर अवस्तु हे. एसे यह सब (ईश्वरादि ८ वस्तु) अध्यासरुप हे. अवस्तु हे. याने कुछ हे तो सही परंतु मिथ्या हे. पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर प्रतीतरुप हे इसलिये अध्यासकी सामग्री (सामान्य ज्ञान, विशेषअज्ञान, सत्यवस्तुके संस्कार, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय याने साद्रश्यादि दोष) की अपेक्षा नहीं हे. स्वप्न जाग्रतके व्यतिरेकसे अध्यासकी सिद्धि हे क्योंकि वहां समान यहां, यहां समान वहां देखते हें, द्रष्टा जेसाका तेसा सबमें हे. उपादान उपादेय समसतावाले होते हें. जाग्रतका जो उपादान वही स्वप्नका हे इसलिये उभय समान हें. स्वप्नवत जाग्रत, जाग्रतवत स्वप्न हे इसवास्ते उभयाअध्यासरुप हें. तथाहि वर्तमानमें जेसे प्रतीत होते हें वेसे बाध कालमें नहीं किंतु अन्यथा प्रतीत होते हें इसवास्तेभी अध्यासरुप हें. यह प्रकार आत्मामें स्वतः ग्रहण होजाता हे इसलिये अन्यकी अपेक्षा नहीं ॥ १८९ ॥

यह आरोप ठीक नहीं हे क्योंकि अध्यास, सामग्रीके विना नहीं होसकता ओर ब्रह्मेतर अन्यका अभाव मानते हो ॥ १९० ॥ अध्यास सामग्रीके विना नहीं होसकता हे ओर यदि होसकता हे तो वोह अध्यास नहीं किंतु सत्य ठरेगा वा अन्य प्रकार होगा. क्योंकि कोई द्रष्टांत वा उदाहरणही नहीं मिलता. ब्रह्मेतर सब साध्यसम होजाते हें. किंवा किसको अध्यास? तहां ज्ञान स्वरुप ब्रह्मको नहीं, अध्यासको नहीं, अध्यासके कार्य जीवादिकोतो होही कहांसे. तथा अध्यासरुप हे एसी साक्षी नहीं मिलती, ब्रह्म इसका विवेचक नहीं होसकता, अध्यास अपनेको अध्यासरुपमें नहीं बता सकता ओर उपदेशक श्रोता अध्यासके कार्य हें जेसेके स्वप्नमें हें; इसलिये अध्यासकी सिद्धिही नहीं होती (विशेष बस. गत उत्तर फिलोसोफीमें)॥ अध्यासकी निवृत्तिके विना उसकी अनुमिति नहीं होती. अतः जहांतक सिद्धि करोगे वहांतक उसे अध्यास नहीं कह सकते. वर्तमान तक द्रश्य पूर्ववत हे अतः वर्तमान तक उसे अध्यास नाम नहीं देसकते. स्वप्न जाग्रतका व्यतिरेक मानके अध्यास कहो तोभी नामरुप बदलते रहते हें, जेसेके स्वप्न पीछे जाग्रत, जाग्रत पीछे स्वप्न; कनक कुंडल पीछे कडाही, कडाही पीछे अश्व इत्यादि. अतः उनका मूल

अध्यासरुप न होनेसे उसके परिणाम—फारमभी अध्यासरुप नहीं कह सकते ॥१९०॥

(आ) अतः अनादि एक जीव चेतन ब्रह्म ॥ १९१ ॥ इतर अनादि संस्कारी नाटकी माया ॥१९२ ॥ स्वप्नवत आभास ॥ १९३ ॥ (अप.) **नहीं ज्ञानस्वरुप प्रति भ्रांति असंभव होनेसे ॥ १९४ ॥ ओर बंध मोक्षकी अव्यस्था ॥ १९५ ॥**

अ.—इसलिये अनादिसे एक चेतन जीव-ब्रह्म, द्रष्टा हे ॥ १९१ ॥ उसके सामने उससे विलक्षण संस्कारी नाटकी माया (नाटकमें जेसे परदे पडके खेल होते हें वेसे) नामरुपात्मक (जीव जगत त्रीपुटी) परिणाम धरती हे ॥ १९२ ॥ सो पूर्व संस्काराभ्यास बग स्वभावतः होते हें. जेसेके स्वप्नमें आभास होता हे वेसे द्रश्य प्रतीत होता हे एसा मान्ना चाहिये ॥१९३॥ (१) मायाके जीव वा ईश्वर अंशमें चेतनका प्रतिबिंब पडता हे, जेसेके मृग जलके अंदर वृक्षोंका प्रतिबिंब जान पडता हे वेसे. किंवा जेसे नाटकका फोटो द्रष्टाकी आंखमें होता हे वेसे चेतनमें प्रकृतिके परिणामका प्रतिबिंब (आभास) होता हे. इसलिये इस संसर्गसे ब्रह्मनामा जीवको अध्यास होजाता हे ओर अपनेको अनेक प्रकारका जान बेठता हे (मान लेता हे). सारांश स्वरुपाज्ञानवश जीवत्व भ्रांति होती हे. अब प्रतिबिंबमें मानो वा स्वस्वरुपमें परंतु भ्रांतिका पर्यवसान ब्रह्ममें होता हे. ओर जेसे स्वप्नमें नाना रुप देखता हे वेसे ईश्वरआदि जगत सत्य देखता हे. जब स्वरुपज्ञानसे भ्रांतिका अभाव होता हे तब स्वस्वरुपमें स्थित होता हे ओर नाटकको नाटक जानता हे. (२) दूसरा पक्ष यह हे के न जीव, न ईश्वर, न बंध, न मोक्ष इत्यादि; परंतु ब्रह्मके सामने एसा खेल होरहा हे, इस प्रवाहके बंद हुये स्वस्वरुपमें रहता हे. जब (स्वप्न जाग्रतवत) प्रवाह चलता हे तब पुनः तदाकार होता हे, एसा अनादि अनंत प्रवाह हे. इस पक्षमें चेतन विशिष्ट माया वा माया विशिष्ट चेतन, जीवेश्वर नहीं किंतु द्रष्टा द्रश्यसे इतर संबंधका अभाव हे ॥ १९३ ॥

अपवाद—यह आरोप ठीक नहीं हे क्योंकि ब्रह्म ज्ञानस्वरुप होनेसे ओर उसको भ्रांत होनेका हेतु (अज्ञान) न मिलनेसे ब्रह्ममें भ्रांतिका आरोप असमीचीन हे, क्योंकि ज्ञानस्वरुपमें वा ज्ञानस्वरुपको अज्ञान नहीं होता.—तमप्रकाशवत विरोध हे ॥ १९४ ॥ यदि हे तो स्वरुपाज्ञानके अभावका अभावही रहेगा कारणके ज्ञान प्राप्तिका निमित्त नहीं मिलता. यदि स्वप्नगत सिंहको स्वप्न भ्रमनाशक मानें ओर तद्वत् इस प्रसंगमें मान लें तो आजतक एसा न हुवा किंवा एक ब्रह्मज्ञानी

होनेपर यह जगतरुप नाटक नहीं रहता, परंतु एसा नहीं हुवा हे इसलिये भविष्यमेंभी 'स्वप्न जाग्रत जाग्रत स्वप्न' एसे प्रवाह चलेगा, एसा मान्ना पडता हे. ॥१९४॥ जबके अनादिसे नाटकी माया नाटक कर रही हे तो आजतक कोई जीव बंध वा मोक्ष नहीं हुवा एसा मान्ना होगा ओर जब यूं हे तो भविष्यमेंभी एसाही मान्ना पडनेसे मोक्ष ओर मोक्षके साधन व्यर्थ ठेरे. सारांश बंधमोक्षकी व्यवस्था न होगी ॥ १९५ ॥ जो यह मानें कि बंधमोक्ष होना न होना, यह भावना ओर हम, तुम, यह, बोद्ध, श्रोता, वक्ता यह सब नाटकी मायाके परिणाम हें वा खेल हें, तो यह अध्यारोपभी नाटकीका खेल मानो याने साध्यसम दोष रहा, इसलिये एक जीवब्रह्म ओर उसको अज्ञानादि मान्ना वास्तविक नहीं ठेरा ॥ १९५ ॥

उक्त अपवाद करके विलक्षणवादि प्रथम संक्षेपमें पांच सूत्रोंसे अपने मंतव्यकी भूमिका बांधता हे ततपश्चात स्वमंतव्यका आरोप कहेगा, उसपीछे दोसूत्रोंमें उसका अपवाद होगा.—

(आ.) तथाहि जीव तत्वरुप नहीं दुःख दर्शनमे ॥१९६॥ न परिच्छिन्नवाद आधारकी अपेक्षासे ॥ १९७ ॥ ओर आकर्षणादि भावकी असिद्धिसे ॥ १९८ ॥ अन्यमें स्वरुपाप्रवेश दोष ॥ १९९ ॥ गतिका अभाव वा अनुपयोग ॥ २०० ॥ अतः उभयकी व्यवस्था स्वप्नवत् ॥२०१॥ सत्ताका वैलक्षण्य होनेसे ॥२०२॥ उपचय अपचयके प्रवाहसेभी (व्यवस्था स्वप्नवत्) ॥२०३॥ (अप.) एसा नहीं जीवेश्वर सादि ओर सावयव होनेसे ॥२०४॥ ओर संबंध तथा गति अशक्य होनेसे ॥ २०५ ॥

अ.—प्रथम पांच सूत्रोंमें अध्यस्तसे इतर तमाम पक्षोंका अपवाद करते हें. अर्थात विलक्षणावादकी भूमिकाका ध्यान दिलाते हें—

तथाहि जीव तत्वरुप (अणु वा विभु परिमाण) सिद्ध नहीं होता ॥१९६॥ क्योंकि दुःखादि (रागादि) अवस्थावाला हे. तत्व (ब्रह्म, अणु) की दुःखादिरुप अवस्था नहीं होती यह उपर कहा हे, परंतु दुःखादि तो देखते हें अतःदुःखादिवाला जीव तत्वरुप नहीं हे ॥ १९६ ॥ (सूत्र ८, ९ के विवेचनमें केवल परिच्छिन्न, केवल विभु, परिच्छिन्नविभु ओर नाना विभु यह ४ वाद लिखे हें सोभी सिद्ध नहीं होते, सो १९७ से २०० तकमें कहते हें.) केवल परिच्छिन्नवाद (परमाणुवाद) सिद्ध नहीं होता क्योंकि परिच्छिन्नोंको स्वयंभु विभु आधार होनेकी अपेक्षा होती हे ॥ १९७॥ ओर परिच्छिन्न आकर्षण, गुण, शक्ति,

कर्म, विद्युत, शेषा, धर्म वा स्वभावद्वारा आधारत्व भावकी सिद्धि करें सो सिद्ध नहीं होता. अथवा अन्योऽन्याश्रयभाव या ब्रह्मांडका नित्य गमन मानें सोभी सिद्ध नहीं होता (आकर्षणादि ओर अन्योऽन्याश्रयादिके अनाधारत्व, अनियामकत्वका विवेचन अ. ३ में स्पष्ट किया हे.) इसलिये अधिष्ठानाधार विनाका परिच्छिन्नवाद असिद्ध हे ॥१९८॥ परिच्छिन्नवादसे इतर जो नाना विभुवाद वा विभु परिच्छिन्न-वाद मानें तो स्वरुपाप्रवेश दोष आता हे याने विभुके स्वरुपमें दूसरे स्वरुपको अव-सर नहीं मिलता इसलिये नाना विभु ओर विभु परिच्छिन्नवादभी नहीं बनता ॥ १९९ ॥ ओर यदि एक विभुवाद (ब्रह्मवाद) मानेंतो विभुमें गति नही होती परंतु सृष्टि तो नाना ओर विरुद्ध गति आत्मक देखते हें, ओर जो वोह विभु अकेलाही गति रहित हे तो अपनेमें अपना उपयोग नहीं होसकता इसलिये ब्रह्म निष्फल रहेगा परंतु निष्फलत्व असंभव हे इसलिये एक विभुवादभी नही बनता (बस. गत उत्तर फिलोसोफीमें इसका विस्तार हे) ॥ २०० ॥

इसलिये (उपरोक्त कारणात) उभय अर्थात स्वयंभु नित्य, निर्गुण, अचल, अमर, पूर्ण, समचेतन अधिष्ठान ओर उसमें आधेय व्याप्य वा दृश्य वा विवर्त्त अध्य स्वरुप जो उपादान सहित जगत, इन उभयकी व्यवस्था स्वप्नसृष्टिके समान होजाती हे, एसा ज्ञातव्य हे ॥२०१॥ क्योंकि दोनोंके अस्तित्व प्रकारमें विलक्षणता हे. अ-र्थात जेसा अस्तित्व प्रकार (सत्ता) ब्रह्मका हे वेसा आधेय मायाका नहीं हे किंतु उभयका अस्तित्व स्वप्नसृष्टि ओर तद्द्रष्टा चेतनके समान परस्परमें विलक्षण हे. इसलिये स्वरुपाप्रवेश नियम बाधक नहीं होता (अ. ३ में विवचन हे) ॥ २०२ ॥

वि.—असीम समचेतन ब्रह्म ओर उससे अवर परिणामी माया (प्रकृति) इन उभयकी सत्ता (अस्तित्व प्रकार) विलक्षण हे उभय लक्ष्या लक्ष्य हें. अनिर्वचनीय माया आकाशनीलतावत् ब्रह्ममें अध्यस्त (अधर) हे. प्रकाश प्रकाश्य, अधिष्ठा-नाध्यस्त, द्रष्टाद्रश्यभावरुप उभयका अनिर्वचनीय संबंध हे, उभय अनादि अनंत हें ॥ जेसे स्वप्नसृष्टि ओर द्रष्टाचेतन इन उभयमें विलक्षणता हे, जेसा उ-भयका विलक्षण संबंध ओर विलक्षण व्यापार हे, वेसे माया ब्रह्मके संबंधमें जानके अनुभवमें लेना. उभयके संबंधसे उभयका विशेष उपयोग होता हे क्योंकि उभयके संबंधसे मछली, हीरा ओर जल जैसी नवीनता वत् शक्तिका प्रादुरभाव होता हे.

मायाके शुद्धसत्व ओर चेतनके संबंधसे जो शक्ति उद्भव होती हे उसका नाम ईश्वर हे. यह ईश्वर सर्वज्ञ निरावरण अवद्ध हे. जीव जेसा नहीं, एक ओर ब्रह्मांडमें

व्यापक हे. मायाके मलिनसत्व ओर चेतनके संबंधसे जो शक्ति उद्भव होती हे उसे जीव कहते हें सो अनेक हें, परिच्छिन्न हें ओर रागादिवाले हें, पूर्व मनसोंके (जीवोंके) समष्टि कर्मके फलमें मनसोंसे अमृता, दीपक, मधु, बीज वा किरण-के समान उत्पन्न होते हें ओर यथायोग्यता यथाकर्म शरीर ओर योनीको पाते हें. उसी व्यापक चेतनके संबंधसे जीवशक्ति एसी संज्ञा पाते हें, त्रिपुटी व्यवहार करते हें, संस्कारादिवश कर्म, उपासना, विवेक, वैराग्य, योग, सत्संगादि होनेपर ज्ञान उदय होता हे, चेतनात्मा अकथ प्रकारसे मनोवृत्तिमें स्वयं प्रकाश होता हे. उससे चिद् अचिदकी उक्त ग्रंथी (जीवत्व) भंग होजाती हे ओर वासनाका अभाव होजाता हे, इसलिये पूर्व समान आगे गमन (जन्म-शरीर प्राप्ति) नहीं होता किंतु शरीरके नाश साथ मनसकी अनुत्क्रांति हे याने अपने कारणमें लय होजाता हे ओर प्रत्यगात्मा जेसेका तेसा रहता हे. यही मोक्ष, यही मोक्षसे अनावृत्ति हे. एसे निर्लेप चेतनमें मनसोंका प्रवाह हे; याने जीव प्रवाहसे अनादि अनंत हें ॥२०२॥

सृष्टिकी सर्वथा कभी उत्पति वा महाप्रलय नहीं हुई किंतु मारवाडके टीबों समान ग्रहोंकी उत्पत्तिलय (उपचयापचय) होता हे सो एकदम नहीं किंतु शनै शनै बनते बिगडते रहते हें, इस रीतिसेभी सृष्टिकी व्यवस्था होजाती हे (उपरोक्त चेतनवादका उपचयापचयवाद याद करो) ॥२०३॥ उक्त प्रधान ओर उक्त ईश्वर द्वारा मनसादिकी व्यवस्था होती रहती हे. ग्रहोंका ओर बीजोंका तथा मनसोंका उपर कहे अनुसार अनादि अनंत प्रवाह हे ॥ २०३ ॥

सृष्टिकी महाप्रलय इस पक्षमें दूसरा प्रकार यह हे कि जेसे स्वप्नमें अधिष्ठान चेतन एक हे अन्य नहीं ओर संस्कारी मन जो चेतनाश्रित हे उसद्वारा सूक्ष्म प्रकृतिमेंसे यथा संस्कार सृष्टि बनती हे-तमाम त्रिपुटी व्यवहार होता हे-जीव अनादि अनंत, उसका पुनर्जन्म बंध मोक्ष इत्यादि व्यवहार जान पडता हे, किंवा अन्यवाद (एक ईश्वरवाद—जडवादादि) सुनते हें ओर सूर्य चंद्रादि गति मान होते हें, सारांश देशकालादि सहित सब कुछ जाग्रत समान जाग्रतरुप ओर सत्य जान पडता हे. परंतु यह सब कुछ चेतनकी सत्ता स्फुर्ण विना तो, वनके रुदन समान हे. याने चेतनके संबंधसे चमत्कृतिवाला जान पडता हे. जब संस्कार बंद पडे कि खेल बंद होता हे. पुनः पूर्व संस्कारानुसार दूसरी सृष्टि होती हे जिसे पुनः जाग्रत कह रहे हो ओर गतको स्वप्न कहते हो. इस प्रकार इस ब्रह्मांडकी उत्पत्ति स्थिति लयका प्रवाह हे. चेतन जेसेका तेसा कूटस्थ रहता हे, सर्वका साक्षी प्रकाशक ओर आकर्षक

हे. (उपरोक्त सु. २९ ग ओर विवर्तवाद विचारो. अ. ४ में इस आरोपका रुप हे, बस. के उत्तरार्द्धमें शंका समाधान सहित विस्तार हे.)

उपरोक्त अधिष्ठानाश्रित उपचयापचयवाद ओर स्वप्नवत उत्पति लयवाद मात्रेमें सिद्धांतमें अंतर नहीं पडता क्योंकि जगत किसीका स्वप्न हे वा भ्रम हे एसा नहीं हे. किंतु सृष्टिकी सूक्ष्मता, अद्भुता ओर विचित्रतापर ध्यान पहोंचे इसलिये स्वप्नका द्रष्टांत दिया जाता हे.

उपाधिवाद (सु. २९ ग) में उपाधि, ब्रह्म जेसी समसतावाली मानी हे. विलक्षणवादमें ब्रह्मसे विलक्षण हे. विवर्त्तवादमें ब्रह्म अनादि अनंत ओर उससे इतर (जीवेशादि) अनादि सांत माने हें, इस विलक्षणवादमें माया ब्रह्म उभय याने महेश्वर (ब्रह्म) ओर माया–प्रकृति शक्ति दोनों स्वरुपसे अनादि अनंत हें. (जीव सृष्टि प्रवाहसे अनादि अनंत हे) परंतु विलक्षण हें. किंवा स्वप्नकी रचना समान ब्रह्माश्रित अनावृत्ति त्रिवाद्वत् माना हे. ओर ब्रह्म जैसा सत वा उससे न्यूनाधिक सत्‌रुप कोई नहीं हे तथा ब्रह्ममें स्वगत भेद नहीं हे इसलिये अद्वितीय हे. तदेतर जो कुछ मानो कहो वोह उससे विलक्षण हे, एसा माना हे ॥ २०३ ॥

(अपवाद)–यह अध्यारोप ठीक नहीं हे क्योंकि इस भावनामें जीव ओर ईश्वर सादि ओर सावयव ठेरते हें ॥ २०४ ॥ अर्थात चेतनविशिष्टमनस (अंतःकरणादि)–जीव ओर चेतनविशिष्ट प्रधान–ईश्वर सावयव ओर सादि होनेसे बंध मोक्ष ओर सृष्टिके व्यवहारकी व्यवस्था नहीं होती, इसलिये यह भावना ठीक नहीं हे ॥ २०४ ॥ ओर जेसे रज्जुसर्प, शुक्ति रजत, वा नभनीलताका कोई संबंध नहीं हे वेसे अमूर्त समब्रह्मका ओर उससे विलक्षण सत्तावाली माया (मूर्त) का कोई संबंध सिद्ध नहीं होता ओर पूर्ण समस्वरुपमें अध्यस्तकी गति होनाभी अशक्य हे क्योंकि स्वरुपका अप्रवेश हे ओर परस्परमें विलक्षण हें, इसलिये उभयके मिश्रणके अभावसे जीव वा ईश्वर भाव नहीं बनसकता; इसलिये यह अध्यारोप ठीक नहीं जान पडता ॥ २०५ ॥ ओर पूर्व कहे समान अनावृत्ति त्रिवाद स्वप्नसृष्टिमें मानें, यह हंसी उपजावे एसी कल्पना हे; इसलिये यह मंतव्य ठीक नहीं हे ॥ २०४ । २०५ ॥

बाधवाद.

(आ.) अतः स्वाभाविक बाधरुपावभास ॥ २०६ ॥ प्रकाश्य होनेसे ॥ २०७ ॥ नभ नीलता वदिति ॥ २०८ ॥

अ.—इसलिये ब्रह्मसे इतर सर्व (भावना मान्य, जीवेश्वरादि अष्ट) ब्रह्मचेतनमें स्वाभाविक बाधरुप हुये प्रतीत होते हैं ॥ २०६ ॥ क्योंकि चेतन प्रकाशमें प्रकाश्य होते हैं (जान पडते हैं) ॥ २०७ ॥ जेसे नभकी नीलता बाधरुप हे ओर प्रतीत होती हे वेसे ब्रह्ममें यह सर्व जगत, बाधरुप हुये प्रतीत होती हे एसी, अद्भुद हे ॥ इति, चेतनवादकी समाप्तिका सूचक शब्द हे. ॥ २०८ ॥

वि.–जिसके अभावत्वमें प्रतियोगित्वकी अपेक्षा न हो उसे बाध कहते हैं. जेसा दूरसे पहाड नीलादेख पडता हे वहां जावें तो नीलता नहीं अर्थात प्रतीत कालमें नहीं पीछे आवें तो भासने लगे. सारांश स्वभावही एसा हे के आकाशमें नीलता जान पडे. ईथरकी गति (लहरें) से नीलत्व जान पडता हे परंतु ईथर नीला नहीं, ईथरमें नीलता नहीं, उसकी गतिका नीलरुप नहीं किंतु ईथरका स्वभावही एसा हे के अमुक गति हों तब नीलता जान पडे यही बाधरुपता हे. लकडीको आग देके चकर्दे तो अग्निका चक्र होजाता हे क्यों? गतिके वेगसे जान पडता हे वस्तुतः नहीं हे. यही होते हुये नहीं होनेका नाम बाध हे. इसी प्रकार स्वप्न सृष्टि हे. इसी प्रकार ब्रह्मचेतनमें सब द्रश्य गतिमान त्रिपुटी व्यवहारवाला (जितने मंतव्य–ज्ञानादि–विलक्षण मंतव्य वगेरे) जान पडे, एसा स्वाभाविकही हे. वोह स्वभाव अपने नियमोंसे बद्ध हे. ओर चेतन, आकाशवत शुद्ध निर्लेप हे. जेसे विचित्र नाटकीके अनेक रुप चिदाकाश (दीपक प्रकाशवाले आकाश) में प्रकाश्य होते हैं, वेसे यह बाधरुप व स्वाभाविक अवभास होता हे. याने अनिर्वचनीय शक्तिके[१] प्रस्तुत अध्यारोप अपवाद, चेतन प्रकाशमें प्रकाश्य होते हैं, परमार्थतः एसे (ब्रह्मवत) नहीं हैं, स्वप्नवत प्रतीत मात्र हें यह कथनभी वेसाही हे, ब्रह्ममें गति, गतिज्ञानका अवसर नहीं हे; इसलिये जेसा जानते मानते हें उससे अन्यथा हे यह स्पष्ट हे. कुछ नहीं कहसकते इसलिये मौन हे (शं.) यह ज्ञान केसे ओर किसिको (उ.) स्ववेद्य स्वतः ग्रह ओर अवाच्य हे. गूंगेको गुडके वा स्वप्न के समान लक्षालक्ष्य अकथ्य विषय हे. स्वप्नमें जाग्रतका जाग्रतमें स्वप्नका सिद्धांत, जिसमें प्रकाशित हुवा हे उसीसे बाधरुपका प्रकाश हे. जिसके लिये कुछ नहीं कहा जाता. विशेष (शंका समाधान) अतिरुप होनेसे मौनही उत्तर हे. इति पदचेतनवाद वा चेतनभावना प्रसंगकी समाप्तिका सूचक हे (विशेष बस. उत्तर फिलोसोफीमें हे) ॥ २०८ ॥

---

[१] शक्ति, ब्रह्मशक्ति, मनस्फुर्ण, ब्रह्मस्पंद, स्वभाव.

आर्यावर्त देशकी अंतिम कल्पना वा फिलोसोफी कही गई. यद्यपि अपवादोंका अंत नहीं हे वेसे समाधानोंकाभी; तथापि जो विषय थोडा दोषवाला हो उसको ध्यानमें लेना चाहिये ओर अनुभवमें तोलना चाहिये अर्थात जो विषय अनुभवसे संबंध रखता हे वहां बाह्य तर्क वितर्कादिको अवसर नहीं मिलता इसलिये वाणी मनबुद्धिको चुप रहने ओर अनुभवसे परीक्षा करनेकी फर्ज पडती हे. इति. ॥२०८॥

(नोट)—प्रकृति पुरुषवाद, परमाणुवाद, त्रिवाद यह द्वैत पक्ष हैं. ईश्वरने अभावसे भावरुप नवीन पेदा किया यहभी द्वैतवाद हे ओर अभावसे भावरुप नहीं होसकता याने असंभव पक्ष हे. तो फेर अद्वैत (लाशरीक—शिर्क विनाका) केसे माना जाय? इस विषयमें ५ पक्ष हैं—(१) जेसे स्वप्नमें जीवसे इतर अन्य (प्रेमेटर, स्थूल सूक्ष्म) कुछभी नहीं किंतु जीव अपनी इच्छासे नाना रुपको धारता हे, वा जेसे आकाशही नीलरुप होता हे एसे ब्रह्म, जीवोंके कर्मादि निमित्त विना अपनी इच्छासे लीलामात्र रुपांतरको पाता हे याने दृश्यरुप परिणाम धारता हे, यथेच्छा उत्पत्ति लय होके पूर्वरुपमें आजाता हे ॥ परंतु इस पक्षमें अनेक दोष हैं, अव्यवस्था होती हे, ओर ब्रह्मस्वरुप (ब्रह्मवत्) कोभी यह भान नहीं होता के मेरी इच्छासे दृश्य हे ओर स्वप्नसृष्टिभी इच्छासे नहीं होती इसलिये (२) जेसे स्वप्नवाले जीवका स्वभाव हे के जल तरंगवत् नाना नामरुपको प्राप्त हो वा जेसे आकाशका स्वभाव हे कि नीलरुपताको प्राप्त हो, एसे ब्रह्मका स्वभाव हे के पूर्व पूर्वके अभ्यास (संस्कार) अनुसार उसका रुपांतर (नाना नाम रुपाकारकी उत्पत्ति नाश) होता रहे॥ परंतु इस पक्षमेंभी दोष हे; एकतत्वके नाना परिणाम ओर विरोधी आकार तथा विरुद्ध गति नहीं होसकते. किंतु सावयवमें ही एसा होसकता हे अन्यथा नहीं इसलिये (३) जेसे स्वप्नमें मनका रुपांतर होता हे—नानारुप मनके परिणाम होते हें किंवा नीलता इथरका परिणाम होता हे. तथा स्वप्नके आकार चेतनद्रष्टाकी सन्निधिसे अन्यथा याने चेतनही आकाररुप भासता हे ओर इथर संबंधसे आकाश नीलरुप भासता हे; एसेही ब्रह्मकी इच्छा (शौक) से उसकी अचिंत्य शक्ति (माया—इच्छा) के नानारुप उत्पन्न नाश होते हें—लीला मात्र हें, उभयके अभेद संबंधसे ब्रह्मही परिणामको पाया हो एसा जान पडता हे ॥ परंतु इसपक्षमेंभी व्यर्थता दोष आता हे तथा पूर्वोक्त दोष आते हें इसलिये (४) ब्रह्ममें इच्छा नहीं हे किंतु जेसे स्वप्नमें शक्ति (संस्कारी मनस) का स्वभाव हे के पूर्व संस्कारानुसार अनेक रुपको प्राप्त हो, परिणामोंका उत्पत्ति नाश होता रहे; ओर चेतनके संबंधसे चमत्कारी

जान पडते हें; मानोंके चेतन द्रष्टाका ही रुपांतर हुवा हो एसे जान पडते हें. किंवा जेसे ईथर, नील पीत रुपमें होता हे ओर संबधसे आकाश नींला जान पडता हे एसेही ब्रह्मकी शक्ति (माया) का स्वभाव हे कि नाना परिणामको पावे ओर पूर्व अभ्यासानुसार आकार उत्पन्न नाश हों ॥ परंतु शक्तिका परिणाम नहीं होसकता क्योंकि द्रव्यरुप नहीं हे. इत्यादि दोष हें इसलिये (५) जेसे द्रष्टा चेतनाश्रित स्वप्नमें नानारुप स्वाभाविक जान पडते हें. वहां विषय गति परिणाम देशकाल नहीं हें तोभी वेसे जान पडते हें एसा स्वभाविक होता हे याने मनका वेसा स्वभाव हे. वेसेही ब्रह्मसे अभिन्न परंतु स्वरुपसे विलक्षण अनिर्वचनीय माया (ब्रह्मकी शक्ति) का स्वभाव हे कि विषय, गति, परिणाम, देशकाल स्वरुपतः नहीं हें तथापि तेसे रुपमें मालूम हों (द्रश्य हों) ओर संबंधसे चेतनका रुपांतर होना जान पडता हे. परंतु चेतन समनिर्विकार हे, नानारुप भासना बाधरुप ओर स्वाभाविक हे, जेसाके इसप्रसंगमें कहा हे एसा मान्ना चाहिये. इस पक्षमें द्वैतभाव नहीं रहेता ओर ब्रह्म विकारी नहीं ठेरता. ब्रह्म शक्तिमान हे, यह तो सबकोही मानना पडेगा. इसलिये शक्तिका स्वभाव मान्नेसे द्वैतापत्ति नहीं होती. जो द्रश्यको अध्यास संज्ञा देके अद्वैत मानें तो पूर्वमें अध्यास निषेधक दोष आते हें. इसलिये अध्यासवत् शब्द लगादें तो विलक्षणवाद ओर अध्यासवाद एक नामवाले होजायँ ओर एक जीववादमें भ्रांतिपद निकालके नाटकीमाया ही रखें ओर उसका द्रष्टामात्र स्वीकारें तो विलक्षणवाद ओर द्रष्टिसृष्टिवाद उभय एक संज्ञावाले होजायँ. मायाको अनादिअनंत मानलें, याने यह अनादिअनंत नैसर्गिक अध्यास हे तो उसका कारण मायाभी अनादिअनंत ठेरा, एसा मान लियाजाय तो मायावाद विलक्षणवादमें अंतर नहीं रहता. विलक्षणवाद, भ्रमवादके साथ नहीं मिलता परंतु उपरोक्त रीतिसे मायावाद, अध्यासवादके साथ मिलसकता हे. जो विलक्षणवादमेंसे मायाका परिणाम शब्द निकाल दें तो बाधवादके साथ मिलजाय.

इन ५ वादमें एक दूसरेका खंडन मंडन व्यर्थ हे. ३ बीसी ओर साठ जेसा हे. तथापि जिससे जगत व्यवहारकी व्यवस्था हो वोह समष्टि द्रष्टिसे ठीक हे परंतु व्यष्टिकेलिये एक नियम नहीं हे.

चिद्भावना समाप्त.

अचिद् अध्यारोप (समष्टिवाद).

यहांतक सू. १० अनुसार चिद् अध्यारोपवाद समाप्त हुवा. अब आगे अचिद अथवा अजड भावनाका अध्यारोप लिखा जाता हे (सू. ४ याद करो). यद्यपि किसीकी द्रष्टिमें अचिदवादका समावेश जडवाद (आगे चारवाक मतमें वांचोगे) वा चेतनवादमें नहीं होता (आगे स्पष्ट होगा) तथापि उसमें अनीश्वरवाद हे. जीवको चेतन तत्व नहीं मानके उसका मोक्षभी नहीं माना हे इसलिये उसको प्रकृति (जड) वादमें गिनते हें.

अचिदवाद (प्रकृतिवाद)का आरंभ यद्यपि चेतनभावनाके पीछे हुवा हे तथापि प्राचीन हे. छांदोग्य उपनिषदमें असुरविलोचनकी कथा यादमें लीजिये. मनुमेंभी नास्तिककी शिक्षा हे. वेदोंमें दस्यु, अनार्य, असुर वगेरेकी चर्चा हे. तथापि अचिदवादियोंकी कभीभी कोइ संप्रदाय चली हो एसा सिद्ध नहीं होता; वर्तमानमेंभी नहीं हे. किंतु जबतब छूटक छूटक व्यक्ति हुई हें. जडवादमेंभी अनेक पक्ष हें. आर्यावर्तमें एक दो हें परखंडोंमें विशेष हें. जितने ज्ञात हुये हें उन सबका नीचेके अध्यारोपमें समावेश होजाता हे. चेतनवादि, जडवादिको जडवादि, चेतनवादिको ईश्वरवादि, अनीश्वरवादिको अनीश्वरवादि, ईश्वरवादिको तिरस्कारबोधक—नास्तिक शब्दसे बोलता हे यह ठीक नहीं हे, क्योंकि अपनी मानसिक भावनामें वे असत्यवादपर नहीं हें. हे को ना ओर ना को हे, कहे वोह असत्यवादिनास्तिक होता हे. किंवा कपटी, दंभीको नास्तिक कहसकते हें. सच्चे भावनावादिको कहें तो एक दूसरेकी तरफसे सबको यह पद प्राप्त होजाता हे.॥ आगे सू. २०९ से अचिद प्रसंग हे. (यहां अतिसंक्षेपमें लिखा हे. मूल ग्रंथमें ३०० पृष्टके आसरे हे.)

(आ.) आरंभमें मनुष्य पशूवत् ॥ २०९ ॥ **प्राणभावनामात्र बस नहीं** ॥ २१० ॥ **योग्यता होनेसे** ॥ २११ ॥ **अतः क्रमशः विवेकापत्ति** ॥ २१२ ॥ **प्रत्यक्षसे इतर प्रमाण नहीं** ॥ २१३ ॥ **शेष तदंतरगत होनेसे** ॥ २१४ ॥ **शब्द स्वतंत्र प्रमाण नहीं** ॥ २१५ ॥ **सर्वज्ञत्वके अभावसे** ॥ २१६ ॥ **पूर्वज्ञातादि दोषकी आपत्तिसे** ॥ २१७ ॥ **यह एकका परिणाम नहीं** ॥ २१८ ॥ **ओर न अभावजन्य** ॥ २१९ ॥ **विभु नहीं स्वरुपाप्रवेश होनेसे** ॥ २२० ॥ **यथा देशकाल** ॥ २२१ ॥ **परिच्छिन्न नानाद्रव्यही पूर्ण** ॥ २२२ ॥ **उनके मिश्रणसे त्रिपुटी** ॥ २२३ ॥ **संबंधसे व्यापार**

॥ २२४ ॥ जीव शरीरसे भिन्न नहीं ॥ २२५ ॥ वीर्यादिका परिणाम होनेसे ॥ २२६ ॥ बीज वृक्षवत् ॥ २२७ ॥ इसलिये पूर्व उत्तर नहीं ॥ २२८ ॥ परिणामका सत्व जीव ॥ २२९ ॥ सप्तरंगजन्य श्वेतवत् ॥ २३० ॥ चिद्-चिद् संज्ञा अपेक्षित ॥ २३१ ॥ परिवर्तन पानेसे ॥ २३२ ॥ द्रव्यके संबंध ओर योग्यतासे त्रिपुटी व्यवहार ॥ २३३ ॥ सामान्य विशेषज्ञान क्रमशः ॥ २३४ ॥ जीवनमुक्ति प्राप्तव्य ॥ २३५ ॥ सृष्टिनियमानुकूलवर्तन योग्य ॥ २३६ ॥ सामाजिक उन्नति कर्तव्य ॥ २३७ ॥ उभयमें स्वार्थ होनेसे ॥ २३८ ॥ समष्टिसे इतर ईश्वर नहीं ॥ २३९ ॥ असिद्धिसे ॥ २४० ॥ ओर अन्यथा व्यवस्था होनेसे ॥ २४१ ॥ स्वयंभू आधारकी अपेक्षा नहीं ॥२४२॥ दोष आपत्तिसे ॥२४३॥ ओर आकर्षणादिके सद्भावसे ॥२४४॥ उनमेंसे सनियम गति होनेमें हेतु ॥ २४५ ॥ उत्पत्ति लयमेंभी ॥ २४६ ॥ बीजोंकी उत्पत्ति नाशका अनादि प्रवाह ॥ २४७ ॥ निमित ओर योग्यतासे कार्य ॥ २४८ ॥ अन्य भावोंमेंभी व्यवस्था ॥ २४९ ॥ चिदअचिद भावका उच्छेद ॥ २५० ॥

वृत्ति—मानव प्रजाकी जब उत्पति चली तब मनुष्य, पशुके जेसे होने चाहियें (जेसाके अब बालकोंको देखते हें) ॥ २०९ ॥ वे शरीर पालन—प्राण रक्षा मात्रमें ही प्रवृत रहेतेथे परंतु इतना करनाही उनके लिये बस नहींथा (जेसाके अब देखते हें) ॥ २१० ॥ क्योंकि पशुपक्षिसे इतरप्रकारकी मनुष्यमें शोधने, जान्नेकी योग्यता हे ॥ २११ ॥ इसलिये हम कोन, जगत क्या इत्यादिके विवेकमें क्रमशः प्रवृति हुई[१] जेसाके अबभी देखते हें ॥ २१२ ॥ सोही लिखते हें—प्रत्यक्षसे इतर अन्य प्रमाण (ज्ञानके साधन) नहीं हे ॥ २१३ ॥ ज्ञान होनेमें बाह्येंद्रिय, चक्षु-आदि (ज्ञानतंतु) ओर आंतरमें मन (मगज) यह साधन हें. इससे इतर अनुमान, शब्दप्रमाणादि सब प्रत्यक्षके अंतरगत हें ॥ २१४ ॥ शब्दप्रमाण स्वतः प्रमाण इस लिये नहीं हे के प्रत्यक्षके पीछे उसकी सिद्धि होती हे ॥ २१५ ॥ ओर कोई निर्भ्रांत, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान नहीं हे कि जिसका शब्द स्वतंत्र स्वतः

२३०—आसमानी, पीत, रक्त, जामबवी, भगाजामबवी, हरित (नील) ओर नारंगी इन ७ रंगके मिश्रणसे श्वेत रंग पेदा होजाता हे. इनमें ३ रंग मुख्य, शेष तदंतरगत हें. यह वर्तमान केमिस्टरीकी शोध हे. ॥

[१] २७६ से २९५ तकमें इसका भाव आवेगा.

प्रमाण मानाजाय ॥ २१६ ॥ ओर सर्वज्ञोंके जितने ग्रंथ कहाते हें वे (वक्ष्यमाण) पूर्वज्ञातादि दोष याने अपवादोंमेंसे किसी न किसी अपवादके विषय होजाते हें ॥२१७॥ परीक्षामें आजाने पीछे ओर उपयोग होनेसे किसीके वाक्यको प्रमाण मान लेना यह अथवा विश्वाससे किसीके शब्दको स्वतः प्रमाण मान लेना यह दूसरी वात हे ॥ २१७ ॥ अब आगे प्रमाणसिद्ध विषय जनाते हें.—

यह द्रश्य जगत किसी एक तत्व वस्तुका परिणाम नहीं हे क्योंकि एक, अनेकरुप ओर विरुद्ध क्रिया गुणवाला नहीं होता, जेसाके देखते हें ॥ २१८ ॥ यह जगत अभावजन्यभी नहीं हे क्योंकि अभावसे भावरुप नहीं बनता ॥ २१९ ॥ ओर कोई विभु वस्तुभी नहीं हे क्योंकि द्रश्य परिच्छिन्नका उसके स्वरुपमें प्रवेश नहीं होसकता ॥ २२० ॥ जेसेके भावनामें देशकालको विभुवस्तु मानते हें परंतु वे स्वरुपतः वस्तु नहीं हें ॥ २२१ ॥ जो उनका कुछ स्वरुप होता तो अन्य परिछिन्नोंको अवसर न मिलता परंतु परिच्छिन्न हें. अतः देशकाल विभु नहीं हें, भावना मात्र हें एसा सिद्ध होता हे ॥ २२१ ॥

देशकाल रहित इस अनंत (असीम) ब्रह्मांडमें परिच्छिन्न असंख्य नाना प्रकारके द्रव्य (गुण क्रियावाले) ही पूर्ण (भरे हुये) हें ॥ २२२ ॥ उन द्रव्योंके मिश्रणसे ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान, द्रष्टा द्रश्य दर्शन, कर्ता कर्म क्रिया, भोक्ता भोग्य भोग, विषयी विषय ओर विषयके साधन, एसे नाना त्रिपुटी होती हें ॥ २२३ ॥ जेसेके शरीर, इंद्रिय, मगज (ब्रेमेटर—चेतनशक्ति—चित्त) ओर शब्दादि पंचविषय हुये हें तथा शरीरके अंदर अन्यक्रमी ज्ञाता, भोक्ता, द्रष्टा, कर्ता होते हें॥२२३॥ इनके संबंधसे जीवनव्यापार ओर जगतका व्यवहार होता हे ॥ २२४ ॥

जीव यह शरीरसे इतर कोई तत्व पदार्थ नहीं हे ॥ २२५ ॥ क्योंकि वीर्य रज, स्वभाव, अहार, संग, संबंध ओर संस्कार (इम्प्रेशन)का ही परिणाम (फल) हे एसा देखते हें. याने जीव, शरीरसे भिन्न नहीं जान पडता ॥ २२६ ॥ जेसे बीजसे वृक्ष ओर वृक्षसे बीज होता हे वेसे जीव बनता हे ॥ २२७ ॥ इसलिये शरीरकी उत्पत्तिसे पहेले ओर शरीरके नाश पीछे जीव कोई वस्तु नहींथीं ओर न रहती हे अर्थात जिसे पूर्वजन्म, उत्तरजन्म, पुनर्जन्म कहते हें सो वात नहीं हे. ॥२२८॥ जेसे ७ रंगोंके मिलानेसे सातवां श्वेत रंग पेदा होजाता हे सो ७ रंगोंका परिणाम हे वेसे शरीरके तत्वों (रजवीर्यादि) का जो परिणाम हे उसका सत्व जीव हे ॥२२९॥ २३० ॥ अमुक चेतन, अमुक जड यह संज्ञा अपेक्षासे कही जाती हे ॥ २३१ ॥

क्योंकि जिसे जड कहते हें उसका रसायणीय संयोग बदलनेपर चेतन संज्ञाके योग्य, मिश्रण होजाता हे, वेसेही चेतन वास्ते जान लेना. सारांश किसीकी जड वा चेतन संज्ञा नहीं हे ॥ २३२ ॥ कार्य द्रव्योंके संबंधसे ओर उनकी योग्यतासे त्रिपुटी व्यवहार होता हे ॥ २३३ ॥ जो सामान्य ज्ञान ओर विशेष ज्ञान हे सो किसीको एकदम नहीं होता किंतु क्रमशः होता हे ॥ २३४ ॥ जेसेके बालकोंके मूल उपादानमें होता हे ओर पीछे वे कुदरतमेंसे वा शिक्षकोंद्वारा सीखते हें ॥ २३४ ॥ इस जीवनमें अनिष्ट रहित जीवन हो एसा जीवन अर्थात जीवन मुक्ति प्राप्त करने योग्य हे ॥ २३५ ॥ जिज्ञासुको जरुरी जरुरी सृष्टिनियम जानके उनके अनुकूलवर्तना चाहिये ॥ २३६ ॥ ओर सामाजिक उन्नति कर्तव्य हे ॥ २३७ ॥ क्योंकि इन दोनोंमें अपना स्वार्थ (जीवनमुक्ति) रहा हुवा हे. इन उभय कर्तव्य करनेसे स्वार्थ सिद्ध होता हे ॥ २३८ ॥

इस समष्टि गुण, शक्ति ओर कर्मवाले ब्रह्मांडसे इतर कोई अन्य ईश्वर नहीं हे अर्थात जगतकर्ता धर्ता हर्ता व्यवस्थापक कोई ईश्वर नहीं ॥ २३९ ॥ क्योंकि कोई प्रकारसेभी उसकी सिद्धि नहीं होती किंतु असिद्धि होती हे ॥ २४० ॥ ओर किसी एक सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ ईश्वरके विना जगत रचनाकी व्यवस्था होजाती हे. इसलिये (जिसको उपास्य मानाजाय वा जिसपर विश्वास कियाजाय वा जो कर्म फलदाता हो एसा) कोई ईश्वर नहीं हे ॥ २४१ ॥ इस परिच्छिन्न ब्रह्मांडके टिकनेके लिये किसी एक स्वयंभु (स्वयं सिद्ध) आधारकी अपेक्षा नहीं हे ॥ २४२ ॥ क्योंकि उसको आधार मान्नेमें अनवस्था वा आत्माश्रय दोष आता हे ॥ २४३ ॥ ओर आकर्षण, गुण, शक्ति, गति, विद्युत, हिरण्यगर्भ, धर्म, स्वभावके सद्भावसे आधारत्वकी व्यवस्था होजाती हे याने अन्य ईश्वरकी अपेक्षा नहीं रहती ॥ २४४ ॥ उनमेंसे आकर्षण ओर उपचयापचय व्यापार, सानियम गति होनेके हेतु होजाते हें ॥ २४५ ॥ ओर वे ग्रहोंकी उत्पत्तिलयकेभी हेतु होते हें ॥ २४६ ॥ इस विचित्र कार्यका रचनेवाला कोई बुद्धिमान ईश्वर होना चाहिये एसाभी नहीं हे क्योंकि अनादिसे बीजोंकी उत्पतिनाशका प्रवाह हे. (जेसेके विचित्र वृक्ष फल-फूलादि देखते हें उससे विचित्र कार्य होते हें) ॥ २४७ ॥ जगतके कार्य (क्रिया, ग्रहादि होना उनमें प्राणियोंका व्यवहार, सरदी, गरमी, वर्षा, भूकंपादि, दुःख-सुख यह सब) अमुक निमित ओर पदार्थोंमें जो योग्यता हे उनसे होते हें इस-लिये ईश्वर मान्नेकी अपेक्षा नहीं हे ॥ २४८ ॥ इस अध्यारोपसे इतर जो अद्वैत

द्वैतादि भाव माने जाते हैं उन रुपोंमेंभी इस अध्यारोप (समष्टिवाद) को मानके व्यवस्था होसकती हे ॥ २४९ ॥ इसलिये चिद्वाद, अचिद्वाद इत्यादि भावना वा संज्ञाका उच्छेद हे. निर्मूल हे ॥ २५० ॥

विशेष वर्णन.

जब मनुष्यसृष्टिका आरंभ हुवा तब मानव जीवन पशुके समान था उसके लिये प्रकृतिही विश्वासप्रदथी याने यथाप्रकृति स्वभाव वर्ततेथे. जन्मसे पहेले ओर मरनेके पीछे समानताथी याने जीवत्वकी विशेषताका भान नहीं था. उस पीछे जो अपने शरीरके अनुकूल वोह पसंद, जो प्रतिकूल वोह नापसंद, एसे जीवन भावना हुई. क्योंकि मनुष्यमें एसी स्वाभाविक योग्यताथी. तीन प्रकारकी प्रवृतिथी, स्वभाविक, सकंप, निष्कंप; इससे जीवन होताथा. इष्टकी जिससे प्राप्ति हो सो साधन माना जाता था. इतने कहनेसे सब विधि निषेध कहा गया अर्थात जिससे जीवन हो वोह विध जिससे दुःख हो वोह निषेध. ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म, बंध-मोक्ष, स्वर्ग-नरकादिके विषय श्रवणकीभी अपेक्षा नहींथी क्योंकि यह विषय जीवनमें उपयोगी नहीं होतेथे. अर्थात जिस मंडलमें ईश्वरादिकी भावना पेदा हुईथी उससे उपेक्षा रखतेथे ॥ २०८ ॥

परंतु यह **प्राणपक्ष [प्राण रक्षण]** याने प्राणपोषण मात्र भावना पूर्ण नहीं हे, एसा परस्परके मथनसे जान पडा, क्योंकि इसमें मनुष्यके स्वभाव, बुद्धि ओर विवेक शक्तिकी सफलताका अभाव होता हे; परंतु वर्तमानमें उसकी विचित्र सफलता देखते हें. १ दुःख सुख अनिच्छित क्यों होते हें? २ जो विवेक न करें तो इष्ट विषयकी अव्यवस्था होती हे, जेसाके परोक्ष विषयका विवेक न हो तो संभव हे के भविष्यमें हानी हो याने ईश्वर पुनर्जन्मादि हों ओर न मानें तो हानी होगी ३ इत्यादि कारणवश परोक्ष अपरोक्ष, चिदचिदके विवेकमें प्रवृति होती हे. (कर्तव्य हे) ॥२१२॥ सो क्रमज विवेक आगे कहते हें.—प्रत्यक्षानुमान शब्द तीनों प्रमाण मान्नेसे एक प्रत्यक्ष मान्नेमें लाघवता हे क्योंकि सबका समावेश उसमें होजाता हे. (आगे द. सं. में चारवाक प्रसगमें वांचोगे).

जिसका करण (साधन) ज्ञान नहीं ओर जिस ज्ञानका बाह्य (इंद्रिय) करण नहीं सो निर्णयका साधन हे. **अर्थात प्रत्यक्षप्रमाण ओर अनुभव** यह निर्णयके साधन हें ओर नियम व्याप्ति अर्थात जो सृष्टिनियम ओर उनकी व्याप्ति देखते हें सो. इस प्रकार इंद्रियजन्य जो नियम व्याप्तिका ज्ञान ओर मन—मगजने प्रत्यक्षद्वारा जो अनुभव ज्ञान स्वयं संपादन किया, यह निर्णय करनेके साधन हें

॥ २१३ ॥ शेष अनुमानादि तदंतरगत हें ॥ २१४ ॥ ओर शब्द मात्र निर्णयका साधन नहीं क्योंकि प्रत्यक्षाधीन होनेसे परतंत्र हे ॥ २१५ ॥ क्योंकि सर्वज्ञत्व, सर्व शक्तिमानत्वका अभाव हे (अ. २ प्रमाणाधिकरण ओर असर्वज्ञ अधिकरणमें वांचोगे) सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ मानें तो असमर्थादि दोष आजाते हें ॥२१६॥ ओर जिनको सर्वज्ञके वाक्य मानते हें उनमें पूर्वज्ञातादि दोष जान पडते हें. वे यह हें:—

(१) जिस ग्रंथ वा वाक्यमें एसा ज्ञान हो कि जो उससे पूर्व मानव सृष्टिमें हो. (२) जो मनुष्यके इतिहास वा गाथाका सूचक हो. (३) जिसमें ईश्वरसे उतरते दरजेवालेकी साक्षी हो. (४) जिन वाक्योंमें पूर्वापर विरोध हो. (५) वा नैसर्गिक नियमके विरुद्ध बोधक हों. (६) जो यथा अधिकार सर्वके वास्ते न हो. (७) जिस कथनको कालांतरमें बदलना पडे या जो बदला गया हो. (८) जो वाक्य यथार्थ बोधक न हो. (९) जिसका अर्थ न होता हो वा न होसकता हो. (१०) जो किसी दूसरेके वाक्यकी अपेक्षा रखता हो.

एसा ग्रंथ वा वाक्य वा कथन, सर्वज्ञ ईश्वरका नहीं होसकता. क्योंकि नं. १, २, ३, ४, ६, ७, १० से ईश्वर सर्वज्ञ नहीं; नं. ४, ५, ८ से ईश्वर अज्ञ, असत्यवक्ता, ओर असर्वज्ञ; नं. ९, १ से ईश्वर व्यर्थबकवादि, एसा सिद्ध होनेको जाता हे. इसी प्रकार मनुष्यको सर्वज्ञ मानें तो कितनेही दोष आतेहें. जितने ग्रंथ सर्वज्ञोंके कहाते हें उनको आरंभसे अंततक देखोगे तो इनमेंसे कोइ न कोई रुप पावोगे. यथा हमसे बुद्धिमानोंने यूं कहा. अमूकने अमुकके साथ यूं किया. अमुक ग्रंथ ईश्वरकृत हे. ईश्वर कुशती करके चला गया. हमने हुकम बदल दिया. ईश्वरके नामपर आरंभ करताहूं. इत्यादि वाक्य ईश्वरके नहीं होसकते. तथाहि कहवाते मनाते जो ईश्वरीय ग्रंथ हें उनमें परस्परमें मत भेद हे—यथा कोई पुनर्जन्म बोधता हे, कोई अपुनर्जन्म बताता हे, कोई अनुपादान अभावजन्य सृष्टि मानता हे. कोई उपादानजन्य सूचता हे, कोई जीवको अनादि कहता हे, कोई सादी मानता हे. इत्यादि. ओर कहवाते मनाते सर्वज्ञ मनुष्यकृत ग्रंथोंमें परस्पर मतभेद हे. यथा कोई ईश्वरको साकार, कोई निराकार बताता हे. उनके मोक्षस्वरुप ओर साधनमेंभी मतभेद हे. इत्यादि. इसलिये कोइभी सर्वज्ञ वा सर्वज्ञकृतग्रंथ वा ईश्वरीयग्रंथ सिद्ध नहि होता [विशेष विस्तार मूलमें हे.] ॥ २१७ ॥

(शंका) सृष्टिके आरंभकालमें अन्यके उपदेश विना विशेष ज्ञान नहीं होता इसलिये किसी स्वयंभु शिक्षकके उपदेशकी आवश्यक्ता हे (उ.) आरंभमें सामान्य

ज्ञान होता हे वोह बीजोंमें परंपरासे हे सो उद्भवता हे. एसेही योग्यता होनेसे विशेष ज्ञान क्रमशः होता जाता हे, जेसेके वर्तमानके बालकोंमें क्रम देखते हें. यह विशेष ज्ञान एक साथ संपादन नहीं हुवा किंतु पीढीओंमें हुवाथा ओर अभी संपादन होता जाता हे. विशेषज्ञान पीछे निष्कंप प्रवृति होती हे सो प्रवृति सुखके लिये होती हे. ओर अनेक निमित्तोंसे विचित्र प्रवृति होती हे वेसेही उसका विचित्र फल होता हे. प्रवृतिओंके फलमेंही विशेषज्ञानकी प्राप्ति हे. आरंभके सामान्यज्ञानसे इत्तर अप्रमात्व होता हे. पीछे क्रमशः विशेषज्ञान मिलनेपर उसकी निवृती होती हे, ओर एक दूसरेको सिखाया जाता हे. सो ही भाषा ओर पद पदार्थ ओर उनका संबंध हे, जेसाके देखते हें. जो यह मानलिया जाय के आरंभमें विशेषज्ञान चमत्कार (ईश्वरादि)से मिला तो असत्य प्रवृतिकाभी वोही हेतु होगा क्योंकि असत छल दंभादिके निषेध करनेसे असत्यादिके संस्कार डाले. असत्यादि करना सत्यादिसे मुशकिल काम हे क्योंकि सत्यादि स्वतः सिद्ध हें. असत्यादि बनावटी हें ओर विशेष ज्ञान हे. परंतु ईश्वरवादि ईश्वरको कलंक रहित मानता हे. अतः विशेषज्ञान उसकी तरफसे नहीं किंतु सृष्टिमें क्रमशः हुवा हे, उसका उत्तरदाता मनुष्य हे ॥ २१५ ॥

इसप्रकार शब्द स्वतंत्र नहीं हे. तथापि जो सत्य, हित, उपयोगी ओर सृष्टिनियमानुकूल बोधक वाक्य हो तो वोह किसी व्यक्ति वा किसी धर्मग्रंथकाभी हो उसे स्वतंत्र परतंत्र दृष्टि छोडके स्वीकार लेना चाहिये. विश्वास मात्रसे नहीं ॥ २१६ ॥

अनुमानमात्रसेभी निर्णय नहीं होता क्योंकि वोह परतंत्र हे (चारवाक, प्रसंगमें वांचोगे). जब शब्दानुमानकी यह दशा तो दुसरे प्रमाणों वास्ते तो क्या कहना हे॥२१७॥ प्रमाणसे सिद्ध होता हे के **चेतन**भावना कल्पना मात्र हे ओर यह जगत किसी एक वस्तु (ब्रह्म) एक शक्तिका परिणाम हो एसा नहीं हे (उपर शक्तिवाद, अभिन्ननिमितोपादानवादमें कहा हे), न एकमेंसे उद्भव होती हे, ओर अभावसे भावरुप हुई हो, एसाभी नहीं हे क्योंकि एसा होना असंभव हे, यह उपर कहा हे, ओर न देशकालादि विभु कोई वस्तु हे क्योंकि यदि स्वरुपतःविभु कोई वस्तु हो तो द्रश्य परिच्छिन्नका उसके स्वरुपमें प्रवेश नहीं होसके. ओर द्रश्य तो हे. सारांश देश वस्तु नहीं हे किंतु विषयीका भाव मात्र वा विषय विषयीके संबंध जन्य एम्प्रेशन (प्रभाव) मात्र हे. तेसेही कालभी स्वरुपतः वस्तु नहीं हे किंतु गतिओंके प्रभावसे विषयीकी कल्पना हे. परंतु अभ्यासवश देशकाल माना जाता हे, देशकालके विना किसी वस्तुको नहीं देखता. वेसेही ईश्वरभी कोई विभु

वस्तु नहीं हे (आगे वांचोगे) फलितार्थ विभु कोई वस्तु नहीं हे ॥ २१८ से २२१ तक ॥

इसलिये परिच्छिन्न नाना द्रव्यंही तत्व हें. वे प्रत्येक अमिश्रित, परिच्छिन्न, गतिमान, सगुण द्रव्य हें जिसको व्यवहारमें परमाणु कहते हें उनमें गुणादि योग्यता हे ओर अवस्थांतरको प्राप्त होते हें क्योंकि वे अकेले नहीं रहते किंतु किसी न किसीसे मिले झुले रहते हें, यथा सत्वरजतम यह तीनों द्रव्य एक दूसरेके विना नहीं रहते ओर कम ज्यादा उद्भव तिरोधित होते रहते हें. (सांख्यमें वांचोगे) वे मालाके मनकोंके समान भरपुर हें. उनसेपर अन्य नहीं हे ॥२२२॥ इनके संबंध, असंबंधसे विषय ओर विषयी (जीव) बनते हें, जो विषयी होते हें वे एक दूसरेको विषयभी करते हें जेसेके योगी नामका विषयी दूसरे विषयीको विषय करलेता हे. मलमें कमी (विषयी) पेदा होते हें वे मलको विषय करने योग्य होते हें. एसा होनेका कारण यह हे के तत्वोंका रसायणीय संयोग एसा होजाता हे, ओर वोह मिश्रण अवस्थांतरको प्राप्त होता हे. जेसे मुव्वे, बंबूल ओर गुडके रसायणीय मिश्रणसे गरमी ओर ओक्षजन हाईड्रोजनके मिश्रणसे नवीन जल होता हे एसे, विषयके विषयी बनते हें ॥ २२२ ॥

विषय विषयीके मूल होनेसे मूल द्रव्य उनके विषय नहीं होते, कार्य व्याप्तिसे उनकी मान्यता हे. इतना समझनेसे जाना गया होगा के ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान, द्रष्टा द्रश्य दर्शन, भोक्ता भोग भोग्य, कर्ता करण कर्म, प्रकाशक प्रकाश प्रकाश्य, यह त्रिपुटी तत्वरुप नहीं किंतु द्रव्योंकी अवस्था विशेष हें. संबंधद्वारा उनका काम ओर उपयोग जुदा जुदा हे. व्यवहारमें जो उनके लक्षण कियेजाते हें वे व्यवहार द्रष्टिसे मान्य हें. वस्तुतः जन्य अवस्था हें ॥ २२३ । २२४ ॥

जिसे जीव कहते हें सो शरीरसे भिन्न वस्तु नहीं हे क्योंकि किसीको शरीरसे भिन्न नहीं जान पडता. शरीरके नाश पीछे कहीं नहीं देखपडता. जीववादि अनुमानके गोले चलाता हे परंतु संतोषकारक साक्षी नहीं मिलती. कोई जीवने में, शरीरसे भिन्न हुं एसी साक्षी नहीं दी. जो भूत वगेरेकी दंतकथा चलती हें वे बनावटी कल्पित वाते हें किंवा जहां भूत जान पडता हे वहां भ्रम हुवा हे याने यथासंस्कार ईथरमें सूरतका अवभास होजाता हे. उसे भूत, पितृ, देव मानलेते हें.

जीव शरीरसे भिन्नकी सिद्धिमें **पुनर्जन्म, लोकपरलोकगमन** होना कहते हें उसमें बालकका दूध पीना, चिडियाके बच्चोंका सर्प बाजसे डरना, अन्यसे न डरना,

एक माबापके संतान विलक्षण होना, दुःखी सुखीके जन्म होना, बालकोंकी योग्यतामें अंतर होना, अनिच्छित दुःख भोग होना इत्यादि हेतु, द्रष्टांत ओर युक्ति देते हें परंतु यह सब बुद्धिके चोचले ओर संस्कार-भावनामात्र हें. (१) रजवीर्यमें यथा खूराक योग्यता होती हे, यथा संस्कार ओर अभ्यास उसमें रचना होती हे ओर इस प्रकार उसमें स्वभाव बंधाता हे. (२) संसर्गकालमें जेसे विचार होते हें उसका असर होता हे. (३) गर्भकालमें जेसी खुराक ओर बाहिरके संस्कार तथा चितके विचार हों उसानुसार गर्भपर असर ओर उसका अभ्यास होता हे. (४) जन्म पीछे यथा-खुराक ओर संग संबंध, संस्काराभ्यास होता हे. (५) बाह्य सृष्टिकी फोर्सका असर पडता हे. (६) देशकाल ऋतु स्थितिका असर ओर प्रभाव सब प्रसंगोंमें हे. (७) उस प्रभका प्रयत्न स्वभाव होता हे. (८) इन कारणोंसे सब कुछ होजाता हे. (९) पशुके गर्भमें पशुवत्, पक्षीके गर्भमें पक्षीवत्, मनुष्यके गर्भमें मनुष्यवत् योग्यता हे. जेसा रसायणीय संयोग, जेसे साधन, जेसा बीज, जेसी धरती ओर साधन, वेसा फल होजाता हे. घोडीके सामने घोडा रखके दूसरेसे वीर्य स्थापन कराते हें तो सन्मुखके जेसी संतान होती हे. अश्वके वीर्यमें जेसा रंग मिलादें वेसे रंगकी संतान होती हे. इसी प्रकार एककी संतानोंमें भेद पडजाता हे. दुःख सुखके भोग होते हें, पशुपक्षी संतानका पालन करते हें, अहार, भय मैथुनादि व्यवहार होने लग जाते हें. सारांश उपरके कारणोंको लेके पुनर्जन्मकी तमाम कल्पनाका निषेध होके उपरकी ९ बातोंसे विलक्षण व्यवहार स्थापन होजाता हे. यथा जंगलमें व्याही हुई गायका वछडा माताके चाटने, हवा-गरमी पानेसे खडा होता हे, इधर उधर मुंह लपकाता हे, माता स्तनको उधरकी तरफ करती हे, होते होते ओजरीको शांतिकारक दूध मिल जाता हे याने स्तनके लगनेपर ओष्ट चलने लग जाते हें. एसेही बालकको जब वोह वस्तु मिलती हे के अंदरकी ओजरीके तंतुको शांति मिले तब चुप होजाता हे उसी संस्कारसे फिर प्रवृति होती हे. जहां यह प्राप्ति ओर मेटरका आकर्षण मिलता हो वहां ही (मातादि) रुची होती हे. इसप्रकार ज्यों ज्यों बडा होता हे त्यों त्यों पूर्व संपादित (९ कारण) शक्तियोंका उदय होता हे; द्रष्ट श्रुतका उपयोग होता हे याने **भेदग्रहण, तारतम्य, वर्गीकरण, योजना, विवेचन, स्मरण, शंका समाधान, निश्चय, अनुमान**ादिका व्यवहार होने लगता हे. रागादिअष्ट तो पशुपक्षीमेंभी होते हें परंतु मनुष्यमें विशेषता हे क्योंकि उसके बीज ओर साधनोंमें अंतर हे. इसलिये पूर्वजन्मके संस्कार हेतु नहीं.

पूर्वजन्मका ज्ञान किसीकोभी नहीं होता, क्यों? कुछ होता तो किसी न किसीको कुछ स्मरण हो, परंतु हेही नहीं अतः कहांसे हो. (शं.) जेसे एक शरीरके परमाणु दुसरेमें जाते हें एसाही पुनर्जन्म हे. (उ.) यह आवागमन पूर्व कर्माधीन नहीं, क्योंकि उसमें जीवत्व नहीं हे. दवाई लेते हें, भोजन खाते हें सो यह पुनर्जन्म नहीं हे. (विशेष मूलमें).

जीवतत्व ही सिद्ध नहीं होता तो पुनः जन्म किसका? विचारो.-(१) तत्व (अणु विभु) पदार्थकी दुःखादि भोक्तृत्वरुप अवस्था नहीं होसकती. (२) ईश्वरके अंश, स्फूर्ण, श्वास, शक्ति, आज्ञामेंभी दुःखादि नहीं होसकते. (३) जीवको औपाधिकरुप देवें तोभी उपाधिमें दुःखादि हें, उसमें नहीं. (४) जीवको नैमित्तकरुप दें तोभी उसके स्वरुपमें भोक्तृत्व नहीं आता. (५) जीवको भ्रांतिरुप मानें तो दुःखादि वेसे नहीं होते. भ्रांतिरुपमें दुःखादि भोग नहीं होते. (६) जो अतत्व (मध्यम--जन्म) मानो तो स्वसिद्धांत त्याग ओर अजीवत्व प्राप्त होता हे. ओर आभासरुपमेंभी एसा ही हे; इसलिये जीव तत्ववस्तु नहीं होनेसे पूर्वजन्म नहीं, तो फेर पूर्वके प्रारब्ध, संचितकी तो वातही क्या. कर्मानुसार भोगबंध ओर अगामी मोक्ष कहां रहे, उनके अभावसे प्रचलित कर्म, उपासना, भक्ति, ज्ञान, ईश्वरकृपा ईत्यादि साधनोंकी समाप्ति होगई. ॥ २२५ । २२८ ॥

विषयी (जीव) शरीरका व्यापक परिणाम वा सेंटरोंका समूह हे. उससे नवीन नहीं किंतु उसीके गुणादिकी योजना हे. जेसे जल, मछली, गिलो, दुध, दही, बीजवृक्ष, वा ७ रंगजन्य आठवां श्वेत रंग हे[1] वेसे हे. क्योंकि अणुओंके रसायणीय मिश्रणसे मध्यम (कंपोड) रुप हे. इसका मुख्य सत्व ब्रह्मरंध्रमें हे जिसे ब्रेमेटरभी कहते हें क्योंकि वहां उसका विशेष उपयोग होता हे. चित, बुद्धि, मन ओर अहंकार तथा राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, ज्ञान, संस्कार (ईम्प्रेशन) यह सब उसके तरंग (अवस्था-परिणाम-स्थिति) हें. वे क्रमशः होते रहेते हें. जेसे प्रकाश, रबड, कनक कुंडलादिकेरुप (संकोच विकास) होते हें वेसे उसकी योग्यता ओर बाह्य संबंधानुसार वे होते हें. उनके मुख्य कारण ९ उपर कहे हें. इनके उपयोगमें विद्युतादि अनेक निमित्त सहकारी हें. उपरोक्त भेद ग्रहणादिकी शक्ति होनाभी इन्हीका रिजिल्ट हे.

सो जीव इंद्रिय (ज्ञान--कर्मतंतु) रुप नहीं हे क्योंकि इंद्रियोंसे काम लेने-

[1] इन ७ का विस्तार मूलमें.

वाला हे. वेसेही कर्मतंतु रुप नहीं हे क्योंके वे उसके आज्ञाकारी हें. तथाहि जीव प्राणरुप नहीं हे, क्योंकि उसका सहायक हे ओर जीव उसके रोकने छोडनेमें समर्थभी हे.

शरीरमें जहांका तहां उपयोग होजाता हे, उसका कारण शरीरकी रचना, मगजके सेंटर ओर ज्ञानतंतु कर्मतंतुओंका संबंध हे. जेसे रवड वा विजलीद्वारा उपयोग होता हे वेसे जीवद्वारा तुर्त उपयोग होता हे. ओर बाह्य पदार्थोंका इंद्रियद्वारा उपयोग होता हे. जेसे गोलक, तंतु ओर साधन हों वेसे उपयोग होता हे. विषय विषयीके संबंध होनेमें इंद्रिय हेतु हें. तीन प्रकारसे उपयोग होता हे. (१) हृदय वगेरेके कार्य स्वाभाविक होते हें. (२) जीवके रागादि स्वतंत्र होते हें ओर इंद्रियोंका उपयोग जीवद्वारा होता हे. (३) प्राण उन्मेषोन्मेषादिका दोनों (कुदरत-स्वाभाविक ओर जीव) द्वाराभी होता हे. बाह्य पंचविषयका विषयीको अंतरमें ज्ञान होता हे वा संबंधसे विषयीका भाव (ईम्प्रेशन) इसका नाम विषय हे, इन उभय पक्षमें पहेला पक्ष बलवान ओर सीधा सिद्ध हे (बस. पूवार्द्धमें विस्तार हे) ॥२२९। २३०॥

अमुक चेतन, अमुक जड, यह अपेक्षासे संज्ञा मानी गई हे. क्योंकि जिसे जड कह रहे हो वही रसायणिय संयोग बदलनेपर चेतन लक्षणवाला जान पडता हे ओर एसेही चेतन, जडरुपमें आजाता हे. इसलिये चिद् अचिद्की तकरार व्यर्थ हे ॥ २३१ । २३२ ॥

जेसे प्रकाश अपना आप विषय नहीं किंतु संबंध पानेसे अन्यका विषयक हे वेसे जीवभी अपना आप विषय नहीं हे. जेसे कनेर वृक्षका रुपांतर (धोलीसे लाल) वा कपासका रुपांतर (धोलीसे लाल रंगकी रुई पेदा हो एसा बीज बना लेना) होता हे, जेसे दूधादिमें दूधका रुपांतर होता रहता हे याने उससे दही, दहीसे मक्खन होता हे, वेसे यह जीव मावापके रज वीर्यकारुप हे इसलिये पूर्व ओर जन्म पीछे खुराकादि होनेसे नवीन, इसप्रकार उभय समुच्चयका रुपांतर ओर भाग हे. याने दूधमक्खनके समान हे.

इतना कहनेसे जीवके जन्मका प्रवाह हे यह स्पष्ट होगया. बीज वृक्षवत् किंवा पूर्व नवीन मिश्रितके प्रवाह समान उत्पत्ति नाशका प्रवाह हे ओर वोह संस्कार सहित प्रवाह होता हे जेसाके उपर नो कारणमें कहा हे. उससे जीवके प्रारब्ध, संचितका व्याखान होजाता हे. माता पिताके उपदेशादि हों तो संतानके-

भी हों इत्यादि प्रारब्ध हे. माता पिताके विचारोंका अवतरण संचित हे. जन्मके पीछे पांचदिन पहले विकारी भोजन खानेमें आगया ओर पांचदिन पीछे उसका भोग हुवा, यहां पूर्व भोजन खानरुपकर्म, प्रारब्ध हे, दुःख उसका फल हे. किसी निमित्तसे चितमें अमुक वासना पड गई वा अभ्यास होगया, यह संचित हे जिसका फल कालांतरमें होनेवाला हे. संचित न भोगना पडे एसा उपाय संभवभी हे. परंतु मातापिताजन्य बवासीरका दुःख कुछ न कुछ भोगना पडे वा शराब, व्यभिचार वा कुभोजनका कष्ट ज्यादा नहीं तो कुछभी सहन करना पडे, यह अनिवार्य प्रारब्ध फल हे. माबापके रोग संतानको क्यों? उनका भागही जन्मता हे इसलिये उसके कर्मका फल आपही (जन्मने वाले) को भोग हो यह स्पष्ट हे. उपरोक्त प्रारब्ध संचित के अनुकूल प्रतिकूल किंवा इच्छापूर्वक जो नवीन कर्म किये जाते हें सो क्रियमाण हें, जो उनका तुरत फल न हो ओर पीछे हो तो उनका संचित नाम पडजायगा. यथा अमुक हुनर सीखलिया ओर उपयोगका समय न आया वा निर्धनता हुई तब उसके द्वारा धन संचय हुवा, यह क्रियमाणके संचित हें.

उपरके बयानसे समष्टि कर्मका व्याख्यान होजाता हे. क्योंकि अन्यके कर्मका भोग दूसरेकोभी होता हे, एसा बल (माइटइजराईट) ओर नियमकी व्याप्तिसे देखते हें. गायका दूध हम लेते हें. बलवान निर्धनका भाग खोस लेता हे. परकी की हुइ रसोई हम खालेते हें. एक सोसाईटीके प्रचारका फल दूसरेको मिलता हे. एक रीफारमरकी विद्या संपादनका फल हजारों मनुष्योंको उपदेशद्वारा होता हे. इस प्रकार मनुष्य समष्टिका अंग होनेसे उसके कर्मका अन्यको ओर अन्यके कर्मका उसको फल होता हे (समष्टिका विस्तार मूलमें). मनुष्य पशु पक्षी आदि सब प्राणीओंमें एकही क्रम हे क्योंकि उनकी भावना समान हे. रसायणीय संयोगजन्य जो चेतनत्व हे वोह सबमें समान हे परंतु वोह न्यूनाधिक हे, वे परिणामी विलक्षण २ हें, इसलिये उनकी योग्यतामें न्यूनाधिकता हे तथा उस विषयीके साधनोंमें फेर हे इसलिये उपयोगमें अंतर हे. ॥ २३३ ॥

हम नहीं चाहते हें सो होता हे, एसी अनिष्टताका नाम **बंध** हे. उसके विना जीवन सो **जीवनमुक्ति** हे. साधारणोंसे विशेष पराक्रमी गुण शक्तिवालेको **अवतारी** कहते हें. जिस रसायणीय मिश्रणसे जीव हुवा वा न्यूनाधिक होता रहता हे उसका भंग होना—बिगडना (छिन्न भिन्न होना-टूटना) **विदेहमुक्ति** हे अर्थात दुःखसे छूटा. इससे इतर अन्य प्रकारकी मोक्ष असंभव हे. जीवोंके प्रवाहका सर्वथा

नाश नहीं होता. विदेहमुक्तके अवयवोंका उपयोग शरीरके अवयव (अणु) समान होगा.

मनुष्यको चाहिये के जीवनकी, सुखकी ओर उपयोगकी वृद्धि करे इसीका नाम जीवन हे. हिंदके छोटे गाय बेल इंगलेंडमें लेगये. शनै शनै क्रमशः उनके ब्रह्मचर्यको बढाते, खुराकादिका प्रबंध करते, अब हाथिके बच्चे जेसी बनाली, ओर उपयोग विशेष होने लगा. एसे ब्रह्मचर्यादिके प्रबंधसे शरीरोंका माप, आयुष्य ओर उपयोग ज्यादे होसकता हे. परंतु आकाश जितने लंबे मोटे वा अमर होजावें एसा नहीं होसकता. जेसेके मकान कितनाभी उंचा बनायें परंतु जब आकर्षणकी मर्यादासे बाहिर जायगा तब वोह बाहीरका भाग गिरजायगा. जिस मकानकी मरमत लिपाई सफाई होती रहे तो बाह्य जल, गरमी, हवा वगेरे विपरीतोंका विशेष असर न होनेसे वोह मकान उस मकानसे ज्यादा चलेगा ओर उपयोगमें ज्यादा आवेगा कि जिस मकानकी रक्षा उपर कहे अनुसार नहीं होती. परंतु जब उसके आंतरीय इंट पत्थरकी आकर्षणमें अंतर पडके भंग होगा तब लिपाई आदि करनेपरभी पडजायगा. एसेही शरीरकी हड्डी रसायणीय मिश्रणकी वृद्धि, ज्यादे जीवन, ज्यादे उपयोग ओर अंतमें मरण इन प्रसंगोमें जान लेना चाहिये.

इसलिये वक्ष्यमाण **तीनऋणकी** निवृत्तिं करते हुये बंधका जो प्रतिबंधक हो ओर जिससे **जीवनमुक्ति** फल हो वेसे कर्तव्य करना चाहिए. क्योंकि हरेक मध्यम पदार्थोंमें उत्पत्ति, वृद्धि, स्थिति, विकार [परिणाम] क्षय ओर नाश यह षडविकार देखतें हें (१). कर्मोंका फल होता रहता हे (२). सुखसे जीवनेमें हरेककी इच्छा होती हे (३) समुच्चय [मध्यम कंपोंड] कर्ता भोक्ता हे (४). समष्टिके आधीन रहना पडता हे (५). ओर व्यवहार-जीवन निर्वाहक [इच्छा ज्ञानादि]की योग्यता हे उसका उपयोग होना चाहिए (६). एतद्दृष्टि जीवनमुक्ति भोगनेके योग्य हे. माता पिता ओर गुरुजनोंका अपने उपर उपकार [ऋण] हे उसका प्रत्युपकार उनकी सेवासे होता हे. लोक सोसाईटी [राजा, पाडोसी, कारीगर, वैद्यादि] सहकारी होनेसे अपना [हमारा] योग्य जीवन करसके ओर करेंगे यह उनका उपकार [ऋण] हे. उसका प्रत्युपकार लोककी सेवा-लोकोन्नति करनेसे होता हे. कुदरतके नियमके पालनसे हम सुख पाते हें, यह उसका उपकार [ऋण] हे, इसका पालन, इसका निर्वाह अर्थात दूसरेभी इसी प्रकार पालें एसी कोशिश करनेसे उसका

प्रत्युपकार होता हे. इसप्रकार पितृ, लोक ओर देव इन तीन ऋणोंका निवारण होता हे ॥ २३५ ॥

मनुष्योंको यथाशक्ति सृष्टिनियमानुकूल वर्तना चाहिये तोही जीवन सुख होसकताहे, क्योंकि सृष्टिका अंग (यंत्र) हे, उसके विरुद्ध वर्तनसे दुःख होता हे. यथा (१) विरुद्ध अहारविहार करनेसे (२) दूसरोंको अनुचित दुःख देनेसे (३) जरुरतें बढालेनेसे (४) विना जरुरी ओर खराब टेव डालनेसे (५) असंयमी रहनेसे (५) विना अधिकार (कच्ची उमर वा रोगावस्थामें) संतान पेदा करनेसे (६) संतान ज्यादा पेदा करनेसे (७) हुन्नर धंधा न सीखने याने पुरुषप्रयत्न न करनेसे (८) राग द्वेष करते रहनेसे (९) असत् छल कपटादि करनेसे (१०) राज्य लोकनितिसे विरुद्ध चलनेसे (११) इत्यादि निकृष्ट–निषिद्ध आचार विचारसे दुःख होता हे. वेसा न करने ओर सृष्टिनियमानुकूल वर्त्तनेसे सुख होता हे.

इसीवास्ते **सत्यादि** (त्रिवाद देखो) दस बातें मनुष्योंका सामान्यधर्म माना हे. ओर उससे अप्रतिकूल वर्तन विशेषधर्म कहा गया हे. [बस. पूर्वार्द्ध देखो] यह दोनों कर्तव्यभावसे पालने चाहिये. उससे विरुद्ध अधर्म हे सो त्याज्य हे ॥ २३६ ॥

सामाजिक उन्नति करना चाहिये क्योंकि परार्थमें अपना स्वार्थ रहा हुवा हे; उसके हम अंग हें. जेसे शरीरके अंगोंके सुखी होनेसे हमको सुख, उनके दुःखी होनेसे हमको दुःख होता हे, एसाही यहां योज लेना. उन्नतिके लिये यथा देशकाल स्थिति परिस्थिति, जो व्यवस्थापक हो तो समष्टिको समष्टिसे सुख मिलसकता हे. जो स्वतंत्र समर्थ जीवनमुक्त पुरुष हें उनको **निष्काम परोपकार** कर्तव्य हे. [जेसा क्रम उपर कहा वेसाही अन्य ग्रहोंमें हो, एसा नहीं कहा जासकता] ॥ २३७ । २३८ ॥

ईश्वर प्रसंग.

यह द्रश्य जगत किसी एक ईश्वर चेतनका कार्य नहीं क्योंकि आजतक उसका किसीको अनुभव न हुवा; ओर न वेसी व्याप्ति मिलती हे. विचारिये-यदि वोह विभु हे तो उसमें क्रियाका अभाव होनेसे यदि वोह निरपेक्ष मुक्त हे तो निरपेक्ष होनेसे ओर यदि परिच्छिन्न तो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान न होसकनेसे, कर्ता नहीं होसकता. अगम्य तत्वमेंसे आविर्भाव मात्रा वदतो व्याघात हे. तथाहि तत्वका रुपांतर नहीं होसकता ओर यदि वे, दो हें तो स्वरुपाप्रवेश हे. हठसे कर्ता मानें

तो किसप्रकार व्यवस्थापक ओर कर्ता हे इसके उत्तरमें उसकी शक्ति अचिंत्य, अनंत इतना शब्द मिलता हे, सो मान्य नहीं होसकता; क्योंकि विश्वासमात्र हे.

देशकाल रहित इस ब्रह्मांडको किसी स्वयंभू एक व्यापक आधारकीभी अपेक्षा नहीं हे क्योंकि अपना आप आधार मान्नेसे आत्माश्रय नामका दोष आता हे, ओर उसका अन्याधार उसका अन्याधार एसा मान्नेसे अनवस्था (धारा) दोष आता हे; इसलिये मूल परमाणु अपने आप रहे हुये हें इतना मान्ना बस हे, क्योंकि जो आधार मानोगे वोहभी जितना उतना होनेसे ससीम होगा अतःपरिच्छिन्न परमाणुओंकोही स्वयं रहना, एसा मान्ना ठीक हे तथाहि व्यापकको आधार मानें तो उसके स्वरुपमें व्याप्यका अभाव होनेसे जगतकीही सिद्धि न होगी, परंतु जगत तो सत्य ओर प्रसिद्ध हे; अतःविभु आधार मान्ना कल्पना मात्र हे. इ.

तथाहि **आकर्षणादि** याने आकर्षण, गुण, शक्ति, धर्म, स्वभाव, गति, विद्युत, हिरण्यगर्भ (इथर–शेषा) कारण होनेसे किंवा अन्योऽन्याश्रय रहनेसे अथवा ब्रह्मांडरुपी गेंदका नित्य एकतरफ चलाजाता होनेसे उसके अधिष्ठानाधार मान्नेकी अपेक्षा नहीं हे. अर्थात–(१) किसी एक सबसे बडे गोलेकी आकर्षण (गुरुत्वाकर्षण शक्ति वा गुरुत्व धर्म) सर्वत्र हे उससे सबग्रह उपग्रह खिंचे हुये, नियममें गतिमान हें. (२) ग्रहोंका गुरुत्वाकर्षण अन्योऽन्यको खेंचता हे इसलिये ग्रह सनियम गतिमें हें (३) ग्रहोंमें एसी योग्यता–शक्ति, गुण वा धर्म रहा हुवा हे कि जिससे अपने आप अनाधार रहसकें अथवा अन्योऽन्यके आधार बनसकें. (४) गोलोंका अनादिसे एसा स्वभाव हे कि स्वतंत्र अनाधार रहसकें अथवा अन्योऽन्यके आश्रय होसकें. (५) ग्रह उपग्रह अनादिसे इतनी शिघ्रगतिसे घूम रहे हें कि उस वेगसे बाहिर इधर उधर नहीं जासकते. (६) चंबुक लोहके समान ग्रह उपग्रहोंकी विजली अन्योऽन्यका आश्रय बनती हे वा जनरलविजली सबको खेंचे रहती हे. (७) उपर जो उपचयापचयवाद कहा हे उसानुसार सूक्ष्मा (हिरण्यगर्भ) नामकी प्रसरित लचकवालीचादर ओर उसमें ग्रह उपग्रह गोले पडे हुये हें, गोलोंके गुरुत्व ओर सूक्ष्माकी लचकसे सनियम गतिमें हें. (८) वा तमाम ग्रह उपग्रह अनादिसे अन्योऽन्याश्रय रहे हुये हें. (९) किंवा परस्परकी आकर्षणसे संबंध हुये, तमाम गोले याने ब्रह्मांडरुपी गेंद अनंत आकाशमें अनादिसे किसी तरफ चलीजारही हे. इन ९ कारणोंमेंसे एक वा अनेक, ग्रह उपग्रहोंके आधार होनेसे व्यापकाधार मान्नेकी अपेक्षा नहीं हे ॥ वेही सनियम गति होनेमें हेतु हो-

जाते हैं. ओर नवीन ग्रहकी उत्पत्ति ओर तैयार ग्रहके नाश–लयकेभी हेतु होजाते हैं, इसलिये ग्रह उपग्रहोंकी उत्पत्ति स्थिति ओर लयमें वेही हेतु हैं, ईश्वर नहीं. विस्तार मूलमें हे ॥ उपरोक्त प्रकार, पूर्वोक्त तीनों पक्ष– (१) प्रवाहवाद (२) अनादिवाद (३) उपचयापचयवादमें बनजाता हे. इनका स्वरुप सू. ९ के विवेचनमें लिख आये हैं ॥ २३९ से २४६ ॥

तीनों पक्षोंवाले ग्रहोंमें पदार्थों (वृक्षादि स्वेदजादि) के बीज होते हैं उन-बीजोंसे बीजवृक्ष-वृक्षबीजवत पदार्थोंकी उत्पत्ति लयका प्रवाह हे १, ओर बीजोंके कार्य (वृक्ष, पशु-पक्षीआदि) में अन्य मिश्रण होनेसे बीजोंके स्वरुपमें फेरफार होके इतर स्वरुप बनते रहते हैं, इसलिये पहेला बीज कोनसा ओर किस प्रकारका एसा नहीं कहा जाता २, किंवा आकर्षण, विजली, गरमी वगेरे कारणोंसे स्वभावतःबीज बनके कार्य होते रहते हैं ३, ओर बिगडके दूसरी प्रकारकेभी बनते रहते हैं॥२४७॥ उक्त ग्रह, गति ओर बीजादि, अमुक निमित्त ओर पदार्थोंकी योग्यतासे होते हैं. अर्थात जब कारण सामग्री हो तब कार्य स्वयं होजाता हे. (बौद्धपक्षमें विस्तार वांचोगे) ॥ २४८ ॥

इसलिये ईश्वरकी सिद्धिमें जो “ **सनियम विचित्रकार्यदर्शन** ” यह हेतु देते हैं सोभी नहीं हे; क्योंकि उपर कहे अनुसार बीज वृक्षवत प्रवाह हे. पुष्पादि याने फूलोंकी विचित्रता, मछलीकी बनावट, पापीवृक्ष (अमरीकामें घातकी झाड हैं, बस. जीव प्रसंगमें देखो), मोरकी विचित्रता, गर्भ यंत्र (गर्भाशय) की रचना, शरीर रचना, मगज ओर स्त्रीके गर्भकी रचना, विच्छूकी वृक्षोंसे उत्पत्ति होजाना, चूंदडी (वर्षाके पानीमें तेल डालें तो नाना रंग होजाना) इत्यादि विचित्र कार्य, बीज ओर उनके पूर्व नवीन प्रवाहमें घट सकते हैं. गरमी, वायु, वीजली ओर आकर्षणकारुप ग्रहोंसे होजाता हे; ओर घात प्रत्याघातसे होता हे. वादल, विजली, कडक, ओले, वर्षा, धनुष्य. चंद्र. सूर्यकुंडल अपने अपने निमित्तसे स्वयं होते ओर नष्ट होते हैं. भूकंप, पहाड. ज्वालामुखी, वडवानल, चंद्रकोप, तारापतन यह सब पृथ्वीके उदरमें जो प्रवाही उष्ण पदार्थ हैं उनके साथ समुद्रके संबंधसे यथा अवसर होजाते हैं. पृथ्वीकी आडसे चंद्र ग्रहण ओर चंद्रकी आडसे सूर्य ग्रहण

१, २, ३, तीनोंके उदाहरण—(१) नीबसे नीबका बीजवृक्ष. (२) केलीसे वृक्षरुप करना, धोली कनेरसे लाल कनेर करना, श्वेत रुईके लाल बीज बना लेना, घोडे गधेसे खच्चर होना इ. (३) मलके कमी ओर जूं.

होता हे. अहार, निद्रा, मैथुनादि उपर कहे (९ कारण) समान होजाते हैं. जल कुदरतसे बना हे, ओर आदमीभी बना लेता हे, इन चमत्कारी वातोंका निमित्त व विस्तार कालिजोंमें सिखाया जाता हे ओर मूल ग्रंथमें हे. इसीप्रकार अन्य चमत्कारी विचित्र वातोंका निमित्त शोध सकते हो. अतः इनका प्रयोजक ईश्वर नहीं. किंतु उपर कहे अनुसार ग्रहोंकी योजना, स्थिति ओर गति कारण हे ओर उनमें बीजादि हैं इसलिये एसा होता रहता हे.

उपरोक्त ग्रहोंमें अयोनिज ओर योनिजसृष्टिका प्रवाह यथायोग्यता, यथा-अवसर ओर उन्नति क्रमसे होता हे इसलिये वर्तमानमें कोई योनिज, कोई अयो-निज होते हैं. सब योनि उद्भिजसे चलीं हैं उसमें बीज ओर उनत्तिक्रम निमित्त हे. कोई वनस्पति पशुपक्षी आदि जुदा जुदा बीजसे, कोई उन्नतिके क्रमसे होते हैं. बीजमें नरमादेपनकी योग्यता हे ओर बीज अनेक रुपके होते हैं, जेसेके वन-स्पतियोंमें भेद देखते हैं. इस रीतिसे सब विचित्रता बीजके निमित्तोंसे होती रहती हे.

उपर जो कुछ लिखा गया हे वोह देशकाल स्थिति ओर व्याप्तिसे लिखा गया हे. वस्तुतः सर्व क्रम मनुष्य नहीं जानसकता, उसका कारण आगे नूतन भावनामें जनावेंगे सो हे.

उपर जो लिखा हे वोह अन्य अध्यारोपोंका जेसा दूषित नहीं हे; क्योंकि केवलानुमान नहीं किंतु बिंब प्रतिबिंबवत् स्पष्टानुमान याने प्रत्यक्षवत् विषय हे. ईश्वर ओर जीव कोई तत्व हैं एसा सिद्ध नहीं होता. इसलिये परलोक (ईश्वर, पुनर्जन्म, स्वर्ग नरकादि)के लिये द्रव्यकाल तनमनका व्यय करना व्यर्थ हे. ओर जो उपर कर्तव्य कहे हैं वे जडवाद, चेतनवाद–उभयको संमत हैं; तो उभयसंमत-काही ग्रहण कर्तव्य हे. विवादित वा अविषयमें माथा तोडना व्यर्थ हे (विशेष चारवाक प्रसंगमें वांचोगे.) ॥ २४८ ॥

समष्टिवादकी उत्तरफिलोसोफीका सार.

उपर कहे अनुसार प्रवाहादि तीनवाद मानके व्यवस्था कही. अब आगे संक्षेपमें जडवाद, चेतनवाद या अद्वैत, द्वैतवादके विवादकी द्रष्टि न रहे इसलिये उत्तर फिलसोफी लिखते हें.–

१–उक्त स्वयंभू समूहका यथा संस्कार अभ्यास पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर अनेक परिणाम होना माननेसे वही परिणाम आता हे याने चेतन वा जडवादका प्रवाहवाद

(उत्पत्ति-लयवाद) होजाता हे, उन परिणामोंकी विलक्षणता ओर क्रम होनेसे उन्नति अवनतिवाद निकलआता हे. अतः समष्टिसे इतर जीव वा ईश्वर नहीं हे.

२—किंवा स्वयंभू समूहमें अनादि योग्यता ओर स्वभाव होनेसे, यथा संस्कार क्षणिक परिणाम होनेसे, स्वप्नसृष्टिके समान जानलेना चाहिये. अतः समष्टिसे इतर जीव वा ईश्वर नहीं हे.

३—उसी समूहको सत कहते हें, क्योंकि अविनाशी हे, ओर चिद्, आनंद उसीकी अवस्था-परिणाम हें इसलिये सच्चिदानंद हे. जेसे शरीरमें चेतन क्रमी होते हें वेसे समूहमें चिदानंदभी परिणाम हे.

४—जो वोह समूह नामरुपवाला जान पडता हे सो यह नामरुप कनककुंडल समान उसके विवर्त हें वोह स्वरुपसे जेसाका तेसा हे.

५—यह द्रश्य (नामरुपात्मक जगत) लोकमान्यकालके समान प्रतीतरुप हे परंतु शून्य हे क्योंकि पूर्वोत्तरमें फारमोंका अभाव हे (अभाव याने वैलक्ष्यण हे).

६—जेसे चेतनवादि, सब जडचेतन उस एक (चेतन)का परिणाम मानते हें वेसे यहां उस समूहको चेतन मानके उसका जडचेतनात्मक जगत परिणाम मानसकते हें किंवा अचिदरुप मानके जडचेतनआत्मक जगत, उसका परिणाम मानसकते हें, क्योंकि चिदचिद अपेक्षित संज्ञा हे, यह उपर कहा हे.

७—उपरोक्त मंतव्यका समष्टिसे विरोध नहीं आता उसमें स्वप्नका द्रष्टांत हे, अर्थात जेसे स्वप्नमें अनेक मंतव्य हें, जागके देखें तो अन्यथा थे एसे जानपडता हे वेसेही यह जाग्रत हे. जोके स्वप्न, भ्रम नहीं हे, विकल्पादि ३८ रुपवाला नहीं हे (अ. ३ में वांचोगे) किंतु जाग्रत स्वप्नका उपादान एक होनेसे उभय समान हें. एक दूसरेकी द्रष्टिसे विलक्षणता जान पडती हे. स्वप्न प्रतीतकालमें सत्य पीछे स्वप्नवत वेसे जाग्रत जाग्रतकालमें सत्य स्वप्नमें स्वप्नवत जान पडते हें. मूलमें समान हें. जब " स्वप्नकी स्मृति सहित यह जाग्रत हे, स्वप्न कोई न हुवा ओर स्वप्नमें जागृत (स्वप्नसृष्टि). स्वप्न (जागृतसृष्टि) स्मृति सहित हे, " एसा बारीक विचार करें तो जडवाद चेतनवादका नामभी नहीं रहता, मुफतकी तकरार हे, विलक्षणतासे अद्वैत द्वैत जान पडता हे.

उपरोक्त मंतव्य वा द्रश्य, भ्रमरुप (असत) नहीं हे क्योंकि अनहुयेकी प्रतीति नहीं होती; जेसेके रज्जु सर्पादि हें. ओर न किसिका स्वप्न हे. ॥ २४९ ॥ इति.

इस समष्टिवादकी चार संज्ञा हें. अचिदसमूहवाद, चिदसमूहवाद, चिदचिद

समूहवाद ओर शक्तिसमूहवाद. (शं.) यह सिद्धांत किसने जाना. (उ.) जेसे समूहका विषय विषयी परिणाम होता हे वेसे विषयीका एसाभी परिणाम होता हे. जेसे स्वप्न जागृतकी विलक्षणताका ज्ञान होता हे वेसे यहभी होता हे. स्वप्न जागृत के ज्ञान होनेमें परस्परका व्यतिरेक ओर स्मृति हेतु होते हें एसे यहांभी जान लेना चाहिये. यहां स्वतः प्रामाण्य, परतः प्रामाण्य, इन विवादकी अपेक्षा नहीं हे. ॥ २५० ॥ इति.

अचिदवादका अपवाद (चिद अचिदका विवेक)

(१) उपरोक्त समष्टिवाद याने अचिदवादमें चिद्वादकी जिन जिन भावनाका निषेध किया हे उनकी सिद्धि ओर जिन असंभव वा विपरीत भावनाका प्रतिपादन किया हे उनकी असिद्धि (निषेध) ब्रह्मसिद्धांतमें ओर इसी तत्व दर्शनके अध्याय २ ओर ३ में हे तथा चारवाक ओर बौद्ध प्रसंगके अपवादमें आगे वांचोगे. यथा ईश्वर जगतका निमित्त कारण नहीं १, परिच्छिन्न जगतका विभु आधार नहीं २, देशकाल नहीं ३, आकर्षण वा उपचयापचयके विना गति नहीं (इनसे गति) ४, बीजोंसे विचित्र कार्य होना ५, सृष्टि अनादिसे अधर ६, वा अन्योऽन्याश्रय ७, वा महानाकर्षणके आश्रय ८, वा गुण, शक्ति, स्वभाव वा धर्मसे अनाधाराधार ९, वा परस्परकी आकर्षणके आश्रय १०, वा अनाधार नित्य गमन ११, वा वेगमें रहनेसे अमुक सीमामें रही हुई १२, इन सब वातोंका निषेध कियागया हे. आकर्षणकी असिद्धि, ईश्वरको भावनामात्रसे जेसे सर्वशक्तिमान माना जाता हे उसकी असिद्धि ओर जेसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान हे उसकी सिद्धि हे. अक्रिय समचेतन ईश्वर जगतकी रचनामें केसे निमित हे उसका वर्णन किया हे.

चेतनकी सिद्धि, चेतन जड दो वस्तु हें, चेतन तत्व हे, उसकी उत्पत्ति नहीं होती, चेतन ईम्प्रेशनरुप नहीं, किसीका परिणाम नहीं, किसीकी अवस्था नहीं, किसीका गुण नहीं, चेतन स्वयं ज्ञानप्रकाश हे, इनकी सिद्धिकी हे. जीव ईम्प्रेशन नहीं, जीव शरीर, इंद्रिय वा प्राण नहीं, जीव शरीरसे भिन्न हे, उसका पूर्व उत्तर जन्म हे, यथाकर्म परलोक गमन हे, उसका बंधमोक्ष होता हे, द्रष्टा द्रश्य (विषयी

(नोट) जोके चेतनवादी, जडवादके ओर जडवादि, चेतनवादके दोष देखाते हें उसकी श्वेत बाजु नहीं दिखाते; इसलिये इस अचिदवादका कुछ विस्तार किया हे. (विशेष मूलमें हे) ॥ २५० ॥

विषय) ज्ञाता ज्ञेय भिन्न हैं ओर शरीरसे बाह्य पदार्थ हैं, इनकी सिद्धिकी गई हे. इसलिये जडवादका क्रमसे निषेध नहीं कहाजायगा किंतु संक्षेपमें मूल मूल मुख्य मुख्य विषय वा अपवाद लिखेंगे. तथा जडवादका जो विषय योग्य हे, मान्य हे, हितकारी ओर उपयोगी हे उसका अपवाद नहीं किया जायगा क्योंकि उसका अपवाद नहीं हे. यथा सत्यादिका सेवन, सृष्टिनियामानुकुलवर्तन, सामाजिक उन्नति कर्तव्य इत्यादि हें.

चिदचिदवादके विवादमें नीचेके विषयोंका विवेक मुख्य हे. शेष विषय इनके अंतरगत होजाते हें.

(१) चेतन ओर जड दोनों भिन्न हें वा नहीं. (२) जडमेंसे चेतन ओर चेतनमेंसे जड उत्पन्न होसकता हे वा नहीं. (३) अभावमेंसे भावरुप पदार्थ होसकता हे वा नहीं. (४) चिद जडके लक्षणमें अंतर हे वा नहीं. (५) द्रष्टा द्रश्य, ज्ञाता ज्ञेय, भोक्ता भोग्य भिन्न २ होते हें वा नहीं. (६) जीव शरीरसे भिन्न वस्तु हे वा नहीं. (७) जो भिन्न हे तो उसका पुनर्जन्म हे वा नहीं. (८) जगतका कोई निमित कारण हे वा नहीं. (९) परिच्छिन्न जगतका कोई स्वयंभु असीम आधार हे वा नहीं याने परिच्छिन्न जगत आधारके विना टिक सकता हे वा नहीं.

इन ९ के विवेकसे सब फेसला होजाता हे. इसलिये यहां अपवादमें मुख्य मुख्य बातें लिखेंगे. विशेष विस्तार मूलमें हे ॥

अचिदका अपवाद.

[अप.] **चिदचिद् संज्ञा विलक्षणतासे ॥ २५१ ॥ ज्ञान दर्शनवान चित् ॥ २५२ ॥ उससे इतर अन्य ॥ २५३ ॥ चिद्की अनुत्पति, अनुत्पति नियमसे ॥ २५४ ॥ ओर अभावसे भावरुप न होनेसे ॥२५५॥ गुण नहीं उसका प्रकाशक होनेसे ॥२५६॥ अवस्था नहीं सम रहनेसे ॥२५७॥ ओर तद्वत होनेके नियमसे ॥ २५८ ॥ जन्य प्रभाव नहीं ॥ २५९ ॥ भेद ग्रहणादि कार्य दर्शनसे ॥ २६० ॥ तद्वत् शरीरादि नहीं ॥ २६२ ॥ स्वतः प्रमाण ओर स्वयं प्रकाश ॥ २६२ ॥ परतः प्रमाणके ग्रहणसे ॥ २६३ ॥ पूर्व उत्तरकी सिद्धि शरीर संबंध दर्शनसे ॥ २६४ ॥ ओर योग तैजस विद्यासेभी ॥ २६५ ॥ स्वयंभु आधारकी सिद्धि ॥२६६॥ द्रश्य परिच्छिन्न होनेसे ॥ २६७ ॥ आकर्षणादिमें वेसी योग्यता न होनेसे ॥ २६८ ॥ ओर विनाधार व्यवस्था न होनेसे ॥ २६९ ॥ योग्य चमत्कारी निमित्तकीभी**

॥ २७० ॥ बीज मध्यम होनेसे ॥ २७१ ॥ शरीर रचनाकी अद्भुततासे ॥ २७२ ॥ ओर अचिद्में वेसी योग्यता न पाये जानेसे ॥ २७३ ॥ मूलाधारमें आत्माश्रय दोष नहीं ॥ २७४ ॥ अस्तित्ववदिति ॥ २७५ ॥

वृत्ति—पदार्थोंमें विलक्षण लक्षण देखते हें उस अपेक्षासे चिद् ओर अचिद् संज्ञा कही जाती हे ॥ २५१ ॥ ज्ञान [जान] दर्शन (देखना) यह दो लक्षण जिसमें हो उसे चेतन कहते हें ॥२५२॥ यह लक्षण जिसमें न हों सो अचिद् [जड] हे ॥ १५३ ॥ चेतन अनुत्पन्न हे क्योंकि हे, नवीन वस्तु कोईभी उत्पन्न नहीं होती ओर न मूल वस्तुका नाश होता हे यह नियम हे ॥ २५४ ॥ ओर अभावसे भाव रुप वस्तु नहीं होती इसलिये चेतनकी उत्पति नहीं हे ॥ २५५ ॥ चेतन किसीका गुण नहीं हे क्योंकि गुणोंका प्रकाशक होता हे ॥२५६॥ चेतन किसीकी अवस्था (परिणाम)भी नहीं हे क्योंकि अवस्था बदलती हें ओर यह नहीं बदलता अर्थात सम रहता हे ॥ २५७ ॥ तथा अवस्था, अवस्थावान [उपादान] की जेसी होती हे यह नियम हे. अतःजो चेतन, जडकी अवस्था हो तो जड हो चेतन न हो. ॥२५८॥ चेतन कोई जन्य ईम्प्रेशन [प्रभाव] असर वगेरे रुप नहीं हे ॥ २५९ ॥ क्योंकि भेदग्रहण, पूर्वोत्तरकरण, तारतम्य, तोलन, योजन, वर्गीकरण, निषेधन, विवेचन, चर्मस्मृति (स्मृतिकी स्मृति), नियमन, व्याप्ति ग्रहण, अनुमानकरण यह १२ कार्य होना देखते हें; जो इम्प्रेशन, सेंटर, वा इंद्रियोंसे नहीं होसकते ॥ २६० ॥ इसीसे यहभी स्पष्ट होगया कि चेतनात्मा शरीर, प्राण, इंद्रिय (ज्ञानतंतु—कर्मतंतु), मगज ओर रक्त, गरमी, विजली वगेरे रुप नहीं हे किंतु उनसे भिन्न हे, कारणके भेदग्रहणादिकार्य शरीरादिसे नहीं होसकते ॥ २६१ ॥ सो चेतनात्मा स्वतः प्रमाण (ज्ञान होनेमें आपही साधन) ओर स्वप्रकाश (ज्ञान स्वरुप) हे ॥२६२॥ क्योंकि जितने परतः प्रमाण याने अनुमानादि हें वे सब उसमें आपही ग्रहण होजाते हें. जो स्वतः प्रमाणरुप न होता तो एसा न होता ओर जो स्वप्रकाश न होता तो एसे ज्ञान भानकी अनुत्पति होती परंतु ग्रहण होना ओर ज्ञानका प्रकाश होना देखते हें अतःआत्मा स्वतःप्रमाण ओर स्वप्रकाश हे ॥ २६३ ॥

पूर्व जन्म ओर उत्तर जन्मकी सिद्धि हे क्योंकि उपर कहे अनुसार चेतन आत्मा शरीर (स्थूल सूक्ष्म शरीर याने द्रश्य तन, इंद्रिय प्राणादि) से जुदी वस्तु हे ओर उसका संबंध शरीरके साथ (शरीरमें आना) देखते हें. जेसे किसी न किसी कारणसे वर्तमान शरीरमें आया वेसे उत्तर शरीरमें आना चाहिये ॥ २६४ ॥ पूर्वोत्तर जन्म-

की सिद्धि योगविद्या ओर तैजसविद्याकी परिक्षासेभी होजाती हे. ॥ २६५ ॥ स्वयंभू असीम सर्वाधारकी सिद्धि हे (मान्ना पडता हे) ॥ २६६ ॥ क्योंकि द्रव्य गतिमान परिच्छिन्न हे सो विना स्वयंभू आधारके नहीं रहसकता. इसलिये कोई स्वयंभू अधिष्ठान हे, एसा सिद्ध होता हे ॥ २६७ ॥ ओर आकर्षण, शक्ति, गुण, गति, विजली, ईथर, धर्म ओर स्वभावमें सर्वाधार ओर नियामक होनेकी योग्यता नहीं हे ॥२६८॥ ओर विना आधारके सृष्टिके व्यवहारकी व्यवस्था नहीं होती याने तितड वितड होजाय इसलियेभी जगदाधारकी सिद्धि होती हे ॥२६९॥ सृष्टिमें सनियम विचित्र कार्य देखते हें उन योग्यचमत्कारीकार्य होनेके निमित्त कारणकीभी सिद्धि होती हे ॥ २७० ॥ क्योंकि जो चमत्कारी कार्य पेदा होनेके निमित्त बीज हें वे मध्यम हें; अतः उनका प्रयोजक निमित्त कोई चतुर शक्ति होनी चाहिये ॥२७१॥ तथाही शरीरकी अद्भुद रचना (मगज, हृदय, गर्भादि) देखनेसेभी किसी चमत्कारी निमित्तकी सिद्धि होती हे ॥ २७२ ॥ ओर अचिद (जड प्रकृति)में वेसी विचित्र रचना करनेकी योग्यता नहीं पाईजाती इसलियेभी उससे अन्य चमत्कारी निमित्तकी सिद्धि होती हे ॥ २७३ ॥ जो अपरिच्छिन्न मूल आधार हे उसमें आत्माश्रेय [अपना आपआधार एसा] दोष नहीं आसकता ॥२७४॥ जेसेके मूल पदार्थोंका असित्व स्वतः सिद्ध हे उसकेलिये अन्य अस्तित्वकी अपेक्षा नहीं हे वेसे मूलाधार वास्ते जान लेना चाहिये ॥२७५॥ इति, प्रसंगसमाप्तिके अर्थ हे ॥

उपरोक्त चिदचिदादि (२५१) सूत्रोंकी वृतिके विवेचन करनेके पहेले अचिदवादोक्त (२०९ से २२१ तक) के विषे कुछ लिखनेकी अपेक्षा हे सो संक्षेपमें लिखते हें ॥ [१] मनुष्य आरंभमें साधनकी कमीसे पशुवत मानाजासकता हे क्योंकि जब साधन होते हें तब वोह (जीव) वेसाका वेसा होता हे; जेसाके बाल, युवा, वृद्धावस्थामें देखते हें. [२] ईश्वर जीवादिका विवेक होना उपयोगी हे [विभुषक मतमें वांचोगे] उससे तन, मन, लोकव्यवहार, नीती, धर्म, मर्यादा ओर जीवन पर उत्तम असर होती हे. [३] प्रत्यक्षसे इतर प्रमाण न मान्ना यह कह मुकरनी जेसा हे क्योंकि चेतन हे, उसकी उत्पति देखी नहीं, किसीने आकेभी नहीं कहा के मेरी उत्पत्ति हे, फेर यह कहनाके जीव शरीरसे अभिन्न हे, यह अनुमान नहीं तो क्या ? अग्निसे हाथ जलनेकी व्याप्ति ग्रहण हुई तो फेर हाथ नहीं लगाते, यह अनुमान नहीं सो क्या ? तमाम ब्रह्मांडमें एसा सिद्ध न होजाय, वहांतक अग्निसे जलना नहीं मान सकते, यह हठ नही तो क्या ? अग्निमें हाथ नहीं लगाते यह

कह मुकरनी नहीं तो क्या ? अद्रश्य तत्वोंसे जगत बना हे एसा मान्ना अनुमान नहीं तो क्या ? जो अनुमान नहीं मानें तो भोजनमेंही प्रवृति न होनीचाहिये क्योंकि संभव हे के हानिकारकहो, तृप्ति न हो. इ. अनुमान न मान्नेवालेसे पुछते हैं कि तुम्हारी प्रतिज्ञामें कोई हेतु साधक हे वा नहीं ? जो हे, तो यही अनुमान सिद्धि ओर जो नहीं तो प्रतिज्ञा असिद्ध हुई. (४) शब्दप्रमाणको जो सर्वथा अप्रमाण मानें तो व्यवहारही न हो. " शब्दप्रमाण नहीं " आपका यह कथन प्रमाण तो शब्द प्रमाण हुवा. जो अप्रमाण तो व्यर्थ बकवाद ठेरा. परीक्षा उपयोगसे मान्ना हरेक-को स्वीकार हे उससे शब्दमें अप्रमाणता सिद्ध नहीं होती क्योंकि सृष्टिनियममें तोले विना ओर परिक्षा किये विना अप्रमाण नहीं कहसकते. ॥ २१६ से २१९ ठीकही हे. २२० । २२१ का अपवाद बस. की उत्तर फिलोसोफीमें हे. ओर अ. ३ मेंभी वांचोगे.

सूत्रवृत्तिका विवेचन—चित्, अचिद्, जड, अजड, यह चारोंसंज्ञा अपेक्षासे मानी जाती हैं. अचिद जड ओर चित् अजड पर्याय करलेते हैं. वस्तुतः चित्से इ-तर सबकी जड संज्ञा मानते हैं. अपेक्षा न लेवें तो किसीके लक्षणही न होसकें. यथा मूल प्रकृति (मेटर) मूलअेटम (परमाणु) सरदी—गरमी वगेरेके लक्षण (व्याख्या) नहीं किये जासकते. किंतु अनिर्वचनीय कहके चुप होना पडता हे. ज्ञान दर्शन यह जिसका स्वरुपलक्षण हे सो चैतन्य हे जिसमें यह नहीं (याने जो दूसरेको नहीं जानता वा नहीं देखता) वोह अचिद हे. जेसीके ज्ञात-अज्ञात जड प्रकृति हे.

(चिद्विवेक)—

(शं.) चेतन वस्तु नहीं हे. (उ.) ज्ञान दर्शन रहित वस्तुभी हैं, यह वि-लक्षणता क्यों, इसलिये चेतन वस्तु हे. (शं.) नशे, शहद वा सप्तरंगसे आठवां रंग उत्पन्न होता हे वेसे चेतनकी उत्पत्ति हे याने शरीर, मगज, रज वीर्यसे चेतनशक्ति पेदा होजाती हे. (उ.) यदि नवीन उत्पन्न तो चेतन परमाणु ठेरा. क्योंकि नवीन उत्पत्ति नहीं होती (अ. २ । १३७ में वांचोगे). ओर अभावसे भावरुप पदार्थ नहीं होता (अ. २ । २८७ में वांचोगे) इसलिये उत्पन्नका मूलउपादान मान्ना हो-गा. अर्थात जेसे मदिराके उपादानमें गरमी थी वोह योग्य रुपमें किंवा श्वेत रंग था सो योग्य रुपमें उद्भव हुवा यह सिद्ध होगा. इस प्रकार प्रोटोपलाज्मके समू-हमें वा रजवीर्यादिमें चेतन वस्तु थी सो उद्भव हुई यह कहना पडेगा. जडसे जड, चेतनसे चेतन होगा, इससे विपरित उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि उपादेय, उपादान

सम होता हे (२ । ३०२ में वांचोगे). सारांश चेतन, जडसे उत्पन्न नहीं हुवा. एस ज्ञानदर्शनवाला जो हे सोही आत्मा कहाता हे. (शं.) जीवात्मा चेतन परमाणुओंमें विभक्त था इसलिये जीव संज्ञा नहीं. (उ.) तोभी अणुचेतन ठेरा. क्योंकि जडका धर्म वा गुण चेतन, ओर चेतनका धर्म वा गुण, जड नहीं होसकता ॥ (शं.) चेतन, यह मगज, ग्रेमेटर, चित वगेरेका इफेक्ट (असर) ईम्प्रेशन (प्रभाव) याने अवस्था हे तत्व वस्तु नहीं. (उ.) यूं हे तोभी उत्पत्ति नहीं किंतु किसीका परिणाम वा रचना ठेरी. परंतु इफेक्टादि याने कंडीशन (अवस्था) समान नहीं रहते. चेतनत्व जन्मसे मरण पर्यंत समान रहता हे. उसकी ज्ञान दर्शन शक्ति (स्वरुप) वेसेकी वेसी होती हे. बाल, युवा ओर वृद्धावस्थामें जो अंतर जानपडता हे वोह साधन (इंद्रियादिक) की न्यूनाधिकतासे हे याने इंद्रियादिका हे, नहींके चेतनमें न्यूनाधिकता हुई हे. जेसे दूरबीनद्वारा दूरका वा सूक्ष्मपदार्थभी देख लेते हें, उस विना नहीं, इससे द्रष्टामें अंतर सिद्ध न हुवा ॥ अवस्था क्षणिक होनेसे एक दूसरे विषयोंके भेदको ग्रहण नहीं करसकती किंतु सब स्मृतिभी नहीं कहसकती, परंतु दोनों प्रकारके कार्य देखते हें ॥ अवस्था (ईम्प्रेशन) स्वतःग्रहण नहीं होती परंतु चेतनका अस्तित्व (हूं) स्वयं सिद्ध होता हे. यथा—में हूं, विचार करता हूं, विचार किया था, भेदोंको ग्रहण करता हूं. (यहां में शब्दके वाच्यका लक्ष्य ग्रहण हे. में शब्दका नहीं) ॥ अवस्थाकी उत्पत्ति नाश देखते हें चेतनकी नहीं ॥ मगजमें सब प्रकारके ईम्प्रेशन होनेकी योग्यता नहीं होसकती ॥ प्रमाण ओर प्रमेयका भेद ग्रहण होता हे सो इम्प्रेशन नहीं ॥ चेतन रजवीर्यादिसे उत्पन्न हुवा वा अवस्था हे, एसा अनुमान जिसमें स्वतः ग्रहण होता हे वोह चेतन उनसे भिन्न हे, यह स्पष्ट हे.

(शं.) चेतन किसीका गुण होगा. (उ.) जडका गुण नहीं होसकता यह उपर कहा हे किंतु गुणोंका प्रकाशक हे, ग्राहक हे ओर गुणवत् उसका कोई आश्रय सिद्ध नहींहोता, इसलिये गुण नहीं. ओर जबके वोह जुदा हे तो स्वरुप ठेरा, गुण नहीं.

हरेक इंद्रिय (ज्ञानतंतु, कर्मतंतु वा कान, तुचा, चक्षु, रसना, घ्राण, वाचा, हाथ, पेट वगेरे) हरेक अंग ओर ग्रेमटेर, मगज, ईम्प्रेशन, इफेक्ट, अवस्था, प्राण, मन यह सब, एक दूसरी इंद्रियादिके भेद, विषयोंके भेद, ईम्प्रेशनोंके भेद, मन इंद्रियोंके भेद, मन विषयोंके भेद, संस्कारोंके भेद, मन, इंद्रियोंके भेद, ओर मन विषयोंके भेद नहीं बतासकते, नहीं जानसकते, नहींजानते ओर हमसे अमुक कार्य

हुवा वा होता हे, अमुक नहीं हुवा वा नहीं होसकता, एसाभी नहीं जानते. परंतु जिसमें यह सब ग्रहण होते हैं, जिसमें प्रकाशित होते हैं, वोह इनका अविषय इनसे भिन्न हे, एसे स्पष्ट होजाता हे; सो वोह चेतनात्मा हे.

इंद्रियें वा मन वा प्राण जिससे प्रेरेजाते वा रोकेजाते हैं, किंवा जिसके विषय हैं सो उनसे भिन्न चेतनात्मा हे.

उपरोक्त भेद ग्रहणादि याने स्मृति ओर विषयोंका भेद ग्रहण होना, विषयोंका क्रम आगे पीछे करके कहना, विवेचन करना, निषेध करना, योजना करना, सद्‌सदको तोलना, निश्चय करना. विभाग करना, शंका समाधान नवीन उपजाना, व्याप्ति ग्रहण करना, अनुमान करना, इत्यादि कार्य तन, मन, इंद्रिय, ग्रेमेटर, प्राण, ईम्प्रेशन वा अवस्था न बतासकते हैं, न कर सकते हैं, इसलिये ग्राहक जो चेतनशक्ति तिसद्वाराही यह कार्य होसकते हैं, यूं मान्ना पडता हे. सारांश चेतनशक्ति, तनमनादिरुप नहीं, किंतु उनसे भिन्न हे; यह सिद्ध होता हे.

शरीरके अंग भंग होजानेसे (इंद्रियादि नष्ट होनेपरभी) उनके ज्ञाता चेतनमें न कमी होती हे ओर न नष्ट होता हे ॥ शरीरके अंग, लोही, नस वगेरे द्रश्य हैं, द्रष्टाद्रश्य भिन्न २ होते हैं; इसलियेभी शरीर इंद्रियसे चेतनभिन्न हे.

उपरकी दलीलोंसे स्पष्ट जानाजाता हे के चेतन वस्तु तन, मन, इंद्रिय, प्राण, मगज, ग्रेमेटर, लोही, वीर्य इत्यादि शरीरके अवयवोंसे भिन्न हे. उसकी पहिछान एसे होजाती हे; अर्थात स्वप्नजाग्रतका परस्परमें व्यतिरेक हे. दोनोंका जो साक्षी हे वोह दोनोंमें होता हे याने दोनोंसे भिन्न हे. सुषुप्तिकी बेखबरी ओर सुखकीस्मृति जाग्रतमें कहता हे, स्मृति अनुभवके विना नहीं होती; इसलिये जाग्रत, स्वप्न ओर सुषुप्ति तीनोंमें चेतनज्ञाता हे ओर तीनोंका परस्परमें व्यतिरेक हे. जो तीनोंका साक्षी हे सो चेतनात्मा हे ॥ स्वप्नादिके अवस्थाके भेद (वैलक्षण्य) जिसमें ग्रहण होते हैं सो तीनोंसे भिन्न आत्मा हे ॥ उदासीन बेठे हों तब अंदरमें अकस्मात स्वाभाविक अनिच्छित छवी सामने होती हे, उस समय मन तदाकार होता हे, उस छवीके अंगोपर दोडता हुवा जानपडता हे; इन दोनोंका जिसमें स्वतः ग्रहण होता हे वा जिसके ज्ञान प्रकाशसे वे प्रकाशित होते हैं सो आत्मा उन दोनोंसे भिन्न हे; क्योंकि द्रष्टासे द्रश्य, ज्ञेयसे ज्ञाता भिन्न होता हे. राग, द्वेष, इच्छा, मनकी क्रिया, संस्कार, दुःखसुख ओर ज्ञानवृति [में जानता हूं, यह हे इत्यादि] जिसमें प्रकाशित [ग्रहण]

होते हें वोह उनसे भिन्न चेतनात्मा हे ॥ चेतन हे, चेतन नहीं हे, वा हे, ना में संशय हे, चेतन अनुमानसे मानसकते हें, चेतन अनुमानसे सिद्ध नहीं होता, में हूं वा नहीं हूं एसा नहीं, अभाव, तम, प्रकाश, अज्ञान ओर संशय—यह सब जिससे प्रकाशित हुये याने जिसमें स्वतःग्रहण हों सो आत्मा हे ॥ सो चेतन स्वयंप्रकाश (ज्ञान स्वरुप) हे. परंतु जेसे हरेक वस्तुके ज्ञान होने समय प्रथम मन, देश वा प्रकाश-का ज्ञान होता हे तथापि तादात्म्य ओर अध्यासके कारण विषय मालूम होता हे; वे नहीं, वा पीछे जानपडते हें. इसी प्रकार शरीर, प्राण, इंद्रिय, चित, बुद्ध, मन, अहं-कारका सूक्ष्मात्माके साथ तादात्म्य होनेसे एक दूसरेके धर्म एक दूसरेमें जानपडते हें; इसलिये आत्माका विवेक नहीं होने पाता. इसीलिये उनको आत्माका कोश कहा-जाता हे. निदान इस कारणसे स्वप्रकाश (अलुप्तप्रकाश) हुयेभी स्वयंप्रकाशरुपसे नहीं जानपडता. उनके अध्यासका उदाहरण—मेरा शरीर, में मोटा पतला, मेरी आंख, में काना, मेरा मन, में संकल्प करता इत्यादि. ओर जडप्रकाशादि विषयभी आव-रणरुप होजाते हें. जिसको विवेकादि साधन होते हें वोही उसको स्वयंप्रकाशरुपसे जानसकता हे. प्रकाशवत् स्वप्रकाश होनेसे अपना आप विषय हे वा नहीं, एसा नहीं कहा जासकता ओर इसी वास्ते उसे कोन जानता हे यह सवाल नहीं होसकता (विशेष बस. उत्तरार्द्धमें). इस प्रकार जडसे चेतन भिन्न वस्तु हे.

(**पुनर्जन्म**).

(शं.) जीव, शरीरके नाश होने पीछे क्यों नहीं सिद्ध होता. (उ.) जबके वर्तमानमें हे, ओर उत्पति नहीं, तो नाशभी नहीं. इसलिये शरीर पीछे न मालूम होनेसे उसकी नास्ति नहीं मानसकते. (शं.) कलोराफारम सुंघानेपर, गाढ सुषुप्ति होनेपर जो सुइ चुभोवें वा लोही निकालें तो क्यों नहीं मालूम होता. (उ.) उप-योगके साधनके साथ असंबंध होनेसे उपयोग नहीं होता. नहीं तो जागने पीछे कहांसे आगया. एसेही शरीर नाशके पीछे जानो. (शं.) जीव चेतन अणु हे वा व्यापक. (उ.) यह प्रसंगका विषय नहीं (उत्तर बस. में हे) यहां जडचेतनका विवेक प्रसंग हे. अर्थात शरीर त्यागके पीछे पुनःशरीर संबंध पाता हे; इतनाही कहना हे. (शं.) केसे जानें. (उ.) जिन कारणोंसे वर्तमानमें संबंध हुवा हे उनके अभाव हुये, वर्तमान शरीरका असंबंध हे यह स्पष्ट हे; एसे उत्तरमें होगा. अर्थात वे कारण अद्रष्ट हें. पूर्वपूर्वके अद्रष्टोंसे उत्तर उत्तर जन्म (परलोकगमन वा शरीर संबंध) होनेका प्रवाह हे. इसी प्रकार आकाश ओर परमाणुके उपयोगका प्रवाह हे. इसना अंतर

हे के जीवके आवागमन वा उपयोग होनेमें क्रियमाण कर्मजन्य प्रारब्ध, संचितकर्म हेतु हें, देश परमाणुके उपयोगमें यह हेतु नहीं. (विस्तार बस. में हे).

योग ओर मेस्मेरेझम (तैजस) विद्याद्वारा परीक्षा करोगे तो जान सकोगे के इस स्थूलसे जुदा पडाहुवा सूक्ष्म शरीर, स्थूलके विनाभी अनेक कार्य करसकता हे (बस. में वीर परीक्षा वांचो) इससे स्पष्ट जानलोगेके जीव शरीरसे भिन्न हे ओर उसका पुनर्जन्म हे (परीक्षा प्रकार ओर परीक्षाके दाखले मानसिकयोगके उत्तरार्द्धमें हें), परलोक गमनकी संभावना हे.

संस्कृत रजवीर्यमात्रसे पशु, पक्षी ओर बालकका सामान्य व्यवहार सिद्ध नहीं होसकता. विचारीये—गाय बच्चेको चाटके सफा करती हे, गाय बच्चेकी तरफ थन करती हे, बच्चा माके साथही प्यार करता हे; मुरगी अंडोंको सेवती हे ओर जानती हे के इतने समयमें पकेंगे; शहदकी माखी अमुक वृक्ष फूलका रस नहीं लेती, उनका राज्यव्यवहार प्रसिद्ध हे; कुत्ता मालिकके साथ वफादारी करता हे, बच्चोंको मांस खुलाता हे; वैया उमदा सयोग्यता घर बनाता हे, माकड (खटमल) तममें छिपता हे, कीडीओंमें दूत, इनजीनीयर, कोतवाल वगेरे होते हें वे अपने मुरदेको कबरमें गाडती हें; कोयल अपने अंडोंको कागडीके नीचे रख आती हे, जब बच्चे उडने लायक होते हें तब लेआती हे; हाथी, मोर एकांतमेंही संसर्ग करेंगे, पशु वगेरेको अहारका भेद ओर मैथुन प्रकार कोन सिखाता हे, बालकको जिससे शांती हो (जेसे दूधसे) उसको स्वीकारता हे, मातासे इतरमें विश्वास नहीं करता, प्रतिकूलसे अलग होने लगता हे; इत्यादि सामान्यज्ञानभी पूर्वके अनेक अभ्यासोंके संस्कारसे होसकता हे. जो केवल रजवीर्यसेही होता तो बालक मातापिताके समान तुर्त नेकबद जानजाता; परंतु एसा नहीं होता; इसलिये पूर्वाभ्यासका संग्रह यथा साधन उदय होता हे, ओर नवीनभी सीखता जाता हे, यही मान्ना पडता हे. खून, चोरी पूर्व जन्मके बदलेमेंहों (इसराइलीमत जिसे ईश्वरकी प्रेरनाभी कहदेता हे) तो कोई दंड मिलनेका हेतु न होसकेगा; क्रियमाणरुप कर्म होगा तो अब अथवा उत्तर जन्ममें सजा पावेगा. वस्तुतः तो यूं हे के कर्मके आरंभसेभी उसके फलका आरंभ होजाता हे; ओर कालांतरमें पूरा होता हे. कोई फल तुरत होजाता हे. मातापिताके उपदशांदि शरीरकी अवस्था हें; जीवकी नहीं. जीव उसका भोक्ता हे. क्यों? पूर्व कर्मका फल. जीव दुःखका साक्षी हे, नहींके दुःखरूप. खानपानादि प्रारब्ध जन्य हें. परंतु जिनका मूल कर्मसे जुदा हे ओर संचितभी ओर हें. सारांश

प्रारब्ध, संचित ओर क्रियमाण (नवीन पुरुषार्थ) इन तीनोंसे जीवन व्यवहार चलता हे, उनके विभागकी पहिछान कर्ममीमांसामें लिखी हे. जीवको पूर्वजन्मकी बात क्यों नहीं याद रहती; इसका विस्तार बस. पूर्वार्द्धमें किया हे. हम रोगका कारण नहीं जानते, **इसी जन्मकी हजारों बातें यादमें नहीं रहती तो अवस्थांतर हुये पीछे याद रहनेकी तो** बातही क्या करना (विशेष बसमें, भप. में).

जबके उपर कहे अनुसार पुनर्जन्म (शरीर संबंधासंबंध) सिद्ध हे तो, यथा कर्म योनी (पशुपक्षि, मनुष्यादि) प्राप्ति वा परलोकगमन सहजमें सिद्ध होजाता हे. जोके यह भेद इस स्थूल शरीरका विषय नहीं होता इसलिये अनुमानसे प्रतिपादन कियाजाता हे.

(शं.) जीव शरीरको इच्छासे छोडता हे वा अन्य निमित्तसे, छोडने पीछे मूर्छित होता हे वा सुधमें. कहां जाता हे, विना शरीर केसे रहता हे, गर्भमें केसे आता होगा, पशुपक्षीकी योनी पाता हे वा नहीं. पुरुषका पुरुष, स्त्रीका स्त्री होता हे; वा बदल. सिंह, सर्प हिंसा करते हें वे प्रारब्ध वा क्रियमाण? पूर्वपूर्वके प्रारब्ध मानें तो क्रियमाण होनेसे प्रारब्ध केसे बने, ईश्वर जीवोंका फल केसे देता होगा, हिसाबकिताब रखता हे वा देव द्वारा देता हे, वा प्रेरता हे वा क्या? इत्यादि शंका अनेक हें. उनका ओर इससे विशेषका समाधान भ्रमनाशकके पूर्वार्द्धमें प्रसिद्ध हे; उससे विशेष कर्ममीमांसामें लिखा गया हे. ओर कुछ बस. मेंभी लिखा हे, वहां देख लो.

शरीरका कद ओर आयुष्यकी वृद्धि, कुदरतके नियमवाली मर्यादातक बढ सकते हें, शरीर तंदुरस्तभी रह सकता हे. सारांश यह दोनों बातें ओर अचिद्वादकी जीवनमुक्ति पुरुषार्थसे होसकती हे. प्रवृत्तिवादिको कर्तव्य हे. शरीर मरणका नाम मुक्ति नहीं हे; क्योंकि पुनर्जन्म सिद्ध हे ॥ जीव ईश्वरका अंशादि नहीं हे, यह अचिद्वादका कथन ठीकही हे.

इष्ट प्राप्ति, अनिष्ट निवृत्ति अर्थ कर्म, उपासना ओर ज्ञान यह तीनों चिद्वादी ओर अचिद्वादी उभयको कर्तव्य हें; ओर समझुपुरुष करतेभी हें. हा. परमार्थ प्राप्ति वास्ते परलोक (पुनर्जन्म, मोक्ष)का निश्चयवाला करता हे. ईश्वर, पुनर्जन्म मानो वा न मानो, परंतु सतकर्म नीति सृष्टिनियमानुकूलवर्तन उभयको सुखप्रद हें. इसलिये विशेषविवादकी अपेक्षा नहीं रतही ॥

[**ईश्वर प्रसंग**]—**आकाश**को न मानें तो गति न हो. परमाणु एकपीछे चलते हें, यही देश (जघे)की सिद्धिमें प्रमाण हे. अंधा सिंदुकमें कीलीठोके तो अदृष्ट

देशमें जाती हे; अर्थात देश यह प्रेमेटर, वा मनमात्रकी कल्पना नहीं हे, वा ईम्प्रेशन नहीं हे. गतिका आरंभ ओर समाप्ति, कालको बता देते हें, कुछभी केसेभी कहो, सुनो वा मानो परंतु देशकालके विना सिद्ध न होगा. देशकाल वस्तु नहीं, इतनी कल्पनाही उसकी सिद्धि करदेती हे.

जो द्रव्य परिच्छिन्नका समूह किसीसे आकर्षित न हो, या मर्यादित न हो तो ब्रह्मांडका गोला एक तरफ चला जाय; ओर तित्तड वित्तड होजाय, क्योंकि अनादि से स्वभावतःजडमें अपने **आप आश्रय,** वा **अन्योऽन्याश्रयकी** अव्याप्ति हे ओर असिद्धि हे. सक्रिय परिच्छिन्न वस्तु, देश ओर आधारके विना नहीं रहसकती. जेसे पक्षीको हवाका आधार हो तब आकाशमें गति करसकता हे; चबुंककी विजलीकी किरणें लोहको अपने आधार रखें तो आकाशमें अधर गति होसकती हे. सारांश सक्रियको देश ओर आधारकी अपेक्षा हे.

आकर्षण—यह द्रव्य, गुण, शक्ति वा क्या ? जो द्रव्य हो तो उसका परिमाण होना चाहिये. परंतु कमज्यादा होनेसे विभु नहीं; ओर अणुरुप नहीं. जो अणुका समूह याने मध्यम मानें तो अणु सिद्ध होगी इसलिये अणु वा मध्यमको दूसरे आधारकी अपेक्षा होगी. अतएव आकर्षणमें स्वयंआधारत्व नहीं सिद्ध होता. जो उसे स्वाश्रयसे दूर पसरना, न्यूनाधिक होना मान लें तो वोह गुण, शक्ति, धर्म, स्वभावरुप न होगी क्योंकि गुणादि अपने गुण्यादिसे इतर देशमें नाहिं जाते—नहीं रह सकते ओर न वे अणु वा मध्यम वा विभु होते हें, उनमें संकोच विकास नहीं होता; परंतु आकर्षणमें तो एसा मानते हें; इसलिये गुणादिरुप नहीं ओर यदि गुणादिरुप मानें तोभी स्वाश्रयसे बाहिर गये विना दूसरेको खेंचना नहीं बनता. संक्षेपमें आकर्षण द्रव्य वा गुण वा शक्ति वा धर्म वा स्वभाव वा अणु वा मध्यम वा विभु सिद्ध नहीं होनेसे उसके स्वरुपकीही सिद्धि नहीं होती तो उसमें खेंचपना, आधारपना ओर नियामकपना हे इसकीतो वातही क्या करना. विशेष मूलमें ओर बस. ईश्वर प्रसंगमें हे ॥

किसी एक बडे गोलेकी आकर्षणसे सबका खिंचना मानें तो वोह आप किसके आधार रहता होगा क्योंकि परिच्छिन्न हे, इसका उत्तर नहीं मिलता. जो अनंत गोले (सूर्य) मानें तो अनंतत्वका अभाव हे अर्थात जितने हें उतने हें इसलिये मुख्याधारकी अपेक्षा होगी. जो ग्रहोंका गुरुत्वाकर्षण, अन्योऽन्याश्रय—अन्योऽन्यको खेंचना मानें तो अन्योऽन्याश्रयदोष हे याने सिद्ध नहीं होता. (आगे अ. २ सू. २५६ । २५८ । २६५ । २६७ में बांचोगे) जो ग्रह अपने गुण, शक्ति, धर्म वा

स्वभावसे अनाधार स्वयं रहसकते हें एसा मानें तो गुणादिमें पराश्रयत्व हे वे स्वयं आधार नहीं बनसकते. जो एसामानें कि अतिगतिके चक्रमें होनेसे गोले इधर उधर नहीं जाते तोभी किसी तरफ आधार न होनेसे कोइ तरफ चले जाना चाहिये क्योंकि गति (कर्म)में आश्रयत्व, नियामकत्व नहीं होता (अ.२।२६५में वांचोगे). विजलीभी परिच्छिन्न ओर पराश्रय हे इसलिये आधारभूत नहीं होसकती. जो हिरण्यगर्भमें रहे हुये गोले उनके गुरुत्व ओर हिरण्यगर्भकी लचक इन उभयके संबंधसे सनियमगतिमें रहते हें उससे टिके हुये हें, एसा मानें तो हिरण्यगर्भ स्वयं मध्यम परिच्छिन्न हे उसको किसी आधारकी अपेक्षा हे ओर मर्यादामें रहनेसे किसी नियामक आकर्षककी अपेक्षा होती हे, इसलिये हिरण्यगर्भ (ईथर) में स्वयमाधारत्व ओर नियामकत्व सिद्ध नहीं होता. स्वयंग्रह वा उनका गुरुत्वाकर्षण, वा उनकी शक्ति, गुण, धर्म, स्वभाव मानके अन्योऽन्याश्रयपना मानें तो आत्माश्रय, अन्योऽन्याश्रय, चक्रिका ओर अनवस्था दोष आवेगा; अर्थात अन्योऽन्याश्रयकी पद्धति (थीयरी) अलीक हे. जो परस्परकी आकर्षणसे बद्ध हुयी यह तमाम ब्रह्मांडरुपी गेंद एक तरफसे दूसरी तरफ जा रही हे (अनादिसे एसा हे) एसा मानें सोभी नहीं बनता, क्योंकि प्रथम तो उपरोक्त अन्योऽन्याश्रयासिद्ध हे. इसलिये गतिके वेगसे हलके पदार्थ ओर भारी पदार्थका फासला पडजानेसे ब्रह्मांड तित्तड वित्तड होजाना चाहिये; परंतु आजतक एसा नहीं हुवा. तथा ग्रहादि संयोगज होनेसे उनमें अनादित्वका अभाव हें ओर जब वे अनादि नहीं तो समान संबद्ध हुये, अनादिसे एक तरफ चलेजाना मान्ना कपोल कल्पित वात हे. जो ग्रहोंमें उपचयापचय होताहुवा नित्यगमन मानलें तो उपचयापचयवालेको आधारकी अपेक्षा रहेगी. इसप्रकार अचिदवादमें कहे हुये आकर्षणादि न तो सिद्ध होते हें ओर न उनमें पराश्रयत्व वा नियामकत्व सिद्ध होता हे. विशेष विस्तार अ. २ आधाराधिकरण ओर मूल ग्रंथमें हे ॥२६६।२६८॥

जब यूं हे तो कोई स्वयंभू आधार मान्ना पडता हे. (शं.) उसकाभी आधार मान्ना पडनेसे अनवस्था होगी वा आत्माश्रयदोष आवेगा. (उ.) परिच्छिन्नमें अनवस्थाका अवसर हे, असीम स्वयंभु अनादि सिद्धमें नहीं, क्योंकि अक्रिय हे, उससे परे अन्य कुछभी नहीं (इसके सिवाय ओर कुछ नहीं कहसकते) तथा अनादिसे हे; इसलिये अस्तित्ववत् आत्माश्रय दोष नहीं आता ॥ वोह आधार आकाशवत् जड नहीं होना चाहिये क्योंकि आकाशमें अवकाशकी योग्यता हे, रोक वा आधारत्वकी योग्यता नहीं हे; इसलिये शक्तिमत चेतन्य ओर व्यापक होनाचाहिये. विभु अ-

धिष्ठान ओर परिच्छिन्नका व्यापक व्याप्य भाव नहीं बनता; याने विभु मानें तो उसके स्वरुपमें परिच्छिन्नका प्रवेश नहीं होसकता, एसा जडवादी कहे तो उसकी रीतिसे दोष नहीं आता, क्योंकि स्थूलमें निरवयव सूक्ष्म रहसकता हे. यथा आकाश परमाणु (न्यायप्रसंगमें वांचोगे). अतःव्याप्य व्यापक भाव बनता हे. परंतु सृष्टिनियमानुकूल इसका समाधान अ. ३ में २ में, ओर बस. उत्तर फिलोसोफीमें हे जिससे अचिदवाद का उच्छेद होजाता हे. अतःअधिष्ठानकी सिद्ध हे. ॥ २३९ ॥ चेतनसे इतर जड परमाणुओंमें वा जड प्रधान (प्रकृति, मनस) में सृष्टिरुप कार्य करनेकी दक्षता नहीं जान पडती ॥ बीज वृक्षवत् विचित्रकार्य होना मानें तो हेतु फलकी अव्यवस्था होती हे; क्योंकि हेतू पूर्वही होना चाहिये; अन्योऽन्य हेतु नहीं होसकता. इसलिये मूल बीज होना चाहिये; बीज मध्यम हे. अतःउसका प्रयोजक मान्ना पडता हे; क्योंकि जब प्रलय हो, किंवा एक ग्रहका भाग दूसरे ग्रहमें जावे तब अथडा अथडी (टक्कर) से, ओर तदजन्य अति गरमी होनेसे, मध्यम बीज असल स्थितिमें नहीं रहसकते; इसलिये सृष्टि उत्पत्तिकालमें वा नवीनग्रहके उत्पत्तिकालमें बीजोंका प्रयोजकनिमित्त मान्ना पडता हे. ग्रहोंका अनादित्व असिद्ध हे; क्योंकि संयोगज हें, पराश्रित हें ॥ शरीरादिकी अंतर रचना (मगज, हृदय, गर्भस्थान, चक्ष्वादिकी रचना) देखनेसे कोई बुद्धिमान शक्ति, निमित्त हे, एसा जबरदस्तिसे मान्ना पडता हे ॥ मोर, वृक्ष वगेरेकी विचित्रता बीजोंसे होती हे; परंतु मूल बीजोंमेंसे एसी विचित्रता हो, यह किसी अन्यका कार्य हें. बीजोंकी जातियेंमें भेद होनेका निमित्त अन्य होना चाहिये. गंदना (बुरी बासका वृक्ष–फुल) गुलाब, नीम, ओर नेशकरका बीज, एक बडे कूंडेमे माटि डालके बोदो तहां मिट्टी समान हे, परंतु वे बीज इस पुंजमेंसे अपने योग्य परमाणु खेंचेंगे, ओर खिंचेहुये परमाणु बीजकी योग्यतासे बदलते जायँगे. अर्थात उनका रसायाणीय संयोगज मिश्रण, बीज जेसा होगा. इससे स्पष्ट होता हे के बीज प्रयोजक कोई शक्ति हे ॥ अचिद प्रकृति उक्त विचित्र कार्य करती हो वा उससे स्वयं होते हों; एसी योग्यता, योजना उसमें सिद्ध नहीं होती. परमाणुंओंकी असावयवता नहीं हे इसलिये उनका परकरके उपयोग होने योग्य हे. उक्त विचित्रता केसे प्रयोजी जाती होगी, यह वात मनुष्यके ज्ञानसे बाहिर हे क्योंकि उस अचिंत्य शक्तिको मनुष्य नहीं जानसकता. इसलिये अनिर्वचनीय वा अगम्यपदका प्रयोग करना पडता हे. ईश्वर केसे रचता होगा, यह हम नहीं जानसकते, उसका अनुमानभी नहीं करसकते. दूर क्यों जावें नित्य समीप-

वर्ती पदार्थोंका विचार करें.— (१) विजलीके दो विरोधी किनारे हें एक खेंचता दूसरा दूरकरता हे, एसा कार्य विजली केसे करती होगी ? हाथ पांव विना केसे करती होगी ? मन अन्यकी अपेक्षा विना प्राणोंको आनेसे केसे रोकदेता होगा ? हस्तादि अंग विना स्वप्नकी सृष्टि केसे रची जाती हे, वहां द्रश्यका मेटर क्या हे, उसमेंसे विचित्र कार्य केसे हुये ? इत्यादि द्रश्यवार्तोंकोभी नहीं जान सकते, नित्य उपयोगी द्रव्योंकी शक्तिओंको (योग्यताको) भी नहीं जानसकते तो भला, परोक्ष सूक्ष्म मन-बुद्धिसे अगम्य जो ईश्वर उसकी शक्तिका अंदाजा केसे लगासकते हें. सिरफ कार्य दर्शनसे उक्त व्याप्ति द्वारा अनुमानही करसकते हें.

गरमी वगेरे, वर्षा वगेरे, भूकंपादि वगेरे, ग्रहण वगेरे जो विचित्र सनियमकार्य होते हें यह प्रकृतिवादमें कहे अनुसार ग्रहोंकी गति, योजना, ओर उनके निमित्तोंसे होते रहते हें, उनमें ईश्वरीय चमत्कार माननेकी जरुरत नहीं हे; क्योंकि जेसे शरीरका व्यवहार ४ प्रकारसे होता हे, याने कोई काम स्वाभावतःप्रकृतिसे (यथा हृदयादि यंत्रोंके कार्य), कोई जीवसे (हस्तादिकका उपयोग), कोई उभयसे (श्वास चलाना रोकना, आंख उघाडबंद), ओर चेतन अधिष्ठानसे (यथामनादिका प्रकाश्य होना) होता हे, वेसे इस समिष्टि ब्रह्मांडमें गरमी, सरदी वगेरे, वर्षादि, भूकंपादि, ग्रहणादि, यह सब स्वभावतःप्रकृति याने ग्रहोंकी गत्यादिसे होता हे. आरंभमें ग्रहोंकी बीजोंकी ओर जीवोंके कर्मफल मिलनेकी योजना, ईश्वरद्वारा होती हे. उसपीछे ईश्वरीयसत्ताविशिष्टप्रकृतिसे होती हे. अधिष्ठानत्व शुद्ध स्वयंभुचेतनमें हे ॥ शरीरसे बाह्य वस्तुओंका सर्वथा ज्ञान नहीं, यह वात सर्वांशमें असिद्ध हे. (बसमें ईम्प्रेशन प्रसंग, बौद्ध समीक्षा ओर अ. २ । ४५१का विवेचन देखो) ॥२७० । २७५॥

उत्तर फिलोसोफीमें समिष्टिवाद जो कहता हे उसमें सर्व वातें ठीक नहीं जान पडती. यथा—(१) सब जड वा सब चेतन मानके व्यवस्था करना असिद्ध हे, क्योंकि उभय वैधर्म्य हें, इत्यादि उपर कहा हे. (२) समूहका क्षणिकपरिणाम सिद्ध नहीं होता (बोद्ध प्रसंगमें वांचोगे). (३) सत्चिद्आनंद तीन अंश ओर उनके भिन्न २ कार्य कहके उनको एक मान्ना कपोलकल्पना मात्र हे (शुद्धाद्वैतमें वांचोगे). (४) मध्यमें मानके पूर्वोत्तर न होनेसे शून्य कहना वदतो व्याघात हे (बौद्ध प्रसंग देखो). (५) जेसे एक चिदवाद वा एक अचिदवाद नहीं होसकता, वेसेही केवल विभूवाद वा केवल परिच्छिन्नवाद नहीं होसकता; यह उपर कहा गया हे, किंतु उभय मान्ने पडते हें (६) जो स्वतोग्रह (स्वतःप्रमाण) न मानें तो जडवादही सिद्ध न हो-

गा, जो परतःही मानो तो परतःका ग्रहण होनेसे स्वतः प्रमाण मान्ना पडेगा; क्योंकि उस विना उसकी असिद्धि रहती हे, जो अपवाददर्शकको मान्य हे. जो दोनों न मानें तो बकबादवादसे इतर फल नहीं हे ॥ २७५ ॥ इति ॥

भावनाक्रमाध्यारोप (नूतन भावना).

पृथ्वीपर जब मनुष्य सृष्टिका आरंभ हुवा तब पहेले पहेल धर्म भावना (जीव, ईश्वर, देव, बंध, मोक्ष, पुनर्जन्मादि, विषय)का कोई चमत्कारी (ईश्वर, सर्वज्ञ, आकाशवाणी इ.) कारण वा चमत्कारीग्रंथ वा उपदेशक नहीं हुवा हे, किंतु क्रमशः संबंध, परिस्थिति ओर कुदरतके दर्शनसे क्रमशः उस भावनाका आविर्भाव होनेलगा हो; जिसका परिणाम वर्तमान धर्मभावना हे, एसा अनुमानसे जानाजाता हे.

इस नवीन भावनाका सामान्य अंश प्राचीनकालमेंभी होगा, परंतु विशेष रुपसे इस विक्रम १९ सदीमें योरोपखंडविषे प्रसार हुवा हे. इससे पूर्व यह अध्यारोप पब्लिकमें प्रसिद्ध नहीं था.

सो अध्यारोप आगे लिखते हें. इस प्रसंगमें भूतविषय ओर भूतकालसूचक जो प्रत्यय, वर्तमान प्रत्ययसे आवें वहां भूतमें वर्तमान अर्थ करलेना चाहिये. ओर वोहभी अनुमान रुपसे; नहींकि निश्चितरुपसे. यथा "पीछे देवभावना हुई" इसका आशय यह हे के उसपीछे देवभावना हुई हो, एसा अनुमान होता हे वा एसे हुवा होगा वा एसा होना चाहिये. इत्यादि रुपमें अर्थ करना.

धर्मभावना विनुपदेश क्रमशः ॥ २७६ ॥ उन्नति अवनतिका क्रम पायेजानेसे ॥ २७७ ॥ बाल क्रम वत् ॥ २७८ ॥ आरंभमें शरीरानुकूल भावना ॥ २७९ ॥ तद्वत् इष्ट अनिष्ट ॥ २८० ॥ माता सूर्यादि वत् ॥ २८१ ॥ छाया आकृति शब्द ओर स्वप्नसे चैतन प्रेतकी भावना ॥ २८२ ॥ पश्चात परोक्ष साकार देवकी ॥ २८३ ॥ चमत्कार दर्शनसे ॥ २८४ ॥ पीछे कर्मफलकी ॥ २८५ ॥ मंडल प्रबंध दर्शनसे ॥ २८६ ॥ देवार्थ बलिदान स्वार्थ वशात ॥२८७॥ पीछे मनुष्य देवकी उपासना ॥२८८॥ जीवका पृथकत्व, प्रेत भावनासे ॥ २८९ ॥ जन्मभावना कार्य दर्शनसे ॥ २९० ॥ उससे परलोककी ॥ २९१ ॥ पीछे परोक्ष एक शक्तिकी ॥ २९२ ॥ विलक्षणतासे अवतारकी ॥ २९३ ॥ अन्यथाभी ॥ २९४ ॥ यथा देशकाल स्थिति, उन्नति, अवनति ॥ २९५ ॥

अर्थ–मानव मंडलमें जो धर्मभावना (ईश्वर, जीव, बंधमोक्षादिका भाव) प्रचलित हे वोह मानव सृष्टिके आरंभ पीछे किसीके उपदेश किये विना सृष्टि दर्शनसे शनै शनै क्रमसे हुई हे. एकसाथ नहीं किंतु वंशपरंपरामें क्रमशः हुई हे. ॥ २७६ ॥ क्योंकि सृष्टिमें हरेक विषयमें उन्नति अवनतिका क्रम देखते हें, एसेही धर्मभावनामें वोह क्रम होना चाहिये ॥ २७७ ॥ जेसे बालककी (वृक्षादिकी) उत्पति, वृद्धि, स्थिति (उन्नति क्रम), विपर्य, क्षय ओर नाश (अवनति)का क्रम देखते हें; वेसेही धर्मभावना प्रसंगमें योजलेना चाहिये ॥ २७८ ॥ मानव सृष्टिके आरंभ कालमें पहेले पहेल शरीरके अनुकूल भावना थी अन्य नहीं ॥ २७९ ॥ तेसेही इष्ट अनिष्टभावना होती थी. अर्थात उसके अनुकूलको इष्ट, प्रतिकूलको अनिष्ट मानतेथे ॥२८०॥ जेसेके बालकको माता इष्ट थी ओर ठंड निवारक होने, प्रकाश देनेसे, तथा व्यवहार ओर जीवनका हेतु होनेसे, सूर्यको इष्ट मानते थे; तद्वत चंद्र वगेरेको इष्ट जानतेथे ॥ २८१ ॥ स्वभावतः छाया साथचलनेसे, पानीमें प्रतिबिंब देखनेसे, स्वाभाविक अकस्मात आकृति देख पडनेसे, अपनेको बोलता हे एसी आवाजका भ्रम होजानेसे, ओर स्वप्नमें अन्योंके दर्शनसे चेतन, भूत भावनाका आविर्भाव हुवा ॥ २८२ ॥ फेर गर्जनादि चमत्कार दर्शनसे कोई परोक्ष साकार देव हे, एसी भावना हुई ॥ २८३ । २८४ ॥ बलवान निर्बलको न सतावे, सतावे तो शिक्षा पावे, एसा मंडलीका प्रबंध देखनेसे कर्मानुसार फल मिलेगा, एसी भावना हुई ॥२८५ । २८६ ॥ चमत्कारोंसे जो देव माने गये वे हमारा स्वार्थ पूरा करेंगे इसलिये उनके प्रसन्नार्थ स्वप्रिय बलिदानकी भावना हुई ॥ २८७ ॥ पीछे भय ओर स्वार्थसिद्धिवश पराक्रमी मनुष्य ओर देवोंकी पूजा होने लगी ॥ २८८ ॥ छाया आदिसे जो भूतभावना हुई, उससे जीव, शरीरसे भिन्न हे, एसी भावना हुई ॥२८९॥ अनिच्छित अकस्मात कार्य, भोग होनेसे पूर्वजन्मकी भावना हुई ॥२९०॥ उससे उत्तर परलोक गमनकी भावना हुई ॥ २९१ ॥ उस पीछे नाना देवोंसे इतर सर्व उपरी एक शक्ति हे ओर वोह परोक्ष हे, एसी भावना हुई ॥ २८२ ॥ साधारण मनुष्योंसे विलक्षण पराक्रमी पुरुषमें परोक्ष देव, शक्तिके अवतारकी कल्पना चली ॥ २९३ ॥ उपर कहे अनुसारही सबमें भावना थी; एसा नहीं, किंतु टोलेमें वा व्यक्तिओंमें उससे अन्य ओर विरोधी भावनाकाभी आविर्भाव था ॥ २९४ ॥ इसप्रकार जेसा देश-

२७७ उन्नति अवनतिका विवेचन सू. ३२०में हे। २७८ आरंभसे अभीतक धर्मभावनाकी पडती नहीं मानतेहें, कोई पडतीभी मानता हे॥ आगे भावनाका क्रम हे.

काल ओर स्थिति प्राप्त हुये, उसी अनुसार मनुष्य मंडलके टोलोंमें उन्नति अवनति हुई. वर्तमानमें जो देखते हें, सो उसीका परिणाम हे ॥ २९५ ॥[1]

वरणन.-

धर्म भावना (जीव, ईश्वर, पुनर्जन्म, देवता, बंध मोक्ष, मोक्षके साधन इत्यादि)की केसे उत्पति हुई; इसका अनुभव करसकते हें. यद्यपि गत विषय, अपरोक्ष नहीं कहाजासकता; तथापि वर्तमानमें जो व्याप्ति ओर संस्कार देखते हें उसका मूल कारण कुछ होना चाहिये, इससे उसका अनुमान करसकते हें. यथा देवभावना ओर मूर्तिपूजा, सब प्राचीन प्रजामें प्रचलितथी; एसे इतिहास बतादेता हे. (साम ब्राह्मण, मनुस्मृति, मिसर देशका मूर्तिमंदिर, ग्रीसके मूर्तिमंदिर, मेकसीको प्रजाका इतिहास, भील, हबशी वगेरे श्यामा प्रजाके रीतरीवाज ग्रंथोंद्वारा विचारिये). यद्यपि अपनी उत्पत्तिके पहेलेका बयान कोई नहीं करसकता, ओर जो करते हें उनमें मतभेद हे; क्योंकि भूकंप, जलप्रलय, हिमप्रलय होते रहनेसे सम्यक इतिहास नहीं मिलता. तथापि जेसे बालक इष्ट अनिष्ट मानते हें, नानाप्रकारकी भावनाका उनमें उदय अस्त होता हे, सीखते सिखाते हें; तथा वृक्षोंकी उत्पति, वृद्धि, क्षय देखते हें; इस व्याप्तिद्वारा यह मान सकते हें कि हमभी बालक अवस्थामें एसे थे, दूसरोंमेंभी एसाही क्रम होना चाहिये; अंतको नाश पावेंगे. इसी व्याप्तिसे मानव प्रजाके आरंभसे कुछ अनुमान करसकते हें, क्योंकि साधनसे साध्य (फल)का अनुमान होजाता हे.

जीवनका मूल, गति ओर ज्ञान हे. स्पर्शास्पर्शावस्थाको गति कहते हें; जेसे पुस्तकका स्पर्श ओर अस्पर्शरुप अवस्था हे याने हाथकी गति हे. प्रतीतिका नाम ज्ञान हे. गति स्वाभाविकभी होती हे; जेसेके वायु चलती हे, ओर हृदय चल रहा हे, आंखें स्वयं उघडके बंद होती हें; ओर इच्छासेभी होती हे, जेसेके हाथ मिलाते हें. इच्छापूर्वक गतिका नाम बुद्धा हे. वोहभी स्वाभाविका ओर सामान्या एसे दो प्रकारकी होती हे. भयादि स्वाभाविका हें; ओर चलनादि सामान्या हें. उससे इतर

---

[1](नोट)-उपरोक्त भावनाओंमें सबही अर्थशून्य-भावनामात्र हें, वा सबही सार्थ यथार्थ हें, एसा नहीं कहाजाता. परंतु भाविककी भावनामें वे ठीक मालूम होतीथीं इतनाही कहसकते हें. तथा यह क्रम चेतन ओर जड उभय भावनामें लगाते हें. इतना ठीक जानपडता हे के, सामान्यभावके पीछे प्रथम चिद्भावकी उत्पति हुई, उस पीछे जडभाव उदय हुवा हे. इस भावनाके क्रमका विस्तार मूल ग्रंथमें हे. यहां तो सार सार लिखते हें.

विशेषा हे. जेसेके देके लेना-लेके देना, इंद्रियोंपर मन आना जाना. इ. गति ओर उसका क्रम अनुभवसे जानाजाता हे.

प्रमाता प्रमेय (विषयी विषय)के संबंधसे जो प्रतीति (ज्ञान) होती हे उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हें. ओर दोनोंके संबंधको वा जिनद्वारा संबंध होता हे (इंद्रिय), उनको प्रत्यक्षप्रमाण (ज्ञानका साधन) कहते हें. विषयादिके धर्म ओर उनके भेदोंको ग्रहण करनेवाला जो ज्ञान हे, उसे अनुभव कहते हें. व्याप्तिजन्य ज्ञानको अनुमान ओर उसके होनेमें जो (व्याप्ति लिंग) साधन उसे अनुमानप्रमाण कहते हें. जेसे धूम अग्निके विना नहीं होती, एसी व्याप्ति देखनेसे अन्यत्र धूम (लिंग)को देखके परोक्ष अग्निका अनुमान होजाता हे. नदीका प्रवाह आना देखके उपरकी दशामें वर्षा होनेका अनुमान होजाता हे. तहां लिंगव्याप्तिका ज्ञान, अनुमानप्रमाण हे. इस अनुमानप्रमाणसे ही प्रस्तुत विषयकी सिद्धि होती हे.

जब पृथ्वी, वनस्पति–प्राणीकी उत्पत्तिके योग्य हुई तबसे वनस्पतिसे लेके मनुष्यतक एकपीछे दूसरा एसे उन्नति क्रम (इयोलेशनका सिलसला) चला हे. मनुष्यकी उत्पति पीछे मानव मंडलमें जेसे अहार, विहार, व्यवहार, राज्य, विद्या आदि सोशियल विषयमें क्रमशः उन्नति हुई हे, यथा पहेले मांसाहारी पशुवत लडाई, बलिष्टका जय, गुफासेवन, सामान्य भाषा, पशुओंको पकडके दूध पीना-पालना, जलके किनारे निवास, चारा एकत्र करना, उनसे अन्नका संस्कार होना, कच्चा खाना, बोना, झुपडी बनाना, छालके वस्त्र बनाना, टोले बंधना, उनमें मुखिया थापना, जाति बंधाना, भाषाकी उन्नति होना, राज्य स्थापन होना इत्यादि क्रमशः हुवा हे (उसका संक्षेपमें वर्णन भ्रमनाशक पूर्वार्द्धमें हें); वेसेही धर्म (जीवादि) भावनाभी क्रमसे हुई हे. नहींके आरंभमेंही किसीके उपदेशसे वा माताके उदरसे वा एकदम अपनी बुद्धिसे हुई हे.

(सू. वि.)—मनुष्यप्रजाका जब आरंभ हुवा तब, जेसे पशुपक्षिओंमें शरीरके अनुकूल प्रतिकूल, इष्ट अनिष्टकी भावनाका आर्विभाव होता हे वेसे उनको होना चाहिये. वोह भावना अनेकांत रुपमें थी. किसीको अमुक (माता-पिता) इष्ट किसीको वोह इष्ट नहीं, एसा था. यह सब भाषाके विना भावना थी. संस्कारी जीव वृत्ति अनुसारी जो भावाभावआत्मिका, ज्ञात अज्ञात अवस्था विशेष, उसे भावना कहते हें. यथा पंहेल पहेल स्वादुफल चाखने पीछे उसमें जो भाव वा कटुफल चाखनेसे उसके असंबंधमें जो भाव सो भावना हे, वोह ज्ञात ओर अज्ञातरुपमेंभी होती

रहती हे. आरंभमें अहार, मैथुन, विहार, भय इत्यादि अनुकूलका उपयोग होता था; प्रतिकूलका नहीं. इसीप्रकार इष्ट अनिष्ट भाव था; जेसेके मातामें इष्टभावना, अन्य शरीरोंमें नहीं; क्योंकि माता अनुकूल थी. सरदी लगनेपर सूर्यमें इष्ट ओर जलमें अनिष्टभाव होता. गरमी होने वा प्यास लगनेपर जलमें इष्टभावना होती. छाया प्रतिबिंब, स्वाभाविक आकृति, शब्दभ्रम ओर स्वप्नमें पदार्थ दर्शनसे अमुक अमुकसे विलक्षण (चेतन) एसा भाव हुवा. जेसेके वृक्षादिसे न डरते, ओर मनुष्यको उनसे विलक्षण हितकर जानते, परस्परमें इच्छाभाव बताते; परंतु वोह इच्छाभाव वृक्षादिकोंके साथ नहीं होता. यह सब **असंस्कृत** [भाषा अज्ञान] अवस्थामें था. यद्यपि जबभी पशुपक्षीसे विशेष प्रकारकी भाषा थी; जेसेके बालकोंकी भाषा देखते हैं, परंतु वोह संस्कृत नहीं थी. किंतु अनघड थी. इति सामान्य भावना.

जब जीवन व्यवहार ठीक ठीक निभे एसी आशयसूचक भाषा होगई तब उपरोक्त भावनाकारुप प्रसिद्धिमें आने लगा.

जेसे बालक छायाको देखके डरते हैं ओर उसे भयकारी वस्तु मानते हैं, जेसे सिंह वा कुत्ता पानीमें प्रतिबिंब देखके उसे अपना जेसा मानके नाद करता हे, चिडिया प्रतिबिंबपर टांचें मारती हे, बंदर उसे बुरा जानता हे, कोई बालक प्रतिबिंबसे भय करता ओर कोई अपना जेसा जानके उससे खेल करता हे, एसे प्रतिबिंब देखके अपने जेसे परोक्ष पदार्थ हैं, एसी भावना हुई. इसीसे भूत ओर देवादि भावनाका बीज जमा. साधारण बेठें हों, आंख बंद करें तो कोइ प्रकारकी छबी सामने होती हे; अथवा रातको चांदनी रातमें वृक्षोंके पत्तेकी छायासे,श्वेत वस्त्रवाला आदमी खडा वा हलता होय नहीं, एसा जान पडता हे, किंवा भभूला वगेरेसे भयंकर आकृति जानपडती हैं, वेसी आकृति देखनेसे भूतादिकी कल्पना चली. कभी उदासीन बेठे हों वा निद्राका आरंभ हो तब अकस्मात एसा जान पडता हे के मुझे कोई बोल रहा हो (यह आवाज बहुधा अपने मनकीही होती हे). उससेभी परोक्षभूत देवका रवयाल बंध जाता हे. स्वप्नमें जो नहीं देखी एसी मूर्ति, शरीर किंवा मरे हुये पराक्रमि भयंकरोंकी छबी, किंवा मरे हुये पितरोंके शरीर देखते हैं, उनसे वातें होती हैं, ओर कभी स्वप्नमें देखे समान जाग्रतमें होजाता हे; इससे भूत, पितृ ओर देवभावनाकी मान्यता होजाती हे. पशुपक्षी वा बालक, प्रतिबिंबादिसे डरता वा उसे अपना जेसा जानता हे, फल फूल जेसा नहीं जानता, किंतु उनसे ओर

प्रकारका ज्ञानवाला जानता हे. इसका नाम चेतन्यभावना हे, सो भावनाभी छायादिसे होजाती हे.

जब भावनाओंकी बाहुल्यता हुई, ओर परस्परमें घर्षण हुवा, तब भावनाके ओर विषयकी आधीनतासे भेदका आरंभ हुवा. एक दूसरेके इष्टको अनिष्ट रुपमेंभी बताने लगे. यथा वर्षाप्रसंग वा धूपप्रसंगमें वृक्षके नीचे जानेसे, वा गुफामें चले जानेसे, आराम मिलाथा, इसलिये उनमें देवभावना थी, फेर कभी डाली वा फल टूटनेसे, वा गुफाका पत्थर गिरनेसे हानी हुई तो किसीने उसदेवका कोप माना, किसीने उसमें देवभावना छोड दी. एसे भेद होनेलगे (मूलग्रंथमें बंदरादिके व्यवहारसे इस विषयको स्पष्ट किया हे).

इसप्रकार परस्परमें संवाद होनेसे परोक्ष साकार देवकीभी कल्पना हुई. कारणके गर्जन, विजली, तारापतन, सूर्य, चंद्र, ओले, वर्षा इत्यादि चमत्कारोंपर ध्यान गया. ओर दो प्रकारके देव मनाये. अपरोक्ष सूर्य, चंद्र, विजली आदि ओर दूसरा परोक्ष गर्जन वर्षादिका करनेवाला. जगत हमेशेसे हे, एसी सामान्य भावना हुई; क्योंकि नाश नहीं देखते, एसी सामान्य भावना उदय होती थी. जब टोले बंधके टोलों प्रति मुखिया मानागया; ताके गरीबको बलवान न सतावे तब मुखिया दंड देने लगा. इससे कर्मका फल होता हे, यह भावना चली. माने हुये परोक्ष, अपरोक्ष देव, फल दे रहे हें, याने सूर्यादि, वर्षादिसे फल होता हे, इसलिये उनसे विशेष फल मिलनेकी आशा हुई, तो जो अपनेको इष्ट वस्तु थी सो उनके अर्पन करनेके लिये इच्छा हुई. अर्थात देवों निमित्त पशुबली करने लगे ओर जो बलवान पराक्रमी मनुष्य था उसे सत्कार करने लगे, अर्थात देववत पूजने लगे, क्योंकि फलदाता था भयकारी था. इसीप्रकार देवोंके चिन्ह बनाके पूजने लगे [जेसाके अभीतक भीलादि जातीमें देखते हें]. मुखी प्राक्रमीके वाक्य प्रमाण ठेरे; मरेहुये प्राक्रमीके स्वप्नमें दर्शन हुये, उसने जो कहा उसे प्रमाणरुपसे मान्ने लगे. इतना होनेसे दो भाव द्रढ होगये. (१) देव दर्शन, (२) उनके वाक्य प्रमाण. इस शब्दसंग्रहने धर्मका स्वरुप खडा करदिया. देव पितृ, भूतादिसे डरने लगे. ओर देवोंकी किंवा उनकी मूर्तिकी यादि, ध्यान याने मानसिक पूजाभी करने लगे ताके वे प्रसन्न रहें; भयप्रद न हों. जब कभी सृष्टिमें कोई अकस्मात कार्य याने चमत्कार हुवा, तबही भावनाने अपना द्रढरुप धारण किया. जेसे भूकंप, स्वप्नानुसार जाग्रतमें होजाना, धनुष दर्शन, ज्वालामुखीका दर्शन इत्यादि चमत्कारोंसे देव, पितृ, भूतादिकी भावनानें जोर पकडा. भूत, पितृ, भावनानें

जीव शरीरसे पृथक है ओर उसका पूर्वजन्म था उत्तरमें होगा वा जीव शरीरसे पूर्व था उत्तरमें कहीं रहेगा; एसी भावना द्रढकी; क्योंकि स्वप्नमें अद्रष्ट शरीर (देव) पराक्रमी मुखियाके शरीर ओर मरे हुये पितरोंकी मूर्तिके दर्शन ओर कथन श्रवण होते रहेथे. जीव भिन्न हे इस भावना ओर पितृ दर्शनसे देव पित्रोंके (स्वर्गादि) स्थान विशेष हें यह भावना होना स्वाभाविक हे. ओर जो मरेहुये स्वप्नमें दुःखी देखे उनसे कथन श्रवण हुवा उसपरसे उनका खराब स्थान (नरकादि) हे एसा भाव हुवा. इसप्रकार जीवको मरने पीछे बंध, स्वतंत्रता, नरक, स्वर्ग होते हें एसी भावना होगई. फेर नाना विचित्र कार्य दर्शनसे बुद्धिके क्रमानुसार कोई एक परोक्ष बलवान शक्ति याने देवकी कल्पना हुई. ओर सर्व साधारणसे विलक्षण पराक्रमी वा बलवान होनेसे उसविलक्षण व्यक्तिमें किसी देव वा परोक्ष शक्तिका अवतार हे, एसी भावना चली. मैथुनसे ओर विनामैथुनभी प्राणी उत्पन्न होते हें यह माना गया. यह सृष्टि स्वप्नवत् क्षणभंगुर हे एसा भाव हुवा; इसप्रकार क्षणिकत्वकी मान्यता हुई.

उपर कही हुयी भावना क्रमशः होतीथी परंतु उतनीही थीं एसा नहीं किंतु उनसे अन्य ओर विरोधीभी थीं. जेसेके परोक्ष देव नहीं क्योंकि नहीं देखते. शरीरसे भिन्न जीव नहीं क्योंकि प्रतीत नहीं होता. नहीं मालूम क्या हे कुछ निश्चय नहीं होता इत्यादि भावनावाली व्यक्तियेंभी थीं. कोई इनबातोंसे उपेक्षावाले, कोई समविचारवालेभी थे. समान, विरोधी वा उपेक्षाभाव उनउनके अधिकरण (चित-जीव वा टोले विशेष)में संस्कार रुपसे रहा हुवा था. शरीरका कद[१] ओर आयुष्य वर्तमानसे ज्यादे होने चाहिये; क्योंकि थोडी बसती होनेसे ब्रह्मचर्य खानपानादिकी अनुकूलता थी याने देश, काल, सुखुराक, थोडी बस्ती, आबहवाकी अनुकूलता, ब्रह्मचर्यका पालन, सृष्टि थोडी पेदा करना, चिंता थोडी होना इत्यादि बातोंका अमल था.

उपर जो भावनाका **सामान्य क्रम** लिखा हे वोह वर्तमानकी गाथा, ओर ग्रंथके भावोंसे तथा उपर कहे अनुसार व्याप्ति ग्रहसे लिखागया हे; यदि उससे ओर प्रकारकी संभावना हो तो **आग्रह** नहीं हे. यह एक संस्कारी प्रजा (शुभ्रा प्रजा) का क्रम कहा. यह संस्कारी प्रजा आरंभमें जहां रहती थी वहांसे विभक्त हुई; क्योंकि सृष्टिकी वृद्धि हुई, देशकी ऋतुमें अंतर पडने लगा, ओर देश थोडा बसती

[१] भूस्तविद्यावालोंको मनुष्यके शरीरकी लंबी हड्डी ओर एसी खोपरी कि जिसमें १० सेर (८०० तोला) गीहुं समाजावें, मिली हे.

ज्यादा, तथा मनुष्यका स्वभावभी हे के देशगमन (यात्रा) करे; इसलिये वोह देश छूटा किंवा टोले निकले.[१]

उस प्रजासे इतर दूसरी **श्यामाप्रजा**भी थी जो उस देशसे इतर दूसरे देशोंमें रहती थी. शुभ्रा ओर श्यामाप्रजाके चहरे, भाषा, रीतरिवाज विलक्षण हें, इसलिये उनके भेद मानेगये हें. अबभी जो हें उनमें विलक्षणता हे. इन उभय प्रजाका इतिहास ठीक ठीक नहीं मिलता जिसका कारण उपर कहा हे. यह श्यामाप्रजा देवभावनामें आवृत थी ओर उसका विशेष भाग अबभी वेसाही हे. इति **मध्यम भावना.**[२]

उपरके प्रकारमें केवल जड पद्धतिका भास होता हे तथापि भविष्य भावनासे उसका आरंभ चेतनवादको उद्भव करदेता हे. विचारिये.– उक्त देशबदल हुई प्रजामें उसकी स्थिति[३] होनेपर उसमें कर्म ओर गतिकीभी द्रढता हुई ओर ज्ञान भावनाकाभी उदय होने लगा. उससे जडचेतन, प्राकृत अप्राकृत, भौतिक अभौतिक इत्यादि भेदका निर्णय ओर ईश्वर, जीव, बंध, मोक्षादिके स्वरुपका विवेक होने लगा.

जेसेके–ज्ञानदर्शन भाववाला, यह **चेतनका लक्षण** ठेरा. दुःख, सुख, रागादिवाला जो हो सो जीव. उससे उलटा जड. द्रष्टा द्रश्यभिन्न. देवपरोक्ष ओर अपरोक्ष उभयथा हें क्योंकि उनसे लाभ होता हे; जेसेके सूर्य, चंद्र, विजली, ओर जलादि

---

[१] [२] (नोट) पहले मनुष्य किसप्रकार (अकस्मात नरमादा जवान आखडे हुये, स्वेदज उद्भिज वा अंडजसे नर मादा हुये, वा क्रमशः वनस्पतिसे कीडे मकोडे फेर पक्षी पशु फेर बंदर फेर उनसे मनुष्य रुपमें आये वा केसे) ओर कहां (पृथ्वीके अमुक एक देशमें वा अनेक देशोंमें) ओर कब (५ हजार वा एक अर्बुद वर्ष हुये तब वा कब) ओर कितनीवार (खंडोंमें भूकंपादि, बरफ प्रलय हो तो उसी पीछे उस खंडमें दूसरी जघेके मनुष्य आके बसे वा पुनः नवीन सृष्टि उत्पन्न हुई ओर यदि नवीन हुई तो पृथ्वी उत्पत्ति पीछे कितनीवार एसा हुवा) उत्पन्न हुवा, यह नहीं कहा जाता. बीजोंसे एकसाथ अनेक जवान स्त्री पुरुष हुये वा एक जोडेकी संतान हे, आरंभमें सब जीव उत्तम वा सब नाकिस (नीच) वा उभय प्रकारके जन्मे, शुभ्रा श्यामा–उभयप्रजा एक देशमें वा भिन्न २ खंडोंमें जन्मी, पुनः देश यात्रासे मिश्रण हुवा ओर कालांतरमें आकृति, रंग, डोल, रीतरवाज यथा देशकाल बदल गये. इत्यादि विषयमें मतभेद हें याने अनेक कल्पना हें.

[३] तिबबत–केलासमें मानते हें.

उपर कहे हें. भूत-पितृभी हें, क्योंकि उन परोक्षोंकी कभी कभी चेष्टा (वस्तुला-देना, गुम करदेना इ.) देखते हें. सब ग्रहोंमें देवतादि हें. वे कुटंब समान ग्रहोंकी प्रजाके रक्षक ओर प्रबंधक होते हें. वे अन्य ग्रहोंवालोंसे संबंधभी रखते हें. कभी कभी अपरोक्ष दर्शन देते हें, वे वर ओर शापभी देते हें. उनके प्रसन्नता अर्थ बलीदान कर्तव्य हे. बलिदान अर्थात भोग ओर इष्ट पदार्थ उनकी भेट. वे परोक्ष याने आकाशवाणी द्वारा ओर कभी अपरोक्षभी उपदेश करते हें. उन देवोंके नाम अपनी अपनी भावना अनुसार रखे गये. संबंधी पितृवर्गभी हें जो कभी कभी परोक्ष चेष्टाद्वारा अपना भाव बताते हें. देव पित्रोंका संबंध मनुष्योंके साथ नहीं होता, क्योंकि मनुष्य मलीन हें; तथापि किसी शुद्ध तैजसवालेके साथ कभी अकस्मात होजाता हे. एसी एसी भावना हुई ॥ इष्ट देवोंको नीति पसंद हे, उपर कहे अनुसार देव वा प्राक्रमियोंका उपदेशभी हे; इसलिये भय ओर स्वार्थवश, सामान्य नीतिसे अधिक लाभकारी विशेष नीतिका प्रचार हुवा. पीछे विद्या ओर घर्षणसे परोक्ष महादेवकी मान्यता हुई; क्योंकि देवोंमें रागादिभाव जाना गया; भक्त अभक्त, नीतिवान अनीतिवान-सबको शीत ओर सूर्यका ताप समान सताता हे तथा सूर्य चंद्र ग्रसे जाते हें; इसलिये उपरोक्त सूर्य, विजली, चंद्र, वायु ओर जल वगेरे मुख्य देव नहीं किंतु उनसे उपर कोई विशेष महादेव (देवोंकादेव) होने योग्य हे, एसी भावना होगई.

वोह महादेव देवोंकेद्वारा जीवोंके कर्मानुसार व्यवस्थापक हे, जेसेके राजा कर्मकारियोंद्वारा प्रबंधकर्ता, रक्षक ओर यथा कर्म फलदाता हे, वेसे वोह हे. महादेवके लक्षण, यथाबुद्धि यथाभावना कल्पे गये. पीछे ग्रह अनित्य हें क्योंकि तारे टूटते हें ओर चंद्र घटता बढता हे ओर सूर्य चंद्रको ग्रहण होता हे. एसी २ भावना हुई.

फेर महादेवके आधीन तीन देव माने गये, उनमेंसे एक यथाकर्म सृष्टिका उत्पादक, दूसरा रक्षक ओर तीसरा संहारक हे, एसी भावना हुई. ग्रहोंमें जीव सृष्टि हे, वहां जन्म (शरीर संबंध), आयुष्य ओर भोग होता हे, एसा भाव हुवा. पीछे पृथ्वीपर खनिज, मूल (वनस्पति). पीछे त्रियक, पीछे पशु पक्षी, पीछे पशु मनुष्य मिश्रित, पीछे छोटे छोटे मनुष्य हुये, पीछे बडे मनुष्य होने लगे, अर्थात मच्छ, कच्छ, वाराह, नृसिंह ओर वामनरुप अवतार-प्राणी हुये, एसा मान्ने लगे. यथाकर्म योनियोंमें आवागमन सिद्ध किया. रक्षाके अर्थ देवोंका अवतारभी माना

गया. अर्थात पराक्रमि चमत्कारीको एसा माने लगे. उनका उपदेश प्रमाण गिना गया. अमुक भागमें उनकी मूर्तिकी पूजाभी होने लगी. जब परोक्ष देवने दर्शन दिये तो वेसी मूर्ति बनाके पूजने लगे. मूर्तिमें देवकी चमत्कृति हे, एसा माने लगे. उसकी पूजाका जैसा देव वैसा विधान किया. उनमेंसे किसीके अर्थ बलिदानादिभी ठेराये. फेर अपने व्यवहारोंसे मंत्रादि ओर प्रयोगोंकी कल्पना चल गई; क्योंकि देव चमत्कारी हें, एसी भावना थी. मानसिक पूजाभी चली. भूत पित्रोंके सत्कारार्थ कर्मक्रियाका आरंभ हुवा. पराक्रमी पूज्योंका सत्कार होने लगा. इसीसे यात्रा (जहां देव वा पराक्रमी महात्मा वा उनकी मूर्ति वहां जाना) का भाव हुवा. निषिद्ध कृतोंसे नरक ओर उत्तम कर्म तथा देव भगतिसे नित्यके लिये वैभववाला स्वर्ग मिलेगा, एसी भावना हुई. उससे सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य ओर सारुप्य मुक्ति होनेकी कल्पना घडी गई. संसार क्षणभंगुर हे, एसी भावना वैराग्यार्थ हुई; याने क्षणिकत्वभावका आविर्भाव हुवा. इसप्रकार भावनाका चक्कर ओर प्रवाह रहा. उपर जितनी भावना कहीं उनसे इतर प्रकारकी ओर उनसे विरुद्ध (जडवाद, अनीश्वरवादादि) भी थीं. उसकी सिद्धिमें उनके मंतव्य वास्ते अव्याप्ति हेतु देते थे. यह **अतर्ककाल** था; इसलिये अचिद्वादका झुंड नहीं होसकता था.

(**श्यामा** प्रजा) प्रस्तुत मध्यकालमें श्यामा प्रजामें शुभ्रा प्रजासे कम ओर अस्पष्ट भावना थी.

होते होते शुभ्रामें स्पष्ट **एक ईश्वरवाद** चला ओर अचेतनवादकी किरणेंभी फूटती थी. इधर उन्नति क्रमका बीज अपना काम कर रहा था. दूसरी तरफ कर्म, वैराग्य ओर उपासनाको मुक्तिके साधन मानके निवृत्ति मार्गभी चलता था; क्योंकि स्वर्ग वा मुक्तिसे अनावृत्ति (फेर जन्म न होना) मानी गई थी. उपर कहे हुयेसे किंचित रुपांतरभी था ओर एसा होता रहनाही चाहिये. व्यावहारीक ओर पारमार्थिक उन्नति होनेका ध्यान था. पूर्व कालसें विशेष **यज्ञका प्रचार** हुवा.

उन्नतिका मार्ग बतानेका अधिकार, ओर धर्म सत्ता तथा आज्ञा एक वर्ग (ब्राह्मण मंडल)के आधीन हुई. दूसरा वर्ग जिसके हाथमें सत्ता थी उसकोभी पहेले वर्गके आधीन होना पडा, इसलिये यथा गुणकर्म स्वभाव फल, इस भावनामें अंतर पडगया, उसने खराबी (अवनति) का बीज बोदिया याने साम्यभावके बदले वैषम्यवाद पसरा; इसलिये फूटफाट होने लगी ओर जुदाजुदा विचारके टोले होने लगे.

होते होते इस शुभ्रा प्रजाके टोले फटे. सिंधुपार, चीन, ईरान, अरब, योरोप, पातालादि देशोंमें विभक्त हुये; क्योंकि प्रजाकीवृद्धि, भावना, पक्षपात, देशकाल ओर विचारसे एसा होना अनिवार्य था. इ.

एसा होनेसे श्यामा ओर शुभ्रा प्रजाका मिश्रण हुवा ओर फेर परस्परके संबंधसे तीनोंका मिश्रण हुवा ओर पुनः मिश्रण हुवा. अर्थात तिब्बतमें आने पहेले जो विभाग हुये थे १, वे विभाग श्यामामेंभी मिले थे २, जहां श्यामाही थी ३, इन सबमें यह शुभ्रा मिली ओर पुनः यह मेलप्राप्तप्रजा पुनः आपसमें मिली; इसप्रकार खंड प्रति मिश्रण होगया. जेसाके हिंदमें पहले भील वगेरे श्यामा प्रजा थी, पीछे आर्य प्रजा आई, पीछे मिसर, अरब, तातार ओर योरोपके लोक आके बसे तो उसके रुपमें अंतर पडगया. एसे सर्व खंडोंमें प्रजाका मिश्रण हुवा. यह मिश्रण, संकेत (भाषा), भावना ओर रीतरिवाजसे विभागवाला बतासकतेभी हें याने उनके भेदका ज्ञान कुछ होसकता हे.

उन टोलोंने अपने अपने देशमें उपरोक्तसे विशेष उन्नति की; क्योंकि उनमें उपयोग द्रष्टि ज्यादे थी. " जेसेके (१) संयम ओर वर्णाश्रमकी[१] मर्यादामें वृद्धि ओर रुपांतरभी हुवा; क्योंकि काल क्रमसे एसा होना स्वाभाविक हे. (२) भिन्न २ उपदेश ओर शब्दप्रमाणकी मान्यता. (३) ध्रु, पृथ्वीसे इतर सर्व गतिमान. (४) भाषा व्यवहार जुदाजुदा. (५) देवादिकी भावना कहीं नहींभी. (६) उपर कही हुई उन्नति याने चेतनभावना ओर जडभावनाका रुपांतरभी हुवा; कारणके देशकाल स्थिति आधीन होनेसे विचार, उच्चार ओर आचारमें अंतर पडताही हे. (७) कितनेक एसे उपसिद्धांतभी चले के उनसे उनमें हानीभी हुई.

इस प्रकार कालक्रमसे टोलोंमें उन्नति, अवनति हुई; कारणके देशकाल स्थिति ओर संस्कारके भेदसे एसा होना अनिवार्य था. उनमें नाना प्रकारकी धर्मभावना ओर पक्षता तथा लडाईभी हुई; जेसेके संक्षेपसे अनुक्रमणिका कही हे. स्थिति जुदाजुदा प्रकारकी रही हे ओर बहुतकालसे विभक्त होके मिश्रण हुई हे, इसलिये प्रजाका यथावत क्रम नहीं मिलता ओर जो मिलता हे उसमें मतभेद हे, जेसेके अटलांटक समुद्रमें प्रथम बसती थी, तुफान होनेपर वहांकी प्रजा योरोप वगेरे देशोमें विभक्त होगई; एसाभी माना जाता हे; इत्यादि मतभेद हें.

[१] सब शिक्षित प्रजामें कोई न कोई नाम रुपमें चार वर्ण, चार आश्रम हें; जेसे हिंदुओंमें ब्रा. क्ष. वै. शू. ब्र. गृ. वा. सं. हें वेसे दूसरी प्रजामेंभी हें.

उपर आरंभादि ४ पक्ष लिखें हें उनमेंसे प्रवाह ओर उपचयापचय पक्षमें उक्त-भावनाक्रमाध्यारोपका निर्वाह ठीकठीक होसकता हे ओर सृष्टि अनादि, इस पक्षमेंभी कुछकुछ निर्वाह बन सकता हे. आरंभ पक्षमें यह भावनाक्रम नहीं निभसकता. जो इतिहास मिलते हें उनमें दोष, कल्पना ओर पक्ष हें; इसलिये पूर्वक्रम निश्चय करनेमें गति नहीं होती; रुपांतर होवे, एसा जगतका प्रवाह हे; जो गाथा चलती हें उनमें अर्थोंका अंतर होनेसे व्यभिचार ओर विरोध आजाता हे; नवीन शोधकोंने जो कल्पना की हें उनमेंभी परस्परमें मतभेद हे; इसलिये तटस्थ होके अनुमान कर्तव्य हे. कार्यकारणकी भावनाभी संभव होती हे, इसलिये यह अध्यारोप केवल अनुमानका विषय हे, उसके मनानेमें आग्रह नहीं हे; क्योंकि मानो यदि मि. तिलककी शोधानुसार उत्तर ध्रु निवासकालमें वेद थे तो उपरोक्त नवीन भावनाका क्रम (जडवाद, चेतनवाद—इन उभयकी नवीन भावना) असिद्ध होजायगा; इसलिये इस क्रमकी संभावना हे इतना कहसकते हें; नहींके आग्रह.

उपरोक्त भावना क्रममें सब भावना, भावनामात्र (अर्थ शून्य) हें वा अर्थवालीभी हें, इसका उत्तर चिद् अचिद्‌वादके विचारनेसे होजाता हे. यहां तो क्रमका इतिहासमात्र हे.

दूसरा पक्ष यूं कहता हे के पहेले अमुक देशमेंही मनुष्य प्रजा हुई, फेर वृद्धि होनेपर गुणकर्म स्वभावानुसार आर्य ओर दस्यु, प्रकृतिवाले हुये हें, ओर जुदा पडके कालांतरमें अशिक्षित हुये हें, देश ऋतु काल अहारादिसे आकृति ओर कर्मोंका अंतर पडा हे, शुभ्रा श्यामादि संज्ञा ठेरी ओर समुद्रगत टापुओंमें जा बसनेसे उन्नति न करसके.

मि. गंगाधर तिलक ऋग्वेदोक्त उषाप्रसंग ओर षडमासीयज्ञप्रसंगवश यूं लिखते हें के आर्यप्रजा पहेले ध्रुव प्रदेशमें थी, वहांही ६ मासके रातदिन होते हें. पच्छमवाले शोधक यह कहते हें कि प्रथममें हिमालयसे वायवकोणकी तरफ रहते थे, वहांसे भाग निकले. इसराईली संसार ७००० वर्ष हुये के लंका वा

(नोट)—वर्तमान शोधक, प्रजाके आर्येन (आर्य, पारसी, यहुदी ख्रस्ति, मुसलमान संसार), मेंगोलीयन (चीन, तिब्बत, तातार, जापान, कोरियाकी प्रजा) ओर सेमिटिक (अर्बीयन, एफरीकनादि) एसे ३ भाग करते हें. उसका हेतु यह हे के उनके चहरेकी आकृति (गोलाई लंबाई) में रंगमें अंतर हे, रीत रवाज भाषा ओर विचारमें फर्क हे.

अदनमें मनुष्य सृष्टिका आरंभ हुवा एसा कहती हे. आर्यप्रजा केलास भागमें पहेले होना बताती हे. सार यह हे के इस विषयका ठीक ठीक पता नहीं लगता. " दुनियाकीसेर " " अजायबुलमखलूकात " ओर " प्राचीन हिंद " इन तीन-किताबोंके पढनेसे अनेक प्रजाके अनेक रीत रवाज आदिका वृतांत जानसकते हो. उनमेंसे वार, अंक, ग्रहनाम, लेखन पद्धति, संगीतके स्वर तथा भाषाका मूल शब्द ओर कितनीक रीति आर्यन लोगोंकी मिलती हें; अन्योंकी नहीं, यह जान सकोगे. हमारा प्रयोजन धर्मभावनाके क्रममें हे, इसलिये इस विषयमें उतरनेकी आवश्यकता न हुइ ॥ २८५ ॥ अब आगे उक्त भावनामें जो अपवादके योग्य विषय हें उनका अपवाद लिखते हें.—

भावनाक्रमका अपवाद.

उक्तक्रम सिद्ध नहीं ॥२९६॥ अज्ञानवश मान्यता अप्रमाण ॥२९७॥ अज्ञ बालकवत् ॥ २९८ ॥ विशेष भावनाभी ॥ २९९ ॥ शिक्षक विना विशेष ज्ञान न होनेसे ॥ ३०० ॥ असंसर्गीमें योग्यता अदर्शनसे ॥ ३०१ ॥ संसर्गीमें देखनेसे ॥ ३०२ ॥ सूक्ष्म शरीरकी परीक्षासेभी ॥ ३०३ ॥ ओर पूर्वोत्तरकी सिद्धिसे ॥ ३०४ ॥ अनुमानसे प्रसिद्ध व्याप्ति बलवान ॥ ३०५ ॥ नवीनकी अव्याप्तिसे ॥ ३०६ ॥ आद्य शिक्षककी मान्यता श्रुतिसे ॥ ३०७ ॥ न प्रस्तुत नूतनकी ॥ ३०८ ॥ न कपीआदिके क्रमकी ॥३०९॥ अतःपरीक्षा विना अग्राह्य ॥ ३१० ॥ विज्ञानके उपदेशसे ॥ ३११ ॥ साधन अनुकूल विशेषका ग्रहण ॥ ३१२ ॥ उससे नवीनभी संस्कार संयोगसे ॥ ३१३ ॥ एवं यथा देशकाल स्थिति उन्नति अवनति ॥ ३१४ ॥ योग्यतासे पश्वादिमेंभी किंचित् ॥३१५॥ न अन्यथा ॥३१६॥ स्वाभाविकभी पूर्व संस्कारसे ॥ ३१७ ॥ योग्यता होनेसे ॥ ३१८ ॥ उपयोग यथा साधन इति ॥ ३१९ ॥

वृत्ति—आरंभमें सब मनुष्य पशुवत अज्ञथे, पीछे पीढी दरपीढी क्रमशः धर्मभावना पेदा हुई हे. यह क्रम, यह अनुमान सिद्ध नहीं होता सो जनाते हें ॥ २९६ ॥ बालक जो अज्ञान अवस्थामें मानलेते हें वोह प्रमाण नहीं होता किंतु जब उसे दूसरे द्वारा (शिक्षिक—मातापिता, गुरु आदिद्वारा) विशेषज्ञान (" पद, पदार्थ, उनके संबंधका ज्ञानादि) मिलता हे, तब अन्यथा जान पडता हे॥२९७। २९८ ॥ इसी प्रकार विशेषभावनाभी स्वयं होजाना प्रमाण नहीं मानाजासकता

॥ २९९ ॥ क्योंकि शिक्षकके विना विशेषज्ञान (चेतनजडकी; देव महादेव, परलोक, नीति अनितीकी; पद पदार्थ ओर उनके संबंधकी प्रतीति) नहीं होसकता. ॥३००॥ अबभी देखते हें कि जो शिक्षित प्रजाके साथ असंसर्गवाली प्रजा हे (वन खंड निवासी हबशी वगेरे श्यामा प्रजा, बेटोंमें रहनेवाली प्रजा जो प्राचीनकालसे हे) उसमें विशेष ज्ञानकी योग्यता नहीं देखते ॥३०१॥ ओर जो शिक्षित प्रजाके साथ संसर्गवाली हे (भील वगेरे) उसमें विशेष ज्ञान देखते हें ॥ ३०२ ॥ अब विचारसकते हें कि जो स्वयं विशेष ज्ञान होना--एसा क्रम होता तो एफरीकनादि प्राचीन प्रजाभी, आर्यप्रजा समान विशेषज्ञानवाली होती परंतु एसा नहीं हे इससे स्पष्ट होता हे कि विशेषज्ञान मिलनेमें किसी शिक्षककी अपेक्षा हे ॥ ३०२ ॥ सूक्ष्म शरीरकी परीक्षासे (बस. में वीर परीक्षा देखो) भी यही जानपडता हे कि जेसे सूक्ष्म शरीर द्वारा कुछ अज्ञातज्ञान मिलजाता हे वेसे आरंभमें किसी पूर्व योग्य शिक्षक (चमत्कारी वा पूर्वमें शिक्षा पाये हुये शरीर--जन्म धारी इ.) से विशेषज्ञान प्राप्त हुवा हो. ॥ ३०३ ॥ उपरोक्त पुनर्जन्मकी सिद्धिसेभी यही मान्ना पडता हे ॥ ३०४ ॥ क्योंकि जीवोंके कर्म विचित्र हें, समान नहीं; इसलिये आरंभमें सबही पशूवत मूरखही पेदा हुये हों एसा नहीं मानसकते. (शं.) अब पूर्ववत शिक्षित पेदा क्यों नहीं होता (उ.) अब पूर्ववत सूर्य चंद्र नवीन क्यों नहीं होते? अर्थात अपेक्षा नहीं हे. इसलिये एसे जीवोंका इधर जन्म नहीं होता ॥ ३०४ ॥ नूतन क्रमके अनुमानसे प्रसिद्ध व्याप्ति बलवान हे अर्थात देखते हें कि विशेषज्ञान गुरुजनोंद्वारा मिलता हे, इसी प्रकार पूर्व पूर्वमें हुवा होना चाहिये ॥ ३०५ ॥ सारांश मानव सृष्टिकी उत्पत्ति नहीं होती हो किंतु प्रवाहसे मानें तो पूर्वपूर्वसे विशेषज्ञान सुनते सुनाते चले आये हें, एसा मान्ना पडेगा ओर यदि आरंभ हे तो अन्य (सूर्य, चंद्र, वनस्पति आदि) साधन समान विशेषज्ञानप्रद कोई शिक्षक (ईश्वर वा अन्य पूर्व शिक्षित जीव) मान्ना पडेगा ॥३०५॥ परंतु विना सिखाये बालक वा वन, बेट निवासी प्रजा अपने आप नहीं सीख सकते, इसलिये उक्त क्रमकी व्याप्ति नहीं मिलनेसे वोह अनुमान ठीक नहीं हे ॥ ३०६ ॥ एसा सुनते चले आ रहे हें के कोई आद्य शिक्षक हुवा हे ॥३०७॥ परंतु आरंभमें पशुवत पीछे क्रमशः शिक्षण, एसा नहीं सुना गया ॥३०८॥ सबसे प्राचीन वेदग्रंथ हे उसके पहेलेकी चिद, जडादि भावनाका इतिहास वा दंतकथा नहीं हे. उस वेदग्रंथमें सुरासुरका संग्राम ओर दस्यु अनार्यादिकी चर्चा हे, परंतु

उसमें विशेषज्ञान क्रमशः, एसी चर्चा नहीं हे. प्रत्युत आद्यशिक्षक माना हे ॥ ३०८॥ वर्तमानमें डारवन थीयरी यूं बताती हे कि उन्नति कर्मानुसार छोटे जानवरोंसे बडे हुये, एसे होते होते बंदर जाती (कपि, वनमाणस, उटांग, गोरीलाबंदर इस जाति) से मनुष्य जाति हुई हे याने मनुष्य, बंदरका पौत्र हे. यह अनुमान वा क्रमभी आजतक न सुना. जो कदाचित एसा होता तो आद्यप्राचीनवेदग्रंथमें इसका इशारा मिलता ॥ ३०९ ॥ (शं.) वेद, चेतन (जीव ईश्वरादि) की भावना पेदा हुये पीछेका बना हे, इसलिये उसमें पूर्वक्रम नहीं लिया होगा. (उ.) वेसा क्रम था वा मानते थे, एसे लिखनेमें वेदका मंतव्य नाश नहीं होता था. परंतु उसमें इस नवीन भावकी जराभी चर्चा नहीं हे ॥२०९॥ इसलिये सो, अनुमान मात्रसे नहीं मानसकते अर्थात परीक्षा हुये विना नहीं मान्ना चाहिये ॥ ३१० ॥ क्योंकि विज्ञान (साइंस) काभी यही उपदेश हे कि परीक्षा किये विना नहीं मान्ना चाहिये ॥३११॥ उक्तभावनाक्रमभी साइंसके अनुयाइयोंका हे ओर भावनाक्रमवादि (विकासवादि) महोदय डारवन साहेबभी अपने मंतव्य वास्ते एसाही लिखते हें (आगे वांचोगे) ओर अन्यभावनाक्रमवादिभी एसाही कहता हे अर्थात कोई विकासवादिभी गत संबंधी अपने अनुमानका आग्रह नहीं करते. इसलिये कपिसे मनुष्य होना ओर शिक्षककेविना विशेषज्ञान होजाना यह वात परीक्षा हुये विना नहीं मानीजासकती. [यदि कितनेक बालक बालकिओंको एकांत जंगलमें रखाजाय ओर १० वर्ष तक उनकी जिंदगीके साधन (खूराकादि) बोले विना दियेजायँ तो उनमें सामान्यसे इतर दूसरा विशेषज्ञान न होगा. अब भावनाक्रमवादि यदि उनकी कितनीही पीढिओं पीछेभी उनकी संतानमें विशेषज्ञान प्राप्त होजानेकी परीक्षा करादेवे तो उसका उक्त अनुमान जराभी आग्रह किये विना मानाजासकता हे. नहीं तो प्रसिद्ध व्याप्तिको छोडके उसको मानलेना, कारीके पुत्र पेदा होजाने समान मान्ना हे.] आरंभमें सबही ज्ञानवान हुये हों एसाभी नहीं होना चाहिये क्योंकि कर्मकी विचित्रता हे. परंतु जीवनके अन्य साधन (सूर्यादि) समान विशेषज्ञानका मूलभी चले एसा हेतुभी होना चाहिये अर्थात अमुक जीवोंद्वारा वा अमुक शक्तिद्वारा विशेषज्ञान मिलना चाहिये. ॥ ३११ ॥ उस पीछे जिनजिनकी योग्यताअनुसार विशेष ज्ञान मिला ओर प्रजामें जेसे साधन हुये वेसे वेसे विशेष ग्रहण होनेलगा ॥ ३१२ ॥ यथा जड खिरसान, वनखंडी वा पशु ग्रहण नहीं करसकता. क्यों? साधनकी अपूर्णता. अन्य यथासाधन ग्रहण करसकता हे ॥ ३१२ ॥ उस विशेषज्ञानके मथनसे

ओर संस्कारोंके मेलसे ओर सृष्टिसंबंध तथा घर्षणसे नवीन ज्ञानभी होने लगा ॥ ३१३ ॥ क्योंकि संस्कार संबंधसे एसा होना वर्तमानमेंभी देखते हें. ओर पूर्वोक्त (अचिदापवाद) भेदग्रहणादिकी योग्यतासे एसा होसकता हे ॥ ३१३ ॥ इसप्रकार प्रजा, जेसे देशकाल स्थितिको प्राप्त होती गई वेसे उन्नति, अवनतिमें आई ॥ ३१४ ॥ यहांतक के जो शिक्षित मंडलके अनुयायी वा सहचारी रहे वे आहिस्ते आहिस्ते उन्नतिपर आये ओर जिन्होंने अनुकरण छोडदिया किंवा शिक्षत मंडलसे दूर पडगये वे शनै शनै पडतीमें आगये (जिनको जंगली कहते हो ओर पुनः सुधरनेलगे हें) ओर जो उत्तम विशेषज्ञानसे विरुद्ध, अनुत्तम गुणकर्मके संपादनमें तत्पर रहे वे दस्यु, अनार्य वा असुर कहाये. (शं.) अनुत्तम—नीच विशेषज्ञानभी शिक्षकनेही दियाहोगा. (उ.) नहीं. उपदेशकने सद् असद्, धर्म अधर्म, सिखाया होना चाहिये. परंतु जेसे कोई कोई बालक शिक्षाका गेरउपयोग करलेते हें, एसे हलके संस्कारवालोंने उसका गेरउपयोग किया होनाचाहिये, उससे दूसरे मंडलमें अनाचारकी उन्नतिभी हुई हो ॥ ३१४ ॥ जिन पशुओंमें योग्यता होती हे उसके अनुसार उनकोभी संसर्गसे किंचित विशेषज्ञान होजाता हे ॥ ३१५ ॥ वेसा न हो तो नहीं होता ॥ ३१६ ॥ जेसेके कुत्ते, रींछ, बंदर वगेरेको विशेषज्ञान सिखानेपर वे चेष्टा करते हें सो प्रसिद्ध हे ॥ ३१६ ॥ जिसे सामान्यज्ञान (खान पान, भय, निद्रा, मैथुन, अनुकूल वा प्रतिकूलका ज्ञान) कहते हें वोहभी अनेक जन्मोंमें संग्रह होता हे ओर उन पूर्व संस्कारसे वर्तमानमें उदय होता हे ॥ ३१७॥ कारणके जीवमें एसे संस्कार लेने ओर साधन मिलनेपर उनका उदय होके तिस अनुसार उपयोग होनेकी योग्यता हे ॥ ३१८ ॥ दूसरे पशुओंसे साधारण बंदरमें ओर उनसे विशेष उटांग नामके बंदरोंमें ज्ञान लेनेकी ज्यादा योग्यता होती हे, उसका कारण यह हे कि जिसे स्वाभाविकज्ञान (मैथुनादि) कहते हें वोहभी एक जन्ममें नहीं होता (बस. में देखो) किंतु जेसे जडवादि (वा उन्नतिवादि) संतानोंमें विचारोंका शनै शनै उतरना मानता हे, वेसेही सामान्यज्ञानभी अनेक जन्मोंमें संपादन होता हे. अब यदि उस ज्ञानके उपयोगकी सामग्री मिलजावे तो जलदी उदय होजाता हे जेसाके बंदरोंमें देखते हें (बाज, लोमडी, मधुमाखी वगेरेके ज्ञानप्रबंध प्रसिद्ध हें). सारांश जीवोंमें योग्यता होनेसे पूर्वसंस्कारवश सामान्यज्ञान ज्यादा ज्यादा होताजाता हे ॥ ३१७ । ३१८ ॥ उस ज्ञानका उपयोग, यथा कर्म—प्राप्त शरीर, इंद्रिय, देशकालादिरुप साधनसे होता हे (जैसाके वर्तमा-

नमें देखते हैं ओर पूनर्जन्म प्रसंगमें कहागया हे. इति पद, प्रसंग समाप्ति सूचक हे ॥ ३१९ ॥

वि.—पूर्वोक्त नवीन भावनाक्रमके हरेक विषयका अपवाद कल्पना, हठमात्र हे; जेसेके, सृष्टिके आरंभमें सूर्य, चंद्र, वृक्ष, वर्षा, गुफा वगेरेको देव माना सोभी ठीक नहीं हे, एसा कहना उचित नहीं हे. तथापि उसके तमाम अनुमान ठीकही हें याने सर्व अर्थशून्य भावना हुई, एसाभी नहीं कहाजा सकता; क्योंकि जीव शरीरसे भिन्न हे, उसका पुनर्जन्म हे, जडचेतन भिन्न २ वस्तु हें, कोई अधिनाष्ठाधार हे, इत्यादि अचिद्विवेकमें सिद्ध होचुका हे. उक्त नूतन भावनाक्रमका कोई इतिहास वा सजड सबूत नहीं हे. जो कल्पनामात्रसे मानलेवें तो यूं क्यों न मानाजाय के वर्तमानमें जिसे उन्नति कहते हें सो पडती हे, इससे पूर्वकालमें चढती होनी चाहिये; क्योंकि समष्टि उन्नति, अवनतिका प्रवाह हे (शं.) एसा इतिहास नहीं मिलता (उ.) तुम्हारी कल्पनाकाभी इतिहास नहीं हे (शं.) तीनचार हजार वर्षका इतिहास, उन्नतिक्रमका दोरा बताता हे (उ.) मिसर, यूनान (ग्रीस) का इतिहास देखो, २० हजार वर्षसे पहेलेभी उन्नति, अवनति हुई हे (आगे काल प्रसंगमें वांचोगे) ओर वेद जोके लाखों वर्ष पूर्वका हे उसमें ईश्वरका ओर कालक्रमका एसा वर्णन हे के जो अभीतक वर्तमानकी दुनियामें नहीं हे ॥ जबके कुदरतकी रीतिसे उन्नति, अवनतिके लक्षणही नहीं होसकते (आगे वांचोगे) तो फेर उसके क्रमका अनुमान केसे होसकता हे. यथा पहेले सृष्टिनियमानुकूल शरीर—प्राणरक्षाके अनुकूल भावना थी, पीछे अर्थशून्य—चेतन जीव ईश्वर पुनर्जन्मादिकी मिथ्या भावना हुई, एसा मानें तो यह अवनति हुई; नहींके उन्नति. ओर यदि मानव मंडलके विशेष भागकी द्रष्टिसे यह भावना सुखाकारी स्थिति मानके उन्नति मानो तो जडवादकी वर्तमानमें जो इयुलेशन पद्धति हे (जडभावना हे) उसे पडती (अन्युलेशन) कहना पडेगा॥ (शं.) आरंभमें जीवन विषयमें उन्नतिका आरंभ हुवा, पशुपना ओर लडाई छूटके जीवनके साधन ओर संप होनेलगा ओर जीवनार्थी ज्ञान बढने लगा. परंतु चेतनादि भावना होनेलगी यह पडतीके लिंग हुये (स.) यूं हे तो चढती पडतीका क्रम न रहा, उभय साथसाथभी होती हें, एसा मान्नेसे इयुलेशन थीयरी नहीं रही (शं.) चेतनादिकी भावनामें कितनाक भाग उन्नतिका ओर कितनाक अवनतिका विषय हुवा (उ.) तोभी वही दोष रहा अर्थात उन्नति, अवनतिका कोई नियम नहीं रहा. (शं.) उन्नति, अवनतिकापद निकाकले

भावनाका उक्त क्रम मानलीजिये (उ.) यदि चेतन–ईश्वर पुनर्जन्मादिकी भावना अर्थशून्य मानो तो बने नहीं क्योंकि उसकी यथार्थता जड अपवादमें जनाई हे. ओर वोह अन्यद्वारा ज्ञात होने योग्य हे; क्योंकि छाया, आकृति, प्रतिबिंब ओर स्वप्नकी कल्पनासे उत्पन्न होना मानें तो अर्थशून्य मिथ्या ठेरती हे जेसेके सूर्य चंद्रादि चेतन देव हें, यह भावना मिथ्या ठेरतीं हें; वेसे वोहभी. परंतु वोह मिथ्या नहीं हे. ओर यदि चेतनादिकी भावनाको यथार्थ मानो तो उसके ज्ञान होनेमें व्याप्ति होनी चाहिये. इस व्याप्तिका मूल जो शोधोगे तो उपर लिखे अनुसार शिक्षक मिलेगा. पीछे उस उपदेशको रंगतमें लिया हे, एसा सिद्ध होजायगा. यूं हे तोभी जो उपरोक्त चेतनवादिके क्रमानुसार क्रमशः भावना होना मानें तोभी इस विषयमें तकरार करना व्यर्थ जानपडता हे; क्योंकि इतिहास नहीं मिलता ओर प्रत्यक्ष व्याप्तिसे इतर विरुद्धकल्पना करना ठीक नहीं हे. उपर भावनाका जो क्रम लिखा हे उसका विशेष अपवाद मूल ग्रंथमें हे. ॥ ३१९ ॥

उत्क्रांति, अनुत्क्रांतिका अध्यारोप अपवाद.

उत्क्रांति अनुत्क्रांतिकी सिद्धि ॥ ३२० ॥ **व्यष्टिमें षडपरिणाम दर्शनसे** ॥ ३२१ ॥ **तद्वत् समष्टिमेंभी** ॥३२२॥ **सो मतिकी मान्यता** ॥३२३॥ **तत्वमें न होनेसे** ॥ ३२४ ॥ **संबंधसे विलक्षणपरिणाम** ॥ ३२५ ॥ **मर्यादित होनेसे मर्यादत** ॥ ३२६ ॥ **तरंग मर्यादामें प्रावाहिकभी** ॥ ३२७ ॥ **परिणाम पक्षमेंभी पूर्ववत्** ॥ ३२८ ॥ **सुखका सुगमसाधन मिलनेसे उत्क्रांति** ॥ ३२९ ॥ **उससे विपरीत अन्य** ॥ ३३० ॥ **संज्ञाके बदलनेसे अनिश्चित** ॥ ३३१ ॥ **आदि अंतमें भेदका निमित्त न बतासकनेसे** ॥ ३३२ ॥

वृत्ति–सृष्टिमें हरेक विषयप्रति **उत्क्रांति** (उन्नति–इवुलेशन–विकास–उदय-चढती, पूर्वसे उच्च स्थितिमें आना, मानव मंडलका विशेषअंश जिसे सुखाकारी अवस्था मानें, सुखके सुगम साधनकी प्राप्ति. इ.) ओर **अनुत्क्रांति** (अवनति–अन्युलेशन–अविकास–अस्त, पडती, पूर्वसे नीच- हलकी स्थितिमें आना, मानव मंडलका विशेषभाग जिसे दुःखाकारी अवस्था मानें, दुःख होनेके सुगम साधनकी प्राप्ति. इ.) इन दो क्रमकी सिद्धि होती हे ॥ ३२० ॥ क्योंकि एक प्राणी (मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) ओर एक वृक्ष वा अन्य कार्यरुप एक व्यक्तिमें उसकी उत्पत्ति, वृद्धि, स्थिति (यह ३ उन्नतिके ओर), विपर्य (फेरफार), क्षय ओर नाश (यह ३ पडतीके) एसे ६ परिणाम (परिवर्तन) देखते हें

॥ ३२१ ॥ मनुष्य के आचार, विचार, नीति, धर्म ओर व्यवहारमेंभी एसाही क्रम देखते हें ॥ ३२१ ॥ जेसे व्यष्टिकेलिये कहा वेसेही समष्टिमेंभी जान लेना चाहिये; क्योंकि व्यष्टिका समूहही समष्टि होती हे. अर्थात सब प्राणी, सब मनुष्य सोसाइटी, सब मगज, सब वनस्पति ओर सर्व कार्योंमें एसेही जानलेना चाहिये ॥ ३२२ ॥ इस क्रमका नाम उन्नति, अवनति कहाजाता हे सो संज्ञा बुद्धिकी अपेक्षासे हे ॥३२३॥ क्योंकि मूलतत्वोंमें एसा होनेका अभाव हे ॥३२४॥ जड पदार्थोंमें इस क्रमके ज्ञान होनेकी असिद्धि हे ओर न यह स्थिति उनकी भोग्य हे ॥ ३२४ ॥ मूलतत्वोंके भौतिक वा रसायणीय संयोग संबंध होनेपर समूहका जो विलक्षणपरिणाम होता हे उन परिणामोंका उन उनकी अपेक्षा ओर अपनी कल्पनासे अमुक संज्ञा (उन्नति वा अवनति) दीजाती हे. अर्थात कुदरतकी द्रष्टिसे उन्नति वा अवनति शब्दका प्रयोग नहीं होसकता ॥ ३२५ ॥ मूलतत्व ओर उनके गुणकर्म स्वभाव, मर्यादित (लीमीटेड) हें इसलिये उक्त परिणामभी मर्यादित (सीमावाले) हें अर्थात संख्यावाले हें ओर देशकाल स्थितिसे सादिसांत हें. सारांश अनंत उन्नति वा अनंत अवनति नहीं हे. ॥ ३२६ ॥ उक्त विलक्षण परिणाम, तरंगों समान उंचे नीचे, कमज्यादा ओर परिवर्तनको प्राप्त होतेरहते हें, यह उनकी मर्यादा हे. इस मर्यादामें कभी कभी नदीके प्रवाह समानभी होते हें परंतु पुनः अपनी उसी मर्यादामें होनेलगते हें. ॥ ३२७ ॥ यथा ओक्षजन, हाइड्रोजन मिलके जल फेर बर्फ पुनः जल पुनः ओ. हा. पुनः गेसरुप होता हे. दूधसे दही, उससे घी, छाछ होके पुनः मूल परमाणुमें आके पुनः दूधादिरुप होना. इस प्रकार सत्वरजतम न्यूनाधिक होनेपर अनेक आकार होना ओर साम्यावस्था होनेपर प्रकृतिरुप होजाना; केमीकल संयोगसे रजवीर्य, उसका खूराकादिके साथ संबंध होनेसे मगज, पुनः मगजमें संस्कार होनेसे नाना प्रकारके विचार, आचार, उच्चार ओर तदनुसार उपयोग, पुनः शरीर त्यागनेपर अभाव होना इत्यादि; परिणाम होतेरहते हें ॥ ३२७ ॥ जो मूलतत्व नहीं हें किंतु पूर्व पूर्व मिश्रणसे उत्तर उत्तर परिणामका प्रवाह हे, एसा मानें तोभी तरंगकी मर्यादासमान, परिणाम निकलता हे ॥३२८॥ जो सुख भोगनेके योग्य हें उनकी द्रष्टिसे उन व्यष्टि समष्टिको सुख प्राप्तिका सुगम साधन मिले तो उसका फल इष्ट होनेसे उनकी द्रष्टिमें इस स्थितिकी उत्क्रांति संज्ञा होगी ॥ ३२९ ॥ ओर जो उससे उलटा हो तो उस स्थितिकी संज्ञा अनुत्क्रांति होगी, यह सामान्य लक्षण हे ॥ ३३० ॥ वस्तुतः संज्ञाका बदल होनेसे उत्क्रांति,

अनुत्क्रांतिके लक्षण करना अनिश्चित हे किंतु नहीं बनता ॥ ३३१ ॥ क्योंकि ज-बके क, एक स्थितिसे उच्च हुवा पुनः उससे उच्च हुवा तो जिस दूसरीको उत्क्रांति संज्ञादीथी उसीको फेर उत्क्रांति संज्ञा नहीं मिलती. किंतु अवनति संज्ञाके योग्य होगा. एसेही अवनति वास्ते योजलेना चाहिये. अनुत्क्रांतिके विना उत्क्रांति ओर उत. के विना अनु. कहनाही नहीं बनता, इसलिये पहेली स्थितिकी संज्ञाकी अ-नुमति हे. इस प्रकारउत्क्रांति वा अनुत्क्रांति किसको कहना यह बताना मुशकिल हे. जडवादिका बालक मरगया, इसकी संज्ञा क्या रखें? क, उच्च संबंधमें जन्मा ओर उन्नत होके मरगया. ख, नीच संबंधमें जन्मा ओर विशेष दुःखप्रद होके दुःखित हुवा ओर मरगया. ग, उच्च संबंधमें जन्मा पुनः उच्च हुवा फेर आफतोंसे पडतीमें आके मरगया. घ, नीच संबंधमें जन्मा पुनः उच्च हुवा पुनः आफतोंमें आके अवनतीमें आया पुनः उच्च हुवा ओर मरगया. यह व्यष्टिकी उन्नति, अवनति, अनिश्चित नहीं तो क्या? इच्छा (वासना) का अभाव होना, यह उन्नतिकी टोच ओर तृष्णाकी वृद्धि होनी यह अवनतिकी टोच मानें तो जड-वादकी उन्नति, अवनतिके अनुकूल नहीं ॥ क्योंकि प्रकृतिका वैभव उसको इष्ट हे. जेसे व्यष्टिका कहा वेसे समष्टि वास्तेभी जानलेना चाहिये. यथा पहेले समूहकी तनजोरी थी १, पीछे बिंदुकादि शस्त्रकी कला चली २, पीछे विजलीका बलन चला ३, पीछे युद्ध मिटके कोर्टबाजी चली ४, पीछे नीति, मर्यादा, सत्य, संप, उद्योग, परस्परकीरक्षाका प्रचार (वा होगा) ५. इन सबमें पहेली पहेली स्थिति अनुत्क्रांति पिछली पिछली उत्क्रांति कहाई. अंतमें यथेच्छा सब होजाय वा सुगमतासे सबको सुख मिले एसा हो तो नं. ५ भी पीछे रहगया. सारांश संज्ञा निश्चित नहीं होसकती. जो अपेक्षासे संज्ञा दें तो व्यष्टि समष्टि वास्ते यथा देशकाल स्थिति तरंग समान उन्नति, अवनति संज्ञा दीजायगी याने एकहीको किसीकी द्र-ष्टिसे उत्क्रांति ओर परकी द्रष्टिसे अनुत्क्रांति कहसकेंगे; इसलियेभी निश्चित नहीं ॥३३१॥ सृष्टि आरंभ वा वनस्पति वा प्राणिओंके आरंभकालमें पहेले पहल बीज, शरीर वा जीवत्वमें केसे भेद पडा, उत्पत्ति वृद्धिकी शक्ति केसे आई, ओर फेर उ-नकी उत्क्रांतिमें निमित्त क्या हे, तथा अंतमें यह क्रम कहांजाके ओर केसे स-माप्त होगा; इसका उत्तर जडवादका विकासवाद नहीं देसका हे ॥ ३३२ ॥ इसी-लिये वनस्पतिसे छोटे जंतु ओर इनसे बडे जंतु यहांतक कि मनुष्य बने,[१] इस थी-

[१] यह नवीन विकासवादकी थीयरी योरोपमें चली हे, उसका विस्तार आगे वांचोगे.

यरीको संशयपदवी मिली हे, क्योंकि जो किसी चमत्कारी कारणने भेदकी चावी मेटरमें लगादी ओर उससे उत्क्रांति चली हो, तब तो जडवादका विकासक्रम न रहा ओर जो स्वाभाविक होना मानें तो सनियम उन्नति, अवनति मान्नेमें कोई युक्ति, प्रमाण नहीं किंतु यथा सामग्री चढतीमें पडती, पडतीमें चढती होती रहेगी, ओर कोई क्रम न होगा, एसा स्वीकारना होगा. जो सृष्टिका आरंभ न मानें तो बीज वृक्षवत् मर्यादामें रहते हुये बनते बिगडते आते हें, एसा स्वीकारना होगा. याने विकासक्रम न रहेगा ॥ २२९ से ३३२ ॥

शरीर ओर समाजकी व्याप्तिसे संज्ञा ॥ ३३३ ॥ जडचेतनके भेदसे उसके भेद॥३३४॥ अपवर्गादिवत्॥३३५॥ भूतसे भविष्यानुमान फल॥३३६॥ अतिरिस्कारभी क्रमके स्वीकारसे ॥ ३३७ ॥ अध्यासवत्भी अनेकांत होनेसे ॥ ३३८ ॥ ओर रागादिका प्रवाह रहेनेसे ॥ ३३९ ॥ दोनों क्रम प्रतिदेशमेंभी ॥ ३४० ॥ नीति धर्ममेंभी ॥ ३४१ ॥ ओर शिक्षित अशिक्षितमेंभी ॥ ३४२ ॥ आर्य, पहाडी, ग्रामी ओर नागरीक प्रजा वत् ॥ ३४३ ॥ ओर होटेन्टोटादि वत् ॥ ३४४ ॥ तद्वत् समष्टिमेंभी ॥ ३४५ ॥ अतः यथा सामग्री विलक्षणत्वही ॥ ३४६ ॥

अ.–तन (शरीर)की उत्पत्तिआदि (उपर कही हे) ओर समाज याने प्रजाकी उत्पत्यादि हुई हें (जेसेके अमेरीकाकी प्राचीन प्रजाओंमेंसे अमुक प्रजा नष्ट होगई वेसे अन्यभी हुई हें), ऐसे चढती पडती देखनेसे उन्नति, अवनति संज्ञा दीजाती हे, वस्तुतः वेसा नहीं हे किंतु उपर कहे समान परिणाम हें ॥ ३३३ ॥ परंतु चेतनवादि ओर जडवादिकी उत्क्रांति, अनुत्क्रांतिके प्रकारमें मतभेद हे' इसलिये उनकी उत्क्रांति अवनतिकेरुपमें मतभेद हे ॥ ३३४ ॥ जेसेके अपवर्ग, अभ्युदय, सुख, स्वर्ग, प्रेयस् ओर श्रेयस् (मोक्ष)में उनका मतभेद हे ॥ ३३५ ॥ चेतनवादि उन्नतिकी टोच श्रेयसको मानके उससे अनावृत्ति याने हमेशे स्थाइ रहना मानता हे ओर प्रकृतिवादि प्रेयस (यथेच्छा स्वतंत्र जीवन) वा इच्छाके अभावको उन्नतिकी टोच मानके उसको स्थाइ नहीं मानता याने उन्नतिमें आये हुयेके मूल उपादानका रुपांतर होके पुनः विकास अविकासके क्रममें आना मानता हे; इसीप्रकार स्वर्गादि पदमें उनके लक्षण ओर भोगमें मतभेद हे ॥ ३३५ ॥

जो अतत्व–जन्य (कंपोंड) हें उन तमामकी संसर्गी, परिणामी, प्रावाहिक ओर

' आगे वांचोगे.

सादि सांत उन्नति वा अवनति होती हे, एसा उभयको मान्ना पडता हे. ओर यद्यपि तत्वकी उन्नति वा अवनति नहीं होती तथापि चेतनवादि चेतनतत्वकी जाति, अपरिणामी, नैमित्तिक, संसर्गी ओर स्थाई उन्नति मानते हें. कोई[१] स्थाई नहीं किंतु प्रावाहिक (आवृति) उन्नति, अवनति मानता हे. परंतु एकसे[२] इतर हमेशेकेलिये चढती, पडती कोई नहीं मानता ॥३३५॥ इस उभय क्रमकी कल्पनासे भूतकी व्याप्तिद्वारा भविष्यका अनुमान होजाना फल हे ॥३३६॥ याने जिन कारणोंसे (देश, काल, ऋतु, रजवीर्य, खूराक, संग, स्वभाव, परिस्थिति, आवश्यक्ता, कुदरती दिखाव, कुदरती फेरफार इत्यादिसे) जिनजिन नियमपर उन्नति वा अवनति हुई, उनके जान्नेसे उसानुसार भविष्यमें होनेका अनुमान होके नियम बांधे जासकते हें ओर प्रयत्न होसकता हे; इसप्रकार व्यष्टि समष्टिको लाभकारी हे. ईश्वरकी शक्ति अगम्य हे, यह फल निकला ओर भविष्यकी संतान वास्ते सुख मिलनेके साधन बतासकते हें ॥ ३३६ ॥ ओर इस थीयरी मान्नेसे याने विकास क्रमके स्वीकारनेसे अशिक्षित प्रजापर तिरस्कार द्रष्टि न होके टौलरेशन होगा, यह बडा लाभ हे ॥३३७॥ क्योंकि वे उन्नति क्रमकेसिलसलेमें अभी उतरती डीगरीपर हें; अतः वे सहाय ओर करुणाके पात्र हें, एसी द्रष्टि होगी. नहींके नीच द्रष्टि याने उनको सत्तासे भोगनेकी नीयत न रहेगी. इसका यह अर्थ नहीं हे कि जो उन्नतिक्रमका भंग करे वा खून, चोरी वगेरे करे वोह क्षमापात्र हो. नहीं नहीं किंतु उसको शिक्षा मिलनाही उसको उन्नतिमें लाना हे, एसा भाव निकलता हे. ओर यह शिक्षा उन्नतिक्रमके विरुद्ध नहीं हे ॥ ३३७ ॥ विकास ओर अविकास, अनेकांत होनेसे उनकी मान्यता अध्यासवत्भी कहीजासकती हे ॥ ३३८ ॥ क्योंकि भूतकालका सम्यक इतिहास ओर क्रम तथा व्याप्तिग्रह नहीं मिलते, ओर जिसे उन्नति मानते हें उसका एक क्रम सिद्ध नहीं होता; इसलिये भविष्यके अनुमानको ओर इस उभय क्रमको एकांत पदमें नहीं कहा जासकता किंतु अध्यास (अर्थ आगे वांचोगे) के रुपमेंभी कहाजासकता हे. तथापि अनुमानके निषेधमेंही इस प्रसंगका आग्रह नहीं हे, इसी वास्ते सूत्रमें भी, पद रखा हे अर्थात यथाशक्ति ओर प्राप्त व्याप्तिद्वारा भविष्यके लिये विचार कर्तव्य रहता हे ॥ ३३८ ॥ जीवोंकी नवीन उत्पत्ति ओर उनमें रागादि (राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, ज्ञान, संस्कार) अष्टगुणकी तारतम्यता होतीरहती हे सो, अनिवारीय हे; इसलिये सर्वको सर्व प्रकारका सुख वा सर्वको इच्छाका अभाव

[१] स्वामी दयानंदजी. [२] इसराईलीसंसार, स्वर्ग वा नरकसे अनावृत्ति मानती हे.

होजाय, एसा होना असंभव हे; इसलिये एकांतरुप नहीं हे. किंतु अनेकांतपनाही हे ॥ ३३९ ॥ नाना विचित्रता होती आई हे वेसेही होगी. तथापि उपर कहे अनुसार प्रयत्न कर्तव्य तो हे. (शं.) यह उभय क्रम मान्ना न मान्ना इसका आशय क्या? (उ.) कल्पितमेंभी लाभ होनेकी संभावना हे (उपर कहा हे) इसलिये माना के उत्क्रांतिवाद स्थापन करनेवालेके लेखानुसार न हो तोभी व्यष्टि, समष्टिकी उन्नति अर्थ पुरुष प्रयत्नसे कुछ न कुछ तो लाभ होहीगा, इसलिये स्वीकारभी हे ॥३३९॥ हरेक खंडमें वनस्पति, प्राणी ओर मनुष्यकी उन्नति, अवनति साथसाथ देखनेमें आती हे, तद्वत् एक देशमेंभी देखते हें; इसलिये समष्टिक्रमकाभी नियम नहीं हे ॥ ३४० ॥ देशदेशके ओर एक देशके नीति, व्यवहार तथा धर्ममेंभी उभयक्रम देखनेमें आते हें ॥ ३४१ ॥ वेसेही देशदेशके ओर एक देशमेंके शिक्षित, अशिक्षितमेंभी देखते हें ॥ ३४२ ॥ जेसेके आर्य, पहाडी, ग्राम, नगरनिवासी प्रजामें उभय प्रकार देख पडते हें ॥ ३४३ ॥ ओर जेसेके हाटेन्टोट, जापानी, एफरीकन, फीजीयन ओर डायाक इन प्रजाका[1] तथा योरोपीयन प्रजाके अमुक भागका मुकाबला करनेसे उभय प्रकार स्पष्ट जानपडते हें (नीतिमीमांसामें ओर हर्बर्टस्पेन्सर साहेबके नीतिसिद्धांतमें इस विषयका सविस्तृत वर्णन हे) ॥ ४४ ॥ जेसे व्यष्टि वास्ते कहा वेसे समष्टिके संबंधमेंभी उभय प्रकार जानलेना चाहिये ॥ ४५ ॥ इसलिये जेसी सामग्री याने देश, काल, ऋतु, स्वस्थिति, परिस्थिति, खूराक, कुदरती दर्शन, फोर्स, मेलझोल-संग संबंधकी आपति हो तिस अनुसार विलक्षणपरिणाम (प्रतिक्रमण)–जिसे उन्नति वा अवनति, संज्ञा देते हें एसे परिणाम होते रहते हें, इतनाही मानसकते हें ॥ ३४६ ॥

विवेचन—प्रस्तुत प्रसंगमें मुख्य ४ पक्ष हें–(१) उत्क्रांति, अनुत्क्रांति, (२) विकास, (३) अप्रतिक्रमण, (४) परिवर्तन.

(१) पृथ्वी प्रवाहीथी, पीछे ठंडी पडी तब खणिजरुप हुई, उसमेंसे वनस्पति हुई, उसमेंसे प्राणीरुप परिणाम निकला, इनके रुपांतरमेंसे बंदर हुये, इनमेंसे मनुष्यरुप हुवा, ओर वर्तमानमें मनुष्योंके मगजमें उत्क्रांतिका दोरा हो रहा हे. उत्क्रांतिकी सीमा नहीं कहीजासकती. जब उत्क्रांति क्रम होना बंद पडेगा किंवा अनुत्क्रांतिका दोरा चलेगा तब उलटा क्रम होजायगा; मनुष्य छोटे पशु जेसे होने-

[1] इन प्रजाओंको नवीन प्रजा, जंगलिप्रजा कहती हे; वस्तुतः अशिक्षित कहना चाहिये. जापानी प्रजाको वर्त्तमानमें सुशिक्षित मानते हें.

लगेंगे, प्राणी वनस्पतिके रुपमें आनेलगेंगे (स्तब्ध होंगे), फेर सब खणिज जेसे, फेर अंतमें ईथीरीयल होजायँगे. यह प्रलय. (अचिद्वाद.) ॥

(२) विकासवादमें आत्मा, बुद्धि ओर मनस तीन मिलके जीव कहाता हे. मनस भाग नहीं मिलनेतक जीव खणिज, वनस्पति, पक्षी, पशुमें क्रशःउन्नति करता हे. जब इन सबका अनुभव मिलजाय तब विकासक्रमवश मनुष्यका शरीर मिलता हे, वहां मनस नामका पदार्थ शामिल होता हे; अब तीनों मिलके पूरा जीव हुवा. वोह यथाकर्म मनुष्य योनियोंमें घूमता हे. राक्षस, कोली, वाघरी, खिरसान, विद्वान इत्यादि योनी क्रमशः पाता हे. पीछे देवता बनता हे. पीछे ज्ञान प्राप्तिद्वारा मोक्ष होजाता हे; यह उन्नतिकी सीमा हे; वहांसे पीछा जन्ममें नहीं आता. प्राणीरुप हुये वनस्पतिमें नहीं आता. मनुष्य हुये पीछे पशु नहीं होता. इसलिये अविकास नहीं किंतु विकासही मानाजाता हे.

(३) प्राकृत पदार्थोंकी उन्नति वा अवनति नहीं होती, किंतु यथा सामग्री (सत्वरजतम, संबंध) बनते बिगडते रहते हें. यथा कभी कहीं गींहुं आदि अन्न बडा सुंदर, कभी कहीं छोटा कमजोर होता हे. कभी कहीं गाय बेलादि उंचे बलवान कभी कहीं छोटे कमजोर होते हें. कभी कहीं मनुष्य बुद्धिमान, नीतिवान, बलिष्ट होते हें, कभी कहीं जडबुद्धि, कुरुप, पशु जैसे होते हें. किसी एकही खंडके एक प्रदेशमेंभी एक वस्तु उन्नत ओर उसके दूसरे प्रदेशोंमें अवनतरुपमें होती हे. इसीप्रकार प्राणियों वास्ते जानलेना चाहिये ॥ परंतु शरीरसे भिन्न जो जीव, यथा सामग्री कभी उच्च, कभी नीच, कभी पुनः उच्च स्थितिमें आता हे, तरंगोंके क्रम समान चढती पडतीमें होता हे. परंतु चढता पडता अंतमें मोक्ष होता हे, यही उन्नतिकी टोच हे. यहांसे पीछे अवनतिमें नहीं आता; इसलिये अप्रतिक्रमण हे. इसी पक्षके अंतरगत एक पक्ष मोक्षसे पुनः संसारमें आवृति होना, फेर मोक्ष तरफ पहोंचना, फेर पीछा आना एसे उन्नति, अवनतिका प्रवाह मानता हे. (४) परिवर्तन क्रम–जडवादका विकासवाद (इयुलेशन थियरी)का विस्तार आगे वांचोगे.

अब आगे इस विषयके पक्ष ओर वर्ग लिखते हें.—

१. जाति उन्नति—निरवयव स्वरुप याने तत्व (जीव)की उन्नति.

२. संसर्गी उन्नति—एकसे अधिक सजातीय वा विजातीय तत्व मिलेहुये–समूहकी उन्नति.

३. **परिणामी** उन्नति—पूर्वपूर्वसे उत्तरउत्तरमें अत्योपयोगी वा सुखकारक परिणाम होना, परिणामीउन्नति.

४. **अवनति**—जेसे उन्नतिके ३ भेद याने संज्ञा लिखी हें वेसेही अवनति (उन्नतिसे उलटा) की संज्ञा जानलेना.

५. **मर्यादित**—ससीम उन्नति.

६. **अमर्यादित**—अनंत उन्नति. हमेशे उन्नति होते चलेजाना जिसकी सीमा (कालका अंत) नहीं हे.

७. **स्थाई**—उन्नतिपर पहोंचने पीछे हमेशे उसी स्थितिमें रहना.

८. **प्रावाहिक**—उन्नतिकी हदपर पहोंचके पुनः अवनति होना वा अवनतिकी तरफ चलना पुनः उन्नतिपर पहोंचके उन्नतिमें आना एसा (सादिसांत) प्रवाह.

९. **अवनति**—जेसे उन्नतिके मर्यादितादि ४ भेद कहे वेसे अवनतिकेलिये चारों भेद योज लेना.

१०. **तरंगी**—उन्नतिकी तरफ रुख होना, परंतु दरमियानमें अवनतिमें आजाना एसे गोते खाते २ उंचा आके अंतमें उन्नतिकी टोचपर पहोंचजाना.

११. **प्रवाही**—उन्नतिकीही तरफ होना, अवनतिमें नहीं आना.

१२. **सादि**—जिस उन्नति (वा अवनति)के आरंभ होनेका पहेला क्षण हो.

१३. **अनादि**—जो उन्नति, प्रवाह (११) वा तरंग (१०) रुपमें अनादिसे चली आरही हो--जिसका आरंभकाल न हो (तद्वत अवनति अनादिसे हो).

१४. **अंगी**—किसी समष्टि वर्गकी उन्नति (वा अवनति). जेसेके—तमाम प्रकारके वृक्ष वा प्राणियोंकी उन्नति (वा अवनति) साथसाथ होना.

१५. **अंग**—किसी व्यष्टि—व्यक्तिकी उन्नति (वा अवनति). जेसेके—गोकी वृद्धि ओर चीतोंका नाश होना.

उपरकी संज्ञा वा वर्गमेंसे नं. ३, ७ ओर १३ असंभव होनेसे असिद्ध जानपडते हें. तथा सादि अनंत ओर अनादि सांतभी नहीं होसकती.

इसप्रकार देश देशप्रति अमुककी उन्नति ओर अमुककी अवनति इत्यादि

---

१४ वर्तमानमें हिंदु प्रजा पडतीमें होनेसे उसकी अंगी अवनति ओर इंगलेंड प्रजा चढतीमें होनेसे उसकी अंगी उन्नति संज्ञा हे.

भेद कल्पें तो अनेक भेद होजाते हैं. उपरोक्त भेद, पक्षकारोंकी द्रष्टिसे कल्पेजाते हैं; वस्तुतः इनमें निश्चित क्रम सिद्ध होना मुशकिल हे. (आगे पक्षकारोंके मतका अपवाद वांचनेसे जानलोगे)[१]

---

[१] पक्षकारोंके पक्षका स्वरुप संक्षेपसे यह हे.—

१. **प्राणपक्ष**—(अजीववाद--अचिद्वाद--जडवाद) जो कर्ता भोक्ता जीवको शरीरसे भिन्न वस्तु नहीं मानता उसके पक्षमें नं. २ (संसर्गी), नं. ३ (परिणामी) नं. ८ (प्रवाहिक) अनुसार उन्नति हे.

२. **थीओसोफी**—जीवसे इतर संबंधमें प्राणपक्ष अनुसार जानलीजे, ओर जीव संबंधमें नं. १ । २ । ३ । ७ । ११ अनुसार.

३. **बौध-जैन**—जीवकी उन्नति नं. १० । १३ । १ । ३ । ७ अनुसार.

४. **न्याय-वैशेषिक**—जीवकी उन्नति नं. १, अपरिणामी ओर नं. १० । ७ अनुसार.

५. **श्रीरामानुजजी**—नं. १ । १० । १३ । ७ अनुसार.

६. **स्वामीश्री दयानंदजी**—नं. १ । १० । ८ अनुसार.

७. **श्रीवल्लभजी**—नं. १ । ३ । १० । ७ अनुसार.

८. **इसराईली**—(या. कि. मु.)—नं. १ । ३ । १० । ७ अनुसार जीवकी उन्नति मानते हैं; परंतु सादि अनंत मानते हैं (तद्वत जीवकी अवनति).

९. **ब्रह्मु**—नं. ८ पक्षवत् परंतु उन्नतिकी सीमा नहीं मानते (नं. ६).

१०. **ईरानी**—नं.८ पक्षवत ओर पक्षमें १ । ३ । १० । १३ । ८ । ७ अनुसार

११. **पौराणि**—अनेक प्रकार हैं. साधारणतः १ । १० । ३ । पक्ष ओर अपरिणामी । ७ । अनुसार.

१२. **सांख्य, योग**—नं. १ । १० । अपरिणामी नं. १३ । ७ अनुसार.

१३. **श्रीशंकराचार्य**—आरोपित नं. २ । ३ । १० । ओर ७.

१४. **मैमांसिक**—नं. १ । १० । ७ अनुसार.

१५. **वेदांत-उपनिषद वेद**—के अनेकार्थ होनेसे कुछ लिखना उचित न समझा, नं. ७ । ८ में विवाद हे.

१६. **जीवतत्व**—(तत्वकी उन्नति वा अवनति असंभव) पक्षकारोंकी द्रष्टिसे नं. १ । अपरिणामी । नैमित्तिक । नं. २ । १० । ८ अनुसार.

सृष्टिका पूर्ण इतिहास नहीं मिलता, उसके कारण उपर जनाये हें. भूस्तरविद्या हिमकालकी आपत्तिसे अपने अनुमानको फिक्स नहीं कहसकती ॥ चेतनकी उत्पति हे वा अनुत्पन्न-अनादि हे, इसमें विवाद हे. "कहीं कुदरतका दिखाव आश्चर्यकार्क (यथा हिमालयमें), इसलिये वहांके निवासी (प्राचीन प्रजा) उन्नतिपर नहीं आये. किसी जघे कुदरतका दिखाव भयंकर (यथा अमेरीक्काका जंगली भाग), इसलिये वहांकी प्राचीन प्रजा आगे नहीं बढसकी. कहीं जरुरतकी सामग्री पेदा नहीं होती (यथा इंगलेंड, जापानमें), इसलिये वहांके निवासियोंको नाना प्रकारके प्रयत्नोंमें उतरना पडता हे, यही उन्नतिका निमित हे. कहीं जीवन निर्वाहक सामग्री सुखेन पेदा होती हे वा मिलजाती हे (यथा हिंदुस्थानमें), इसलिये वहांकी प्रजा ज्यादा प्रयत्नमें नहीं उतरती. तथाहि गरमदेश, सरददेशभी प्रयत्नमें अंतर डालता हे. ओर पडोसियोंकी विद्या, संग, संबंधभी कारण होता हे. (अफरीकन, मेकसीको प्रजाका मुकबला करिये). मोत, रोग, लडाई, भूकंप, इत्यादिका चक्र तो हे. (विशेष कारण मूल ओर उपरके सूत्रमें हे)." इत्यादि कारणोंसे उन्नति, अवनतिका क्रम फिक्स हे, एसा नहीं कहाजासकता. मानोके उपरके फेरफार, क्रमसे ओर धीरेधीरे होते हें, एक साथ ओर एकदम नहीं होते, तथापि उन्नतिके प्रतिबंधक तो होतेही हें; इसलिये फिक्सरुप नहीं माना जासकता. फर्ज करो के मनुष्यकी उन्नतिके क्रमका अब आरंभ हे अंतमें उसका फल पूर्वोक्त उन्नति होगा; तथापि सृष्टिके अचिंत्य फेरफार अनिवार्य हें. उदाहरणमें मिसरकी प्रजाको याद करिये; ओर सबसे प्राचीन आर्य प्रजापर ध्यान दीजिये.—अर्थात जो सब प्रजाकी शिक्षक थी वोह आज दूसरोंसे शिक्षापाने योग्य होगई. इ. इसलिये भविष्यका निश्चय, निश्चयरुपसे नहीं मानाजासकता. अब आगे संक्षेपमें उदाहरण देते हें.—

देशप्रति.—

(१) हिंदमें सिरोहीका लोहा अन्यसे उत्तम. (२) संगमरमर दूसरोंसे उत्तम. (३) हीरा दूसरे खणिजसे उत्तम. (४) केसर कशमीरसे इतर दूसरी

---

१७. **जीवअतत्त्व**—(सादि सांत होनेसे उन्नति, अवनति मान्ना नहीं बनता) पक्षकारोंकी द्रष्टिसे नं. २ । ३ । १० । परंतु वे सादिसांत मानते हें.

१८. **वनस्पति**—२ । ३ । १ । परंतु यह उन्नति, अवनति सादिसांत होती हे.

१९. **प्राणी**—पशुपक्षी तिर्यकादि ॥ जडवादमें प्राणपक्षसमान ओर चेतनवादमें उनउन (चेतनगत पक्षकारों)की रीति समान योजलेना चाहिये.

जथे नहीं होती. (५) हिमालयकी वनस्पति अन्य भागोंसे उत्तम. (६) बंगालेके फलफूल ओर रससे पंजाबके फलादि उत्तम. मेवाडकी मक्का ओर अफीम अन्य भागोंसे उत्तम. (६) पहाडी घोडे छोटे ओर मजबूत, मध्य हिंदके खूबसूरत परंतु मजबूत नहीं. नागोरीबेल दूसरे भागोंसे उत्तम, काठियावाड, गुजरातके उनसें छोटे. (७) मारवाडके आदमी खूबसूरत नहीं, पंजाबके खूबसूरत. मारवाडकी स्त्रियें खूबसूरत नहीं, गुजरातकी खूबसूरत. पंजाबी अन्यकी अपक्षासे वीर.

(८) बंगालियोंका मगज वक्ता, ज्ञानग्राहक, ओरोंसे उत्तम; सिंधी, कच्छीं ओर भीलोंका अन्योंसे अति न्यून. (९) प्राचीनशास्त्र मुशकिलसे समझेजाते हैं इसलिये पहेलेसे मगजकी पडती, कोई विषय प्राचीनमें नहीं जाने गये अब जाने गये; इतने अंशमें चढती. (१०) राजपूत कोम पूर्व जेसी बहादुर नहीं. (१०) आर्यप्रजा पूर्वमें अनेक विषयोंमें उन्नतिपर थी उनमें अब पडतीपर हे.

देशपरदेश प्रति भेददर्शक.–

[१] योरोपका लोहा हिंदसे उत्तम. [२] केसर, हिंदसे इतर देशमें नही होती. [३] हिंदकी मक्कासे अमेरीकामें बडी मक्का होने लगी. हिंदमें पहेलेसे अनाजके छोटे दाने होने लगे. [४] हिंदके फूलमें खुशबु, इंगलेंडके फूलोंमें नहीं; परंतु हिंदसे ज्यादा खूबसूरत. [५] हिंदके अश्वसे स्टेरलीयाके अश्व बडे ओर मजबूत. अरबके अश्व अन्योंसे खूबसूरत. [६] हिंदकी गायोंमें दूध ज्यादे, इंगलेंडकीमें कम परंतु कदमें बडी. [७] ईरानके तोते हिंदके तोतोंसे अच्छे. [८] हिंदके भीललोक काले, ईरान तथा योरोपके आदमी गोरे ओर मजबूत. [९] जाजीयाकी स्त्रियें ओर देशोंसे गोरी, खूबसूरत. [१०] अेफरीकन, हिंदके आदमियोंसे बदसूरत. [११] पहेले हिंदमें विद्या, अन्य देशोंसे उत्तम थी, वर्तमानमें हिंद विद्याहीन, धर्मांध हो गया. अमेरीकन ओर योरोपीयन वेसे नहीं. [१२] १००० वर्ष पहेले योरोपका पच्छमवाला भाग आर्यप्रजासे बहुत कमदर्जे था. वर्तमानमें विद्या, हुन्नरकला ओर व्यापारमें हिंदसे अधिकोअधिक. [१३] अमेरीकाकी मेकसीकु प्रजा, नीति वगेरेमें वहांकी प्राचीन प्रजासे उत्तम. [१४] अरब ओर हिंदके उंटोंमें अंतर. अरब देशके खच्चर ओर गधे अन्य देशोंसे उत्तम. भूरा ओर उत्तम हाथी हिंद, बरमासे इतर देशमें नहीं. [१५] हिंदमें प्रथम प्राचीन रसमकी चाल, फेर उसका त्याग होके परदेशी चालका ग्रहण होने लगा, अब पुनः प्राचीनका ग्रहण चलनेलगा. [१६] योरोपमें पहेले चेतनवाद, पीछे जडवाद

अब पुनः चेतनवाद पसरनेलगा. [१७] झिंदअवस्ताने वेद धर्मका, तोरेतने पारसी धर्मका, इंजीलने याहूदी धर्मका, कुरानने याहूदी, खिस्ति, धर्मका रुपांतर किया. कहो इनमें किसीकी उन्नति किसकी अवनति ?

चतुरकी संतान देवानीभी ओर चतुरभी होती हे। भेडको पीछेसे काटेंतोभी मुखसे उगालती हे। मींढकका आधा अंग सर्पके मुखमें हे तोभी माखियें खारहा हे। जहां अग्नि वगेरेसे मोतका भय हो, वहां सिंह, गाय हों तोभी सिंह, गायपर हमला नहीं करता। यह सब उदाहरण उन्नतिक्रमके विरुद्ध हें. जो उन्नतिक्रम होता तो अब पूर्ववत् छोटे छोटे जंतु पेदा न होने चाहिये; परंतु एसा नहीं होता; इसलिये हरेक वस्तुमें बाल, वृक्ष वत षडपरिणाम होतेही रहते हें, इतनाही सिद्ध होता हे.

(१) आरंभमें एक जीव (प्रोटोपलाजम १६ तत्वका कंपोड) का रुपांतर चला हो तो वोह जीवोन्नति नहीं किंतु प्रकृति ठेरी. (२) आरंभमें जो सजातीय वा विजातीय पिंड ओर जीव उसका रुपांतर, एसा मानें तो उनके समूह होने तथा भेद पडनेका क्रम नहीं जानपडनेसे उन्नति क्रममें संशय रहता हे. (३) दो विजातीयसे तीसरी जाति (खच्चर) होती हे, अब यदि उसका वंश न चले तो उन्नति क्रम बंद ओर यदि चले तो इसका भेद नहीं बतासकनेसे संशय रहता हे. (४) नर मादा होनेका चोकस कारण नहीं जानपडता ओर मूलमेटरकारुप नहींजानाजाता अतः उसके कार्य वास्ते उन्नति, अवनतिका उच्चार संशयवालाही रहेगा. (५) विशेष संतान होना चढतीका, ओर न होना पडतीका लिंग हे; क्या यह बात ठीक हे? (६) अश्वकी संतान यथेच्छा रंग, आकारवाली, मनुष्य पेदा करसकता हे, कनेर, नारंगी, गुलाब वगेरेके रंग रुप बदलाके वृक्ष करलेता हे, वेल्लीको वृक्षके रुपमें बनालेता हे, ओ. हा. शामिलकरके जल बनालेता हे. इसीप्रकार अमुक सामग्री मिलनेसे, आदमी जैसी बंदरकी वा बंदर जैसी आदमीकी आकृति पेदा हो तो इसमें क्या आश्चर्य? एसा मिश्रण, उन्नति क्रमको नहीं बताता.

(१) युद्धको ओर उसके माइटइजराइट (जिसकी सत्ता उसका हक)को जंगली पन कहते हें, परंतु उसके प्रतापसे राइटइजमाइट होजावे तो उसको उन्नतिका हथियार मान्ना पडता हे. (२) सब माइट वा सब राइट नहीं होसकते इसलिये समानताके अभावसे उन्नतिके क्रममें संशय रहता हे. समष्टिसंपकोभी योग्यता, रुची ओर प्रकृतिका भेद, समान रुपमें नहीं रहने देता. (३) उत्क्रांति, अनुत्क्रांति की थीयरीको आरोपकरनेवालोंमेंभी अद्रढता, संशय ओर मतभेद हे. (४) जेसे

धर्माभिमान वा देशाभिमानमें, योग्य मार्ग छूटके अन्य तरफ दोराजाते हें वेसेही यह विषय जान पडता हे, इसलिये एक देशके उदाहरणपर निश्चय नहीं कियाजासकता (५) आरंभमें यथेच्छा संसर्ग करनेकी रीति होगी, उससे दुःख हुवा होगा तो अमुककी अमुक स्त्री, एसा नियम बंधा; इससे विधवाको दुःख होने ओर बालहिंसा होनेसे विधवा लग्न चला, उससे पतिहिंसा, विरसे ओर संतानके झघडे ओर प्रेमाभाव परिणाम; इसलिये उसमें रुपांतर, इसप्रकार यथा देश काल स्थिति, परिवर्तन होता रहा ओर होगा; सर्वथा एकप्रकार होना मुशकिल हे. (६) संतान पेदा होनेसे सुख, ज्यादे पेदा होनेसे दुःख, बालहत्यासे पाप, इसलिये संयम (थोडा संग), उससे दुःख; तथा संतानार्थ द्रव्य पेदा करनेमें दुःख होता हे. ओर विना प्रयत्न यथेच्छा सब कुछ मिले तो सुख. इसप्रकार व्यक्ति परत्वेभी उन्नति, अवनति होना सिद्ध होजाता हे. ओर समष्टि (सामाजिक) भावमेंभी एक प्रकारकी एक प्रजाकी उन्नति तथा दूसरी प्रजाकी अवनतिभी देखते हें; हिंद, चीन, ईरान, ग्रीस, मिसर, ओर रोमकी हीस्टरी वांचिये. ओर पीछे योरोपके पच्छम भागकी हिस्टरी देखिये. (७) उपर नीति, धर्म, ओर शिक्षित-अशिक्षित मंडलकी उन्नति, अवनतिके प्रसंगमें पहाडी, ग्रामी ओर नागरी (नगरवासी) प्रजाका उदाहरण दिया हे उन सबके विषयोंके उदाहरण मूल ग्रंथमें हें. ओर उसी प्रसंगमें हाटेन्टादि प्रजाको उदाहरणमें दिया हे उनका मुकाबला महाशय हर्बर्ट स्पेन्सर साहेबने अपने 'नीतिसिद्धांत' ग्रंथमें किया हे, इसके वांचनेसे जानसकोगे कि जिनको अशिक्षित—जंगलि प्रजा कहते हें वे कितनेक अंशमें शिक्षितोंकी अपेक्षा नीतिधर्ममें उत्तम हें. नगर निवासियोंसे, पहाडी ओर ग्रामी अच्छे हें. सुधरी हुई प्रजासे प्राचीन 'मेकसीकु' प्रजा अच्छी हे. कहीं शिक्षितोंमें नीति, अनीति उभय देखते हें. (८) १३०० वर्ष हुये के अरबके मान्य ग्रंथका यह विचार था के जो ग्रह टूटते देखते हें सो फिरशते हें, शेतानको मारने वास्ते दोडते हें. जब खुदाने जमीन बनाइ तब वोह कांपती थी उसपर ईश्वरने पहाडरुपी मेंखें ठोकी. परंतु उससे १००० वर्ष पहले ग्रीस ओर ईरानमें इससे उत्तम सयुक्त विचार थे. आर्यावर्त्तमें २८०० वर्षके पौराणिक विचारोंसे पूर्वमें उत्तम सयुक्त विचार थे, उससे पूर्वकालमें विशेष उत्तम थे, उपनिषदोंको देखिये. वर्त्तमानमें वेसे नहीं हें किंतु उनसे उतरते, हलके, विचार हें. इससे जानपडेगा कि उन्नति, अवनति चली आ रही हे. उसका एक अमुक नियम नहीं हे. (९) जबके जल बनता हे तो मनुष्यनेभी बना लिया. एसेही

जबके मनुष्यादि बनते हैं तो मनुष्यभी उनको स्वयं चाहे जैसा पेदा करसकता हे, शरीरोंको रोगी, दुःखी न होने दे ओर नाश न होने दे, एसा क्यों न हो? संसर्गकी अपेक्षा क्यों रहे? सब एक समान क्यों न हों? सबको यथेच्छा सुख क्यों न मिले? अर्थात सब कुछ होसकता हे, एसे मनोराज्य समान भविष्यत वास्ते अंदाजा बांध लेते हें.

योरोपके पच्छम भागमें उन्नति अवनतिका (अर्थात उभय स्थितिका) दोरा नहीं हुवा हे किंतु उन्नतिका आरंभ हे, इसलिये 'आद्यसंस्कार बहुधा प्रबल होते हें' इस नियमानुसार वहांके सहवासियोंके मगज इसीसंस्कारके वश होजाते हें. इसलिये भविष्यमें यूं होना चाहिये वा यूं होगा, अर्थात उन्नति, टोचपर पहोंचेगी, एसा मानलेते हें. परंतु इस विचारकी संतोषकारक व्याप्ति नहीं मिलती ओर न निर्दोष अनुमान करनेको अवसर मिलता हे.

उपसंहार.–

एसद्द्रष्टि देश, काल, स्थिति, परिस्थिति, व्यष्टिसंबंध, समष्टिसंबंध, कुदरती प्रभाव, असर, पदार्थोंकी फोर्स, मेल झोल, मनुष्योंकी जरूरत, उनकी रुची, उसानुसार उनकी समझण, ओर विचार तथा कुदरती अनिवार्य अकस्मात, इत्यादिको उत्क्रांति, अनुत्क्रांतिकी सामग्री मानसकते हें; सोभी मनुष्यकी बुद्धि द्रष्टिसे, नहीं के कुदरतकी द्रष्टिसे. ओर सो उन्नति, अवनति नदीके प्रवाह समान नहीं, किंतु तरंगोंके समान (चढती पडती, पडती चढती). जैसाके पूर्वसे होता आ रहा हे. यह चढती, पडती (इयुलेशन, अन्युलेशन) संज्ञा, अपेक्षासे हे एसा उपर कहा गया हे. सो क्रम सर्व देश वा प्रतिदेशमें समान नहीं; किंतु कहीं कभी न्यून, कहीं कभी अधिक होता रहा हे ओर होते रहनेकी संभावना हे. किसीको अमुक कालतक सहजसे सुख रहे; किसी विवेकी, वैरागी, ज्ञानवानको मरणपर्यंत वा अमुक कालतक इच्छाका अभाव रहे, एसा होना संभव हे. ओर उतनी समय उनको उत्क्रांतिके सिलसलेमें गिनसकेंगे. तथापि सर्वकी उन्नति वा अवनति देशप्रतिभी नहीं मानीजासकती. (जो उन्नत प्रजा कहाती हे उनमें रहके उसके अंगोंको शोधोगे, तो आपको निश्चय होजायगा कि) उन्नति, अवनति तरंग समान हे. प्रवाह वा चक्र रूपमें नहीं ओर अपेक्षित संज्ञा हे. अर्थात प्रकृतिका विलक्षण परिणाम (अवस्था--स्थिति) हे. इति. ॥ ३४६ ॥

जडविकासवादका अध्यारोप.—

विकासवाद, इस नामका ग्रंथ विकासवादके हिमायती पं. गणेश साटे एम. ए. प्रोफेसर विज्ञान (सायंस) गुरुकुल कांगडी हरद्वारने बनाके प्रसिद्ध किया, सद्धर्म प्रचारक दहलीमें वि. १९७० में छपा हे. दूसरा 'जीवतत्व' इस नामका ग्रंथ बंगालीपरसे मि. नारायणहेमचंद्रने तरजुमा किया, गुजरात वर्णाकुलरसोसाइटीने युनाइटेड प्रीटिंगप्रेसमें स. १९५६ में छपवाके प्रसिद्ध किया हे; इन उभय ग्रंथपरसे तथा अन्य विकासवादि डाकटरोंसे सुनके वक्ष्यमाण विकासवाद लिखा हे.

इसको अध्यारोप यह नाम इसलिये दियागया हे कि विकासवादी अपने सिद्धांतमें स्वयं अपूर्णता बताते हैं, (आगे वांचोगे).

विकासवाद, कार्यवाद होनेसे तत्त्वदर्शन ग्रंथका विषय नहीं हे तथा प्राचीन उत्क्रांति, अनुत्क्रांतिवाद प्रथम आचुकाभी हे, तथापि वोह जडचेतनात्मक विवाद हे ओर यह योरोप देशसे निकला हुवा केवल जडात्मक विकासवाद हे तथा बहुधा जिज्ञासु शोधकोंसे अपरिचित हे, ओर किसी अंशमें तत्त्व (चेतन, महान शक्ति) को अतत्त्व मानता हे वा तत्त्वको नहीं स्वीकारता; इसलिये यहां दाखिल किया हे. ओर शोधकोंकी तरफसे इसका संक्षेपमें अपवाद पीछे वांचोगे.

अचिद् (जड) विकासवाद.—

॥ अध्यारोप (सू. ३४७ से ३७० तक). ॥

उपर उत्क्रांति (विकास), अनुत्क्रांति (अविकास) वाद जो लिखा हे वोह जड चेतनात्मक हे. आगे केवल अचिद् समिष्टिवादका अध्यारोप हे.—

अन्य केवल अचिद्जन्य विकास [वाद] ॥ ३४७ ॥ षडविकाररुप सबका परिवर्तन ॥ ३४८ ॥ भू विकास रवीसे ॥ ३४९ ॥ उससे मूल ओर जीवकी उत्पति ॥ ३५० ॥ जडजन्य चेतनरुप स्वाभाविक ॥ ३५१ ॥ उस एक वा अनेकसे भिन्नाकृतिका प्रवाह ॥३५२॥ एमिबादिवत् ॥३५३॥ जात्यादि प्रमाणसे ॥ ३५४ ॥ अगम्यशक्तिसे नहीं ॥ ३५५ ॥ भेदत्वमें परिस्थितिआदि ॥ ३५६ ॥ रचनादि सबमें समान ॥ ३५७ ॥ ओर पोषणादि ॥ ३५८ ॥ प्रमाणकी अपूर्णताभी ॥ ३५९ ॥ प्राकृतिक चुनावसे अस्तित्व ॥ ३६० ॥ परिवर्तनादि उसका मूल ॥ ३६१ ॥ स्पृधादिसे रक्षा ॥ ३६२॥ योग्यका ही जीवन ॥३६३॥ बलवान भोक्ता होपडनेसे ॥३६४॥ पोषणकी अपूर्णतासे सबका न जीवन ॥३६५॥ वनमानस ओर मनुष्य-

की समानता ॥ ३६६ ॥ नालादि ओर समचलनादिसे ॥ ३६७ ॥ अतः साक्षात वा परंपरासे उसका परिवर्तन ॥ ३६८ ॥ पश्चात शनैः शनैः द्रव्य-विषयकी उन्नति ॥३६९॥ आत्मा ओर जीवनशक्ति विकासवादका विषय नहीं ॥ ३७० ॥

अर्थ—उपरोक्त चिदचिद् उत्क्रांतिवादसे इतर केवल अचिद (जड)जन्य समष्टि विकासवाद हे. अर्थात कोई चेतन, तत्व रुप हे; एसे माने विना विकासवाद मानाजासकता हे ॥ ३४७ ॥ तमाम द्रव्य पदार्थोंका ६ विकाररुप परिवर्तन होता हे अर्थात उत्पत्ति १, वृद्धि २, स्थिति ३, परिणाम ४, क्षय ५, ओर नाश ६; एसे विकासवाले कार्यरुप (कंपोडरुप) सब पदार्थ हें ॥३४८॥ सूर्यमेंसे पृथ्वीका विकास (परिवर्तन—निकास—भाग पडना) हुवा हे ॥ ३४९ ॥ उस शीतल हुई पृथ्वी पुंजमेंसे वनस्पति ओर अन्य प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई हे ॥ ३५० ॥ याने पृथ्वीगत जड परमाणुओंसे स्वाभावतः अर्थात किसी अगम्यशक्तिके निमितविना चेतनरस (प्रोटोपलाजिम) पेदा होता हे ॥ ३५१ ॥ उस एक चेतनरस वा अनेक चेतनरससे अनेक प्रकारकी वनस्पति ओर प्राणियोंकी आकृति बन्नेका प्रवाह हुवा हे ॥ ३५२ ॥ जेसेके एमीबादि याने प्रोटोपलाजिमजन्य एमीबा प्राणीसे हैडरा, उससें केंचवा, उससे कीडे, मकोडे, उससे बरडेकी हड्डीवाले " (मछली, उससे सर्प, उससे पक्षी, उससे स्तनधारी, (बंदर, उससे मनुष्य) " बने हें ॥ ३५३ ॥ इस विषयकी सिद्धिमें पांच प्रमाणकी व्याप्ति हे. अर्थात जाति विभाग १, शरीर तुलनात्मक २, गर्भ ३, लुप्तजंतु ४, ओर भूगोलकशास्त्र यह ५ प्रत्यक्ष प्रमाण हें ॥ ३५४ ॥ ईश्वरने जुदा जुदा जाति बनाई वा चेतन वस्तु बनाई हो, एसा नहीं हे ॥३५५॥ नाना प्रकारकी जाति, आकृति जो देखते हें इसप्रकारके भेद (नानात्व) होनेमें परिस्थिति १, पैत्रिक संस्कार २, ओर प्राकृत चुनाव (उंची) ३, यह ३ कारण हें ॥३५६॥ अेमीबासे लेकर मनुष्य वा हाथी तकके अर्थात तमाम प्राणियोंके रचनादिक समान हें; अर्थात शरीरोंकी रचना समान हे १, खर्च वा नष्ट हुई शक्ति सबमें पुनःपेदा होजाती हे २, ओर प्राणीसे प्राणी उत्पन्न होता हे, यह ३ बातें सब प्राणिओंमें समान हें ॥३५७॥ ओर यह ८ स्थान सब (एमीबासेलेकेहाथी तक) में हें. वे स्थान यह हें—१ पोषण, २ श्वास, ३ विसर्ग, ४ रक्तवाहकता, ५ प्रेरक, ६ आधार, ७ ज्ञानतंतु, ओर ८ प्रसव. (यहांतक जो हेतु दिये उनसे उपरोक्त विकासवाद सिद्ध होता हे) ॥ ३५८ ॥ उपर जो पांच प्रमाण लिखे हें उनमें अ-

पूर्णताभी हे तथापि विकाससिद्धिकी सामग्री बहुत कुछ संपादन होगई हे॥३५९॥ प्राकृत चुनाव (योग्यका रक्षण, अन्यका अभाव) अर्थात योग्यता विशिष्टवाले (व्यक्ति—जाति—व्यष्टि—समष्टि)का जीवन—विद्यमानता वा अस्तित्व रहता हे, अन्य अर्थात अयोग्यता विशिष्टवालेका जीवन नहीं रहता ॥ ३६० ॥ परिवर्तन, उत्पत्तिकी अधिकता, जीवन संग्राम, योग्यकी रक्षा ओर रक्षितका अवतरण, यह पांच अस्तित्व रहनेके मूल हें ॥ ३६१ ॥ ओर जाति भाईओंसे स्पृधा, प्रतिपक्षीसे युद्ध करके अपना बचाव करना तथा परिस्थितिके अनुकूल होजाना, इन तीनसे विद्यमानकी रक्षा होती हे ॥ ३६२ ॥ निदान, योग्य व्यक्ति वा योग्य जातीकाही जीवन होता हे; अयोग्यको उस—परके शरण होना पडता हे अर्थात अयोग्यका नाश होजाता हे ॥ ३६३ ॥ कारण के जो बलवान (माइट) होता हे वोह निर्बलोंको भोगता हे, एसा सृष्टि नियम हे ॥३६४॥ भूमंडलमें प्राणिओंकी जितने परिमाणमें उत्पति होती हे, उतने परिमाणमें उनके लिये खूराक पेदा नहीं होती हे, इसलिये जितने उत्पन्न हों वे सब उमरभोगनेतकके कालपर्यंत नहीं जीते; किंतु जलदी नाश होजाते हें ॥३६५॥ बनमाणस (बंदरादि) ओर मनुष्य इन दोनों प्राणिओंमें समानता हे ॥ ३६६ ॥ क्योंकि उनके नालादि ८, ओर सीधे खडे होके चलना वगेरे ४, यह १२ वातें उभयमें समान हें. (ओर रेडकी हड्डी उभयमें हे). अर्थात गर्भमें नाल होना १, अंगूठा घूमना २, हाथ पांवसे लेना देना ३, दूधके दांत टूटना ४, नियत दांत होना ५, नखकी समानता ६, हंसलीका हाड मजबूत होना ७, ओर स्तन होना ८, यह ८ वाते सबमें समान हें. तथा सीधे खडे होके चलना १, मगजका विकास पाना २, भाषा ३, ओर विचार होना ४, यह चारवातें अमुक परिमाणमें (थोडी-बहुत) समान हें ॥ ३६७ ॥ अतःबंदर वा वनमाणसका परिवर्तन मनुष्य हे, अथवा बंदरके ओर मनुष्यके बीचमें कोइ लुप्तकडी (वंश) हे, उसका परिवर्तन मनुष्य होना चाहिये ॥ ३६८ ॥ इसप्रकार बंदरादिसे मनुष्यरुप परिवर्तन हुवा, उस पीछे मनुष्यके सबद्रश्य (खान, पान, भाषा, वस्त्र, मकान, खेती, व्यापार, नोकरी, हुनर कला, धर्म, नीति, व्यवहार ओर राज्य इत्यादि विषय) धीरे धीरे उन्नतिमें आये, अर्थात क्रमशःविकासका यह द्रश्य परिणाम (फल) हे ॥ ३६९ ॥' प्रस्तुत वि-

'वर्तमान द्रश्यसे आगे भविष्यमें किस दरजेतक पहोंचेगा, यह नहीं कहा जासकता, किंवी पडतीमें आवेगा, यहभी नहीं कहाजासकता. इच्छाका अभाव होना, यह उन्नतिकी शिखर हे—सीमा हे, एसा कोइ पक्ष मानता हे. कोइ एसा मानता

कासवाद, आत्मा क्या ओर जीवनशक्ति किसमें हे, कहांसे आई, इन विषयोंपर हाथ नहीं रखता; क्योंकि यह उसका विषय नहीं हे ॥ ३७० ॥ सूत्रोंका अर्थ समाप्त हुवा. विवेचन आगे बांचोगे.

जोकि प्रस्तुत नवीन अचिद्विकासवाद थोडे भागमें परिचित हे, इसलिये उक्त सूत्रोंके विवेचनके पहेले इसवादकी भूमिका (उत्पत्ति, प्रमाणकी अपूर्णता, विकासवादकी परिभाषा, विकासवादकी खामी.) लिखते हें.

अध्यारोप—अर्वाचीन विकासवाद.

(इवोल्यूशन थीयरी वा विवर्तवाद.)

भूमिका.

सृष्टिमें विचित्र कार्य देखते हें,—पेट भरने (जीवन कलह) वास्ते एक दूसरेका कोई न कोई घटना द्वारा हरण होरहा हे. यथा पेटके वास्ते मकडी जाल रचती हे, बगला एक टांगसे खडा होता हे, पक्षी उड रहे हें, बडे वृक्ष छोटेको नहीं वढने देते; यह सब जीवन संग्राम, पेटके वास्ते वा जीवनकी रक्षाके लिये हो रहा हे; तथा वनस्पति ओर प्राणी नाना प्रकारके विचित्र देख पडते हें. एसे देखावपरसे यह विचार सहजमें होजाता हे कि इसका कारण क्या? इ. क्योंकि मनुष्यमें शोधन करने ओर कारण कार्य जाननेकी योग्यता हे.

कार्यरूप पदार्थ—यथा वनस्पति, पशु, पक्षी ओर मनुष्योंके शरीरोंमें ६ बातें देखते हें.—उत्पति, वृद्धि, स्थिति, परिणम्य (फेरफार), क्षय ओर नाश.—(इन छ मेंही फूल, फल, बीज, संतानोत्पत्तिं, पोषण, मगजका विकास, इत्यादि सबका समावेश होजाता हे). सारांश सबमें पूर्ववत् परिवर्तन याने **विकासक्रम** जान पडता हे; इसलिये विकासके (परिवर्तनके) नियम क्या हें उनका बताना विकासवादका काम हे. यद्यपि अभीतक तमाम नियम ज्ञात नहीं हुये हें; तथाहि जीवन क्या ओर क्योंकर आरंभ होता हे, आत्मा कोई वस्तु तत्व हे वा नहीं—इत्यादि बातें विकासवादकी विषय नहीं हें तथापि परिवर्तनके जो ज्ञातनियम वा घटना हे उसको दरसाना विकासवादका विषय हे.

हे कि वर्तमानमें मगजका विकास चलरहा हे अर्थात उन्नतिका आरंभ हे. भविष्यमें सबको सब प्राप्त यानें जीवन सुखसे होगा ओर सुखसाध्य अल्प सामग्रीसे यथेच्छा होजायगा. क्लेश, राग, द्वेष न होंगे; वोह समय उन्नतिका हे. ओर सबसे पीछे इच्छा (कामना)का अभाव, यह उन्नतिका अंतिम टोच (शिखर) हे.

विकासवादके अभ्याससे लाभ क्या? उसका उत्तर-(१) पूर्वोक्त जिज्ञासाका उत्तर होजाना. (२) मनुष्य सृष्टिका इतिहास ज्ञात होना. (३) प्रकृतिके कितनेक नियम ओर मनुष्य व्यवहारकी घटना तथा जीवनका बोध होजाना; जिस बोधने योरोपकी प्रजामें काम किया हे[१]. (४) इसका फल जीवनकी रक्षा, जीवनसुख ओर जीवनकी मनोहरता हे. जो मनोविकार ओर स्वार्थबुद्धिके विकासके घातक हें ओर उंधे मार्गपर चलानेवाले हें, उनका विकासवाद नाश करदेता हे. जिनको विकासवादसे यह सिद्ध न हुवा " कि योग्य व्यक्ति, योग्य जातिही संसारमें जीवती रही हे ओर जीवती हे तथा जीवती रहेगी, परंतु जिनमें योग्यता नहीं वे दूसरेके आधीन होके नष्ट हुई ओर होरही हें (खराब स्थितिमें हें) तथा होंगी, जीवनसंग्राममें माइटइजराइटका राज्य हे[१]; सबको जीवनसंग्राममें उतरना पडता हे[१], सब विकासवादके क्षेत्र हें, विकासवाद कुदरती घटना हे, नहींके कल्पना, ओर वोह प्रत्यक्ष ५ प्रमाणोंसे सिद्ध होता हे. " (यह न जाना) उन्होंने विकासवादको नहीं समझा, एसा जानना चाहिये. इस प्रसंगमें आत्मा ओर ईश्वरको दरमियानमें लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं हे किंतु कुदरती घटना ओर विकास क्रमपर तथा उसके प्रसिद्ध परिणामपरही द्रष्टि डालनेकी अपेक्षा हे. दर्शनकारोंकी दुनिया, विकासवादियोंसे जुदा हे क्योंकि विकासवादी जीवनकी घटनापर विचार करते हें.

विकासवादकी थीयरीका शोधक मि. डारवनही नहीं हे किंतु डारवन साहेब तो इ. १८५९ में थे ओर इस थीयरीके स्थापक तो उससे पहेले हुए हे. यथा इस थीयरीका मूलबोधक अरस्टाटल हे, रेडी (१६६८ में) उसका विरोधी हुवा हे, उस

[१] योरोपकी प्रजाके हृदयरुपी जमीनमें कल्पित धर्म ओर वहेम तथा अंधश्रद्धारुपी झाड झंकड थे, वे उन्नतिके बीज बोने ओर फल लगनेमें प्रतिबंध थे, एसा लूथरश्रीने मनमें जानलिया ओर प्रयत्नकरके उन झाड झंकडके मोटे भागको काटके जमीन साफ पोली करदी. मि. वेकनने उस धरतीमें उन्नतिका बीज डाला ओर प्रयत्नके पानी पिलानेसे उन्नतिके अंकुर आने लगे, एसी स्थितिमें लाया. परंतु डारवनश्रीके पूर्वज, डारवनश्री ओर मि. हर्बर्टस्पेन्सरने तो इस विकासवादका मसाला तैयार करके जो अंकुरोंमें डाला तो उसे उन्नतिका झाड बना दिया "माइटइजराइट" 'योग्यकाही जीवन' यह दो नियम अंग अंगमें डालदिये. इसका फल कोनजाने क्या आनेवाला हे, एसा निश्चित नहीं कहाजासकता. वर्त्तमान कैसरीयुद्ध तो इस थीयरीका फल, दुःख ओर निराशा बतारहा हे.

पीछे ल्यहालिसनेरादि ओर बफनादि इसके साधक हुये; पीछे पंचम शास्त्रकी २५ वर्षतक डारवनश्रीने शोध खोल की; इसलिये लोकमें उनका नाम लेने लगे हैं, हर्बर्टस्पेनसर साहेब विकासवाद स्थापक गिनाये. ओर वर्तमान (संवत १९७२-इ. १९१५) मेंभी शोध चलरही हे.

विकासवाद विशेष अंशमें प्रत्यक्षप्रमाणका भक्त हे. तदंतरगत ५ प्रमाण (आगे वांचोगे) द्वारा विकासवाद अपनेको सिद्ध करता हे.

यद्यपि उन प्रमाणोंमेंसे गर्भशास्त्र ओर लुप्तजंतुशास्त्र अपूर्ण हें. यथा--गर्भशास्त्रका इतिहास, पूर्ण नहीं जाना जासकता. ओर लुप्तजंतुशास्त्रमें यह अपूर्णता हें-- (१) पृथ्वीके स्वरुपमें फेरफार होनेसे उत्पन्न, नष्ट हुये जो प्राणी उनका यथोचित इतिहास नहीं मिल सकता. (२) परवत ओर भूमीकी तह (पड) दबनेसे मृतशरीर पत्थर जैसे होजाते हें. (३) गर्भशास्त्रमें तो विचले पृष्टही कोरे हें परंतु भूस्तर याने लुप्तजंतुशास्त्रके इतिहासमेंतो अध्यायके अध्याय टूट गये हें. (४) हड्डी रहित जानवरके शरीर याने कीडे, मकोडे वगेरेके घाट तेहमें नहीं मिलसकते. (५) हड्डीवाले जानवरोंकी हड्डी १०० वा २०० वर्षतक बनी रहती हे वोह मिलसकती हे परंतु उनका शेष अंग नहीं मिलता. (६) फेरफारसे जल तहां थल ओर थल तहां जल (समुद्र) होगया हे इसलिये यथायोग्य इतिहास मिलना असंभव. (७) उत्तरध्रुवका इतिहास बर्फके आवरणसे नहीं मिलता. (८) अति गरम देशमेंभी जंतुका इतिहास मिलना असंभव. (हां, विचले देशोंमें कुछ परीक्षा होसकी हे). (९) जो जंतु जमीनकी ओंडी तेहमें चले गये उनका इतिहास नहीं मिलसकता. (हां, पृथ्वीके उपरके थोडे भागमेंसे परीक्षा होसकी हे). (१०) नदिओंके प्रवाहसे परिवर्तन होनेसेभी इतिहास नहीं मिलता. (११) कहीं पुरानी वे तेह (पड) के जो पृथ्वीके फेरफारसे कुदरती बनी अथवा नदिओंके प्रवाहसे बनावटी बनी वे चट्टाने कट गई हें, इसलिये फोसील (जानवरोंकी हड्डी) नहीं मिलती. (१२) ज्यादे तेहके दबानसे नीचेके फोसील पिगल जानेसे वे नहीं मिलते. (१३) पृथ्वीके अंदर ३६ मीलसे ज्यादा भूस्तरविद्या नहीं पहोंची हे. (१४) पृथ्वीके अंदरकी क्या हालत हे, उसकी कल्पना नहीं होसकती. १०० मीलसे आगे अति उष्णता हे ॥ इसप्रकार प्रमाणोंमें खामी हे. यहांतक के जो भूस्तरविद्याकी शोधमें खामी तो विकासवादभी निर्बल हे, एसा हे. तोभी प्राप्त चट्टान, गुफा वगेरे स्था-

नोंमेंसे शोधकोंने बहुत कुछ इतिहास प्राप्त करके विकासवाद स्थापन किया है; इसलिये सर्वथा प्रमाण शून्यभी नहीं है.

परिभाषा —

विकासवादमें कितनेक खास शब्द हैं वेभी यहां जनादेते हैं; ताके वारंवार अर्थ न लिखना पडे.

(१) **विकास** वा विवर्त्त वा इयूलेशन=जडचेतन पदार्थोंका पूर्ववत् परिवर्तन वा परिस्थिति अनुकूल परिवर्तनयुक्त उत्पत्ति. वा एक जीवका रुपांतर होके दूसरा जीव होना. वा निर्जीवका परिस्थितिद्वारा विकास. यथा प्रथम लकडीका बाईसकल बडा बना, पीछे लोहेका, फेर रबडका, फेर घास भरके, फेर रबडकी नलीका, फेर अंजनसे चलनेवाला, फिर विजलीका. प्रथममें दिनको धूप छायासे ओर रातको ताराद्वारा कालका माप हुवा, पीछे धूपघडी, पीछे जलयंत्र, पीछे वालुका यंत्र, पीछे कलाकी, पीछे प्रचलित जेबघडी, पीछे सेकंड मिनिट सूचक, पीछे आलारामवाली, पीछे अंधेरेमें टाइम बतानेवाली हुई. इसप्रकार बाइसकल ओर घडियालके फारमका विकास, विकास कहाजाता हे. इसीप्रकार जीवधारी प्राणियोंका विकास हुवा हे. यथा प्रोटोपलाजमसे एमीबादिरुप हुये हैं.[1]

[1] उन्नति क्रम—मानलो कि क (एमीबा) के १, २, ३ संतान तद्वत हुई. नं. २ अमुक कारणसे नष्ट होगया. नं. १ के तद्वत् संतान हुई; वृद्धिकी परिस्थिति न मिलनेसे उन्नति (परिवर्तन) में न आई याने तद्वत् संतति चली. नं. ३ श्रेणीको लंबेकालतक वृद्धक परिस्थिति मिलनेसे वृद्धि (उन्नतिरुप परिवर्तन) हुई याने वंशमें दूसरे प्रकारका रुपांतर हुवा. नं. ३ श्रेणीके अ, ब, ज, तद्वत् संतान हुई. अमुक कारणसे अ, नष्ट हो गया. ब, को वृद्धकपरिस्थिति न मिलनेसे उसके तद्वत संतान हुई. ओर ज को विकासप्रद परिस्थिति मिलनेसे परिवर्तनरुप हुवा. फेर ज के नं. १, २, ३ संतान हुई ओर उनमेंसे १ नष्ट, दूसरेके तद्वत ओर तीसरेका परिवर्तन. इसप्रकारसे विकासका क्रम हे. ओर इस क्रमसे कालांतरमें प्राणियोंकी श्रेणी, कक्षा, जाति ओर उपजाति, हुई हैं. जेसाके वर्तमानमें जुदा जुदा भेद देखते हैं.

इसीप्रकार वनस्पतिका विकासक्रम हे. प्राणी ओर वनस्पतिका मूल (प्रोटो.) इतना साद्रश्य हे के सूक्ष्मयंत्र द्वाराभी उनका भेद नहीं बताया जासकता; कार्य दर्शनपर नाम भेद रखा गया हे. वनस्पति विभागके अणुओं (सेलस) को Protopyla ओर प्राणिओंके अणुओंको Protoezoa ओर उन संशयात्मक अणुओंका नाम Protista कहते हैं.

वर्त्तमान बाइसकल ओर घडियाल जारी रहें ओर दूसरी तरफ हवापर चलनेवाला बाइसकल बने तथा घडियालका काम मन देने लगजाय तो वर्त्तमानके बाइसकल वा घडीका विकास बंद हुवा ओर दूसरे रुपका विकास चला, एसा कहाजायगा. जेसेके अमुक पशुओंका विकास बंद ओर मनुष्यनामा पशुका विकास जारी हे.

किसी जंगलमें बानर रहते होंगे उनकी बसती ज्यादा होनेपर जीवन संग्राम वश निर्बलोंको जंगल, झाडी छोडके दूसरे सपाट देशमें रहना पडा. बलवानकी संतान जंगली रही. इन निर्बलोंकी संतानमें कुदफांदका अभ्यास जाता रहा. अनुपयोगसे पूंछभी घसानेलगी. कंकर, पत्थर चुबनेसे लकडी वा पत्तोंपर सोनेका अभ्यास हुवा. सरदी, गरमीके लगनेपर गुफामें रहनेका अभ्यास पडा. कोई बंदर चलता थक गया; पशु (भेंस, गाय वगेरे) को देखके पीठपर जाबेठा. इसप्रकार पशुको ताबे करनेका अभ्यास हुवा. इत्यादि प्रकारसे परिस्थिति, जरुरतवश तन ओर मगजमें जो परिवर्तन हुवा उसके संस्कार संतानमें उतरे, एसे होते होते लाखोंवर्षमें जंगली मनुष्यके रुपमें आये ओर पीछे शनै शनै सभ्य मनुष्य बनगये. इसप्रकारसे सबका यथायोग्य विकास हुवा हे. इस परिवर्तनका नाम विकास हे.

(२) **परिवर्तन**=पूर्वका रूप बदलजाना. यथा–बालक अपने माबाप जेसा पूरा नहीं होता ओर न पूर्वज वा संबंधियोंके समान होता हे, बलके उनसे जुदा प्रकारकाभी बनजाता हे १, ओर परंपराकी प्राप्तिभी होती हे २; इसप्रकार दो प्रकारका परिवर्तन हे. याने परिस्थितिरुप १, कार्यरुप २, ओर पैत्रिकसंस्कार ३. एसे ३ प्रकारसे परिवर्तन होता हे.

(३) **परिस्थिति**=[१] उद्देशके अनुकूल होना (यथा यंत्र, विचारके अनुसार होना). उद्देश्यके पूरा होनेतक उसके पूर्व जुदा जुदा स्थितिमें आना, ओर उन स्थितिओंका नाश होना. अंतमें उत्तम बनजाना.[१] [२] प्राणियोंमें जरुरतके अनुकूल होजाना, ओर संयोगोंसे जुदाजुदा स्थितिमें आना; उन स्थितिओंका नाश होना, संतानमें वेसाही परिवर्तन होना. [३] अनुकूल वा प्रतिकूल, निर्जीव वा सजीवका संग–संबंध होके उसका असर होना (यथा सर्व गर्मदेशनिबासियोंकी जरुरतपर असर होता हे).

---

[१] इस उत्तमताकी हद (विकासकी अंतिमडिगरी) नहीं बताई जासकती. ओर न विकास, अविकासके खास लक्षण कहसकते हें. एकदूसरेकी अपेक्षासे किसीको विकासपद लगाते हें, उसीको दूसरेकी अपेक्षासे अविकासपद लगासकते हें.

(४) **विज्ञान**=नियमबद्ध ज्ञान, वा नियमबद्ध सामान्यज्ञान, वा साइंस.

(५) **अनुकूल शक्ति**=परिस्थिति वा जरुरत अथवा उद्देशके अनुकूल होजानेकी ताकत. यह शक्ति, चेतन प्राणिओंमें स्वभावतः होती हे. जेसेके व्हेलमछली स्तनधारी जमीनका प्राणी हे परंतु गुजारा नहीं होनेपर जलमें आया तो शरीर उसमें रहेनेके लायक होगया.

(६) **कार्य**=अनेक प्रकारका अभ्यास, कसरत ओर उसका असर. जेसेके लुहारोंको कसरत होनेसे उनके पट्ठे दूसरोंकी अपेक्षा मजबूत होते हें. व्यायामसे शरीरकी स्थिति बदलना. हाथ उपरको खडा रखें तो सूककर नाकाम होजाना.

(७) **पैत्रिक संस्कार**=अद्रष्ट, वा जो पूर्वके संस्कार शरीरके साथ पेदा होते हें. जेसेके मातापिताका कोढ, उपदंशादि रोग संतानमें आते हें. सुकंठकी संतान सुकंठ होती हे.

(८) **प्रोटोपलाजम**=चेतन उत्पादकरस, जीवरस, वा चेतनकण. यह १२ वा १६ तत्व [जडतत्व]का मिश्रण, शहद जैसा पदार्थ होता हे. जीवनका मूलाधार हे. चेतनत्वका पहेला सादा स्वरुप हे. बारूद समान वा घडीके समान इसमें शक्ति भरी हुई होती हे. प्राणीकी क्रियापर शक्ति काम करती हे. हरेक कोष्ट [सेलस-बिंदु] में यह होता हे. 'वटलर वर्क' विज्ञानीने यह रुप बनाया था, परंतु कुदरती जेसा रुप [उत्पादक, वर्धक शक्तिवाला] नहीं बना. यह पदार्थ रसायणीय संयोगजन्य नहीं होता, किंतु इसके बननेमें कोई गुप्त शक्ति काम करती हे, एसा जान पडता हे.

(९) **सेलस**–बिंदु–कोष्ट=प्रोटोपलाजमका भाग. जिसमें जीवन शक्ति हे, सामग्री होनेपर अपने जेसे नवीन स्वरुप करनेवाला हे.

(१०) **स्वतः जननवाद**=जीवके विदुन जीवकी उत्पत्ति स्वतः होती हे; कोई अगम्य शक्तिद्वारा नहीं. इस विकासको सिद्ध करनेवाला प्रकार [थीयरी] 'स्वतः जननवाद' कहाता हे. यह रुम ओर ग्रीसका प्राचीन सिद्धांत हे ओर आर्यप्रजामें चारवाकका प्राचीन सिद्धांत हे.

(११) **एमीबा**=प्रोटोपलाजमका एक कोष्टवाला भाग छोटेसे छोटा जीव.

(१२) **चट्टान**=पृथ्वीमें उसकी गतिसे मिट्टी वगेरेके जो थर जम जाते हें सो कुदरती चट्टान; ओर वर्षा, नदि, बरफ द्वारा पहाड वा जमीन घसकर किसी जघे घसे हुये वा कंकर पत्थर बहे हुयोंकी जो थर जमती हे उसे बनावटी चट्टान कहते हें; जेसे हिंदमें लछमनझूलापास ओर गंगासागरपास समुद्रके किनारेपर हें. वे हरसाल (तब-

की हडतालके पड समान) उपरउपर जमती हुई होती रहती हैं. दरियाद्वारा अनेक प्रकारके पदार्थ उन तेहोंमें आके दबके ठेर जाते हैं. शोधकोंने उनको खोदखोदके देखा हे. उससे अजीव, जीवप्राणी ओर उनके शस्त्रादिका इतिहास दरियाफ्त किया हे.

इसीप्रकार जमीनकी तेहोंको खोदकर वनस्पति, कोयले आदिका इतिहास जाना हे.

(१३) **वैज्ञानिक**=साईसवेता, तत्ववेता, (विकासवादि).

योरोपके वैज्ञानिक केसे शोधक ओर सत् वक्ता हें वोह नीचेके बयानसे ज्ञात होगा. जितने संप्रदायी (धर्मग्रंथ) ग्रंथ हें उनमें व्याप्ति रहित कल्पनाकोभी इत्थम भावसे बताया हे ओर उसे नहीं मान्नेका दंड दरसाया हे; परंतु अपनी अपूर्णताको जाहिर नहीं होने दिया हे, हालांक अपूर्णता हे; कारणके उनउनके नेताओंमें मत-भेद हे. यथा—जीव ईश्वरकृत, जीव स्वयं अनादि, जीवका पुनर्जन्म, जीवका अपुनर्जन्म, अभावजन्य सृष्टि, उपादानजन्य सृष्टि; इत्यादि मतभेद हें. परंतु नवीन शोधकोंमें वेसा आग्रह नहीं हे.

वैज्ञानिक वा विकासवाद, नीचेकी वातोंको स्वीकारता हे.—

(१) आत्मा हे वा नहीं, आत्मा अमर हे वा नाशवान; यह विषय विकासवादका नहीं हे. (२) मनुष्य अपूर्ण हे ओर ससीम हे, इसलिये विज्ञान (सायंस) कभी पूर्णताको प्राप्त नहीं होना हे. (३) जीवनकी उत्पत्ति किस प्रकारसे हुई हे इसका सुबंध विकासवादसे नहीं हे. (४) जीवन—चेतनत्वका आरंभ कैसे हुवा, इसका उत्तर वैज्ञानिक देते हें कि ' हम नहीं जानते. ' (५) प्रोटोपलाजम, जो जीवनका मुख्य अंग हे उसको हम नहीं बनासकते. (६) प्रोटोपलाजमका रसायणीय मिश्रण कोनसी शक्तिसे हुवा हे यह अभी हमको ज्ञात नहीं हे. (७) सजीव प्राणियोंमें परिवर्तन केसे होता हे, यह वैज्ञानिक नहीं बतासकते ओर न इन परिवर्तनोंको परिक्षासे बतासकते हें. (७) जीवन अर्थात क्या? इसमें वैज्ञानिकोंका मतभेद हे—[क] कोई १२ वा १६ जडतत्वकी रचनामात्र; [ख] कोई प्रोटोपलाजमही; [ग] कोई प्रोटोपलाजम बन्नेमें रसायणिय संयोगमात्र नहीं हे, किंतु जीवन रस बनानेमें कोई परोक्ष महान शक्तिका हाथ; बताता हे. (८) वैज्ञानिक कहेते हें कि गर्भ अवस्थाका पूर्ण इतिहास हम नहीं जानसकते. (९) गर्भमें नरमादा केसे बनते हें यह हम नहीं जानते. ओर परस्परमें मतभेद हें. (१०) पहेले पहेल मानसिकशक्ति केसे हुई, यह हम नहीं जानते. (११) जीवन या सृष्टिका

आरंभ किस चाबीसे होता हे, इस विषयसे विकासवादको कुछ मतलब नहीं हे. (१२) प्रथमके एटमोंमें उत्पत्तिकी शक्ति कहांसे आई ओर बीज [प्रो.]में शक्ति कहांसे आई, इसका उत्तर भविष्यमें होगा; अभीतक वैज्ञानिक नहीं जानते. (१३) जीवरस [प्रो.] ओर जीव बिंदु [सेल]में आने, जाने ओर फिरनेकी गति क्यों-कर पेदा हुई, उसका सबब अभीतक नहीं जानागया हे. (१४) वायु, पुष्पाणु, ओर प्रकाश, किस अद्भुत उपायसे कान, नाक ओर आंखके द्वारा मगजमें प्रवेश करके सुन्ने, सूंघने ओर देखनेका ज्ञान केसे केसे कराते हें, यह अभीतक वैज्ञानिक नहीं जानसके हें.—अर्थात इम्प्रेशनका खास स्वरुप अज्ञात हे. (१५) पृथ्वी कबसे, किसप्रकार बनी ओर उसपर सृष्टिकी उत्पत्ति कबसे हुई, इसका ठीकठीक सबूत नहीं मिलता, किंतु इस संबंधमें जो कहाजाता हे सो कल्पनामात्र हे. (१६) व-नस्पति ओर प्राणी, पृथ्वीपर कबसे पेदा हुये, इस कालमें मतभेद हे. (१७) डारवन महाशय कहता हे के मेरी परीक्षा [विकासक्रम] सायंस ओर परीक्षाकी साक्षीके विना मान्य नहीं हे. (१८) कोई विषय पूर्ण नहीं जानाजाता ओर न किसी पदार्थका अंतिम उपयोग [तमाम उपयोग] ज्ञात होसकता हे. (१९) विकासवादमेंभी विकासवादियोंका मतभेद हे. विकासवादका प्रयोजन, परिवर्तनके ज्ञातनियम ज-नानेमें हे. [विकासवाद ग्रंथ ओर जीवतत्व ग्रंथमेंसे यह कोटेशन उतारे हें].

अब आगे विकासवादकी थीयरी लिखते हें.——

विकासवाद.—

नवीन वैज्ञानिक (सायंसवादी वा विकासवादी) एसा अध्यारोप करते हें कि विशिष्ट उत्पत्तिवादी [ईश्वरवादी] जीवोंकी उत्पत्ति, अदृष्ट—अगम्य शक्ति (ईश्वर) से हुई हे; एसा मानते हें सो यह ठीक नहीं हे. किंतु वर्त्तमानवत् पूर्वमें परिवर्तन हुवा हे; अतः अगम्य शक्तिको मान्नेकी अपेक्षा नहीं हे. अर्थात पृथ्वीपर वायु, वर्षा, नदी, ज्वारभाटा इत्यादिसे परिवर्तन जारी रहता हे, उससे वनस्पति ओर जीवोंका स्वरुप होके उनमें परिवर्तन होता रहता हे.

विज्ञानवाद कहता हे कि इससे पूर्व पृथ्वी, गरम मधुवत् थी उससे पूर्व वि-शेष गरम थी उससे पूर्व अती तप्त सूरजसे जुदा नहीं थी. जब जुदा पडके ठंडी हुई तब पृथ्वी नाम पडा. इसीप्रकार शनी, मंगल वगेरे हुये हें. सूर्य पूर्ववत् तप्त वि-

१८—इसी वास्ते विकासवादका अंतिम रुप नहीं कहाजाता.

चमान हे. सूर्य सबके मध्य हे.' जब पृथ्वी ठंडी होके वनस्पति, जीवोंकी उत्पत्ति होने लगी, तबसे विकास आरंभ हुवा जिसका परिणाम (फल) वर्त्तमान संसार हे. उस विकासका वर्णन करना विकासवादियोंका आशय हे. ओर जीवोंकी उत्पत्ति मानकर वनस्पति, प्राणी ओर जीवप्राणीका विचार करते हें. पृथ्वीपर पहेले वनस्पति स्वतः सिद्ध हुई (आपोआप स्वभावतःबनी), उसका परिणाम जीवप्राणी हे. यहां जीवप्राणीका प्रसंग लेंगे.

प्रोटोपलाजम—जीवरस—चेतनकरण पहेले कहांसे आया? कोई एसा मानता हे के तारा टुटा, वोह भाग पृथ्वीपर आया उसमें पडा. दूसरा कहता हे कि एसी स्थितिमें जीवनरस यथायोग्य स्थितिमें कायम नहीं रहसकता, इसलिये पृथ्वीपर स्वभावतः अनुकूल स्थिति आनेपर जीवनका एकदम आरंभ हुवा था. वैज्ञानिक प्रो. को नहीं बनासकते; क्योंकि सजीव, निर्जीव बनानेमें अंतर हे.

रसायणीय प्रथक्करणसे ज्ञात हुवा हे के उस जीवरसमें १२ वा १६ तत्व हें. कर्बन, उदजन, नत्रजन, गंधक, प्रस्फुरक, अम्लजन, सोडीयम, हरिण, मेगनेशियम, पोटाशियम, ओर दोचार अन्य जडतत्व हें. यह चेतन उत्पादकरस कम ज्यादा होतारहता हे. जड पदार्थोंका परिवर्तनही यह चेतनरस हे. यह चेतन, दीपकके प्रकाश समान वा दरियाके भंवर समान क्षणिक होता हे, परंतु मालूम होता हे; एकरस समान स्थित; शहेद जैसा होता हे; बदलता रहता हे. कोई इस मिश्रणको स्वाभाविक होना, कोई गुप्त महानशक्ति (ईश्वर) द्वारा होना मानता हे. इस सजीवके भागको सेल्स-बिंदु कहते हें, सो सूक्ष्मयंत्रके विना नहीं जानाजाता. इन सेलोंके जमावसे शरीरोंके भाग बने हें. जिसमें जिवनशक्ति हे, इसका नाम बिंदु हे; याने वे सेल, गोल अंडाकारके होते हें. एक सेल (कोष्ट) इंचका छहजारवां भाग जितना होता हे. जिसका यह भाग हे वोह (प्रो.) पानीमें नहीं घुलता, उसमें कुछ रचना नहीं जानपडती, पारदर्शक होता हे. उसका भाग सेल जो योग्य स्थलमें हो तो मापमें बढता हे, बाहिरकी वस्तुको लेके अपना रुप करलेता हे. यह गुण, जीवनशक्तिमें हे; वायु, हवा, विजली वगेरेमें नहीं हे. यह हजारों बिंदु (कोष्ट-सेल) पेदा करता हे, फेर वे हजारों हजारों पेदा करते हें. जो शरीर नित्य १ इंच

' सूर्य किससे बना, किसके आधार, ओर उससे पृथ्वी वगेरे किस क्रमसे ओर कब जुदा हुइ, यह विषय विकासवादका नहीं हे. किंतु सूर्यसे भूमीकी उत्पत्ति, सायंसवादी मानते हें; उस सिद्धांतको मानके प्रवृति हे.

घनरुपमें बढे तो ९ अर्बुद बिंदु पेदा हुये जानो. चमडी, मांस, लोही आदि, इनके मिलापसे बनते हैं. जीवरस (प्रो.), बिंदुमें आनाजाना (गति) करता हे.[१]

छोटेसे छोटा **एमीबा** पानीका जानवर हे वोह एक कोष्ट (सेल) का हे, स्वयं गति करता हे, अपनी पसंदका खूराक लेता हे, अपनी वृद्धि करता हे ओर अपनेमेंसे अपने जैसे नवीन पदार्थ (प्राणी–जीव) पेदा करसकता हे. जब अनुकूल खूराकपर बेठता हे तब उसमें छिद्र होजाता हे उसमें वोह खूराकको खेंच लेता हे. एमीबासे लेके हाथीके शरीरतक याने हरेक शरीरमें रसायनशास्त्रसे ३ बातें सिद्ध होचुकी हैं.–(१) सब प्राणीके शरीरकी रचना एक प्रकारकी ओर सबके सरल तत्व समान हैं. (२) नष्ट होती रहनेवाली अवयवशक्ति, पुनः प्राप्त करसकते हैं (खूराकसे). (३) एक प्राणीसे दूसरे प्राणीकी उत्पति होती हे अर्थात उत्पादन शक्ति सबमें हे. (भौतिक जड कंपोंडोंमें यह शक्ति नहीं हे). प्राणिओंके शरीरमें ६ से १६ तत्वतकका मूल जीवन रस हे. हरेकमें ८ स्थान होते हैं. पोषण, श्वासोश्वांस, मलमूत्रवाहक, रक्तवाहक, प्रेरक, आधार, ज्ञानतंतु, प्रसव (जाती नष्ट न होने वास्ते प्रसव स्थान). यह ८ प्रबंध हरेक (वनस्पती, अेमीबासे लेके हाथी तकके) प्राणिको करने पडते हैं. प्राणी मात्र, परस्थितिरुप होनेके अनुकूल चेष्टा करते हैं. प्राणिओंके हरेक अवयव, कोष्टों (सेलस) के समूहसे बने हुये हैं ओर वे अवयवोंके समान जुदा जुदा प्रकारके होते हैं. हरेक कोष्टको कमरा जानो, उसमें चेतनकण कोष्ट सहित होता हे. सब शक्ति, कोष्टसमूहका एकीकरण हे. जैसे नगरीमें खाती, लुहार, राज, वैद्य, न्यायाधीश वगेरोंसे नगरका काम चलता हे किंवा सैनामें प्रत्येकके काम जुदा जुदा ओर एक रुपमें जानेजाते हैं, एसे सर्व कोष्टोंके जुदा जुदा कामसे शरीर चलता हे ओर वोह शक्ति एक रुपमें जानपडती हे. जो एक एक कोष्टका नाश करें तो सजीव प्राणी नष्ट होजायगा.

वनस्पति सजीव पदार्थ हे, यह सायंसने अच्छीतरह सिद्ध करदिया हे उनमें प्रोटोपलाजम (चेतनोत्पादक रस) की धारा बहती हे. निदान निर्विवाद विषय हे.

विकासवाद (इयुलेशन थीयरी) सिद्धि करनेमें ५ प्रमाण हैं.—

(१) **जातिविभाग शास्त्र**—जीवप्राणी दो प्रकारके–(१) वनस्पति. (२) सजीव प्राणी. सजीव प्राणी दो प्रकारके–(१) पृष्ट वंशधारी (पृष्टकी 'बांस' इस

[१] वनस्पती ओर जीव प्राणीके मूल (प्रोटो.) में अंतर बताना मुशकिल हे. वे समान जानपडते हैं परंतु अंतर हे; इसलिये उनके जुदा जुदा नाम रखे हैं.

नामकी हड्डीवाले). (२) ओर उसके विनाके (कीडे मकोडे). फेर इनके श्रेणी, कक्षा, जाति ओर उपजाति यह ४ विभाग हें.

(२) **तुलनात्मक शरीररचना शास्त्र**—पृष्टवंशगत स्तनधारी श्रेणीके चमगादड, व्हेलमछली, सीलमछली, मछली ओर गो हें ; इनकी शरीर रचना समान हे. उनका बाह्यरुप, परिस्थितिवश जुंदाजुदा प्रकारका हे. तद्विरुद्ध ततली ओर दूसरे पक्षी बाहिरमें समान हें, परंतु उनकी शरीर रचनामें अंतर हे.

(३) **गर्भशास्त्र**—गर्भके आरंभसे अपनी अपनी स्थिति पूर्ण होने तकमें जितना परिवर्तन होता हे उसका ज्ञान, गर्भ शोधनसे होजाता हे ओर वोह परिवर्तन सब प्राणियोंमें समान जानपडा हे.

(४) **लुप्तजन्तुशास्त्र**—प्राणिओंकी परंपरा मिलानेसे उनकी संतति, उपसंतितिका सिलसला मिलजाता हे, परंतु पृथ्वीमें लंबेकालसे फेरफार होता रहनेसे कितनीक बिचली कडिओंका पता नहीं लगता. अमुक जाती वा प्रकारके जंतु नष्ट होगये हें. भूस्तर विद्याकी चट्टानोंमेंभी उनका चिन्ह नहीं मिलता. यथा बनमानसका रुपांतर मनुष्य जाती हे; परंतु दोनोंके मध्यमें एक कडी (जाति) का लोप होगया हे. यद्यपि गर्भशास्त्रमें (गर्भ परीक्षासे) उस लुप्तके चिन्ह मानसकते हें तथापि ठीक ठीक कहना मुशकिल हे. कितनेक कारणोंसे लुप्तजंतुशास्त्र अपुर्ण हे तोभी वैज्ञानिकोंने शोधकी बहुत कुछ सामग्री संपादनकी हे ओर कररहे हें.

(५) पांचवां **भूगोलक शास्त्र** हे.—उससे अमुक प्राणी अमुक जघे हुये यह, तथा समीप देशमें रहनेवालोंका साधर्म्य जानपडता हे, उससे विकासवादको बहुत मदद मिली हे.

आर्यप्रजाके पुराणोंमें जो अवतार संज्ञा हे वोह विकासवादको बताती हे. यथा प्रथम मच्छ (जलचर), पीछे कच्छ (जलचर—थलचर प्राणी), पीछे वराह (भूचर), फेर नृसिंह (वनचर), पीछे वामन (लघु मनुष्य), पीछे परसुराम (अर्धसभ्य, लडाके), पीछे राम, कृष्ण (सभ्य मानव), पीछे बुद्ध, कलंकी. परंतु पुराणोंमें चाहिये जैसा संतोषकारक वर्णन नहीं मिलता.

उपरोक्त शास्त्रोंद्वारा परीक्षासे अभीतक एसा माना जाता हे कि—

(१) जेसे बीजसे थड, शाखा, पत्र, उपशाखा, फूल, फल होते ओर नष्ट होते हें; वेसे प्रोटोपलाजम[1] (बीज)—सेल्स, उससे एमबा जंतु, उससे हैडरा, उसके रुपांतर

[1] वनस्पतिके प्रोटोपलाजम ओर उसके भविष्यके क्रममें अंतर हे.

कानखिजुरा वगेरे कृमी, पश्चात कीडे, मकोडे, केकडा वगेरे रुप कृमी, उस पीछे उनके रुपांतर रीड (पृष्ट बांस) की हड्डीवाले—जेसेके मछली, उससे मेंडक, सर्प, उससे पक्षी, इनसे स्तनधारी चोपगे, उनसे गोरीले वगेरे बंदर—वनमानस, उनका रुतांपर लुसकडी, इस लुसका रुपांतर जंगली मनुष्य, उनका रुपांतर सभ्य मनुष्य. यह सब परिवर्तन, परिस्थिति तथा आवश्यकताको लेके स्वाभाविक हुवा हे. ईशादिरुप शक्ति उसमें नमित्त नहीं हे.

(२) आरंभमें वनस्पती, प्रोटोपलाजमसे हुई, उसीसे चेतन प्राणी हुये हें. वनस्पतिके जिकरका यहां प्रसंग नहीं हे, अतः उससे उपेक्षाकी हे.

(३) जडचेतनका अंतर—पूर्ववत् परिवर्तन (परिस्थितिवश, जुदा जुदा रुपमें आना—परिणाम पाना) का नाम विकासवाद हे.

(४) जडचेतनका अंतर मानना कल्पना मात्र हे, जड पदार्थका अमुक प्रकारका समूह चेतनरुपमें परिवर्तन पाता हे. याने जड, चेतन इन उभयके तत्वोंकी संख्या ओर उनकी रचना प्रकारमें अंतर हे, इतनाही जडचेतनका भेद हे. तत्व-रुपमें समान हें.

(५) सब प्रकारके सजीव प्राणी, एक जातीके प्राणीसे (पूर्वजसे) संतति अनुसंततिद्वारा पेदा हुये हें. आरंभमें वर्तमानवत् जुदाजुदा जातिके प्राणी थे वा उनके अनेक प्रकारके जुदाजुदा बीज थे, एसा नहीं था.

(६) विकास यह प्राकृतिक (स्वाभाविक) घटना हे, किसी गुप्तशक्तिने आरंभमें नरमादा जाती बनाई हें यह मंतव्य युक्ति, विचार ओर प्रमाणसे रहित हे; किंतु परिस्थितिके कारण जुदाजुदा रुप पकडते (बनते) गये हें.

(७) विषम गुणवाले पदार्थोंका रसायणीय संयोग ज्यादे द्रढ होता हे, समान गुणवालोंका वेसा नहीं.

(८) जीवकी उत्पत्ति, जीवके विना होना संभव हे. कोई एसा सिद्धांत करता हे कि पूर्वजके बिदुन जीवकी उत्पत्ति असंभव हे.

(९) वृद्धिपाना, जीवतप्राणीका स्वाभाविक गुण हे. निर्जीवमें यह गुण नहीं हे.

(१०) जीवत पदार्थोंमें भेद पडजाना स्वाभाविक हे. परिस्थिति ओर जरुरतसे एसा स्वाभावतः होता हे.

(११) प्रकृतिके नियम सबको समान हें.

(१२) प्रकृतिका नियम हे कि जीवन अर्थ (उदरपूर्णार्थ) हरेकको संग्राम करना पडता हे, इसीको जीवन कल्ह वा जीवन संग्राम कहते हें. ओर योग्य बलवानकी जय होती हे; अयोग्य निर्बलका नाश [पराधीन होके नाश] होजाता हे.

प्रथम उत्पत्ति पृष्टवंश राहित (अमीबा, कीडे, मच्छरादि) की, पीछे उससे पृष्टवंशकी हुई हे. इस पृष्टवंशके ५ वर्ग हें.—

(१) ग्रामी, जंगली, देशी, परदेशी–कुत्ते; लोमडी, भेडिया, शृगाल, यह एकसे पेदा हुये हें (एकका रुपांतर हें) उनके शरीरकी रचना समान हे. ग्रामी, जंगली, देशी, परदेशी–बिल्ली, चीता, व्याघ्र ओर सिंह यह ४ एकसे हुये हें; इनकी शरीर रचना समान हे. भेडिये कुत्तेके मिलानसे संततिभी होजाती हे; मांस भक्षक, दूध पिलानेवाले–व्हेल मछली ओर सीलके शरीरोंकी रचना, बिल्ली कुत्तेसे मिलती हे; जलकी मछलीसे नहीं (इसका कारण परिस्थिति हे). स्तनधारी तिक्षणदंती (कतरनेवाले) चुहा, गिल्हेरी, शशक, इनकी रचना समान हे. स्तनधारी हवामें उड़नेवाले चमगादड ओर उडनीगल्हेरीकी रचना समान हे. गाय, अश्व, हाथी, उंट, हिरण, गेंडा, सूवर ओर दरियाई घोडा–इनकी रचना समान हे, यह खुरवाले स्तनधारी हें. स्तनधारीमें कितने जेरज कोई अर्धजेरज (यथा कॅंगरु) ओर कोई अंडज (यथा डकबिल) होते हें; यह विकासमें आ रहे हें, यह स्तनधारी ओर पक्षीवर्गके मध्यमें हें.

(२) पृष्टवंशका दूसरावर्ग पक्षी हे, इन सबके शरीरोंकी रचना (चोपाये समान) ओर संबंध, स्तनधारियोंके समान हे. यथा बगला, गीध, बतख, मुरगाबी, काग, चिडिया, तोते, कोयल, चील. परिस्थितीके कारण किसीमें उडन शक्ति कम पडगई हे. यथा गृध, मोर, मुरगा, पेंगवन, शुतरमुर्ग.

(३) पृष्टवंशका तीसरा भाग सर्प, गोह, अजगर, नाकु, मगरमच्छ, कछवा, वगेरे हें. परिस्थिती ओर जरुरतके अनुसार जुदाजुदा रुपमें आगये हें.

(४) पृष्टवंशका चोथा भाग मींडक, समंदर (आगमें रहेनेवाला कीडा)[१], ओर मंडुक अंडज हे, आरंभमें मछलीरुप पीछे मींडकरुप होता हे.

(५) पृष्टवंशका पांचवां भाग मछली हे सो अंडज हे. इससे यथा परिस्थिति उपरोक्तरुप हुये हें.

---

[१] गरम भाफसे जीनेवाले झाड, दिल्लीके अजायबघरमें देखे हें.

पृष्टरीड हीन.—हड्डीरहित विच्छु, कीडे, केंचवा, कानखिजुरा (टुकडे टुकडे करके बना हे), भोंरा, माखी, टीड, ततैया, तीतरी. इन सबमें देखनेमें भेद हे, असलमें समान हें. यहांतकके छोटा कीडा पत्थरके साथ एसा चिमटा होता हे के पानिके वेगसेभी नहीं हलता, उसके शरीरकी रचनाभी विच्छु आदिके समान हे.

एमीबा—छोटेसे छोटा एमीबा जंतु हे, जो प्रोटोपलाजमके पीछे एक कोष्ट (सेलस) का बना हुवा हे, यह जलमें होता हे, सूक्ष्मयंत्रद्वारा गोचर होता हे, बढता रहता हे, जिधर उसकी खूराक हो उधर बढता हे दूसरी तरफसे संकुचता हे; एसा होना स्वभावतः हे, नहींके इच्छा वा चेतनरुप इरादा. इसके खूराक लेनेकी आश्चर्यरुप रीति हे अर्थात खूराकपर पहोंचके[१] उसे ढंकलेता हे, उस पीछे उसके शरीरमें एक छिद्र होजाता हे उसके द्वारा खूराकको अंदर ले लेता हे ओर वोह शरीरके उपयोगमें आती हे. एमीबाके मुख, कान, आंख, नाक कुछभी नहीं होते. प्रोटो. पर आधार हे; तोभी उपर लिखी हुई आठों बातें उसमें होती हें. दूसरे प्राणिओंसे केवल इतनाही अंतर हे कि अन्यमें अनेक कोष्ट होते हें ओर इसमें एक कोष्ट होता हे. संक्षेपमें सार यह हे के तमाम जीवोंका पूर्वज यही हे; इससे रुपांतर होते होते सब बने हें.

जन्म पाने पीछे बाल, किशोर, जवान वा वृद्ध अवस्थामें जितना परिवर्तन होता हे उससे ज्यादे गर्भ अवस्थामें होता हे. राइसे बडावृक्ष बनजाता हे. पक्षी अंडे फोडकर निकला के थोडी मुद्दतमें उडने लगजाता हे.

मींडकके गर्भका इतिहास यह बताता हे के हरेक प्राणीको अपनी उन्नति [विकास] का चक्कर [क्रम] घूमना पडता हे. जेसेके मींडक प्रथम अंडे देता हे वे ४ दिन पीछे चपटे होते हें. जो प्रथम न थे वे अवयव अर्थात मुख, कान वगेरे बनजाते हें. प्रथम मछलीरुप हुवा, उसका परिवर्तन होके मींडकके रुपमें आया हे. उपरकी श्रेणी [मींडक] को नीचेकी श्रेणी [मछली] से गुजरना पडता हे. पक्षी मात्र एसे रुप रखते हें अर्थात मुरगीके गर्भमें प्रथम एमीबारुप, तिस पीछे उसका विकास मींडकरुप, उसका विकास सर्प जैसा, उसका विकास पक्षीरुप होता हे. जब पक्षीरुपमें आता हे तब अंडा फोडता हे. सारांश गर्भमें अपने पूर्व-

[१] एमीबाके आंख नहीं तो खूराक देखना, उसपर पहोंचना; ज्ञान शक्ति नहीं तो खूराक अपनेमें केसे खेंचलेता होगा; इत्यादि आश्चर्य, परंतु इसकी मूलकडी अन्य हे. आगे वांचोगे.

जोंका संक्षेपमें अनुकरण करना पडता हे. इसीका नाम विकास क्रम हे. अंडजके समान बिल्ली, कुत्तेके गर्भकी अवस्था हे. मांसभक्षक, तीक्षण दंती ओर खुरवाले प्राणी, एक कुलकी संतान हें ओर हड्डी विनाके प्राणियोंकी गर्भावस्था समान हे.

गर्भ अवस्थामें जो परिवर्तन होता हे उसका आधार परंपराके तत्वजन्य बीजपर हे. पूर्वजके संस्कारानुसार संतानमें गुण उतरते हें.

अब विचार लेना चाहिये कि इतना रुपांतर गर्भकालमें ओर जन्मके बादमें होजाता हे तो सेंकडों, हजारों, लाखों वर्षोंमें, अंतरबाह्यके रुपका विकास हो, यह स्वाभाविक हे.

भूस्तरकी चट्टान—विज्ञानवाद कहता हे कि सूर्यसे पृथ्वी जब जुदापडी तब पीछे कुछकाल तप्त, फेर शनै २ ठंडी पडी. पीछे द्रव पदार्थ फेर फिटकडी वगेरे कठिनरुपके पदार्थ होने लगे ओर आकर्षणके कारण पृथ्वीमें मरड पडने लगी. तब कुछ पृथ्वी खिंचा गई, कुछ उपरको उठी, उपर उठे हुये स्थान परबत, पहाड ओर अंदरवाले गहेरे खड्डे. इनमें वर्षासे फेरफार हुये, याने तालाव ओर समुद्र बनगये. पहाडोंपर वायु, वर्षा ओर बर्फके आघात हुये, तिससे वे घिसकर जहां यह चूर्ण इखट्टा हुवा उनका नाम कृत्रिम चट्टान हे. गरमझिरने, ज्वालामुखी ओर भूकंप वगेरेके आघातसे बहुत प्रकारके परिवर्तन हुये—जलथल, थलजल बनगया; नदीके प्रवाहसे ओर परिवर्तनसे चट्टानोंकी तेह (पड) कट गई, इत्यादि कारणसे चट्टान द्वारा पूरा इतिहास नहीं मिलता तथापि वैज्ञानिकोंने बहुत कुछ संग्रह किया हे.

जो चट्टानें मिली हें उनमें पहिली निर्जीवकी चट्टानें हें, पीछे प्राचीन, पीछे प्राथमिक,[१] पीछे मध्यमकालकी चट्टानें हें. जिनमें प्राणिओंकी हड्डी मिलती हें उनसे क्रमज्ञात होजाता हे. चट्टानोंके शोधसे ज्ञात हुवा हे कि प्रथम मत्स, पीछे मींडक, पीछे सर्प, फेर गोह, फेर छिपकली (जो लंबी ८० फुट, ओर वजनमें ५०० मन तककी निकली हें), पीछे उडनेवाले सर्प[२] ओर सर्पके पीछे स्तनधारी हुये हें. हाथी ओर अश्वोंके शरीरभी चट्टानोंमें मिले हें.

भूगोलकमें घुमने-शोधनेसे ज्ञात हुवा हे कि आरंभमें सीधी-सादी रचनावाले प्राणी ओर पीछे काल परिस्थितिके अनुकूल जुदाजुदा रुप हुये हें. वे इधर उधर गये,

[१] इसमें हड्डी रहितके शरीर मिलने चाहिये, परंतु गरमी ओर दबान होजानेसे नहीं मिले. तोभी अमेरीकामें हड्डी रहित घोंघोंका शरीर मिला. [२] अमेरीकामें एसे मृत शरीर (ममियासमान) मिले हें.

कोई न गये, कोई समीप देशमें रहे. देशादिसे स्थितिका रुप बदला. विच्छु, व्याघ्र, सिंह ओर हाथी इंगलेंडमें नहीं, हिंदमें हें. जराफ एफरीकामेंही होता हे. ४ पांववाले सर्प मिले. नजदीकके देशवालोंमें साधर्म्यता मिली. पासफिक समुद्रमें पहेले महाद्वीप था अब कहीं कहीं टापु रह गये. निदान इस द्रश्य प्रकारसेभी विकासवादको सहायता मिलती हे.

संततिमें पूर्वके गुण केसे आते हें ओर प्राणिओंमें जुदाजुदा भेद क्यों होते हें, इस विषयमें मतभेद हे–(१)[१] कई परिस्थितिजन्य विकार, (२) कोई शारीरिक कार्यजन्य परिवर्तन, (३) ओर कोई प्रकृतिका चुनाव तथा पैत्रिक ओर अनुवंशक विकार संतितीमें उतरना मानते हें; यही भेद पडनेका कारण हे. परंतु परिवर्तन स्वाभाविक हे, एसा सब मानते हें.

प्राकृतचुनाव—जो प्राणी अपनेको परिस्थितिके अनुकूल न बनावे तो वोह अवश्य नाश होजायगा[२], यह नियम हे. कोई प्राणी स्वतंत्र नहीं हे, उसका जीवन अन्यप्रकारके जीवनके साथ बंधा हुवा हे. जीवनसंग्राममें उसको जय संपादन करना चाहिये, या तो परके शरण होना पडेगा, यही उसका नाश हे. यह नियम व्यष्टि-समष्टि, उभय प्रसंगमे लगता हे. दया, क्षमा वगेरे, पाये विनाकी बातें हें.

चुनावके ५ तत्व हें–(१) परिवर्तनकी विद्यमानता, (२) स्वाभाविक उत्पत्तिकी अधिकता, (३) इसलिये अर्थसंग्राम (क्योंकि उत्पत्तिके परिमाणमें कुदरत विषे खूराक नहीं हे), (४) संग्राममें अयोग्यका नाश ओर योग्यका रक्षण, (५) रक्षित हुयेके संतानोंमें उन विशेषताओंका अवतरण.

(१) मूलीगाजरके यदि ऋतु प्रति २ बीज हों ओर प्रतिबंध न हो तो २० वर्षमें दस लाख बीज होजावें. (२) चिडिया, फी ऋतु ४ बालक जन्मावे तो १५ वर्षमें १ चिडियाके दो अर्बुदसे अधिक संतान हों. (३) मनुष्यके पेटमें अमुक एक कीडा रहे तो ३० किरोड अंडे देता हे. (४) बाजे जानवर २४ घंटेमें १ किरोड साठ लाख अंडे देते हें. (५) स्ट्रेलियामें योरोपीयन नहीं गये उस पहेले वहां शशक जानवर नहीं थे; यह लेगये. थोडी मुद्दतमें (२० वर्षमें) ही इतने हो

[१] १ बफनादि (सूर्य तप्त गर्म देशवासी संतानका रंग कालाही). २ लामार्कादि (परंतु कर्णभेदन, सुन्नत, चीनी स्त्रीके पांव लघु करना, एसीएसी शारीरिक कृति संतानमें नहीं आती). ३ डारवनश्रीका मत. [२]जबके सब स्वाभाविक होता हे तो फेर परिस्थितिके अनुकूल अपनेको बनाना इसका अर्थ क्या? कपोल कल्पना.

गये कि उनके नाश करनेके लिये २५ किरोड रुपैका खर्च करना पडा; क्योंकि उनसे प्रजाको हानी होतीथी. (६) हाथीकी उमर १०० सालकी हे. ३० वर्षकी उमर पीछे संतान पेदा करता हे. अब जो ९० वर्ष तक संतान पेदा हो तो ९० वर्षमें १ किरोड ९० लाख होजायँ, २०० वर्षमें भूमीपर अन्य प्राणीको जघे न मिले. (७) कोई बेमारी वगेरे कारण न हो तो २५ वर्षमें मनुष्यकी आबादी दुगुणी होजाती हे.[1] (८) बाजी मछली, एक ऋतुमें १ किरोड ५० लाख अंडे देती हे. (९) १ टीडी १ ऋतुमें १०० अंडे देती हे. (११) इत्यादि ॥ परंतु कुदरतमें उत्पाति अनुसार वृद्धि नहीं होने पाती.—सब नहीं जीते; क्योंकि कुदरतमें उतनी खूराक नहीं हे; कोई बीज निर्बल, अतःनाश होजाता हे; कोईको जानवर खाजाता हे, कोईको प्रतिपक्षी मारे, कोई रोगमें मरजाय, कोई उत्पत्ति वृद्धिका स्थान न लेसके, कितनेक हवा, वर्षा, गरमी, सरदी, भूकंप, दरिया, अग्नि इत्यादि कारणसे नाशको प्राप्त होते हें ओर कितनेक जीवनसंग्राममें नष्ट होजाते हें; जैसेके चींटिओंमें पेटके वास्ते याने जीवनसंग्राममें किरोडों चींटी मरजाती हें.

हरकोई प्राणी (तिर्यक, पशु, पक्षी, मनुष्य)की ३ प्रकारसे रक्षा होती आरही हे, ओर होती हे. याने—(१) अपने भाइओंसे स्पृधा करना[2]. (२) परके (प्रतिपक्षीके) साथ मुकाबला करना[3]. (३) परिस्थिति (सरदी, गरमी, वर्षा, तूफान ओर निर्जिव)के अनुकूल अपनेको बनाना.

जीवनरक्षाके वास्ते वनस्पति ओर जानवरोंका कोई न कोई घटना द्वारा हरण होता हे. यथा रेड इंडीयन नामकी अमेरीकामें जो जाती थी वोह बलवान योरोपीयनोंके द्वारा नष्ट हुई. सारांश प्रकृतिका नियम हे कि जीवनार्थ संग्राम करना पडे. इससे स्पष्ट होगया कि वोह जाती नहीं जीसकती के जो अयोग्य (निर्बल) हो ओर जीवती जातीका मुकाबला न करसके. माइटइजराइटका यही अवतरण हे वा विवेचन हे.[4]

---

[1]हिंदमें सं. १९१४ में १७ किरोड आदमी थे. १९६७ में ३४ किरोड होगये. [2]धंधा (खेती, व्यापार, नोकरी, हुनर, कला, डाकटरी, तनबल, मनबल, वगेरे) बधाना. [3]इनमें प्रतिपक्षीको हराना, हटाना वा उसका नाश करना. [4]अयोग्य व्यक्ति (वृक्ष, वनस्पति, पशु, पक्षी वा मनुष्य) वा समष्टिका नाश होना वा करनाही चाहिये; क्योंकि उस व्यक्ति वा जातिके जीवन रहनेसे योग्यता, वृद्धि ओर सोसाइटीका नाश होता हे; यह योरोपके मुख्य विकासवादियोंका

दया, स्नेह, प्रेम, स्वार्थ, त्याग ओर आत्मसमर्पण इत्यादि गुण मनुष्य जातीमें पेदा होगये हें, इसलिये इसमें पशुवत् व्यवहार वा पशुवत् जीवनसंग्राम नहीं रहा हे.

एकसे अधिक संतान वा बीजकी उत्पत्तिमें हेतु यह हे कि निर्बलका नाश हो तोभी जाती चलती रहे.

मानवजाति.–

मनुष्यजातिभी आरंभसे नहीं हे, किंतु विकास क्रमद्वारा स्तनधारी, चोपदेका परिवर्तन हे; क्योंकिं इसके शरीरकी रचना उन (पृष्टवंश स्तनधारी) जैसी हे. अन्यके शरीरों समान इसके शरीरका हरेक अवयव असंख्य कोष्टोंके समूहसे बना हुवा हे. ओर हरएक कोष्टमें उक्त प्रोटोपलाजम हे. मनुष्य प्राणीका समावेश वानर (वनमाणसादि) कक्षामें होता हे. विचारो–वनमानसमें ८ आठ विशेषता हें—

(१) नाल. (२) अंगुठा घूमना. (३) हाथ, पांवसे लेना. (४) दूधके दांत टूटना. (५) नियत दांत होना. (६) पंजेके नख. (७) हंसली द्रढ. (८) दो स्तन. ॥ मनुष्यमेंभी यह ८ हें; इसलिये साद्दश्यता हे. मनुष्यका उत्तम अंश–(१) सीधे खडे होके चलना. (२) मगजका विकास. (३) वाणीसे बोलनेकी शक्ति. (४) विचार करनेकी शक्ति. नं. १, २ सब बंदरोंमें हें; केवल इतना फरक हे के मगजका विकास कम हे; इसलिये अन्य २, थोडे रुपमें हें. (१) गिबन बंदर (मलाका, स्याम निवासी) सीधा चलता हे, मांस भक्षक हे, बच्चोंको धोके साफ रखता हे, विवेक ओर विचारशक्ति रखता हे; उसके अनेक दाखले हें. (२) ओरांगचंपाजी बंदर (एफरीका निवासी) में गंजचंपाजी ५ फुट लंबा, बिलकुल मनुष्य जैसा. (३) गोरीला बंदर (अफरीका निवासी) बलवान, वर्तमान मनुष्यकी उत्पाति इससे मिलती हे. (४) वनमाणस. सीधे खडे होके चलना, मनुष्यके मगजके समान मगज, उसकी बनावट समान, हाथ पांव समान ओर रचना समान हे. मगजका विकास ओर मगजकीशक्ति तथा लंबाई मनुष्यकी ज्यादा हे, इतना भेद हे. बंदर, मस्तककी चमडी ओर कान हला सकता हे, मनुष्यको जरुरत न रहनेसे उसको वेसा अभ्यास नहीं रहा; इसलिये नहीं हलासकता (तथापि

सिद्धांत हे. इसीवास्ते संतानोंकी वृद्धि करना ओर उनको योग्य बनाना चाहिये. योरोपका कैसरीजंग इस सिद्धांतका नमूना हे. हिंदी प्रजा तो दयालु, साधु हे उसको यह सिद्धांत केसे ठीक जानपडे. कभी नहीं.

कोई कोई एसे मनुष्य हें के दोनों काम करते हें). गर्भमें मनुष्यके बाल, वनमानसके समान तमाम शरीरपर होते हें ओर पूंछका निशानभी होता हे. बाजे बालक पूंछवाले पेदा हुये, उनका इतिहास हे (विकासवाद पृष्ट २४५ देखो); इसलिये वनमानसका परिवर्तन मनुष्य हे. स्तनधारी ओर मनुष्यके गर्भका परिवर्तन समान हे. पहेले मछली जैसा, पीछे गलफडे, फेर मींडक जैसा, फेर सर्प जैसा, फेर पक्षीकी अवस्था, फेर कमदरजेके मनुष्य[1] जैसा, उस पीछे गर्भसे निकलनेके थोडे पहले मनुष्यरुप होता हे.--इसप्रकारका इतिहास हे. जिसने अनेक गर्भोंकी परीक्षा की हो वही इस इतिहासकेलिये हां करता हे, जैसे कि विज्ञानवादियोंने परीक्षा करके सिद्ध किया हे कि हरेक प्राणीके गर्भमें प्रथम एमीबा (एक कोष्टक), उस पीछे मछली वगेरेकारुप होता हे--अर्थात अपने पूर्वजोंके रुपका संक्षेपमें अनुकरण होता हे. यद्यपि बंदर (वनमाणस) ओर मनुष्यकी दरमियानी कडीका[2] लोप होगया हे तथापि गर्भशास्त्रसे इस संकलनाकी जान (अनुमान रुपसे) होजाती हे. सातवें महीनेमें मनुष्यका मगज वबूनबंदरके समान होजाता हे. नीचेकी चट्टानोंमें अन्य जानवरोंकी खोपरियें मिलती हें, मनुष्यकी नहीं; इसलिये मनुष्य पीछे हुवा हे, एसा स्पष्ट होता हे. तीसरी चट्टानमें मनुष्यकी खोपरियें मिलती हें. खुजली, दाद वगेरे रोगके जंतु, मनुष्य ओर पशुओंमें हें, उनके इलाजकी रीति ओर दवा समान हें यथा टीका वगेरे. इत्यादि शोधसे सिद्ध होता हे के मनुष्य, वनमाणस-बंदरका[3] परिवर्तन हे. बर्मनमें एक स्त्रीके १० स्तन थे. यदि मनुष्य खास बीजसे होता तो एसा न होता.

मनुष्य जाति प्रथम कोन देशमें उद्भवी; इसमें मतभेद हे--(१) कोई शोधक एशिया (२) कोई एशिया अफ्रीकाके मध्य जावाके समीप (३) ओर कोई अफेरीकामें होनेका अनुमान करता हे. अफेरीकामें उद्भवी ओर वहांसे पीछे दूसरी जघे गई, यह मत बहुतोंका हे.

---

[1] बंदर वा वनमानस जैसा. [2] रामचंद्रके समय बाली, सुग्रीव, हनुमान, जामवंत-यह पूंछवाले बंदर, रींछ, मनुष्य जैसे हुये एसा ग्रंथोंमें वांचते हें. संभव हे कि उस प्रकारकी बंदर जाति नष्ट होगई हो; क्योंकि लाखों वर्ष होगये हें. [3] वन (जंगल) नर (मनुष्य) अर्थात जंगल निवासी, जंगली मनुष्यका परिवर्तनरुप वर्तमान सभ्य मनुष्य हे. बंदर यह वानरका अपभ्रंश हे.

अन्य प्राणियोंके समान विकासकी शंखलामें मनुष्यभी बद्ध हे. जीवन संग्राममभी इनमें होता हे. भूख, रोग ओर लडाईसेभी मरते हैं. योग्यही चुने जाते हैं. मनुष्यके मस्तककी उन्नति होने लगी तो उत्तम कहाया. तन, धन ओर यंत्रका बल पेदा किया. धीरे धीरे उसे अग्नि, जल, भोजनके पदार्थोंका ओर आच्छादनके वस्त्रोंका ज्ञान पेदा हुवा. पत्थर फेंकना, निशाना लगाना, पत्थरोंके शस्त्रादि बनाना, वस्त्र बनाना इत्यादि प्रारंभिक कार्योंके पश्चात शनै शनै मकान बनाने, बीज बोके खेती करनेका ज्ञान प्राप्त हुवा. तब अन्योंसे सभ्य परिणित हुवा. पीछे अंग विक्षेप [चेष्टा] फिर चित्रमय संकेत ओर पश्चात अक्षरमय चिन्होंसे अपने मनोभाव बतानेकी शैली ढूंढ निकाली. विचारशक्ति बढनेसे अनेक साधन एकत्र हुये. [सोलसादिका मत हे कि] मनुष्यको प्रादुर्भाव हुये लगभग आठलाख बीस हजार वर्ष हुये होंगे. डारवनश्रीने बंदरोंके मनुष्यवत् व्यापार, उसपीछे परिस्थितिसे कूदना फांदना मिटना, पूंछ न रहना, मनुष्यरुपमें सब प्रकारकी उन्नतिका क्रम वर्णन किया हे उसका संक्षेपमें तरजुमा गुजराती भाषाके मुक्तिशास्त्र ग्रंथ पेज ११२ तकमें लिखा हे.

ईश्वरने मनुष्यको शक्ति दी हे, एसा नहीं मानसकते; क्योंकि शक्ति अन्य सब प्राणिओंमेंभी हे. यहां प्रथममें मानसिकशक्ति केसे हुई, यह चेतनोत्पत्ति समान कठिनप्रश्न हे. मनुष्यके समान इंद्रिय, इच्छा, भाव, सुख, दुःख, शोक, संशय, मत्सर, बदला लेनेकी बुद्धि, आश्चर्य, जिज्ञासा, कृतघ्नता, हंसी, ठठ्ठा. नकल उतारना, एकाग्रता, स्मृति, कुछ कल्पनाशक्ति, कार्यकारणके विचारकी शक्ति, इत्यादि बातें कमज्यादा सब प्राणिओंमें हैं. मछली, चूहा, कुत्ता, घोडा, रींछ, हाथी, बंदर, सुघरी (वैया) इनके कामोंकी परीक्षा ओर कहानी प्रसिद्ध हैं. हां, मनुष्यके मगजका विकास अन्योंसे ज्यादे होरहा हे, इसलिये उसमें कल्पनाशक्ति ओर कारणकार्यके विचारकी शक्ति अन्योंसे विशेष हे. संचे करना, वश करना, द्रव्य संग्रह, अग्नि हवासे काम लेना, भाषा, शोभा, अनुभव, ईश्वर तत्वबोध, सदसद्के भेदका ज्ञान; यह सब उक्त दोनों शक्तिका परिणाम हे.

प्रचूर्ण.—

(१) किसी वैज्ञानिकका मत हे के ३ लाख २० हजार प्रकारकी वनस्पति, हरेक जवे ओर २० लक्ष दूसरी हैं तथा जंतु ९ किरोड प्रकारके जाने गये हैं. यह सब एक मूलसे विकासमें आये हैं.

(२) प्राणीमात्र आरंभमें वर्तमानकी आकृति समान जुदाजुदा नहीं थे परंतु पूर्वमें एक अथवा कितनेक बीज थे उनसे रुपांतर होके उन्नतिमें आये हें. यथा—पक्षी वगेरेके अंडेमें सब अवयव ओर फेर बाहिरमें जुदा रुपसे होना प्रसिद्ध हे. (एक पक्ष).

(३) बीज नहीं मरता, परंतु उसका पड—कोश—ढंकना नाशवान हे बीज उसको छोडके अन्यकोष्टमें जाता हे. बीजका अकस्मात मरण कभी होजाता हे [एकपक्ष].

(४) पिता, पुत्र रुपमें जन्म लेता हे (एक पक्ष).

(५) पहेले वनस्पति, पीछे जंतु, पीछे मनुष्य एसे विकास हुवा हे [हर्बर्ट स्पेंसर]. इनमें कोई जातीके बीज प्रथमके हें वे नाश नहीं होते. उनमें फेरफार होता हे. यथा—कुत्तेके गुणोंमें अंतर हो परंतु जातीमें नहीं [एक पक्ष].

(६) विकासवादियोंमें मि. डारवन साहेब साफ शब्दोंमें एसा नहीं कहते कि बंदरसे मनुष्य पेदा हुवा, किंतु जातिका परंपरासे संबंध होना चाहिये; ओर जो एसा हो तो बंदर ओर मनुष्यके मध्यकी कडी गुम होजानी चाहिये; तथापि साक्षात वा परंपरासे बंदरोंमेंसे मनुष्य हुवा हे, एसा उनका आशय हे. वर्तमानके बंदर मनुष्यके पिता, एसा उन्होंने कहीं नहीं लिखा.

(७) मनुष्य असलमें जेरज नहीं किंतु अंडज हे. पुरुष संगसे अंडेका संचार होता हे, फेर जेरजकारुप होता हे.

(८) बाजे मनुष्यमें पुरुषत्व होता हे परंतु उत्पादक शक्ति नहीं होती. क्योंकि उसमें " स्पामेंटोजीन " जंतु नहीं होते. यह [स्पा.] जीव सूक्ष्मयंत्रद्वारा जान पडते हें, वीर्यके दसवें भागमें आसरे नो ९ भागमें मजकूर स्पा. जीव होते हें. उन हरेक जंतुके मस्तक, बीचका ओर पूंछ यह ३ भाग होते हें. पूंछ हलतीभी जान पडती हे. उस जीवमें गति, खारका भाग मिलनेसे होती हे ओर खटाससे बंद पडजाती हे. यह जीव यदि पुरुषके वीर्यमेंसे लेके स्त्रीके अंडमें डाला जाय तो गर्भ रहसकता हे. नित्य संसर्ग करनेवालेके वीर्यमें यह जीव एकहीवार नहीं जान पडते. ८६ वर्षकी उमर पीछे यह जीव धातुमें पेदा नहीं होते. गर्भमें नरमादा क्योंकर होते हें, यह अभीतक निश्चय नहीं हे; इसमें मतभेद हे.

(९) नगरवासिओंकी आयुष्य सरासरी ३८ ओर ग्रामियोंकी ५५ सालकी होती हे.

(१०) हवामें परमाणु तिरते हैं उससे आकाश नीला जान पडता हे. दूसरा पक्ष यह कहता हे के ईथरकी मंदगतिके कारण नीला रंग जान पडता हे.

(११) कमलकी जो बास सो बाहिरके पदार्थमें नहीं किंतु मानसिक अनुभूति मात्र हे [याने मगजकी कंडीशन–इम्प्रेशन हे]. जो बाहिरका गुण होता तो कांटा लगनेसे जो दर्द हुवा हो सो क्या कांटेका गुण हे? नहीं. किंतु यह चमडीकी अनुभूती हे. इसीप्रकार स्वाद वगेरे वास्ते जानो.

आश्चर्य.—

(१) कोई कोई जानवर–जंतु–एसे होते हें कि कितनाभी गरम पानी करो वे नहीं मरते. समंदर नामका कीडा आगमें रहता हे. (२) कोई जंतुमें पुरुष-स्त्रीके दोनों अंग होते हें [यथा–कोई कोई मधुमाखी]. (३) कोई प्राणीके गांठ होती हे वे खिरनेसे वंसकी वृद्धि [जीव होना] होती हे. (४) वनस्पतियोंमें नरमादा होते हें उनमें भेद होता हे. (५) कोई फूलमें नरमादा दोनों अंग होते हें. (६) कोई जीव एसे होते हें कि जब वे उमरमें आवें तब उनके जुदा जुदा टुकडे होके जुदा जुदा जीव होते हें. (७) वर्मनमें एक स्त्रीके उपर नीचे १४, जापानकी १ स्त्रीके ६, पोलेंडकी एक स्त्रीके १० स्तन देखे गये. (८) कोई बकरेके नर (जनिनालय) ओर मादा (२ स्तन, आलयके इधर उधर) के चिन्ह. (९) समुद्रमें कालुमछली मीठी ओर बाहिर निकालो तो खारी. (१०) अमुक मछलीको नमक ज्ञात होनेपर फेर न आवे. (११) काग वगेरे पक्षी खूराकसे हिल जाते हें. (१२) कीडी अपने घर ढूंढके चली आती हे. (१३) कीडिओंके कबरस्तान होते हें, ओर भिन्न भिन्न कामके जुदा जुदा स्थान होते हें, इनमें क्षत्री (लडवैया), वैश्य (पदार्थ संग्रही) ओर शुद्र (सेवक), एसे विभाग होते हें. इनमें मिसतरी–इनजीनीयर–कारीगरभी होते हें. (१४) मधु माखियोंमें राणी, सेवक, उनके प्रबंध, जुदा जुदा काम, तीन तीन मील रस लेने जावें ओर अपने घर आवें, भूरे सुंदर अथवा हरे रंगपर राग, हिलनेपर मनुष्यके हाथपर खावें;

९, १० **विवेचना शक्ति**=अच्छी उम्मेदपर व्यवस्थामें न्यूनाधिक करना-यह शक्ति मनुष्यमेंही नहीं, किंतु अन्य प्राणिओंमेंभी हे. इसके अनेक उदाहरण हें. यथा कालुमछली बाहिर आनेपर अंदरका रस उगाल डालती हे, ताके उसे न मार डालें. नं. ८ बहावलपुरमें देखा, उसका दूध चाखा, खारीथा. नं. १९ सिद्धपुर पाटनमें एक भारती बाबाके घरमें देखी.

बेमार माखीकी अन्य माखी चाकरी करें. (१५) बंदरोंका बुद्धि कौशल प्रसिद्ध हे. अपने शरीरोंका पुल बांधके नदी उतरे हें. (१६) हाथी, कुत्ता ओर सुघरी (वैया) की चतुराई जगत् प्रसिद्ध हे. तद्वत् अश्वकी. (१७) कबूतरोंद्वारा पत्र देना लेना, कबूतरको कोई पकडे तो कागज निगल जाना. (१८) कुत्ते ओर बंदरोंने अपने मालिकके खूनका पता बताया हे. (१९) पली हुई बिल्ली, पाले हुये तोतेकी रक्षा करती हे ओर चूहीको दांतसे पकडके बिलमें करदेती हे. मारती वा खाती नहीं हे. (२०) पानीका कोई एसा जीव होता हे कि उसके जितने टुकडे करो उतनेही जंतु जुदा जुदा होजाते हें. इन उदाहरणोंके लिखेनेसे यह आशय हे कि शोधकको शक्तिओंका भान हो.

अब आगे विकासवादके अध्यारोपमें जितना अंश अपवादके योग्य जाननेमें आया सो लिखते हें.—[१]

अचिद्विकासवादका अपवाद.—

रवीसे स्वतः विकास नहीं ॥ ३७१ ॥ परतंत्र होनेसे ॥३७२॥ एकसे परिवर्तन नहीं ॥ ३७३ ॥ कोशोत्पत्तिकी अनेक देशमें संभावना होनेसे ॥ ३७४ ॥ चेतन जडज नहीं ॥ ३७५ ॥ विरोध होनेसे ॥ ३७६ ॥ ओर असिद्धिसे ॥ ३७७ ॥ जात्यादि संदिग्ध ॥ ३७८ ॥ हिमप्रलयादिकी आपत्तिसे ॥ ३७९ ॥ बीजके आरंभमें अगम्यशक्तिकी अपेक्षा ॥ ३८० ॥ प्रवाह भ्रमवमें उसके संबंधकी ॥ ३८१ ॥ केवल जडमें उत्पादकवर्धक शक्तिका अभाव होनेसे ॥ ३८२ ॥ बीजोंका समानत्व असिद्ध ॥ ३८३ ॥ परिस्थिति ओर संस्कारके स्वीकारसे ॥ ३८४ ॥ पुरुषत्व स्त्रित्वके भेदसे ॥ ३८५ ॥ ओर अबुद्धा बुद्धा गतिमें अंतर होनेसे ॥ ३८६ ॥ प्रावाहिक अनादि संस्कारी चिद्विशिष्टमनसे बुद्धा ॥ ३८७ ॥ उसके विकास समान विकास होनेमें अनाग्रह ॥ ३८८ ॥ केवल शक्तिवाद नहीं ॥ ३८९ ॥

---

[१] में एसा धारताहुं कि नवीन जडविकासवादियोंको अभाववाद (ईश्वरने अभावमेंसे जीव ओर जगत बनाया) के साथ विशेष परिचय हे, द्वैतवाद (ईश्वर जीव, प्रकृति, अनादि वा जडचेतन अनादि) के साथ परिचय नहीं हे. जो पूर्ण रुपमें होता तो विकासवादको भली प्रकार सिद्ध ओर स्पष्ट करदेते. अभाववादने उनकी आस्तामें चेतनवाद नहीं रहने दिया; इसलिये अपवादकी आपत्ति हुई हे.

योग्यता संस्कार निष्फल होजानेसे ॥ ३९० ॥ ओर शांतिवाद इष्ट होनेसे-इति ॥ ३९१ ॥

अर्थ—सूर्यमेंसे स्वतः पृथ्वीका निकाल हुवा हो एसा सिद्ध नहीं होता ॥ ३७१ ॥ क्योंकि सूर्य मध्यम, परिच्छिन्न होनेसे परतंत्र, पराश्रित हे ॥ ३७२ ॥ एक प्रोटोपलाजिम-चेतनरसके परिवर्तनसे सब प्राणिओंका होना नहीं मानाजासकता ॥ ३७३ ॥ क्योंकि कोश याने प्रोटोपलाजिम वर्तमान विषे अनेक देशोंमें होते हें वेसे पूर्वमेंभी देशप्रति जुदाजुदा असंख्य हुये हों, एसी संभावना हे; अतः दृश्य प्राणिका एक पूर्वज नहीं ॥३७४॥ स्वयं हलने न हलनेमें जो असमर्थ अर्थात जड उससे स्वयं हलने, ठेरनेमें जो समर्थ अर्थात चेतनत्वकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती ॥३७५॥ क्योंकि उभयका विरोध हे अर्थात जो जड सो चेतन ओर जो चेतन सो जड नहीं होता किंतु उपादान, उपादेय समान होते हें अर्थात उपादान जड तो उपादेयभी जड ओर उपादान चेतन तो उपादेयभी चेतन हो, एसा सिद्ध नियम हे ॥३७६॥ ओरभी जो जड मिश्रणसे नवीन चेतन हुवा मानें तो अभावसे भावरुपकी उत्पत्ति मान्नी पडती हे. परंतु अभावसे भावरुपकी उत्पत्ति नहीं होती. ओर चेतन, जडका द्रष्टा होता हे, दृश्य नहीं होता. इत्यादि हेतुओंसे जडसे चेतनकी उत्पत्ति असिद्ध हे ॥३७७॥ उपरोक्त जात्यादि पंचशास्त्र संशयात्मकही रहते हें ॥३७८॥ कारणके बरफकी प्रलय, जलकी प्रलय, भूकंपकी प्रलय इत्यादि प्रलय होती रहनेसे पांचों शास्त्र पूर्ण नहीं मिलते. अर्थात मूलसे जातियें नष्ट होगई, प्राणिओंके शरीरोंमें फेरफार होगया, गर्भ प्रकरण बदल गया, चट्टानें कट गई ओर धस गई, वर्त्तमानका संबंधी इतिहास वा सादृश्यताका इतिहास नहीं मिलसकता. इसप्रकार हिमप्रलयादिसे पूर्वोक्त शास्त्र सर्वांशमें आधार योग्य न रहे अर्थात विकासवादके सिद्ध करनेमें वे पूर्ण नहीं हें ॥३७९॥ जड हो ओर स्वयं गति करे, अपने समान दूसरेको बनाले, ओर स्वयं उत्पादक ओर वर्धक होसके एसे पहेल पहेलेवाले बीज बन्ने-योजानेमें किसी अगम्य अचिंत्य शक्तिकी अपेक्षा हे ॥ ३८० ॥ ओर यदि एसी शक्तिवाला बीज प्रवाहसे अनादि हे, एसा मानें तो उस चेतन शक्तिके तादाम्यत्वकी अपेक्षा हे ॥ ३८१ ॥ कारणके पूर्वोक्त स्वयंगति, उत्पत्ति, वृद्धिकी शक्तियें जडमें नहीं देखते ॥ ३८२ ॥ अनेक मूल बीज (प्रोट० सेल्स) ओर तद्‌जन्य गर्भोंमें होनेवाले बीजोंका समानत्व सिद्ध नहीं होता अर्थात सब समान प्रोटो.—समान सेल्सवाले हें, एसा समीचन नहीं जान पडता ॥ ३८३ ॥ कारणकि विकासवादमें परिस्थिति ओर

पैत्रिक संस्कारसे परिवर्तन होना माना हे अर्थात उभयकारणसे बीजोंमें अंतर-भेद होजाना चाहिये ॥ ३८४॥ तथा पुरुषत्व, स्त्रीत्वका भेद होनाभी मूल बीजोंकी असमानता सूचता हे ॥३८५॥ तथा बुद्धि रहित ओर बुद्धिवाली गतिमें अंतर होता हे. प्रोट० सेल्स ओर एमीबामें वायु वत् अबुद्धा गति होती हो तो हो, परंतु बुद्धा नहीं मानीजासकती; क्योंकि वे जड हें. परंतु व्यवहारमें तो उनमें वा तमाम छोटे जंतुओंमेंभी बुद्धागति देखते हें, अतःबीजोंमें समानत्व सिद्ध नहीं होता ॥३८६॥

जोकि एमीबासे लेके मनुष्य, हाथी तकमें कोई न कोई घटनासे बुद्धागति होती हे याने कुछ न कुछ विलपावर (इच्छाशक्ति) होती हे, इससे एसा जानपडता हे कि प्रो. वगेरेमें कोई अन्य अदृश्य वस्तु हे, वोह अनादि प्रवाहसे विकास, अविकासमें आता रहनेवाला ओर अनेक संस्कारवाला **मनस** नामका पदार्थ हो, उसमें दूसरी याने सबुद्ध गति हो ॥ ३८७ ॥ ओर उसके विकास क्रमके समान प्रस्तुत विकास होता हो अर्थात उसके संस्कारके अनुसार प्रोटोपलाजिम अनेक (असंख्य) नाना प्रकारके सेल्स बनके उपयोग होता हो. एसा होता हो तो विकासवादके न मान्नेमें कोई आग्रह नहीं हे (अर्थात मनसमें उक्त योग्यता संपादन होनेकी संभावना हे किंतु परिक्षासे सिद्ध होने योग्य हे ओर यह योग्यतायें चेतनशक्तिके[1] तादात्म्य तथा अनादि प्रवाहके अभ्याससे उसमें हों.) ॥ ३८८ ॥ हमेशे केवल शक्तिवाद (बलवानके दो भाग) मान्य नहीं होसकता ॥ ३८९ ॥ कारणके जो सर्वथा शक्तिवादही रहे तो मनुष्य मंडलमें जो उच्च गुण, उच्च संस्कार पाये जाते हैं वे निष्फल होजायँगे ॥३९०॥ यथा सृष्टिमें जीनेका सबको हक हे, इसलिये दूसरेके हकका भंग न करें, क्योंकि हमारे दुख-सुख समान अन्यकाभी हे. दया, न्याय, नीति, आत्मभोग, परसेवा, सुधारना—इत्यादि उच्च गुण हें ओर मनुष्यमें इनके वर्तनेकी ओर स्वपर उपकार तथा सुख पूर्वक जीवन करने, करानेकी योग्यता हे, तथा उच्च संस्कार हें. अब केवल शक्तिवाद (पशुवृति) मानें तो यह गुण निष्फल होजायँगे परंतु संसारमें निष्फल कुछभी नहीं हे; अतः हमेशे सर्वदा शक्तिवाद (तनजोरी-माइटइजराइट) का बल होना नहीं मानसकते ॥३९०॥ तथाहि मनुष्यकी वृतिका इष्ट, सुख शांति हे, इसलियेभी सर्वदा शक्तिवादको अवसर नहीं हे ॥ ३९१ ॥ मनुष्यको आपतकालमेंही युद्ध सूझता हे. ओर सुख यह

---

[1] चेतन यदि तत्वरुप हो तो उसमें वा, उसका विकास नहीं होसकता. किंतु सावयव, कंपोंडकाही होसकता हे.

न्याय, नीति, सदाचार, संप तथा प्रेमादादिके विना नहीं होता; इसलिये जीवन संग्राममें हमेशे शक्तिवाद नहीं चलसकता; कारणके समूहमें शक्तिवान एकही होसकता हे, हरेक व्यक्ति नहीं होसकती. सार यह आयाके सोसाइटीमें बहु (समूह) पक्षकी जय होती हे ओर बहुका (समूहका) पक्ष न्याय, नीति, इत्यादि हें। इति पद प्रसंग समाप्तिका सूचक हे ॥ ३९१ ॥

विवेचन.—

जडविकासवादका अपवाद.—

उपरोक्त विकासवादमें जो प्रमाण लिखे हें. ओर जिस प्रकारकी परीक्षा लिखि हें यदि वे सत्य हें[1] ओर संप्रदायोंके शब्दप्रमाण जैसे गडबडिये नहीं हें तो हमको प्रथम विकासवादके शोधकों ओर प्रचारकोंको धन्यवाद देना चाहिये; क्योंकि उन्होंने ओर भूस्तरविद्यावालोंने अपनी शक्तिसे अधिक पुरुषार्थ करदिखाया हे ओर मनुष्य जातिको एक प्रकारका मार्ग सूझाया हे, इसलिये हम उनकी प्रसंशाकिये विना ओर उनको धन्यवाद दिये विना नहीं रहसकते. (शं.) यदि विकासवाद सत्य हे तो क्या मनुष्य, बंदरकी संतान हे, एसा मानलेवें (उ.) मनुष्य यदि अपने मेटर, संसर्ग स्थान ओर उत्पत्तिस्थानसे नहीं शर्माता तो क्या बंदरसे उत्पत्ति मान्नेमें उसको हीणता प्राप्त होजायगी? मच्छ, कच्छ, वराह, गज, गरुड, सर्प, जिनके पुज्य हें वे तो कभीभी हीनता नहीं मानसकते. क्या बंदर योनीमें आनेसे पुनर्जन्मवादी इनकार करसकता हे? कभी नहीं.[2] (शं) मनुष्य, ईश्वरने बनाये यह पवित्र ग्रंथोंका कथन क्या गलत हे? (उ.) इसकी चिंता नहीं करनी चाहिये किंतु जो घटना सत्य मालूम हो उसकी तरफ ध्यान देना उचित हे; क्योंकि विशवास ओर प्रत्यक्षमें अंतरभी होता हे. कितनोंकके पवित्र ग्रंथ ईश्वर हे, एसा नहीं कहते किंतु ७२ किरोड मनुष्य तो ईश्वरके अस्तित्वको नहीं स्वीकारते. (शं.) यदि विकासवाद मानाजाय तो ईश्वर, पुनर्जन्म असिद्ध रहेगा ओर कर्मवादका उच्छेद होजायगा. अर्थात क्या दूसरे शास्त्र गलत ठेरेंगे? (उ.) इसकाभी फिकर न करना चाहिये किंतु सत्य शोधक रहना चाहिये, कारणके इस विष-

[1] उक्त पांचों शास्त्र अर्थात जडविकासवाद, इसग्रंथका विषय नहीं हे किंतु अवतरन हे; इसलिये एसा लिखा हे.

[2] ईश्वर, पुनर्जन्म माने न मान्नेसे इष्ट सिद्धि नहीं होती किंतु उत्तम 'सदाचार—विचार—उच्चार'ही इष्ट सिद्धि (उन्नति—सुख—प्रेयस्—श्रेयस्) के हेतु हें.

र्यमें विकासवाद दुराग्रह नहीं करता ओर न इन मंतव्योंका निषेध करता हे.[१] (शं.) यदि विकासवाद मानलेनेमें आवे तो जीवात्मा, शरीरसे भिन्न नहीं ठेरनेसे तमाम धर्ममत पथोंको आकाशमें उडादेना पडेगा. (उ.) विकासवादी इसका निषेध नहीं करते, किंतु वोह स्वयं कहते हैं कि चेतनात्माको हम नहीं जानते ओर न यह हमारा विषय हे. परंतु शोक हे कि आप शोधक नहीं बन्ना चाहते, स्वमंतव्यका निषेध होना मानके दूसरेको तिरस्कारसे देखना चाहते हो, यह आपकी कमजोरी हे. इसलिये एसा नहीं होना चाहिये. (शं.) आजकल आर्यावर्त्तमें योरोपीयन महाशयश्री डारवन ओर महाशयश्री हर्बर्टस्पेंसरका विकासवाद जघे जघे सुनते हें, अंतमें इन विचारोंका परिणाम खराब निकलेगा; जैसाके वर्तमान विषे योरोपका कैसरीमहाभारत देखते हें. (उ.) बहुधा आद्यसंस्कार (ईम्प्रेशन) प्रवल होते हें, उस अनुसार द्रढभावना होजाती हे. जैसेके सब कोमोंमें देखते हें. यथा—जिसको प्रथम पुराण भावना होगई वोह उससे इतर भावनाको असत्य वा तिरस्कार दृष्टिसे मनमें देखेगा. इसीप्रकार पारसी, याहुदी, रोमन कैथोलिक, हिंदु वगेरेमें देखते हें. इसी तरह वर्तमानमें इंग्रेजीका प्रचार होनेसे विद्यार्थीमंडल अपने नीति, धर्मग्रंथोंके संस्कार नहीं लेते, वा नहीं लेने पाते, वा उनको नहीं सिखाये जाते किंतु कॉलिजोंमें उनको आद्यसंस्कार विकासवादादिके होजाते हें; इस लिये उनको वही सत्यभासता हे[२] दूसरेका सत्य कथनभी ठीक नहीं मालूम होता; किंवा उससे उपेक्षा करलेते हें; इसलिये आप जैसा कहते हो वेसा हो रहा होगा. परंतु यदि वे विचार—शोध-

---

[१] वन (जंगल) नर (मनुष्य)=जंगली माणस. वानरका अपभ्रंश बंदर.

[२] हालांकि योरोपके फिलोसोफर इत्थम (यूं ही हे) भावसे नहीं कहते किंतु " यूं होना चाहिये " " अतःएसा मानसकते हें " " इसलिये एसा क्यों न माना-जाय " " इसवास्ते एसा परिणाम निकलता हे " " जो यह गलत तो वोहभी गलत " " एसा धारसकते हें " " में एसा मानता वा मानसकता हुं " एसे कहते हें तोभी उनके लेखको हम फिक्स—इत्थमेव मानबेठते हें; इसमें उनका क्या दोष. वे तो शुद्ध भावसे अनिश्चित वा संशयबोधक वाक्य लिखते हें, तोभी यह नवीन विद्यार्थी उसको ' इत्थम ' भावसे मानके जघेजघे उसकी साक्षी देते हें, इसलिये अंधपरंपरा चलके वोह मंतव्य इत्थमरुपमें मानलियाजाता हे वा जान पड़ता हे; यही अंधपरंपरा आर्यावर्त्तको खराब कररही हे. ऐसी अंधपरंपराने पंथाइयोंको संकुचित बनाया था ओर बना रही हे.

पर उतरेंगे तो स्पष्ट जानसकेंगे कि विकासवाद न कर्मवादका विरोधि हे न पुनर्जन्मवादका ओर न ईश्वर तथा चेतनात्माकी भावनाका. (शं.) क्या प्राकृत विकासवाद वस्तुतः सत्यही हे? (उ.) विकासवादी स्वयंही एसा नहीं मानते किंतु सादृश्य व्याप्तिसे उनका अनुमान हे. वे पक्षपातको छोडके एसा मानते हें कि जबतक सर्व प्रकारसे उनकी परीक्षा, सायंस ओर सृष्टिनियम नहीं स्वीकारे वहांतक उसको इत्थम भावसे (यूं ही) सत्य नहीं मान्ना चाहिये, किंतु उनको जैसी घटना ज्ञात हुई हे वोह दरसाई हे ओर उस अनुसार भूतकालके (व्यवहार, नीति, राज्य ओर धर्म वगेरेके) विकासकी कल्पना की हे. ओर मानोके जो उनके लिखे अनुसारही हो तो आपको क्यों बुरा मालूम होता हे? आपकी टेव, आपकी रुढी, आपके परंपराके संस्कारका आग्रह नहीं करना चाहिये. असत्य त्याग ओर सत्यके ग्रहणपर उद्यत रहना चाहिये. विकासवादी स्वयं एसा कहते हें " कि दर्शनकार ओर विकासवादीकी दुनिया जुदी हे. वे आईडीयामें ओर यह घटनामें रमते हें. आप जरा तो विचार कीजिये कि वे अपने प्रमाणोंकी अपूर्णता स्वीकारते हें. ओर संख्यामेंभी दसबीसही होंगे. उसपरभी विकासवाद गत विषयमें (बहुतसी बातोंमें) उनके परस्परमें मतभेद हे. जेसेके अगम्य महानशक्ति मान्ना न मान्ना, इसमें मतभेद हे. इ. ओर तदुपरांत उनको संप्रदायोंकी तरह दुराग्रहभी नहीं हे, तो फेर इस थीयरीको कहांतक मान्ना वा कहांतक न मान्ना, इतना तो समझना चाहिये. इसलिये घबराहटको छोड धीरजको धारके सत्यांश ग्रहणमें उद्यत रहना उचित हे.

विकासवादियोंके मंतव्य ओर कथनानुसार विकासवाद यह कार्यवादके अंतरगत हे ओर हेभी एसाही. और तत्त्वदर्शन (इस ग्रंथ) का मुख्य विषय कारणवाद हे; इसलिये विकासवादमें यदि कोई अपवाद हो तोभी उससे उपेक्षा कर्तव्य हे. परंतु कितनेक विकासवादी, चेतनतत्वको जडका परिणाम मानलेते हें, उत्पत्ति वृद्धिकी शक्तिभी उसी परिवर्तनमें कह डालते हें, उसीमें ज्ञान दर्शन शक्तिका होना सिद्ध करते हें, अगम्य महान शक्तिको उडा देते हें ओर जीवात्माको शरीरसे भिन्न कहने वा मान्नेको तैयार नहीं होते, किंतु भिन्न मान्नेमें शर्माते हें; इसलिये इस विकासवादका (अध्यारोप तथा) अपवाद इस ग्रंथमें लिखना पडा हे.

अपवाद.—

उक्त अध्यारोपको ध्यानमें रखके वांचिये.—(रविसे प्रथ्वीका विकास, इसकी चरचा पीछे करेंगे.)

प्रोटोप्लाजिम ओर एमीबा वर्तमानमेंभी गर्भके विना, भिन्न भिन्न देशके जि- लोंमें उत्पन्न नाश होते हें; इस व्याप्तिवश यह नहीं मानाजासकता के आरंभमें एकही प्रो. हुवा, शेष जंतुकी सृष्टि उस एकसे पीछे चली. निदान यदि विकासवा- दका मंतव्य मानलेवें तोभी मनुष्य, बंदर, पक्षी, सर्प, मछली वगेरे जुदा जुदा देशोंमें पेदा होने चाहिये ओर उनका विकास—परिवर्तन उनउनकी परिस्थितिके अनुसार होनाचाहिये. विकासको स्वाभाविक घटना मानें तो फक्त अफ्रीका वा अमुक जघेही होना नहीं मानसकते. ओर जो आरंभमें एकही जघे एकही हुवा, एसा मानें तोभी उसमें अनोखी आश्चार्यकारक (बुद्धि प्रमाणसे सिद्ध न होसके एसी बाबत—यथा अपने जैसा करलेना, उत्पत्ति, वृद्धि), शक्ति पाये जानेसे उसका कोई गुप्त कारण होना चाहिये. यथा धर्मवादी, मनुष्य ओर प्राणियोंके बीज ईश्वरकृत मानते हें. क्योंकि ईश्वर किरोडों प्राणियोंको नित्य घडता रहे, इस वातको बुद्धि नहीं मानसकती ओर न घटित हे. परंतु विकासवाद तो महान शक्तिको बीचमें नहीं लेता, इसलिये स्वाभावतः जुदा जुदा स्थलमें पेदा होना मान्ना पडेगा. यदि यूं हो तो मछली, सर्प, पक्षी, बंदर ओर मनुष्य, परिस्थितिके अनुसार जुदा जुदा प्रकारके होने चाहिये[१] यह स्वाभाविक हे. जो यूं हो तो गर्भका प्रमाण ओर चट्टानोंका प्रमाण सर्वांशमें मान्य नहीं होसकता. बलके मींडक, सर्प, पक्षी, बंदर ओर मनु- ष्यके गर्भका इतिहास जुदा जुदा प्रकारका होना चाहिये; क्योंकि परिस्थितिमें अं- तर हे. परंतु तमाम भूमंडलमें मनुष्यत्व समान देखते हें, इसलिये प्रारंभमें कोई द्वारा मुख्य बीज बना साबित होता हे. तथाहि उसी हेतुसे चट्टानका इतिहास सर्वांशमें नहीं मानसकते, क्योंकि भिन्नभिन्न देशोंमें जुदा जुदा कालमें बंदर, मनु- ष्य हुये हों एसा मान्ना पडेगा. अतः सर्व देशमें अमुकके पीछे अमुक वा सर्व देशके बंदरादिका उत्पत्तिकाल एक, इत्यादि साबित नहीं होसकता. ओर यही कारण हे कि गर्भके इतिहासके पृष्ट ओर चट्टानोंके इतिहासके अध्याय नहीं मिलते; याने विकासवादको उभयशास्त्रसे मिलाना चाहते हें परंतु ठीक ठीक नहीं मिलता; इस लिये पृष्ट ओर अध्यायका गुम होना लिखदिया वा मानलिया. जेसेके धर्म, मत- पंथवाले अपने मंतव्यके विरुद्ध पाके, किसीने क्षेपक मिलादिया हे, अथवा पूरा ग्रंथ नहीं मिलता इत्यादि कहके अपना बचाव करते हें, वेसेही इस प्रसंगमें क्यों

[१] बंदर उडनेवाले, मनुष्य ३ आंखवाले ओर उडनेवाले इ. क्योंकि जरुरत थी ओर दूसरोंको एसी परिस्थिति मिलीभी हे.

न हो अर्थात एसा मानलेना पडता हे. हनुमान, सुग्रीवादि, मनुष्य जैसे बंदर थे किंवा बंदर जैसे मनुष्य थे, रावन १० सिरवाला, शंकर त्रिनेत्र ओर इंद्र हजार नेत्रवाला, सहस्राबाहु—हजार भुजावाला, करगस (जटायु) ओर गरुडपक्षी संभाषण करनेवाले; इत्यादि जाति, काल पाके नष्ट होगई हों, एसा क्यों न मानाजाय ? लाखों वर्षमें परिस्थिति बदलनेसे गर्भका इतिहास, आरंभसे वर्तमानतक सबका समान केसे होसकता हे? ओर जो पूर्वजके अनुकरणवाला मिले तो यही कहाजायगा कि उस पूर्व लुप्त कडियोंका अनुकरण नहीं होसकता, क्योंकि बरफादिकी प्रलयसे पूर्वके प्राणीका सिलसिला वा बीजही नहीं रहा हे. इसीप्रकार जो चट्टानें अब मिलती हें उसके पहिलेकी चट्टानें (जिनमें हनुमानादि ओर नृसिंहादि तथा मनुष्योंकी हड्डी थी वे) लुप्त होगईं, फट गईं, पृथ्वीमें धस गईं, वा जलप्रलय (समुद्र)में डुब गईहों; एसा क्यों न मानाजाय? उनमें मनुष्यका इतिहास ओर प्रकारका होना मुमकिन हे. तथाहि उन समयकी जातिका परिणाम शेष हो उससे वर्तमानके मनुष्य (या अन्य) प्राणि हें, इसलिये सर्व मनुष्योंके गर्भका इतिहास समान हे, उसमें दूसरोंका पूरा पूरा नहीं मिलता; या दूसरोंमें मनुष्यका पूरा पूरा नहीं मिलता. श्रेणी, कक्षा, जाति, उपजाति वगेरे भेद कल्प करके सादृश्यता मानलेते हें.

पशु, पक्षी वा मनुष्यके रजवीर्यमें जो प्रोटोपलाजिम (ओर स्पारमेंटोजीन याने उत्पादक कृमी) सो एक होता हे वा अनेक होते हें? वे विना गर्भवाले समान (जैसे आरंभमें हुये) या पैत्रिक तन, मन, संस्कारवाले होते हें? प्रथम पक्षमें संतान, मातापिताके समान होना न संभव ओर पूर्वजके अनुकरणरूप होना नहीं बनता, क्योंकि उसका कारण नहीं मिलता. उत्तर पक्ष मानें तो प्रोटोपलाजम ओर जंतुओंके अंतर होनेमें कोई गुह्य कारण मान्ना पडेगा; क्योंकि बालक, मातापिताके जैसे नहींभी होते किंतु विलक्षणभी होते हें, उनकी आकृति [तन] ओर गुण [मन]में मातापितासे अंतरभी होता हे. यथा कोई बालकमें कवित्व, गणित, उत्तरशक्ति, चित्ररचनाकी शक्ति—इत्यादि योग्यता होती हें जो उसके मातापिता वा कुटबमेंभी नहीं थी. इस भेद होनेमें जो कारण (पूर्व संस्कार) वही पूर्वज मान्ना होगा. यही विलक्षणत्व पहेले पक्षकाभी बाधक हे, क्योंकि जिससे एसा विलक्षणत्व होजाय वेसी परिस्थिति नहीं मिली हे.[१] (शं.) गर्भ परिक्षामें उपरोक्त परिवर्तन (पूर्वजका अनु-

[१] पिताके वीर्य ओर माताके रजमें १२ तत्वके नये प्रोट. सेल्स बनते हें उ-

करण) देखते हैं. (उ.) जो एसा ठीक होता तो गर्भशास्त्रमें पृष्टके पृष्ट कोरे नहीं होते. इसलिये जो खामी हे उसके पूर्ण होनेतक गर्भशास्त्रजन्य अनुमान मान्य नहीं होसकता. किसी एक ग्रंथके दरमियानी पृष्टमें एसा लेख होता हे कि उसके विना ग्रंथका अभिप्राय नहीं खुलता वा अन्यथा जान पडता हे. जो वे पृष्ट हों तो

नसे उत्पादक कृमी होते हैं उनमें एमीबासे लेके बंदर तक वा मनुष्यतककी आकृति ओर संस्कार (गुण) धारण करनेकी योग्यता कहांसे आगई? जो बीजवत वृक्षमें वा वृक्षवत बीजमें आई, एसा मानें तो प्रोट. पूर्व जैसा नहीं किंतु भेदवाला होगा. आंबका बीज ओर बडका बीज समान नहीं होता (क्योंकि उनमें पूर्वजोंके ही संस्कार हैं, दूसरे बीज वृक्षके नहीं). ओर जो कहो के नहीं आई, तो बहुधा बालकोंमें (मनुष्य, अश्व वगेरेकी संतानमें) आकृति ओर संस्कार मिलते हैं सो न मिलना चाहिये. इसीप्रकार मानव सृष्टिगत पुरुषके वीर्य ओर माताके रज संबंधमें तथा गर्भ धारण पीछे आकृति ओर संस्कारके संबंधमें अनेक प्रकारके सवाल पेदा होते हैं, उनका यथायोग्य उत्तर विकासवादकी रीतिसे नहीं मिलता. अंतमें यही मान्ना पडता हे कि रजवीर्य ओर शरीरसे भिन्न कोई वस्तु बाहिरसे आई हे जो प्रोट० के अंदर हो, उसमें पूर्वजों (पशु, पक्षी, मनुष्य वगेरे) के संस्कार उद्भव, अनुद्भव हुये हैं ओर पितामाता वा दूसरेकी आकृति, गुण यथा परिस्थिति–संस्कार, नवीनभी होते हैं. इसलिये गर्भगत मूल बीज सबके समान नहीं. ओर प्रोट० से ही सबकी उत्पत्ति हुई, एसा सिद्ध नहीं होता.

अंधे, बधिर, गूंगेके उस जैसी संतान नहीं होती ओर होतीभी हे. चहेरेकी आकृति, माता पिता जैसी होती ओर नहींभी होती हे. कान, छिद्रवाला, ओर सुन्नतकारुप नहीं होता. विद्वान बुद्धिमानोंके बहुधा मूरख, अबुद्ध संतान होती हे. अश्वका रंग ओर आकृति यथेच्छा परिस्थिति अनुसार करलेते हैं जो मातापितासे इतररुपके होजाते हैं. खच्चर अपने मातापितापरही जाते हैं. चीनियोंकी स्त्री लघु पेरवाली नहीं जन्मती. हिंदुजाती लाखों वर्षसे कान छिदाती हे, चीनी स्त्रीके पेर लाखों वर्षसे संकुचित करते हैं, सुन्नत २३०० वर्षसे होती आई हे, परंतु संतानमें इन तीनोंका अवतरण नहीं हुवा. सारांश पूर्व संस्कारवाला (अभ्यासित मेटर) ओर परिस्थिति यूक्त जो हो उसीसे एसी समानता, विलक्षणता होसकती हे. नवीनसे वा नवीनमें नहीं होसकती. ॥

जैसा हमने ग्रंथका आशय माना हे वोह मूलवाला मालूम होके अन्यही आशय निकलता हे. एवं विकासवादके गर्भशास्त्रकी परीक्षाके वास्ते समझलेना चाहिये.

आरंभमें नरमादाका भेद केसे हुवा, यह विकासवाद नहीं बता सकता; क्योंकि प्रो. वा एमीबामें यह भेद नहीं हे ओर न वे करसकते हें. इसीसे ज्ञात होता हे कि आरंभमें भेद होनेका कोई अदृष्ट कारण हे. तद्वत नरमादेके रजवीर्यमें यदि प्रो. समान हो तो नरमादाका रुप उत्पन्न होना नहीं बनता ओर यदि परिस्थितीसे भेद; तो इस भेदका आरंभ केसे हुवा? रज, वीर्यमेंही वा गर्भमें? आद्यपक्षमें पूर्वके संस्कार मान्ने पडेंगे. दूसरे पक्षमें उभयके जीवरस–मेटरमें भेद स्वीकारना होगा अर्थात पूर्वजोंका अनुकरण सिद्ध न होगा. उभय स्त्रीके मैथुन (चपटी)से गर्भ रहता हे ओर पात होनेपर हड्डी रहित मांसका निर्जिव जैसा लोचा जान पडता हे; यह वैद्य, हकीमोंकी परीक्षा हे. सारांश नरमादाके मूल मेटर ओर उनकी परिस्थितिमें अंतर हे, इसीसे मूल अदृष्टका पता नहीं लगता ओर मतभेद हे. एकहीमें साथसाथ नरमादा (उपर वांच चुके हो ओर सारसकी जोडी) इसमें कितनी कारीगरी अर्थात गुप्त शक्तिका भेद होना चाहिये. (अविषय होनेसे ज्यादा लिखनेसे उपेक्षा).

आर्यन चारवाकका विकासवाद प्राचीन हे, परंतु उसमें योरोपके नवीन विकासवादसे इतना भेद हे "कि वे एमीबा वगेरेसे बंदर, ओर मनुष्यके पूर्वज एक हें, एसा नहीं मानते किंतु सृष्टिमें बीज स्वभावतः परिस्थिति द्वारा बनते, बिगडते हें, इसलिये बीजसे वृक्ष, वृक्षसे बीज, एसे जुदा जुदा भेद ओर आकृतिवाले पहेलेसे होते चले आरहे हें, बनते ओर बिगडतेभी हें. यही शरीरके बीज वा शरीरका विकास, अविकास हे. ओर एसेही संस्कारोंका विकास, अविकास हे. मातापिताके शरीर ओर संस्कारोंका परिवर्तन याने विकास, अविकास होता आता हे. सर्पसे बंदर वा बंदरसे मनुष्यका होना नहीं मानते." उक्त नूतन विकासवादकी अपेक्षा इसका मेदान विस्तारवाला जान पडता हे ओर पूर्वोक्त दोष नहीं आते. प्रकृति-परमाणुकी दृष्टिसे उभय पक्षमें समानता हे; क्योंकि दोनों, एमीबासे लेके हाथी, मनुष्य, सूर्यादि तथा वनस्पति ओर खनिज, इन सबको जडपरमाणुजन्य मानते हें तथा चेतनत्व यह जडसमूहका परिणाम हे, एसा कहते हें.

फिलोसोफरोंकी रीति हे कि अपने माने हुये वा सिद्ध किये हुये नियमोंको सब विषयमें घटाते हें. इसीप्रकार विकासको पृथ्वीकी उत्पतिमें, खनिज, वनस्पति, प्राणी ओर मनुष्यकी उत्पतिमें तथा उसकी जीवन सामग्रीमें ओर उसके व्यवहार,

नीति, धर्म ओर राज्य वगेरे विषयमें घटाते हें ओर सबके मूलमेंभी एसाही बताते हें, यथा अगम्य एक तत्वमेंसे सबका प्रादुर्भाव (विकास) हुवा हे एसाभी कोइ मानलेता हे. परंतु जो तत्वफिलोसोफीकी दृष्टिसे विचार करें तो एसा सिद्ध नहीं होता;

क्योंकि 'एकका रुपांतर होना', एसा प्रादुर्भावका अर्थ करें तो वोह एक नहीं किंतु सावयव (पुंज–समूह) मान्ना पडता हे, कारणके संयोग देखते हें, संयोग दोका होता हे, अपनेमें अपना संयोग नहीं होता. तथा एककी एक कालमें अनेक वा भिन्न दिशामें गति नहीं होसकती परंतु एक कालमें अनेक गति ओर विरुद्ध दिशामें देखते हें. इसलिये एकका विकास वा एकमेंसे प्रादुर्भाव होना नहीं माना जासकता. ओर जो वोह अनेकका पुंज हे तो परिच्छिन्न सक्रिय होनेसे उसको किसी अन्यके आधारकी अपेक्षा होगी, इसलिये स्वाभाविक विकास नहीं. जो उन अवयवोंको अन्योऽन्याश्रय होनेसे अनाधार मानें तो असमीचीन हे; कारणके अन्योऽन्याधार असंभव हे.—

यथा—'सू. ओर 'भू. इन दो पदार्थोंको अन्योऽन्याश्रय मानके उनकी परीक्षा करें.—'सू. यह यदि 'भू.+'सू. का आधार हो तो सू. अपना आधार ठेरेगा. अर्थात आत्माश्रय दोष आया. ओर जो सू. यह भू.–सू. एसी स्थितिमें हे याने केवल भू. का ही आधार हे. तोभी सू. अपना आप आधार सिद्ध हुवा; अन्योऽन्याश्रयकी असिद्धि रही. अब जो भू. का सू. ओर सू. का ग. ओर ग. का भू. ओर भू. का सू. एसे चक्ररुपमें आधारभाव मानें तो चक्रिका दोष आवेगा अर्थात भू. यह सू.+भू. का आधार होगा तो भू. अपना आप आधार ठेरेगा; क्योंकि उपर कहे अनुसार सू. उसका आश्रय नहीं ठेरेगा. किंतु अपने आश्रय ग.+सू. का आधार मान्नेसे भू. में आत्माश्रय दोष आवेगा. इसलिये चक्रिका रुपमेंभी अन्योऽन्याश्रय सिद्ध न हुवा. अब जो सू. का भू., भू. का ग., ग. का घ. ओर घ. का त. एसे पूर्व पूर्वको उत्तर उत्तरका आधार – आश्रय मानें तो अनवस्था (धारा) दोष आवेगा, कोई व्यवस्था न होगी; अतःअंतमे किसी एकको स्वयंभू आधाररुप मान्ना पडेगा. इसप्रकार अन्योऽन्याश्रय भाव मान्ना दोष हे.–असिद्ध हे.

'सू. भू. द्रव्य, उसके गुण, उनकी शक्ति तथा उनका प्रभाव, एसे अर्थ लेके समझना चाहिये.

अंतमें महान सूर्यकोभी वा तमाम ब्रह्मांडरुपीगेंदको अन्यके आधारकी अपेक्षा होगी; क्योंकि (अ. २ । २६१) सब सावयव—कंपोंड, परिच्छिन्न तथा गतिमान हैं.

तथाहि हरकोई साधारण विचारशीलभी समझ सकता हे कि एक तत्व विषे दो वा अनेक विरोधी धर्म नहीं होते, नहीं होसकते वा नहीं रहसकते; तो फिर जल-अग्नि, तम-प्रकाश, सरदी-गरमी, जड-चेतन, नेगिटिव-पोजीटीव, यह विरोधी फॉरम-गुण, अवस्था-एकके नहीं होसकते. परंतु संसारमें एसे पदार्थ देखते तो हैं. ओर जो आकाश परमाणु समान, प्रादुर्भाव मानें अर्थात किसी एक अगम्यमें रहे हुये परमाणुओंके नामरुप (ब्रह्मांड) बनते हें, तो उस अगम्यतत्वद्वारा नियामकता, सत्तास्फुर्ति होना, इत्यादि सिद्ध होनेसे विकासवाद स्वतः स्वाभाविक सिद्ध न होगा. किंतु जैसा बीज योजाया गया उसानुसार परिणाम हुवा हे, एसा मानाजायगा.

सूर्यमेंसे पृथ्वी निकली याने एक प्रकारका परिवर्तन (विकास) हुवा एसा मानें तो सूर्यका आधार कोन? अपना आप नहीं. जो कोई अन्य स्वयंभू तो प्राकृतिक—स्वाभाविक विकासवाद उठा देना पडेगा. किंतु किसी चावी द्वारा होना माना जायगा. ओर एसा होनेमें तथा ठंडी हुये पीछे कार्य होनेमें कोई नियम ओर क्रम मान्नाही पडेगा.

विकासवादी एक प्रसंगमें तो यूं स्वीकारते हें कि–(१) जीवनकी उत्पत्ति, (२) प्रोटका मिश्रण, (३) सजीवका परिवर्तन, (४) जीवसृष्टिका आरंभ, (५) आरंभके बीजमें परको अपना जैसा बनालेना, उत्पादकता ओर वृद्धि करना, यह शक्तियें कहांसे आई ओर बीजमें शक्ति कहांसे आई, (६) प्रोट. ओर सेल्समें स्वयं गति केसे हुई, (७) इम्प्रेशन केसे ओर क्या, (८) वस्तुका अंतिम उपयोग, (९) इत्यादि हम नहीं जानते (जैसाके उपर कहा गया); ओर फेर दूसरे प्रसंगमें–(१) जडका चेतन परिणाम, (२) प्रोट. चेतनकण, (३) चेतन उत्पन्न होता हे, (४) गुप्त शक्तिका हाथ नहीं, (५) उत्पत्ति-वृद्धि जडका गुण, (६) इत्यादि कह डालते हें. इस वदतोऽव्याघातका मनमुखी उत्तर वे अपने आप करलेते हें. सारांश अभीतक उनका सिद्धांत (प्राकृतिक विकास) सयुक्त, प्रमाणरुप नहीं जान पडता; किंतु अभीतक तो खामीवाला सिद्ध होता हे.

यदि विकासका आरंभ (प्रादुर्भाव) हे तो अंत (अविकास-अन्युलेशन)भी हे; इन दोनों क्रममें हेतु क्या? ओर विकासकी सीमा क्या? प्रादुर्भाववाले लय हुये पीछे आरंभमें हेतु क्या? इत्यादिका उत्तर विकासवादी नहीं देसकते (अभीतक तो नहीं देसके हें). यद्यपि उत्पत्ति प्रलय न मान्नेवाले ओर ग्रहोंको उपचयापचयरुप

(बनते बिगडते रहनेका प्रवाह) मान्नेवालोंके मतमें उपर लिखि हुई खामी नहीं आती तथापि अगम्य शक्ति और मूल बीज माने विना वेभी अपना विकासका प्रवाह सिद्ध नहीं करसकते.

प्रोटोपलाजममें चेतनत्व कहांसे आया, इसपर विचार करनेकी आवश्यकता हे. 'वोह चेतन १२ वा १६ तत्त्वमेंसे एकमें था १, वा अमुक समूहमें था २, वा अमुक समूहका नवीन परिणाम (नवीन चेतन) हुवा ३. पहेले पक्षका यह परिणाम आता हे कि आत्मा (चेतन) शरीरसे जुदा हे, शरीर साथ संबंध पानेमें सबब हे; क्योंकि उस एकको जड अपने ताबे नहीं करसकते. सारांश कोई गुप्त शक्तिके कारण बंधको पाता हे. इसीसे पुनर्जन्म सिद्ध होजाता हे. परंतु विकासवादी यह कहता हे कि वे १६ वा १२ जड हें अतः प्रथमपक्ष नहीं. दूसरे पक्षमें चेतन अनुत्पन्न होनेसे अनादिही रहा ओर पहले पक्षानुसार परिणाम आवेगा. यदि उन नाना चेतनका उपयोग, समूह होनेपर होना मानें तो वदतो व्याघात दोष आता हे; क्योंकि विकासवादी जडको चेतनत्व रहित जड मानते हें ओर यह हेभी ठीक; कारणके एक तत्व वा परमाणु उभयात्मक (जडचेतनरुप) नहीं होसकता. जब यूं हे तो नाना चेतन नहीं किंतु १२ के मिश्रण होनेपर कोई अणुचेतन आन मिला होगा तब चेतन क्रिया होने लगी होगी, एसा मान्ना पडता हे. तीसरा पक्ष मानें तो अभावसे भावरुप वस्तु नहीं बनती अर्थात उन १६–१२ में चेतनत्व नहीं तो " उपादानवत उपादेय " इस नियमानुसार तीसरा पक्ष नहीं ठेरता. निदान चेतनत्वकी उत्पत्ति असिद्ध हे.

सृष्टिके आरंभमें आद्य प्रोटोपलाजम, सेल्स वा एमीबामें स्वयं ज्ञान होनेका आरंभ हुवा, यह वात नहीं मानीजासकती ; क्योंकि उसमें चेतनत्व नहीं हे ओर विकासवादभी इस अभावको कबूल करता हे.

किसी तत्व (मूल) पदार्थका वा उसके स्वभावका परिवर्तन नहीं होसकता; इसलिये परिवर्तन पाना यह मूलतत्वका गुण नहीं हे किंतु समूहका अवस्थांतर होता हे, यही सिद्ध होगा. ओर इसीवास्ते विकासवादका मूल निर्मूल हे.

' व्याप्तिवाली बुद्धि वा तर्कको किसीके लेखके ताबे नहीं करसकते, जैसा के विकासवादमें हे. इसलिये चेतनत्वको प्रत्यक्ष दिखानेका सवाल नहीं बनता. स्वयं विचार लीजे, याने बहुतसे एसी वस्तु हें कि वे हें ओर गोचर नहीं होती— इंद्रियोंकी विषय नहीं हें.

बेबलनकी कबरोंमेंसे जो मनुष्योंकी लाशें निकली हैं, उनको विद्वानोंने ७ हजार वर्षकी पुरानी बताई हैं, वे वर्तमान मनुष्य जैसी हैं, स्पेनमें गायोंकी तसवीरें मिली हैं जो २० हजार वर्षकी हैं, उनके खींचनेवालेभी वर्तमानके मनुष्य जैसे (देखो चिलड्रेन मेगजीन सन १४). चीनका मरु मेदान खोदनेसे मनुष्यकी अनेक जघे आबादी पाई गई हैं, यह उस समयकी हैं जबके वहां समुद्र नहीं था. सारांश लाखों वर्ष पूर्वभी वर्तमान जैसा मनुष्य था. मनु ओर रामचंद्र वगेरेको हुये लाखों वर्ष गुजर गये अर्थात वे वर्तमान जेसे मनुष्य थे.

रेडियमके द्वारा पृथ्वीके बननेके आरंभका समय ७ अरब ५० किरोड वर्ष सिद्ध किया हे. प्रोफेसर जोली समुद्रको खारा हुये दश किरोड वर्ष बताता हे. हिंदके वनस्पतिके शोधकोंने व्ह ८४ लाख प्रकारकी ओर ज्ञाता योरोपीयनोंने २० लाख प्रकारकी तो मान ली हे, आगे शोध चलरही हे. करणभेद लाखों वर्षसे ओर सुन्नत हजारों व्रर्षसे हे, इस परिस्थिति ओर इच्छित परिस्थितिने फेरफार नहीं किया. सजड दांतका अभ्यास ८० साल तक रहता हे तोभी संतानमें दूधके दांत तूटके नवीन आते हैं. ओर १०० वर्षके पीछे नवीन दांत आते हैं. मनुष्यकी उमरमें भूरे, काले, श्वेत ओर पीले बाल होते हैं, बंदरादिके नहीं होते. सारांश अभ्यासित, इच्छित परिस्थितिसे मूल बीजोंमें फेरफार नहीं होता.

दो जातीके वृक्षका मिश्रण याने कलमी (आम्रादि वृक्ष), दूसरा वृक्ष अथवा दूसरे प्रकारका फल पेदा नहीं करसकता. घोडा गधा जन्य खच्चर, दूसरी वा अन्यथा संतान पेदा नहीं करसकता; इससे सिद्ध होता हे के यदि पूर्वमें नाना जातिके बीज नहीं होते तो आज नाना जातीके प्राणीभी नहीं होते. ओर जो आरंभमें एक वा अनेक समान बीज होते तो आजभी सबसे सबको संतान होजाती. हिरण, बकरी कुदरतमें समान जातीवाले हैं, इसलिये उभयके संसर्गसे संतान होती हे.[१] मनुष्यके संयोगसे मनुष्यसे इतर किसी (बंदर, अश्वादि) मेंभी गर्भ धारण नहीं होता, इसलिये यह किसी मिश्रण योनीसे जन्य नहीं हे. टेराडेल्फगोके मनुष्य ओर सर्व साधारण मनुष्योंके आकारमें अंतर हे, परंतु मनुष्य हैं; इसलिये उनके संयोगसे संतान होती हे याने वंश चलता हे; तद्वत् हिरण ओर बकरीके संयोगसे वंश चलता हे.

[१] अमेरीकागत अमेजन नदीके किनारे वृक्षोंपर निवास करनेवाली मनुष्य जाती हे; जिसके होठ करीबन एक हाथ लंबे होते हैं. (सरस्वती वर्ष १० अंक ४).

जिन जातियोंका नष्ट होजाना कहते हैं उनके मूल बीज दूसरी (गृह) जघे उपयोगमें आवेंगे. हमारे द्रष्ट व्यवहारमें उनकी हयाती नहीं हे परंतु वस्तुतः उनका मूल बीज रहना चाहिये.

वर्तमानमें चीनदेश गत मनुष्योंकी बसतीके २० लाख वर्षसे वेसेके वेसे (पूर्वके जेसे) मनुष्य हें, तोभी जो २० हजारमें एक एक योनीका परिवर्तन होना मानें तो २० लाख × २० हजार साल = ४० अर्ब वर्षसे उपर (पूर्व) पृथ्वीका ठंडा होना सिद्ध होगा. परंतु आर्योंके वेदमें लिखे अनुसार आजतक एक अरब ९७ किरोडके आसरे पृथ्वीकी आयुष्य हुई हे. योरोपके फिलोसोफर १० किरोडसे विशेष वर्ष कहते हें. उक्त ३ मतभेदसे विकासवाद विश्वासपात्र नहीं; क्योंकि वे मनुष्यकी उत्पत्ति २५००००[1] ओर सोलसादि, करीबन ८ लाख वर्षसे कहते हें.

भोजन प्राप्तिमें करणइंद्रियकी अपेक्षा याने शब्दकी जरुरत नहीं हे अतः प्राणिओंमें करणइंद्रियका विकास केसे होसकता हे. जो एसा मानें कि कुदरती शब्दकी परिस्थितिसे विकास हुवा होगा, तो उक्त अष्ट गुणभी एमीबामें कहीं बाहिरसे आना मान्ना पडेगा (क्योंकि एकदम वे नहीं होसकते); सो विकासवादको संमत नहीं हे.

जो बरफकी परिस्थितीसेही प्राणिओंपर बाल उगते हों तो बरफस्थान गत ग्रीनलैंड आदि निवासी मनुष्योंके शरीरपरभी बाल उगने चाहिये, जोकि हजारों वर्षसे बरफस्थानमें रहते हें; परंतु एसा नहीं होता. चिल्ड्रेन मेगजीन फरवरी सन १४ के देखनेसे जानसकते हैं कि कितनेक एसे प्राणी हें कि शर्दऋतुमें उनके बाल निकल आते हें ओर गरमीमें कम होजाते हें; सारांश प्राणी आपहीआप अपनी इच्छासे अपने आकार (हड्डी, इंद्रिय, बाल वगेरे)में फेरफार नहीं करसकता ओर बर्फादिकी परिस्थितिसेभी मूलमें फेरफार नहीं होता.

मनुष्यके बाल भुरे, काले ओर श्वेत होते हें, बंदरादिके नहीं; इसलिये जिनके बालका रंग बदलता हो उनकी पूर्वज, बंदर जाती नहीं होसकती. तमाम पशुपक्षीको तैरना आता हे, मनुष्यको नहीं; इसलिये मनुष्यका पूर्वज बंदरादि—स्वयं तैरनेवाली जाती—नहीं. तैरना यह मनुष्यको सिखानेसे ओर उससे अन्य-सबको स्वाभाविक प्राप्त हे; अतः मनुष्य उनके वंशका नहीं. एमीबासे लेके बंदर, हाथीतक याने सब पशु, पक्षीको विना सिखाये उनके निर्वाहका तमाम ज्ञान, वंशपरंपरासे होता चला आता हे.

[1] दर्शनसंग्रहमें डरीपरसाहेब—जियालोजिस्टका मत देखो.

वे उसका यथा इंद्रिय उपयोग लेते हैं. यथा-चिडियाके बालक बाज वा सर्पको देख के कांपते, पुकारते हैं; परंतु मनुष्यको देखके नहीं डरते. नोलिया नोलवेलको जानता हे, वक्तपरही उसका उपयोग लेता हे. लाल बंदर मांस नहीं खाता. बिल्लीको जब अजीरण होजावे तब तृणनामका घास खाके पडजाती हे ३० मीनीटमें उसको जुल्लाब लगजाता हे ओर निरोगी होजाती हे. इत्यादि.—उनको अपने ज्ञातव्य, कर्तव्य, प्राप्तव्यका ज्ञान, विना सिखाये होता हे; परंतु मनुष्यको वेसे ज्ञान नहीं होता किंतु सिखाने विना कुछभी नहीं आता. बछडा वा पाडा तो जंगलमें पेदा होनेपर माताके स्तनको ढुंढ लेता हे, परंतु मनुष्यकी संतान तो इतनाभी नहीं करसकती. तैरना, अपनी खूराक आप ढूंढ लेना, यह सब पशु, पक्षीमें तो विकासित हुवा परंतु उनसे उत्तम मनुष्यने यह ज्ञान गुमा दिया! यह विकासवाद वा हास्यवाद? इसलिये यह उनकी संतान नहीं. सब प्राणी, वस्त्र सहित पेदा होते हैं, इस मनुष्यने बंदरादि पूर्वजोंका वा विकासवादियोंका क्या अपराध कियाथा के वस्त्र विना पेदा होता हे.

वृक्षोंकी खूराक प्राणनाशक वायु ओर प्राणिओंकी खूराक प्राणप्रद वायु हे, वृक्ष प्राणप्रद वायु देते हें ओर मनुष्य प्राणनाशक वायु देते हैं; इसलिये वनस्पतिके साथभी प्राणिओंकी संकलाका मेल नहीं जान पडता; अतः विकासवादकी थीयरी समीचीन नहीं.

वनस्पति कटजानेपरभी उसका अंग वृद्धिको पाता हे परंतु प्राणीके अंगमें उभयथा वृद्धि नहीं देखते. एमीबासे बडेके दोनों टुकडे जीते हैं, इसलिये वोह वनस्पतिका मूल होना चाहिये, नहींके प्राणीका. कटे हुये वृक्षके भागमें अन्य जीवका ग्रहण हे तोही उसकी वृद्धि होती हे. जीवके स्थान, अंगमें ओर जीव वस्तुमें भेद हे.

आर्यप्रजामें आजतक सृष्टिउत्पत्तिकी उमर एक अरबुद, ९७ किरोड, २९ लाखके आसरे हुई हे, एसा मानते आये हैं, अहर्गणकी गिनतीके मीलानसे उसकी सिद्धि होजाती हे. चीनी संवत उस देशके पहेले राजासे चला हे जिसको वर्तमानमें ९ किरोड, साठ लाखके आसरे वर्ष हुये; इससेभी ज्ञात होता हे के मनुष्य पूर्व जेसा हे.

विकासवादि आरंभमें अयोनिजसृष्टि मानते हैं वेसेही आर्यप्रजा, चीनीप्रजा वगेरे आरंभमें अयोनिज मानती हैं. अंतर यह हे कि वे एक बीज कहते हैं, ओर यह जुदाजुदा प्रकारके मूल बीज मानती हैं.

जब पृथ्वी, वनस्पति ओर प्राणीके स्थानके योग्य हुई तब अन्य स्थलसे उनके

बीज आये (तूफान वगेरे उसमें कारण हे). नहींके पृथ्वी आपहीआप वनस्पति रुप वा प्राणिरुप होगई. इसीप्रकार आरंभमें मनुष्योत्पत्तिभी किसी योग्य जघे होनी चाहिये.—

अर्थात मनुष्य, पशु ओर वनस्पतिके विना नहीं जी सकता; पशु, वनस्पतिके विना नहीं जी सकते; वनस्पति ज्यादे उष्ण वा ज्यादे शीत देशमें नहीं होसकती. अतः मनुष्यका आरंभ कोई मॉतदल देशमें होना चाहिये. वोह स्थानभी एसा होना चाहिये के जहां आंधी, तूफान, ज्वालामुखी, अतिवृष्टि ओर भूकंपका विशेष जोखम न हो ओर मनुष्यके अनुकूल आबहवा हो. एसा उपमावाला उच्च स्थान हिमालयगत तृष्टप (केलाश—तिब्बत—काकेसीससे अग्निकोन) देश जान पडता हे. ईरानी, चीनी ओर आर्यप्रजा; आरंभिक उत्पत्ति, प्रस्तुत देशमेंही मानती हे. आफ्रीका आद्यस्थान सिद्ध नहीं होता; क्योंकि एक देशी हे.

जयपुरमें अपने आरंभसेही गूंगा, बहेरा एक भार्गव हे जो अब आसरे ४५ सालका हे, उसने परिस्थितिके कारण अपने मन कल्पित संकेत, अनेक संबंधी ओर व्यापारिओंको सिखादिये. जब उसकी २० वर्षकी उमर हुई तबहीसे घरका काम काज, बाजारमें लेना देना—एसे सब कुछ करता रहा हे, अभी मोजूद हे. इसीप्रकार एक दो बालक नहीं किंतु दश पंदरा बालक, बालकी एकांत जंगलमें रखें जायँ उनकी रक्षा, विना बोले करदी जाय तो वे परस्परसे संतान पेदा करेंगे ओर जेसे साधन (पशु, पक्षी, वृक्ष, गर्जना वगेरे) मिलते जायँगे वेसे शब्द संकेत यथा जरुरत घडलेंगे, क्योंकि गूंगे समान चेष्टाके संकेत करनेकी ओर कान जिव्हावाले समान उनमें शब्द सुन्ने ओर उच्चारनेकी योग्यता हे. तथापि शब्द संकेत पांच सात पीढीमें बन सकेंगे; न के एक दो पीढीमें. वर्त्तमानमेंभी बालक, अपनी भाषाके संकेत बनालेते हें जो उसकी माता जानलेती हे. तथापि अपना तमाम ज्ञातव्य, कर्तव्य, योग्यायोग्य (मनुष्य सोसाईटीके समान) वे नहीं जानसकेंगे, उनको मातापिताकी सेवाका ओर मा, बहेनका-इत्यादि ज्ञान न होसकेगा. परंतु पूर्वसंस्कारजन्य जीवमें योग्यता हे सो साधन मिलनेपर तुर्त उपयोगमें आने लगसकती हे; इसलिये विशेषज्ञान मिलनेमें उनको अपेक्षा रहेगी; जेसेके गूंगेको हुई. प्राणीकी माता, बच्चोंकी सेवा (पालन, पोषण) कोई न कोई घटनामें स्वभावतः करती हे, परंतु संतान, मातापिता वा शिक्षककी सेवा विशेष रुपमें करती हो एसा नहीं देखते. तथापि यह बात मनुष्य जातीमेंही हे, इसलिये मानवको पशु, पक्षी तिर्यक्की संतान नहीं मानसकते.

भाषा, मनुष्यमें शनैः शनैः उत्पन्न हुई, इस डारिवनके मंतव्यका प्रोफेसर नायरने उसी समय खंडन किया ओर मेक्समूलरादिभी इस बातके प्रतिपक्षी हुये हैं. किसीभी पिछली जातिने एक धातुभी नहीं बनाई हे.[१] इसलिये पशु, पक्षी, नदी, गर्जन, पत्थर, लकडीके टकराने-इत्यादिकी ध्वनि द्वारा मनुष्योंने खास शब्द बनाये; यह अनुमान गलत जान पडता हे.

आर्यप्रजामें सृष्टिके आरंभकाल विषे ईश्वर प्रेरित वेद द्वारा विशेषज्ञान मिलना माना हे, तद्वत् ईरानी, याहूदी, किरानी ओर कुरानी संसार ईश्वरदत्त कहती हे.

मैस्मरेझरका सबजेक्ट, अर्थके ज्ञान हुये विना अनजानी भाषा बोलसकता हे; क्योंकि वोह ओपरेटरका यंत्र बनगया हे. तद्वत् संभव हे कि आरंभके मनुष्यमें कोई विशेष शक्ति द्वारा एसा हुवा हो, अर्थात् यदि पूर्वपूर्वके संस्कार विनाके संस्कारीको एकदम सीखना सिद्ध होजाय तो उक्त अनुमान ठीकही हे. जेसेके योग्यता विनाके प्रोटो. ओर एमीबामें सेच्छित ज्ञान ओर गति, विकासवाद मानलेता हे, एसेही यूं क्यों न मानलिया जाय?

पशु, पक्षिओंमें शब्द विनाका विचार होता हे. यथा ताकना, समय आवे के मारना, कुत्ते रोटीके समय ओर पशु संध्याके समय मार्ग ढूंढते घर चलेआते हैं; परंतु मनुष्यका विचार, शब्द रहित नहीं होता. तोतेके शब्द कामके नहीं, इसलिये भाषाके साथ अर्थ (ज्ञान) का संबंध हे; जो यह ज्ञान, शिक्षण अपेक्षित हे तो भाषाभी अपेक्षित कहनी पडेगी. इसीप्रकार योरोपका फिलोसोफर डिस्कार्टिज, हिस्टरी ऑफ नेचरमें लिखता हे—अर्थात् मूल विचारोंकी छाप वगेरे पुरुषोंके हृदयमें अपने हाथसे लगादी हे. सारांश भाषाज्ञानवाला मनुष्य, पशु पक्षीकी संतान नहीं, यहि सिद्ध होता हे. उन्होंका (मनुष्यका) आसमान (उपर)की तरफ, उनसे नीचे (पशु वगेरे) का दशामें ओर उनसे नीच पापी जीवोंका जमीनके साथ सिर रहता हे; यहभी अंतर हे.

विकासवादको चेतन ओर प्रोटो. की जो दरमियानी कडी—संस्कारीमनस (जीववृत्ति) हाथ लगजाती तो बोह अच्छा गर्जता.

विकासवादका स्वीकारित विज्ञानशास्त्र (सायंस) यह मानता हे के जड (८० तत्व, वा प्रोट० के १२ वा १६ तत्व) में स्वयंगति वा स्वयं स्थिरता नहीं होती. तोभी प्रोट. ओर सेल्समें स्वयंगति होना मानता हे, इससे यह सिद्ध होजाता हे कि यातो प्रोट०ही स्वयं चेतन वा तो प्रोट०में कोई गुप्त अन्य वस्तु—गुप्त अदृष्ट

[१] अक्षरविज्ञान हिंदीग्रंथका धातुप्रकरण २ देखो.

चेतन हे. पहेला विकल्प विकासवाद नहीं मानता, क्योंकि प्रोट०को जड कहता हे, इसलिये दूसरा विकल्प मान्ना पडा. शरीरमें असंख्य प्रोट० ओर असंख्य सेल्स मानें हें; तो क्या शरीरमें असंख्य चेतन हें? जो हें तो वोह चेतन कोनसा जो हाथ पेर वगेरेको स्वाधीन रखता हे अर्थात असंख्य (अनेक) प्रो. सेल्सके समूहजन्य जो हाथ–पेर, उनसे काम लेता हे. यह जनरल चेतन प्रोट०से जुदा मान्ना पडेगा. सोभी शरीरके समान परिणाम हे वा शरीरमें फिरनेवाला वा शरीरमें एक जघे स्थित अर्थात कैसा हे, यह सिद्धकर बताना मुशकिल होगा; क्योंकि यदि परिणामी ओर शरीरमें अवयव प्रति आकार धरनेवाला तथा ईम्प्रेशन रुप होनेवाला हे, तो मध्यम परिमाणी होनेसे उत्पत्ति–नाशवाला ठेरेगा. जो एसा हो तो उपर लिखे अनुसार तत्त्व होनेसे अनादित्वसिद्धकी असिद्धि होगी. ओर जो परमाणु रुप (अणु परिणाम) एक जघे स्थित हे, तो तमाम अवयवोंसे काम लेना, सबका ज्ञान करना, ईम्प्रेशन रुप वा दुःख, सुख रुप अवस्था धारण करना–इत्यादि कार्य नहीं होसकेंगे; परंतु होते तो हें; इसलिये अणुरुपभी न ठेरगा. (तो फेर केसा? अध्यात्मशास्त्र-द्वारा ओर अभ्यास करके जानसकते हो[१]). प्रस्तुत प्रोट० जडवादके अपवादमें बताये हुये भेदग्रहणादि कार्य नहीं करसकता, 'में हुं' एसी साक्षी नहीं देसकता, ज्ञान वा अज्ञानको ग्रहण नहीं करसकता, अनेक प्रकारके ईम्प्रेशन रुप नहीं होसकता, प्रोटोपलाजम वगेरेकी साक्षी नहीं देसकता ओर असत् नहीं बोलसकता; परंतु यह सब कार्य होते तो हें; इसलिये शरीरमें जो जीव वा चेतन हे वोह जड प्रोट० वा सेल्स रुप नहीं, यह मान्ना पडता हे. उससे स्वाभाविकविकासवाद, उडजाता हे.

अब उत्पत्ति, वृद्धि, शक्तिका विचार करें. जैसे औक्षजन, हाईड्रोजनमें जल-रुप होनेका गुण हे वा तो उनके रसायणीयसंयोग होनेपर ईथर द्वारा दूसरे सूक्ष्मतत्व मिलनेसे जल परिणाम होता हे. एसे उत्पत्ति, अपना जैसा करना वा वृद्धि, शक्ति, यह प्रोट०के एक अणुमें १, वा अमुक समूहमें विभक्त २, वा अमुक समूहका नवीन परिणाम ३? प्रथम पक्षमें वेसी शक्तिवाला कोई अनादितत्व मान्ना पडता हे, जो विकासवादी नहीं मानता ओर न सिद्ध होता हे. दूसरे पक्षमेंभी यही परिणाम आता हे. तीसरे पक्षमें अभावसे भावरुप नहीं होनेका नियम आडे आता हें; इसलिये उक्त तीनों शक्ति प्रोट. वा सेल्समें सिद्ध नहीं होती किंतु उनसे अन्य कोई हेतु वा शक्तिको मान्ना पडता हे.

[१] नवीन जड–विकासवादकी क्या बुनियाद हे; वोह टिकसकता हे वा क्या.

उपचयापचयवादि वा प्रकृतिवादि यूं कहता हे कि वृक्षके बीजमें दोनों शक्तिका आरोप इसप्रकार होता हे,—बीजसे वृक्ष ओर वृक्षसे बीज होता हे सो देखते हें. तहां जब बीज धरती (गर्भ) में गया तब बरालके कारण सजातीय परमाणु बीजकी तरफ आते हें ओर उभयमें स्नेहआकर्षण होनेसे बीजके मूलद्वारा खिंचाके बीजके अनुरुप होके कूंपल, शाखा, पत्ते, फूल, फलरुप होते हें. इसमें रसायणीयसंयोगजन्य बीज, उपादान हे १, स्नेहाकर्षण, गरमी, जल ओर रसायणीयसंयोग निमित्त कारण हें २. इसीका नाम उत्पत्ति, वृद्धि हे.

एक कूंडेमें गुलाब, मरवा, ईक ओर नीम बो दो. मिट्टीके परमाणु उन उनके अनुरुप होजायँगे. याने उपरोक्त रीतिके अनुसार अपना जैसा बनालेनेकी योग्यता बीजमें हे, तथा उत्पत्ति-वृद्धिकीभी हे. यदि बीजका पृथक्करण करें तो यह तीनों शक्ति उसके किसी अणुमेंभी नहीं जानी जायँगी अर्थात समूह-बीजमें नहीं हें, एसा मान्ना पडेगा. तथाहि मूलतत्व अपने स्वरुपको नहीं बदलते, यथा जलके उपादान ऑक्षीजन-हाईड्रोजन वेसेके वेसे रहते हें. तो फेर वोह शक्ति क्या ?

असलमें यूं जान पडता हे कि हरकोई परमाणु एकरुप नहीं किंतु सत्वरजतम इन तीनके मिश्रणरुप हें. यह मिश्रण, इसलिये मिश्रण रुप नहीं कहा जाता के वे एक दूसरेके विना नहीं होते, नहीं रहते, हमेशेसे (अनादिसे) कंपोंडरुप हें, उनका पृथक्करण नहीं होसकता. वे गोचर नहीं होते, उन हरेकमें हलते रहने (गति)का स्वभाव हे. उनमें अबुद्धा गति होती हे, विलक्षण कार्य होनेसे उनको अनुमानसे मानाजाता हे. कोई पक्षकार उनको परमाणुकी शक्ति वा गुण मानलेता हे. उस मिश्रणमें कभी एक गुण उद्भव ओर दूसरे तिरोधित होजाते हें (दबजाते हें), इसलिये वेसे अनेक प्रकारके परमाणुके पुंज-समूहका जुदाजुदा रुप, जुदाजुदा गुण होता हे; क्योंकि पुंजके अवयवोंकी योग्यता उद्भव, अनुद्भव होती रहती हे. यथा अमुक अमुक रंग मिलानेसे उनसे अन्य रंग उद्भव होता हे, पहेलेके तिरोधित होजाते हें.

बीज, एसेही समूहसे बना हुवा हे. जल, गरमी, प्रकाशादिसे दूसरे परमाणु उसमें शामिल होवे हें, उनका रसायणीयसंयोग होनेसे तथा बीजकी परिस्थिति होनेसे उनका रुपांतर (सत्वरजतमका उद्भव, अनुद्भव होना) होता आता हे, यही उत्पत्ति ओर वृद्धि हे. नहीं के कोई खास शक्ति. जोकि बीज ओर उस समूहकी योग्यता मर्यादित हे, इसलिये उत्पत्ति, वृद्धिभी मर्यादित हें; अतः उत्पत्ति, वृद्धि

ओर स्थिति होती हे, फेर उसमें परिणाम होता हे याने उसके भागमेंसे दूसरा बीज बनजाना वा उसके तमाम पुंजमें फेरफार होना. इस क्रियाकी हद होने पीछे याने समूहकी योग्यता निर्बल पडनेसे उसका क्षय (कमी) होने लगता हे. अंतको वोह रसायणीयसंयोग नहीं रहसकनेसे उस पुंजका नाश होजाता हे ओर जो संस्कारी संतान छोडगया उसमें मजकूर क्रम जारी होता हे. इसप्रकार बीज वृक्षका प्रवाह हे याने उसमें उत्पत्ति वगेरे ६ भाव होते हें. एसेही मनुष्यादि प्राणीमात्रके वास्ते ज्ञातव्य हे. जब यूं हे तो पहेला बीज कहांसे आया ओर केसे बना? यह सवालही नहीं बनता–व्यर्थ हे. क्योंकि इस संकलनाका कभीभी आरंभ नहीं हुवा ओर न अंत होता हे, किंतु प्रवाहसे अनादि अनंत हे; दरमियानमें जो बीज सर्वथा नाश होजाता हे वोह नाश होगया, शेष बीज संतानका प्रवाह करते हें. पृथ्वी वा सूर्यमंडलका प्रलय यदि होता हो याने होवे तोभी शेष मूल बीजोंका नाश नहीं होता, एसी उनकी बनावट ओर परंपरा हे. प्रवाहसे अविनाशी बीज वे दृश्य (गोचर) बीज नहीं हें; किंतु अदृश्य हें. हां, दरमियानमें बीज परिस्थितिके कारण परिवर्तनमें आके दूसरे प्रकारका बीज पेदा करेंगे; पूर्वजैसेही बीज बने रहें, एसा नहीं हे, किंतु शनैः शनैः कालांतरमें बीजका परिवर्तन होता रहता हे, इसीका नाम विकास ओर अविकास हे अर्थात पहेले विकास पीछे पूर्वजातिका नाश होगया. इसप्रकार विकास, अविकास याने परिवर्तनका प्रवाह हे. इसप्रकारके परिवर्तनका एक नियम मानलेना वा बांधना नहीं बनता ओर न होसकता हे किंतु संस्कारादि अनुसार होता हे, इतनाही कहसकते हें. कोई वनस्पति वा प्राणी एसेभी हें कि उनके अंगके टुकडे करें तो हरेक टुकडा वनस्पति वा जीव रुपसे वृद्धि करता हे; कितनेक एसेभी हें कि गांठवाले हें वा नरमादा साथसाथ रहनेवाले हें ओर बहुतसे एसे हें कि जिनके नरमादा जुदाजुदा होते हें. सबमें मजकूर प्रकारका परिवर्तन लगजाता हे. निदान सबमें षडविकार हें ओर सबका एकही क्रम हे. हां, कोई प्रवाह रुपसे अनादि अनंत ओर कोई सादि सांत रुपमें होता हे.

जहां नरमादा जुदाजुदा होते हें वहां उभयके अंश शामिल होनेपर जो मेटर बलवान हे वोह दूसरेको अपनेमें लेके अपना रुप करलेता हे; उस अनुसार नरमादाका रुप व्यक्त होता हे. संस्कारादि इसमें कारण हें. नरमादा बन्नेकी थीयरीमें अनेक पक्ष हें; परंतु अभीतक यह पक्ष बलवान हे. जहां दोनों साथ हों वहां वृद्धिकी सामग्री मिलनेपर दोनोंकी वृद्धि होती हे, वेसाही प्रवाह चलता हे. पपैया

(वनस्पति) के नर ओर मादा रुप वृक्ष जुदाजुदा होते हैं, कहीं मादाके रुपसे नरके रुप कम होते हैं, वहांभी यही क्रम हे याने नरका भाव जब मादामें आता हे तब जिस क्षणमें नरका बलवान उस क्षणका रसायणीयसंयोग नर वत ओर जो मादाका बलवान तो मादा वत् आकार होगा. इसप्रकार अनेक बीजोंमें जुदा जुदा रुपसे परिवर्तन होता हे.

उपरके लेख (उपचयापचयवादीके कथन) का सार यह हे कि अपने जेसा बनानेकी, उत्पति–वृद्धि करनेकी वा भिन्नभिन्नरुप होनेकी कोई शक्ति नहीं हे. परंतु उपर कहे अनुसार सत्वरजतमादिविशिष्टगुणपुंजकी अवस्था–परिणामसे सब व्यवस्था होजाती हे. ईश्वरको बीचमें लेनेकी जरुरत नहीं हे. (शं.) बुद्धिपूर्वक गति वगेरे केसे होती हैं. (उ.) प्रथम स्वाभाविक (बुद्धि रहित) होती हे. पीछे बहुतकालके सहवास ओर परिस्थिति तथा अभ्यासके कारण इच्छा, शक्ति (विलपावर) के रुपमें आजाती हे, इसलिये यह बीजका परिणाम विशेष हे. यही, भेदग्रहणादि वा रागादिका मूल हे. (उपचयवाद समाप्त).

अब जो कभी न कभी सब बीजोंका एक साथ प्रलय होना ओर नवीन आरंभ होना मानें तो आरंभके बीज होनेमें कोई गुप्त शक्तिकी अपेक्षा मान्नी पडती हे ओर वेभी जुदा जुदा प्रकारके मान्ने होंगे; क्योंकि नियतगति करनेवाला, अपने जैसा बनालेनेवाला ओर स्वयं उत्पत्ति–वृद्धि करनेवाला एसा कोइबीज, अपने आप स्वाभाविक पेदा नहीं होसकता. अर्थात जड परमाणुओंमें वेसी योग्यता देखनेमें नहीं आती. ओर जो एसा मानें "कि आरंभमें अकस्मात कोई एक वा अनेक बीजोंका सादारुप बन गया, उनमेंसे कोई तो नाश होगया ओर कोइ परिस्थितिके कारण परिवर्तनमें आया, एसे होते होते कालांतरमें एसा बीज बनगया कि जिसमें नियत गति ओर उत्पत्यादिकी योग्यता ओर विलपावर (इच्छा शक्ति) हो गई." तो आरंभके प्रो. वा सेल्में यह गुण नहीं होने चाहिये. परंतु विकासवाद तो यह ओर अन्य ८ वात, आरंभके एमीवातकमेंभी मानता हे; अतः एसा कहाजासकता हे कि विकासवादको अभी वोह भेद नहीं मिला कि जिससे स्वयंगति, उत्पत्तिआदि होती हैं. प्राणीके रजवीर्यमें नवीन प्रोट० बनते हैं ओर जुदाजुदा प्रकारके कोष्ट (सेल्स) तैयार होते हैं ओर उनके मिलनेपर कोई तीसरा (नर वा मादा) रुप बनता हे, इसीसे स्पष्ट होता हे कि प्रोट० सेल्सकी सामग्रीमें न्यूनाधिकता होती जा-

ती हे वे सबके एक समान नहीं होते. अर्थात पूर्व संस्कारादिके अनुसार रुप बनता हे. ओर संस्कारादिसेही परिवर्तन (उत्पति—वृद्धि वगेरे) का प्रवाह हे.

स्त्री स्त्रीके मैथुनको चपटी कहते हें, इस व्यवहारसे गर्भमें हड्डी विनाका अचेतन लोचा बनता हे, इसके पात होनेपर हकीम, वैद्योंने परिक्षा की हे ओर खास स्त्रीओंद्वारा जाना गया हे. यह वात सत्य हो तो विजातीय रसायणीयसंयोग, द्रढ ओर विलक्षण होता हे तथा जीवनतत्व, पुरुषके वीर्यमें हे, स्त्रीके रजमें नहीं, एसा मान लेना पडता हे.

सारांश यदि उपचयापचयवादिके मंतव्य समान बीजोंका अनादिअनंत प्रवाह तथा परिवर्तनका प्रवाह मानें तो विकासवादका आरंभ नहीं बनता अर्थात सृष्टिका महाप्रलय नहीं माना जासकता. ओर जो बीजोंका नाश न होते हुयेभी प्रलय, पुनःउत्पत्ति मानें तो उसमें गुप्तशक्तिका हाथ मान्नाही पडेगा. ओर जो विकासवादीकी मान्यता समान, प्रलय मानें तथा बीजोंका आरंभ होना मानें तो उनमें योग्यता पेदा होनेकेलिये अगम्यशक्तिकी अपेक्षा रहती हे. यदि प्रलय नहीं ओर बीजोंका प्रवाह हे तथा अगम्यशक्तिकी योजना हे तो प्राकृतक विकासवाद मान्ना कथन मात्र हे. ओर जो एसा कहें कि जिस प्रकार अगम्यशक्ति योजती हो, वेसे स्वाभाविक बीज बन गये, एसा मान लो; तो युक्ति हीन व्याप्ति रहित बात हे; अतःनहीं मानसकते.

बात यह हे कि जो प्रोटोपलाजिम ओर सेल्स, यंत्रद्वारा दृष्ट होते हें वे किसी अदृश्य पदार्थ (कडी)के पड हें, यह स्वयं जीवनरुप नहीं हें; उस अदृष्टकी योग्यता करके नियत गति, उत्पत्ति ओर वृद्धि होती हे; तथा पुनर्जन्मादि होते हें; वही एक कडी हे. दूसरी तरफ चेतनशक्ति निरवयव, अखंड, पररहित (असीम), सम हे; उसकी अगम्य, अचिंत्य सत्ताके संबंधसे सब विचित्रता हे, उसमें सत्वरजतमात्मक प्रकृति अध्यस्त हे. प्रोटोपलाजिम ओर चेतनशक्तिके दरमियानकी उक्त कडीका पता अभी विकासवादीको नहीं लगा हे. जब मानसशास्त्रका अभ्यास, शोध ओर परिक्षा होगी तब अपरोक्षरुपमें उस कडीका पता लगजायगा ओर विकासवादियोंको जो प्रो० वगेरेमें संशय हें (उपर कहे हें) वे सब नष्ट होजायँगे; तथा इस विकासवादका उत्तम स्पष्टरुप जान पडेगा. यही विकासवाद, चेतनतत्व तथा पुनर्जन्मको मानता हुवा विकासवादको सिद्ध करेगा. उस अज्ञात कडीका नाम मनस (अंतःकरण) हे, वोह स्थूल शरीरसे भिन्न पदार्थ हे, यह बात परिक्षासे सिद्ध हे.—याने

विवेक, योगद्वारा उसका सामान्य स्वरुप अपरोक्ष होजाता हे, वोह मध्यम परिमाण-वाला याने रसायणीय विजातीय कंपोड हे, इसलिये गिळोकी बेलके समान उसकी प्रावाहिक उन्नति (विकास) ओर अवनति (संकोच—अविकास) होती रहती हे, उसका विकासवादके साथ संबंध हे अर्थात यथासंस्कार उसको प्रोटोपलाजिम रुपी पड मिलता हे ओर यथासंस्कार सेलूस बनजाते हें. तथा यथासंस्कार ओर यथापरिस्थिति, पडोंका विकास होता हे ओर पडोंद्वारा उसका व्यापार चलता हे, तथा नवीन संस्कार संपादन होते हें, शरीर त्यागनेपर वे पड नष्ट होजाते हें ओर यह बीज दूसरे कमरे (पड-प्रोट०) को पाता हे. यदि कुछ काल पड विना ईथरमें रहे तोभी अंतमें गर्भद्वारा किंवा गर्भविना परिस्थिति अनुसार ई-थरमेंसे पड चढके पोषण पाता हे. इस मनसमें २४ योग्यता होजाती हें, उनमें दूसरेको अपना जेसा बनाना वा दूसरे समान अपना आकार करके पूर्व स्थितिमें आजाना, उत्पत्ति करना, वृद्धि पाना ओर ईम्प्रेशन लेनाभी हे. मूल तत्वोंमें जो गुण वा शक्ति होते हें वेही उनके कंपोंडमें उद्भव होते हें; नवीन गुण वा शक्ति नहीं होते, नित्य तत्वके गुणशक्तिभी नित्य होते हें अर्थात महान प्रलयकालमेंभी वे नष्ट नहीं होते. इसीप्रकार मनसभी एसा संयुक्त कंपोंड हे कि वोह अपने गुण-शक्ति सहित प्रलयमेंभी नष्ट नहीं होने पाता. परंतु जिस विलपावर—वासनासे कं-पोंड बंधा हुवा हे वोह जब नाश होजावे तब उस कंपोंडका अभाव (नाश) हो-जाता हे; ओर उसके अणु दूसरे उपयोगमें आते हें. नाशके पहेले मनसके अंशसे मनस होते हें ओर विकासक्रममें आते हें.—याने प्रोटोपलाजम, सेलस वगेरे पडको प्राप्त होते हें. इसलिये विकासवादके अस्वीकारमें वा मनसके प्रसंगमें आग्रह नहीं हे किंतु परिक्षा करके जान्ने योग्य हें. मनसकी सिद्धिपर विकासवाद उत्तमरुपमें सिद्ध होजाता हे; इसके विना संतानमें माता पिताके ज्ञान ओर विचारका अव-तरण सयुक्त सिद्ध न होगा.

यहां मनसरुपी कडीका वृतांत अति संक्षेपसे लिखा हे, इसका विस्तार ब्रह्म-सिद्धांतके उत्तरार्द्धमें हे ओर इसकी उत्पत्ति, वृद्धिका तथा विकास, अविकासका वर्णन उसी ग्रंथके सूत्र ४०७, ४०८ के विवेचनमें हे. इच्छा हो तो वहां देख लीजियेगा.

विकासवादकी रीतिमें योग्यका जीवन, अयोग्यका नाश, जीवनसंग्राममें स्पर्द्धादि; सारांश माइटइजराइट अर्थात शक्तिवादको प्रधान माना हे; परंतु सर्वथा

शक्तिवाद (जिसकी लाठी उसकी भेंस) की जय नहीं मानसकते; कारणके मनुष्य जातीमें दया, आत्मसमर्पण, न्याय, नीति इत्यादि गुण हें (वा होगये हें); इसलिये उसका जीवनसंग्राम पशुपक्षीवत् नहीं हे, एसा विकासवाद स्वयं मान लेता हे. माइटकोभी अंतमें मानव मंडलकी नीतिपर आना पडता हे. नहीं तो उसके- माइटपनेका नाश होजाता हे अर्थात् अंतमें राइटइजमाइट (नीति, न्याय, हक-का बल) जय पाता हे. शक्तिवादका परिणाम शांतिवाद हे. शांतिवादके विना शक्तिवादकीभी अनुत्पत्ति हे. जो एसा नहीं मानें तो मनुष्यमें जो सत्वगुण–दैवी संपत्तिकी योग्यता हे ओर उत्तम संस्कार हें वे निष्फल होजायँगे; परंतु निष्फलत्वका अभाव हे. तद्वत शक्तिवाद वास्ते ज्ञातव्य हे. सारांश मनुष्य मंडलमें दोनों प्रकार होते आये, हें ओर होंगे. परंतु मनुष्यकी इच्छाका विषय शांतिवाद (न्याय, नीति) हे तथा दुःख होगा तोभी अंतमें शांतिवादकी जय हुई, हे ओर होगी.

उपर जो कुछ अपवाद रुपमें लिखा हे उसका यह आशय नहीं निकलता हे कि विकासवादका निषेध हुवा हे; कारणके आरंभमें एक कंपोंड मानो वा अनेक, अगम्यशक्तिद्वारा जन्य मानो वा स्वाभाविक, प्रवाहसे उपचयापचयरुप मानो वा आत्यंतिक प्रलय मानो; हरेक प्रकारमें क्रमशः विकास होना सिद्ध होगा अर्थात पूर्वमें एसा रुप वा प्रकार नहीं था जैसाके वर्तमानमें हे. किंतु क्रमशः विकास ओर अविकास (परिवर्तन) हुवा हे; इसलिये अध्यारोपमें उतने भागकाही अपवाद हे कि जो अपूर्ण हे.—यथा विकासबाद सिद्ध करनेवाली मनस नामकी कडी शोध करके मान्नी चाहिये. बंदरका परिवर्तन मनुष्य हे, इस विषयमें विकासवादका आग्रह नहीं हे, परंतु व्याप्तिवश एसा हुवा वा होनेकी संभावना हे अर्थात मनस एसे संस्कारवालाभी हो कि उसपर एसे पड हुये हों जिसको बंदरवाले पड कहे जावें; उनका परिवर्तन मनुष्य हो. तथापि मनसमें मनुष्यपना वा बंदरपना नहीं हे अर्थात उसकी व्यक्ति, जाति वा आकृति मनुष्य वा बंदर जैसी नहीं हे; किंतु उसके पडकी हे. तथापि जबतक पूर्ण सबूत न हो वहांतक मनुष्यका पूर्वज बंदर, एसा नहीं मानसकते. आशा हे कि शरीरमें गिरदावरी करनेवाले मनसकी परिक्षा होनेपर ओर चेतनशक्तिके तादात्म्य होनेसे उसकी शक्ति–योग्यताका निश्चय होनेपर विकासवाद पूर्णताको प्राप्त होगा ओर मनुष्यका उच्चतर जो मनस सो नीचेकी कडी (पशु वगेरे) में नहीं जाता, इस बातको सिद्ध करेगा. अस्तु.

इति विकासवादः ॥ ३९१ ॥

अध्यासाध्यारोपापवाद.—

अध्यास (वा भ्रम) यह सबजेकूट (विषय), अचिद्‌वादि (प्रकृतिवादि) ओर साधारण पुरुषोंकी द्रष्टिमें साधारण जान पडता होगा, परंतु वस्तुतः प्रमाणवत् अंतिम फिलोसोफीका सूक्ष्म विषय हे. मनाभ्यासी वा सूक्ष्म स्रष्टिका अभ्यासीही इस विषयको समझ सकता हे. इष्टप्रसंग (ईश्वरवादि) का संबंधी होनेसे उसका अध्यारोप, अपवाद लिखते हैं.--

अध्याससिद्धि बाधित होनेसे ॥३९२॥ वृत्ति बाह्यगमनवत् ॥३९३॥ तिसमें मतभेद ॥ ३९४ ॥ जेसेके अतद्‌बुद्धि ओर अन्यथा ॥ ३९५ ॥ तथा ज्ञान अर्थ संसर्गासंसर्ग[१] ॥ ३९६ ॥

वोह सत् नहीं पूर्व उत्तरमें अभाव होनेसे ॥ ३९७ ॥ असद् नहीं दर्शनसे ॥ ३९८ ॥ उभयथा नहीं विरोधापत्तिसे ॥ ३९९ ॥ विज्ञानका परिणाम नहीं दोनों सम होनेसे ॥ ४०० ॥ अन्य रुपसे ज्ञेय नहीं असंभव होनेसे ॥ ४०१ ॥ अन्य स्थितका दर्शन नहीं समीपस्थके अदर्शनसे ॥ ४०२ ॥ अन्यका धर्म नहीं पृथक् न होनेसे ॥ ४०३ ॥ स्मृति रुप नहीं तत्का विषय न होनेसे ॥४०४॥ अभावजन्य नहीं असंभव होनेसे ॥४०५॥ दूसरी वृत्तिका परिणाम नहीं अभावापत्तिसे ॥ ४०६ ॥ अनेकांत नहीं एकांत होनेसे ॥ ४०७ ॥ बाध परिक्षाकालमेंभी उक्तकी असिद्धि ॥४०८॥ जेसेके स्वप्न रज्जु सर्पादिके प्रसंगमें ॥ ४०९ ॥ अपेक्षासे विलक्षण ॥४१०॥ विलक्षण होनेसे ॥ ४११ ॥ जेसेके अनिर्वचनीय स्वप्न ॥ ४१२ ॥

अतद्‌बुद्धि भ्रम ॥ ४१३ ॥ वशात् विकल्प होजानेसे ॥ ४१४ ॥ अपूर्व अनुत्तराध्यास ॥ ४१५ ॥ योग्य संबंधाभावादि सामग्री ॥ ४१६ ॥ निवृत्ति होने पीछे सिद्धि ॥ ४१७ ॥ संबंध, किरण, सूक्ष्मा, ओर वृत्तिसे उनका (भ्रमाध्यासका) विवेक ॥ ४१८ ॥ स्वप्नादिवत् ॥ ४१९ ॥ द्रश्य विवेक उसका फल ॥ ४२० ॥ अधिष्ठानाध्यास्तका भेद, विलक्षण होनेसे ॥ ४२१ ॥ अध्यासको अध्यास न होनेसे ॥ ४२२ ॥ स्वतोग्रहण भावमें नेति ओर अन्यथेति ॥ ४२३ ॥

यथा अर्थ जो ज्ञान हो उसको यथार्थ ज्ञान (प्रमा—अबाधित ज्ञान) कहते हैं (जेसे डोरीका ज्ञान). यथार्थ ज्ञानका जो विषय हो उसे यथार्थ—ज्ञेय (प्रमेय-

[१] संसर्ग—तादात्म्य, समवाय, संयोग, व्याप्य, व्यापक वा संबंधमात्र.

अबाधित अर्थ) कहते हें (यथा डोरी) ॥ अर्थका अनुसारी जो ज्ञान न हो उसे अयथार्थ ज्ञान (अप्रमा—बाधितज्ञान वा ज्ञानाध्यास) कहते हें (जेसे डोरीमें सर्पका ज्ञान) ओर ज्ञानानुसारी अर्थ न हो उसे अयथार्थ—अन्यथा ज्ञेय (बाधित अर्थ वा अर्थाध्यास) कहते हें (यथा डोरीका सर्प). ईश्वरके ज्ञानका यहां प्रसंग नहीं हे. अब आगे अर्थ लिखते हें ॥

सूत्रार्थ—अध्यास (अर्थाध्यास, ज्ञानाध्यास) की सिद्धि हे क्योंकि उसका बाध होजाता हे. जो अध्यास नहीं उसका बाध नहीं होता ॥ **३९२** ॥ जेसेके अर्थ ग्रहण करनेवास्ते चक्षुवृत्ति शरीरसे बाहिरजाती हे, एसा जाना ओर माना जाताथा. वर्तमानमें प्रकाश, किरण ओर ईथर—विद्याके द्वारा परिक्षा होनेपर यह ज्ञान ओर मान्यता असिद्ध होगई याने वृत्ति बाहिर नहीं जाती यह सिद्ध होगया. (अ. ३ । में देखोगे). इसलिये वृत्तिबाह्यगमनका जान्ना—मान्ना अध्यास कहा जाता हे ॥ ३९३ ॥ किंवा प्रतिबिंब यह मनोवृत्तिका विकार हे, अथवा चक्षुवृत्ति बाहिर जाके बिंबकोही प्रतिबिंब रुप मानती हे, किंवा प्रतिबिंब अविद्या रचित बाह्याकार हे; एसा मानाजाता था सो असिद्ध होगया—बाधित ठेरा. कार्य रुप द्रव्य जल, चार तत्वोंसे बना हे, एसे आर्यप्रजा मानती थी; परंतु अन्य प्रजा जलकोही तत्वरुप मानती थी. वर्तमानमें जल ऑक्षजनादिसे बनाया जाता हे; अतः पूर्व मंतव्य बाध होनेसे अध्यासरुप कहा जाता हे. (शं.) रज्जुसर्पादिके प्रसंगमें दोषवश अध्यास होता हे. वृत्ति बाह्यगमनादि प्रसंगमें एसा नहीं होता; किंतु दलीलयुक्ति बताते हें; अतः अध्यासरुप नहीं. (उ.) अन्याध्यास प्रसंगवत् इस प्रसंगमेंभी सामान्यज्ञान, विशेषअज्ञानादि दोष हें, उसीमें युक्ति, प्रयुक्ति ओर निश्चयका समावेश होजाता हे; क्योंकि अध्यास (भ्रम) भी निश्चय ओर संशय एसे दो रुपका होता हे.[१] अतः अध्यासरुप[२] हे. (शं.) वृत्ति बाह्यअगमनादि यह मंतव्यभी जो भविष्यमें असिद्ध ठेरे तो क्या कहोगे. (उ.) **अध्यास** कहेंगे. परंतु बाध होने तक अध्याससंज्ञा नहीं दीजासकती. जानके अन्यथा कहना मान्ना अध्यास नहीं हे किंतु वोह असत्, कपट, दंभ वा छल हे; क्योंकि अध्यास, इच्छित (कल्पित) नहीं होता; दोषबलसे वा अन्यथा स्वाभाविक होजाता हे.

मेरी आंख, में काना, मेरा शरीर दुबला, में मोटा, मोरी चूती हे, इत्यादि

[१] अनुभव ओर स्मृतिभी यथार्थ, अयथार्थ एसे २ प्रकारके होते हे.

[२] अध्यासका शब्दार्थ=सब तरफ सविस्तृत बेठना.

व्यवहारमें अध्यास भाग हे. इसप्रकार अध्यासकी सिद्धि हे ॥ ३९३ ॥ अध्यासके लक्षण ओर वर्गमें विद्वानोंका मतभेद हे ॥३९४॥ जेसेके कोई "तिसमें न तिसकी बुद्धि" सो अध्यास; कोई "स्वाभावाधिकरणमें अवभास वा अन्यथा प्रतीति" सो अध्यास; एसा कहता हे. तथा कोई केवल ज्ञानाध्यासही मानता हे, कोई केवळ अर्थाध्यासही स्वीकारता हे ओर कोई उभयाध्यास मानता हे. तथा कोई संसर्गाध्यास (दोके मेलसे जो अन्योऽन्याध्यास) कहता हे, कोई असंसर्गाध्यास ओर संसर्गाध्यास उभय प्रकार मानता हे. कोइ अध्यासको सत्, कोई असत्, कोइ उभयरुप, कोइ अनुभय (अनिश्चित) ओर कोई सदसद्से विलक्षण प्रतिपादन करता हे. इत्यादि मतभेद (याने अध्यारोप) हें ॥ ३९६ ॥ अब आगे अपवाद कहते हें.—

अध्यास सत्रुप नहीं हे, क्योंकि प्रतितिके पूर्व ओर परिक्षा वा बाध वा निवृत्तिके उत्तर उसका अभाव होता हे. जो अध्यासरुप नहीं वोह पूर्वमेंभी ओर परिक्षा कालमेंभी वेसाही होता हे ॥ ३९७॥ अध्यास असद्रुपभी नहीं हे, क्योंकि जिसे अध्यास संज्ञा दोगे वोह प्रतीत होता हे. जो असद् हे उसकी प्रतिती नहीं होती—अर्थ शून्य होता हे ॥ ३९८ ॥ अध्यास सदसद्रुपभी नहीं हे, क्योंकि सद्, असद्का विरोध हे, इसलिये एकही वस्तु सदसद्रुप नहीं होसकती. तथा उपरोक्त दोनों (सद–असद्वाले) दोष आवेंगे ॥ ३९९ ॥ अध्यास विज्ञान (आत्मा, मगज, बुद्धि, क्षणिकविज्ञान) का परिणाम (वा ईम्प्रेशन वा असर वा अवस्था) रुपभी नहीं हे; क्योंकि ज्ञानाध्यास ओर अर्थाध्यास यह दोनों समकालीन होते हें परंतु एक वस्तुके एक कालमें दो परिणाम नहीं होते, इसलिये एक विज्ञानका परिणाम नहीं ॥ ४०० ॥ ज्ञेय अन्यरुपसे भासे सो अध्यास, एसाभी नहीं होता, क्योंकि एसा होना असंभव हे (यथा डोरी अपने स्वरुप डोरीसे अन्यथा याने सर्परुप होके विषय हो यह असंभव हे) ॥४०१॥ अन्य देशकालस्थ वस्तु (सर्प) अन्य याने वर्तमान सन्मुख देशमें भासता हो सो अध्यास हे, एसाभी नहीं हे; क्योंकि अन्य देशस्थ वस्तुके समीप जो वस्तु हो वोह नहीं जान पडती ॥ (तथा नाश हुयी वस्तु (सर्पादि) सन्मुखमें प्रतीत नहीं होसकती) ॥४०२॥ अन्यका (रज्जु आदिमें जो सर्पादिका भान सो पूर्व अदृष्ट सर्पादिका) धर्म, अन्य (डोरी वगेरे) में भासता हे सो अध्यास हे, यहभी नहीं बनता; क्योंकि धर्म, अपने धर्मीसे पृथक नहीं रहता ॥ ४०३ ॥ अध्यास (डोरीमें यह सर्प एसा) स्मृति रुपभी नहीं हे,

क्योंकि अध्यास तत् (सो) का विषय नहीं होता, स्मृति सो का विषय हुवा करती हे. अध्यास तो इदंका विषय हुवा करता हे, इसलिये स्मृतिरुप नहीं हे (ओर स्मृतिसे सन्मुखवत् भय नहीं होता. सर्पादिके अध्यासमें तो भयादि होते हें, इसलियेभी अध्यास, स्मृतिरुप नहीं हे) ॥ ४०४ ॥ अध्यास, अभाव (शून्य) जन्यभी नहीं हे, क्योंकि अभावसे भावरुप (प्रतीत हो एसा) पदार्थ नहीं बनता ॥ ४०५ ॥ अध्यास यह मन (अंतःकरण वा मगज) की वृत्तिसे इतर अन्य प्रकारकी (अविद्यादि) वृत्तिका परिणाम हो, एसाभी नहीं हे, क्योंकि वहां अंतःकरण (वा आत्मा वा मगज) से इतर वृत्तिका अभाव हे ॥ ४०६ ॥ अध्यासको अनेकांत (अनिश्चित, सद्, असद्, सदसद्, ओर न सद न असद् उभय) रुपभी नहीं कहा जाता; क्योंकि कोई न कोई प्रकारका हे तो सही ॥ तथा बाध पीछे जानभी पडता हे ॥ ४०७ ॥ जब अध्यासका अभाव होता हे किंवा परिक्षाकी जाती हे तबभी उपर माने हुये अध्यारोप जेसा बाध नहीं होता, इसलिये उक्त सतादि आरोपकी असिद्धि हे ॥ ४०८ ॥ जेसेके स्वप्न, रज्जुसर्प, मृगजल, शुक्ति रजतादिके प्रसंगोंमें देखते हें ॥४०९॥ स्वप्नके बाध होनेके पीछे स्वप्न, सत्रुप था, असदरुप था, सदसदरुप था, विज्ञानका परिणाम था, अन्य वस्तु अन्य रुपसे भासी थी, स्वप्नमें अन्य देशकाल स्थित वस्तु भासी थी, स्वप्नमें अन्य पदार्थोंके धर्म देखता था, स्वप्नमें पदार्थोंकी स्मृति थी, स्वप्नसृष्टि अभावसे पेदा हुई थी, स्वप्न अज्ञान वा अविद्या वृत्तिका परिणाम था अंतःकरणका नहीं था, स्वप्न—सद, असद्, सदसद् वा न उभय एसा था, इत्यादि रुपसे बाध नहीं होता—एसा नहीं जान पडता (अ. ३ में देखो स्वप्न विकल्पादि ३८ रुप नहीं हे). इसीप्रकार रज्जुसर्पादि तमाम अध्यस्त प्रसंगमें यथायोग्य जान लेना चाहिये. ॥ ४०९ ॥ किंतु अध्यास यह अपेक्षासे विलक्षणरुप कहा जाता हे ॥४१०॥ क्योंकि अपने अधिष्ठानसे अन्यथा-विलक्षण होता हे अर्थात अधिष्ठानकी सत्ता (अस्तित्व प्रकार) से विलक्षण (विषम सत्तावाला) अन्यथा स्वरुप होता हे ॥ ४११ ॥ जेसेके स्वप्न अपने अधिष्ठान द्रष्टा चेतनके अस्तित्वसे विलक्षण अन्यथा स्वरुप हे ओर जिसको युक्ति वाणीसे न कहसकें एसा उसका अनिर्वचनीय विलक्षण स्वरुप हे. सारांश अधिष्ठान चेतनकी अपेक्षासे उसे विलक्षण संज्ञादी जावे एसा हे (अ. ३ में देखो). ॥४१२॥

जो जेसा अर्थ हे उसमें वेसी बुद्धि (ज्ञान) न हो किंतु अन्यथा हो तो इसको भ्रम कहेंगे. इसीको **ज्ञानाध्यास** कहते हें ॥ ४१३ ॥ क्योंकि वक्ष्यमाण

अज्ञानादिके वश, जो वस्तु हे उसकी संज्ञा अन्य रखलेता हे. (जेसेके सादृश्य दोषवश रज्जुको सर्प नामसे कहने लगता हे. यह संज्ञा अर्थ शून्य-विकल्परुप हे.[1]) ॥४१४॥ जो वस्तु प्रतीतिकालसे पहेले ओर बाध होनेके पीछे न हो किंतु प्रतीतिकालमें हो किंवा जिस भाव प्रकारवाली प्रतीतिकालमें भासती हो वेसे भाव प्रकारवाली पीछे (परिक्षाकाल वा बाधकालमें) न जान पडे-एसी वस्तु (अर्थ वा ज्ञान) अध्यास शब्दकी विषय हे. (जेसेके स्वप्न, मृगजलादि हें). सारांश जो पूर्व उत्तरमें न हो वा पूर्ववत् उत्तरमें न रहे उसे **अध्यास** कहते हें. (भ्रम ओर अध्यासका यत्किंचित अंतर हे, उसके जान्नेके लिये **बस.** गत उत्तर फिलोसोफीमें भ्रम, अध्यास प्रसंग देखो) ॥ ४१५ ॥ योग्य संबंधका अभाव (वस्तुका विशेष रुपसे न ज्ञान), सामान्यज्ञान, वस्तुके संस्कार, प्रमाता दोष, प्रमाण दोष ओर प्रमेय दोष, यह ६ अध्यास (भ्रम) होनेकी सामग्री हें ॥ ४१६ ॥ विषयी (ज्ञाता–द्रष्टा) ओर विषय (पंच विषय वा इंद्रिय अंतःकरण अर्थात दृश्य) इन उभयका योग्य संबंध हो तब विषयका विशेषज्ञान (धर्म सहित ज्ञान) होता हे. जो योग्य संबंध न हो किंतु संबंधमात्र हो तो विषयका सामान्यज्ञान होता हे ओर जो संबंधका अभाव हो तो ज्ञान नहीं होगा. योग्य अर्थात प्रमाता, प्रमाण ओर प्रमेय निर्दोष हों, उनका जो संबंध सो योग्यसंबंध कहाता हे. प्रसंगमें जब अधिष्ठान (जिसमें अध्यास हो) का सामान्यज्ञान (यह कुछ हे) हो १, ओर विशेष अज्ञान (यह डोरीही हे एसा ज्ञान न होना) हो २, जिसका अध्यास होना हे (सर्प) उस वस्तुके पूर्वके संस्कार हों ३, ओर प्रमाता दोष (भयादि) ४, प्रमाण दोष (नेत्रमें अंधेरादि) ५, ओर प्रमेय दोष (डोरी ओर सर्पका सादृश्यत्व) हो ६ । यह ६ सामग्री हों तब अध्यास वा भ्रम होता हे ॥ ४१६ ॥ जबतक भ्रम वा अध्यास हे तबतक भ्रम, भ्रमरुपसे ओर अध्यास, अध्यासरुपसे विषय नहीं होता किंतु उनके निवृत्त (बाध) होनेपर भ्रम था, अध्यास था—एसे रुपमें उनकी सिद्धि होती हे ॥ ४१७ ॥ भ्रम ओर अध्यास—इन उभयका (तथा प्रमा ओर अप्रमा इन उभयका) विवेक (निरिक्षण)-संबंध १, किरण २, सूक्ष्मा (ईथर) ३, ओर अंतकरणकी वृत्ति ४, इन ४ के स्वरुप तथा कार्य—परिणाम जान्ने (पहिछान्ने)से होजाता हे ॥ ४१८ ॥ जेसेके स्वप्न ओर मृगजलका

[1] अज्ञानसे भ्रम ओर भ्रमसे अध्यास, यूंभी कहा जासकता हे; परंतु अध्यासका स्वरुप होनेपर भ्रममात्र संज्ञा नहीं रहती.

विवेक संबंधादि ४ हे होजाता हे ॥ ४१९ ॥ विषयी, विषय (रूपरंग) का जब योग्य संबंध हो तब, चक्षु द्वारा रंग ओर आकारकी किरणें अंदर जाके फोटो होता हे सो प्रतीत होना रुपका यथार्थ ज्ञान हे. परंतु जो किरणें स्पष्ट रुप धरके न जावें, सामान्य रुपसे जावें तो सादृश्यादि दोषवश यथासंस्कार ज्ञेयका अन्य नाम कल्पनेमें आजाता हे; यह अर्थशून्य भ्रम हुवा. ओर यदि अंतःकरणकी वृत्ति अस्पष्टके आकार हो तब यथासंस्कार शेषा (सूक्ष्मा)में आकार बनता हे सो कभी अस्पष्ट किरणोंमें जुडता हे (उससे संशय होता हे) ओर कभी जुदा होता हे, उसकी प्रतीति अर्थाध्यास हे. (विशेष बस. उत्तर फिलोसोफीमें हे). एसेही स्वप्न सृष्टि हे. संस्कारी मनके संस्कार स्फूर्ण समान सूक्ष्मामें आकार बनते हें सो स्वप्न हे (अ. ३ में विस्तार हे) ॥ ४१९ ॥ अध्यासके विवेकसे दृश्य (ब्रह्मांड) के स्वरुपका विवेक होजाता हे—याने यह फल हे ॥ ४२० ॥ क्योंकि अधिष्ठान अध्यस्त (अधर रहा हुवा अध्यास)--इन उभयका भेद (जैसे वे परस्परमें विलक्षण हें वेसे) विलक्षण हे ओर अनिर्वचनीय हे ॥ ४२१ ॥ तथाहि अध्यासको अध्यास नहीं होता तो फेर अध्यास किसको? उसका साक्षी कोन? इसका उत्तर शब्द, युक्तिमें नहीं मिलता किंतु अनुभवगम्य हे, इसलियेभी दृश्यका विवेक होजाता हे ॥४२२॥ उभयका वैलक्षण्य ओर ४२१ का समाधान, स्वप्रकाश चेतनाधिष्ठानमें अकथ्य प्रकारसे स्वतःग्रहण होता हे एसा भाव होजाय तब, जिसमें ग्रहण हुवा उसके लिये नेति (जो जाना--माना सो नहीं) ओर जो ग्रहण हुवा उसकेलिये अन्यथा (जेसा जाना--माना उससे ओर प्रकारका) शब्दका प्रयोग होता हे. अर्थात अवर्णनीय, अकथ्य, लक्षालक्ष्य रुप हे. इसप्रकार अधिष्ठान (स्वप्रकाश, आधार) ओर अध्यस्त (प्रकाश्य—अध्यास) का अकथ्य प्रकारसे विवेक होजाता हे ॥ ४२३ ॥

विवेचन—तमाम सूत्रोंका ओर अध्यासका विस्तारपूर्वक विवेचन मूलमें हे. यहां तो अतिसंक्षेपमें आशयमात्र (क्रम रहित सार मात्र) लिखते हें.[1] जिसने इस शास्त्रीय विषयको कुछभी जाना वा सुना होगा वोह स्वयं विस्तार करके समझ सकेगा.

---

[1] क्योंकि उनउन फिलोसोफरोंकी रीति अनुसार प्रमा (यथार्थज्ञान) का ध्यान हो तबही उनके माने हुये अप्रमा (अयथार्थ ज्ञान—ज्ञानाध्यास) ओर उसके विषय अर्थाध्यासका स्वरुप अच्छीप्रकार समझा जासकता हे. यह दोनों बाबत उनउनके ग्रंथमें विस्तारसे होती हें. सब लिखनेका न यहां प्रसंग हे ओर न अवसर हे.

ख्यातिओंके नाम–ख्याति अर्थात प्रतीत होना ओर कथन. अध्यास प्रसंगमेंनीचे अनुसार विद्वानोंकी ख्याति हें. (१) **सत् ख्याति**--(प्रकृतिवादियोंकी). (२) **असत् ख्याति**--(शून्यवादिकी). (३) **सदसद् ख्याति**--(अनेकांतवादिकी). (४) **आत्म ख्याति**--(विज्ञानवादि, इम्प्रेशनवादिकी). (५) **अन्यथा ख्याति**-तीन प्रकारकी हें.--(क) अधिष्ठान (डोरी) ही अन्य (सर्प) रुपसे प्रतीत होता हे, (ख) अन्य देशस्थ (सर्पादि) अन्य (डोरी) देशमें प्रतीत होता हे, (ग) अन्य (सर्प)का धर्म अन्य (डोरी)में प्रतीत होता हे. (यह अन्यथावादियोंकी हें.) एवं ५ । ६ । ७ संज्ञा हुई. (८) **अख्याति ख्याति**--(इदं ओर स्मृतिके अविवेकवादिकी). (९) **अन्य ख्याति**--(अन्यका अन्यरुप परिणाम होने पर वही परिणामी अन्य रुपसे प्रतीत हो सो अन्य ख्याति, (ब्रह्मवादकी). (१०) **अनिर्वचनीय ख्याति**--(मायावादि–विवर्त्तवादिकी). (११) **विलक्षण ख्याति**-(अध्यस्तवादिकी). (१२) **अनिश्चित ख्याति**--(संशयवादिकी). (१३) **अनेकांत ख्याति**॥ इन १३ में नं. ३ ओर १३ यह दोनों एक जैसी हें ओर नं १० तथा १३ एक जैसी हें. ओर इन १३ (वा १६ ख्याति) का समावेश–सद्, असद्, सदसद्, न उभय ओर विलक्षण (अनिर्वचनीय) इन पांचोंमें होजाता हे.

अध्यासके दृष्टांत–उदाहरण–प्रतिबिंब, डोरीसर्प, शुक्तिरजत, मृगजल, नभ नीलता, स्वप्न, लाल वस्त्र संबंधी श्वेतकाच, लालकाच एसे रुपमें प्रतीत होना. कनक--कुंडल, जलबर्फ, आत्मा--मनका अन्योऽन्याध्यास, नीलाजल, संखपीत, दशाभ्रम, स्थाणु पुरुष, चोरके शब्दमें जानवरके शब्दका भ्रम, विद्यार्थियोंमें स्वपुत्रके शब्दका भ्रम, तापकालमें बर्फ विषे उष्णस्पर्शका भ्रम, शून्य त्वचामें अन्यथाका भ्रम, पित दोषसे मिसरीमें कटुताका भ्रम, सर्पदंशकालमें नींब विषे मधुरताका भ्रम, श्लेषमकालमें असुगंधताका भ्रम, चंदन समीपस्थ लकडीमें सुगंधताका भ्रम, अंधेरेमें डोरी स्पर्शसे सर्प विषका भ्रम. उससे मरण. इ. हरेक पक्षकारकी रीति वा मंतव्यको सबमें तोलना चाहिये. जो उनमें अतिव्याप्ति वा अव्याप्ति वा असंभव दोष आवे तो वोह रीति वा मंतव्य मान्य नहीं होसकते.

अध्यासके भेद.–संसर्गाध्यास–दोके संबंध होनेपर एकका धर्म दूसरेमें भासना.। जेसे रक्त वस्त्रके संबंधसे श्वेत काच, लाल मालूम हो ॥ चित्तके धर्म आत्मामें ओर आत्माके धर्म चित्तमें मालूम होना–अन्योऽन्याध्यास ॥ काचमें मकान प्रतीत होना--स्वरुपाध्यास (धर्मिअध्यास) हे ॥ काचमें लाली याने काचलाल

मालूम होनेमें—**धर्माध्यास** हे ॥ डोरीमें सर्प मालूम होना. असंसर्ग अध्यास हे ॥ यह सब **अर्थाध्यास** हें; इनका ज्ञान **ज्ञानाध्यास** हे. परोक्षमें अर्थशून्यकी मान्यता वा भावना होजाना **असदध्यास** हे (इसका समावेश असत ख्यातिमें होता हे). इत्यादि भेद हें.

चक्षु विषयकसे इतराध्यासमें विशेष विवाद नहीं हे क्योंकि वे बहुधा संसर्गी वा मनोकल्पित होते हें, परंतु असंसर्गीमें विशेष विवाद हे.

अध्यासके लक्षण—(१) स्मृतिरुप परत्र पूर्व द्रष्टावभास अध्यास. (२) अन्यमें अन्य धर्मका अवभास. (३) अन्यस्थकी प्रतीति. (४) अन्यथा रुपेण अवभास. (५) अविवेकजन्य अन्यथा प्रतीति. (५) विपरीत वा अन्यके धर्मकी कल्पना. (६) स्वाभावाधिकरणमें अवभास. (७) अन्यके धर्म द्वारा जो अवभास सो. (७) तिसमें न तिसकी बुद्धि. (८) अन्यथा प्रतीति. (९) वशात नाम कल्पन. (१०) इत्यादि. इनका जब विवेचन हो तब इनमें बारीकी निकलती हे.

फिलोसोफरोंकी वा विद्वानोंकी एसी पद्धति होती हे कि जिस नियमसे अपना मंतव्य वा विषय स्थापित करते हें वोह उनके तमाम प्रसंगमें लगना चाहिये. यथा हर्बर्टस्पेनसर--साहेबने जो उत्क्रांति, अनुत्क्रांतिका नियम सिद्ध किया हे सो वे उसे हरेक विषय (धर्म, नीति, व्यवहार, प्राणीकी उत्पति आदि) में लगाते हें. जो एसा न हो किंतु अव्याप्ति वा अतिव्याप्तिवाला हो तो मनमुखी मत कहाता हे. एसेही अध्यासवाद प्रसंगमें हे. अर्थात जो नियम वा प्रकार, जगत सिद्धि वा अध्यास सिद्धिमें लगावें वोही नियम वा प्रकार, अध्यास वा जगत तथा हरेक व्यवहारमें लगना चाहिये. सूत्र ४२० इसी आशयसे उद्धर्त हुवा हे. उनउन फिलोसोफरोंकी रीतिसे यदि **प्रमा** (यथार्थ ज्ञान) का स्वरुप ध्यानमें हो तो उनके माने हुये **अप्रमा** (अयथार्थ ज्ञान) ओर उसके विषय--अर्थाध्यासका स्वरुपभी भलीभांति ध्यानमें आता हे. यहांतो अध्यासका संक्षेपमें उदाहरण देते हें.—[१]

(१) **सत् ख्याति**—(आरोप) संसारमें असत् वस्तु कोईभी नहीं हे, सब सत् हे, अनहुई वस्तु प्रतीत नहीं होती; इसलिये अध्यास प्रसंगमें जहां डोरी आ-

[१] चाहिये तो यह था कि हरेक प्रकारकी ख्यातिके आरोप अनुसार, उसे जगत ओर लौकिक व्यवहारमें घटाके बताया जाय ओर फेर उसका उसी क्रमसे अपवाद किया जाय, परंतु विस्तार भयसे प्रस्तुत विषय—अध्यास ओर सृष्टि संबंधमेंही दरसाया गया हे अर्थात उदाहरण मात्र हे, एसा जानना चाहिये.

दिमें सर्पादि प्रतीत होते हें वहां सर्पादिके होने योग्य परमाणु एकत्र हुये जान पडते हें, रसायणीयसंयोग न होनेसे विषादि नहीं होते, प्रकाशादि कारणसे वे विखर जाते हें. किंवा डोरीके अस्पष्ट फोटो भगजमें गये वे सत् संस्कारसे आच्छादित हुये सर्प रुपसे अंदरमें विषय होते हें. उभय प्रसंगमें उपर कहे हुये दोषोंमेंसे सब वा अमुक कारण हें. जहां मिसरीमें कटुताका अध्यास होजाता हे वहां मुखमें पित्त दोष हे उसकरके मधुरता दबनेसे कटुता जान पडती हे. इसीप्रकार मृगजलादि प्रसंगोंमें योग्य रीतिसे योजलेना चाहिये. जेसे अध्यासका प्रकार हे वेसेही जगत हे अर्थात सत हे, परमाणुओंका पुंज हे. कहीं पूर्ण रुप होता हे जेसेके बिंब ओर कहीं अपूर्ण रुप होता हे जेसेके प्रतिबिंब हे. इ.

(अप.) जो सतख्याति हो तो दूसरे पुरुषको डोरीमें लकडी वा सर्पकी शुक्ति में रजत वा भोडलकी प्रतीति ओर स्वप्नमें भोग न होना चाहिये, मृगजलमें वस्त्र सीला होजाना चाहिये, वहां अग्नि, जल रही हो तो मृगजल मालूम न होना चाहिये, दूसरेको ध्वंध रुपमें न भासना चाहिये, भ्रमनिवृत्तिकालमें पूर्व जेसा मृगजल प्रतीत न होना चाहिये ओर गरम (तप्त) ऋतुमें विषय न होना चाहिये; संस्कार असतकेभी होजाते हें यथा स्वप्नमें न पुत्रके पुत्र होना देखते हें; नभ विषे नीलता, समीप में नहीं भासती दूर देशमें भासती हे; एसा नहीं होना चाहिये. (इ.) परंतु एसा नहीं होता; इसलिये सत् ख्यातिवाला मंतव्य दूषित हे. वेसेही जगत प्रसंगमें जानलेना चाहिये. यथा जो सब संसार सत् हो तो स्वप्न सृष्टि न होना चाहिये; डोरी वगेरे अधिष्ठानके विना सर्पादिकी प्रतीति नहीं होती, इसीप्रकार इस जगतको अधिष्ठानकी अपेक्षा होगी. अब जो यह दोनों सत् (व्यापकाधिष्ठान ओर परिच्छिन ब्रह्मांड) सत्य हों तो एक दूसरेके स्वरुपमें एक दूसरेके स्वरुपका प्रवेश न होसकनेसे अव्यवस्था रहेगी (विशेष बस. का विलक्षणवाद देखो) परंतु उभय देखते हें. इसलिये सत्से अन्यथाकी सिद्धि होती हे.

(२) असत् ख्याति-(आ.) सामान्यज्ञान ओर संस्कारके विना अध्यास नहीं होता तो संस्कार ओर ज्ञान मस्तकमें ओर सर्प ज्ञेय बाहिर हो, यह असंभव हे. सर्पादिके बाध होने पीछे मुझे संस्कार थे, एसा भान नहीं होता ओर न सर्प आदिके उपादानकी सिद्धि होती हे; तथा सत्का बाध नहीं होता; इसप्रकार जबके सर्पादि पूर्व उत्तरमें नहीं ओर पूर्व उत्तरमें बाह्य वा अंदरमें नहीं तो

२ अजातवादका समावेश इसीमें होजाता हे.

उनका मध्यमें होना नहीं बनता; इसलिये सर्पादि अर्थशून्य हें. वेसेही शुक्ति वगेरे प्रसंगमें घटित रीतिसे योजलेना चाहिये. ज्ञेय नहीं तो उसका ज्ञान केसे माना जाय; इस रीतिसे ज्ञेय, ज्ञान उभय (अध्यास) शून्य हें. जेसे सर्पादि हें वेसेही यह जगत (डोरी आदि) शून्यरुप हे. यथा जाग्रतमें स्वप्नसृष्टि शून्य तद्वत् स्वप्नमें जाग्रतसृष्टि शून्य हे. जो दृश्य प्रतीत होता हे वोह रज्जुसर्प वा स्वप्नसृष्टिके समान (अनहुया) हे. याने शून्य (असत्) हे.

(अप.) ज्ञेयके फोटो अंदरमें जानेसे ज्ञेय, संस्कार ओर ज्ञान अंदरमेंही हें. बाह्य ज्ञेयका उपयोग अभ्याससे होता हे. जेसे शब्दका उच्चार, पूर्वसंस्कारसे होता हे परंतु वे ज्ञात नहीं होते वेसे संस्कारोंका अज्ञात रुपसेभी उपयोग होता हे; इसलिये भ्रमके बाध हुये पीछेभी अज्ञात रहते हें. कार्यरुप रचनाका बाध होता हे, नहींके उसके मूल उपादानका. क्योंकि किसी नवीन वस्तुकी उत्पत्ति वा नाश नहीं होता, घटादिका नाश होता हे, उसके उपादानका नहीं होता. डोरीवाले सर्पका नाश होता हे, उसके आकार धरनेवालेका नहीं. इस रीतिसे अदृष्ट--सूक्ष्म उपादानकी सिद्धि होती हे. स्वप्न वा सर्पादिका मध्यमें होनाही उसके उपादानकी सिद्धि करदेता हे, क्योंकि अनहुईकी प्रतीति होती हो, एसी व्याप्ति नहीं मिलती; नहीं तो वंध्याके पुत्र, सुस्सेके सींगभी जान पडते. शून्य, असत् वा अभावसे भावरुप होता हो तो रेतीमेंसे घी ओर प्रकाशमेंसे तमभी निकलना चाहिये परंतु एसा नहीं होता. शून्य, नाना आकार नहीं धारसकता. प्रतिबिंबादि पुनः पुनः जान पडते हें. शून्यका साक्षी, शून्य--असत्रुप नहीं होसकता; नहीं तो शून्यकीही सिद्धि नहीं होगी. इसलिये अध्यासके विषय सर्पादि असत् ख्यातिके मंतव्य समान नहीं हें अर्थात असत् ख्याति अलीक हे. इसीप्रकार जगत असत--शून्यरुप नहीं हे. जो प्रतीत होता हे उसका उपादान अव्यक्त ओर उसका साक्षी अधिष्ठान हे. अव्यक्त (सूक्ष्म प्रकृति) के अंशोंका संयोग वा परिणाम (रचना--अवस्था) रुप यह ब्रह्मांड हे. कोई रीतिसे कार्यरुप दृश्यको क्षणभंगुर मानलेवें अर्थात नामरुप बदलनेसे सत् जेसे वा सत् न हों, परंतु उनका मूल अव्यक्त तो हे ही. इसलिये उसकी ओर उसके कार्यकी असत् ख्याति (शून्यता) नहीं हे.

(३) **सदसद् ख्याति**--(आ.) जेसे स्वप्न प्रतीत कालमें सत् हे, क्योंकि असत्की प्रतीति नहीं होती, स्वप्नकी प्रतीति होती हे; ओर अप्रतीति कालमें असत् हे, एसा सबको अनुभव होता हे. इसीप्रकार डोरीके सर्पादि हें अर्थात अध्यास

सदसद् रुप हे. किंवा जेसे घटादि स्वस्वरुप (द्रव्य), स्वक्षेत्र, स्वकाल ओर स्वपर्याय भावमें सत् हें ओर दूसरे पटादिके स्वरुपादि भावसे सत् नहीं किंतु असत् हें, इसलिये सदसद् रुप हें. वेसेही डोरीके सर्पादि सदसद् रुप हें. परंतु वर्तमान क्षणमें हें, उत्तर क्षण विशिष्ट वा भूत क्षण विशिष्ट नहीं हें, इत्यादि कारणसे किसी प्रकार उनको सत् ओर किसी प्रकारसे असत् कहाजाता हे ओर किसी प्रकारसे सदसद् कहाजाता हे ओर किसी प्रकारसे कुछभी नहीं कहाजासकता (विशेष आगे जैन प्रसंगमें). जेसे स्वप्न सर्पादि वास्ते कहा वेसेही मृगजल आदि ओर उनके ज्ञान प्रसंगमें घटित रीतिसे योजलेना चाहिये. तथा घटादि समान इस जगतके मूल तत्वों वास्तेभी जानलेना चाहिये; अर्थात सदसद् रुप हें.

(अप.)—स्वप्नसृष्टि, स्वप्नकालमें ओर बाघ पीछे उभय [सदसद्] रुप नहीं होती किंतु जेसे घटादि नाम रुप उसके मूल द्रव्योंकी रचना रुप अवस्था हें, ओर उनका उपादान [परमाणु] नित्य हे, एसेही स्वप्नसृष्टि हे--उसका मूल असत् रुप नहीं हे, अतः उसका कार्यभी असत् रुप नहीं हे; क्योंकि जेसा उपादान वा संयोगी होता हे वेसाही उसका कार्य होता हे. असत् किसीका उपादान वा संयोगी नहीं होता. एक वस्तुको सदसद् कहना मेरे मुखमें जिव्हा नहीं, एसे कहने समान हे; व्याघात दोष हे-क्योंकि सदसद् विरोधी धर्म एक धर्मीके नहीं होसकते. मृगजल जो किसी प्रकार सद् हो तो उससे किसी प्रकारसे तृषा जानी चाहिये, असद् हो तो प्रतीत न होना चाहिये. स्वप्न दोष जाग्रतमें देखते हें. असत् कोई वस्तु नहीं होती. प्रतिबिंब, घट समान उसके उपादानकी रचना हे, इसलिये सदसद् रुप नहीं. तथाहि पूर्वोक्त सत् ख्याति ओर असत् ख्यातिवाले दोष आते हें. जो सदसद्--ख्यातिको व्यवहारनय मानें तो यह निग्रहस्थान हे, क्योंकि सत्यनिर्णय प्रसंगमें व्यवहार द्रष्टि नहीं लीजाती [विशेष जैन प्रसंगके अपवादमें]. इसीप्रकार शुक्तिरजतादि अन्य अध्यास प्रसंगमें घटालेना चाहिये अर्थात सदसद् ख्याति अलीक हे. इसीप्रकार जगतके मूल कारण ओर उसके संयोग--वियोगरुप वा परिणामरुप कार्यमें सदसद् ख्याति सिद्ध नहीं होती, एसा योजलेना चाहिये. परकी द्रष्टिसे किसीको असद् मानें तो वोह असत् नहीं होता किंवा असत् धर्म उसमें नहीं आता किंतु अन्योऽन्याभाव, इतनाही कहना पडता हे. अतः जगत सदसद् रुप नहीं; किंतु एकांत रुप हे.

(४) **आत्म ख्याति**–[आ.] आत्मा अर्थात विज्ञान [प्रकाशरुप बुद्धि].

नामका क्षणिक परिणामी पदार्थ हे वोह पूर्वपूर्व संस्कार–वासनासे यथासंस्कार क्षण क्षणमें परिणामको पाता हे, उससे इतर बाहिर [शरीरसे इतर] कोई पदार्थ नहीं हे; किंतु जेसे स्वप्नमें अर्थक्रियावाले उसके क्षणिक परिणाम सो स्वप्न सृष्टि हे वेसेही यहां हे; भ्रम प्रसंगमें जब डोरी परिणाम तब सर्प परिणाम ओर जब सर्प परिणाम तब डोरी परिणाम नहीं होता. इसीप्रकार सविष, निर्विषवाले परिणाम होते हें. डोरी कालमें पूर्वोत्तरमें सर्प नहीं हे, सर्पकालमें पूर्वोत्तरमें डोरी नहीं हे; इस रीतीसे अध्याससंज्ञा ओर सत् संज्ञावाले क्षणिक परिणाम होते हें. इसी प्रकार याने स्वप्न सृष्टि समान यह द्रश्य ब्रह्मांड क्षणिक परिणाम हे. स्थाई क्यों जान पडता हे ? इस शंकाका समाधान स्वप्नसृष्टिसे करलेना चाहिये. जाग्रतमें आवें तब स्वप्नकी त्रपुटि क्षणिक ओर स्वप्नमें जावें तब जाग्रतकी त्रपुटी क्षणिक हें, एसा मालूम होजाता हे. इसलिये यह सब विज्ञानका क्षणिक परिणाम (आत्मारुप) होनेसे आत्मख्याति हे.

(अप.) एक डोरीमें किसीको सर्प, किसीको दंड भासता हे परंतु डोरी सबको डोरीरुप भासती हे, इसलिये अंतरस्थ आत्माका डोरी परिणाम नहीं किंतु सर्वको समान विषय होनेसे बाहिर हे. सर्प ओर उसका ज्ञान, उससे भयादि साथ साथ होते हें, इसलिये वे एकका क्षणिक परिणाम नहीं. कारण पूर्वमें हो तब कार्य हो, डोरी आदि क्षणिक होनेसे पूर्वमें न रही तो सर्पादिकी उत्पत्तिही नहीं बनती, इसलिये एक क्षणिक परिणामी सिद्ध नहीं होता. ओर जो अनेक विज्ञान मानें तो मृगजल, नीलता, आकाश ओर सूर्य--चंद्र एक हे. उस उसका एकही रुप सबको भासता हे तो वोह कोनसे क्षणिक विज्ञानका परिणाम होगा, यह नहीं कहसकोगे; इसलियेभी जगत क्षणिकविज्ञानका परिणाम नहीं. तथा इसी रीतिसे डोरी आदि बाह्य वस्तु नहीं यहभी सिद्ध नहीं होता. जब एक वा नाना क्षणिक परिणामीही सिद्ध नहीं होते किंतु स्वप्नमेंभी त्रिपुटी व्यवहार समकालीन ओर स्थाई देखते हें तो फेर एक आत्मख्याति कहां रही. जबके परिणामी हे तो सावयव हे. इसीप्रकार यह जगत सावयव हे, क्षणिक नहीं हे. बाह्यवस्तुकी प्रतीति भ्रम (शून्य) रुप नहीं हे किंतु अर्थरुप समीचीन हे. इसलिये अध्यास, अनध्यास प्रसंगमें [याने कहींभी] आत्मख्याति नहीं हे[1]. (विशेष आगे बौद्ध प्रसंगमें].

[1]अभिन्न निमित्तोपादान वा एक शक्तिवादका इसमेंभी समावेश होसकता हे.

अन्यथ्या रुयाति [३ प्रकार].

(५) **अन्यरुपेण रुयाति**–(आ.) असत् कोई वस्तु नहीं, अनहुईकी प्रतीति असंभव, व्यवहार क्षणिक नहीं, ओर क्षणिकत्वमें प्रतीति असंभव, ओर डोरी सर्प प्रसंगमें बाहिर अंदर सर्प नहीं हे; इसलिये डोरी अपने स्वरुपको न छोडके डोरीही सर्परुपसे प्रतीत होती हे. मृगजल प्रसंगमें मरुके परमाणुपुंज रोशनीके चक्रसे जलरुपसे भासते हें, इसप्रकार उपरोक्त दोषसे अधिष्ठानही अन्य रुपसे जान पडता हे. एसेही शुक्ति रजत आदि प्रसंगमें जानलेना चाहिये. इसीप्रकार यह जगत हे अर्थात ब्रह्मही किंवा एक शक्तिही किंवा प्रकृति परमाणुही जगत रुपमें (होके वा अन्यथा) भासते हें. सो सत् हें; क्योंकि सतका परिणाम वा संयोग सतही होता हे. जहां अपूर्ण याने योग्य परिणाम न हो तहां वोह पूर्ण जेसा उपयोगी नहीं होता यथा डोरीका सर्प रुपसे आभास होना. (नं. ५ ओर वक्ष्यमाण नं. ९ में थोडाक अंतर हे).

(अप.) डोरी आदि अपने रुपको नहीं बदलती, भ्रमनिवृत्तिके पीछेभी वेसेकीवेसी जान पडती हें. प्रत्युत डोरी आदि सर्पादिकी अधिष्ठान होती हें. मृगजल भ्रमनिवृत्तिके पीछेभी भासता हे. स्थाणु, पुरुषका रुप नहीं धरसकता. स्वप्न किसका रुप होके भासता हे, यह नहीं कहसकोगे; क्योंकि मन एक कालमें नाना प्रकारके अनेक परिणाम नहीं धरसकता, आत्मा अपरिणामी हे; ओर इन दो (मन, आत्मा)से इतर वहां अन्य नहीं हे ॥ इसीप्रकार शुक्ति रजतादि प्रसंगमें घटित रीतिसे योजलेना चाहिये. अतः अन्य रुपेण प्रतीति होना असिद्ध हे. इसीप्रकार जगत प्रसंगमें अन्यथा रुपेण नहीं बनता; क्योंकि ब्रह्म, अक्रिय--अपरिणामी--एक ओर समरुप होनेसे उसका रुपांतर नहीं होसकता. ओर यदि कोई एक शक्ति मानें तो यदि वोह परिणामी, नानारुप धारी हे तो सावयव (पुंज) होनी चाहिये, अन्यथा अन्यरुपेण नहीं होसकती. यदि यह पक्ष मान्नेमें आग्रह हो तो भ्रममूलक हे. याने हमारा ज्ञानभी अन्यथा हे; नहींके शक्ति. प्रकृति--परमाणु ओर उनके कार्यरुप घटादि अवस्था [रचना--परिणाम--ईम्प्रेशन] अन्यथा नहीं हें किंतु हें तबही भासते हें ओर कार्य नाश पीछेभी मूलका वेसाही अस्तित्व सिद्ध होता हे. परंतु डोरी तो सर्परुप न हुई ओर भासती हे तथा बाध पीछे डोरी सर्प थी वा सर्पसे डोरी होगई, एसा नहीं जान पडता. इसलिये एसा मानें के डोरीका रुप नहीं बदला किंतु दोष बलसे डोरीकीही सर्प संज्ञा मानी गईथी अर्थात **ज्ञानाध्यास** हुवा था अर्थ शून्य

नाम कल्पा गया था; परंतु यह नाम रुपात्मक जगत वेसा नहीं हे याने कल्पित नहीं हे किंतु संयोगज वा परिणामरुप हे. इसका ज्ञान ओर इस ज्ञानका विषय भ्रमवत विकल्प मात्र नहीं हे; इसलिये अन्य रुपेण ख्याति अव्याप्तिका भक्ष होजाता हे.

(६) **अन्य देशस्थ ख्याति**–(आ.) जेसे दूरस्थ परोक्ष तारागण, दूरबीन द्वारा भासते हें, जेसे दूरस्थ परोक्षबिंब, काचद्वारा आंखमें स्पष्टरुपसे देखपडता हे, एसेही यथासंस्कार दूरस्थ सर्पादि, दोषद्वारा जान पडते हें ओर सादृश्यादिके कारण डोरीआदिमें उनका आरोप होता हे. सारांश दूरस्थ धर्म वा धर्मीकी प्रतीति होजाती हे; इसका नाम अध्यास हे. (शं.) दोषसे तो सामर्थ्य कम होना चाहिये. (उ.) यह नियम नहीं हे.— यथा भस्मक रोगसे भूख लगनेका सामर्थ्य अधिक होनेपर ज्यादे खाता हे. भूतवायु–रोगके द्वारा इतना बल आजाता हे के पांच आदमियोंसेभी नहीं रुकता. सर्पादिके बाधकालमें सामर्थ्यके अभाव होनेसे दूरस्थका भान नहीं होता. एसेही मृगजल, स्वप्नादि प्रसंगमें यथायोग्य योजलेना चाहिये. एसीही यह जगत हे अर्थात परोक्ष अदृष्ट सूक्ष्म परमाणु, जगतरुपसे भासते हें. विवेक होनेपर नामरुप दृश्य नहीं भासते किंतु परोक्ष परमाणुही रहते हें.

(अप.) जो दूरस्थ सर्प सन्मुखमें भासता हो तो कंकरीद्वारा छेडनेसे सर्पकी फुंकार होनी चाहिये, दूसरोंको दंडादिरुपसे भान न होना चाहिये, मृगजलसे प्यास जानी चाहिये, परंतु एसा नहीं होता. ओर जो सन्मुखमें नहीं देखपडता किंतु स्वस्थानपर वा फोटो देख पडता हो तो वहां वृत्ति जानेको तो अवसर नहीं हे ओर जो एसा होता हो तो पृष्टका पदार्थभी जान पडना चाहिये, वा शुक्तिरजत प्रसंगमें दुकानस्थ रजतके समीपके पदार्थभी जान पडने चाहिये, स्वप्नमें भोग न होना चाहिये, स्वप्नमें मिले मित्रको जागने पीछे मित्रसे साक्षी मिलनी चाहिये, पूर्वदृष्ट सर्प रजतादि स्थान वा शरीरसे भ्रष्ट हुये हों तो डोरीमें सर्पादि न मालूम होने चाहिये, पूर्व दृष्ट नाश हुये तालावसे मृगजळ न भासना चाहिये, नाश हुवा पुत्र स्वप्नमें न देखपडना चाहिये; कारणके न तो वह स्वयं हे ओर न उसका प्रतिबिंब होसकता हे; तथाहि वहां प्रतिबिंब होनेकी सामग्रीभी नहीं हे. परंतु उक्तोंसे विरुद्ध होना देखते हें. भ्रमके बाध हुये पीछेभी सर्पादि दूरस्थ वा उनका प्रतिबिंब जान पडा था, एसा मालूम नहीं होता. धर्म अपने धर्मीको छोडके नहीं जाता. इत्यादि कारणोंसे दूरस्थ धर्मी वा धर्मकी ख्याति नहीं होती, एसा सिद्ध होता हे. इसीप्रकार दृश्य जगतके संबंधमें जान लेना चाहिये याने घटादि दूरस्थ

प्रतीत नहीं होते, इंद्रियोंके संबंधी हें. न जगत किसीका प्रतिबिंब हे; परमाणु स्वकार्यमें समवायी–अनुमेय होते हें; प्रतिबिंबमें बिंब अनुमेय वा समवायी नहीं होता; जगतका अन्याबिंब नहीं हे; अतः अन्य देशस्थ ख्याति असिद्ध हे.

(७) **अन्य धर्म ख्याति**–(आ.) पूर्व दृष्ट सर्पादिके ओर उनके धर्मके संस्कार चित्तमें हें. डोरीसर्पादि–भ्रम प्रसंगमें वस्तुका निर्विकल्प (सामान्य इदं) ज्ञान होनेपर उक्त तिम्र साद्रश्यादि दोषके बलसे वे इदं, सर्पत्व विशिष्ट होके 'यह सर्प हे ' एसा भासता हे. जेसे दंडका धर्म पुरुषमें भासनेसे दंडीपुरुष ओर लाल वस्त्रका धर्म-लाली, काचमें भासनेसे लालकाच, एसा जान पडता हे. वेसे तमाम भ्रम प्रसंगमें जान लेना चाहिये. प्रतिबिंब, धर्मीसंसर्गजन्य अध्यास हे. श्वेत चंदन पास लकडी हो उसमें सुगंधीचंदनका अध्यास धर्माध्यास हे. शुक्ति रजतादिमें धर्माध्यास हे. एसेही स्वप्नमें हे. ओर इसीप्रकार जगत हे याने परमाणु पुंजमें घटत्वादि–धर्म (जाति) का संसर्ग होनेसे घटादिरुपसे जान पडते हें. परमाणुकी वा तद् धर्मकी घटरुपसे प्रतीति होती हे.

(अप.) सर्पादिके सर्पत्वादि धर्म सर्पमें होते हें. धर्मीको छोडके धर्म नहीं रहता यह नियम हे. दंडका धर्म दंडत्व, दंडमेंही रहता हे. दंडी जीमता हे, दंडी सो गया, दंडी मर गया, एसे व्यवहारोंसे स्पष्ट होता हे के दंड सधर्म अलग हे; पुरुषमें उसका उपचार मात्र हे. लाल रंगकी लाली काचमें नहीं आई, किंतु रंगकी लाल ओर काचकी श्वेत किरणें मिश्रण होनेसे लाल काच, एसी संज्ञा कल्पी जाती हे; क्योंकि अन्यका धर्म अन्यमें नहीं जाता; एसे उक्त अध्यास प्रसंगमें नहीं हे, क्योंकि वहां अन्यधर्मी नहीं हे ओर न अन्यधर्म हे. धर्मके संस्कारको मानें तो संस्कार डोरीमें नहीं जुडते; क्योंकि डोरी बाहिर हे, संस्कार अंदर हें; ओर संस्कार चक्षुके विषय नहीं होते. जो सर्पकी प्रतीति अंदरमें मानें तो प्रतीति बाह्य हे.–मृग जल देखके पानी भरने जाते हें. स्वप्नमें कोई अन्यधर्म, धर्मीका संसर्ग नहीं हे; किंतु न पुत्रेके पुत्रोत्पत्ति ओर जीता पुत्र मरा देखते हें अर्थात संस्कार मात्रभी हेतु नहीं हें. संसर्गाध्यास प्रसंगोंमें ईथरका नवीन परिणाम होता हे सो जान पडता हे जेसा के लालकाच वास्ते कहा हे ; नहीं के अन्यका धर्म अन्यमें आया वा अन्यमें प्रतीत हुवा; किंतु क्षारजलके समान समीप संबंधसे अन्यथा जान पडता हे.

'इसीप्रकार जगत संबंधमें जान लेना चाहिये; क्योंकि परा (सामान्य प्रत्यय) अपरा (जाती) यह कोई पदार्थ नहीं हें (बस. सू. १३५ से १३८ तक देखो)

किंतु परमाणु व्यक्तिका समूह सोही रचना–रुप–आकृति विशेष हे. उनमें गोत्व, घटत्व, सर्पत्व, दंडत्वादि व्यवहारार्थ कल्पना मात्र हें. इस रीतिसे धर्म (जाती), कोई वस्तु न होनेसे उसके संस्कारभी नहीं बनते अथवा कल्पना मात्र हें. इसलिये अन्यमें अन्यधर्मकी ख्याति सो अन्यथाख्याति, यह कल्पना मात्र हे. धर्म कोई वस्तु मानें तोभी घटादिमें धर्मी परमाणुओंका अनुमेय हे इसलिये उनके रुपादिक गुण (वा धर्म) प्रतीत होना बनता हे, परंतु अध्यास प्रसंगमें तो धर्मी अन्य ओर अन्यका धर्म मानते हें कारणके नष्ट हुये सर्प, पुरुषादिके धर्मभी डोरी स्थाणु आदिमें मानना पडता हे सो असंभव हे. इसलिये नामरुपात्मक दृश्य जगत अन्य धर्मविशिष्ट नहीं हे, किंतु धर्मी परमाणुओंकीही रचना विशेष हे.

इसप्रकार पूर्वोक्त तीनों अन्यथाख्याति असमीचीन ठेरती हें ॥

(८) अख्याति ख्याति–(आ.) अध्यास कोई वस्तु नहीं किंतु अविवेकका नाम अध्यास हे. यथा लंबी श्यामरुपवाली डोरीका सामान्यज्ञान 'इदं' सत् हे ओर तिम्रादि दोषसे उसका विशेषरुप अस्पष्ट होनेसे सादृश्यादिके बलसे पूर्व द्रष्ट सर्पकी स्मृति होती हे वहभी सत् हे. प्रमाताके भयादि दोष करके स्मृति, ज्ञात नहीं होती ओर उसका विवेक नहीं होता किंतु डोरीके इदं अंशमें जुडनेसे 'यह सर्प' एसा भान होजाता हे. इस अविवेकका नाम अध्यास हे. दीपकादिके होनेसे डोरीका विशेषज्ञान होनेपर यह डोरी हे एसा ज्ञान होजाता हे; स्मृतिज्ञान लुप्त होजाता हे. कभी कभी, स्मृति हुईथी एसाभी भान होजाता हे. इसीप्रकार लाली ओर काचके अविवेकसे 'लाल काच,' एसा अध्यास होजाता हे. इसी रीतिसे मृगजलादि अन्य प्रसंगोंमें यथायोग्य योजना करलेनी चाहिये. जेसे अध्यास प्रसंगमें कहा वेसेही यह जगत हे; अर्थात–(१) पुरुष (चेतनात्मा) ओर प्रकृति उभय सत् हें, प्रकृतिके परिणाम कर्तृत्वादि, विभु पुरुषमें जानपडते हें. क्यों? उभयका संबंध हे ओर उभयके स्वरुपका अविवेक हे. (२) किंवा एक दूसरेका प्रतिबिंब एक दूसरेमें पडता हे (जेसेके दो पुरुषोंकी आंखका वा दो काचका परस्परमें पडता हे वेसे); इसलिये चित्त (बुद्धि–प्रकृति)के कर्तृत्वादि पुरुषमें भासते हें वा पुरुष अपनेमें मानलेता हे. क्यों? बिंब (स्वरुप) प्रतिबिंबका अविवेक हे. (३) परमाणु देशादि वस्तु नहीं हें किंतु प्रकृतिके परिणाम हे परंतु जगत परमाणु रुप हे एसा भासता हे. क्यों? प्रकृति ओर पुरुषके स्वरुपका अविवेक हे. याने प्रकृति स्वयं वा पुरुषकी संन्निधिसे परिणाम पाती हे वो क्या, इसका

अविवेक हे. इसप्रकार अख्याति (अविवेक)की ख्याति सो अख्याति ख्याति हे[1].

(अप.) इदंत्व ओर स्मृति यह दोनों एक कालमें एक ज्ञानके विषय नहीं होसकते ओर कोई प्रकारसे मानें तो स्मृति अंदर, ओर इदं बाहिर, इसलिये संबंध नहीं बनसकता. जो मानें तो अन्यथाख्यातिका स्वीकार होजाय. संस्कार स्मृतिसे कंपनादि न होना चाहिये परंतु सर्पादि प्रसंगमें एसा होता हे. स्मृति इदं रुपसे विषय नहीं होती; वहां इदं सर्प एसा जानपडता हे. मृगजल अविवेक नाश पीछेभी वेसाही जान पडता हे. अध्यासके अभाव पीछे मुझे स्मृति हुई थी एसा नहीं होता. विवेक हुये विनाभी भ्रमका नाश होजाता हे. यथा सर्प नहीं दंड हे. किंवा बिल्ली आनेपर डोरी न भागे तो सर्प नहीं, एसा भान होजाता हे. कटुके संस्कार हुयेभी मधुमें कटुता नहीं भासती. पित्तके रोगीको कटु संस्कार न फुरतेभी मिसरीमें कटुता भासती हे. जो पित्त ओर मधुरताके संसर्गसे कटुता मानें तो अन्यथाख्यातिका स्वीकार होगा ओर अख्यातिख्यातिका त्याग होगा. इत्यादि कारणसे अविवेक मात्र अध्यास नहीं हे. इसीप्रकार शुक्ति रजतादि प्रसंगमें यथायोग्य योजना करलेनी चाहिये.

जेसे अध्यास प्रसंगमें कहा, वेसेही जगत संबंधमें अविवेकख्याति नहीं हे. अर्थात जेसे अविवेक होनेसे डोरी सर्प न हुई, मृग तृषणामें पानी न हुवा, काच--लाल न हुवा ओर न होसकते हें. वेसेही प्रकृति पुरुषके अविवेकसे पुरुष, बंध न हुवा वा नहीं होसकता. प्रतिबिंब, प्रकृतिका कार्य हे सो चेतनात्मामें नहीं होसकता ओर विभु चेतनका प्रतिबिंब नहीं होता. जो किसीप्रकार मानभी लेवें तो उसमें जो कर्तृत्वादि सो चेतनके हें, एसा मानलेना बुद्धिका विकार हे. जो चेतनात्मा अपनेमें आप माने तो उससेभी वोह बंध न हुवा; क्योंकि मंतव्य मात्रसे दुःख सुख नहीं होता हे ओर जो होता हे सो प्रकृतिका कार्य प्रकृतिमें हे. तथा में दुःखी एसा भान न होना चाहिये, परंतु होता हे; अतः अविवेक कारण नहीं. जो प्रकृति एक वस्तु हे तो उसके नाना प्रकारके परिणाम नहीं होसकते. ओर यदि सत्वरजतमका समूह हे तो यही सावयवता हे--इन्हींका नाम परमाणु हे, इसलिये जगत परमाणुजन्य हे, यह अविवेक नहीं. प्रकृति जड हे उसमें स्वयं यथायोग्य परिणाम पानेकी-योग्यता नहीं, इसलिये उसका अधिष्ठाता, नियामक चेतन होना चाहिये, यह स्पष्ट हे; इसलिये सृष्टिकी प्रतीति अविवेक ख्यातिका विषय नहीं मानाजासकता.

---

[1] सांख्य मतको ओर मैमांसिक प्रभाकरादिको अख्यातिख्याति संमत हे.

(९) **अन्य ख्याति** (परिणाम ख्याति)–जो जगत ओर जीवको ब्रह्मका परिणाम मानता हे वा ब्रह्ममेंसे उनका आविर्भाव मानता हे उसकी परिणाम ख्याति हे. जहां डोरीमें सर्प जान पडता हे सोभी ब्रह्मके अंश वा उसकी शक्ति अविद्याका परिणाम हे किंवा अपनी शक्तिसे डोरीही सर्परुपमें जान पडती हे, अतः सत् हे. एसेही अन्य (शुक्ति रजत, स्वप्नादि) प्रसंगोंमें योजलेना. तद्वत् ब्रह्मही अपनी इच्छाशक्तिसे जगत जीवरुप हुवा हे सो जीव ओर जगत सत् हें.

(अपवाद) जो प्रभुका अंश वा उसकी अविद्या शक्तिका परिणाम सर्प होता अथवा डोरीही सर्प रुपमें प्रतीत होनेको होती तो सबको सर्पही प्रतीत होता, परंतु एसा नहीं होता. तद्वत् यदि जगत–जीव, एक अद्वितीय वस्तुका परिणाम होता तो, सबका एकही निश्चय होता, परंतु एसा नहीं देखते; अतः एकका परिणाम नहीं. जो उसीके नाना अविद्यादि रुप मानो तो सर्वके मतोंका स्वीकार होगा अथवा तुम्हारे मतकाभी त्याग होगा; क्योंकि सब अविद्याग्रस्त क्यों न हों? निर्णयकी सामग्रीसे निश्चय करनेको कहोगे तो आपकी ख्याति ओर परिणामवाद वा ब्रह्मवाद काफूर होजायगा; अतः परिणाम ख्याति नहीं. अभिन्ननिमित्तोपादानवाद (एक वाद) की असमीचीनता अ. ३ मेंभी वांचोगे, उससे जानसकोगे के अन्यख्याति असंभव वा कल्पना मात्र हे; क्योंकि कनक कुंडल, जल बर्फ, सर्प गोल लंबा, दूध दहि, इन दृष्टांतोंमें कनकादि सावयव हें अतः उनका परिणाम होता हे (इसलिये अन्यथारुप–अन्य ख्याति कहते हें), परंतु ब्रह्म निरवयब मानते हें अतः उसका परिणाम न होनेसे ब्रह्मको जगत रुप नहीं मानसकते. तथा परिणामी (उपादान) ओर परिणाम (उपादेय) में विरुद्ध धर्म (गुण, शक्ति, स्वभाव) नहीं होते ओर डोरी सर्पादिके तथा जगत ओर ब्रह्मके धर्म (गुणादि) में समानता नहीं किंतु विरुद्ध हें, अतः जगत ब्रह्मका परिणाम नहीं हे. इसलिये अन्य ख्यातिद्वारा " जगत ब्रह्मस्वरुप हे, " एसाभी सिद्ध नहीं होसकता. (इस नं. ९ ओर नं. ५) के पक्षमें थोडासा अंतर हे. इसलिये इसको जुदा लिखा हे.–[1]

---

[1] (क) **अभाव ख्याति**–(आ.) जैसे अध्यास प्रसंगमें पहेले पीछे अधिष्ठान-डोरी आदि–हे; अतः दरमियानमें जो सर्पादि भासते हें वे अभावसे हुये हों, एसा जानपडता हे; क्योंकि अनहुयी वस्तु नहीं जानपडती, ओर सर्पादि तो जानपडते हें अतः वे अधिष्ठानकी सत्ता स्फुरणासे भावरुप सत्य जानपडते हें, अंतमें न रहेंगे एसा स्पष्ट होता हे. एसेही सर्व अध्यास प्रसंगमें जानलेना चाहिये. इसीप्रकार ज-

(१०) **अनिर्वचनीय ख्याति**--(आ.) अध्यास (भ्रम) प्रसंगमें यदि डोरी आदिका सर्प असत् हो तो वंध्या पुत्रवत् प्रतीत न हो ओर जो सत् हो तो उसका

गत संबधमं हे. याने पूर्व उत्तर एक अधिष्ठान (ईश्वर) ही हे, दरमियानमें जो जगत जान पडता हे वोह अधिष्ठान–ईश्वरकी शक्ति द्वारा अभावसे पेदा हुवा हे; क्योंकि जेसे डोरी आदि न हों तो सर्पादि न हों; वेसेही ईश्वर न हो तो जगत पेदा न हो. तथा ईश्वरकी सत्ता स्फुरणासे जगत भावरुप चमत्कारी जान पडता हे; जेसेके डोरीसे सर्प. अंतमें जगतका अभाव होजाना चाहिये. याने अभावमें लय (अभावरुप) होने योग्य हे; जेसेके स्वप्न सृष्टिका लय होता हे वेसे. इस प्रकार अभाव जन्यकी जो ख्याति सो अभाव ख्याति हे.

(अप.) सर्प, मृगजलादि हरकोई वस्तु अभावसे भावरुप नहीं होसकती, किंतु उसका मूल कुछ न कुछ होना चाहिये. मृगजलका बाध होने पीछेभी वोह वेसाही जान पडता हे. स्वप्नादिका ओर प्रतिबिंबका मूलउपादान नित्य हे; इसलिये सर्पादि अभावसे नहीं हुये हें ओर यदि हुये हें तो, डोरीरुपेण होंगे एसा मानें तो अन्य रुपेण (नं. ५) वाले दोष आवेंगे. एसेही सर्व भ्रम प्रसंगमें इस ख्यातिकी असिद्धि जानलेना चाहिये. एसेही जगत संबंधमें हे याने जगत अभावसे नहीं हुई हे; क्योंके अभावसे भावरुप होना असंभव हे; इसलिये पूर्व उत्तर जो ईश्वर सोही जो जगतरुप हुवा हो तो अन्यथा रुपेण वा अन्यख्यातिवाले दोष आवेंगे (विशेष आगे इसराईली अपवादमें); अतः अभाव ख्यातिका अभाव हे. (नवीन कल्पना).

(ख) **विकासख्याति**–(डोरीका सर्प यह मगजका अपूर्ण विकास–परिवर्तन हे उसकी प्रतीति). (ग) **विकासाविकास** (उत्क्रांति, अनुत्क्रांति) **ख्याति** (डोरीसर्पादि याने अध्यास प्रसंगमें सर्पादि यह मगज–मनका विकास वा अविकास रुप परिणाम हे उसकी प्रतीति सो, विकास–उन्नति रुप ख्याति वा अवनति रुप ख्याति हे).

जगत संबंधमें विकासवाद–(विकासाविकासवाद) स्थापन हुवा हे याने कल्पा गया हे जेसाके उपर लिखा गया हे. परंतु अध्यास प्रसंगमेंभी उसको घटाया हो, एसा नहीं जानपडा हे. इसलिये कुछ नहीं लिखसकते; संभव हे के भाविष्यमें उसकी घटना हो. परंतु अध्यास प्रसंगमें इन दोनोंका निर्वाह होना कठिन जानपडता हे; क्योंकि आकाशकी नीलता, स्वप्न, मृगजल ओर शरीर तथा मन संबंधी कित-

बाध न हो, सदसद् विरोधीरुप होना असंभव, अनहुई वस्तु प्रतीत नहीं होती, अभावसे भाव नहीं होता, उपादान निमित्तके विना कार्य नहीं होता, सर्पादि भ्रम प्रसंगमें बाहिर-भीतर सर्पादि नहीं हें, प्रतीतिके पूर्व ओर नाशके पीछे नहीं रहते, ओर उक्त सत्ख्याति आदि पक्षभी सिद्ध नहीं होते परंतु सर्पादि जानतो पडते हैं; सो क्या हें? तहां एसा हे.---डोरीका सामान्यज्ञान (इदं) हे परंतु विशेष स्वरुपका अज्ञान हे. तिम्र सादृश्यादि दोष हें. पूर्व दृष्ट सर्पके संस्कार (सद् वा असद् संस्कार) भी हें. इसलिये सामान्यज्ञान होनेपर सादृश्यादि बलसे सर्पादिके संस्कार अंतःकरणमें उदय होते हें, विशेषज्ञानके न होनेसे अविद्या (जहां कोई कारण न हो वहां अज्ञानांश अविद्याही कारण हे) में क्षोभ होके उसके एक अंशका सर्पाकार ओर दूसरे अंशका उस सर्पके ज्ञानाकार परिणाम होता हे. चेतन संबंधनी अंतःकरणकी वृत्ति डोरी तक गई हे, इसलिये डोरीउपहितचेतनाश्रित सर्प परिणाम हुवा हे ओर साक्षीचेतनाश्रित ज्ञान परिणाम हुवा हे. जोके दोनों अधिष्ठानचेतन स्वरुपतः एक हें, वृत्तिकी उपाधिसे जुदा जुदा जान पडते हें; इसलिये दोष नहीं आता. वे दोनों परिणाम सत्, असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय हें; क्योंकि जो उनको डोरीके समान सत् मानें तो उनका बाध न होना चाहिये परंतु बाध होते हें ओर असत् हों तो मालूम न होने चाहिये परंतु जान पडते हें; इसलिये अनिर्वचनीय हें, ओर साक्षी–चेतनसे प्रकाशित हें. जो वृत्तिका बाह्य-गमन नहीं मानें ओर डोरी आदिका फोटो अंदरमें गया एसा मानें तो अंदरमें

नेक अध्यास एसे हें के जीवन पर्यंत होते रहते हें. आजतक कोई योगी, अयोगी पुरुष एसा नहीं हुवा ओर न होना चाहिये ओर न हे (ओर न होसतका हे) कि जिसको जन्मसे मरण पर्यंत कभी न कभी कोई प्रकारका अध्यास न हुवा हो; ओर जीवोंकी उत्पत्तिका तो प्रवाह हे; इसलिये अध्यासका सर्वथा अविकास वा सर्वथा विकास (उत्क्रांति) नहीं माना जासकता. इसीप्रकार दार्ष्टांतमेंभी सर्वथा विकास वा अविकास सिद्ध नहीं होता. इससे एसा अनुमान करसकते हें कि जो विकास, अविकासवाद भविष्यमें स्थापन होगा तोभी नदीके प्रवाह समान नहीं किंतु जल-तरंगवत स्थापन होगा. क्योंकि मानो किसी पूर्ण योगी सूक्ष्म दर्शीको अंतमें (योग साधना पीछे) अध्यास होनेकी असंभावना हो तोभी नवीन जीवोंको तो अध्यास होहीगा, इसलिये उसका सर्वथा अविकास होना असंभव हे ओर सर्वथा विकास हो तब तो जीवनही न होना चाहिये.

अविद्याका सर्प ओर सर्पज्ञानरुप परिणाम हुवा हे एसा मानके योजलेना चाहिये; क्योंकि उभय रीतिमें सर्प, मृगजलादिका व्यवहार होसकता हे ॥ जब अधिष्ठान रुप डोरी वगेरेका विशेषज्ञान होता हे तब उस ज्ञानसे अज्ञानांश अविद्याका अभाव हो जाता हे. इस प्रसंगमें डोरीउपहितचेतन सर्पका ओर अंतःकरणउपहितचेतन उसके ज्ञानका अधिष्ठान हे. सर्प ओर सर्पज्ञान, चेतनके विवर्त्त (लक्षण उपर कहे हें) हें. डोरी (डोरी उपहित चेतन) सर्पका विवर्त्तोपादान हे; क्योंकि डोरी न हो तो लंबा, श्याम सर्प न मालूम हो ॥ इसीप्रकार मृगजलादि प्रसंगमें हे. एसेही संसर्गाध्यासमें हे. यथा रक्तवस्त्र संबंधी वा लालमणीके फोटो संबंधी श्वेत काचमें काचलाल एसा अनिर्वचनीय लाली परिणाम, अविद्याकाही हे. स्वप्न, मृगजलादि यह ज्ञान हुये पीछेभी प्रतीत होते हें वहां अविद्यालेश शेष हे, एसा मानलेना चाहिये.

जेसा अध्यास हे वेसाही यह दृश्य ब्रह्मांड हे. अर्थात् ब्रह्मचेतनके सामान्यज्ञान (हुं का वाच्य वा लक्ष्य) ओर विशेषअज्ञान (चेतन, विभु इत्यादि) होनेसे तदाश्रित माया (अविद्या) का नामरुपात्मक याने जगतरुप परिणाम होते हें वे पूर्व पूर्वके संस्कारानुसार होते आये हें. अधिष्ठान—कूटस्थ ब्रह्म जेसेका तेसा हे. माया ओर उसके परिणाम (नामरुप) चेतनके विवर्त्त हें, इसलिये ब्रह्मचेतन नाम-रुपवाला भासता हे; ओर इसी वास्ते उसे विवर्त्तउपादान कहते हें क्योंकि वे उ-सके विना नहीं होसकते — नहीं जान पडते हें. यह दृश्य, ब्रह्माश्रित स्वप्नसृष्टि समान अनादि अनंत हे परंतु सुखोप्तिमें इसका अभाव (शून्य) होजाता हे, इस-लिये सद् (भाव), असद् (अभाव—शून्य) रुप नहीं कहसकते किंतु रज्जु सर्प-वत् वा स्वप्न सृष्टिवत् सद्असद्से विलक्षण अनिर्वचनीय कहाजाता हे. (विशेष सुप्रसिद्ध विचारसागर, ओर वृत्तिप्रभाकर ग्रंथमें देखो. तथा ख्यातिवाद ग्रंथको विचारो).

(अप.) एक मकानमें वा खंडरमें--क (डोरी), ख (लकडी), ग (तरेड वा लकडीका बनावटी सर्पाकार) ओर घ (सच्चा सर्प) पडे हों वहां सामान्य अंधरेमें सर्व विषे इदं वृत्ति हे. ओर क, में घ, ओर ख, में ख, ओर घ, में क, ओर ग, में जलधारा वृत्ति हे. अब विचारो, यहां अंतःकरणकी वृत्तिके सिवाय कोई दूसरी वृत्ति सिद्ध नहीं होती; ओर न अंतःकरणकी ज्ञान रुप वृत्तिसे अन्य ज्ञानवृत्ति हे. जो कोई अविद्याकी अन्य वृत्ति मानें तो उस समय ख, में ख, वृत्ति न होनी चाहिये ओर क, ख, वृत्तिमें भेद मालूम होना चाहिये, परंतु कोई भेद नहीं जानपडता. पुनः

दीपक लाके देखें तबभी वहां अंतःकरणकी वृत्तिसे अन्यवृत्ति नहीं जान पडती. जहां अन्य कारण न हो वहां अविद्या (अज्ञान) नामकी वृत्ति मान्ना कल्पना मात्र हे—अर्थ शून्य हे. जबकि अविद्याके सर्पादि दृश्य परिणाम हें तो इदंत्वभी दूसरा क्यों न हो ? बाध होने पीछे चित्तसे इतर अविद्याका परिणाम था, एसे नहीं जानपडता; क्योंकि अविद्या स्वरुपतः कोई वस्तु सिद्ध नहीं होती. इसलिये सर्प ओर सर्पका ज्ञान यह अविद्याके परिणाम नहीं जानपडते. लालकाच प्रसंगमेंभी अविद्याने नवीन परिणाम धरा हो, एसा सिद्ध नहीं होता. एसेही मृगजलादि प्रसंगमें घटित रीतिसे जान लेना चाहिये.

इसीप्रकार जगतके संबंधमें—जगत अध्यासरुप सिद्ध नहीं होता; क्योंकि द्रष्टांतवत् दार्ष्टांतमें सामान्य विशेष भाव सिद्ध नहीं होता.—यथा अधिष्ठान ब्रह्मस्वरुपको (वा प्रत्यगात्मा—जीवसाक्षी—जीवगत चेतनभाग—अविद्या वा अंतःकरण अवछिन्न—उपहित चेतनको) अपना सामान्यज्ञान वा विशेषज्ञान कहना बने नहीं, क्योंकि वोह ज्ञानस्वरुप हे, निर्विशेष हे. ' में ', इत्यादि भाव उस अवाचके धर्म नहीं होसकते. ब्रह्मसे इतर माया (अंतःकरणादि) को उसका सामान्यज्ञान कहना बने नहीं; क्योंकि जड हे. ओर जीव ईश्वरत्व भाव तो मायाकी उपाधिसे मानते हो अर्थात् मायाके परिणामसे उत्तरकालमें हें; इसलिये उनकोभी ब्रह्मका सामान्यज्ञान ओर विशेषअज्ञान कहना बने नहीं. तथा अध्यासकी सामग्रीके हेतु नहीं. ब्रह्मको अपना सामान्यज्ञान विशेषअज्ञान कहना कल्पना मात्र हे क्योंकि वोह ज्ञानस्वरुप हे—अपना ज्ञाता वा ज्ञेय नहीं हे. तथा ब्रह्मको अध्यास बने नहीं ओर अध्यासको अध्यास नहीं होसकता तथा यह अध्यास हे एसा ज्ञान अध्यासको होवे नहीं. ब्रह्ममें इसका आरोप नहीं बनता; क्योंकि ब्रह्मसे इतर जड हें जडमें आरोप करनेकी शक्ति नहीं हे. ओर ब्रह्मचेतन (जीव—चेतन) सम हे उसमें संस्कार होना मानें तो विकारी ठेरता हे, परंतु संस्कारके विना अध्यास नहीं होता. इसलिये चेतन (ब्रह्मचेतन वा जीवचेतन) को अध्यास कहना बने नहीं. ओर अध्यासका कार्य (बुद्धि वगेरे) अध्यासका आरोप नहीं करसकता, इसलिये अध्यास वा विवर्त्तरुप कहना अयुक्त हे ॥ जेसे डोरी, सर्पका ओर स्वप्न द्रष्टाचेतन, स्वप्नसृष्टिका उपादान नहीं ओर द्रष्टा भिन्न हे, एसेही ब्रह्म जगतका उपादान नहीं होसकता क्योंकि अक्रिय, निरवयव, कूटस्थ, ओर सम हे; किंतु जगतका अधिष्ठान ओर प्रकाशक हे. जो किसी दृष्टिसे उसे विवर्त्तोपादान मानें तो यह बुद्धि वा मायाकी

कल्पना ठेरी; नहींके ब्रह्म उपादान हुवा. इसलिये जेसे सर्प ओर उसका ज्ञान यह दोनों-अज्ञान, अविद्याके परिणाम मानते हो, एसेही यह (प्रस्तुत) पक्ष वा अध्यारोपभी अविद्या--मायाके परिणाम ठेरते हैं; इसलिये यह आरोप पाया विनाका हे, साध्यसम (प्रकरणसम) दोषवाला हे. इसलिये ब्रह्मसे इतर अन्य कोई दृश्य जगतका उपादान होना चाहिये. इ.

(११) **विलक्षण ख्याति** (आ.). **क.**—जो किसीके कहने सुननेसे वा बिली दोडके जाती हुई देखनेसे किसी सर्प अर्थशून्य परोक्ष स्थानमें सर्पकी भावना होगई या सर्प हे एसा मानलिया तो इसकी संज्ञा **असत्भ्रम** याने असत्ख्याति कहा जाता हे. **ख.**—परंतु जो कहीं सर्प, सन्मुखमें माना गया हो तो उसके दो प्रकार हैं—(१) डोरीके सामान्याकारकी किरणें चक्षुद्वारा अंदर गई. सादृश्यादिके कारणसे अंतःकरणमें ज्ञात वा अज्ञात रुपसे सर्पादिके संस्कार फुरे ओर यथासंस्कार उसका सर्पादिनाम रखलिया. किरणें तो अंतरक्षमें चली गई ओर हम सर्पका भान लेके वहांसे चले गये. इसका नाम **भ्रम** वा **ज्ञानाध्यास** कहाता हे. जो अध्यास होने पीछे प्रकाश होगया तो डोरीका रुप विशेष ग्रहण होनेसे उसका नाम डोरी हुवा. (२) परंतु जो सामान्य किरणें (इदं) ग्रहण होनेपर उस विषे जो मनोवृत्तिने तदाकार भावमें सर्पाकार रखलिया तो **अर्थाध्यास**का स्वरुप होजाता हे अर्थात वृत्तिके संस्कारानुसार शरीर गत सूक्ष्मा (शेषा जोके अव्यक्तका परिणाम हे) का परिणाम होजाता हे. यह परिणाम कभी तो बाहिरकी आई हुई किरणोंके साथ जुड जाता हे, एसा होनेपर कभी तो यह सर्प वा अन्य एसा संशय होजाता हे; नहीं तो सर्प हे एसा भाव होता हे. ओर कभी जेसे अंदरमें दीपककी लो वा छबीके समान, शेषाका जुदा परिणाम होता हे, एसे किरणें न रहनेपर सर्पाकार परिणाम होता हे—इन परिणामाकार अंतःकरणकी वृत्ति होती हे. इस वृत्तिका नाम ज्ञानाध्यास ओर इसके विषयका नाम **अर्थाध्यास** कहा जाता हे. घटादि समान इस अर्थका बाह्य डोरीमें आरोप होता हे. सर्पाकार ओर उसका आकार मात्र पूर्ववत् उत्तरमें नहीं रहता ओर वर्तमानवत् पूर्वमें नहीं था, इसलिये उसे अध्यास कहते हैं. (डोरीके विशेष किरण आनेपर अंतःकरणकी वृत्ति तदाकार होजानेसे शेषाका परिणाम शेषारुप होजाता हे).

"जोकि डोरी ओर अंतःकरण ओर किरण तथा शेषा यह सब अव्यक्त मायाकेही परिणाम हैं परंतु उपयोग प्रसंगमें अन्यथा हैं, इसलिये व्यवहारमें उसके प्र-

कार कल्पे जाते हैं.–यथा " वोह शेषाका सर्पाकार मात्र जो परिणाम हुवा वोह डोरी, अंतःकरण ओर किरणोंसे विलक्षण प्रकारका हे ओर अधिष्ठान द्रष्टा साक्षीसे-भी विलक्षण (विषय) सत्तावाला हे तथा अनिर्वचनीयख्यातिमें कहे अनुसार अनिर्वचनीय हे, इसलिये विलक्षण अनिर्वचनीय हे. उसकी जो ख्याति सो **विलक्षण–अनिर्वचनीय**ख्याति हे. जिस ज्ञान प्रकाशका यह विषय हे सो, अध्यास रुप याने शेषा वा अव्यक्तका परिणाम नहीं हे, परंतु जिस वृत्तिका आकार मात्र " यह सर्प हे " एसा परिणाम हुवा हे उस ज्ञानवृत्तिकोभी व्यवहारमें **ज्ञानाध्यास** संज्ञा देते हैं क्योंकि बाधित ज्ञान परिणाम हे. ओर यदि संज्ञा न दीजावे तोभी सिद्धांतमें दोष नहीं आता क्योंकि ज्ञानवृत्ति ज्ञेयाधीन होती हे, बदलती हे. हां, अव्यक्त भावसे पूर्व कहे अनुसार सब, चेतनसे विलक्षण सत्तावाले अन्यथा स्वरुप हैं, इतनाही कहना बस हे. अध्यासनाम व्यवहारमें हे.

लालकाचादिके संसर्गाध्यास प्रसंगमें उभय संबंधीके किरणें मिश्रित होजाती हैं याने नवीन रुप बनजाता हे उसका आरोप बाहिरमें ' काच लाल हे ' इत्यादि रुपमें होता हे. आत्मा–बुद्धि आदिके अन्योऽन्याध्यास यह सब अव्यक्त--वृत्तिकेही आकार हैं; जेसेके घटमें क्रिया होती हे, वोह घटाकाशमें मानलेना वा दीखना बुद्धिके विकार हैं. तद्वत् मिसरी–कटु इत्यादि प्रसंगमें हे. एसेही स्वप्नादि प्रसंगमें घटित रीतिसे योजलेना चाहिये. उक्त अनिर्वचनीयमें अविद्या यह नाम ओर विलक्षणमें शेषा (ईथर) यह नाम, वा इतना अंतर हे.

जेसेके अध्यास प्रसंगमें कहा वेसे जगत संबंधमें हे. २०१।२०२ सूत्रकी टीका याद करिये. सार यह हे के जेसे डोरी आश्रित यथासंस्कार सर्प वेसे ब्रह्माश्रित पूर्वपूर्व संस्कारानुसार मायाका त्रिपुटी रुप परिणाम होता हे. जेसे द्रष्टा चेतनाश्रित उससे विषम–विलक्षण सत्तावाली अन्यथा रुप जो माया--जिसके अंश संस्कारी मनके अनुसार (द्वारा) मायाके अंश शेषामेंसे स्वप्नसृष्टि होती हे; चेतनका उसमें प्रवेश हे, इसलिये वोह सृष्टि चमत्कारी जान पडती हे; सत्ता (अस्तित्व)की विलक्षणतासे वे परस्परके बाधक नहीं ओर वे उभय परस्परमें विलक्षण हैं; माया (अंतःकरण, शेषा), द्रष्टा चेतन (ब्रह्म)से विलक्षण हे ओर अनिर्वचनीय हे; वेसेही यह ब्रह्मांड हे.

अनिर्बचनीय (अ.) ओर विलक्षण (वि.)का सहेज अंतर–अ. में अविद्या. वि. में शेषा. अ. में सदसद् विलक्षण (मिथ्या). वि. में सद्ब्रह्मसे विलक्षण.

अ. में अविद्या-माया अनादि सांतभी. वि. में अनादि अनंत. अ. में अध्यस्तकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप. वि. में उससे इतर लय ओर अधिष्ठान पूर्ववत् हे ॥ सिद्धांतमें दोनों समान होजाते हैं. (विशेष बस. में).

(अप.) कहीं असत्, कहीं विलक्षण ओर कहीं किरणजन्य, मान्ना अव्याप्ति दोष हे. ब्रह्मसे इतर माया विलक्षण ठीक; परंतु फेर मायाके अंतरगत जो डोरी, किरण, अंतःकरण ओर शेषा उसकोभी विलक्षण मान्ना, यह योग्य नहीं.

(१२) **अनिश्चित रव्याति**-(आ.) जेसे उपर भिन्नभिन्न ११ मत कहे वेसे एक पक्षका षष्ठम प्रकारभी हे. याने सद्, असद्, उभय, न उभय, ओर उभय विलक्षण इससे इतरभी कल्पा हे. एवं नाना मंतव्य होनेसे जान पडता हे कि अध्यासका स्वरुप अनिश्चित हे. इसीप्रकार स्वप्न विषे अनेक पक्ष हैं. जेसे अध्यासमें अनिश्चित वेसे जगत प्रसंगमेंभी देखते हैं. जेसेके शब्दादि (शब्द, गरमी, तम, प्रकाश, देश, काल, आकर्षण, मन, जीव, बंध, मोक्ष, प्रकृति, पुरुष, ईश्वर, सृष्टि उत्पत्ति-लय)के संबंधमें अनेक पक्ष हैं उनमें एक दूसरेसे विरोधीभी हैं. इससे स्पष्ट होजाता हे कि मनुष्य उनको नहीं जानता, उसके स्वरुपका निश्चय नहीं करसकता, इसलिये अनिश्चित हैं. अथवा मूल पदार्थही अनिश्चित रुप हैं, कभी केसे कभी केसे होजाते हैं; किसीको केसे किसीको केसे प्रतीत होजाते हैं; इसलिये अनिश्चित हैं. यदि निश्चित होते तो एक प्रकारके जान पडते, नाना पक्ष न होते. इसीप्रकार भ्रम-अध्यास प्रसंग ओर जगत प्रसंगमें ज्ञातव्य हे; इसलिये अनिश्चितरव्याति (प्रतीति वा कथन) हे.

(अप.)—उभय (अध्यास वा जगत) संबंधमें कुछभी मानो परंतु जो स्वरुप प्रकार हे उसे ना, ओर जो नहीं हे उसे हां, नहीं कहाजासकता किंतु वे जेसे हैं वेसे हेंही; इसलिये अनिश्चित रुप नहीं कहसकते. दूसरोंके मंतव्यसे उनमें अनिश्चितत्व वा अनेकांतत्व नहीं होसकता-मूलका स्वरुप कभी नहीं बदलता; इसलियेभी वे अनिश्चित नहीं. तद्वत् उनके गुण, कर्म, स्वभाव जितने, जेसे हैं उतने ओर वेसे हैं; अतः अनिश्चित नहीं.

(१३) **अनेकांतरव्याति**-(आ.) जेसे परोक्षमें वा असंभव प्रसंगमें असत्रव्याति ओर संसर्ग प्रसंगमें लालकाचवत् संसर्गरव्याति मान्नी पडती हे, वेसेही अन्य सदादि रव्याति, यथा प्रसंग मानलेना चाहिये. नहीं समझके एक दूसरेका खंडन-मंडन करना बक्रवाद मात्र हे. यथा ईथरकी लहरोंकी संरव्यासे अनहुई नीलता

आकाशमें जान पडती हे वहां असत् ख्याति, ओर जलमें जो उपादानसे नवीनता होती हे वहां अभावख्याति मान्नेमें दोष नहीं. एसेही इस जगतमें अनेक प्रकारके पदार्थ हें यथा जीव, अणु--मध्यम ओर विभु तथा अभावजन्यभी ॥ शब्द, गुण-द्रव्य ओर वायुकी लेहेर रुपभी ॥ कोई एक प्रकारका अभावजन्य, कोई उसी प्रकारका उपादानजन्य हे. इसप्रकार अनेकांत हे.

(अप.) जेसे भ्रम प्रसंगमें सदादि ख्यातिमें जो दोष आये वेसे वे सब अनेकांत पक्षमें आवेंगे. विरुद्ध दोषोंका भंडार होगा. असंभव, अव्याप्ति ओर अतिव्याप्ति तथा गौरव दोष आवेगा. हां, जहां एकसे निर्वाह न हो वहां दूसरी रीति न मान्नेमें दुराग्रह करनाभी दोष हे. यथा परोक्षमें असत्ख्याति मानलेना चाहिये. परंतु वहां अभाव, अनिर्वचनीय ओर सदसद्ख्याति मान्ना दूषित हे. इत्यादि रीतिसे विवेक कर्तव्य हे, तो स्पष्ट होजायगा कि अनेकांतख्याति कल्पनामात्र हे, एसा मान्नाही पडता हे. जब यूं हे तो उनके परिणामादिभी निश्चितही होने चाहिये. इसप्रकार अध्यास प्रकरण तथा जाग्रत स्वप्नादि तमाम प्रसंगमें निश्चितताही हे; परंतु जो मानुषी बुद्धि नहीं पहोंचती तो यूं कहना चाहिये के उक्त अध्यासादिके स्वरुपको मनुष्य नहीं जानसकता, जो जेसा होगा वोह वैसा होगा; इसलिये अनिश्चितख्याति अलीक हे.

अध्यासका उपसंहार.—

उपर अध्यास प्रसंगी जितने आरोप, अपवाद कहे उनमेंसे कोनसा ठीक ओर कोनसा अठीक हे, इसका निश्चय वा निर्णय शोधक परीक्षकपर छोडना उचित हे; इसलिये ज्यादे नहीं कहना चाहते ॥ सूत्र ४२३ तटस्थ होके कहता हे कि अधिष्ठान ज्ञानस्वरुपके संबंधमें नेतिनेति ओर उसके अध्यस्त प्रकाश्यकेलिये अन्यथा अन्यथा शब्द ठीक हे; क्योंकि लक्ष्य अनुभवमेंही आता हे. शब्दका विषय नहीं हे ॥४२३॥[१]

अब आगे अन्य (फिलसुफासे अन्य) प्रचलित आरोपापवाद लिखते हें.—

[१](नोट)—सद, असद, आत्म, अन्यथा, अख्याति, अनिर्वचनीय इन ६का बयान प्रसिद्ध हिंदी ग्रंथ वृत्तिप्रभाकर ओर विचारसागरमें हे. उसके वांचनेसे अध्यासके स्वरुप ओर आशयका भान होसकता हे. विलक्षण ख्यातिका भू. (यशवंतयोग) में बयान किया गया हे. बाकी लेख शोधककी दृष्टिसे हें; तद्वत् दृष्टांत, दार्ष्टांतकी योजनाभी ॥ ३९२ से ४२३ तक ॥

(आ. १) लोक सुखार्थी भावना ॥ ४२४ ॥ ईश्वरादि अविषय होनेसे ॥ ४२५ ॥ अतः सृष्टिनियमानुकूल कर्म कर्तव्य ॥४२६॥ ओर सविवेक वर्तन ॥४२७॥ सुखप्रद होनेसे ॥४२८॥ सर्व संग्रहकी प्रवृत्तिभी ॥४२९॥

(आ. २) वा सत्यही मान्य इष्टप्रद होनेसे ॥ ४३० ॥ योग्य व्यवस्थाकारी प्रवर्त्तकाभी ॥४३१॥ अन्यथा इष्टकी प्राप्ति न होनेसे ॥४३२॥

(आ. ३) वा राज्य समाजकी उन्नति ओर भक्ति कर्तव्य ॥४३३॥ सर्व इष्टकी साधक होनेसे ॥ ४३४ ॥ स्वल्प योगसाधनभी ॥ ४३५ ॥ उससे विदेहीको श्रेय प्राप्ति ॥ ४३६ ॥

(अप.) तीनों भावना व्यवहारमें उत्तम ॥ ४३७ ॥ एहिक सुखकी साधन होनेसे ॥ ४३८ ॥ दोनोंमें परलोक भावनाकी अपेक्षा ॥ ४३९ ॥ अन्यथा अनिष्ट परिणामकी संभावना ॥ ४४० ॥

अर्थ—उपरोक्त सू. ४२४ से ४३६ तक तीन भावनाका अध्यारोप हे. उसमेंसे **पहिली** यह हे कि—जिससे लोकमंडलको जीवनमें सुख मिलसके वेसी भावना करना चाहिये ॥ ४२४ ॥ क्योंकि ईश्वर, जीव, प्रकृति, बंध, मोक्ष, पुनर्जन्म, मोक्षके साधन, सृष्टिउत्पत्ति-लयका क्रम, यह सब विषय मनुष्य नहीं जानसकता. (नाना मत, पंथ, धर्म ओर क्लेश होना इसमें सबूत हे) ॥४२५॥ इसलिये उन विषयोंको छोडके सृष्टिनियमानुकूल कर्म कर्तव्य हें ॥ ४२६ ॥ ओर विवेक सहित वर्तना चाहिये ॥ ४२७ ॥ क्योंकि यह दोनों बातें इस जीवनमें सुखप्रद हें ॥४२८॥ ओर सब मत, पंथ, धर्ममें जिन जिन उपयोगी उत्तम बातोंका स्विकार हो उनका ओर उत्तम रीत रिवाजका संग्रह करके प्रवृत्ति कराना चाहिये. (तो प्रचलित धर्मक्लेह दूर होके विचार ओर प्रवृत्तिका ऐक्य होजाय ओर उससे प्रजामें सुख हो) ॥ ४२९ ॥

संक्षेपमें विवेचन—खान, पान, मैथुन, चलना, बेठना, सोना, जागना ओर शौचादि सृष्टिनियमके अनुकूल होना चाहिये (वैद्यक ओर तपके ग्रंथ देखो). रागादि, कामादि, शरीर इंद्रियादि, विषय, द्रव्य, स्त्री, पुत्र, राज्य ओर जो संबंधि हें उनका यथायोग्य सानियम याने सविवेक उपयोग हो तो सब उपयोगी-सुखके साधन हें, उससे विरुद्ध उपयोग हो तो यही दुःखकी सामग्री हें. यथा उत्तममें राग, अनुत्तमसे अरुची सुखप्रद हे. अनुत्तममें राग ओर उत्तममें द्वेष दुःखप्रद हे. इ. वीर्य-काम सेवनसे विद्या, बुद्धि, आरोग्यता ओर बल प्राप्त होता हे; उसके

गेरउपयोगसे अशक्ति, रोग ओर पराधीनी होती हे. इ. एसे आचरण करना कि जिससे तंदुरस्ति रहे, इंद्रिय स्वाधीन रहें; एसे करनेसे जीवन सुखमय होता हे, नहीं तो दुःखमय होजाता हे. रस, गंध, शब्द, स्पर्श ओर रुपका यथायोग्य सेवन हो तो तन मनका सुख होता हे; यथा पान, गान, अतर, मिष्ट भोजनादिसे होता हे. ओर जो कुरीतिसे सेवन हो किंवा इनमें आसक्ति ओर इनकी टेव (व्यसन) होजाय तो यह दुःखकारक होजाते हैं. द्रव्य, स्त्रि, पुत्र ओर संबंधी तथा राज्यका जो उचित मर्यादापूर्वक सेवन हो तो यदि परलोक होगा तो यह वहांके सुखापतिकेभी साधन हैं ओर यहांके सुखके हेतु तो स्पष्टहीं हैं; ओर जो अनुचित रीतिसे उनका सेवन हो तो यही दुःखकारी हें. उपरोक्त बातोंसे वैराग्य कराना, एक प्रकारके रोगकी उत्पत्ति करना हे जिसका असर समष्टि तक होता हे, जेसाके हिंदि प्रजामें यह रोग हे; परंतु उनका यथायोग्य उपयोग लेना, सृष्टिनियमानुकूल सृष्टिका उपयोग हे. यथा विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पाले ओर गृहस्थिको गृहस्थ ब्रह्मचर्य पालना चाहिये; अन्य जितेंद्रियको अष्ट कुमैथुन[१] रहित रहके लोकसेवा करना चाहिये. दूसरेको दुःख न हो एसे उद्यम करके जीवन करना चाहिये (विशेष प्रकृतिविवरण ग्रंथमें लिखा हे). लोक मंडलमेंभी एसे विचार प्रसार करना कराना कर्तव्य हे वा उचित हे.

सब धर्म, मत, पंथोंके ग्रंथोंमें वा मंतव्योंमें बहुत एसे तत्व मिलेंगे के जो सबको मान्य होसकें वा मान्य हें; उनका संग्रह करके, तटस्थ--लोक हितैषी ओर स्वतंत्र सोसाईटीकी संमतिसे प्रवर्त करना कराना चाहिये. परंतु उसमें किसी धर्मग्रंथ वा किसी महात्माके नामको दरमियानमें न लेना चाहिये; नहीं तो पक्षपात होगा, धर्मद्वेषकी छायाका प्रवेश होने लगेगा. संग्रहका उदाहरण—आर्य धर्ममें उपरोक्त सत्यादि १०, यम ५, नियम ५, एसे हें कि फीसदी ९९ को मंजूर हों. तोरेतमें "अपने समान दूसरेको इच्छ." इंजीलमें "पडोसीको अपने जेसा जान." कुरानमें "एक दूसरेकी मदद करो." बौद्धोंमें "उपयोगी हो उसको मानो" "भ्रातृभाव रखो" "संयम रखो." जैनमें "प्रमादसे हिंसा मत करो, अहिंसा परम धर्म हे." भगवदगीतामें "स्थितप्रज्ञ ओर दैवी संपत्तिका वर्णन." पारसी अवस्तामें "सफाई--शुद्धता (मीनोई) को इच्छो, सत्य यह सर्वोत्तम सुख ओर कृपा हे, उत्तमाचार--विचार--उच्चारमें में (ईश्वर) हूं. इ. अवस्ता १८१

---

१ प्रसिद्ध 'प्रकृतिविवरण' ग्रंथमें अष्ट ककार वर्जित रहनेसे ब्रह्मचर्यका पालन होता हे एसा दरसाया हे उनमेंसे यह एक ककार हे.

वगेरे." राज्यधर्ममें "चोर, खूनी, अन्यायी, दुष्ट ओर प्रजाको दुःख देनेवाले जालिमको शिक्षा देना, ताके प्रजाकी रक्षा हो" "राज्य वोही अच्छा हे के जिससें प्रजाको सुख मिले, सुलह शांति ओर संप बना रहे." इत्यादि ॥ अब यदि ईश्वर जीव, पुनर्जन्म, मोक्षादि विषयोंमें सर्व संमत वाक्य न मिलें तो इन विषयोंको लेनेकी जरुरत नहीं हे ओर न उनका खंडन मंडन करना चाहिये; ओर यदि मिलें तो संग्रह करना योग्य हे. इसप्रकार इस **संग्रहवाद**की प्रवृत्तिसे व्यष्टि, समष्टिको सुख मिलेगा. उद्योगकी वृद्धि होगी ॥ ४२९ ॥[१]

दूसरा अध्यारोप यह हे कि--सर्वथा सत्यही मान्ना, करना चाहिये; क्योंकि उससे इष्ट सुखकी प्राप्ति होती हे; चिंता ओर दुःख रहित जीवन होता हे. ॥४३०॥ ओर लोकके सुख वास्ते योग्य व्यवस्थाकारक **प्रवर्तका** (व्यवस्थापका) नीतिकाभी प्रचार होना चाहिये ॥ ४३१ ॥ क्योंकि एसा न हो तो जो इष्ट अर्थात जनमंडलका जीवन सुखी हो, सो न होसकेगा ॥ ४३२ ॥

संक्षेपमें विवेचन—मुख्य नीति दो प्रकारकी हैं—(१) **शुद्धनीति**- यथा सत्. अर्थात् जेसा देखा, सुना ओर जानते, मानते हों वेसाही कहना मान्ना ॥ ईश्वरका कोप न हो वोह कृपा रखे, बंध न हो मुक्ति मिले, राजा वा प्रजा वा सोसाईटी मेरेको अच्छा समझें-नाराज न हों, वा मेरी कीर्ति ओर प्रतिष्ठा हो; इसलिये सच बोलना यह शुद्ध नीति नहीं हे किंतु अपना वा अपने संबंधिका नुकसानभी क्यों न होजाय, परंतु सत्, सत् हे ओर स्वतःसिद्ध (कुदरती) हे, इसलिये निर्भय, स्वार्थ रहित होके स्वाभाविक सत्वर्तन यह शुद्ध नीति हे. एसे सद्वर्तनवाले विरल होते हें ॥ जो केवल शुद्धनीतिपरही रहें तो जीवन व्यवहारही न हो, जेसेके यह स्त्री अमुककी, यह सत्य हे ? क्या स्त्री स्वतंत्र नहीं ? अमुक सिक्केको स्वीकारना, अपनी कमाई अमुक (वारिस) कोही देना, क्या यह सत्य हे? मेरी आंखेमें काना, क्या यह प्रसिद्ध व्यवहार सत्य हे? अश्व, बेल वगेरेको अपनी स्वार्थ सिद्धि वास्ते खस्सी करना, क्या यह सदाचार हे ? नग्न फिरना, क्या कुदरतके विरुद्ध अनीति हे ? इत्यादि सेंकडों बातें एसी हें के वे असत् न मानी गई हों वा असत् न हों परंतु सत्यभी नहीं कही जासकती, तथापि एसी बनावटी नीति वा नियमोंसे

[१] संग्रहवाद, एक हिंदु पलीडर (   ) ने बनाके इंग्रेजीमें छपाया हे- इसके पूर्व यहां वकीलश्री मुझे ढूमस (जि. सूरत) में मिलेथे तब उन्होंने मुझको उसका ड्राफट दिखाया था. उसपीछे मेंने संग्रहवाद बनाना छोडदिया.

लोकके जीवनकी व्यवस्था होती हे, सुख मिलता हे; इसलिये जनमंडलको उनका प्रचार करना पडा हे; ओर हे. कुदरतहीको देखिये--शरीरके अंदर अरुचीकारक पदार्थ हें परंतु बाहिरसे तुचाका गलेफ चढादिया—रुपवंत करदिया. क्यों? एसा किये विना उपयोग ओर सुख न होता. इसलिये दूसरी **प्रवर्तकानीति** (व्यवस्थाकारी) का स्वीकारभी अवश्य हे. उसका सामान्य लक्षण यह हे.-**योग्य व्यवस्थापक समझनका वर्तन**. अर्थात जो व्यष्टि, समष्टिमें व्यवस्थाकारक विचार (बुद्धि-समझन) हे उसका सेवन. इसका नाम प्रवर्तकानीति. इससे अपनेको ओर दूसरेको सुख होता हे, जीवन व्यवहार चलता हे. यथा माता, पिता ओर पुत्र, पति--पतनी, संबंधी, राजा--प्रजा, व्यापर, गुरु--शिष्य, ओर सोसाईटी.--इत्यादि संबंधी जो नियम बनाये गये वा बनाये जावें उनके आधीन वर्तना. जो एसा न हो तो जनसमुदायमें योग्य गुणकर्मकी उत्पत्ति ओर सेवन न होगा; उद्यमकी वृद्धि न होगी; रोग ओर अशक्तिका राज्य होजायगा; अंतमें दुःखी होके नष्ट होजायगा. क्योंकि देश, काल, स्थिति, टेव वा रुढीभी सोसाईटीमें एक प्रकारका नियम, एसा रुप पकड लेता हे. इसलिये **अनीति** (अव्यवस्थापक समझनका वर्तन) न हो किंतु सुखाकारी प्रकार हो, एसी प्रवर्तकानीतिकी आवश्यकता हे. यद्यपि प्रवर्तकानीतिका कोई विशेष लक्षण नहीं होसकता ओर न फिक्स (निश्चित) हे किंतु यथादेशकाल, स्थिति, परिस्थिति परिवर्तनको पाती हे ओर कुटंब, जाति, सोसाईटी, धर्म, देश, मित्र, शत्रु, राज्य, व्यापार, व्यष्टि ओर समष्टि भेदसे जुदा जुदा प्रकारकी होती हे (यथा चचाकी पुत्रीके साथ लग्न करना ओर न करना इत्यादि); तथापि जो बल, विश्वास, टेव, रुढी वा अन्य कारणसे व्यवस्थापकरुपवाली होगई हो तो उसको यथायोग्य पालना किंवा समाज संमतिसे नवीन नियत करना उचित हे ॥ एक हिंदु, अपनी धर्मभावना (धर्मनीति) से मंदिर बनाके मूर्ति पूजता हे, ओर एक मुसलमान, स्वधर्मभावनावश उसे तोडता हे, तद्वत एक गायका पूजन ओर दूसरा कुरबानी (वध) करता हे. उनपर धर्मके कायदेसे इलजाम नहीं लगासकते. परंतु यह प्रवृति हिंदुस्थानियों (इनडीयनों) में व्यवस्थानाशक हे; इसलिये सत्ता प्रवर्तक नीतिकी जरुरत पडती हे. इत्यादि रीतिसे प्रवर्तकाकी जरुरत हे (विशेष नीति मीमांसामें लिखा गया हे) ॥ ४३२ ॥

तीसरा अध्यारोप वा भावना यह हे कि—राज्य ओर समाज (प्रजा) की उन्नति ओर उनकी भगति करना चाहिये ॥ ४३३ ॥ क्योंकि एसा होनेसे

लोकमें जो चाहें उसकी प्रवृत्ति वा प्राप्ति होसकती हे. याने व्यष्टिको यथेच्छा सुख मिलनेकी साधक सामग्री हे ॥ ४३४ ॥ व्यक्तिको अपने वास्ते कुछ न कुछ (थोडाक) तन, मन ओर इंद्रियोंका संयम ओर चित्तकी एकाग्रताका अभ्यास करना चाहिये ॥ ४३५ ॥ ताके मरने पीछे सहजमें मुक्तिपद मिलजावे ॥ ४३६ ॥

संक्षेपमें विवेचन—राज्य अर्थात जिस स्थापकासत्ताविशिष्टसे प्रजाको सुख मिले सो. समाज अर्थात परस्परका संबंधी जनमंडल. अब विचारिये--सत्ता, सत्तावास्ते—राजा वा राज्यके कर्माचारियों वास्ते—अथवा अमुक एक व्यक्तिके अर्थ नहीं होती, किंतु प्रजाकी रक्षा होने, प्रजाको दुःख देनेवाले जो दुष्ट हें उनको दंड मिलने तथा प्रजाके सुखके लिये हे. इसलिये राज्यके विरोधी, द्रोही न होके उसके ताबे तथा उसका शुभचिंतक होना चाहिये; ओर उसकी वृद्धि—उन्नतिका उपाय करना चाहिये ॥ इसी रीतिसे सामाजिक उन्नति ओर भगति कर्तव्य हे.—याने जनमंडलको जिससे सुख मिले, उसमें सलाह संप रहे, उसके दुःखका अभाव हो, उसका उद्योग बढे ओर जनमंडल एक उद्देश ओर एक विचारका होजाय ओर अनाचार, द्वेष न रहे; एसी कोशिश, राज्यसभा ओर प्रजाकी सभाद्वारा करते रहना; समाजके नियमोंके विरुद्ध न होना किंतु उसमें अपनेको परतंत्र जानके उनको पालना; उसके सुख उसकी उन्नतिमें अपना सुख ओर उन्नति समझना ॥ इस प्रसंगमें राज्य ओर समाज एकही बात हे. राज्य, व्यवस्थापक पदवी रखता हे, इतनाही अंतर हे. बात यह हे के राज, समाजकी उन्नतिसे हरेक अपने अधिकार—योग्यता अनुसार प्रेयस्, ओर श्रेयस्को प्राप्त करसकता हे. जहां राज्यकी अव्यवस्था, वा राज्य प्रजाका अन्मेलं हो वा प्रजामें जीवन कल्ह याने दुःखसे जीवन होता हो वहां कुछभी इष्टकार्य नहीं होसकता; इसलिये राज्य समाजकी उन्नति ओर भक्तिको मुख्य माना हे ॥४३६॥ (अ. ४ में जीवनमत ओर नोधाभक्तिभी देखो).

अप.—उक्त तीनों भावना (सू. ४२४ से ४२६ तक) व्यवहारमें अति उत्तम हें ॥ ४३७ ॥ क्योंकि समाज याने व्यष्टि, समष्टिके तन, मन ओर धन सुखकी सामग्री हे ॥ ४३८ ॥ परंतु मंडलकी संमतिसे दोनोंमें (४२४। ४३० में) भी कोई प्रकारकी सयुक्त परलोक भावनाका प्रवेश होना चाहिये ॥ ४३९ ॥ जो एसा न होगा तो जब तब परिणाममें अनिष्ट परिणाम आनेकीभी संभावना हे ॥ ४४० ॥ जेसे वर्तमान--लोकमें अर्थाअर्थी याने एक दूसरेका स्वार्थ संबंध न हो तो समाज ओर राज्यकी व्यवस्थाही न हो; इस दृष्टिसे निष्कामता कथन

मात्र हे; ओर यदि हे तो पहले अपना स्वार्थ पूरा होजाय तब निष्काम कर्म होसकते हें. इसीप्रकार मनुष्यको यदि परलोकके स्वार्थकी भावना हो तो वोह स्वार्थ, राज्य समाजकी व्यवस्था वा सहायताके विना प्राप्त न होसकनेसे उसकी स्वस्थताके लिये प्रयत्नमें उद्यत रहेगा. जो परलोकका स्वार्थ न रहा तो अपनी उचित जरुरत पूरी होनेपर राज्य समाजकी उन्नति वा भगति करनेमें उसे आग्रह न रहेगा, इसलिये उसके प्रेयस्में भी खामी आनेसे वोह दुःखी होजायगा. यद्यपि परलोक (ईश्वर, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक) मानें वा न मानें, इन उभय भावनामें कर्मको प्राधानता हे (अ. ४ । १२० में विवेचन हे), तथापि धर्मभावनाका पुलिसमेन मनके साथ रहे तो जो काम विद्या, सत्तासे नहीं होता ओर यदि हो तो मुशकिलसे हो, वोह काम उस पुलिसमेन द्वारा सुखेन होसकता हे; इसलिये परलोक प्रवर्तका नामकी नीतिकी आवश्यकता हे. मानाके वर्तमानकी परलोक संबंधी अंधश्रद्धा हानीकारक हे, तथापि जो योग्य ओर सर्व मान्य हो तो लोकमें अति लाभप्रद हे ॥ ४४० ॥

(आ.) **सबकी सामग्री समान कर्तव्य** ॥ ४४१ ॥ **प्रत्येक भोग्यका अधिकारी होनेसे** ॥ ४४२ ॥ (अप.) **सृष्टिनियम विरुद्ध होनेसे असंभव** ॥ ४४३ ॥

अ.–जितने नानाप्रकारकी सामग्रीप्राप्त श्रीमंत हें उन सबकी वोह सामग्री (धन, धान, पशु, मकानादि) कि जो विभाग पाने योग्य हें उसको सब जनमंडलमें विभक्त करदेना चाहिये ॥ ४४१ ॥ कारणके कुदरती सृष्टिमें हरेक व्यक्ति भोग्यकी अधिकारी हे ॥ ४४२ ॥ क्या वजह के श्रीमंत सुख पावें, दूसरे गरीब दुःख पावें; एक विद्या, तन, मन ओर धनके सुखको पा सके, दूसरा उसको न पा सके? एसा होता रहनेमें कोई प्रबल कारण नहीं हे; इसलिये जेसे तेसे समान विभाग होना चाहिये (एसा केसे होसकता हे, इसकी योजना कल्पनेवाले पच्छम देशमें जन्मे हें) ॥ ४४२ ॥

(**अप.**)–परंतु यह बात होना असंभव हे; क्योंकि सृष्टिनियमके विरुद्ध हे. ॥ ४४३ ॥ बालक, युवा, वृद्ध, पुरुष, स्त्री, रोगी, निरोगी, विद्वान ओर अविद्वानकी कुदरती योग्यतामेंभी अंतर हे. हरेकका जन्मसे मरण तकका ओर समष्टिका प्राचीन इतिहास देखिये; उससे जान पडेगा कि कभी एसा न हुवा ओर न होसकता हे; क्योंकि प्रकृति ओर रुची समान नहीं होती. माना के संतानको जेसे विरसा, समान बांट देते हें वेसे इस वक्त सबकी सामग्री समान करदीजाय, तोभी

फेरे आयंदे अपनी अपनी योग्यता और पुरुष प्रयत्नसे न्यूनाधिकता होजायगी; आलसी ज्यादा होंगे; उद्योगी उद्योग न करेंगे; सारांश एसी भावनाका परिणाम खराब हे. एसे विचारवाले अपने विचारके प्रचारार्थ जो अन्योंको दुःख देते हों तो वे भूलपर हें ॥ ४४३ ॥

अध्यारोप अपवादका उपसंहार.

लोकांतरमें अन्य प्रकारकी संभावना ॥ ४४४ ॥ पूर्वोक्त यहां विद्यमानभी ॥ ४४५ ॥ ओर अन्य रुपांतरसे तदंतरगत ॥ ४४६ ॥

अर्थ–परलोकों (गृहादि)में यदि मनुष्य हों तोभी उनमें पूर्वोक्त प्रकारकीही भावना हो, एसा नहीं कहाजासकता किंतु अन्यप्रकारकी हो, किंवा वहां जीवधारियोंका अन्यप्रकार होनेसे अन्यथा हो, एसी संभावना हे. सारांश परलोक संबंधमें कुछ नहीं कहाजासकता. (कितनेक धर्मपंथवाले परलोकोंमें यूं हे, एसा हे, इत्यादि कल्पना करते हें; इसलिये यह सूत्र हे) ॥ ४४४ ॥ पहिले जो अध्यारोपरुप भावना कही हें वे मानवमंडलमें विद्यमानभी हें अर्थात कोईही न होगी; नहीं तो सर्व हें. (आगे दर्शनसंग्रहमें वांचोगे) ॥ ४४५ ॥ ओर वर्तमानमें जो उपरोक्तसे अन्य हें वे रुपांतरसे पूर्वोक्तके अंतरगत हें, एसा जानलेना चाहिये. (आगे दर्शनसंग्रहमें जानलोगे) ॥ ४४६ ॥ यहांतक सू. ४ अनुसार ४५ भावनावाला अध्यारोपापवाद **क्रम समाप्त हुवा.** अब आगे जनमंडलमें जो प्रचालित प्रसिद्ध मंतव्य (भावना–अध्यारोप) हें, वे लिखेंगे.—

दर्शन संग्रह.

(भारतीय दर्शन–परखंड दर्शन)

यथा वेदादिका मंतव्य प्रसिद्ध ॥४४७॥ बौद्ध ओर जैनकाभी ॥४४८॥ प्रकृतिवादिकाभी ॥४४९॥ मिश्रित अन्यभी ॥४५०॥ रुपांतरभी ॥ ४५१ ॥ इतर खंडोंमें ईरान्यादिकोंकाभी ॥ ४५२ ॥ उनका रुपांतरभी ॥ ४५३ ॥ योरोपीय दर्शनकारोंकाभी ॥ ४५४ ॥ मान्य ग्रंथोंके अर्थांतर ओर रुपांतर होनेसे अनेक रुपमेंभी ॥४५५॥ उनके काल क्रममें मतभेद, दर्शनसे ॥४५६॥

अर्थ–वेदादि ४६+५=५१.' अर्थात--१ वेद. २ उपनिषद, ३ मनु, ४ न्याय,

'वेदादि=अद्वैत (अभिन्न निमितोपादानवाद, विवर्त्तवाद), द्वैत (त्रिवाद-पुरुषप्रकृतिवाद) एवं २ वा ४ पक्ष मुख्य हें. ४६ वा हजारों तो शाखा, उप-

५ वैशेषिक, ६ योग, ८ मीमांसा, ९ वेदांत, १० गीता, ७ सांख्य, ११ पाणिनी, २१ योगवासिष्ठ, १३ पाशुपत, १४ शैव, १५ रसेश्वर, १८ भागवत, १९ पंचरात्र, २० शंकर, २३ प्रतिभिज्ञा, २४ पुराण, (२५ शिवपुराण, २६ देवी भागवत, ३० वैश्नवीभागवत) ॥ वैश्नवी संप्रदाय–(३१ शटकोप–मुनिवाहन, ३२ रामानुज, ३४ रामानंद, ३३ पूर्णप्रज्ञ (मध्व), ३६ विश्नु, ३५निम्बार्क, वल्लभी, ४० वल्लभ (शुद्धाद्वैत), ४६ स्वामीनारायण, ३९ चैतन्य (बंगाली) ॥ शक्तिसंप्रदाय--(२६ दक्षण, २७ वाम–कौल, २९ भैरव, कापाली, बीजमार्गी. इ.) शैवसंप्रदाय (जोगी, जंगम, २२ गोरख, नाथ, अवघड, २८ अघोरी, वगेरे)॥ ४८ संतमत--(४१ तुलसी, ३७ कबीर, ३८ नानक, ४२ दादु, ४३ चरणदास, ४५ राधास्वामी), ४९ प्रचूर्ण--(४४ रामस्नेही, निःकलँकी, श्रेयसाधक, वगेरे एवं हजारसे ज्यादा शाखा, उपशाखा) ओर ५० दयानंद दंडी स्वामी; उपरोक्त धर्म, मत, संप्रदाय प्रसिद्ध हें ॥४४७॥ १६ बौद्धोंके ४ अर्थात योगाचार, सौतांत्रिक वैभाषिक ओर माध्यमक यह बडे मत (ओर उनकी शाखा, उपशाखा) प्रसिद्ध हें ओर १७ जैनके ३ अर्थात डिगंबर, श्वेतांबर, ढूंढ (ओर उनकी शाखा, उपशाखा) प्रसिद्ध हें ॥४४८॥ ओर अचिदवादि (प्रकृतिवादी–जडवादि) १२ चारवाक (आभाणिक--बृहस्पिति, श्रद्धाराम) ओर ५१ देवसमाजका मतभी प्रसिद्ध हे ॥ ४४९ ॥ अन्य कितनेक मिश्रितभी हें (" यथा पंजाबमें मुसलमानी मतके हिंदु हें वे, ईश्वरने अभावसे सृष्टि पेदा की यह ओर पुनर्जन्मभी हे यह तथा वेद पुराण मान्य हें यहभी मानते हें. कितने थियोसोफिस्त (नवीन पौराणी) हें. परिणामी, हिंदु--मुसलमान मतसे मिश्रित हें. कच्छमें मेमने हिंदु, मुसलमान मतको मानते हें ओर मुरदे जलाते तथा ब्राह्मणोंको मानते हें. इ. ") ॥ ४५० ॥ कितनेक रुपांतरको पाये हुये देखते हें (यथा ४७ ब्रह्मु, प्रार्थनासमाजी हें. वे वेदको बल्के कोई ग्रंथकोभी स्वतःप्रमाण नहीं मानते ओर जीव जगतको अभावजन्य मानते हें) ॥ ४५१ ॥

आर्यावर्त (भारत–हिंद)में २७॥ किरोडके आसरे हिंदु (आर्यप्रजा) हें उनमेंसे बौद्ध १, जेन २, चारवाक ३, देव समाजी ४ ओर ब्रह्मु ४ यह पांच तो वेदा-

---

शाखा हें. इन सबका मूल श्रुति (वेद संहिता ४ ओर ब्राह्मण उपनिषद ५२ हें) ॥ ओर शाखा, उपशाखा किसी अंशमें मूल अनुसार ओर किसी अंशमें उद्बोधककी कल्पित हें. याने मूलके अनुसार नहीं हें ॥ चार. + बौ. + जै. + दे. + ब्रं. + ४६ = ५१ वेदादि. क्रमांक १, २ वगेरे दर्शनसंग्रहके अनुसार हें.

नुयायी नहीं हें, बाकी सब साक्षात वा परंपरासे वेदको मानते हें. ओर २७॥ किरोडमें चारवाक ओर देवसमाजी, प्रकृतिवादी हें चेतनवादी नहीं हें. बाकी सब चेतनवादी ओर परलोक मान्नेवाले हें. थीओसोफी सो तो परखंडकी संप्रदाय वा परखंडका धर्म वा मत हे; वोह वेदको स्वतःप्रमाण नहीं मानती; परंतु उसमें जो हिंदु शामिल हुये हें वे, वेदको मानते हें. थीओसोफी (नवीनपौराणि) चेतनवादि ओर परलोकवादि हे तथा चिदविकासवादको स्वीकारती हे. ब्रह्ममंडल, पुनर्जन्मको ओर वेदको स्वतःप्रमाण नहीं मानता; ईश्वरने अभावसे सृष्टि बनाई हे, एसा मानता हे; परंतु चेतनवादि ओर परलोकवादि हे. इनके सिवाय आर्यप्रजामेंसे मुसलमान ओर ख्रिस्ति धर्ममेंभी शामिल हुये हें वेभी हें. (जेसाके बोहरे, खोजे, मेमन, ममना वगेरे हें). ओर पारसी, याहूदी, किरानी, कुरानी धर्मवाले १२०० वर्ष हुये कि हिंदमें आके बसे हें, इनमेंसे मुसलमानीधर्मका ९००से ओर पारसीओंका आसरे १२०० से ओर ख्रिस्तिधर्मका आसरे ३०० वर्षसे प्रवेश हुवा हे. इन ईरान्यादिका मंतव्य परखंड दर्शनमें आगे वांचोगे. हिंदमें इतर भील वगेरे[१] श्यामा (काली) प्रजा हें वोह हिंदकी प्राचीन बसती हे सो वे देव ईश्वरवादी हें, अशिक्षित कौम हे ओर हिंदु कौमके अंतरगत हे ॥ ४५१ ॥

भरतखंड (हिंद) से इतर अन्य खंडोंमें ईरानी (पारसी), याहूदी (मूसाई), किरानी (क्रिश्चियन), कुरानी (मुसलमान) ओंका मंतव्यभी प्रसिद्ध हे तथा चीन (जापान, कोरीया), मिसर (इजप्त), अमेरीकन ओर थीओसोफीका मंतव्यभी प्रसिद्ध हे ॥४५२॥ उनके मंतव्यमें जो रुपांतर हुवा हे सोभी प्रसिद्ध हे ॥४५३॥ यथा चीनमें बौद्धका मत पसरा. ख्रिस्तिओंमें रोमनकेथिलिक ओर प्रोटस्टंट भेद हुवा. मुसलमानी धर्ममें सुन्नी, शिया वगेरे ६ बडे मजहब हुये. इ. ॥४५३॥ योरोप (ग्रीस--यूनान, इंटली, फ्रेंच, जर्मन, इंगलेंड वगेरे देश)में जो स्वतंत्र दर्शनकार हुये हें, उनके मंतव्यभी प्रसिद्ध हें (उनमेंसे आसरे ७५ नामांकित फिलोसोफरोंका मत आगे वांचोगे[२]) ॥ ४५४ ॥

[१]राजपूतानामें भील, बंगालेमें संतल, दक्षणमें तोदा ओर नायर, चमार; मध्यहिंदमें कोंड. यह हिंदकी असली प्रजा हें.

[२]यथा--१ थेलीज, २ पीथा गोरस, ३ जीनों, १७ सेक्रोटिस, १८ पलेटो, २० अरस्टाटल, २५ पीरो, ४८ राजर वेकन, ४९ ब्रुनो, ५१ फ्रांसीसवेकन, ५३ डे-

धर्म संप्रदायोंके जो ग्रंथ मुख्य ओर मान्य माने जाते हें उनके अर्थोंमें मतभेद पडा इसलिये, ओर ग्रंथोंका रुप बदलाया गया वा बदल गया-न्यूनाधिकता होगई इसलिये, धर्मपंथोंके अनेक रुप हुये ओर अनेक शाखा, उपशाखा होगई ॥४५५॥ यथा वेद ग्रंथका रुपांतर न हुवा तोभी उसके अर्थमें तकरार होपडनेसे अद्वैत, द्वैतका झगडा चलपडा. ओर फेर अभावमेंसे अभावजन्य सृष्टिवाली संप्रदाय चली. दूसरी तरफ अवतारादिकी मान्यतासे अन्यरुप होगया. तोरेत ओर इंजीलकी संसारमेंभी भेद पडगया. इ. कहीं स्वतंत्रताने ओर कहीं स्वार्थनेभी रुपांतर कराया हो, एसा अनुमान करसकते हें. ओर देशकाल स्थिति, परिस्थितिवश रुपांतर हो यह तो स्वाभाविक हे--इसप्रकार संतान, दर संतान ओर कालांतरमें परिवर्तन होगया (एसे होना अनिवार्य था). संक्षेपमें उसका अनुमानिक नकशा नीचे अनुसार हे.--

प्रचलित धर्मोंकी वंसावली.

निम्न लिखित कोष्टकसे धर्म--मतके परिवर्तनकी संकलाका भान होसकता हे. नीचेके कोष्टकमें जो शब्द संकेत लिखे हें उनका अर्थ इसप्रकार करके समझ लेना चाहिये.--

वे. = वेद (सब धर्म संप्रदायोंका मूल). **प.**=पारसी धर्म. (ईश्वरद्वारा अभावजा सृष्टि ओर अग्निहोत्र (अग्नि पूज्य) मान्नेवाला. इसमें दो शाखा--१ पुनर्जन्मवाद, २ अपुनर्जन्मवाद. **ग्री.** = ग्रीस धर्म. **मि** = मिसर (ईजप्त) वेद ओर पारसी धर्मसे मिश्रित था. सं. विक्रमके ४०० वर्ष पूर्व याहूदी धर्म शामिल हुवा ओर विक्रम सं. ७०० पीछे उसमें मुसलमानी धर्म प्रसरा. वर्तमानमें विशेषतः कुरानी धर्मवाला हे ॥ **य.** = याहूदी (मूसाई). **ख्रि.**=ख्रिस्ति--ईसाई--किरानी (इसमें तोरेतवाला होम (पशु वध) उड गया. इस धर्मकी ७ बडी शाखा हें. उनमेंसे रोमनकेथोलिक ओर प्रोटस्टंट यहदो बडी शाखा हें). **कु.**=कुरानी (इसलाम--मोहमदन धर्म) यह बायबल याने तोरेत ओर ईजीलमेंसे निकला हे. इसकी ६ बडी शाखा हें; उपशाखा ७२ से ज्यादा हें. उपरोक्त सबका बयान दर्शनसंग्रहमें वांचोगे.

ची. = चीनाई धर्म. वेद धर्मका रुपांतर हुवा हो, एसा अनुमान कियाजाता हे; क्योंकि उनके ग्रंथ ओर राजा वेदसे उत्तरकालमें हुये हें. लगभग २७०० व-

---

कार्ट, ५७ लॉक, ५८ बर्कले, ५९ ह्यूम, ५० रीड, ६२ कण्ट, ६५ हेगल, ६९ कौम्ट, ७० मिल, ७१ डारविन, ७२ हर्बर्टस्पेंसर, ७५ लाज. वगेरे ७५ ॥ इस अध्यायगत दर्शनसंग्रह--बुकमें वांचोगे ॥ क्रमांक उसी बुकके अनुसार हें.

र्षसे वहां बौद्ध धर्म ओर राजधर्म (कनफ्युशी धर्म) प्रचलित हे. एसाही कोरिया ओर जापानमें हे.

बौ. = बौध धर्म. यहभी वेद धर्मका कोई विशेषरुपमें रुपांतर हुवा हो, एसा अनुमान किया जासकता हे. **जै.**=जैन धर्म. यहभी वेदधर्मका रुपांतरहो ओर इसमें बौद्धधर्मकाभी उतारा हो, एसा अनुमान कियाजाता हे (इस विषयमें विवादभी हे).

ब्रा=ब्राह्मण ग्रंथ. उ.=उपनिषद् (अनेक हें). **ग्र.**=ब्रह्मसूत्र. श्रोत=ब्रा. उ. ग्र. की अनुयायी संप्रदाय. श्रोत संप्रदाय अग्निहोत्र, पुनर्जन्म ओर ईश्वरको मानती हे. तथा ब्रा. का अनुयायी पूर्वमीमांसा (जेमिनिसूत्र) हे सोभी श्रोतसंप्रदायमें हे. **स्मृ.**=स्मृति. (मन्वादिकी अनेक हें). **शा.**=६ शास्त्र अर्थात् न्याय, वैशेषिक, योग, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा (वेदांत दर्शन), सांख्य.

पु.=पुराण. **वि.** = विश्नुपुराण. **शि.** = शिवपुराण. **भा.** = भागवत पुराण. **दे.** = देवीभागवत वा शक्तिपुराण. **तं.** = तंत्र. **शिव.** = शिवतंत्र. **शा.** = शक्तिपंथ. **द.** = शक्तिमतगत दक्षण संप्रदाय. **वा.** = शक्तिमतगत वामसंप्रदाय. (विशेष दर्शनसंग्रहमें वांचोगे.

स्मार्त = श्रौत, स्मृति, पुराणादि मिलके स्मार्तसंप्रदाय वा धर्म कहाता हे. विश्नु, शिव, शक्ति, सूर्य ओर गणेश—इन पांचों देवको स्वीकारती हे. आर्य प्रजामें इस संप्रदायका विशेष प्रचार हे ओर सबमें भक्तिमिश्रित वेदांतका प्रभाव जान पडता हे.

श्या.=श्यामा प्रजाका याने जंगली धर्म. इस प्रजामें देववाद कहांसे आया, इसमें याने उनके धर्मके मूल शोधनेमें विवाद हे. यह प्रजा सब देशमें हे.

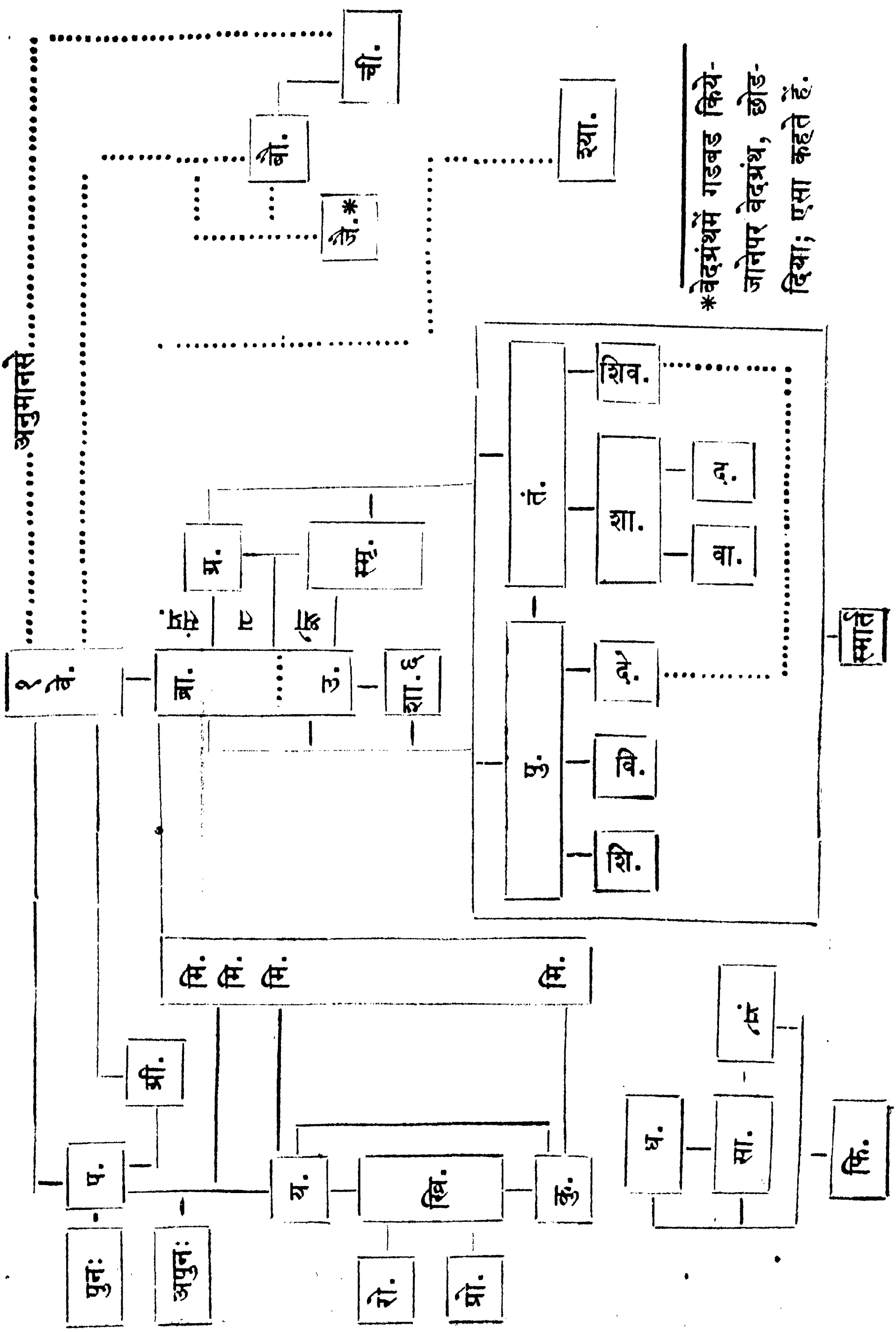
सा.=साईंस. (एशिया ओर योरोपके धर्मोंमेंसे जन्म पाके स्वतंत्र होगई.)

प्र.=प्रकृतिवाद—अचिदवाद—परमाणुवाद—जडवाद, एक शक्तिवाद.

फि. = फिलोसोफी—तत्वविद्या—मर्मविद्या—धर्मतत्वविद्या. यह धर्म, साईंस ओर प्रकृतिवादमेंसे जन्म पाके स्वतंत्र होगई.

धर्मकी वक्ष्यमाण वंसावली जेसी हमने लिखी हे वेसीही हे, इसमें हमारा आग्रह नहीं हे. शोधक स्वयं शोध सकता हे.

धर्मका शिजरा.—


अनुमानसे
*वेदग्रंथमें गडबड किये-जानेपर वेदग्रंथ, छोड-दिया; एसा कहते है.
स्मार्त
पुनः
अपुनः

सं. १९६८ (१९११ इ.)में हिंदुस्तानका बसतीपत्रक (मरदुम शुमारी) हुवा उसके अनुसार नकल.—

वेदधर्मको न माननेवाले,

बौद्ध	९४७६७५९
जैन	१३३४१४८
ब्रह्म-प्रार्थना समाजी	४०६५
पारसी	९४१९०
मुसलमान	६२४५८०७७
ख्रिस्ति	२९२३२४१
याहुदी	१८२२८
	कि. ला. ह.
मीजां	७ ६३ ०८ ७०८

वेदधर्मको माननेवाले.

हिंदु	२०७०५०५५७
आर्य	९२४१९
सिख	२१९५३३९
अन्य	८७१४०४८
अंत्यज	५३२०६६३२
	कि. ला. ह.
मीजां	२७ १२ ५८ ९९५

इनमें २००के आसरे जडवादि होंगे. ओर अंत्यजो (शूद्र-ढेढ) में साधारण रीत्या हिंदु (वेदि) इस भावनावाले होंगे.

कुल बसती ३४।।। किरोड ६७ हजारके आसरे हे.

विक्रम सं. के ८६८ वर्ष पूर्वसे वि. १९६१ तक आसरे ७५ नामांकित फिलोसोफरोंके मत.

उपरोक्त नकशा यद्यपि व्याप्तिसे बनाया गया हे तथापि एसेही हुवा होगा, इसमें हमारा आग्रह नहीं हे; क्योंकि हरेक पक्षकार अपने अपने धर्मको मूल ओर दूसरे धर्मको शाखा वा पीछे होना कहते हैं.

पक्षकारोंमें एसाभी चल रहा हे कि मान्य ग्रंथमें जो अपने विचार, विश्वास वा मंतव्यके अनुकूल न हो उस वाक्यको क्षेपक सिद्ध करना; अथवा ग्रंथकोही नवीन कृति बताना; फेर चाहे वेसा हो वा न हो; निदान उसको अप्रमाण ठेरा देना. यह शैली लगभग सब मंडलमें जान पडती हे ॥ ४४७से ४५४ तक ॥

मान्य ग्रंथोंके अर्थमें भेद होनेसे ओर उनका रुपांतर होनेसे धर्मका रुपांतर हुवा ओर होरहा हे (तथा होता रहे एसी संभावना हे) ॥ ४५५ ॥

जितने धर्म, मत ओर पंथ उपर बताये उनके उत्पति कालमें (कोन, कब तथा किससे कब हुवा इस कालक्रममें) तथा धर्मग्रंथोंके कालक्रममें शोधकोंका मतभेद

हे एसा देखनेमें आता हे. (इसका विस्तार विवेचनमें अर्थात दर्शनसंग्रहके अंतमें वांचोगे) ॥ ४५६ ॥

उपेक्षा वा अज्ञान भावभी ॥ ४५७॥ मेरा मंतव्य कहा गया ॥४५८॥

अर्थ--कितनेक मनुष्य एसेभी हें कि जिनको जडवाद वा चेतनवादसे सर्वथा उपेक्षा हे अर्थात उनका कोई धर्म, मत ओर पंथ नहीं[१] ओर कितनेक एसेभी होंगे कि जिनको इस जडवाद, चेतनवाद, द्वैतवाद वा अद्वैतवादका नामभी नहीं आता होगा अर्थात धर्म शब्दसे सर्वथा अज्ञान हों. वे इस विषयमें हां, ना, उपेक्षा, अपेक्षाभी नहीं कहसकते ॥ ४५७ ॥ मेरा (प्रयोजकका) मंतव्य विलक्षणवाद हे सो पूर्वमें कहागया हे ॥ ४५८ ॥

(नोट)--अब आगे सू. ४४७ से ४५५ तकमें जो धर्म, मत ओर पंथ (रीलिजीयन) जनाये हें उनका रुप (मंतव्य) ओर कालक्रमका विवेचन किया जायगा. जहांसे जो मंतव्य लिया गया हे, उसकी साक्षी वहां लिख दी गई हे.

*** दर्शनसंग्रह—पुस्तक.**

तत्त्वदर्शन अ. १ सूत्र ४४७ से ४५६ तकका विवेचन.

इस जुदा बुकमें तत्वदर्शन अ. १ सू. ४४७ से ४५६ तकका विवेचन लिखा हे. अर्थात सू. ४४७ से ४५५ तकमें जिन मतोंका नाम लिया हे उनका अपवाद सहित वर्णन हे ओर सू. ४५६ की टीकामें बायबल, वेद, जीयालोजी ओर ज्योतिषशास्त्रकी रीतिसे सृष्टिउत्पत्तिकाल, संवतोंकी रीतिसे कालक्रमका विचार, नामांकित—अवतारी, पेगंबर, आचार्य, धर्मगुरु, रीफारमर ओर पराक्रमी पुरुषोंके साल संवतका विचार, युधिष्ठर, बुद्धदेव ओर विक्रमके संवतकी शोध; मनुस्मृति, सूर्यसिद्धांत, महाभारत, रामायण ओर वेदके कालका विचार, शंकराचार्यके समयका विचार, ग्रंथोंकी रचनासे कालका विचार, बंसावलियोंसे कालका विचार; लेखनपद्धति काल;

---

[१] बसतीपत्रकसे ज्ञात हुवा के एसे २०० मनुष्य हें. कदाचित वे चक्कुकटे पंथवाले हों जो अपनेको खुद खुदा मानते हें.

* (नोट)—

विदित हो कि तत्वदर्शन ग्रंथकी यदि एक एक बुक ५० पचास पचास फारमकी बनावें तो छोटी मोटी आसरे १८ बुकके हों अर्थात रोयल ८ पेजी ९०० फारमसे ज्यादे ग्रंथ हे—कदाचित १००० फारम हो. अध्याय १ की ६, अध्याय २ की ६, अध्याय ३ की ४, अध्याय ४ की २ बुक, एसे १८ बुकके आसरे हें. उनमेंसे—

बायबल, कुरानका काल, पुराण ग्रंथोंकी शोध.—इसप्रकार अनेक शोध ओर विचार लिखे हें. इस पुस्तकको तत्वदर्शनके पक्षाध्याय गत सूत्र ४४७ से ४५६ तकका

(१) अ. ४ सू. १२०से १२५ तककी टीकामें "कर्मविवेक" नामकी बुक.

(२) अ. १ सू. ४३०से ४३२ तककी टीकामें नीतिमीमांसा नामकी बुक.

(३) अ. ३ सू. ३२४ से ३६४ तक ओर ३९४ से ४०४ तक ओर ४०५ से ५३४ तक ओर ५३५ से ५३८ तक—इन सूत्रोंके विवेचनमें भ्रमनाशक उत्तरार्द्ध (परमार्थदर्शन) ६० फारम गत प्रकृतिविवेकप्रकरण ओर विलक्षण प्रकरण आसरे ४० फारम हे जोकि अधिकार भेदसे जुदा शैलीमें गुजराती भाषामें प्रसिद्ध होचुका हे.

*(४) अ. १ सू. ७४७ से ७५६ तककी टीकामें 'दर्शनसंग्रह' नामकी बुक हे जो आसरे ५५ वा ६० फारम हे.

(५) अ. १ गत अचिदवादका विवेचन ओर उसका अपवाद हे.

(६) अ. २ सू. १२९ से १३४ तककी टीकामें उदाहरण रुपा "स्वरुप संभावना" इस नामकी बुक हे जो आसरे ५० फारमकी होगी.

(७) अ. २ सू. ६१६ (चर्चा[१]) के व्याख्याकी एक बुक हे.

(८) शेष आसरे ११ बुक हें जिनका सार सार आपके हस्तकमलमें जो बुक हे सो हे.

इसप्रकार १८ बुक हें. उन सिवाय मूल सूत्रोंका ओर गणोंका संस्कृतानुवाद हे.

नं. ६ वाली बुकमें अभाव ओर सामान्यके उदाहरणको लेके स्वरुप संभावनाका दर्शन कराया हे अर्थात पदार्थ निरणय करनेकी शैली हे. ओर नं. ७ वाली बुकमें तत्वदर्शन ग्रंथके संबंधमें पुनरुक्ति, विरोध, निष्फलत्व वगेरेकी जो जो शंका होसकें उनका समाधान किया हे ओर ब्रह्म वास्ते नेति ओर प्रकृति (माया) वास्ते अन्यथा शब्द सिद्धकर बताया हे अर्थात उभय तत्वके स्वरुप संबंधमें मौनके सिवाय छुटकारा नहीं, एसा सिद्ध हुवा हे. ओर इस ग्रंथके लेख वा मंतव्यपर प्रतिपक्षी जो अनुचित (न छाजता-अयुक्त) आक्षेप करे तो शोधनेपर बहुत करके उसका उत्तर वा समाधान निकाला जासके एसा अनोखारुप (प्रकारशैली--विषय) बयान किया हे.[२]

[१] पक्ष चर्चा. [२] अ. ३ । ५५०वत्.

विवेचन हे, एसा जानके उसी ग्रंथका वोल्युम जान्ना चाहिये. उस पुस्तक (वोल्युम) का नाम **दर्शनसंग्रह** हे ॥

दोषदर्शक विदुषकमत ॥ ४५९ ॥ यथा द्वैतवादमें ईश्वर सिद्धिमें दोष ॥ ४६० ॥ अद्वैतवादमें व्यवहार बाध ॥ ४६१ ॥ मिथ्यावादमें निराशा ॥ ४६२ ॥ जडवादमें शांति अभाव ॥ ४६३ ॥ ओर जीववादमें जीवन क्लेह ॥ ४६४ ॥

गुणदर्शक विभूषक ॥ ४६५ ॥ यथा द्वैतवादमें पुरुषार्थ प्रवाह ओर नीति मर्यादा ॥ ४६६ ॥ अद्वैतवादमें संतुष्टि ओर वीतरागता ॥ ४६७ ॥ मिथ्यावादमें अनासक्ति ॥४६८॥ ओर जीववादमें समाज व्यवस्था ॥४६९॥

अर्थः—किसी सिद्धांतमें यदि दोष हों तो, वे दोष दरसानेवाला विदुषक कहा जाता हे. इसलिये दोषदर्शक विदुषकमत कहा जाता हे ॥ ४५९ ॥ यदि दोष न हों ओर असत आरोप करे वोह विदुषक नहीं किंतु मिथ्यावादि हे; एसा जान्ना चाहिये. इसलिये अपनी शुद्ध बुद्धिमें जो दोष ज्ञात हों उनका दरसानाही विदुषकमत हे ॥ ४५९ ॥ (विदुषकमतका उदाहरण) जेसेके द्वैतवादमें ईश्वरकी सिद्धिप्रति दोष रहते हें. (यह विदुषकमत हे. ओर आगेभी कहते हें) ॥४६०॥ द्वैतवाद मानें ओर ईश्वर न मानें यह नहीं बनता अतः ईश्वर मान्ना. अब जो वोह परिच्छिन्न सगुण हे तो इसमें ईश्वरत्व सिद्ध न होगा. ओर यदि अपरिच्छिन्न हो तो देशाभावसे उसमें क्रिया न होनेसे जगतकर्ता न होसकेगा ओर सगुण न होसकनेसेभी कर्ता न होगा; क्योंकि व्यापकमें गुण, क्रिया सिद्ध नहीं होते. हठ वा विश्वाससे वेसा मानलेना जुदी बात हे.[1] इ. ॥४६०॥ अद्वैतवाद मानें तो व्यवहार होनेमें बाध आता हे; यह दोष हे ॥ ४६१ ॥ क्योंकि एकसे इतर वस्तु नहीं तो

उपरोक्त बुकोंमेंसे नं. १, २ सर्व उपयोगी हें, एसा माना गया हे, इसलिये साधनसामग्री हुये उनको जुदा छपानेका विचार हे. ओर नं. ६ यदि साधनसामग्री होनेपर छपी तो इसी ग्रंथका वोल्युम माना जायगा; क्योंकि अध्याय २ के विना उसका उपयोग नहीं होता. ओर नं. ५, ७ वाली बुकें साधन हुये यदि छपेंगी तो इसी ग्रंथकी बुक गिनी जायँगी. ओर नं. ४ याने ' दर्शनसंग्रह ' यदि प्राप्त सामग्रीमें शेष रहा तो नं. ८ के पीछे छपाई जायगी. नं. ३ का सार इस प्रस्तुत बुकमें हे.

[1] ओर परमात्मा हे तो सही; इसलिये ईश्वर सिद्धिमें दोषपद कहा हे.

उस एकका अपनेमें उपयोग नहीं होसकता; कारणके उसमें संयोग--वियोग ओर परिणामत्वका अभाव हे अर्थात् स्वगत भेद नहीं हे—सावयव नहीं हे. यदि अपने अंशोंके साथ संयोगी–वियोगी हे किंवा अमिश्रित एक शक्ति वा एक ब्रह्मस्वरुप हुवाभी परिणामी हे तो सावयव ठेरेगा. नहिंके सजातीय, स्वगतभेद रहित. अब जब वही जगत स्वरुप हुवा अर्थात उसे परिणामी मानें तो आपही कर्ता-भोक्ता-भोग्य, सेव्य-सेवक-सेवा, उपास्य-उपासक-उपासना, तम-प्रकाश, उत्तम-नीच, बंध-मोक्ष, सुगंध-दुर्गंध, खून-चोरी, नीति-अनीति, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, माता-पिता, पति-पत्नि, पुत्र-पिता इत्याहि विरुद्ध धर्मी होनेसे व्यवहारका बाध आवेगा. इ. ॥ ४६१ ॥ ब्रह्मसे इतर सब जगत मिथ्या--झूठ हे, इस मिथ्यावादमें निराशाकी प्राप्तिरुप दोष आता हे ॥ ४६२ ॥ क्योंकि ब्रह्मात्मा शुद्ध, अकर्ता, अभोक्ता ओर एक हे, नाना ब्रह्म नहीं होसकते. उससे इतर जीव, ईश्वर, वेद, बंध, मोक्ष, स्वर्ग, नरक, कर्म, कर्मफल, मोक्ष साधन ओर व्यावहारिक प्रवृत्ति-निवृत्ति, यह सब मिथ्या हें, तो हमको कोई प्रकारकीभी आशा वा पुरुषार्थ नहीं करना चाहिये ओर हमभी मिथ्या होनेसे अहंता ममता--त्याज्य होती हे, एवं हमाराही नाश, यह हमको अभिमत नहीं. हम मिथ्या, यह कहना मान्ना हांसी उपजावक बात हे, किसीकोभी इष्ट नहीं, ओर न वेसा अनुभव. अब यदि हम ' ब्रह्मरुप तो एसा कहने--मान्नेवाले अनेक होनेसे नाना ब्रह्म होंगे सो अयुक्त हे. ओर यदि लक्ष्यभावसे मानें तो हमारा आत्मा ब्रह्मस्वरुप हे, वोह सबमें एक हे ओर सबका आत्मा हे, एसा सिद्ध होगा. परंतु हम ओर जगत तो मिथ्याही रहे याने निराशाका बाध न हुवा, अतः पुरुषार्थहीन होजाना हे; इसलिये मिथ्यावादमें निराशा दोष हे.[१] इ. ॥ ४६२ ॥ जीवको शरीरसे भिन्न, पुनर्जन्म ओर मोक्ष तथा ईश्वरका अस्तित्व नहीं मान्नेवाले प्रकृतिवादि (अचिद्वादि–जडवादि–दहरिया, एथिस्त) कहाते हें, इसलिये उनका मंतव्य जडवाद कहाता हे. जडवादमें शांतिका अभाव रहता हे याने यह दोष आता हे ॥ ४६३ ॥ क्योंकि जडवादिओंका आत्मा (अहंकावाच्य) शरीर हे, सो षड्विकारवाला होनेसे सर्वथा सुखी नहीं रहसकता. शरीरके पालन पोषणार्थही संसारी पदार्थोंमें उनकी ममता रहती हे परंतु उनका यथेच्छा उद्देश पूरा नहीं पडता; इसलिये उनको जीवन पर्यंत शांति नहीं मिलती.

[१] सत्यवादि, प्रवृत्तिवादियोंकी जय होजाती हे; मिथ्यावादि मार खाता वा दुःखी होता हे.

तथा स्वार्थमय होनेसे जडवादिकी परकी उन्नतिमें यथायोग्य दृष्टि नहीं जाती; अपनी वा अपनी सहायक नेशनकीही उन्नति चाहता हे' इ. दोष हें ॥ ४६३ ॥ ओर जीववाद (हम जीने योग्य जीव हें. एसावाद) में जीवनार्थ क्लेश होना यह दोष हे ॥४६४॥ शरीरसे भिन्न जीव हो वा न हो परंतु हम जीव हें, कर्ता भोक्ता हें ओर जीवने योग्य हें; इसलिये अपने जीवनार्थ प्रयत्न कर्तव्य हे ओर अपनी जरुरत, ओर पोजीशन येनकेन प्रकारेण पूरी करना चाहिये; दूसरेके दुःख-सुखसे हमको क्या मतलब हे; क्योंकि " जिसकी लट्ठी उसकी भेंस " यह सृष्टिका नियम हे, योग्यतावाली व्यक्तिही जीती हे. एसे मंतव्यका नाम जीववाद हे. इस भावनावाली व्यक्तिका जीवन उक्त विचारवश क्लेशमय रहता हे; क्योंकि उसको जीवन संग्राममें अन्योंसे ज्यादा उतरना पडता हे ओर उसीमें उसके जीवनका उपयोग होता हे.' उसका विचार हे कि यदि जीव, ईश्वर रचित हे तो पराधीन होनेसे उसको निराशा फल मिलता हे ओर यदि पुनर्जन्म नहीं हे तो जीवको उन्नति-प्राप्तिका अवसर न मिलसकनेसे निराशा फल निकलता हे. ओर यदि जीवका पुनर्जन्म होता हो तो उसकी स्मृति वा साक्षी मिलती, परंतु वेसा नहीं हे अतः पुनर्जन्म नहीं हे. यूं हे, तथापि केसेही ओर कुछभी हो, हम कर्ता-भोक्ता जीव जीने योग्य हें; इसलिये जीवनार्थ जीवनसंग्राम, हमारा कर्तव्य हे. इसप्रकारकी अशांति रहना उसमें दोष हे ॥ ४६४ ॥ विशेष कहांतक लिखें अर्थात व्यष्टि-समष्टि-स्थूल-सूक्ष्मरुप कोईभी जो सिद्धांत कायम करेगा उसीमें कुछ नकुछ दोष आवेगा; कारण के कार्य (धी) अपने कारणके स्वरुपका निश्चय नहीं करसकता. जब तटस्थ होके बारीकदृष्टिसे निरिक्षण करोगे तब कोई नकोई दोष जानपडेगा. पक्षकार वा श्रद्धालु--विश्वासी अपने मनकी शांति अर्थ कोई नकोई विश्वास मानके शांत होजाते हें, इतनाही हे; सांगोपांग यथार्थ निश्चय नहीं होता; इसीवास्ते कहा हे–(शेर) पडे भटकते हें लाखों पंडित किरोडों दाना हजारों स्याने; नही किसीकी हे एसी ताकत यह राजमखफी कोइ बरवाने. (यहां तक विदुषकमतका उदाहरण कहा) ॥ ४६४ ॥

किसी सिद्धांतमें उत्तम गुण (भूषण) हों तो उन भूषणोंको दरसानेवाला विभुषक कहाता हे; इसलिये उसके मंतव्य-भावनाकी, गुणदर्शक-विभूषक, यह संज्ञा हे ॥ ४६५ ॥ जो किसीमें उत्तम गुण न हों ओर उसमें गुणोंका मिथ्या आरोप करे तो आरोपक विभूषक नहीं किंतु मिथ्यावादि, लोकेषणाग्रसित वा खु-

'योरोपके कैसरी (जरमनी) जंगको ध्यानमें लीजिये.

शामदिया हे, एसा जाना चाहिये. इसलिये अपनी शुद्ध बुद्धिमें जो गुणज्ञात हों वा मानते हों उनको शुद्ध बुद्धिसे दरसानेवालाही विभूषक हे ओर वेसा दरसाना विभूषक मत हे. यद्यपि किसी एक (सिद्धांत वा विषय) मेंही दूषण ओर भूषण (इन उभयकी) होनेकी संभावना हे ओर मनुष्यकी बुद्धि तथा सोसाइटीका व्यवहारभी एसाही हे तथापि भूषण ग्राहककोही विभूष कहा जायगा ओर दूषणदर्शककोही विदुषक संज्ञा दीजायगी. उभय ग्राहककी यह उभय संज्ञा नहीं होसकती ॥ ४६५ ॥ (विभूषकमतके उदाहरण लिखते हें.)—

जेसेके द्वैतवादमें पुरुषार्थका प्रवाह रहता हे ओर सुखप्रद नीति तथा मर्यादा अवस्थित रहती हें (यह विभूषक मत हे. ओर आगेभी कहते हें) ॥ ४६६ ॥ क्योंकि इस पक्षमें जीव शरीरसे भिन्न हे, ब्रह्मरुप नहीं होता, यथाकर्म फल भोगता ओर जन्म पाता हे, ईश्वर यथाकर्म फलदाता हे, इस प्रकारकी भावना होती हे. ओर जो पुनर्जन्म मानते हुयेभी ईश्वरको नहीं मानते उनकोभी, कर्म ओर कर्मफलकी प्रधानता मान्नी पडती हे. इसलिये जीवका सब कुछ (व्यवहार, परमार्थ, प्रेयस्, श्रेयस्) उसके पुरुषार्थपर निरभर हे ओर अपने कृतका उत्तर दाता हे; इसलिये उसको नीति मर्यादामें चलना पडता हे तबही उसका पुरुषार्थ (प्रेयस्, श्रेयस्) सफल होता हे. सारांश इस पक्षमें पुरुषार्थ ओर नीति मर्यादाकी स्थापना रहतीहे यह भूषण हे ओर ईश्वर, पुनर्जन्मके विवाद (दोष) में उतरनेकी अपेक्षा नहीं हे; क्योंकि यथा कर्मफल होना हे, अतःपुरुषार्थ नीति--मर्यादा भूषण हे ॥४६६॥ अद्वैतवादमें संतोष ओर वीतराग होजाना यह भूषण हे ॥ ४६७ ॥ क्योंकि यदि बाह्यांतरमें अद्वैतवादकी सच्ची निष्ठा हो तो सर्व प्रकारसे संतोष हे, किसके साथ राग, किसके साथ द्वेष हो; सब एक स्वरुप हें, एक शरीर हें, अंगाअंगी हें, किसीको अच्छा वा बुरा कहना नहीं बनता; निंदा-स्तुति, मान-अपमानका अवसरही नहीं रहता; इसलिये उसके फलमें संतुष्टि ओर वीतरागपना भूषण हे. इ. ॥ ४६७ ॥ संसारको मिथ्या (क्षणभंगुर—क्षणिक, वा स्वप्न समान) मान्नेमें संसारके विषयोंमें आसक्ति नहीं होती किंतु अनासक्ति रहती हे. यह मिथ्यावादमें भूषण हे ॥ ४६८ ॥ संसारके पदार्थों (शब्दादि, विषय—शरीरादि) में मोह—राग—आसक्ति ओर तदाधीनता होना यह तनमनके दुःख तथा बंधनके हेतु हो पडते हें ओर मोहादि न होना, सुख ओर अबंधका हेतु होजाता हे; इसलिये इस मंतव्यमें अनासक्ति होजाना भूषण हे. (शं.) तो फेर व्यवहार वा

जीवन केसे होगा (उ.) यथा आवश्यक्ता पदार्थोंका उपयोग कर, यथायोग्य सेव, परंतु उनमें आसक्ति नहीं करना चाहिये. सारांश मोह रहित हुये, डयूटी पूरी करना, यह स्वार्थमें कथन हे. ओर परार्थ योग्य–उत्तम निष्काम कर्म करना चाहिये. इसप्रकार आसक्ति छोडकर उत्तम सकाम, उत्तम निष्काम करना चाहिये. जो इसकोभी मिथ्या कहके उपेक्षा करोगे वा यथेष्ट वर्तोगे तो परिणाममें दुःख होगा जोके हमको अनिष्ट हे. तथाहि " संसार मिथ्या " यह मान्नाभी तो मिथ्या ठेरेगा. इसलिये इस वादके विवादमें न उतरके संसारको क्षणिक--स्वप्न जेसी मानके उसमें आसक्ति न करना इतनाही मिथ्यावादका सार हे ॥ ४६८ ॥ ओर पूर्वोक्त जीववाद (४६४) में समाजकी व्यवस्था होना यह भूषण हे ॥ ४६९ ॥ क्योंकि जीनेके सब हकदार हें, इसलिये उनकी जीवनसामग्रीपर क्लेह न हो ओर सबका सुखसे जीवन हो, इसवास्ते जनमंडल मिलके समाजकी व्यवस्था करते हें, जो एसा न होता तो व्यवस्था करनेकी अपेक्षा नहीं होती. सब बालवान नहीं होसकते, एकही होसकता हे; उसकोभी अंतमें नीति मर्यादाकी व्यवस्था करनी पडती हे, नहींतो उसका शक्तिमानपना नष्ट होजायगा. ओर शक्तिवादका परिणाम शांतिवादही होता हे. इसलिये समाज स्थापना जीववादमें भूषण हे. ईश्वरकृत जीव हो तो ईश्वरपर विश्वास रखके सबुर शुकरसे जीवन करे; एसा परिणाम निकलता हे. पुनर्जन्म न मानो तो इसी जन्ममें पुरुषार्थ करनेकी फर्ज पडनेसे पुरुषार्थी होगा. यह भूषण हे ॥ ४६९ ॥

विदुषकमतका विवेचन.—

बहुधा जो अनुभवी तटस्थ पुरुष हें किंवा जो व्यवहार मर्यादामें बंधे हुये हें वे विदुषकत्वसे जुदा रहते हें. तथापि अपने दोष अपनेको नहीं मालूम होते, दोषोंसे दोषकी संतान बढती हे, उससे लोकमें हानी होती हे; अतः शुद्ध पवित्र निष्ठासे जो दोष दरसाये जावें वा निर्णय द्रष्टिसे शास्त्रार्थ कियाजावे, तो उक्त हानी न हो तथा लाभकारी हो; क्योंकि सत्यासत्यके निर्णयको अवसर मिलता हे, असत्के त्यागनेका भान होजाता हे, युद्ध पीछे शांति होती हें, इस समान सत्का प्रचार होता हे. इसलिये इस शोधक मार्ग याने विदुषकमतका प्रचार वा स्वीकार हे. इस मतमें यह नियम हें.–(१) जो न हों उन दोषोंका आरोप न करना. (२) अपनी बुद्धिमें जेसा जानते–मानते हों वेसाही कहना. (३) जो दोष कहे जावें वे सयुक्त ओर विवेकवाली भाषामें हों, कठोर, अश्लील भाषामें न हों अर्थात किसी पक्ष-

कारके मनको दुःख लगे एसा न होना चाहिये. (४) किसी ग्रंथ वा व्यक्तिका नाम लेके दोष दरसानेकी मना हे किंतु सिद्धांत-मंतव्यके दोष दरसानेकी आज्ञा हे.

उपर अपवादोंमें ओर मंतव्य प्रति जो समीक्षा दरसाई हे (ओर तीसरे अध्यायमें कहेगा) सो **विदुशकमत**के वकील (शोधक—प्रतिनिधि) ने दरसाई हे. उससे उसने अपना काम किया. अर्थात मानो कि त्रिवाद, वा विलक्षणवाद, वा बाधवाद, वा अन्य, अन्योंसे उत्तम हें तथापि अपवादके विषय तो हें, इत्यादि सार निकाला हे. इसलिये अब यहां विदुषकमतके दर्शन करानेकी अपेक्षा नहीं हे. " विशेष मूलमें हे ".

विभूषकमतका विवेचन.

(१) प्रवृत्ति ओर निवृत्ति यह दो कुदरती अनिवार्य मार्ग हें, क्रमशः होते हें,—जन्मसे मरणतक यह क्रम देखते हें; चारों आश्रमका यही मूल हे. वर्तमानकाल प्रवृत्तिका हे, इसमें विशेषतःनिवृत्ति मार्गका अनादर हे, इसलिये वर्तमानमें संन्यासी (निवृत्ति ग्राहक) नहीं होना चाहिये. यदि विवेक—वैराग्यवश होजाय तो संबंध रहित वनमें रहे; यूं न होसके तो जमा कराये हुये द्रव्यके व्याजसे गुजर करे; एसा न होसके वा पसंद न हो तो एसे गुण संपादन करे कि लोक जिसका लाभ लेसकें ओर उसका आमंत्रण करके वा आपजाके उसकी सेवा करें; क्योंकि भिक्षा मांगनेके अधिकारकी असिद्धि हे.[१] पबलिकके वास्ते जो चंदा वगेरे मांगा वा दियाजाता हे उसका फल समष्टिका उपकार हे जिसका समष्टिको फल हे; वोह अपने वास्ते नहीं मांगा जाता, इसलिये दोष नहीं हे. मेहनतके बदले दान लेना दोष नहीं, अन्यथा लेनेदेनेसे लाभ नहीं. दान देना बडा उत्तम कर्म हे परंतु उसके नियमसे होना चाहिये. (विशेष भिक्षुकनिबंधमें).

(२) किसीको प्रवृत्ति, किसीको निवृत्ति पसंद हे (विषयी, रोगी, आळसी, अनाचारीका यहां प्रसंग नहीं हे) परंतु उभय प्रसंगमें वोही भावना ठीक हे कि जिससे अपनी वा दूसरेकी हानी न हो (जीवनमतका दोहा अ. ४ । १५ में देखो).

(३) अनुभवी ओर व्यवहार मर्यादामें रहनेवाले सारग्राही (विभूषकत्व पसंद) होते हें (अ. ३ । अ. ४ में नमूना हे).

(४) दूषण—भूषणके दर्शनसे **यथार्थदर्शकमत** उद्भव होजाता हे (जेसेके

[१]प्राचीनकालमें निर्मानता, प्रपंच रहितता, स्वतंत्रता ओर उपदेश संबंध हितार्थ भिक्षाकी रीतिथी. परंतु वर्तमानमें वेसा होनेके योग्य नहीं जान पडता हे.

तटस्थ शोधक अ. २, यथार्थदर्शक सामग्री हे; इसलिये उसे यथार्थदर्शक कह-सकते हें).

(५) **विदुषक प्रति सूचना**–(क.) उपदेश यथाअधिकार ओर जिससे लाभ हो, हानी न हो, यदि हानी हो तोभी लाभ ज्यादे हो, एसा होता हे (२। ५२९, ७२२ देखो), इसलिये इस द्रष्टिको जाने विना दोष निकालना भूल हे. (ख.) हम, तुम दोनों जमाने ओर सोसाईटीके परिणाम हें, उभय अपूर्ण हें, संभव हे के भविष्यमें आपका कथनभी सदोष होजाय, क्योंकि भ्रम, भ्रमकालमें भ्रमरुपसे ज्ञात नहीं होता. (ग.) प्रमाणकी अपूर्णता (बस. २०० ओर अ. २। ११५ मध्यस्थ सूत्र देखो) आपकोभी दूषित करती हे. (छंद) पडे भटकते हें लाखों पंडित, किरोडों दाना, हजारों स्याने॥ न कोई कुदरतका भेद जाने कहे सो बुद्धिके हें बहाने ॥ १ ॥ (घ.) कल्पित बातेंभी लाभकारी होजाती हें (अवतार प्रसंग अ. १ । ८० । ८१ याद करो) इसलिये सर्वके खंडनका आग्रह व्यर्थ हे. क्या इष्टका फोटो इष्ट जेसा न हो तो उसके द्वारा इष्टकी स्मृति न होगी? क्या धनपाल नाम रखनेसे धनाढय होजायगा? ओर लोक व्यवहार न चलेगा? (ङ.) ईश्वरादिके प्रसंगमें सबके मंतव्य, भावना–विश्वास नहीं तो क्या? एसेही आपका निषेध हे.

(६) **भूषणदर्शन**–विभूषकमतका कितनाक विषय पूर्वेमें आचुका हे ओर अ. ४ में आवेगा. विशेष मूलमें हे. यहां संक्षेपमें नमूनामात्र लिखते हें–

(१) श्वेत, श्याम यह दो बाजू हरेक मध्यममें हें, ओर अपवाद रहित कोई नहीं, इसलिये जिसमें ज्यादा सफेदी (भूषण–सुख) हो उसका ग्रहण कर्तव्य हे. (२) दुःख–सुखादि द्वंद्व हें, जिसमें विशेष सुख हो वोह ग्राह्य हे. (३) अंत जान्नेतक उभय प्रकारकी अति छोडके विचला (सम–एतदाल) मार्ग लेना ठीक हे. (४) ईश्वर हो वा न हो परंतु न मान्नेसे मान्ना अच्छा हे, क्योंकि यह मंतव्य, अशुभ प्रवृतिसे हटाने अर्थ शंका, भय, लज्जा दिलानेवाला पुलिसमेन हे. (बस. ९२, ९८ की टीका देखो). (५) पुनर्जन्म होता हो वा न होता हो परंतु न मान्नेसे मान्ना अच्छा हे; क्योंकि यह भावना पुलिसमेनपनेका काम करती हे ओर अपुन-र्जन्मवादकी तरह आशाका भंग नहीं होता; इसमें सन्याय आशा रहती हे. (६) ईश्वर, पुनर्जन्म ओर जीवादिके झगडोंमें न पडके उत्तम कर्म (शुद्धनीति, प्रवर्तका-नीति) करना बहेतर हे (अ. १ । ४३० । ४३१ याद करो) क्योंकि उससे सर्वथा

जय हे. (उससे प्रेयस् ओर हो तो श्रेयस्कीभी प्राप्ती हे). (७) जीव–जगत, ईश्वरने **अभावसे** यथेच्छा बनाये, एसी सच्ची भावना हो तो उसीकी इच्छा, अनुग्रहपर आशा रखनी चाहिये. उसकी प्रजा याने अपने भाईयों (मनुष्यमात्र, प्राणीमात्र)को दुःख हो, एसा कर्म न करना चाहिये. जो कोई कुदरती निमित्तोंसे वा दूसरे अज्ञानी मनुष्यसे अपनेको हानिपहोंच जाय तो " उसमें ईश्वरकी कोई गुप्त हिकमत हे क्योंकि वोह किसीका बुरा नहीं कराता ओर न करता हे किंतु जो कुछ किया वा हुवा ओर करेगा वा होगा, सो अच्छेके वास्ते हे," एसा समझके **सबुर, शुकर** करना चाहिये. राग-द्वेष, हर्ष-शोक, न होना चाहिये. एसे भावना विश्वासवालोंका अविश्वासियोंसे ओर क्लेश करनेवालोंसे उत्तम जीवन होगा. जरुरत ओर चिंता कम होंगी. पाप कर्म न होंगे. संतोष, सुख ज्यादा रहेगा. जीवन कल्हे, कम करना पडेगा. परंतु जो रागादि हों ओर सबुर, शुकर न हो तो उसका उक्त विश्वास बनावटी हे वा कथनमात्र हे, कुछ नहीं, त्याज्य हे; क्योंकि एसी–बनावटी भावनासे भूतकालमें अनेक हानी हुई हें, एसा इतिहास कहता हे. सारांश भावनाकी खामी हे तो उसको निर्णय करके अन्य प्रयत्न कर्तव्य हे. (शं.) हमारी वा दूसरेकी तरफसे जो बुराई हो वा जो कुछ होता हे वोह सब उसीकी प्रेरना हे; क्योंकि ईश्वरने हमको जैसा बनाया, जैसी योग्यता दी ओर जैसा साधनसामग्रीमें जोडा उसी अनुसार हम करते हें, उसकी कोई प्रकारकी हमको सूचना हुई हो तो वोह हमको यादमें नहीं रखी, यहभी उसीकी तरफसे हे; निदान सब कुछ वही करता, कराता हे, यह सब उसकी रमत हे; इसलिये हम उत्तरदाता नहीं हें. (उ.) जो एसा निश्चय ओर द्रढ विश्वास हो तो आप कोन हो, यह सवाल ओर जवाबभी तो उसीकी तरफसे हे. सारांश आपको राग द्वेष, हर्ष शोक, कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान, अमुक अच्छा अमुक बुरा इत्यादि वृत्ति नहीं होना चाहिये, क्योंकि सब उसीके तरफसे हे; तो फेर क्या कहना, मान्ना शेष रहा? कुछ नहीं. शुकर, सबुर काफी हे. इतना निश्चय ओर इसानुसार वर्तन हो तो क्या चाहिये–बस हे. परंतु ईश्वर शुद्ध, पवित्र निस्पृही, दयालु, कृपालु हे ओर हिकमती हे एसा आप नहीं जानते वा नहीं मानते. जो एसा मानते तो उक्त तर्क उत्पन्न नहीं होता. तथाहि दूसरी व्यक्तिके संबंधमें आपकी शंका व्यर्थ हे; क्योंकि हमको अन्यसे क्या प्रयोजन हे. हमतो अपने सबुर, शुकर ओर अपनी भावनापर हें. ओर सब कुछ वोही ओर उसकी तरफसे मानें तथा उसकी कृति, खराब वा व्यर्थ नहीं होती, एसा मानके सब प्रकारसे सं-

तुष्ट ओर आनंदित रहें, एसा परिणाम आता हे ॥ परंतु एसी भावना होना दुर्घट हे. मान्ना शब्दमात्र हे ॥ (८ जो अद्वैतवादकी याने ईश्वर आपही जगतजीव रुप हुवा हे, यह सब वासुदेव हे, एसी सच्ची भावना हो तो हम घटाकाशवत् ईश्वरके अंश ठेरे. अर्थात् सबहमारे समान, ओर हमारे अंग हें, तो अब किसके साथ राग–द्वेष ओर किसमें हर्ष–शोक हो. अर्थात रागद्वेषादि न होना चाहिये, क्योंकि दुःखसुखादि सब उसीकी रंगत हे नहींके अन्य हे, अतः उत्तम भावना हे. अब यदि रागादि दुःखके हेतु हें तो यहभावना बनावटी वा कथनमात्र होनसे त्याज्य हे. (९) जो जीव-चेतन, **मायाका** वशीभूत होनेसे दुःखी हे अतःमाया (अज्ञान) की निवृत्तिकी जरुरत हे, यह सच्चा निश्चय हो तो मनेंद्रियको स्वाधीन करें, जरुरत कम करें, रागद्वेष उत्पन्न हों एसे कर्म (परको दुःखी करना, विषयासक्ति) न करें तो मायाका बल हमे न बांधे ओर हम रजतमके ताबे न हों, यह कर्तव्य ठेरता हे, सो अच्छाही हे. परंतु जो एसा न हो, स्वार्थ परायणता हो तो बनावटी होनेसे त्याज्य हे. नहींतो बलवान मायामेंही फंसके दुःखी होंगे. (१०) जो द्वैतभावना मनमें सच्ची हो तो अपनेसमान दूसरेका हक (दुःख-सुख-भोग) मानके वोह जीवनमतके छंद (जीव, जीवने दे. अ. ४ । १५[१]) के समान वर्तेगा, इसलिये यह भावनाभी अच्छी हे. परंतु जो इस अनुसार अमल न हो, "माइटइजराइट" का ध्यान हो, स्वार्थमात्रही देखता हो ओर जीवनकलहेमें रागादि करता हो तो यह मंतव्य अंधेके हाथमें मशाल जेसा हे. खड्डुमें डालेगा. (११) जो जगत (बंद, मोक्ष, त्रिपुटीमात्र) मिथ्या हे, एसी सच्ची भावना हो तो हमको राग--द्वेष, हर्ष--शोक तथा किसीको हमसे ओर हमको किसीसे उद्वेग (दुःख) न होना चाहिये, विषयासक्ति न होनेसे आनंदमें रहेंगे, दुःख--सुखमें संतोषसे जीवन होगा; इसलिये यह भावनाभी बुरी नहीं हे, परंतु जो रागादि होतेहों, यथेच्छाचारी हो, वा परदुःख होनेमें निमित्त होता हो, तो यह भावना जागते सोये हुयेके समान हे, कथन मात्र हे, त्याज्य हे. (१२) **जीव अनादितत्व** (अणु वा विभुरुप) हो वा न हो, परंतु वोह **अनादिअनंत** हे, एसी सच्ची भावना हो तो वोह अपने कर्मका जवाबदार हे; एसा मान्ना पडेगा. इस भावनाका फल यह होगा—(१) उत्तम पुरुषार्थमें लगा रहेगा, (२) उत्साही-उद्योगी होगा, (३)

---

[१] यावत जीवे सुखीजी परचितसुख मत भंग ॥ जीवन दे ओर जीव, कर भर, प्रत्युपकार कर ॥ जीवनमत अ. ४ । १५ ॥

इसलिये सुख पावेगा, ४) इस पक्षमें मुक्तिसेभी पीछा आना पडता हे, इसलिये जलदी जलदी मुक्तिका लाभ ले एसी दृष्टिसे विशेष उत्तम पुरुषार्थी होगा, (५) जीवन छंदके अनुसार वर्तन होगा. नहींतो दुःखी होगा. इत्यादि कारणसे प्रवृत्ति मार्गमें यह उत्तम धर्मपक्ष हे. परंतु जो यह भावना बनावटी हो तो नास्तिक समान वा न इधरका न उधरका होनेसे दुःखी होगा. (१३) जीव अणु, विभु वा मध्यम (तत्व, अतत्व) वा शरीरसे भिन्न, न भिन्न केसाभी हो वा न हो, इससे कुछ प्रयोजन नहीं, तद्वत ईश्वर ओर पुनर्जन्मकेलिये कुछ (हे वा नहीं एसी) मान्यता न हो ओर जीवनछंद अनुसार वर्तन हे, तो उसकी प्रवृत्ति वा निवृत्ति मार्गके वर्तनमें कोई दोष नहीं आता, इसलिये अच्छा हे; परंतु उक्त भाव जो बनावटी हे तो दुःखी होगा. (१४) मानो के ईश्वरका अवतार, मूर्ति, दूत वा पुत्र कोईभी न हुवा न हे, न मूर्ति उसकी प्रतिनिधि हे, ओर न मूर्तिमें भला, बूरा करनेकी शक्ति हे, तथापि तिनके संबंधमें उपर (सू. ८१) अवतारादि षोडष विषयमें लिखे अनुसार वर्तता हो तो उसके आडे न आना चाहिये; क्योंकि अपने तन, मन, धन ओर कालका वोह जवाबदार हे. धर्मभावनामें किसीका मन स्वाधीन नहीं कियाजाता; किंतु विद्याका प्रचार होना चाहिये, (तो आपही मार्ग सुझने लगजायगा, अनुचित-हेयको त्याग देगा), नहींके खंडन--मंडन. (१५) जो कोई कर्मउपासना (संध्या, नमाज, प्रार्थना, ध्यान) सच्चे भावसे करता हे तो उसको अंतःकरणकी शुद्धि फल हो यह स्पष्ट हे. (बस. ४२से ६१ देखो) परंतु इस कर्मउपासनासे किसी दूसरेको हानी हो, एसा न होना चाहिये, तबही वोह फल होगा; अन्यथा वोह फल न होगा, प्रत्युत द्रव्य, काल व्यर्थ जायगा. (शं.) ईश्वर न हो ओर उपासना करे तो क्या फल होगा (उ.) योग्य कल्पितकाभी फल होता हे, यह उपर दरसाया हे; इसलिये उत्तम कल्पित ग्रंथ समान, अंतःकरणकी शुद्धि इत्यादि फल होंगे (भ्रमनाशक पूर्वार्द्धमें विस्तार हे). (१६) जो चांस (भावी होनहार) वा किसमित (नियत, नसीब) वा प्रारब्धमें सच्चा विश्वास हे तो अनिष्ट प्राप्तिकालमें राग--द्वेष, हर्ष--शोक नहीं होना चाहिये; क्योंकि अनिवार्य हे, हम लाचार हें. इन तीनों विश्वासोंसे दुःख प्रसंगमें संतोष रहता हे. जीवन सुखमय होता हे. यद्यपि इस भावनाका प्रवृत्ति मार्गसे विरोध हे, तथापि सबुर, शुकरसे संतुष्ट रहता हे, हाय, ओय, कल्हे करनेवालोंसे उत्तम हे. अलबत्ते जो चांस, नसीब ओर प्रारब्धका मूल नहीं समझते याने इनमें पुरुषार्थहीको मुख्यता ठेरते हुयेभी,

अनिष्टकालमें संतोष क्यों होता हे, इस गुह्य भेदको नहीं जानते, उनको इस मंतव्यका विश्वास दिलाना वा मान्ना विषवत् हे. उसका चिन्ह यह हे के अंतमें सबुर, शुक्र न होगा. ओर यदि हमारी इच्छापूर्वक किसीका हमसे अनिष्ट हुवा हे वा ईच्छापूवर्क अपने वास्ते हमने बुरा किया हे तो हम उन तीनोंमेंसे एक सिद्धांतपरभी नहीं हें, बनावटी हें; एसा परिणाम आवेगा. (१७) चांसादि कुछ नहीं हें, केवल **पुरुषार्थ**ही मुख्य हे. एसा सच्चा विश्वास हो तो उन तीनोंका मूल हे. हमको चाहिये के जीवनमत (अ. ४ । १५ से २९) के अनुसार प्रयत्नमेंही लगे रहें. कोई कार्य न हो तो किसी ईश्वर वा प्रारब्धादिने नहीं होने दिया, एसा नहीं जानके अपने पुरुषार्थमें खामी हे एसा मानके पुनः पुनः प्रयत्न करें; क्योंकि मनुष्य, अपनी सीमामें क्या नहीं करसकता ? सब कुछ करसकता हे. इसलिये यह भावनाभी उत्तम हे. परंतु " फल कुदरती वा ईश्वरीय नियमके अनुसार होता हे, " इतनी भावनामें विशेषता हो तो अनिष्टकालमें व्याकुलता, राग-द्वेष, हर्ष-शोक न होंगे. नहीं तो होंगे. (१८) **उत्क्रांति**, अनुत्क्रांतिके विश्वासमेंभी कुछ फल हे, जेसाके उपर (३४१ से ३४६ तक) में कहा हे, क्योंकि अनिवार्य हे. ओर जो स्वाधीन हे तो नं १७ अनुसार पुरुषार्थ कर्तव्य होता हे तथा जीवनमतके अनुसार वर्तना होगा, नहीं तो उत्क्रांतिका फल न मिलेगा. (१९) जो **जडवाद**में सच्ची सविवेक पूरी भावना हे, तो उसकाभी बुरा फल नहीं हे, क्योंकि सच्चा प्रकृतिवादि अपनेको समष्टिका अंग समझता हे; सबका अधिकार समान हे, अपने जेसा सबको दुःख—सुखं हे ओर समष्टिकी भलाईमें अपना स्वार्थ हे, इत्यादि उसका निश्चय होता हे; इसलिये वोह जीवनमतके अनुकूल वर्तता हे, नीतिका भक्त ओर स्वतंत्र होता हे; इसलिये व्यावहारीक दुःख उसे कम होते हें, क्योंकि यहांके कर्मका फल यहांही देखता हे. बहुधा जडवादी उन परलोक--चेतनवादियोंसे अच्छे देखनेमें आये कि जो धर्मकी आडमें शिकार खेलते हें. ओर जो लेभग्गु जडवादि हें वे दुःखी होते हें; क्योंकि उनकी दृष्टिमें नीति--सदाचारकी महतता नहीं होती, यथेच्छाचारी होजाते हें. ओर जो सविवेक निश्चय करते हें, वे समझते हें कि चित्तके एकाग्र करनेसे मानसिक (मगज) शक्ति बढके विशेष उपयोग होता हे, मनुष्य अपूर्ण हे, इसलिये उसको कोई न कोई भावनाके आधीन होना पडता हे; अतः वोह खंडन--मंडनमेंभी नहीं उतरता, किसीको कुरीतिसे दुःख नहीं देता. (सार) जडवादि हो वा चेतनवादि हो, जिसको उस विषयका पूर्ण ज्ञान (मानव मंडलमें

जितना होसके उतना इल्म) हे तो उसका मंतव्य जीवनछंदसे विरुद्ध न होगा ओर उसपर अमल होगा. जो इल्म बेअमल याने ज्ञान, विज्ञान रुप नहीं हे तो अंधेके हाथकी मशल जेसा हे–खड्डेमें डालनेवाला हे. (२०) जो वर्तन–अधिकार, शक्ति, नीति ओर समद्रष्टिकी मर्यादामें हो तो **प्रवृतिवाद**भी उत्तम हे; क्योंकि अर्थार्थी व्यवहार होनेसे अनेक कार्य सुखसे होते हें, उसके विना जीवन नहीं होता, लोकको लाभ होता हे, नवीन शोध होती हे ओर ज्ञान ओर सुखके साधनोंकी वृद्धि होती हे. इस मंतव्यका अनुयायी आलसी नहीं होता, रोगी कम होता हे, पूरुषार्थी, उत्साही रहता हे ओर उसके देखादेखी दूसरेभी वेसे बनते हें. यद्यपि प्रवृत्तिवादमें विक्षेप हे तथापि जो योग्यताकी मर्यादामें सनियम हो तो सुख तथा परोपकारभी हे. इसके अनुयायीकाभी जीवनछंदसे विरुद्ध सिद्धांत नहीं होता. परंतु जो उपरके डोल रखनेवाले हें ओर अपने स्वार्थकी सिद्धि अर्थ दूसरेकी अच्छी प्रवृत्तिकोभी निवृत्त (नाश) करडालते हें, वे उत्तम पुरुष नहीं (वर्तमानमें एसा आपस्वार्थपना विशेष देखते हें). (२१) किसीके मान्य **ग्रंथ** वा **आचार्य**--रीफारमरका नाम लेके उसके दोष दिखानेसे यह अच्छा मार्ग हे कि बालकोंको विद्या (सृष्टिनियम, साइंस) पढाई जावे; उससे स्वयंही इष्टकार्य (असत्‌कात्याग, सत्य उपयोगीका ग्रहण) होजायगा. (२२) जब किसीके साथ धर्म--मत--पंथ वास्ते संभाषण हो तब किसीके मान्य ग्रंथ वा रीफारमरका नाम दरमियानमें न लिया जावे तो कुछ फल निकलेगा. नहीं तो द्वेष होगा. (२२) **भावना, श्रद्धा, विश्वास** ओर **आत्मबल** यह एसे उपयोगी अपूर्वशस्त्र हें कि जिनके द्वारा वे भारी काम बन पडते हें कि जो दूसरे प्रकारसे बमुश्किल होते हें. परंतु अफसोस--याने जो अंधपरंपरावत् हों तो अमुक प्रसंग पडनेपर वे टूट जाते हें, तब बडी हानी होजाती हे. योग्य (समझ पूर्वक) हों तो कुछभी क्यों न हो, नहीं टूटते. फक्त कर्म उपासनाका ओर संतानका व्यवहार इसीपर चलता हे, इतनाही नहीं हे किंतु दुसरे अनेक व्यवहारभी इसीके आश्रयसे चलते हें; इसलिये किसीके योग्य भावनादिका भंगकरना बडा दोष हे. परंतु जो अयोग्य हो तो भंगकरनेसे उत्तम यह मार्ग हे के उसउस विषयके लाभ--हानीका विवेक कराया जावे तथा भावनादिकी प्रशंसाकी जाय, दूषणसे उपेक्षा ओर भूषणमें द्रढभाव कराया जावे. (२३) **शब्दप्रमाण** का सर्वथा निषेध ठीक नहीं हे, क्योंकि उसद्वारा दूसरेका अनुभव सहेजमें मिलजाता हे, वोह व्यवहारमें उपयोगी हे, उसके विना व्यवहार नहीं चलता. माना के

शब्दप्रमाण, स्वतंत्रप्रमाण नहीं ओर कल्पित हे तथापि उपयोगी हे. शब्दप्रमाणका खंडन करना अंधेके हाथमेंसे लकडी लेके उसको खड्डेमें डालनेका जैसा निमित्त बनजाना हे (विशेष अ. २ ओर बस. में). (२४) शब्द यह विद्वानोंका खिलोना हे, उसके अनेक अर्थ ओर भावार्थ होजाते हें वा करसकते हें, इसवास्ते शब्दको जाल बल्के महाजाल कहाजाता हे; इसलिये आसपासकी हकीकतपर ध्यान देके उसका उपयोग करना चाहिये. अन्यथा नहीं. (२५) जगतमिथ्या, क्षणिक वा क्षणभंगुर कहनेमें वैराग्य ओर अनासक्ति प्रयोजन हे (४६८); नहींके जगत अर्थशून्य हे वा किसीका स्वप्न हे. (२६) प्रमाण, स्वतोग्रह ओर परतःग्रहका विवाद अनुभविओंपर छोडदो; क्योंकि वोह हरेकका विषय नहीं हे (बस. में वर्णन हे). (२७) जिनको तत्वविद्या (परमात्मा, जीवात्मा, प्रकृति, मोक्ष, द्वैताद्वैतादि)--दूसरे शब्दोंमें आत्मानुभवकी जिज्ञासा हो उनको अधिकारी होके सर्वतंत्र साधन (अ. ४ में, बस. २४६ में वर्णन हे) करना चाहिये, जेसा होगा वेसा स्वयं अनुभवमें आजायगा. विवाद वा तिरस्कारसे वा शब्दमात्रसे यह विद्या नहीं मिलती. (२८) हरकोईकी अच्छी, उपयोगी बातें लेलेनी चाहिये. जेसेकि गीता अ. १६, १७ में देवीआसुरीसंपतिका विवेक ओर कर्म विभाग हे. ओर अ. २ में स्थितप्रज्ञका वर्णन हे. इ. ग्राह्य हें ॥ मुसलमान संसारमेंसे इस्तंजा करनेकी रीति तथा कुरानोक्त सूरह 'अलहम्द' ओर "सूरह इखलास"का आशय ग्रहण करनेके योग्य हे. तथा बाइबलमेंसे "अमसाल" (प. १से ३१ तक) ओर "वाज" नामके चापटरका आशय-शिक्षा ग्रहण करने योग्य हे. तथा जैन ग्रंथका प्रमादज हिंसाका त्याग याने सामान्य अहिंसावाद ग्राह्य हे. तथा बुद्धदेवका संयम, नीति ओर भ्रातृभाव जगत प्रसिद्ध हे सो ग्रहणके योग्य हे. इत्यादि रीतिसे पारसी वगेरे सर्व मत, पंथ ओर धर्ममेंसे हितकारी—उपयोगी सर्वतंत्र बातें लेलेनी चाहिये. किसीमें दोष नहीं, वा सब दुषित हें, यह कहना वा मान्ना मुशकिल हे, तथापि हरकोईकी जगतहितकारी वा लाभप्रद बातोंका क्यों न स्विकार हो ? अर्थात टोलेरेशन करके स्वीकारनाही चाहिये. वेद उपनिषदोंमें सच्ची, अच्छी, उपयोगी ओर सर्व मान्य बातें बहुत मिलेंगी ॥

तथा—

(२९) अज्ञान ओर स्वार्थको एक तरफ रखके देखें तो धर्म, मत ओर पंथमें जीवात्मा ओर उसकी मोक्ष इन दोके स्वरुपोंमें मतभेद--झगडा--खंडन मंडन हे, सो जीवात्माके स्वरुपके अनुभव न करनेवालोंमें हे ओर परंपरासे शब्दकी परि-

पाटीमें चल रहा हे. जिसने दोनोंका अनुभव करलिया होगा वोह खंडन-मंडनमें न उतरेगा. अलबत्ते उसका कथन यथाअधिकार होनेसे उसकी शैलीमें अंतर होगा परंतु सिद्धांतमें नहीं. आप अनुभव करके, परिक्षा करके तो देखो.

(३०) बहुतसे एसा कहते ओर लिखतेभी हैं कि जीवात्मा ओर मोक्षके संबंधमें उपनिषदोंका, मींमांसासे इतर न्यायादि पांच शास्त्रोंका, बुद्ध ओर जैनका, गीता, शंकर, सूफी वगेरेका मतभेद हे, परंतु जो आप वहां जाके याने जीवात्माका अनुभव करोगे ओर सारग्राही द्रष्टि रखके सृष्टिनियमानुकूल परिक्षा करलोगे तो ज्ञात होजायगा कि उनमें मतभेद नहीं हे, सबका लक्ष्य एक ओर समान हे, अलबते यथा अधिकार ओर देशकाल, स्थिति तथा व्यवस्थाकी द्रष्टिसे उनकी शैलीमें अंतर हे. संक्षेपमें उदाहरण—(क) आत्माके साथ मन मिलनेपर ज्ञानगुण, उत्पन्न होता हे उससे विषयोंका ग्रहण होता हे; यदि मनका संबंध न हो तो आत्मा मुक्त हे, यह न्याय, वैशेषिकका सिद्धांत हे. वेदांत कहता हे कि विषय विषयीके योग्य संबंधसे विषय, ज्ञानस्वरुप आत्मामें ग्रहण होता हे परंतु व्यवहार, अंतःकरण (चित्त-बुद्ध-मन-अहंकार) के योग्यसंबंधके विना नहीं होता. ओर जीवात्मामेंसे अंतःकरणका भाग निकाल दें तो आत्मा शुद्ध, कूटस्थ, मोक्षस्वरुपहे. इन उभय मतका सार एकही हे; क्योंकि साक्ष्यके विना आत्मामें साक्षीत्वका आरोप नहीं होसकता, वहां मनके संबंध विना आत्माको ज्ञान गुणवाला नहीं कहसकते. ज्ञानगुण मानें तोभी ओर ज्ञानस्वरुप मानें तोभी एकही बात हे, क्योंकि गुण गुणी, शक्ति शक्तिमान एकही स्वरुप होते हैं; व्यवहारमें शब्दमात्र दोका प्रयोग हे. (ख) योग ओर सांख्यका यह मंतव्य हे कि असंग पुरुषमें चितके संबंधसे चित्तका व्यवहार मानलिया जाता हे, उसमें कारण अविवेक हे; जब विवेकख्याति (विवेक ओर उस अनुसार परिक्षा पूर्वक अनुभव) होजाय तब जो चित्त जुदा ओर पुरुष--आत्मा जुदा स्थित होजायँ तो इसका नाम मोक्ष हे. वेदांतभी अंतःकरण भागको त्यागनेपर आत्माको मोक्षस्वरुप मानता हे; उस विना अंतःकरण विशिष्टचेतन (जीव) को कर्ता-भोक्ता मानता हे. अब विचारिये—याने उभयका लक्ष्य एक हे. (शं.) न्याय, वै. यो. सा. ओर वेदांतका एकपक्ष, यह जीवब्रह्मकी एकता नहीं मानते ओर वेदांत एकता मानता हे. न्यायादि नाना जीव ओर उनको विभु मानते हैं, यह भेद हे. (उ.) विशिष्टचेतन जीवको वेदांतभी नाना मानता हे; क्योंकि उसके विना व्यवहार ओर परमार्थकी भूमिकाही नहीं बनती, तो फेर न्यायादि नाना मानें उसका कारण स्प-

छही हे. अब रहा यह के एकता ओर भेद, यह अंतर-शैलीमात्र भेद हे. विचारिये.- उक्त फिलोसोफर जीव नाना ओर विभु मानें? कभी नहीं. परंतु अंततक व्यवहार ओर परमार्थकी व्यवस्था बने इसलिये उन्होंने यह शैली ली हे ओर खंडनमंडन कियागया हे. वेदांत एकतामें बहुत कुछ जोर मारता हे तथापि शरीर रहने तक तो उक्तजीवको अविद्यालेस लगाताही हे; क्योंकि उसके विना छुटकारा नहीं. इत्यादि रीतिसे समानता होसकती हे. उपनिषद, गीता, शंकरश्रीका सार (लक्ष्य) उपरके सारमें आजाता हे. उन सबके मतकी एकता विस्तारवाली होनेसे यहां नहीं लिखी. जैन ओर वेदांतमतकी एकता, छपे हुये प्रसिद्ध " सम्यकज्ञानदीपीका " नामके ग्रंथमें हे जो डिगंबर पक्षके महात्माका किया हुवा हे; मोरबी जैन लाइब्रेरीमें हमने बांचके उसका सार लिया हे; सो दर्शनसंग्रहमें लिखा हे. उसमें चेतनब्रह्म एक हे, शेष सब पुदगल हें, एसा जैन थीयरीसे सिद्ध किया हे. बुद्धका अनुयायी, क्षणिक विज्ञानको पदार्थ मानता हे. उसमें आत्मा (प्रकाश—विज्ञान) ओर परिणामी अंतःकरण, क्षणिक परिणामी हे, जहांतक मोक्ष न हो वहांतक क्षणिक परिणामीपना हे; वासनाके अभाव हुये स्थित याने निर्वाण हे, एसा उसका आशय हे. यहांभी उक्त लक्ष्यके अनुकूल हे. विज्ञान ओर क्षणिकको साथ लिया यह व्यवहार दृष्टिसे शैली हे. सूफी ओर वेदांत तो सर्वथा समान हें, अनलहक (अहंब्रह्म) यह उनका सिद्धांत उसी भाग त्याग रीतिसे हे, जेसाके वेदांत मानता हे. ख्रिस्ति सिद्धांतभी देखो तो वेदांत जेसा हे; वोह पिता (ब्रह्म), पवित्रात्मा (कुटस्थ-प्रत्यगात्मा) ओर पुत्र (अंतःकरण--विशिष्टचेतन) इन तीनोंकी (भाग त्यागसे) एकता मानता हे उनकी भाषामें इसे त्र्युटि (तसलीस--त्रपुटी) कहते हें. द्वैतवादका सारभी वही आवेगा जेसेके द्वैतवादि न्यायादिकोंका आया हे.

यहां इस बारीक विषयका विस्तारपूर्वक (उनके वाक्य दे देके) लिखें इतना अवसर नहीं हे, अतः संक्षेपमें नमूनामात्र कहा हे. परंतु यह लेख शब्दमात्र हे. इसकी परिक्षा तो जबही होगी के आप वहां जाके (जीवत्माका अनुभव करके) देखलें. (शं.) जब लक्ष्य एक हे तो झगडे क्यों? (उ.) हमारी समझमें तो परंपराका अज्ञान वा स्वार्थ बुद्धि, मतभेदका कारण हे; सो यहांतक रुढ होगया हे के हमारा मत सच्चा--अच्छा, दूसरोंका सच्चा--अच्छा नहीं; इसलिये दूसरे धर्ममतको संसारमेंसे निकाल डालें ओर हमाराही रहे इतना आग्रह होरहा हे; सो ठीक नहीं हे. सारसार सबमेंसे लीजिये; शांतिको पालोगे.

(३०) द्वैत अथवा अद्वैत इस झगडेमें पडना व्यर्थ हे, उभयवादिको मोह हो एसा जान पडता हे. जबतक हमारा मन कुछ मानता हे वा चलरहा हे वहांतक द्वैतही हे. कितनाभी शब्दजाल लगावें वा खंडन मंडन करें द्वैतकाही आसरा लेना पडेगा, उसविना कथन श्रवणही नहीं बनता. ओर इसविना जब होंगे तब द्वैत वा अद्वैतकी भावनाही नहीं होसकती; सब विवाद कथन श्रवण उरेही पडा रहजाता हे; अतः इस विवादमें उतरनेकी अपेक्षा नहीं हे. जो सीखना हो तो गुरुजनोंसे सीखके, अनुभव करके चुप रहो, व्यवहारमें इस विषयको मत अडाओ. जो कोई जिज्ञासु हो तो उसको सिखा दो. बस. प्राचीन ग्रंथकारोंने विशेषतः उपनिषद, गीताने इस विषयको केसे उत्तम रुपमें लपेट रखा हे अर्थात उनद्वारा अधिकारीकोही मिले, अन्यको नहीं, एसा रुप लिया हे, एसेही हमको वर्तना चाहिये.

(३१) प्रेयस् (व्यावहारिक सुख) राज्य ओर देशहित (जनसमुदायकी उन्नति) इन विषयोंका दूसरा मेदान हे; सो इस ग्रंथका विषय नहीं हे. तथापि विभुषक इतना कहसकता हे कि यदि अज्ञान ओर अपस्वार्थी बुद्धि न हो तो इन पक्षकारोंकाभी एकही लक्ष्य निकलेगा. जेसे देशहित ओर राज्यहित यह दो-नहीं किंतु एक दूसरेमें ओत प्रोत हें, वेसेही व्यवहार ओर देशहितभी ओत प्रोत हें. अर्थात देशहितके सब अंतरगत हें. ओर सर्व संमत होके तन-मन-धनसे कर्तव्य हें. (विशेष आगे) ॥

(३२) जो धर्म-मत-पंथ, प्रचारमें आये हें उनमेंसे कोनसा एसा धर्म हे कि जिसमें व्यभिचार (परस्त्री गमन), झूट बोलना, हिंसा (वैर–प्राणनाश), स्तेय (चोरी, परकी हानी), परिग्रह (जरुरतसे ज्यादा तृष्णा) इन ५ को निषिद्ध न बताया हो? कोई नहीं. किंतु सबमें सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, (जितेंद्रिय), अस्तेय ओर अपरिग्रहकी महिमा गाई हे. इस सिवाय उन धर्मोंमें कुछ न कुछ उपयोगी सत्व अवश्य मिलेगा. ओर जो कोई देशकाल स्थितिवशात न करने योग्य कहा-गया हो (यथा--बलिदान, परधर्मीका नाश इत्यादि) उसको हम क्यों ग्रहण करें? (उपेक्षा कर्तव्य हे).

(३३) कोईके दोष किसी हेतु, मित्रको दिखाना हो तो एकांतमें अच्छे शब्दोमें द्वेषभाव रहित होके बताना चाहिये. ओर वे झूठ न हों किंतु सत्य हों तोही कहना चाहिये. यथा--समुद्रके टापुओंमें ओर बर्फस्थानमें रहनेवाले हिंसक ओर

मांसभक्षक होते हें सो पापी हें; इस उपदेशमें पापी कहना ठीक न हुवा, क्योंकि वहांके रहनेवालोंका इसके विना जीवनही नहीं होसकता. इत्यादि अनेक बातें एसी हें कि देशकाल, परिस्थिति वश करनी पडती हें; अतः यथा देशकाल-स्थिति ओर परिस्थिति विचार करना ओर मान्ना चाहिये. क्योंकि एककोही जो कभी कर्तव्य होता हे वही कभी अकर्तव्य ओर जो कभी अकर्तव्य होता हे वही कभी कर्तव्य होजाता हे. एवं जो एकको कर्तव्य होता हे वोह दूसरेको कर्तव्य नहीं होता. अतःपक्षपात छोडके अपना ओर परका हित विचारके त्याग ग्रहण करना चाहिये.

(३४) सुख प्राप्ति वास्ते डयुटीका त्याग न करना, ओर दूसरेको दुःख न देना.—अर्थात सुखमें आसक्ति नहीं रखना. तोही अगामी (परलोकादि) का सुख मिलेगा. शरीर बंधारणके नियम-राज, व्यवहार, सोसाईटी ओर व्यापार बगेरेमें लागु पडते हें याने एक दूसरेकी सहायता, रक्षा करना ओर हक कायम रखना, इनसेही उन्नतिका सुख मिलेगा.

(३५) भाषा, आचार, विचार (धर्म—मत—पंथ वगेरे)का यथा देशकाल, स्थिति, परिवर्तन होता आया ओर होगा, इसलिये जेसा देशकाल, स्थिति, परिस्थिति हो उसको शोध विचारके जन सुखार्थ बंधारण बांधना वा उपदेश कर्तव्य हे. एक देशी वा " हमाराही सत्य अन्यका सत्य नहीं " एसी स्थिति वा हठ न करना चाहिये. जो हरेक विषयके मुख्य उद्देश (प्रेन्स्पाल) में एक वाक्यता हो तो जन-समाजमें अशांति न फेले.

(३६) आप यदि काली बाजुको छोडके देखोगे तो बडे बडे सब मूल धर्म-पंथोंमें बहुत एसी बातें पाओगे कि जो सर्व संमत हें. यथा—सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, वेर वा द्वेष न करना; इत्यादि उपर कह आये हें इन पांचोंके ग्रहणसेही सेंकडों दोषोंसे बचजाते हें; झूठ, चोरी, जिना, विश्वासघात, नाहक परके तन मनको दुःखाना, वैषम्यवाद, इत्यादि दोषका परित्याग होजाता हे. यद्यपि परधर्मको तिरस्कार दृष्टिसे देखना, यह बात सबमें मिलेगी, तथापि सबका विरोध होनेसे वोह काली बाजु हे, उसके ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं. पुनर्जन्म, मांसभक्षण इत्यादि एसी बातें हें कि किसी धर्ममें इनका ग्रहण हे, किसीमें इनका त्याग हे; सारग्राहीको तकरारी विषयसे उपेक्षा कर्तव्य हे. अपना मुख (वा अपने मुखके दोष वा अपने दोष) कोईभी विषय नहीं करता, किंतु परके मुखको (वा

परके मुखके दोषको वा परके दोषको) विषय करता हे ओर उसकी निंदा स्तुति करके मनमें मोद मानता हे. परंतु जो विचाररूपी काचको सामने रखके अपने मुखका प्रतिबिंब देखो तो उसे अपना मुख ओर अपने मुखके (अपने) दोष जान पडें. प्रतिबिंब न देखे वहांतक अपनेको रुपवंत अन्यको कुरुप मनमें मान रहता हे.

(३७) मनुष्यकी (वा समाजकी) योग्यता, इच्छा ओर प्रयोजनके उपरांत बोध करनेसे उस (व्यक्ति वा समाज)की अवनती होती हे; इसलिये एसा न होना चाहिये. यथा--वर्तमान आर्यप्रजाको साम्यकी आवश्यकता हे; इसलिये वैषम्यवादका निषेध ओर साम्य (समानता-संप)का बोध होना चाहिये. नहींके निवृत्तिवादका. साम्य अर्थात मनुष्यमात्र समान हें, उनके गुणकर्म समान उनको मानना ओर उस अनुसार उनके साथ वर्तन होना चाहिये (जेसेके बुद्धदेवने प्रचार किया था). यह साम्यभाव ओर वैषम्यवादका अभाव, विद्या-शिक्षणके विना कभी नहीं होता, अतः विद्या प्रचार सर्व मान्य सिद्धांत हे सो कर्तव्य हे.

(३८) " आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पंडितः " यह बोध आर्यप्रजाके महत्‌ऋषि महात्माओंका हे, परंतु अफसोस, हम एसे सुपूत हुये हें के उनके मार्गको छोडके चलते हें.

(३९) लौकिक सौंदर्य, लौकिक भक्ति (योरोपीयनोंने सीखी) में हे परंतु इस व्यावहारिक सौंदर्यको छोडके देखें तो जो सौंदर्य, आनंद ओर रस प्रभुकी भक्तिमें आता हे वेसा दूसरे प्रकारमें नहीं आता; क्योंकि इस भक्ति रससे संसारके तमाम विषयों (व्यावहारिक, पारमार्थिक)में सौंदर्य मालूम होने लगजाता हे. इससे उपरांत एक ओरभी गुह्य कारण हे अर्थात " जो मजा हिजर यारमें देखा, न कभू वसल यारमें देखा. " इस रमजकी जहांतक खबर न हो वहांतक परोक्ष श्रुत इष्ट (प्रभु)के मिलनेके समयका अंत नहीं आता किंतु इंतजारी, उत्साह ओर उम्मेद (प्रिय प्रीतमकी कृपावाली आशा)की लहरोंमें किलोल करता रहता हे. भावना, श्रद्धा, विश्वास ओर आस यह चार तत्व उसके जीवनके आधार होते हें. प्रभु पेसा, राम रुपैया, मोहर महोबत हरकी, यह उसका वित्त होता हे, ओर हीरालाल ओर मोति इष्ट रिझानेकी युक्ति होती हें. इष्टकी आशापर जीता रहता हे.

यद्यपि ज्ञान यह भक्तिका फल हे; तथापि ज्ञानी बडे होशियार स्वतंत्र पुत्रके समान होता हे, उसकी बालककी जितनी दरकार नहीं कीजाती; परंतु सच्चा भक्त

बालक पुत्रके समान होता हे; जेसे बालकका आश्रय वा जो कुछ कहो सो माता हे ओर उस शुद्ध बालकको जगतके तमाम पदार्थ मनोहर भासते हें, सबमें लालित्य देखता हे; इसीप्रकार भक्तका आश्रय प्राण वा जो कुछ कहो सो प्रभुही हे ओर जगतके तमाम पदार्थोंमें सौंदर्यको पाता हे; क्योंकि सब उसके इष्टके रचे हुये खिलोने हें, एसी उसकी भावना होती हे. जिसका मन स्वर्गप्रापककर्मकी सुगंधिकी वासमें नहीं ललचाया होगा, जिसको विषयवासनाने अपने फंदेमें न फंसाया होगा, जिसको षुशक फिलोसोफीके शब्दोंने नहीं बींधा होगा, जिसको ईश्वरके स्वरुपके खंडन मंडनकी बर्छीने नहीं छेदा होगा, जो खंडन मंडन ओर संशयकी डोरपर नहीं दोडता, जिसके हृदयमें अपने माने हुये इष्टमें जो दृढश्रद्धा, भाव, विश्वास, आशा ओर प्रेम हे सो भयंकर घातोंसेभी नहीं हलते, जो वक्ष्यमाण तीन ऋणका करजदार नहीं हे, जिसने लोकवासना, देहवासना, शास्त्रवासनाके वस्त्रको फाडडाला हे, ओर जिसके आचार-विचार-उच्चारमें इष्टके प्रेमका रस बह रहा हे; एसे सदाचारी, भाविक, श्रद्धालु, इष्टविश्वासु, निष्कपटी, भक्त पुरुषका जीवन दूसरोंसे अत्युत्तम होता हे, ओर उसकी दृष्टिमें जगत ललित रुप जान पडता हे, उसको राग-द्वेष नहीं होते, किसीमें उसकी तिरस्कार दृष्टि नहीं होती, उसे मानापमान नहीं होता, वोह दुःख-सुखमें समान रहता हे, उससे किसीको ओर किसीसे उसको उद्वेग नहीं होता, ईश्वरके विश्वास, उसकी आशा, उसके प्रेम ओर उसके आनंदमें मगन रहता हे, यारकी धुनमें अलबेला मस्त रहता हे, सबुर (संतोष) ओर शुकर (ईश्वरका धन्यवाद) यह दो उसके कवच होते हे. ग्हां यूंभी वाहवा हे ग्हां त्यूंभी वाहवा हे। राजी हें हम उसीमें जिसमें तेरी रजा हे ॥ एसा उसका भाव हमेशे रहता हे. एसे होते होते वोह पराभक्तिको प्राप्त होके अपने इष्टको पालेता हे. इसप्रकार यहां वहां सुखी होता हे. अतः-भक्तिको उत्तमतर पदवी दे सकते हें. परंतु अफसोस यह हे कि यह चाट, यह चसका मजनुं जेसे किसी विरलको नसीब होता हे; क्योंकि इसमें मोमके तरंग पर चढके अग्निमें चलने समान अवस्था हे. यद्यपि ज्ञान मार्ग खड्गसेभी तिक्षण हे याने जरा चूका के कटा, ओर भक्तिमार्ग वेसा नहीं हे; क्योंकि भक्तिमार्गमें नाश नहीं होता; तथापि भक्तिमार्ग हाथीको कच्चे सूतकी रस्सीसे बांधने समान हे, उसमें मन-मस्त हाथी बंधता हे, ओर जो टूटे तो देर नहीं लगती. परंतु ज्ञान होनेका मूल हे ओर इसमार्गमें हानी नहीं ओर मार्ग सहल हे, अतः उत्तम हे.

(शं.) जब, प्रेमभक्तिमें उन्मत्त रहे तो शरीरयात्रा केसे होगी ओर जो शरीरका अभाव होजाय तो फेर भक्ति केसे होसकती हे अतःभक्तिमार्ग नहीं निभता. (उ.) पागलोंकी रक्षा होती हे तो क्या इस उपयोगीकी रक्षा न होगी. " देवानाबाश ता गमे तो दीगरां खुरंद". वस्तुतःबात यह हे कि वोह भीखमंगा नहीं होता, लोककी सेवा करना अपना फर्ज समझता हे; क्योंकि ईश्वर (शरीर) के सब अंग हें, एसा मानता ओर उस अनुसार वर्तता हे; इसलिये उस उपयोगीकी लोक, सेवा करते हें. कपटी, ढोंगी, दंभी, आपस्वार्थी भगतको मुश्कली पडती हे जेसा के वर्तमानमें देखते हें; अतः आपकी शंका निरर्थक हे.

(४०) एक धर्मवाले (यथा कुरानी), एक जातिवाले (यथा ब्राह्मण वा क्षत्रीय), एक कौमवाले (यथा हिंदु), एक प्रजा (यथा आर्य), एक देशवाले (यथा हिंदी–हिंदु, मुसलमान, पारसी, किरानी वगेरे हिंददेशमें बसनेवाले[१]) इन सबका स्वदेशार्थ एक उद्देश, एक विचार ओर एक अभिमान हो तो इनके समूह मंडलका नाम नेशन कहाता हे ओर उसके रक्षक-सहायक वा उसके साथ एक अभिमानवालाभी उस नेशनके अंतरगत कहाजाता वा मानाजाता हे.

यदि नेशनका अभिमान अभिमत हो तो यहभी अच्छा हे; क्योंकि नेशन–तमाम प्रजाको सुख मिलनेका साधन हे. परंतु धर्म-नीति-सदाचरण, अतिरस्कार, परस्परकी रक्षा, परस्परकी सहायता ओर संपके विना नेशन नहीं बनती, ओर कायम नहीं रहसकती; इसलिये हमको चाहिये कि वेसे योग्य बनके नमूना (आदर्श) बनें, ओर अपनी नेशनकी वृद्धि-उन्नति, रक्षाकेलिये तथा उसको सुख मिलनेके वास्ते योग्य उत्तम नाना उपाय करते रहें ओर उसके सर्व संमत बनाये हुये नियमोंको पालते रहें. (योरोप देश वर्ति नेशनका प्रकार ध्यानमें लीजिये) अ. ४ गत सामाजिक उन्नति प्रसंगमें **जीवनमत** ओर नोधाभक्ति दरसाये गये हें; वे यहां विचारणीय हें. परंतु जैसा अपनी नेशनके वास्ते समझते वा मानते हो वेसाही दूसरी नेशनके हक ओर अधिकार समझना वा मान्ना चाहिये. अर्थात उसकी हयाती, उसके हक ओर उसके सुखको हानी पहोंचाने वास्ते कामनाभी मत करो. नहींतो तुम्हारी नेशनकाभी जबतब नाश होजायगा. हां यदि कोई संपीली, अप-

[१] यदि इन हिंदु वगेरेको अपनी जन्मभूमि–स्वदेश याने हिंद भूमिका अभिमान हो ओर इनका एक उद्देश (हिंद देशकी उन्नति) हो तो यह सब हिंदी नेशनके वाच्य ठेरेंगे.

स्वार्थी, ग्रामी नेशन तुम्हारी नेशनको हानी पहोंचाये तो उसके हानीकारक करतुतोंसे अपनी नेशनको बचाना यह तुम्हारा कर्तव्य होगा; क्योंकि नेशनका अभिमान जनमंडलके सुख वास्ते हे. नहींके अमुक संप्रदायों समान अपने स्वार्थ वास्ते हे.

(४१) माना के मानव सृष्टिमें वेद ग्रंथसे पहेलेका कोई अन्यग्रंथ नहीं जान पडता. परंतु इससे यह नहीं मानसकते कि अन्य सब धर्म--मत--पंथ इसकी संतान हें वा इसीमेंसे निकले हें; क्योंकि संभव हे कि उस ग्रंथके प्रसिद्ध होनेके पूर्व ग्रंथके विना प्रजामें एक वा अनेक धर्मकी भावना हो. इसीप्रकार (वेदानुयाइयोंके मंतव्यानुसार) जो कोई धर्म--मत--पंथवाला यह कहे कि पहेल पहेल हमारा धर्म हे, अन्य उसकी संतान हें वा उसमेंसे निकले हें, एसा आग्रह नहीं करना चाहिये; क्योंकि सृष्टिमें एसा देखते हें कि एक आदर्शसे उस जेसी वा उससे अन्यप्रकारकी कल्पना वा आचार होते हें ओर कालांतरमें उनका अन्य--नवीनही रुप होजाता हे; इसलिये उसे पूर्वका अवतरण नहीं कहसकते. यथा वेद ग्रंथके प्रसिद्ध होने पीछे ओर उससे पूर्व उससे अन्यप्रकारकी कल्पना वा आचार हुये (दस्यु, अनार्य वगेरे). कहनेका सार यह हे के संस्कारोंकी अद्भुत महिमा हे; इसलिये उपरोक्त धर्मशिजरेके अनुसार (बोद्ध, जैन, ग्रीस, मिसर, पारसी, याहूदी वगेरे) यदि हुवा हो तोभी उसका आग्रह नहीं करना चाहिये. किंतु उपर कहे अनुसार सब धर्म-मत-पंथवाली बातोंका संग्रह करके प्रचार करना उचित हे. तोही जनमंडलको सुख होगा ॥

(४२) योगविद्या यह कोई मत वा धर्म नहीं हे, किंतु अध्यात्मविद्या (जीव, बंध, मोक्ष, ईश्वर, प्रकृति, पुरुषके स्वरुपकी निर्णायक-सूचक विद्या)द्वारा जो विवेक हुवा उसके अनुसार हे वा नहीं इस बातकी परिक्षा--ख्याति करानेवाली तराजु वा केमिस्टरी हे, जिसका संबंध प्रेकटस--अभ्याससे हे, शब्दमात्रसे लाभप्रद नहीं हे. उसकी विधि योग्यशास्त्रमें प्रसिद्ध हे. जो जिज्ञासु, अधिकारी हो सो उसमें कहे अनुसार करके देखले. परंतु उसी शास्त्रमें जो सिद्धि (विभूति) प्राप्ति लिखी हें उनमें न फंसना चाहिये; क्योंकि नहीं कहाजासकता कि वे बातें कहांतक ठीक हें, ओर यदि कोई प्रकारमें ठीक हों तोभी यद्यपि वे व्यवहारमें कदाचित यत्किंचित उपयोगी हों तो हों; परंतु मुमुक्षु--जिज्ञासुको तो हेय हें; अतः उनसे उपेक्षा कर्तव्य हे. सांसारी प्रवृत्तिके त्यागे विना योग नहीं होसकता ओर इस कालमें वेसे वीर्यवान शरीर ओर त्यागवृत्ति दुर्लभ हें; इसलिये अधिकार संपादन हुये विना

किसीके लिखने-कहने-सुननेमात्रसे उसमें प्रवर्त्त न होना चाहिये. नहींतो सुखके बदले दुःखके भोग होपडोगे ॥ विभूषकमत समाप्त हुवा ॥ ४४६ ॥

अध्याय १ का उपसंहार.—

पूर्ववत् भविष्यमें नवीनकी संभावना ॥ ४७० ॥ विचित्रताका प्रवाह रहनेसे (इति) ॥ ४७१ ॥ परिक्षा सृष्टिनियमादिसे नियमादिसे ॥ ४७२ ॥

अर्थ—जेसे पूर्वसे आजतक अनेक मत होते चले आये ओर हो रहे हैं वेसे भविष्यमेंभी नवीन धर्म–मत–पंथ चलें, एसी संभावना हे ॥४७०॥ क्योंकि सृष्टिमें विचित्रताका प्रवाह हे ॥ ४७१ ॥ नवीन प्रजा उत्पन्न होती रहती हे. सृष्टिके कारबार (फारम) ओर मनुष्योंका आचार–विचार परिवर्तनको पाते रहते हें; अतः नवीन पंथ चलें एसी संभावना हे ॥ ४७१ ॥ परंतु सृष्टिनियम नहीं बदलते हें ओर तत्संबधी सहकारी हकीकतभी होती रहती हे, इसलिये जितने धर्म–मत–पंथ अबतक हुये ओर हें तथा भविष्यमें होंगे उनके सदसदकी परिक्षा (वक्ष्यमाण–) सृष्टिनियमादिसे होसकती हे ॥ दूसरीबार "नियमादिसे" एसा उच्चार, अध्याय समाप्तिका सूचक शब्द हे ॥ ४७२ ॥

तत्वदर्शन ग्रंथका पहेला पक्षअध्याय समाप्त हुवा।

॥ ॐ ॥

तत्वदर्शन नियमाध्याय २.

प्रवेश.—

इस अध्यायके कदका नाम पूर्वमें तत्वनिर्णायक था. इसमें सृष्टिनियम, जीवनियमादि ओर उनसे कोनसा विषय किस प्रकार निर्णय हो, इसका वर्णन किया गया था. जिसका कद आसरे रोयल ८ पेजी २४०० से ज्यादे (४ सत्यार्थ प्रकाश जितना) था. उसमेंसे पहेले पहेल १३१ सूत्र पीछे ६२८ सूत्र छपे. पीछे तीसरी आवृत्ति याने संस्कृतमें तीसरे अध्यायके साथ ६५७ छपे ओर चोथी आवृत्तिमेंभी उतनेही रहे. ओर अब यह ७४७ सूत्र हैं. जबके संग्रह ड्राफटरुपमें तैयार हुवा तो प्रेरकोंकी सूचनासे तीसरा, उस पीछे पहेला, उस पीछे चोथा अध्याय बनाया गया अर्थात तत्वनिर्णायकका दूसरा अध्याय नाम पडा ओर " अथनियमादि " के बदले " अतः नियमादि " पहेला सूत्र हुवा. अब मूल ड्राफट ग्रंथरुपमें गिना गया. चोथी आवृत्तितकमें विषयदृष्टिसे नियमका क्रम था ओर अब इस आवृत्तिमें नियमदृष्टिसे विषय निर्णयपर ध्यान रखके योजना की गई हे. इसलिये तीसरी चोथी आवृत्तिके सूत्रोंसे संख्याके क्रमका अंतर पड गया ओर आधार, तथा मुक्ति यह दो विषय तीसरे अध्यायमें डाले गये ओर प्रसंगवश सूत्रोंका अदलबदलभी हुवा हे; इसलिये गत हिंदी वा संस्कृत आवृत्तिके अनुसार अर्थ मानलेनेकी अपेक्षा नहीं हे. यद्यपि सिद्धांत वा आशयमें कहींभी अंतर नहीं हुवा हे तथापि क्रमवश सूत्रोंके शब्दोंमें ओर सुधारनावश सूत्रोंकी संख्यामें अंतर पडा हे.

यह अध्याय जो आपके हाथमें हे, मूल भंडोलमेंसे सार सार लेके लिखा गया हे; क्योंकि वर्तमानकालमें इस विषयका ग्राहक किरोडमेंसे १ भी मिलना मुश्किल; ग्रंथ बहुत बडा ओर खुशक विषय. अर्थात वर्तमान प्रजाको प्राणयात्रासेही फुरसत नहीं तो इस जगडोलको कोन हाथमें ले. ओर न मूल प्रसिद्धिकी सामग्री हे; इसलिये रुपैयेमेंसे दो आनाभर याने सारमात्र लिखा हे.

इस अध्यायमें मुख्य सृष्टिनियम ५३ हैं. जिस सूत्रका अंतिमपद ही हो उसे मुख्य नियमका बोधक जानियेगा. परंतु गंभीर होनेसे प्रेरकोंकी आज्ञावश ५९

ज्यादे हुये इसप्रकार ११२[१] नियम हैं (जिनका समावेश २५ में होजाता हे). इन ज्ञातनियमोंमेंसे कोईक (दो) नवीन हैं, बाकी सब प्राचीन महोदयोंके ग्रंथोंमेंसे एकत्र करके सिद्धि किये गये हैं. उनमें कितनेक नियम एसे हैं कि जो प्राकृत पदार्थोंको स्पर्श करते हैं, जेसेकि विकारी (३५०) हे ॥ कितनेक चेतन पदार्थको छूते हैं, यथा द्रष्टा (३७५), ओर असंग (२८३), ओर अधिष्ठान (२६८)॥ कितनेक नियम एसे हैं कि जो प्राकृत, अप्राकृत (मिटीरीयल, अनमिटीरीयल) जड, चेतन इन उभयको लगते हैं, यथा भेद-स्वरुपाप्रवेश (३८२), सफल (१२७)॥ तथा कितनेक नियम मूल कारणको लगते हैं, यथा मूल (१३५) ओर कितनेक कार्यको लगते हैं यथा मध्यम (१३९) ॥ तथा कितनेक एसे हैं कि जिनका संबंध जीव सोसाईटीके साथ हे परंतु वे जीव रचित हैं—नैसर्गिक नियम नहीं हैं; उनमेंसेभी कितनेक कुदरत संबद्ध जीवको लगते हैं; इसलिये जीव संबंधी नियम, यह प्रकरण जुदा रखा हे. परंतु उनका उपयोग यथा प्रसंग कर्तव्य हे. मुख्य मुख्य सूत्रोंके प्रतिज्ञा, संज्ञा वगेरे नाम रखें हैं जो शोधक, परीक्षक ओर अभ्यासीकी सूगमता वास्ते हे—हवाले मिलनेमें सुगम मार्ग हे.

इस अध्यायोक्त एसा कोई नियम नहीं होगा कि जो विद्वान, बुद्धिमान, शोधक, परीक्षक, तत्ववेताकी अगाध बुद्धिसे बाहिर हो, इसलिये संशयोत्पन्न होनेपर उनका उनसे निश्चय होसकेगा.

इस अध्यायमें ७४७ सूत्र हैं, वे ५ प्रकरणोंमें विभक्त हैं--(१) उपोद्घात (१ से ४७ तक), (२) प्रमा-अप्रमा (४८ से १२६ तक), (३) नैसर्गिक नियम (१२७ से ४६८ तक), (४) जीव संबंधी नियम (४६९ से ६५६ तक), (५) ओर सूचना (६५७ से ७४७ तक); एसे पांच प्रकरण हैं. प्रकरणगत अनेक अधिकरण हैं ओर अधिकरणगत गुण हैं. इसप्रकार ७४७ सूत्र विभक्त हैं.

यद्यपि इस अध्यायका कटाक्ष (विषय) तो रीलीजीयन-फिलोसोफी (धर्मतत्त्वविद्या) परही हे याने ईश्वरादि ८ विषयके निर्णयपर हे तथापि आर्यप्रजामें

---

[१] निरवयव (१७४) इस एक नियमकी शाखा-विस्तार १८३ तक हे. कारण (२७०) इसनियमकी शाखा विस्तार २८३ तक हे. नित्य (१८४) इस नियमकी शाखा-विस्तार १९७ तक हे. इसीप्रकार कहीं कहीं अन्यत्रभी हे, यथायोग्य समझ लेना. इस क्रम विस्तारको गौरव वा पुनरुक्ति वा व्यर्थ पदवी नहीं दोगे; एसी आशा हे.

धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष इन चार पदोंमें तमाम जीवनका समावेश किया गया हे ओर बहुधा व्यावहारिक विषयोंमेंभी धर्म (ज्ञातव्य, कर्तव्य, प्राप्तव्य) शब्दको लगाया हे, इसलिये इसमें पारमार्थिक विषयों ओर व्यावहारिक अनेक विषयोंका निर्णय होसके एसा, संक्षेपमें प्रकार रखा गया हे; जिसका विस्तार मूलमें [१]हे, प्रसिद्ध होनेपर ज्ञात होगा. लिखित मूल ग्रंथका यह सार एसे रुपमें लिखा हे कि जो वोह प्रसिद्ध न होवे तोभी बुद्धिमान उन बातोंको उद्भव करके इस सारका उपयोग लेसके.

इस अध्यायगत जो नियम हें वे केसे उद्भवे ओर कोनसा किस दृष्टिको लेके लिखा हे, इत्यादि बाबत विस्तारवाली हें, इस लघु आवृत्तिमें नहीं लिखसकते. कुछ तीसरे अध्यायसे जानीजासकती हें.

इस अध्यायमें जितने योग्य दृष्टांत दिये हें वे लोकमें प्रचलित होनेसे पक्षकारोंकी दृष्टि ओर अपना आशय समझानेके हेतुसे दिये हें; नहींके उनको इत्थमही मानलेना हे. यथा देशकालका दृष्टांत वा उदाहरण हे. जब जहां देशकालकोही साध्य माना-जाय वा बुद्धिकोही साध्य कहा जाय तब तहां उनकी दृष्टांत, उदाहरण पदवी केसे रहसकती हे ? एसे प्रसंग आनेपर उनको छोडके वा उसका अन्यभाव लेके दूसरे नियमोंद्वारा साध्य, सिद्ध करना चाहिये. परंतु देशकाल ओर जीवज्ञानके विना जीवमात्र, पदभी नहीं बोलसकता ओर कल्पनाभी नहीं करसकता, तो फेर इनका परित्यागभी केसे होसकता हे. अर्थात मौनके सिवाय उपाय नहीं हे. तथापि शोधकको अपने मनमें हठ नहीं करना चाहिये.

इस अध्यायमें हवाले वा साक्षीकी पुनरुक्ति हो यह तो होनाही चाहिये, परंतु तदेतरभी कोई कोई जधे पक्षकारोंकी दृष्टि ओर उनके अर्थ, लक्षण तथा प्रक्रियाको मनमें रखकेभी पुनरुक्ति करनी पडी हे. यथा उपादेयवत् परिणाम अवयवी (३१६ । ३१७), ओर द्विधानियम (४४१ । ६५१) की नियम ओर सूचना उभय प्रसंगमें अपेक्षा थी अतः पुनरावृत्ति हुई हे.

प्रस्तुत प्रसंगसे जानलिया होगा कि पुनरुक्ति, असंगति वा विरोधाभास सहेतुकभी होता हे. नहींके अज्ञात वा व्यर्थ (सू. ३३ । ३५) ही.

---

[१] तत्त्वदर्शन ग्रंथका कद बहुत बडा हे यह उपर कहा गया हे. भप. मू. बस. इत्यादि ग्रंथ इसीकी संतान, उपसंतान हें.

यह अध्याय स्वतंत्र हे. इसको अन्य अध्यायोंकी अपेक्षा नहीं हे[१] किंतु अन्योंको इसकी अपेक्षा हे. तोभी किसी प्रसंगमें दूसरे अध्याय वा बस. आदिके देखनेको कहा हे उसका कारण[१] ग्रंथकी प्रस्तावनामें वांच चुके हो. इसी कारणसे यहां वृति, अति संक्षेपमें लिखी हे.

प्रसंगोंमें अन्य ग्रंथोंके संकेतसे हवाले दिये हें उन संकेतोंका अर्थ पूर्वमें कहे अनुसार करलेना चाहिये.

गण अ. २ सू. ३.

गणसंज्ञा सुगमता वास्ते बनाइ जाती हे. इस नियमाध्याय गत सूत्रोंमें जिनगणोंका नाम लिया हे, उनकी संख्या ओर उपयोग सूत्रोंकी वृति ओर विवेचनमें हे. गण ३ प्रकारके होते हें.–(१) संज्ञागण (यथा स्वरुपसंभावना १२६ हें), (२) आकृतिगण (यथा भावना मान्य ईश्वरमें १४ हें), (३) पारिभाषिकगण (यथा त्रिपुटीमें १५ हें). गणोंकी सूची नीचे अनुसार हें.––

गण नाम.	संख्या.	सूत्रांक.	गण नाम.	संख्या.	सूत्रांक.
अण्वादि	३	१५९	अनुवृत्यादि	३	१२२
अणु प्रत्यय	२२	१२९			६१६
अणु विभु प्रत्यय	६०	,,	आकांक्षादि (योग्यता)...	४	५९२
अणु मध्यम प्रत्यय	२८	,,	आकारादि	२२	१२९
अज्ञानादि (योग्य संबंध	६	४३९	आकर्षणादि	८	२६६
अभावादि)		६३७	आभासादि	५	१२९
अतिव्याप्तिआदि	३	२३	आश्रयादि	२	३०४
असंभव	१००	१३०	उत्पत्यादि	३	३५७
अनवस्थादि	३	६६८	अर्थापत्ति	३	६२
अभाव निमितादि	५	११३	कालादि	११	१२९
अनुमानादि	५	९१	कल्पितादि	४	,,

[१] मानलो कि मूल मसवदा (ड्राफ्ट) नष्ट होजाय वा बस. वगेरे ग्रंथ न मिलें तोभी इस सारद्वारा इष्ट प्रयोजन सिद्ध होजाता हे, एसा प्रकार हे.

गण नाम.		संख्या.	सूत्रांक.
कर्मादि	....	३	१४
कार्यकारणादि	....	९	३६१
क्लेश	....	५	१३५
गुणादि	....	८	५३५
			१३१
			३३०
गुण्यादि	....	८	३७४
चिदादि	....	२५	१२९
जनकादि	....	६	५२९
त्रिपुटी	....	१५	१२९
ताप	....	३	७३५
द्रव्यादि	....	२	१२९
द्रष्टा-दृश्यादि	....	९	३७५
दंडीआदि	....	३	५२४
नियमादि (सृष्टिनियमादि)	....	५	१
न्यायादि	....	५	२४८
नियोगादि	....	३	५२६
पश्चादि	....	३	२४७
परिमाण	....	६	१२९
प्राप्तिआदि	....	७	१५
परिणामादि	....	६	३६१
प्रत्यक्षादि	....	६	११५
भावादि	....	११	१२९
मननादि	....	२	२०
मोमनादि	....	३	५०८
ममतादि (९+२)	....	११	५६५
मौन	....	७	१२९

गण नाम.		संख्या.	सूत्रांक.
मूर्तामूर्तादि (४)	....	५२	३७२
			३८२
			मेंफोड
मध्यस्थ	....	४	११९
योग्यसंबंधाभावादि (अज्ञानादि)	....	६	४३९
			६३७
योगादि		३	५२१
योगीआदि		३	६१४
रागादि	....	८	५५६
विविध	....	२	१२९
विभु प्रत्यय	....	३८	२९
विभु मध्यम प्रत्यय	....	१२	२९
विवेकादि	....	४	७१९
शब्दादि (अ.३।५५३)	..	३४	१०६
षड विकार	....	६	३५०
स्वरुप संभावना		१२६	१२९
१ द्रव्यादि		२	,,
२ परिणाम		६	,,
३ आकारादि		२२	,,
४ चिदादि		२५	,,
५ कालादि		११	,,
६ भावादि		११	,,
७ त्रिपुटी		१५	,,
८ आभासादि		५	,,
९ गुणादि		८	,,
१० गुण्यादि		८	,,
११ कल्पितादि		४	,,

गण नाम.	संख्या.	सूत्रांक.	गण नाम.	संख्या.	सूत्रांक.
१२ विविध(अनेक)२		,,	संस्कारादि	८	२१
१३ मौन ७		,,			५३५
———			समीपादि	१२	४८१
स्वरुप	६०	१३४	स्वर्गादि	२	५०५
	—		स्वक्रपादि	४	५६४
अणु प्रत्यय	२२	,,	स्वयंभूवादि	६	२६८
विभु प्रत्यय	३८	,,	साधारणादि	२	२७२
स्वरुपज (मध्यम प्रत्यय)	३५	,,	हिमप्रलयादि	३	६९४
स्वरुपस्वरुपज प्रत्यय	३०	,,	हेत्वादि	७	४३
	—				
अणु मध्यम....	२८	,,			
विभु मध्यम	१२	,,			
६ + ६					

॥ ॐ ॥

अथ तत्वदर्शन नियमाध्याय २.

उपोद्घात प्र. १.

संगति—जो जो शब्द (ग्रंथ) स्वतः प्रमाणरुप मानेंजाते हें उनउन शब्दोंमें ओर जो पक्षकार शब्दप्रमाणको स्वतंत्र प्रमाण नहीं मानते उन दर्शनकारोंमें शोधक जिज्ञासुके इष्ट अर्थात् तत्व—श्रेय ओर श्रेयके साधन—इस विषे मतभेद हे, जैसाके पहेले अध्यायमें अध्यारोप अपवादरुपसे तथा प्रचलित मत दरसाके बताया गया हे; इसलिये जिज्ञासुको संशयोत्पत्ति होनेपर उसे सत्य जान्नेकी इच्छा होती हे यह अ. १ । सू. १, २॥ में जनाया हे ओर अध्यायके अंतमें "निर्णय नियमादिसे" एसी सूचना हे-

अतःनियमादिका अनुशासन ॥ अ. २ सू. १ । (सूत्रनाम-) प्रतिज्ञा ॥.

वृत्ति—इसलिये अर्थात सत्य जान्ने वा निर्णय होनेकेलिये इस दूसरे अध्यायमें नियमादि अर्थात सृष्टिनियम, जीवसृष्टिनियम, तद् हेतु, उदाहरण—दृष्टांत, तत्संबंधि ओर निर्णयोपयोगी विषयका उद्देश—कथन हे ॥ १ ॥ शब्दमें पक्ष ओर मतभेद हे, अकेला प्रत्यक्ष वा केवल अनुमान, वा अकेली तर्क-वा युक्ति, शांतिकारक परिणाम नहीं लासकते याने उन एकएकसे ठीक निर्णय नहीं होसकता (आगे वांचोगे), इसलिये सर्वको मानलेने योग्य सृष्टिनियम तथा तत् संबंधी अन्य नियमादिको कथन करते हें. प्रतिज्ञा, संज्ञादि यह सूत्रोंकी संज्ञा हे; साक्षी लेने अर्थ सुगमता वास्ते कल्पी हें ॥

पूर्ववत् वर्तनको सृष्टिनियम वा नैसर्गिक नियम कहते हें; क्योंकि वे सृष्टिमें वर्तते हें तथा वे स्वाभाविक होते हें. इस अध्यायमें सृष्टिनियम बोधक (यथा १२७, १३५, २७०, ३०६ इ.), हेतुबोधक (यथा २९ । १३६ इ.), उदाहरणबोधक (यथा ३८१), दृष्टांतबोधक (यथा ४२२, ४२५ इ.), नियमोपयोगबोधक (यथा ४२६), नियम परिणाम बोधक (यथा १५१ । ४१३) ओर जीवसृष्टिनियमबोधक (यथा ४ । ४४ । १०० । ४७१ इ.) वाक्य हें. वे

सब उद्देशके सहकारी हैं. जीव (मनुष्य) संबंधी नियम २ प्रकारके होते हैं.–(१) प्रकृति संबद्ध जीवरचित (सुखकारक) नियम (यथा प्रत्याक्षादिके नियम), (२) केवल जीव सोसाईटी संबद्ध जीवरचित नियम (यथा वर्णाश्रमके नियम) ॥ १ ॥

संज्ञा कथन सुगमता अर्थ ॥ २ (संज्ञा) ॥ **जेसे यहां स्वरुप संभावनादि** ॥ ३ (संज्ञी) ॥

अर्थ–संज्ञाका कथन वा योजना पाठककी सुगमता वास्ते हे ॥ २ ॥ जेसेके इस अध्यायमें स्वरुपसंभावनाआदि संज्ञा हैं ॥ ३ ॥ स्वरुपसंभावना १३ संज्ञा (१२६ बाबत) का नाम हे.–(१) द्रव्यादि, (२) गुणादि, (३) गुण्यादि, (४) परिमाण, (५) आकारादि, (६) चिदादि, (७) कालादि, (८) भावादि, (९) त्रिपुटी, (१०) आभासादि, (११) कल्पितादि, (१२) विविध, (१३) मौन. तथा असंभव १०० संज्ञा हैं. इत्यादि. इसप्रकार अनेक संज्ञा (गण) हें. वे उन उनके प्रसंगपर लिखी गई हैं.

अब आगे **अधिकारी–अधिकरण** हे. याने तत्वविद्याकी प्राप्ति वास्ते किसको ओर क्यों इच्छा होती हे सो लिखेंगें.—

प्राप्तिवत् इष्ट इच्छा योग्यको ॥ ४ (अधिकारी) ॥ **सो प्रवर्त्तक** ॥ ५ (प्रेरक) ॥ **न दुःख अभाव सुख** ॥ ६ (निर्दुःख) ॥ **नित्यानित्य व्यवहारमें** ॥ ७ (सुख) ॥ **न विषय न तिसकर न तिसमें** ॥ ८ (निर्विषय) ॥ **न सजातियमेंही इच्छा** ॥९ (अभिलाषा)॥ **अप्राप्त निर्दोषकी** ॥१०(इच्छा) ॥

अर्थ–जेसे इष्ट (सुख--श्रेय--अभ्युदय--मोक्ष--अपवर्ग--उन्नति-सुख--दुःखाभाव)की प्राप्ति उसके प्राप्त होने योग्यको होती हे, वेसेही उसकी इच्छाभी उसके योग्यको होती हे। जडको न प्राप्ति ओर न इच्छा होती हे ॥ ४ ॥ बालकको न कामकी इच्छा ओर न उसकी प्राप्ति. इसीप्रकार श्रेयकी इच्छा ओर प्राप्ति उसके योग्यको होती हे. शब्दसे कथनमात्र इच्छा नहीं कहाती ॥ ४ ॥ सो इच्छा, प्रवृति (प्रवृत्ति-निवृत्ति) की हेतु होती हे ॥ ५ ॥ बालक सर्प वा दीपकपर हाथ डालता हे, शराबी शराबमें ओर व्यभिचारी व्यभिचारमें प्रवर्त होता हे, उसमें सुखेच्छा हेतु हे. यद्यपि उसका परिणाम दुःख हे तथापि उनकी आंतरिय इच्छा दुःख रहित सुख प्राप्तिमें हे ॥ ५ ॥ दुःखके अभावका नाम सुख (प्रेयस) वा श्रेयस् नहीं हे ॥ ६ ॥ क्योंकि दुःखाभाव ओर मेंसुखी एसे अनुभवमें अंतर हे. मूर्छा वा उदासीन अवस्थामें दुःखका अभाव होता हे परंतु सुख नहीं होता.

[1]तुर्यामें सुखका भाव होता हे (तुर्याके लक्षण अ. ४ में हें) ॥ ६ ॥ लोकमें व्यावहारीक सुख अनित्य ओर परलोकका (मोक्षका) सुख नित्य कहाता हे वा सुनते हें ॥ ७ ॥ अर्थात इस संस्कारसे नित्य सुखकी इच्छा होती हे वोह हे वा नहीं, इसके निर्णयका यह प्रसंग नहीं हे ॥ ७ ॥ सुख (वा श्रेय), संसारमें जितने विषय (शरीर, इंद्रिय, प्राण, मन, स्त्री, पुत्र, धन, शब्दादि पंचविषय इत्यादि) हें उन विषयरुप नहीं हे ओर न विषय करके प्राप्त होता हे ओर विषयमेंही सुख हे एसाभी नहीं हे ॥ ८ ॥ क्योंकि एकही विषय, एकको कभी सुख, कभी दुःखरुप जान पडता हे वा वेसा भोग होता हे. तथाहि एकही विषयसे किसीको दुःख, किसीको सुख होता हे; ओर सुषुप्ति तथा तुर्यामें विषय विना सुख होता हे, सुषुप्तिकी सबको इच्छाभी होती हे; इसलिये सूत्रोक्त आशय ठीकही हे.

स्त्री, ऋतु वा कुलटा वा वृद्धकालमें सुखरुप नहीं जान पडती. तद्वत पुत्र, आज्ञा भंगकालमें सुखरुप नहीं जान पडता हे. मित्रके शत्रुमें शत्रुके मित्रको सुख, ओर हमको दुःख दृष्टि हे. सर्प सर्पनीको सुखरुप हमको नहीं. ब्रह्मचारी ओर संन्यासीको कांता दुःखरुप, गृहस्थको सुखरुप. संन्यासीको द्रव्य संग्रहसे दुःख ओर ग्रहस्थको सुख. रस, योगीको रोग, भोगीको भोग. विषय प्राप्त न हो तब दुःख, प्राप्तमें रक्षाका दुःख, नाश होनेपर दुःख. क. परदेशमें होनेसे अपने पुत्रको नहीं जानता. कालांतरमें दोनों सराय-धर्मशालामें उतरे. पुत्रके पीड उपडी, जिससे क. को नींद नहीं आई अतः क. पुत्रको दुष्ट दृष्टिसे देखके दुःखी होता हे. जब वातचीतमें जानपडता हे तो हा, पुत्र कहके उसकी पीडासे दुःखी होता हे. क. का पुत्र परदेशमें सुखी ओर श्रीमंत होगया हे, कोई दुष्ट क. को कहता हे के वोह मर गया; तो क. बडा दुःखी होता हे. इसप्रसंगमें मनरचित पुत्र, दुःखरुप वा दुःखद हुवा हे, न कि कुदरती पुत्र. इन उदाहरणोंसे जान लिया होगा कि जो विषयमें वा विषयकरके वा विषयही सुख होता तो उपरवाले उदाहरण न मिलते. संक्षेपमें किसीको इष्ट वा अनिष्ट मात्रा बुद्धिके भेद हें. अपने अनुकूलको अच्छा सुखद, प्रतिकूलको दुःखद कहती हे. यथा अग्निदाहक, ओर शीत निवारक. परंतु बुद्धि जिस भाव, जिस प्रकारमें मानती हे वेसे वे विषय नहीं हें; किंतु यथाप्रकृति वा रचना, वे उपयोगमें आते

[1]उदासीन, मूर्छा, सुषुप्ति अनुवृत्ति, ओर मरण--इन अवस्थाओंसे भिन्न एक अवस्था होती हे. जहां चित्तकी वृत्ति चेतनमें लय होजाती हे परंतु शून्यरुप नहीं होती.

(निमित्त) हें. सारांश पुरुषका आशय (इच्छा) सुखमें हे, नहिं के विषयमें; क्योंकि विषय तो उपर कहे वेसे हें ॥ ८ ॥ (धन, स्त्री, पुत्रादि—इष्टकी प्राप्तिसे चित्तमें सुख होता हे सो, सुख भावमें तो समान हें; परंतु उसमें भोग दृष्टिसे अंतर हे इसलिये) प्रथम भुक्त सुख जेसे की ही इच्छा हो एसा नियम नहीं हे (किंतु अन्यकीभी इच्छा होती हे) ॥९॥ जेसे चीरे लगने, गुमडे कुलने, शूल चलने, पुत्र-धन नाश होनेमें जो दुःख होता हे सो, दुःख भावसे समान हें परंतु उसके भोगभावमें अंतर होता हे वोह अनुभवमेंही जान पडता हे. एसेही सुखभावमें बारीक अंतर हे, सो अनुभवने योग्य हे ॥ ९ ॥ परंतु जो अप्राप्त हो ओर आत्यंतिक दुःख रहित नित्य याने अविनाशी सुख हो एसे सुख (श्रेय—इष्ट) की इच्छा होती हे ॥ १० ॥ शारीरक, मानसिक, सुख अविनाशी नहीं हें. सारांश श्रेय (मोक्ष) की इच्छा होती हे. (इच्छा होना बनता हे) ॥ १० ॥

इच्छा—यह स्वरुपतः कोई नवीन वस्तु नहीं हे किंतु संस्कारज अवस्था अनुसार निवृत्ति वा प्रवृत्तिका कालांतरमें जो दृढ अभ्यास होगया वेसे परिणाम विशेषका नाम इच्छाकृति हे. इसीको विलपावर (इच्छाशक्ति) कहते हें. कितनक इसको जीवका (ओर ईश्वरका) गुण मानते हें. सारांश प्रवृत्ति, निवृत्तिका हेतु इच्छा नामक अभ्यास हे. नहींके इच्छा नामा कोई चेतन वस्तु.[१]

सुख, दुःख—यहभी जीववृत्तिका परिणाम विशेष हे; तथापि विवादित विषय हे. एक यूं कहता हे कि अनुकूलका ज्ञान सुख, प्रतिकूलका ज्ञान दुःख. दूसरा यह कहता हे कि चित्तकी अनुकूलाकार अवस्था सुख, प्रतिकूलाकार दुःख. तीसरेका मत यह हे कि सुख, दुःख यह जीवके गुण हें. इत्यादि मतभेद हे.[१] ॥१०॥

वक्ष्यमाण **साधनअधिकरण**, व्यवहार ओर परमार्थ इन उभय प्रसंगमें लगता हे एसे जानके यथा प्रसंग भावार्थ लेलेना चाहिये.

प्राप्ति प्रयत्नसे ॥ ११ (प्रयत्न) ॥ **साध्ययोग्य साधन** ॥ १२ (साधन) ॥ **अन्यके सहकारीभी** ॥ १३ (सहकारी) ॥ **कर्मादिवत्** ॥ १४॥ **प्राप्तिआदि कर्मसे** ॥ १५ (विकार) ॥ **उपासनासे विक्षेपाभाव** ॥ १६ (उपासना) ॥ **ज्ञानसे निरावरण साक्षात्** ॥ १७ (साक्षात्) ॥ **प्रतिबंधके अभावमें साधनकी सफलता** ॥ १८ (सिद्धि) ॥ **विरोधीसे निवृत्ति** ॥ १९

[१] इच्छा, दुःखका निर्णय (विशेष वर्णन) मूलमें, बस. में भू. में हे.

(निवर्तक) ॥ **श्रवणकाही मननादि** ॥ २० (श्रवण) ॥ **विलक्षणतामें संस्कारादि हेतु** ॥ २१ (संस्कार) ॥

अर्थ–इष्ट वस्तुकी प्राप्ति पुरुष प्रयत्नसे हुवा करती हे (जेसे के खानपानादिकी प्राप्ति ओर उक्त इष्टकी प्राप्ति प्रयत्न साध्य होती हे) ॥११॥ साध्य (इष्ट) की जिससे प्राप्ति होसके एसे साधन होने चाहिये ॥ (यथा तमका नाश प्रकाशसे होता हे शस्त्र वा इच्छामात्रसे नहीं) ॥ १२ ॥ अमुक साधन अमुकके वास्तेही होता हे, एसा नहीं हे किंतु एक दूसरे प्रसंगके साक्षात वा परंपरासे अर्थात अंतरंग वा बहिरंग साधनरुप हुये सहकारीभी होते हें ॥ १३ ॥ जेसे कि मनका कर्म (गति), विषयके साथ जुडने–तदाकार होनेका (उपासनाका) सहकारी हे ओर यह उपासना विषयके ज्ञान होनेमें सहकारी हे ओर यह ज्ञान विषयके विज्ञान (क्रिया-कर्म करके उसका उपयोग होना) में सहकारी हे । इसप्रकार व्यवहारके कार्य मात्रमें कर्म, उपासना ओर ज्ञान एक दूसरेके सहकारी होते हें. वेसे परमार्थ प्रसंगमेंभीजान लेना चाहिये ॥ १४ ॥ (परंतु उनका विशेषकार्य–फल जुदाजुदा होता हे जेसेकि) प्राप्ति, निवृत्ति, उत्पत्ति, नाश, न्यूनाधिकता, परिणाम (विकार–स्थिति बदलना) यह ६ कार्य, कर्म (गति–क्रिया) से होते हें. कर्मके विना नहीं होते ॥ १५ ॥ वा उपासना या ज्ञानमात्रसे नहीं होते. हां ज्ञान, उपासना, उपर कहे अनुसार उसके सहकारी मानसकेंगे. एक कर्मके अभ्याससे दूसरे कर्माभ्यासका अभाव होजाता हे. एक क्षणमें चितकी असंख्य गति होती हें वे व्यवहार वा परमार्थ सिद्धिमें प्रतिबंधक होती हें, उसको (चित्तको) एक गतिमें रखनेका अभ्यास, अमुक एक कर्माभ्याससे होजाता हे ॥ १५ ॥ मनमें जो विक्षेप पाने ओर चंचल रहनेका स्वभाव होजाता हे सोभी व्यवहार, वा परमार्थकी सिद्धिमें प्रतिबंधक होता हे उसका अभाव, उपासना रुपाभ्याससे होजाता हे ॥ १६ ॥ चितको प्रथम बाह्य फेर अंतरमें किसी विषय (धेय) के आकार करके ठेरालेना **उपासना**[1] कहाती हे. उपासना, यह ज्ञान होनेका अंतरंग साधन हे. अवलंब विना चित्तकी गतिका निरोध (अभाव) होनेका नाम योग हे वोह विक्षेप ओर चंचलताके अभाव होनेका साधन हे. परंतु ज्ञान जबही होगा कि चित विषयाकार होके ठेरे.

[1] परिच्छिन्न जीव वा चित्त, अपरिछिन्न जेसा अर्थात तिसका आकार नहीं रखसकता; परंतु तदाकार होना, वृत्तिव्याप्तिमात्र मानते हें. अतः इष्टके समीप जुडके स्थिर होनेका नाम उपासना हे.

॥ १६ ॥ ज्ञानसे आवरण भंग होके इष्टका साक्षात्कार होना यह फल हे ॥१७॥ इष्टके साक्षात न होनेमें अज्ञान (योग्यसंबंधाभाव) आवरण हे, ओर इष्टके ज्ञानके विना इष्टका उपयोग नहीं होसकता; अतः उक्त अज्ञानकी निवृत्तिकी आवश्यकता हे. उसके अभाव होनेका साधन ज्ञान हे अर्थात ज्ञान (इष्ट ओर अधिकारीका योग्यअभेदसंबंध) से विषयका आवरण न रहके विषयका साक्षात होना यह उसका फल हे. याने साक्षात होनेमें ज्ञान साधन हे. उपासनाके उत्तर क्षणमें एसा होता हे. इसलिये उपासना ज्ञान होनेका अंतरंग साधन हे ॥ १७ ॥ जो कोई (भूत-वर्त्तमान वा भावी) प्रतिबंध हो (५६५ देखो) तो साधनसे इष्टफल नहीं होता, इसलिये इष्ट साधनेमें जो हों तो प्रथम प्रतिबंधकोंकी निवृत्ति कर्तव्य हे, तब साधन सफल होंगे ॥ १८ ॥ जेसे बलवान निर्बलको दाबता वा नाश करता हे यह नियम हे, वेसे उसके (प्रतिबंधके) बलवान विरोधीसे उसकी निवृत्ति हुवा करती हे यह नियम हे. अर्थात पुरुष प्रयत्न बलवान होना चाहिये; तब इष्टकी प्राप्ति होती हे. (सू. ३४४ देखो) ॥१९॥ जिस इष्ट विषयका श्रवण किया हो उसीका मनन (विचार) ओर फेर उसीका निदिध्यास करना चाहिये, तब दृढ बोध होता हे ॥ २० ॥ उपर व्यवहार वा परमार्थवाले इष्ट (कार्य)की सिद्धिमें कर्मादि साधन कहे, यह सब जहां करना न मालूम हो ओर इष्ट सिद्धि सहेजमें होना जान पडे—एसी विलक्षणता ज्ञात हो तो वहां वेसा होनेमें संस्कार, रजवीर्य, स्वभाव, अहार, संग, परिस्थिति, आवश्यकता ओर संबंध यह सब सामग्री उत्तम हें, इसलिये थोडे प्रयत्नसे इष्टसिद्धि हुई हे, एसा जान्ना चाहिये. ओर उपरोक्त पुरुषार्थ करनेपर (खामी पडे अर्थात जानते हें कि पूरा पुरुषार्थ किया हे परंतु वस्तुतः उसमें अपूर्णता हे.)भी इष्टसिद्धि न हो, एसा देखा जावे तो संस्कारादि मंद हें उत्तम नहीं, एसा जान लेना चाहिये ॥ २१ ॥ पूर्व जन्म निर्णय पर्यंत पूर्व संस्कारको बीचमें नहीं लेना चाहिये, इसलिये पूर्व संस्कार अर्थात माता-पिताके चित्तमें जो उत्तम मध्यम संस्कार, पुनः गर्भस्थापनकालमें उभयके जेसे संस्कार, पुनः गर्भकालमें माताको जेसे संस्कार होते हें वे गर्भमें असर करत हें. पुनः बालकपनमें जो संस्कार पडते हें सो. इसप्रकार पूर्व संस्कारके अर्थ लेना. रजवीर्यका अर्थ वैद्यक मतसे लेना. सत्वगुणी, रजोगुणी ओर तमोगुणी अहारका फल प्रसिद्ध हे. इसप्रकार संस्कारादिसे जो नवीन प्रकृति वा स्वभाव हुवा, एसे स्वभावका भाव लेना. एसेही जीवको जेसे माता-पिता, गुरुका संग ओर दूसरे पदार्थोंका संबंध हो

वैसी योग्यता होगी. इन हेतुओंको लेके इष्ट सिद्धि, असिद्धिके साधनोंमें भेद पडजाता हे. विस्तार मूलमें हे ॥ २१ ॥ इस साधन अधिकरणका विवेचन लिखित मूल ग्रंथमें हे ओर परमार्थ संबंधी विवेचन बस. में हे ॥ ११ से २१ तक ॥

गतिके कई प्रकार हैं. मुख्य दो—(१) अबुद्धा, यथा वायु वगेरेकी; (२) बुद्धा जेसे प्राणिओंकी. बुद्धाके २ भेद हैं-(१) सामान्या वा स्वाभाविका, यथा खान-पान, भय, मैथुनादि; (२) विशेषा, यथा सदसद विवेक पूर्वक वर्तन. बुद्धा गतिको शास्त्रिय परिभाषामें कर्म कहते हैं. अर्थात जो क्रिया इच्छापूर्वक की जाय ओर जिसका दुःख सुख फल होता हे, सो.

मानव वृत्तिके ३ भेद हैं—(१) ज्ञान-जीववृत्तिका विषयाकार होनेपर उसकी अवस्था विशेष होना, (२) ध्यान-जीववृत्तिकी कृतिका अभाव याने विक्षेप रहित होके स्थिर होना. यदि वोह स्थिरता सावलंबन हे तो उसका नाम उपासना हे याने इष्टाकार होके ठेरना. जो अवलंबन रहित हे तो उसका नाम योग हे, (३) कैवल्य-जीववृत्ति, ज्ञानेंद्रिय वा कर्मेंद्रियके साथमें क्रिया करे वा संकल्प-विकल्प किया करे, सो.

कर्मादि तीनोंका उपयोग व्यवहार ओर परमार्थमें होता हे. सदविचार, सद उच्चार, सदाचार, यह व्यावहारिक कर्म हैं. संध्यादि करना ओर अध्यात्म विद्याका श्रवण मनन पारमार्थिक कर्म हैं. किसी विषयमें मन लगादेना व्यावहारिक उपासना हे जिससे पदार्थोंकी योग्यताका ज्ञान होजाता हे. ईश्वर आकाशादि इष्ट विषयमें मन लगाके स्थिर करना पारमार्थिक उपासना हे. विषयोंका ज्ञान होना व्यावहारिक ज्ञान हे. प्रकृति (माया) जीव, ब्रह्मका ज्ञान होना पारमार्थिक ज्ञान हे.

हरेक व्यावहारिक वा पारमार्थिक प्रसंगमें कर्म, उपासना ओर ज्ञानकी अपेक्षा हे; क्योंकि गति, जिसकी गति ओर इन दोनोंका ज्ञान-इन तीन पदोंमें तमाम ब्रह्मांडका समावेश होजाता हे. यहां सार यह हे कि तत्वके ज्ञान होनेमें ओर मोक्ष प्राप्ति करनेमें कर्मसिद्धि, उपासनासिद्धि ओर तिसके पीछे विवेकादि ४ साधनकी अपेक्षा हे तथा इनके संपादन करनेमें भूत, भावि ओर वर्तमान-यह तीन प्रतिबंध होते हैं उनकी निवृत्ति कर्तव्य होती हे तथा चार कृपा प्राप्त होनेकी अपेक्षा होती हे; इतना हुये पीछे श्रवण, मनन ओर निदिध्यास कियाजाता हे, तब तत्वका ज्ञान ओर जीवतेही मोक्षकी प्राप्ति होजाती हे. इस साधन अधिकरणका (प्रतिबंधकोंकी निवृत्ति सहितका) विस्तार मूलमें हे, भप. पेज ३से १६ तकमें हैं. बस. के पूर्वार्द्ध

ओर उत्तरार्द्धमें हे, तथा कुछ वक्ष्यमाण सू. ५६४ । ५६५ । ७१९ मेंभी हे ॥ ११ से २१ तक ॥ अब आगे लक्षणअधिकरण हे.—

उद्देश लक्षण शिघ्र बोधक ॥ २२ (उद्देश) **लक्ष्यवार्ति निर्दोष ओर लक्ष्य बोधक लक्षण** ॥ २३ (बोधक) ॥ **निर्दोषता असाधारण ओर अनेकसे** ॥ २४ (निवारण) ॥ **स्वरुप ओर तटस्थ** ॥ २५ (लक्षण) ॥ **उपयुक्तका संग्रह** ॥ २६ (संग्रह) ॥ **उपयोगार्थ परिक्षा ओर अभ्यास** ॥ २७ (उपयोगी) ॥

अ.—जब कोई विषयका निर्णय करना हो तब उसका प्रथम नाम (उद्देश) कहो. पीछे उसके जो लक्षण मानते हों सो कहो, एसा करनेसे वक्तके आशयका जलदी बोध होजाता हे ॥ २२ ॥ वे लक्षण एसे होने चाहियें कि जो इष्ट लक्ष्यमें वर्तते हों. ओर अतिव्याप्ति (अन्य वर्ति), अव्याप्ति (लक्ष्यके सर्व भागमें अवर्ति), असंभव (असिद्ध वा सृष्टिनियम विरुद्ध) इन तीन दोष रहित हों तथा वे लक्ष्यके अन्यसे व्यावर्त्तक हों ओर जिनसे लक्ष्यका बोध होजाता हो. ॥२३॥ जो लक्षण दूसरेमें न हो, इष्ट लक्ष्यमेंही हो वोह असाधारण लक्षण कहाता हे (यथा अग्निका उष्णत्व) ओर कई लक्षण मिलके इष्ट लक्ष्यमेंही हों वे अन्यमें न हों वे साधारण कहाते हें (यथा आकाश–विभु, सम, अचिद). लक्ष्य सूचक निर्दोषता असाधारण लक्षण बतानेसे होजाती हे ओर कहीं कहीं उपरोक्त अनेक (साधारण) लक्षणोंसेभी होजाती हे ॥ २४ ॥ स्वरुप ओर तटस्थ एसे दो प्रकारके लक्षण होते हें ॥ २५ ॥ लक्षण जाननेसे वक्ताका आशय जाना जाता हे; इसलिये दर्शनकारोंने वा ईश्वरादि विषयं लिखने-माननेवालोंने यथाबुद्धि जिसके जो लक्षण किये हों ओर वोह इष्ट विषयसे संबंध रखते हों तो उनका संग्रह करना चाहिये; क्योंकि वे निर्णय होनेमें सहकारी होते हें ॥ २६ ॥ उद्देश, लक्षणके पीछे उसके उपयोग वास्ते प्रथम लक्षणोंकी परिक्षा कर्तव्य हे ओर परिक्षा पीछे उसका अभ्यास होना चाहिये ॥ २७ ॥ इसप्रकार ज्ञान होने पीछे विज्ञान (उपयोग) होनेसे लाभ होता हे. नहींके शब्दमात्र वा मंतव्यमात्रसे ॥ २७ ॥

वि.—उद्देश (गो). लक्षण—गो सींगवाली कहें तो सींग दूसरेकेभी होते हें अतः यह अतिव्याप्ति दोषवाला; जो श्वेत रंगवाली कहें तो गाय काली-पीलीभी होती हें अत: यह अव्याप्ति दोषवाला; जो सूंडवाली कहें तो गायमें न होनेसे तथा सृष्टिमें वेसा न होनेसे यह असंभव दोषवाला लक्षण हुवा; इसलिये गो गलोथलवाली. यह

असाधारण लक्षण है, क्योंकि अन्यमें नहीं होता, सब गोमें होता है. ओर इसकी परिक्षा करनेसे सिद्ध है. गोका ही बोधक है ॥ परमात्मा (उद्देश). लक्षणमें जो स्वयंभु कहें तो परमाणुभी स्वयंभू. व्यापक कहें तो आकाशभी व्यापक. चेतन कहें तो पक्षमें जीवभी चेतन. नियामक कहें तो राजाभी. निराकार कहें तो आकाशभी. ब्रह्मचेतन कहें तो पक्षमें जीवभी. आनंद स्वरुप कहें तो चित्तका परिणाम विशेषभी. प्रकृति- विशिष्ट कहें तो एक भागमें वर्तनेसे अव्याप्ति. विरुद्ध धर्माश्रयी कहें तो असंभव दोष आता है. इ. इसलिये **समब्रह्मचेतन** लक्षण कहे; तो आकाश, समब्रह्म हो, परंतु चेतन नहीं. विभुवादियोंका जीव चेतन हो परंतु समविभु नहीं; क्योंकि उनका विभु जीव—अज्ञान, अविवेक, संबंध वा कर्म वा अन्य प्रकारमें भोक्ता मानाही पडता है अतः वोह विभुसम (कूटस्थ, अचल, घन—एकरस), नहीं. देशकाल वस्तु परिच्छेद रहित विभु, ओर पर रहितत्वं विभु. इन लक्षणोंमें जो भेद है वोह साधारण ओर असाधारणमें भेद है. (नैयायिक) क्या देश विभु नहीं (वे.) हमारे मतमें उत्पत्तिवाला अविभु है इसलिये यह साधारण लक्षण किये हैं ॥ अग्निमें उष्णत्व सर्वदा वर्ते है अर्थात यही उसका स्वरुप है. स्वरुप लक्षण, वाणीके विषय नहीं होते; केवल अनुभवके ही विषय होते हैं. 'एसेही लक्षणका लक्षण क्या ?' इसका उत्तरभी अनुभवमें मिलता है. यथा 'असाधारण धर्म लक्षण' यह लक्षणका लक्षण है, परंतु वोह क्या ? अनुभवमें लो, यह उत्तर है. जो लक्ष्यमें कभी वर्ते कभी न वर्ते उसे तटस्थ लक्षण कहते हैं. जेसे मातम प्रसंगमें मकानपर काली ध्वजा वा मुंडन. इस लक्षणसेभी लक्ष्यका बोध होता है ॥ उदाहरण रुपमें उपयुक्त लक्षणोंका संग्रह इस अध्यायके संस्कृतानुवादमें, ओर भु, पृ. १२ । १३ में किया है. ओर पूर्व अध्यायमें है. नमुनेमात्र उदाहरण रुपमें कुछ लक्षण ओर शब्दार्थ यहांभी जनाते हैं. विशेष लिखित ग्रंथमें हैं. अनुमान- द्वारा परिक्षा करनेकी रीति बस. पूर्वार्द्धमें लिखी है। जेसे जीवके लक्षणकी परिक्षा होजावे ओर फेर उसानुसार उपयोग हो तो फलप्रद हो; अन्यथा खुशक ज्ञान, वाचारंभणमात्र है; एसेही सर्व विषय वास्ते ज्ञातव्य है.

उद्देश, लक्षण, अतिव्याप्तिआदि, व्याप्ति ओर स्वरुप, तटस्थादि इन विषयोंमें अनेक विवाद हैं, मतभेद हैं सो न्याय, वेदांतके ग्रंथोंमें प्रसिद्ध हैं. यहां तो उपयोगमात्र दिखाया है.

लक्षण—निरपेक्ष, लघु, व्यावर्तक, व्यापक, निर्दोष, नियमाविरुद्ध, ओर यथार्थ तथा लक्ष्यबोधक होना चाहिये.

द्रव्य=जिसके आश्रय गुण वा कर्म हो. गुण=जो द्रव्यके आश्रय विना न रहे. विभु=देशकाल वस्तु परिच्छेद रहित. इन सब लक्षणोंमें सापेक्षतादि दोष हें. "पर रहित विभु" यह कुछ निरपेक्षादिवाला लक्षण हे. अग्निका उष्णत्व स्वरुपलक्षण निरपेक्ष हे. लक्षणकी परिक्षा, प्रत्यक्षादिप्रमाण ६, सृष्टिनियम ओर युक्ति तथा अनुभव इन ९ प्रकारमेंसे यथायोग्य कर्तव्य होती हे. अथवा मध्यस्थ (सू. ११९) द्वारा करना चाहिये. परीक्षितका वारंवार लगातार अभ्यास करना इसे **निदिध्यास** कहते हें अर्थात इष्टाकार वृत्ति होनेका नाम निदिध्यास (२०) हे. इससे उपयागे ओर फल होता हे. अन्यथा याने परिक्षा ओर निदिध्यास तथा उपयोगके विना ज्ञान, शब्दमात्र हे ॥ २७ ॥

यह ध्यानमें लेने जैसी बात हे कि यदि लक्षण ठीक ठीक हों तो वे असत्से बचानेके लिये उपयोगी होते हें; नहींके वस्तुके ज्ञान होनेमें; क्योंकि लक्ष्यके स्वरुपका साक्षात तो अनुभवमेंही होताही हे. जिसने लक्षण न जाने हों उसकोभी होजाता हे ओर जिसने लक्षण जाने हों ओर निदिध्यास न किया हो तो उसे साक्षात नहीं होता. जेसेके शब्दादिके लक्षणोंके संबंधमें देखते हें. जो इस कुदरती सिद्धांतको नहीं जानते वेही ईश्वरादिके स्वरुप लक्षण विषे नाहक विवाद करते हें. उनको उनका अनुभव कर्तव्य हे. हां, परार्थ लक्षणका कथन होसकता हे, परंतु सो श्रोता–जिज्ञासुको परिक्षा हुये विना शांतिकारक नहीं होता.

"लक्षण ओर शब्दार्थके उदाहरण."—

(०) **लक्षण** = लक्ष्यवस्तुका असाधारण धर्म १. जिससे लक्ष्य पहिछाना जासके २.

(१) **सत्**=नित्य वा अनित्य परंतु भावरुप १. नित्य २. बाध रहित ३. जेसा मनमें जाना गया हो वा माना गया हो सो ४. जो क्षणिक–अस्थिर हो सो ५. न का अवाच्य ६.

(२)**असत्**=शून्य १. अभाव २. वंध्या पुत्रवत् अजात ३. उत्पात्ति पूर्व नाश पीछे जेसा ४. अर्थशून्य कल्पित ५.

(३)**मिथ्या**=बाधित प्रतीतिका विषय १. अविवेक बुद्धिका विषय २. स्वाभाव अधिकरणमें जो प्रतित हो सो ३. सत् असत्से विलक्षण ४. कल्पित अक-

लिप्तसे विलक्षण ५. कल्पितवत् वा अकल्पितवत् ६. सतसे विलक्षण परंतु असत् नहीं, असतसे विलक्षण परंतु सत् नहीं ७. साधारण प्रतीतिसे अन्यथा प्रतीतिका विषय ८. विपर्यज्ञानका विषय ९. इ.

(४) **अनादि**=उत्पत्ति रहित १. जिसकी उत्पत्ति ज्ञात न हो २. वा ज्ञात न होसके ३.

(५) **अद्वितीय**=सजातीय रहित (तिससे अधिक वा तिस जेसा अन्य न हो) १, सजातीय, विजातीय--भेदरहित (उससे इतर वस्तु अन्य न हो) २. सजातीय–विजातीय–स्वगत भेदरहित (तिस जेसा, तिससे इतर नहीं ओर अंशभाव रहित) निरवयव ३. तिस जैसा कोई प्रकारकाभी याने सजातीय--विजातीयरुप सत् न हो तथा जो स्वगत भेदरहित सम हो, सो ४.

(६) **ज्ञानइंद्रिय**=जीवसत्ता १. अंतःकरणकी शक्तियें २. अंतःकरण वा विजली वा मनका परिणाम ३. जीव ओर मनसे पृथक अनुमानके विषय श्रोत्रादिगोलकोंमें स्थित मध्यम पदार्थ ४. शरीरगत ज्ञान होनेके साधन--ज्ञान तंतु वा मगजगत सेंटर ५. स्थूल शरीरगत कितनीक शक्तियें ६. इ.

(७) **निर्गुण**=सर्वथा अर्थात हरकोई प्रकारके गुणसे रहित १. अमुक गुण रहित (ओर अमुक गुणवाला) २.

(८) **सगुण**=कोई प्रकारका गुणवाला १. आकृतिवाला २. सक्रिय ३.

(९.) **ज्ञान**=विषयकी सामान्य प्रतीति १. ब्रह्मकी प्रतीति–साक्षात २. ज्ञानकृति विशेष ३. ज्ञाता ज्ञेयका अभेद संबंध ४. मनोवृत्तिका परिणाम विशेष ५. जीवका गुण विशेष ६.

(१०) **ज्ञानी**=किसी विषयका जान्नेवाला १. ब्रह्मवित २. तत्ववेता ३. सर्वज्ञ ४.

(११) **विद्वान**=कोई एक भाषाका जाननेवाला–शब्दशास्त्री १. कोई एक विषयका यथावत जान्नेवाला २. ज्ञानवान ३. सर्व पदार्थोंके स्वरुपका वा सर्व विषयका ज्ञाता. ४.

(१२) **धर्म**=धारण ओर पोषण करना १. सामान्य जाति (सामान्य प्रत्यय) २. सुख स्वरुप वा परमात्माकी प्राप्ति अर्थ जो साधन ३. मनुष्य कर्तव्य, ज्ञातव्य, प्राप्तव्य ४. सदाचार ५. स्वात्मा ओर सृष्टिनियमानुकूल वा तद अविरुद्ध जो कृति ६. स्वमान्य वेदादि ग्रंथानुकूल जो वर्तन ७. अपनी डयूटी ८. अपना

फर्ज ९. जिसका परिणाम सुख हो एसे कर्म १०. अपना कर्तव्य ११. इ. ६० लक्षण वाचनेमें आये हें.

(१३) **निराकार**=इंद्रियसे अगोचर (मन, आकर्षण आदि) १. लंबाई चोडाइ रहित २. वर्ण रहित ३. वजन रहित ४. असीम व्यापक ५. पर रहित अपर ६. देश न रोके सो ७. जिसके आसपास देशादि कुछभी न हो ८. अमूर्त ९.

(१४) **साकार**=इंद्रिय गोचर हो सो १. लंबाई चोडाईवाला २. रंग रुप वाला ३. परिच्छिन्न (परमाणु) ४. ससीम ५. जिसके आसपास कुछ हो ६. दूसरेसे अवर ७. मूर्त ८.

(१५) **कल्पित**=मनुष्यादिके बनाये हुये घटादि १. ईश्वर वा कुदरत द्वारा बने हुये सूर्यादि २. मनोराज्य ३. सदसदसे विलक्षण ४. माया करके जो भासे ५. (संज्ञा देखो)

(१६) **अ**=ईश्वर वाचक १. निषेध वाचक २.

(१७) **अज्ञान**=ज्ञाता ज्ञेयका असंबंध १. ज्ञानका न होना २. ज्ञानाभावरुप जड सादि पदार्थ ३. निषेध (में नहीं जानता एसे) मुख्य प्रतीतिका विषय भावरुप अनादि एक जड पदार्थ ४. अवस्था वा असंबंध विशेष ५. में नहीं जानता इस प्रतीतिका विषय जो भावरुप पदार्थ ६. ज्ञानका विरोधी ७. जो ज्ञानसे नाश होता हो ८. जो ज्ञानस्वरुप नहीं, किंतु उससे अन्यथा (द्रश्य) ९. त्रिगुणात्मक एक वस्तु १०. विषय विषयीके योग्यसंबंधकी अनुत्पत्ति ११.

(१८) **अविद्या**=ईश्वरका ज्ञान १. विद्यासे जिसका अभाव हो २. विद्याका जो विरोधी हो २. विपरीत वा अन्यथा ज्ञान ४.

(१९) **विद्या**=ज्ञान १. पदार्थ ज्ञानकी प्रक्रिया २. जिससे जाना जाय ३.

(२०) **शक्ति**=बल—जोर—सत्ता १. ईश्वर सामर्थ्य २. ईश्वरसे भिन्न स्वतंत्र एक जड पदार्थ ३. ईश्वरसे भिन्न एक चेतन पदार्थ ४. सामान्यसे व्यापक, ओर विविध साकाररुप होनेवाला एक पदार्थ ५. परमाणुओंकी योग्यता ६. सत्व रजतमकी साम्यावस्था ७.

(२१) **माया**=शक्तिवत् १. साकार निराकार, भावाभाव, भिन्नाभिन्न, सत्यासत्य, नित्यानित्य ओर सावयवनिरवयव भावसे विलक्षण एक अनिवर्चनीय पदार्थ २. ईश्वरसे भिन्न अनादि भावरुप एक पदार्थ ३. वाध्य ४. अन्यथाज्ञान ५. जगतका उपादान ६. छल ७. प्रपंच ८. जो न हो ९. जो न हो ओर हे जेसी १०.

(२२) **विज्ञान**=विषयके उपयोग योग्य; संम्यक् विशेषज्ञान १. द्रढ अ-परोक्ष २. ब्रह्मज्ञान ३. बुद्धि ४. यथाज्ञान उपयोग ५.

(२३) **अनंत**=देश परिच्छेद रहित (असीम) १. काल परिच्छेद रहित (अविनाशी) २. वस्तु परिच्छेद रहित ३. संख्या-गणनारहित ४. देशकाल वस्तु परि-च्छेद रहित ५. जिसकी संख्या, सीमा वा अस्तिको बुद्धि नहीं जानसके अर्थात वस्तुतः जितना हे उतनाही हे परंतु बुद्धिकी अपेक्षासे अंत विनाका याने अनंत हे ५.

(२४) **नाश**=कारणमें लय याने कारणरुप होजाना १. संयोगका विभाग होना २. तिरोभाव होजाना ३. देशकालमें न होना ४. अदृष्ट होना ५. समूल शून्यरुप होजाना ६. रुपांतर होना ७.

(२५) **जीव** = जिस करके जीवन हो सो १. जो जीवे सो २. जो प्राणोंको धारण करे सो ३. ब्रह्मांडनामा शरीर जिससे जीवता हे (सबको जीवन देनेवाला) सो याने परमात्मा (ब्रह्म–ईश्वर) ४. शरीरस्थ जो दुःख सुखपाने-वाला कर्ताभोक्ता सो ५. एक प्रकारकी शक्ति ६. जीवस्यात्मा जीवात्मा ७. जीव-श्वासावात्मा जीवात्मा ८. अमुक परमाणु जन्य एक गुण वा शक्ति ९. विजलीकी रचना १०. एक अणुचेतन अनादि अनंत पदार्थ ११. एक विभुचेतन अनादि अनंत पदार्थ १२. ईश्वरकृत एक विशेषतत्व १३. ईश्वरका अंश–श्वास–शक्ति–गुण–आज्ञा–ज्ञान वा संकल्प १४. ब्रह्मचेतनका आभास १५. ईश्वरका प्रतिबिंब १६. क्षणिक परि-णामी एक विज्ञान पदार्थ १७. मध्यमचेतन परिणामी शरीरव्यापि एक तत्व पदार्थ १८. रागादि अष्टगुणवाला तत्व, वा अतत्व १९ । २०.

(२६) **जड**=जो दूसरेके हलानेसे हले ओर ठेरानेसे ठेरे १. अपनेको ओर दूसरेको न जाने २. अपने आप न हलचल सके ओर न ठेरसके ३.

(२७) **चेतन**=जो आप स्वयं हलचल सके (जेसेके अग्नि, सूर्य, जीव, वायु) १. भान-समझ २. इच्छा, ज्ञान ओर प्रयत्न जिसमें हों ३. किंवा रागादि ८ जिसके गुण वा अवस्था हों ४. अपनेको ओर दूसरेको जानसके ५. ज्ञान दर्शन लिंगवान ६. ज्ञानप्रकाश स्वरुप ७. अमुक परमाणुओंकी शक्तिका समूह ८.

(२८) **अक्रिय**=सर्वदा गति रहित अचल (यथा विभु असीम आकाश) १. कभी गति करे कभी स्थिर रहे २.

(२९) **गुरु**=शिक्षक १. मातापिता २. पितृ ३. आचार्य ४. रुढीमें मान्य

२५—जीव प्राण धारणे. जीव=महततत्व.

पुरुष ५. अनादि सनातनसे जो सर्व उपरी ६. उपरी ७. विद्या बुद्धि वा गुण वा वय वृद्ध ८. ब्रह्मविद्याका सिखानेवाला ९. यथार्थ बोधक १०.

(३०) **वैराग्य**=शरीरेतर अन्यका संबंध त्याग १. विषय वासनाका त्याग २. विषयाशक्ति त्याग ३. हेय त्याग ४. फलेच्छा त्याग ५. रागादिका त्याग ६. लोक, पुत्र, ओर वित्त इन तीन एष्णाका त्याग ७. सर्व कामनाका त्याग ८.

(३१) **मुक्ति**=मरना [नाश होना] १. शरीर त्याग पीछे इष्टके स्थानमें रहना २. वा इष्ट समीप रहना ३. वा इष्टमें जुडना ४. वा इष्ट रुप होना ५. जन्ममरणके चक्रमें न आना ६. शरीर विना स्वतंत्र रहके सत्संकल्पद्वारा भोग भोगना ७. ईश्वरका आनंद भोगना ८. शून्यवत कहीं स्थिर रहना ९. तीनताप वा पंचकलेशका अत्यंताभाव १०. परमानंदकी प्राप्ति ११. भ्रांतिज्ञानका नाश होना १२. यथार्थ ज्ञानहोना १३. इत्यादि ४० लक्षण वांचनमें आये हैं.

(३२) **मात्र**=तमाम १. अमुक लघु भाग २.

(३३) **अज्ञ** = न जान्नेवाला १. बालक २. मूर्ख ३. बेवकूफ ४. जो जो सर्वज्ञ कहाते हैं वे ५. [यह पांचों अर्थ जुदा जुदा प्रसंगमें लिये जाते हैं].

(३४) **देव** = दिव्य १. देनेवाला २. क्रिडा करनेवाला ३. पूज्य ४. प्रकाशक ५. आप्तविद्वान ६. स्वर्गस्थ देव--फिरश्ते ७. इ.

(३५) **जीवात्मा** = जो शरीरमें कर्ता भोक्ता, दुःखी सुखी होता हे ओर जिसकरके शरीर जीवता हे १. इसी जीवका जीवन कूटस्थ चेतन--प्रत्यगात्मा २. अंतःकरण विशिष्ट चेतन ३. वा चेतन विशिष्ट अंतःकरण ४. इ.

(३६) **विभु**=निराकारवत् १. देशकाल वस्तु परिच्छेद रहित २. अल्पके साथभी जो संयोगी सो ३.

(३७) **मूर्त्त**=साकार १. परिच्छिन्न २. आकृतिवान ३. जिसमें गुरुत्व हो ओर जघे रोके ४. गोचर ५.

(३८) **अमूर्त्त** = निराकार १. अपरिच्छिन्न २. परिच्छिन्न परंतु वजन रहित ओर देश न रोके ३. अगोचर ४.

(३९) **विषय**=ज्ञेय--प्रमेय यथा शब्दादि १. प्रसंग २. मजमून ३. सबजेक्ट ४. बात ५. आवरण ६. जान्ना ७. गोचर ८. बाबत ९.

---

३३ शब्द यह विद्वानोंका खिलोना होता हे. इसलिये शब्दमात्रपर ध्यान न देके आशयको लेना चाहिये.

(४०) **सूत्र**=स्वल्पाक्षर, असंदिग्ध, सारवत्, विश्वतोमुख, कलिष्ट नहीं किंतु सरल, निर्दोष इन ६ लक्षणवाला वाक्य सूत्र वाक्य कहाता हे १. लघु, अनेक तरफ जानेवाला, व्याकरणमें निर्दोष, पूर्व संगतिसे अर्थका बोधक २.

(४१) **उदाहरण**=साध्यके साधर्म्यसे साध्यके धर्मका भाव जिस द्रष्टांतमें हो सो १. साध्यका सजातीय अन्य २. (यथा-परिच्छिन्न जड गतिवान ही. घटवत्).

(४२) **द्रष्टांत**=उभयपक्षकार संमत निदर्शन १. साध्यके समान अमुक धर्मवालेको अन्यार्थमें लक्ष्य करानेवाला. २. साध्यके विजातीयमें साध्यके अमुक धर्मका सूचक ३. तज्ज्ञ ओर साधारण बुद्धिवालेकोभी जिसका स्वीकार हो, एसे साध्य समान अमुक धर्मवाला ४. (यथा--ईश्वर व्यापक, आकाशवत्).

(४३) **साध्य**=प्रतिज्ञा १. जिस उद्देशितकी सिद्धि करना हे सो.

(४४) **तत्व** (मूलस्वरुप--मुख्यस्वरुप) = अज, अमर, अखंड, अविकारी, अमिश्रित, अबदल, निरवयव, अपरिणामी, संसर्गकालमेंभी पूर्ववतस्वरुप, केवल स्वरुपमात्र (प्रकृतिके परमाणु सत्वरजतम मिश्रित होनेसे तत्वस्वरुप नहीं) १. व्यवहारमें सार २. निचोड ३. बंधारणका हेतु ४. मूलकारण ५.

(४५) **अतत्व**=तत्व जन्य १. तत्वोंका समूह, तत्वोंके समूहकी अवस्था वा परिणाम, जन्य, विनाशी, सावयव, विकारी, परिणामी, मिश्रित, बदलनेवाला, स्वरुपज. (यथा-कंडीशन, फीलिंग, असर, ईम्प्रेशन, कंपोंड, सजातीयमध्यम, विजातीय मध्यम, कनक गंधकादिवत) इ.

(४६) **भावना**=संस्कारी जीववृत्तिकी आद्यसंस्कारानुसार ज्ञात वा अज्ञातरुप अवस्थाविशेष १. जिसके संबंधसे गुणांतर वा रुपांतर हो सो २.

(४७) **संस्कार**=पूर्वदृष्ट श्रुतके स्मरणकी हेतु जो आद्य (पहेले पहेल) विषयाकारी संबंधवाले अंतःकरण (जीववृत्ति) की छापरुप किंवा प्रकृतिरुप सूक्ष्म अवस्था (परिणाम) सो संस्कार. (यही भावना, वासना, कामना, स्फुरणा, तृष्णा, ओर इच्छारुप अवस्थाका प्रपितामह हे याने मूल हे) १. जीव वा अंतःकरणका अभ्यास विशेष २. सूक्ष्म अद्रष्ट अवस्था ३. जीव वा मगजमें फोटो-प्रतिबिंब ४. असर विशेष ५. स्मृति उत्पादक गुण विशेष ६. मगजका अभ्यास विशेष ७. सद्विलक्षणा अद्भुतरुप जो प्रकृति (माया) उसका पूर्ववत् अनिर्वचनीय परिणाम ८.

(४८) **अनिर्वचनीय** = सदसद्विलक्षण (परंतु असत् नहीं), असत्-विलक्षण (परंतु सत् नहीं) अर्थात वाणीका अविषय २. अनुभवगम्य हो परंतु

उसका बयान शब्दसे न होसके ३. जिसका मन बुद्धिसे निर्धार न होसके याने मनबुद्धिका अविषय ४.

(४९) **अन्यथाकर्ता**=न्याय, नियम, नीति विरुद्धभी करसकनेवाला १. लौकिक ज्ञात रीतिसे अन्यप्रकारसे करनेवाला वा अन्यप्रकारसे कार्य होनेमें निमित्त २

(५०) **उपादान**=उपादेय [घट, कुंडल, बरफ, दही वगेरे] का जनक अपने उपादेयमें अनुमेय. यथा मृतका, कनक, जल, दूध यह घटादिके उपादान हें. उपादान--परिणामी, समवायीकारण यह पर्याय हें तथा उपादेय, परिणाम--कार्य यह पर्याय हें. [उपादान अधिकरण देखो]

(५१) **निमितकारग**=कार्यसे भिन्न हुवा कार्य होनेमें निमित्त (वा कार्यका कर्ता). यथा घटका कुम्हार, गति होनेमें आकाश सहकारी (निमित्त अधिकरण देखो).

(५२) **असमवायीकारण**=कार्यके उपादानसे उत्पन्न होके कार्यका उत्पादक, कार्यका सहवर्ती. यथा दो कपालका संयोग घटका असमवायी कारण मानाजाता हे. (उपादानके अंतरगत हे). संयोग नामक कार्यका असमवायी जो उपादानकी गति मानें तो संयोग पीछेभी गती होनी चाहिये, प्रत्युत नाश होजाती हे; परंतु असमवायीका नाश नहीं होता. इच्छा नामा कार्यका निमित्त तो हे परंतु असमवायी सिद्ध नहीं होता. सारांश सब जघे असमवायी नहीं बनता(सू. १२२ देखो).

(५३)**विवर्त**=स्वस्वरुपको न छोडके अन्यरुपमें प्रतीत हो वा अधिष्ठानसे विषम सत्तावाला अन्यथा स्वरुप. यथा रज्जुका सर्प ओर स्थाणुका पुरुष विवर्त्त हे. काच गत दूसरा कमरा दीखनेपर काचका भान नहीं होता किंतु कमरे रुप जानपडता हे. अतःकमरा (प्रतिबिंब) काचका विवर्त्त हे, एसाभी मानाजाता हे. क्योंकि काच काचरुपमें नही किंतु कमरेरुपमें भासता हे, ओर काचने अपने स्वरुपको नहीं छोडा हे.

(५४) **निवर्त्तोपादान**=स्वस्वरुपको न छोडते हुये अन्यथा प्रतीतिका विषय हो सो. यथा--उपरके दृष्टांतमें रज्जु, स्थाणु, ओर काच सर्पादिके विवर्त्त उपादान हें; क्योंकि अधिष्ठानरुप जो रज्जुआदि उसके विना सर्पादिकी प्रतीति नही होती. ओर रज्जुआदि स्वस्वरुपको न छोडके सर्पादिरुपमें प्रतीत होते हें.

(५५) **वजन** — दो समक्षेत्रिओंका समस्थानसे दूर समीप होनेका हेतु जो गुरुत्व १. संख्यामें समूहकी विशेषता २. आकर्षणशक्तिका खिंचाव ३. द्रव्य संबंधसे जन्य मगजमें असर वा तदजन्य कंडीशन [अवस्था] ४. ज्ञान विशेष

५. मायाजन्य प्रतीति विशेष ६. ईश्वरकी लचक ओर ग्रहोंका गुरुत्व इन उभय संबंध जन्य अवस्थासे जो दबान वा खिंचाय ७.

(५६) **ब्रह्म**=विभु १, असीम २, व्यापक ३, वेद ४, परमात्मा चेतन देव ५, सर्वाधार–अधिष्ठान चेतन ६.

(५७) **सूक्ष्मा** (शेषा)–का संक्षेपमें वर्णन.—अधिष्ठान चेतनाश्रित समुद्रसमान प्रकृतिका सूक्ष्मांश हमेशे पसरा हुवा रहता हे. वोह चेतनमें आकर्षित रहनेसे अमुक मर्यादामें रहा हुवा हे, इधर उधर नहीं जासकता, अपनी मर्यादामें स्थितिस्थापक रुपसे वा समुद्रके जलसमान लहरों द्वारा गतिमें रहता हे. उसके सत्वरजतममें स्नेहाकर्षण हे. मुख्य ओर गौण भेदसे अस्नेह भावभी होता हे, जेसेके विजलीमें उभयभाव देखते हें वेसे. बस. सू. २६१ की टीकामें इन गुणोंका वर्णन हे, सो ध्यानमें लीजिये.

जितने ग्रह उपग्रह हें ओर उनमें गतिमान जितने परमाणु हें उनसे इतर तथा वक्ष्यमाण मनस (अंतःकरण) भागसे इतर याने इनसे इतर अव्यक्तका शेष भाग होनेसे इसको शेषाभी कहते हें ॥ यह समुद्र सूक्ष्म होनेसे इंद्रियोंका अविषय हे, कार्यसे उसका अनुमान किया जाता हे. ग्रह उपग्रह उसमें काष्ट लोष्टकी स्टीमर वा गोले हें. उन स्टीमरोंमें मनस, बीज वगेरे मुसाफर ओर सामान हें; पृथ्वी आदि परमाणु वा उनके पुंज तालावके तृण समान हें. यह सब उसके गर्भमें पडे फिरते हें ओर उससे उनका उपयोग होता हे; इसलिये उसे हिरण्यगर्भभी कहते हें. नेतिका विषय होनेसे ब्रह्मकी शेष संज्ञा हे, इसीप्रकार अन्यथा होनेसे अव्यक्तकी वा उसके इस सूक्ष्मांशकी शेषा संज्ञा हे.

जेसे मछली या आदमी पानीके आसरे पानीके अंदर रहके गति करते हें, लचकदार होनेसे उनका पानी प्रतिबंधक नहीं होता बल्के सहायक होता हे; वायु आसरे वायुमें उडते हुये पक्षीका वायु प्रतिबंधक नहीं होता किंतु सहायक होता हे; एसेही उसके अंदर जो गोले, परमाणु, विजली, प्रकाशादि फिरते हें उनकी वोह प्रतिबंधक नहीं होती किंतु सहायक हे. जेसे पानी वा हवा अपना भार अपने आप सहारे रहता हे बीचोंबीच रहे हुयेपर नहीं पडने देता, एसेही इसका भार किसीपर नहीं होता. समचेतनाधिष्ठान, अव्यक्तका चलनस्वभाव--लचक ओर ग्रहोंका गुरुत्व यह ३ इसकी नानाप्रकारकी गति होनेमें निमित्त हें.

इच्छाके विना शरीरके अंदर जो देश सहित मकानका नकशा वा नाना प्रकारकी छबी वा रंग वा शरीरगत चक्रोंमें प्रकाश जान पडता हे, उनका मुख्य उपादान यही हे. दृश्यनीलता इसीकी लहरोंका परिणाम हे, याने लहरोंसे अवभास हे. स्वप्न सृष्टिमें जो जाग्रत समान देशकालादि सहित विषय याने सृष्टि जान पडती हे, उसका उपादान यही हे. अनहदवाले शब्द इसकी सूक्ष्म गतिका प्रभाव हे. एकाग्रता कालमें जो नानाप्रकारके रंग रुप जान पडते हें वे इसीके रुपांतर हें. प्रतिबिंबकी उपादान जो किरणें हें वे इसीके अंशके कार्य हें. छोटेसे डायनामाइटसे बडेबडे मकान छिन्न भिन्न होजाते हें उसमें, गर्जना होनेपर, ज्वालामुखी फटनेपर ओर विद्युतद्वारा जो कार्य होते हें उसमें, तोपके चलनेपर ओर गर्जनाकी आवाज होनेपर ईथरमें क्षोभ होनेसे गर्भपात होजाते हें ओर मकान फटजाते हें इत्यादि कार्य होनेमें, इसका हाथ हे—इसका प्रभाव हे. तारद्वारा वा तारके विना जो खबरें (संकेत) पहोंचाइ जाती हें उनका निमित्त यही दूत हे. विजली, प्रकाश, शब्द वगेरे इसीद्वारा एकदम दूसरी जघे पहोंचते हें.

जेसे वर्तमान साईन्स एसा मानती हे के गुरुत्वाकर्षण शक्ति—हमारे सामने चारों तरफ आकाशमें मोजूद हे ओर वोह बडेबडे शनी वगेरे ग्रहोंको खेंचे रखती हे ओर उससे बडेबडे कार्य होते हें, तथापि वोह इंद्रिय गोचर नहीं हे ओर स्थूलकी तथा गतिकी प्रतिबंधक नहीं हे; एसेही इस शेषाको सूक्ष्मतर जान लेना चाहिये, बल्के आकर्षण होनाभी इसीका नतीजा हे (बस. में वांचोगे). इसका विस्तार, इसकी तमाम योग्यता मनुष्य नहीं जानसकता.

इसको यदि ईश्वरका प्रतिनिधि मानालिया जावे तोभी अतिशयोक्ति नहीं हे; क्योंकि (चंबुक समान) जड हे तोभी (बुद्धिहीन विजली, जेसे लोहेको खेंचती ओर हटाती हे वेसे) उसमें अद्भुत योग्यता उसके कार्योंसे जान पडती हें. मानो बुद्धिपूर्वक काम कर रही होय नहीं, एसी उसमें योग्यता (स्वभाव) हे. वोह परमाणुओंका पुंज मध्यम परिमाण हे, एसा उसके कार्योंसे कहसकते हें. वस्तुतः परिच्छिन्न हुयेभी एक खास शक्ति हे वा समूहात्मक हे, वोह एकही अनेकरुप होती हे वा समूह होनेसे अनेकरुप होजाती हे वा केसी हे, एसा निश्चितरुप अभीतक नहीं जाना गया हे किंतु अभीतक उसकी “ **अनिर्वचनीय शक्ति** ” यह संज्ञा मानी गई हे. योरोपीयन ओर अमेरीकन चतुर विद्वान, इसकी शोध कररहे हें ओर इसका थोडा बहुत उपयोगभी लेने लगे हें. ज्योंज्यों इसकी योग्यता जान-

नेमें आवेगी, त्योंत्यों जगतमें सुखाकारी विचित्र उपयोग होगा (फोनोग्राफ ओर जरमनकेसरके जंगी उपयोग ध्यानमें लीजे). वर्त्तमान सायन्स जिसको ईथर (हवा वगेरे) कहती हे वोह इस शेषाका अमुक भाग ओर अन्य परमाणुओंका मिश्रण हे. इ. अब आगे **नियमाधिकरण** लिखते हें.—

नैसर्गिकनियम अटल ॥ २८ (ध्रु) ॥ **पूर्ववत् वर्तनसे** ॥ २९ ॥ **उससे अन्यथा नहीं** ॥ ३० (अप्रातिक्रम) ॥ **स्वतः सिद्ध होनेसे** ॥ ३१ ॥ **अधिकारप्रति न सीमा** ॥ ३२ (ग्रहण) ॥ **पुनरुक्ति दोष नहींभी** ॥ ३३ (पुनरुक्ति) ॥ **यथा अभ्यास ओर संग्रहमें** ॥ ३४ ॥ **असंगति ओर पूर्वापरविरुद्धदोष आभासभी** ॥ ३५ (अदोष) ॥ **परिणाममें उपयोगी होनेसे** ॥ ३६ ॥ **विरोधिसे एक साध्य असाध्य** ॥ ३७ (असाध्य ॥ **यथार्थ व्यवस्थाभी** ॥ ३८ (व्यवस्था) ॥ **भेद, आधार ओर अनंतर नियमवत्** ॥ ३९ ॥ **अप्रसंगसे उदासी** ॥ ४० (उदासी) ॥ **प्रतिबंधक होनेसे** ॥ ४१ ॥ **संबंधी वाक्य सहकारी** ॥ ४२ ॥ (उपवाक्य) ॥ **यथा हेत्वादि** ॥ ४३ ॥ **दृष्टिसेभी कथन** ॥ ४४ (दृष्टि) ॥ **अनेकधाभाव होनेसे** ॥ ४५ ॥ **यथा स्वतः सिद्ध नियममें हेतु** ॥ ४६ ॥ **ओर जीवादिके स्वरुपमें मतभेद** ॥४७॥

अर्थ—नैसर्गिकनियम कबीभी नहीं बदलते. क्योंकि उनका लक्षणही यह हे कि पूर्ववत् वतते हों अर्थात-भूत-वर्त्तमान-भविष्यमें जो समान वर्तन होता हो उसका नाम नैसर्गिकनियम (स्वाभाविक वा सृष्टिनियम) हे ॥ २८ । २९ ॥ वे कबीभी अन्यथा नहीं होते याने जो नियम हें वे कबी अनियम ओर जो नियम नहीं वे कबी नियम नहीं होते ॥ ३० ॥ क्योंकि जो नियम होते हें वे किसीसे नियत नहीं होते किंतु स्वतः सिद्ध स्वाभाविक होते हें ॥ ३१ ॥ बीजसेही वृक्ष हो वा वेलीसे वेलीही हो, एसा नियम नहीं हे किंतु शाखासेभी वृक्ष होजाता हे, वेलीसेभी वृक्ष होता हे. परंतु दोके संयोगके विना कार्य नहीं होता यह नियम हे॥३१॥

(शंका) बुद्धि ओर पदार्थोंकी अपेक्षासे नियमोंकी कल्पना हे, अतः वे स्वतः सिद्ध नहीं हें (उ.) जो कुछ कहा, सुना ओर मानाजाता हे सो सब अपेक्षितही हे; अपेक्षा विना कल्पनाभी नहीं होती. परंतु अद्यापि मानवमंडल जिसको पूर्ववत् वर्त्तमान देख रहे हें वेसे वर्त्तनका नैसर्गिकानियम नाम रखलिया हे. कोईभी ज्ञान देशकाल वा बुद्धिकी अपेक्षा विना बतासकते हो ? द्वैत वा.अद्वैत, जडचेतन वा आपके शंका समाधान, अपेक्षाके विना कहसकते वा मानसकते हो ? कभी नहीं.

अतः आपकी शंका व्यर्थ हे. बुद्धिने यह नियम नहीं बनाये हैं. किंतु बुद्धिने उनका अभ्यास किया हे ओर वोह पदार्थोंके क्रमसे जाने गये हैं; इसलिये उनको सृष्टिनियम कहते हैं. पदार्थोंके संयोग-वियोगजन्य अवस्था (फॉरम) का नाम सृष्टि हे; सृष्टि स्वयं कोई वस्तु नहीं हे. नियम किसी करके नियतभी नहीं हे किंतु पदार्थोंकी अपेक्षा करके बुद्धिद्वारा प्रयोज्य हैं. एककी बुद्धि करके प्रयोज्य होते ओर दुसरीसे अग्राह्य होते तो मतमतांतरवत् संशयके विषय होते, परंतु जितने साक्षर हैं उनमेंसे दर लक्ष ९९९९९ (एकके सिवाय सब) को मान्य होते हैं अर्थात मानवमंडलकी विवेक बुद्धिकी मर्यादातक इनका मंतव्य हे. इनका परिवर्तन वा निषेध न होसके वहांतक इनको स्वीकारनाही पडता हे. ओर परिवर्तन न पानेसे नियम ओर उनका कोई नियामक न जान पडनेसे नैसर्गिकनियम कहते हैं. ओर उपयोगदृष्टिसे सृष्टिनियम यह नाम रखना पडा हे. सृष्टिके उत्तर होनेसे सृष्टिनियम एसा अर्थ नहीं हे, किंतु सृष्टिमें जो नियमरुपमें वर्तते हैं अतः वे सृष्टिनियम कहाते हैं. जन्मांधकी दृष्टिसे बाहिर भीतर कुछभी नहीं परंतु स्पर्श, खानपान, दाह क्रियादिकी दृष्टिसे उसकोभी भेदकी ओर बाहिर भीतरकी कल्पना तो होही जाती हे, यही नैसर्गिक वा सृष्टिनियम हे. याने इतरेतरका बुद्धिमें भान होजाना. त्रिकोणकी दो भुजा तीसरीसे ज्यादे होती हे, यह सृष्टिनियम हे सो बुद्धिने नहीं बनाया, वोह आजतक पूर्ववत् वर्तमान हे, इसको बुद्धिने सीखा हे. एवं अनेक नियम हैं. इसीप्रकार नियमके ज्ञानकी सांकली हे, अनुपयोगी जानके नहीं लिखी (अ. १ गत योरोपयिदर्शनमें वांचभी आये हो).

इस अध्यायमें जितने सृष्टिनियम हैं उनकी एसी सीमा (हद) नहीं हे कि वे केवल जीव ईश्वरादि विषयमेंही उपयोगी हों किंतु व्यवहार वा परमार्थमें जहां जहां जेसे जेसे लगसकते हों वहां वहां वेसे वेसे उनका उपयोग लेना चाहिये ॥ ३२ ॥ व्यर्थकाल व्यय होनेसे पुनरुक्ति दोष हे परंतु किसी किसी प्रसंगमें दोषरुप नहींभी होती ॥ ३३ ॥ जेसेके बोलनेमें शब्दोंकी पुनरुक्ति, जाओ जाओ--एसे ताकीद करना पुनरुक्ति, याद रहने वास्ते वारंवार अभ्यास पुनरुक्ति, एक ग्रंथ अनेकोंको पढाना पुनरुक्ति, छांदोग्यका नववार तत्वमसिका बोध पुनरुक्ति, ईश्वरका नाम वारंवार लेना पुनरुक्ति, ईश्वरका वारंवार यथापूर्व सृष्टिरचना पुनरुक्ति,. ओर सजा-

---

३२--नियम १७४, ३८२, ४६७ व्यवहार ओर परमार्थ-उभय प्रसंगमें लगजाते हैं ॥ ३३--नियम ३७२ । ३८२ की ओर ४४१ । ६५१की पुनरुक्ति

तीय अनेक परमाणुओंका अस्तित्व हुये उनका वारंवार संयोग-वियोग पुनरुक्ति, यह सब पुनरुक्तिरुप दोष नहीं कहलाते ॥ ३४ ॥ चर्चा प्रसंगमें अप्रासंगिक विषयको दरमियानमें लेना, यह असंगति दोष हे ओर पूर्वमें जो कहा उससे विरुद्ध कहना पूर्वापर विरोध (वदतो व्याघात) दोष हे, परंतु जहां कहीं यह उभय आभास रुपमें हों वहां दोष रुपमें नहीं माने जाते ॥ ३५ ॥ क्योंकि परिणाममें वे दोनों उपयोगी हो पडते हें ॥ ३६ ॥ यथा छंदकी योजना वा गायनमें ह्रस्वको दीर्घ ओर दीर्घको ह्रस्व बनालेते हें (वहां प्रमोद हेतु हे. वस्तुतः असंगति हे). युद्धकालमें तिसके निवारणार्थ उससे असंबंधि प्रसंग ले लेते हें ॥ ब्रह्मचारी विद्यार्थीको स्त्रिस्पर्श निषेध ओर उसीको ग्रहकालमें विध, पुनः संन्यासकालमें निषेध कहाजाता हे. युवा अवस्थातक शरीरमें प्रवृति ओर उत्तरकालमें उसमें अरुची कराइजाती हे. इसप्रकार पूर्वापर विरुद्ध उपदेश होता हे परंतु वोह सहेतुक, उपयोगी होनेसे उचित ओर सफल हे, अतः व्याघातरुप दोषमें नहीं गिनाजाता. गाली देनेपर लडाई होजाती हे परंतु उसी व्यक्तिको वही गाली होली वा विवाह प्रसंगमें दीजावे तो उभय प्रसन्न होते हें, प्रसिद्धिमें पतिसे परदा (घूंगट) ओर गुप्तकालमें नहीं, इत्यादि विरोधाभासके अनेक उदाहरण हें. सारांश असंगति ओर पूर्वापर विरोधाभास जो सहेतुक उपयोगी हो तो दोषरुप नहीं हे. अन्यथा उभय दोषरुप हें॥ सू. ३२ से ३६ तकमें पुनरुक्ति वगेरेके प्रसंगमें जो कुछ लिखा हे, वोह इस नियम प्रसंगमें लगाना चाहिये. अ. २, ३ के विचारने पीछे इसका कटाक्ष जानसकोगे. ॥३६॥ जो दो नियम विरोधि हों तो उनसे एक साध्य, सिद्ध नहीं होसकता ॥ ३७ ॥ (तथापि उन नियमोंका निषेध नहीं होसकता किंतु) उनकी व्यवस्था कोई अन्य प्रकारसे वा उनसे यथार्थ व्यवस्थाभी कोई अन्य रीतिसे होने योग्य हे, एसा जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ जेसेके भेदानियम (३८२) तो स्वरुपका अप्रवेश बताता हे ओर आधार (२६८) दृश्य परिच्छिन्नका विभुआधार होना कहता हे. इन उभय वि-

---

हे परंतु निरर्थक नहीं हे, दृष्टिभेदको लेके करनी पडी हे ॥ ३५—अ. १में दर्शनसंग्रह, संगतिका विषय नहीं हे परंतु उपयोगी जानके कहा हे. सूचना प्रकरण ५ संगतिके योग्य नहीं हे परंतु सहकारी जानके लिखा हे. अ. २ सू. ३८२ ओर २६८ पूर्वापर विरुद्ध हें परंतु हें, इस विरोधाभासका निवारण होके व्यवस्था होजाती हे, ओर दृश्यके स्वरुपके निर्णय होनेमें उपयोगी हें, अतः यह आभास दूषित नहीं मानाजाता.

रोधि नियमोंकी व्यवस्था, अनंतर (४२२ । ४२३) नियमसे होजाती हे. (बस-गत उत्तर फिलोसोफीमें ओर अ. ३ में इसका विस्तार हे) ॥३९॥ जबके अमुक एक विषय (यथा, नियमनिर्णय-नियमसिद्धि)का विचार हो रहा हो तब उससे इतर प्रसंगको बीचमें नहीं लेना चाहिये अर्थात नियम अप्रासंगिक विषयसे उदासीन (उपेक्षा) होना कहता हे ॥ ४० ॥ क्योंकि जो असंबंधी विषय बीचमें लियाजाय तो वोह इष्टके निर्णय होनेमें प्रतिबंध होजायगा ॥ ४१ ॥ यथा जब विभु अक्रिय (१६८) वा स्वरुपाप्रवेश (३८२) का विचार हो रहा हो तब दरमियानमें यूं कहाजावे के एसा मानोगे वा होगा तो जगतकर्ता ईश्वरकी सिद्धि न होगी अथवा जगत सिद्ध न होगा अथवा अमुक मान्य ग्रंथ वा वाक्यके विरुद्ध होगा; इसप्रकारके अन्य प्रसंगसे उदासीन रहके उभय नियम ठीक हें वा नहीं, इतने परही विचार रखना चाहिये. उस समय किसी मंतव्यके खंडनमंडन होजानेकी दरकार नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥ इस अध्यायमें नियमसे जो इतर वाक्य हों उनको नियमके किंवा जिस उद्देश (निर्णय) से नियम कहे जाते हें उस उद्देशके सहकारी वाक्य हें, एसा जान्ना चाहिये ॥ ४२ ॥ जेसेके हेतु, दृष्टांत, दार्ष्टांत, निरणयोपयोगी, विषय संबंधी वर्णन, परिणाम ओर सूत्रना बोधक वाक्य सहकारी हें (उपर कहा हे) ॥ ४३ ॥ कभीकभी कोई विषय किसी दृष्टि (अपेक्षा) को लेकेभी कहाजाता हे ॥ ४४ ॥ क्योंकि बोध कथनमें ओर श्रोताके अधिकारमें अनेक प्रकारके भाव देखनेमें आते हें

४१—नियमार्थ प्रसंगोंमें कहीं कहीं एसे दृष्टांत, उदाहरण दिये हें के जो उसी नियमके निर्णयके विषय होंगे, सो अप्रसंगी हें, परंतु शोधकको निर्णयकालमें सुगमता पडे, इस दृष्टिसे दिये गये हें. तथापि जो इस नियमवश उनके न लेनेमें आग्रह हो तो उनको त्याग देना; कारणके उनसे इतर अन्य दृष्टांत, उदाहरणभी दिये हें. याने वे तो फालतु हें, एसा जान्ना चाहिये.

४४—देश, काल, स्थिति, परिस्थिति, ओर उद्देश, यह दृष्टिमें फेरफार होनेके कारण हें. (अध्याय १ गत अवतारादिप्रकरण याद करो. याने कल्पितमेंभी लाभ होता हे).

१—अमुक स्त्री अमुककी, यह मंतव्य व्यावहारिक सुखकी दृष्टिसे हे. कुदरती नहीं हे.

२—जगतक्षणिक, क्षणभंगुर, स्वप्नवत्, मिथ्या—अनित्य यह उपदेश दुःखद जो विषयासक्ति उसके निवारण ओर वैराग्यफलकी दृष्टिसे हे.

॥ ४५ ॥ जेसेकि स्वतः सिद्ध नियमों वास्ते जो हेतु दियेगये हें वे जिज्ञासुको जलदी सुगमतासे समझमें आजावें इस दृष्टिसे दियेगये हें ॥ ४६ ॥ अन्यथा स्वतः सिद्ध नियमों वास्ते हेतु देना सूर्यको दीपकद्वारा देखने समान हें; ओरभी जेसे त्रिकोणके तीनों कूने दो काटकूनेके बराबर होते हें, यह सृष्टिनियम हे. तोभी विद्यार्थीओंको समझानेकेलिये अनेक नियम ओर युक्तिसे सिद्ध करना पडता हे. एवं प्रस्तुत नियमों वास्ते हेतु दिये हें. ॥४६॥ तथाहि जीव, बंध, मोक्ष, ईश्वर, प्रकृति ओर मोक्षके साधन—इन ६ के स्वरुपमें जो मत-भेद हें वेभी अनेक प्रकारकी दृष्टि ओर भाव होनेसे हें. नहींतो सत्य एकही होनेसे जीवादिमें नाना पक्ष नहीं होसकते ॥ ४७ ॥ यथा किसीको किसीके वाक्यमें श्रद्धा हो तो वोह उसकी दृष्टि लेके कहता वा मानता हे. कोई जनमंडलकी स्थिति देखके उस दृष्टिसे कहता, मानता हे.

३—परिणामवाद—कार्यके रुपांतर होनेकी दृष्टिसे हे. नहीं के मूलतत्वकी दृष्टिसे. क्योंकि तत्वोंका परिणाम नहीं होसकता.

४—आरंभवाद—कार्य ओर पुरुषार्थकी दृष्टिसे हे.

५—नवीनोत्पत्तिवाद—द्रव्योंके संयोगसे नवीन गुणादी पदार्थोंकी नवीनोत्पत्ति कहना, व्यवहारदृष्टिसे हे. (अन्यथा असिद्ध हे).

६—शिर्काभाववाद—ईश्वरने अभावमेंसे जीव ओर सृष्टि की, यह ईश्वरकी गौरव दृष्टिसे हे (अन्यथा असिद्ध हे). तद्वत् अन्यथा कर्तृत्वभी. तद्वत् अभिन्ननिमित्तोपादानवादभी याने केवल्याद्वैत—ब्रह्मकी महिमा रखके व्यवहारकी व्यवस्था करना.

७—विवर्त्तवाद—(मायावाद) व्यवहार निर्वाहक दृष्टिसे हे.

८—सामान्यजातिवाद—स्वरुपोंके निर्णयकी दृष्टिसे हे. तद्वत् अभाव ओर विशेषको पदार्थ मान्नेमें यही दृष्टि हे (अन्यथा असिद्ध हे).

९—नाना जीववाद—जीव विभु ओर नाना, यह व्यवहार (बंध--मोक्ष) निर्वाह वास्ते मानते हें. तद्वत् अणुरुप ओर नाना वास्ते ज्ञातव्य हे (अन्यथा असिद्ध हे).

१०—विकासवाद—पुरुषार्थ वृद्धिकी (माइटइजराइटकी) दृष्टि पेदा करता हे.

११—कणादश्रीकी दृष्टि पृथक्करण होनेपर, गौतमश्रीकी तर्कपर, जैमिनिश्रीकी कर्मपर, सांख्यकी लाघवपर, वेदांतकी अनुभवपर, योगकी विवेक परिक्षापर, बुद्धश्रीकी भ्रातृभाव, संयम, वैराग्यपर; महावीरश्रीकी तपपर, जरतोश्तश्रीकी ईश्वर अद्वितीय तथा तिसकालवाले प्रचलित सख्त धर्मको नरम करनेपर, मूसाश्रीकी स्वमंडलकी रक्षापर, ईसुश्रीकी तदकालवर्ती प्रचलित धर्मकी सख्ती नर्म करनेपर,

विवाद प्रसंगमें वादिकी दृष्टि लेके कथन होता हे. इसलिये दृष्टि-हेतु-आशय समझे विना किसीके कथनपर आक्षेप करना उचित नहीं हे ॥ ४७ ॥

लूथरश्रीकी धर्म अंधेर ओर अंधश्रद्धा उडानेपर, मोहम्मदश्रीकी स्वमंतव्य प्रचार, अरबके अज्ञमंडलमें जो कुरीत रिवाज उनका नाश तथा एक अद्वितीय ईश्वरकी भावनाका पसार हो इसपर; तथा स्वामी दयानंदश्रीकी वेदधर्मकीप्रवृत्ति द्वारा मानव-मंडलके हितपर–हो, एसा जान पडता हे.

१३--वैभववति मूर्तिपूजाका मंडन, अज्ञ मंडलको ईश्वरमें भावना बनी रहने ओर ईश्वरमें प्रेमाभक्ति होनेकी दृष्टिसे. (वस्तुतः असिद्ध हे).

१४--मूर्तिखंडन, अद्वितीय ईश्वरमें शिर्क (द्वैतापत्ति) होने ओर मूर्तिकी आडमें शिकारबाजी चलनेसे प्रजाके हितकी हानी हे, इस दृष्टिसे.

१५--फिलोसफरोंकी दृष्टि कुदरत ओर अनुभवपर होती हे.

१६--तत्ववेताओंकी दृष्टि लोकके सुखपर होती हे.

१७– नानामत–धर्म न रहके एकमत पसरे, यह दृष्टि, नियम एकत्र करनेमें हे. इत्यादि.

हरकोईकी उसके हरकोई विषयमें यथार्थ वा अयथार्थ कोई न कोई (धर्म, नीति, व्यवहार, समाजहित, देशहित, राज्यहित, स्वमंतव्य, मंडन वा खंडन वगेरे) प्रकारकी अपेक्षा दृष्टि अवश्य होती हे. यदि अन्य नहीं तो अज्ञान, अभिमान, स्वार्थ वा कीर्तिकी ही दृष्टि होगी (जेसाके देख रहे हें).

उक्त दृष्टिभेद कथन सत्यही हे, इसमें हमारा आग्रह नहीं. परंतु जो यह नहीं तो अन्यभेद होगा; परंतु कुछ न कुछ होगा. नहींतो नाना पक्ष, भेद नहीं हों; क्योंकि सत्य तो एकही प्रकारका होता हे.

विशेष क्या कहें—अर्थात जनमंडलमें जितना कुछ कथन श्रवण–मंज वा चल रहा हे, सो सब एक दूसरेकी अपेक्षा दृष्टिसे हे–सारांश **अपेक्षावाद** ही हे. यथा सद्असद्, तमप्रकाश, जडचेतन, जन्यजनक, भावना अभाव, कारणकार्य, नीतिअनीति, नेकी बदी, उच्चता नीचता, मूलतत्वोंका प्रकार–भेद--नानात्व, तथा लक्षण कथन–इत्यादि. एक दूसरेकी अपेक्षा–दृष्टि (सत्की अपेक्षासे असत्, असत्की अपेक्षासे सत्, एवंतम प्रकाशादि) से व्यवहारे जाते हें. जो निरपेक्षत्व होता तो कथन–मंतव्यही नहीं होता. हां, यह जरुरी बात हे कि वोह अपेक्षित कथन वा मंतव्य अर्थ शून्य–असत् न होना चाहिये. नहीं के जेसे एकांतमें अने-

इस नियमाधिकरणमें यहभी जनाना प्रासंगिक हे कि दोके सिवाय इस अध्यायोक्तनियम प्राचीन ग्रंथोंमेंसे लिये हें, इतनाही नहीं हे किंतु वे नियम जान्ने पूर्व किस प्रकार उद्भवे ओर समझमें आये उसका वर्णन बहुत विस्तारवाला हे; इसलिये वोह विषय यहां नहीं लिखा हे. ओर वक्ष्यमाण नियमोंके निषेधमें जो आक्षेप किये जासकते हें उनका उत्तर तीसरे अध्यायके आरंभमें वांचोगे ॥ २८ से ४७ तक ॥ इति उपोद्घात प्रकरण १.

प्रमाण प्रकरण २.

संगति.—अब नियम प्रकरण लिखें उसके पहेले प्रमा, अप्रमाके बयान करनेकी आवश्यकता हे, क्योंकि यह दोनों विषय नियमदर्शनमें सहकारी होते हें.

ज्ञानी--अज्ञानी, योगी--अयोगी अर्थात मनुष्यमात्रके पास जान्नेके साधन ५ ज्ञानेंद्रिय (ज्ञानतंतु—मगज) ओर छटा मन (चित—बुद्धि) हे जो के कुदरती हें—मनुष्य घडत नहीं हें. जो मनुष्य, यंत्र बनाके विशेष जानता हे उसका समावेशभी इसीमें होजाता हे. यथा सूक्ष्मदर्शी यंत्र ओर योगज ऋतंभरा बुद्धि. जेसे कुदरती साधन हें वेसा ज्ञान होता हे; इसलिये मनुष्य यथार्थवेता हे, यह कहना मुशकिल हे. तथापि दरहजार ९९९ के साधन, जिसको बताते हें ओर वोह वक्ष्यमाण मध्यस्थकी परिक्षामें तुल जाय उसीको प्रमा याने यथार्थज्ञान मानाजाता हे ओर उपयोगमें आता हे; इसलिये वही आधार हे. परंतु जिसमें मनबुद्धिभी ग्रहण होते हें वोह मगज, इंद्रिय ओर मनसे अन्य कोई स्वयंप्रकाश वस्तु सिद्ध होती हे (प्रकाश अधिकरणमें वांचोगे). जोके वोह मुख्य करण (ज्ञान होनेका साधन) याने मनकाभी अन्यकी अपेक्षा (किसी करणकी अपेक्षा) विना द्रष्टा हे अर्थात स्वतः प्रमाण हे; इसलिये नियम निरुपणके पहेले प्रमा ओर अप्रमाके भेदको कहा जायगा.—

कांतत्व मानलिया जाता हे वेसे.—यथा घट (वा परमाणु--पुदगल, जीवतत्व) स्वद्रव्य देश काल ओर पर्याय (भाव-गुण-परिणाम) भावसे सत् ओर पर (पटादि) के द्रव्यादि भावसे असत्, एसा कहना मान्ना; इसमें उत्तर भाग सत् नही किंतु कल्पना मात्र हे--याने यह कल्पित अपेक्षा--द्रष्टि हे, क्योंकि घटमें उस (असतभाव) की असिद्धि हे, यहां तकके पर्यायभी बदलते हें, नहीं के वे अर्थशून्य --असत् हें वा असत् हुये थे; कारणके उनका मूल (उपादान-परिणामी) तो रहताही हे. इसके सिवाय उपरोक्त ५, ६, ८, १२ ओर इनके सिवाय अनेक उदाहरण मिलते हें.

प्रमाका असाधारण कारण प्रमाण ॥ ४८ (संनिकर्ष) ॥ विषय विषयीका योग्यसंबंध प्रत्यक्षप्रमाण ॥ ४९ (प्रमिति) ॥ यथा इंद्रिय द्वारा घट ओर प्रमाताका संबंध उसके ज्ञानका ॥ ५० ॥ ज्ञान करण होनेसे शेष तदंतरगत ॥ ५१ ॥ व्याप्यलिंगज्ञान अनुमान ॥ ५२ (अनुमिति) ॥ यथा चक्षु ओर अग्निके अनुमानार्थ उनके प्रतिबिंबका ज्ञान ॥ ५३ ॥ ओर साध्य अग्निके अर्थ उसके व्याप्य धूमका ज्ञान ॥ ५४ ॥ सत्यबोधक वाक्यज्ञान शब्द ॥ ५५ (शाब्दि) ॥ दर्श पुरुष वाक्यज्ञान वत् ॥ ५६ ॥ ओर रोगनिवृत्ति बोधक आयुर्वेदज्ञान वत् ॥ ५७ ॥ साधर्म्य–वैधर्म्यज्ञान उपमान ॥ ५८ (उपमिति) ॥ यथा छुहारा ओर खिजूरके वृक्षका ॥५९॥ अभावका ज्ञान अभाव ॥ ६० (अनुपलब्धि) ॥ घटानुपलब्धिज्ञान वत् ॥ ६१ ॥ अर्थापत्त्यादि तीनोंके अंतरगतभी ॥ ६२ ॥ संभव, एतिह्य, ओर मान उनसे भिन्न नहीं ॥६३ ॥ सृष्टिनियमानुकूल बुद्धिका उपयोग युक्ति ॥ ६४ (युक्ति) ॥ यथा उपादेयोपादानवत् ॥ ६५ ॥ साध्याभावसे साधनाभावका आरोप तर्क ॥ ६६ (तर्क) ॥ यथा बिंबाभावसे दृश्य प्रतिबिंबके अभावका आरोपन ॥६७॥ पूर्ववत् वर्तन सृष्टिनियम ॥६८ (वर्तन)॥

वृत्ति–अबाधित (यथार्थ) ज्ञान अर्थात प्रमाके असाधारण कारणको प्रमाण कहते हें ॥ ४८ ॥ जेसेके रुपके ज्ञान होनेमें चक्षु वा चक्षुसंयुक्त मन वा मनसंयुक्त आत्मा वा प्रमाता (जीवात्मा) का विषय जो रुप तिसके साथ संबंध होनेपर रुपका ज्ञान होता हे उसविना नहीं होता, इसलिये सो योग्यसंबंध, प्रमाका करण याने प्रमाण कहाता हे. सो मुख्य प्रमाण एक प्रत्यक्षही हे. बाकी सब प्रमाण उसके अंतरगत होते हें, यह आगे कहेंगे ॥ ४८ ॥

" (जिसका ज्ञान होना हे उसको विषय वा प्रमेय, कहते हें, जिसको ज्ञान होता हे उसे प्रमाता (जीव[१]–विषयी) कहते हें. एसे विषय ओर विषयीका जब योग्यसंबंध हो तब विषयका प्रत्यक्षज्ञान होता हे, इसलिये इस योग्यसंबंधका नाम प्रत्यक्षप्रमाण हे. योग्यसंबंधका यह भाव हे कि विषय प्रत्यक्ष होने योग्य हो ओर जिन द्वारा प्रमाताका संबंध हो वे अर्थात ज्ञानेंद्रिय ओर मन निर्दोष हों तथा प्रमाता स्वस्थ हो–एसोंका संबंध (सन्निकर्ष, अनिवर्चनीयअभेदसंबंध) योग्य

[१] तकरारी विषय होनेसे विषयीका सामान्य लक्षण कहा हे. विशेष अ. ३ । ४ में वांचोगे. बस. में विस्तार हे.

संबंध कहाता हे. " सो योग्यसंबंध प्रत्यक्षज्ञानका करण होनेसे प्रत्यक्षप्रमाण कहाजाता हे. (जो योग्यसंबंध न हो याने प्रमाता, प्रमाण वा प्रमेयमें दोष हो तो यथार्थप्रत्यक्षज्ञान नहीं होता) ॥ ४९ ॥ जेसेके जब घटका ज्ञान हो तब प्रथम घटकी किरणें चक्षुद्वारा मगजमें पहोंचती हें पीछे वहां मन तदाकार हुवा' आत्मामें संबंधको पाता हे तब घटत्वविशिष्ट घटका ज्ञान होता हे. इसप्रकार उक्त संबंध घटके ज्ञानका कारण होनेसे प्रत्यक्षप्रमाण कहाता हे ॥ ५० ॥

जेसे रुप प्रत्यक्षकी रीति हे वेसेही शब्द, स्पर्श, रस, गंध, दुःखसुखके ज्ञान होनेका प्रकार हे. शब्दका श्रोत्र द्वारा जब मन विशिष्टआत्मा अर्थात प्रमाताके साथ संबंध होता हे तब शब्दका ज्ञान होता हे. स्पर्शका त्वचाद्वारा, रसका जिव्हाद्वारा, गंधका नासिकाद्वारा संबंध होता हे; इसलिये श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिव्हा, नासिका यह पांच इंद्रिय (ज्ञानतंतु) भी प्रमाण कही जाती हें; क्योंकि संबंधकी सहकारी हें. दुःखसुखका अंदरमें ज्ञान होता हे, वहां मन ओर आत्माका योग्यसंबंध करण याने दुःखसुख, रागादिके ज्ञान होनेमें प्रमाण हे; क्योंकि दुःखादि मनकी अवस्था हें. ओर जब मन ओर आत्माके संबंध तथा भेद ओर मनका सामान्य ज्ञान होता हे वहां आत्माही स्वतःप्रमाण हे (प्रमाता ओर स्वतः प्रमाणकी चर्चाका यहां प्रसंग नहीं हे). इस रीतिसे बाह्यप्रत्यक्षमें पांच ओर आंतरप्रत्यक्षमें एक प्रमाण (मन) हे, एसा व्यवहारा जाता हे. वस्तुतः विषय विषयीका संबंध यह एकही प्रमाण हे (इसका खंडनमंडन मूलमें हे). यथार्थस्मृति प्रत्यक्षके उत्तर होनेसे जुदा प्रमाण नहीं हे).

नवीन साईंस यह कहती हे कि अमुक प्रकारके परमाणु (पदार्थ) का ज्ञानतंतुओंके साथ जब संबंध होता हे तब मगजमें ईम्प्रेशन (सूक्ष्मावस्था) होता हे उसका नाम शब्दादि हे. बाह्य कोई शब्दादि नहीं हें. इस पक्षमें ओर पूर्वपक्षमें विशेष अंतर नहीं हे. फक्त मगजसे भिन्न मन नामका पदार्थ नहीं माना हे, इतनाही अंतर हे' (इसका खंडनमंडन बस. में हे).

(शंका) घटादिका फोटो जो अंदरमें हुवा हे उसका ज्ञानहुवा हे, नहींके घटका (उ.) किरणोंका अटूट संबंध हे अतः बाह्य उपयोग हे, विशेष तीसरे अध्यायमें वांचोगे ॥ ५० ॥

'वर्तमान साईन्सकी रीतिमें बाह्य पदार्थके संबंधसे मगजपर इम्प्रेशन होता हे। उसका नाम विषय हे. इसीका नाम मनकी तदाकारता. इसका विस्तार बस. में हे.

प्रमाण कई प्रकारके मानेजाते हैं उनमेंसे बाह्यप्रत्यक्ष ५, अंतरप्रत्यक्ष १ एसे ६ का उपर वर्णन हुवा. बाकी अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अभाव, स्मृति, संभव, एतिह्य, चेष्टा, पल्ली, ओर मान (माप-तोल) यह सब, प्रत्यक्षप्रमाणके अंतरगत हैं; क्योंकि प्रत्यक्षप्रमाणमें ज्ञान करण नहीं होता ओर अनुपदेश स्वयं होता हे; परंतु इससे इतर अन्य सबमें ज्ञान करण होता हे अर्थात प्रत्यक्षज्ञानकी शाखा हैं; इसलिये तदंतरगत हैं ॥ ५१ ॥ अब अनुमानादिका संक्षेपमें वर्णन करते हैं.—

व्याप्य जो लिंग तिसका जो ज्ञान सो अनुमीतिप्रमाका करण अर्थात अनुमानप्रमाण (अटकल करनेका साधन--परोक्षकी सिद्धिका साधन) कहाता हे ॥ ५२ ॥ जेसेके चक्षुका व्याप्य–लिंग जो उसका प्रतिबिंब उस प्रतिबिंबका ज्ञान चक्षुके अनुमान करनेका साधन याने अनुमानप्रमाण हे अथवा परोक्ष अग्निका कहीं प्रतिबिंब पडता हो उस प्रतिबिंबका ज्ञान अग्निके अनुमान करनेका साधन याने अनुमानप्रमाण हे ॥ ५३ ॥ ओर परबतमें अग्नि परोक्ष हे उसका व्याप्य-लिंग धूम हे, इस धूमका ज्ञान, परोक्ष अग्निके अनुमान करनेका साधन याने अनुमानप्रमाण हे. वेसेही अन्यत्र यथायोग्य योजलेना चाहिये ॥ ५४ ॥ जो (प्रतिबिंब वा धूम) जिसके विना (बिंब वा अग्निके विना) न हो वोह (प्रतिबिंब वा धूम) उसका (बिंब वा अग्निका) व्याप्य कहाता हे. जिसकी अनुमिति (आंख, अग्नि) होना हे सो व्यापक वा साध्य कहाता हे. व्याप्यकोही लिंग कहते हैं. व्याप्य व्यापकके संबंध (अविनाभाव संबंध)को व्याप्ति कहते हैं. इसके ज्ञानको अर्थात व्याप्तिज्ञानको अनुमान होनेमें कारण मानते हैं. सो व्याप्तिज्ञान, व्याप्य लिंगके ज्ञानद्वारा अनुमितिज्ञान होनेमें साधन हे. साक्षातसे व्याप्यलिंगज्ञान साधन हे. इस विषयमें अनेक विवाद हैं, व्यर्थ जानके नहीं लिखे. अनुमानके कई प्रकार हैं.—केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी, अन्वयव्यतिरेकी, पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्यतोदृष्ट, स्वार्थ, परार्थ इत्यादि. इनका वर्णन पूर्वाध्यायगत न्याय, वैशेषिक प्रसंगमें आचुका हे ओर वस. में लिखा हे. अरस्तुके मंतक (लॉजिक) में प्रथम व्याप्तिका उभयपक्ष फेसला करके मानलें तब अनुमानकी पद्धतिका उपयोग करना चाहिये; अन्यथा व्यर्थ हे, एसा माना हे सो ठीक हे ॥ ५४ ॥

जो सत्यबोधक वाक्य हो उसके ज्ञानको शाब्दि प्रमाकाकरण अर्थात शब्दप्रमाण कहते हैं ॥ ५५ ॥ जेसे १० बालक नदीपार जाके खेल-कूदके नदी उतरके आवें ओर एक उनमेंसे गिने तो ९ होते हैं, याने अपनेको गिना भूलजाता हे

वा ध्यानमें नहीं आता; इसलिये नदीमें बह जाना मानके शोकातुर हें. कोई वृद्ध आके हकीकत पूछके कहे के दसवां तूं हे, तो उनको ज्ञान होनेपर शांति होजाती हे. यहां दसम तुं, यह सत्य याने आप्तवाक्य हे, इसका ज्ञान अपने (दसवें) ज्ञान होनेका साधन हे, अतः सो ज्ञान शब्दप्रमाण कहाता हे ॥ ५६ ॥ ओर रोग निवृत्तिके प्रकार (निदान, नाडीपरिक्षा, चिकित्सा, औषधि)का बोधक जो आयुर्वेद उसका जो ज्ञान सो ज्ञान शब्दप्रमाण कहाता हे ॥ ५७ ॥ सत्य ओर हितबोधक (उपयोगी) जो सृष्टिनियमके अनुकूल हो, एसा हरकोईका वाक्यप्रमाण मान्ना चाहिये; क्योंकि परिक्षामें सत्य, हितकर ओर सृष्टिनियमानुकूलता यही उसमें प्रमात्व -यथार्थत्व हे याने प्रमाणता हे. इसलिये वेसा वाक्य किसी धर्मावलंबी वा किसी जातिवालेका हो स्वीकारणीय हे ओर परिक्षा सिद्ध होनेपर तदनुसार वर्तन कर्तव्य हे. विद्वान, बुद्धिमान, अनुभवी, जितेंद्रिय, सदाचारी ओर सत्य वक्ताको आप्त कहते हें. वेसे वाक्य आप्तोंकेही होते हें; अतःआप्तके वाक्यमें प्रमाणता मानीजाती हे. उसीको शब्दप्रमाण पदवी दीजाती हे. परंतु जो वाक्यार्थका ज्ञान न हो तो वोह वाक्य ज्ञान करानेका साधन नहीं होता, इसलिये शब्दके ज्ञानमें प्रमाणता कही गइ हे. वेदादि मान्य ग्रंथोंमें जो वाक्य हें उन वाक्योंमें वक्ताका क्या अर्थ हे, ओर क्या आशय हे, इसका यथावत् ज्ञान न होनेसे मतभेद पडरहे हें ओर यथायोग्य उपयोगमें नहीं आते; इसलिये शब्दज्ञानको ज्ञान होनेका साधन माना हे. ज्ञान होनेपर प्रवृत्ति निवृत्ति होती हे, अतः ज्ञान साधन हे. शब्दद्वारा परोक्षज्ञान होता हे ओर कभी कभी अपरोक्षकाभी बोधक होता हे; जेसाके दशम पुरुषका उदाहरण दिया हे. शेष आगे वांचोगे ॥ ५७ ॥

देखके स्वयं वा सून्ने पीछे देखनेपर वा सून्नेसे किसी दो वस्तुके साधर्म्य वा वैधर्म्यका जो ज्ञान होता हे सो ज्ञान उपमितिप्रमाका करण याने उपमानप्रमाण कहाजाता हे ॥५८॥ जेसे कोई छुहारे ओर खिजूरका वृक्ष देखके उनके साधर्म्यके ज्ञान होनेपर यह इस जैसा हे, एसी उपमा देता हे ओर उनके अदले बदलेभी उनके गुणोंका उपयोग लेता हे. यहां साधर्म्यज्ञान उपमितिप्रमाका करण होनेसे उपमानप्रमाण कहाजाता हे. ॥ ५९ ॥ नीब ओर बकायनके वृक्षमें साधर्म्य हे, उनके फलमें वैधर्म्य हे. ईश्वर आकाशवत्, यहां व्यापकत्व उभयमें साधर्म्य हे. चेतनत्व-जडत्व वैधर्म्य हे. एवं साधर्म्य-वैधर्म्यके ज्ञानद्वारा अन्यत्रभी यथायोग्य योजलेना चाहिये ॥ ५९ ॥

किसीके न होनेसे उसके न होनेका ज्ञान होता हे वहां उसके अभावका जो ज्ञान, यह ज्ञानही उसके न होनेके ज्ञानका साधन हे, इसलिये अभावज्ञानको अनुपलब्धिप्रमाका करण याने अभावप्रमाण कहते हें ॥ ६० ॥ जेसे क. को कहें कि कमरेमेंसे घट लेआ. वोह गया. घट वहां नहीं था, इसलिये घटके अभावका ज्ञान हुवा ओर जाना कि यहां घट नहीं हे. क ने आके कहा कि वहां घट नहीं हे. स्वामीने पूछा कि तेरे कहनेमें क्या प्रमाण हे. क बोला कि घटका अभावही प्रमाण हे. ॥६१॥ जडमें चेतनत्वकी ओर चेतनमें जडत्वकी असिद्धि, हरेक स्वरुप दूसरे स्वरुपसे भिन्न, ओर एक स्वरुपका अन्यमें अप्रवेश इत्यादिकी सिद्धि अभावप्रमाणसेभी होती हे. यहां यह ध्यानमें रहे कि अभाव यह स्वरुपतः कोई वस्तु नहीं हे किंतु विलक्षणत्व (देशविलक्षणत्व–स्वरुपविलक्षणत्व)का नाम ही अभाव वा भेद हे (आगे वांचोगे) ॥ ६१ ॥ अर्थापत्ति तथा अभाव ओर उपमान इन तीनोंका प्रत्यक्ष, अनुमान ओर शब्द इन तीनोंमेंभी समावेश होजाता हे. अर्थात अर्थापत्तिको अनुमानमें, अभावको प्रत्यक्षमें ओर उपमानको शब्दमें मानसकते हें ओर मानतेभी हें ॥६२॥ तथा स्मृतिका प्रत्यक्षमें ओर चेष्टाका संकेत अर्थात शब्दमें समावेश कियाजाता हे. ओर कोई पक्षकार इन पांचोंको जुदा जुदा प्रमाण मानता हे, इसलिये प्रमाणोंके लक्षण अन्य प्रकारके करता हे. (यहां इनके चर्चाकी अपेक्षा नहीं हे ओर मूल तथा बस. में विस्तार हे, इसलिये यहां नहीं लिखी) ॥ ६२ ॥

संभव, एतिह्य ओर मान यह तीन प्रमाण प्रत्यक्षादिसे भिन्न नहीं अर्थात् संभवका अनुमानमें ओर एतिह्यका शब्दमें ओर मान (तोल, देशिक–कालिक माप) मेंसे वजनका अनुमानमें ओर मापका प्रत्यक्षमें समावेश होजाता हे (देशिकमाप कल्पित संकेत हे). इनकी चर्चाभी मूलमें हे, अतः यहां नहीं लिखी, क्योंकि विशेष उपयोगी नहीं हें ॥ ६३ ॥

वि.—अनुमानका प्रत्यक्षमें समावेश होजाता हे, परंतु जो सर्वथा परोक्ष हो उसपर अन्य व्याप्तिद्वारा बुद्धिको पहोंचा देता हे, इसलिये जुदा मानलियाजाता हे. तद्वत् उपमानप्रमाणभी भिन्न मानाजासकता हे, क्योंकि दूसरेके बिंब, प्रतिबिंबके सादृश्यत्वका ज्ञान ओर दुःखसुखोंके साधर्म्य ओर वैधर्म्यका ज्ञान अन्यके उपदेश वा अनुमानके विना स्वयं होजाता हे ॥

दृष्टश्रुतादि हरकोई प्रमाणद्वारा, तत्संबंधी तिससे अन्यकी कल्पना होजाती हे, इसको अर्थापत्ति कहते हें. उसके उपपादकके ज्ञानको अर्थापत्तिप्रमाण कहते हें.

यथा क योगी, दिवसको नहीं खाता तोभी मोटा ताजा हे; एसा देखके वा सुनके रात्रीभोजनकी कल्पना होजाती हे. यहां योगीके शरीरका पीनत्व कल्पनाका उपपादक हे, रात्रीभोजन उपपाद्य—कल्पना हे. उपपादकका ज्ञान, अर्थापत्तिप्रमाण हे. जितने प्रमाण हों उतनीही अर्थापत्ति होसकती हें.—

मोर दर्शनसे सर्पाभावकी प्रत्यक्षार्थापत्ति, चंबुक आनेपर लोहमें गति देखनेसे चंबुककी परोक्ष योग्यताकी कल्पना, अग्निसे दाह देखके उसकी परोक्ष योग्ताकी कल्पना, परदेशकी वर्षा जानके सुकालका अनुमान होजाना, गो सादृश्य गवे जानके दोहनकी कल्पना, पद—अर्थ ओर उभयके संबंधसे शब्दके नित्यत्वकी कल्पना, जीवते यज्ञदत्तको घरमें न देखके (अभाव जानके) बाह्य गमनकी कल्पना, इस-अध्याय २ में जो सृष्टिनियम लिखें हें उनद्वारा उनसे भिन्न अन्य नियमोंकी कल्पना (सू. ७२९ देखो), स्वप्नदर्शनसे पूर्व संस्कारोंकी कल्पना, परस्त्रीकी आंखोंकी चेष्टासे संबंध--इच्छाकी कल्पना, व्याप्ति दर्शनद्वारा परोक्षमें परिमाणकी संभावनाकी कल्पना, इतिहाससे अनुकरण होनेकी कल्पना, छायाके मापसे अन्य वृक्षकी उंचाइकी कल्पना, वृद्ध उमरसे कामाभावकी कल्पना, वजन जानके उसके रक्षक साधनकी कल्पना. इसप्रकार प्रत्यक्षादि १२ प्रमाणोंसे १२ प्रकारकी अर्थापत्ति होजाती हे. उसका समावेश अनुमानप्रमाणमें होसकता हे; ओर उसे भिन्नभी मानते हें; क्योंकि अनुमानमें तो प्रत्यक्षव्याप्तिकाही ग्रहण होता हे ओर इसमें श्रुत वगेरेसेभी उपपाद्यकी कल्पना होजाती हे ॥

स्मृति—पूर्व दृष्टश्रुतजन्य जो संस्कार उनका स्फुर्ण इसको स्मृति कहते हें. डिगरी पास होनेमें निमित्त हे, ओर अनेक व्यवहार होनेमेंभी निमित्त हे; अतः यथार्थ स्मृतिप्रमाण ओर अयथार्थस्मृतिअप्रमाण हे. परंतु जो करण (प्रमाण) होता हे वोह प्रमेयरुप नहीं होता, ओर स्मृति, स्मृति ज्ञानसे भिन्न नहीं होती; इसलिये उसे प्रमाण नहीं मानते (विशेष मूलमें). कोई उसको प्रत्यक्षके अंतरगत मानता हे.

चेष्टा—जेसे लोकमें शब्दसंकेत बनावटी हें, वेसे अंग वा पदार्थोंकी क्रिया-कोभी सूचक संकेत बना रखा हे, उससे अर्थका बोध होके व्यवहार होता हे; इस-लिये चेष्टाप्रमाण मानाजाता हे. यथा गरदन नीचे करनेसे आमंत्रणका बोध होता हे. यहां नीची गरदन करना चेष्टा हे उसका ज्ञानप्रमाण हे. टचटच चेष्टा नाका बोधक हे. तारके खटके उनमें वरणसंज्ञा यहचेष्टा हे. काचद्वारा प्रतिबिंब पहोंचाके उसकी गतियोंके भेदसे बोध करायाजाता हे यह चेष्टाप्रमाण हे. जन्मके गूंगे बहरे बाजार-

में व्यापार करते देखे हें वहां चेष्टाप्रमाण हे. गिरगटके रंग बदलनेपर वर्षाका अनुमान होता हे, बालकोंकी चेष्टासे उनका आशय उनकी माता जानलेती हे, सभाओंमें शब्द बोले विना ओर अंग हलाये विना दूसरेसे बात करलीजाती हे; यह चेष्टाप्रमाण हे. वस्तुतः शब्दभी चेष्टाप्रमाण हे. चेष्टाप्रमाणका शब्दमें समावेश जब होसकता हे कि उसे घडित संकेत मानाजाय. जन्मके गूंगे बहरोंका चेष्टा व्यवहार शब्दके अंतरगत नहींभी मानसकते. तथापि अल्पवर्ति होने ओर सर्वोपयोगी नहीं होनेसे चेष्टाको प्रमाणमें नहीं लियाजाता.

संभव—किसी व्याप्तिसे किसी परिणाम होनेकी संभावना मानना उसे संभव कहते हें, उस व्याप्तिज्ञानको प्रमाण कहते हें. यथा विष खानेमें आगया हो वा सर्पने काटा हो तो उससे मरनेकी संभावनाकी कल्पना होजाती हे. जिस पास १०० मुद्रिका देखें उस पास पचास होनेकी संभावना मानलीजाती हे. लडाईमें जानेपर मरनेकी संभावना करलेते हें. संभव इसलिये स्वतंत्र प्रमाण नहीं हे कि संतोष नहीं देता. ओर व्याप्तिसे मानाजाता हे अतः उसका समावेश अनुमानमें होसकता हे.

एतिह्य—दंतकथा, गाथा, जीवनचरित्र इत्यादिका समावेश एतिह्यमें होता हे. यदि वोह यथार्थ हे तो उसका समावेश शब्दप्रमाणमें होता हे. जो वेसा नहीं तो अप्रमाण हे. शब्दप्रमाणवत् इसका व्याख्यान करलेना चाहिये.

मान—तोल, दैशिकमाप, कालिकमाप, इन तीनोंको मान कहते हें, व्यवहारके साधक होनेसे प्रमाण कहाते हें. थरमामेटरका पारा उतरता चढता हे, उससे गरमी, हवा, वा तूफ़ान होनेका अनुमानिक ज्ञान होजाता हे. अग्निकी गरमीसे सुइ इतनी डिगरीपर आइ हे इसलिये इतनी गति होगी वा अमुक परिणाम होनेवाला हे, एसा अनुमान होजाता हे. इत्यादि सब मान कहाते हें. उस मानके ज्ञान होनेमें जो साधन उसे मानप्रमाण कहते हें.

गुरुत्व अनुमानका विषय हे अथवा अपेक्षित संज्ञा हे; क्योंकि जिसको एक देशमें सेर कहते हें उसेही दूसरे देशमें दोसेर मानते हें. गुरुत्व अर्थात क्या? इसके निर्णय विना, इस प्रमाणका फेसला नहीं होता (गुरुत्वकी चर्चा मूलमें हे); इसलिये यहां संक्षेपमें इतनाही लिखना बस हे कि माशा, तोला, रती, सेर, दोसेर, इत्यादि कल्पित संकेत हें. जिसका आधार परमाणुपुंज, उनका क्षेत्र, दूसरेसे दूरी (फ़ासला) ओर दबानपर हे. यह दोसेर हे, यहां वजन, अनुमानका विषय हे, दोसेर संज्ञा कल्पित हे; इसका ज्ञान प्रमाण हे. यह तोलमें अमुककी

बराबर हे याने दोसेर हे. यहां बराबरीका ज्ञान प्रमाण (दोसेर अनुमानिक वा कल्पितज्ञानका साधन) हे. (विशेष मूलमें).

दैशिक माप—यह कदमें दो हाथ लंबा, यह उससे छोटा, यह तीन गज दूर, यह उससे उरे, इत्यादि ज्ञान जिससे होता हे उसे दैशिकप्रमाण कहते हें. यह क्षेत्र ९ हाथ हे, वा ९ गज हे. यहां हाथ वा गजका ज्ञान प्रमाण हे, ९ हाथ वा ९ गज क्षेत्रफल प्रमेय हे; क्योंकि इस प्रमेयके ज्ञानहोनमें हाथ वा गजका ज्ञान साधन हे. दैशिक मापभी देशप्रति जुदाजुदा प्रकारके मानेजाते हें तथापि क्षेत्र (देश) कल्पित नहीं हे, उसकी संज्ञा कल्पित हे. दैशिक माप त्वचाका विषय हे, इसलिये प्रत्यक्षप्रमाणके अंतरगत हे. देश, चक्षुका वा बुद्धिका विषय हे, इसमें तकरार हे. परंतु दैशिकमाप त्वचाका विषय हे, यह निर्विवाद हे. (विशेष मूलमें).

कालिक माप—यह शरीर उमरमें अमुकसे इतने वर्ष बडा--छोटा हे, यह पहेले, यह पीछे हुवा हे, अमुक होगा, इत्यादि सामयिकज्ञान जिस करके होता हे उसे कालिकप्रमाण कहते हें. कालज्ञानका साधन, गतिका ज्ञान हे; अतः गतिकाज्ञान कालिक प्रमाण हे. परंतु गतिके भेदसे कल्पितमें मतभेद हें. चंद्रकी गतिपर कालकी गणना करनेवाले ३५४ दिनका एक वर्ष ओर सूर्यकी गतिपर मान्नेवाले ३६५ दिन १५ घडीका १ वर्ष मानते हें. कोई आंखकी झपक (पल) से कालका माप बांधते हें, कोई अन्यप्रकारसे करते हें. यथा घडीयाल गत सेंकडकेभी ६० भाग करते हें. तथापि काल अग्राह्यही रहता हे. यथा—पृथ्वीकी परिधि २५००० मील हे, विजली १ मिनीटमें उसकी ८ वार परिक्रमा करलेती हे याने ८ सेंकडमें २५००० मील चलती हे; स्वप्नमें हजारों वर्ष २ मिनीटमें होजाते हें. सारांश कालकी गहनगति हे. बाह्यगति चक्षुकी, आंतरियगति मनकी विषय हे. गतिलिंगसे कालका अनुमान बुद्धिमें होता हे, इस रीतिसे कालिक माप अनुमानके अंतरगत हे. कोईक गति, चक्षुका विषय होनेसे कालको प्रत्यक्षमें मानलेता हे.

पारा, गरमी इत्यादिकेद्वारा जो माप हें वे परीक्षितव्याप्तिजन्य होनेसे अनुमानके अंतरगत मानेजाते हें.

उपरोक्त प्रत्यक्षादि १२ वा १४ प्रमाणोंमें जो मतभेद हे उसकी चर्चाकी यहां अपेक्षा नहीं हे. पंदरवां अनुभवप्रमाणभी मानाजाता हे; परंतु जन्य होनेसे प्रमाण नहींभी मानते; तथापि जिस भाव जिस प्रकारमें वोह स्वतःप्रमाण हे उस भाव उस

प्रकारको विचारें तो भेदग्रहणप्रकारीस्वरुप अनुभवको प्रमाण मानसकते हें. बस. में इसका विस्तार हे.

उपर १५ प्रमाण कहे वे यथार्थज्ञानके जनक होनेसे प्रमाण हें. जो अयथार्थज्ञानके जनक हों तो अप्रमाके जनक होनेसे अप्रमाण हें. अर्थात जितने प्रमाके भेद वा प्रमाण हें उतनेही अप्रमाके भेद ओर अथार्थज्ञानके जनक अप्रमाण हें; एसे जानके यथायोग्य योज लेनाचाहिये ॥ ६२ । ६३ ॥

सृष्टिनियमके अनुकूल जो बुद्धिका उपयोग उसे युक्ति कहते हें ॥ ६४ ॥ यथा कोई कहे के दूधका जो दही होता हे सो नवीन बनता हे क्योंकि दूधमें दहीवाला खटास नहीं होता ओर अन्य गुण दूधसे अन्यप्रकारके होते हें. तब यह कहाजाय के "उपादेय, उपादानवत् होता हे" (३०२ देखो) इसलिये दही अपने उपादान (दूध + छाज वगेरे) से अन्य नवीन नहीं हे. एसे सृष्टिनियमका कथन करके अयुक्तकी समीक्षा वा सयुक्तकी सिद्धि करनेका नाम युक्ति हे ॥ ६५ ॥

अभावसे भावरुप वस्तु नहीं बनती (२८७), जब कुछ हो तबही कुछ फारम बनता हे (२८५), इसलिये उपादेयवत् उपादान, एसा कथन युक्ति वा युक्तही हे. दूधमें चांदीद्वारा वा छाछके मिश्रणसे वा ठंडीद्वारा वा अन्य कारणसे पूर्वके रसायणीयसंयोगका परिव्रर्तन होके अन्य प्रकारसे रसायणीयसंयोग होता हे—सो दही हे. अर्थात वर्तमान दहीमें जो गुण हें वा जो मेटर हे सो गुण वा मेटर दही बन्नेके पूर्व क्षणमें विद्यमान हुये वा थे उनका परिणाम-उपादेय दही हे. किंवा जेसे कोई यह कहे " के दो, एक होजाते हें " जेसे कि जलके दो कतरे मिलके एक होजाते हें (वा प्रतिबिंब, बिंबरुप होजाता हे वा कर्ता--भोक्ता जो जीव वोह ओर अकर्ता--अभोक्ता जो ब्रह्म सो यह दोनों एक होजाते हें. अथवा एक, दो होजाते हें जेसेके ऐक जलके विभाग होते हें. वा एक शक्ति वा एक ब्रह्म नानारुप होजाते हें.) उसके निषेधमें यूं कहे " कि आपका कथन मंतव्य वदतोव्याघात दोषवाला होनेसे असमीचीन हे ", तो यहां उत्तरपक्षीने बुद्धिका उपयोग सृष्टिनियमानुकूल लिया हे, एसा कहेंगे अर्थात युक्तिसे निषेध किया हे; क्योंकि एक, कभी दो ओर दो, कभी एक नहीं होते (यह सृष्टिनियम आगे वांचोगे); इस नियमको मनमें रखके यह कहा कि दोएक होजाना वा एकदो होजाना, व्याघात हे (असत् हे); क्योंकि आपही दो कहके एक वा एक कहके अनेक संज्ञा देते हो. युक्ति स्वयं कोई प्रमाण नहीं हे किंतु निर्णय होनेकी एक शैली हे ॥ ६५ ॥

साध्य (जो सिद्ध करना हे सो. यथा बिंब) के अभावसे साधन (प्रतिबिंब) के अभावका आरोप करना तर्क कहाता हे ॥ ६६ ॥ जेसे कि किसी स्थलमें कोईका प्रतिबिंब जानपडे, उससे उसके परोक्षबिंबका अपरोक्ष जैसा अनुमान होजाता हे. वादि कहे कि बिंब कहींभी नहीं हे, तब सिद्धांति कहे के बिंब (साध्य) नहीं हे तो यह प्रतिबिंबभी नहीं हे. एसे आरोपका नाम तर्क हे ॥ ६७ ॥ वा जो परबतमें परोक्ष अग्नि नहीं हे, तो यह दृश्यवस्तु धूमभी नहीं हे, एसे आरोपका नाम तर्क हे; अर्थात वादि, प्रतिवादिको जो अनिष्ट उसको रजु करना. जेसे के प्रतिबिंब ओर धूमतो वादि मानता हे परंतु बिंब ओर अग्नि होनेसे इनकार करता हे. परंतु बिंबके विना प्रतिबिंब ओर अग्निके विना धूम नहीं होता; इसलिये बिंब ओर अग्निका अभाव बताना अनिष्ट होपडता हे. एसे उपयोगको तर्क कहते हें. तर्क यह कोई प्रमाण नहीं हे किंतु जो सत्य हो तो स्वपक्षके रक्षण विषे उपयोगी हे. अन्यथा खुशक--शब्दमात्र होनेसे वा छलरुप हो तो त्याज्य हे. युक्ति ओर तर्कमें जो सहेज अंतर हे वोह उदाहरणोंसे स्पष्ट होजाता हे ॥ ६७ ॥

सृष्टिमें जो वर्ताव (स्थिति) पूर्ववत् अर्थात जैसा भूतमें था वेसा वर्त्तमानमें हे ओर वेसाही भविष्यमें होगा, एसा जो वर्तन उसे नैसर्गिकनियम वा सृष्टिनियम कहते हें ॥ ६८ ॥ जेसेकि " संसारमें निष्फल वस्तु नहीं होती ". " संयोगके विना कार्य नहीं बनता ". " तत्त्वका स्वरुप नहीं बदलता ". इत्यादि पूर्ववत् विषय हें; अतः यह नियम हें. इनकी सिद्धि आगे वांचोगे. सू. २९में इसका बयान आचुका हे. यहां तो सामग्री प्रसंगवश पुनः कहा हे ॥ ६८ ॥

वैज्ञानिकज्ञान—कई अनुभवोंका एकत्र होना. यथा आंब वृक्षसे नीचे गिरता हे यह ज्ञान विज्ञान नहीं; किंतु गुरुत्वाकर्षणके नियमसे यह अवस्था होती हे, एसे ज्ञानका नाम वैज्ञानिकज्ञान हे. शब्द सुनना यह वैज्ञानिकज्ञान नहीं; परंतु सुन्नेसे पूर्व, वायुमंडलमें एक विशेष क्रिया हुई हे, यह ज्ञान साईंटिफिकज्ञान हे.

साईंसका काम—अनुभवोंको गठित करना याने भिन्नप्रकारके संबंधोंको स्थापन करना. इसलिये एक साईंसकी जघे कई साईंस पेदा होजाती हें.

गणित—(ल + न) (ल — न) = (लं — नं) यह नियम अटल हे. इन संबंधोंको हम नहीं जानते तोभी स्थिर रहेंगे.

गणितसे उतरके जो साईंस आती हे वोह भौतिकविज्ञान हे-यह विज्ञान प्राकृत पदार्थकी दृष्टिसे समझनेका प्रयत्न करता हे. इसका काम हे के प्रकृतिके सं-

बंधमें अनुगत नियमोंका वर्णन करे. यथा–(१) प्रकृतिका प्रत्येक भाग दूसरे भागोंको अपनी तरफ खेंचता हे, (२) प्रकाशकी किरणें सीधी लकीरमें क्रिया करती हैं, (३) हलका, भारीके उपर आता हे. यथा पारा, घी--दूध मिलानेपर पारा नीचे, इसपर दूध, उसपर घी आवेगा. भौतिकमें प्रकृतिकी आवश्यकता हे, उसके जातिभेदकी आवश्यकता नहीं होती.

रसायन–जो साईंस प्रकृतिके जातिभेदोंके नीवपरही स्थापित कीजाती हे वोह रसायन (केमिस्टरी) हे. इसका विषय, भिन्नभिन्न प्रकृतिओंका संयोग ओर वियोग हे. यथा औ. हा. से जल बनाना ओर उनको जुदा निकालदेना. जो मूल प्रकृति एक प्रकारकी होती तो भौतिकीकाही होना संभव था. रसायनविद्या नहीं होसकतीथी.

पुष्पका पृथक्करण करके तत्वोंका ज्ञान करसकते हें परंतु उन तत्वोंसे वेसा बना नहीं सकते. बनावट प्रकृतिके हाथमें हे; क्योंकि पुष्पमें एक ओरभी नियम हे ओर वोह जीवन हे.–यह दूसरेका विच्छेद करके उसेभी अपना अंग बनालेता हे याने वृद्धिकी शक्ति हे. इसलिये जीवनका वर्णन किसी ओर साईंसका काम हे. जीवनका प्रकाश वनस्पति ओर जंतुओंमें होता हे.

मनुष्यभी अन्य पशुओंके समान जानवरही हे अर्थात जंतुविद्याका विषय हे परंतु शरीरसे अतिरिक्त मनुष्यमें एक मन हे जो मनुष्यका एक विशेष चिन्ह हे. इसके समझनेकेलिये एक विशेष साईंसकी अपेक्षा हे. वोह साईंस मनोविज्ञान हे. इसके काम, इसकी शक्ति, इनका संबंध, प्रत्यक्ष ज्ञान केसे होता हे, अनुमान, चिंतन, सुखी--दुखी होनेकी क्रिया, क्रियाकी इच्छाको रोकनेकी रीति क्या हे ? इन सब बातोंका समाधान, मनोविज्ञान करसकता हे. इस साईंसके साथ न्याय, आचार ओर सौन्दर्यविद्याका विशेष संबंध हे. न्यायादि तीनों साईंस नहीं हें क्योंकि इनका काम अनुभवोंका गठित करना नहीं हे किंतु आदर्शोंका समालोचन करना हे.

मनोविज्ञान बताता हे कि हम किसप्रकार अनुमान करते हें. न्याय बताता हे कि किसप्रकार अनुमान करना चाहिये. मनोविज्ञान बताता हे कि हम किसप्रकार क्रिया करते हें, अच्छे-बुरेका भेद इसकी दृष्टिमें गौरव नहीं रखता. इसके विरुद्ध आचारशास्त्र बताता हे याने अच्छे--बुरेका भेद बताना इसका मुख्य उद्देश हे. मनोविज्ञान कहता हे कि कब किसको सुन्दर वा कुरुप कहके प्रसन्न हों वा घृणा करें. सौंदर्यविज्ञान बताता हे कि इसमें आदर्श क्या हे ओर किन लक्षणोंसे सुरुप वा कुरुप कहें.

असामान्य साईंस, सामाजिकशास्त्र हे जो समाजोंकी मानसिक अवस्थाको ओर एक समाजको अपनी वृद्धि वास्ते किनकिन अवस्थाओंमेंसे गुजरना पडता हे; यह बताता हे.

गणितको इन वातोंसे संबंध नहीं हे "कि प्रकृति हे वा नहीं ओर वोह एक प्रकारकी हे वा अनेक प्रकारकी हे, भौतिक, रसायण, जीवन क्या." क्योंकि इसका काम प्रकृतिओंका संयोग ओर विच्छेद हे.

साईंस पहेले कुछ फर्ज करलेती हे; पीछे इस नींवपर इमारत खडी करलेती हे. यथा प्रकृतिके प्रकाश वर्णन करने समय कोई पूछे कि प्रकृति क्या? तो भौतिकी साईंस उत्तर देगी कि प्रकृतिकी हस्ति सिद्ध करना मेरा काम नहीं हे, में अपना काम प्रकृतिकी हस्तिको फर्ज करके आरंभ करती हूं. मनोविज्ञान हमारे मनकी अवस्था बयान करेगा. जो उससे मनकी हस्तिका प्रमाण ओर उसका स्वरुप पूछें तो यह साईंस कहेगी कि इनका उत्तर देना इसका काम नहीं हे. हरकोई साईंस अपने मूल माने हुये नियमोंकी समीक्षा नहीं करती.

इन दोनों बातोंमें तर्क, साईंससे जुदा हे. तर्कका यह काम नहीं हे कि जगतको एक विशिष्टदृष्टिसे देखे वा अनुसंधानकेलिये एक अनुसंधानको चुन लेवे, प्रत्युत इसका काम तमाम ज्ञानोंको संगठित करना हे. एक साईंस दूसरी साईंसोंके संबंधमें निष्पक्ष होसकती हे; परंतु फिलोसफी किसी साईंसके परिणामके संबंधमें निष्पक्ष नहीं होसकती. तर्कका काम हे कि यदि कोई दो साईंस विरुद्ध परिणामोंपर पहोंचती हों तो दोनोंकी प्रतिज्ञाओंकी परीक्षा करे ओर उनके झगडोंका निर्णय करे. तर्कका दूसरा यह काम हे कि जिन नियमोंपर साईंस खडी हो उन नियमोंकीभी परीक्षा करे.

तर्कमें मनोविज्ञान, न्याय, आचार ओर सौन्दर्यभी शामिल करलियाजाता हे, परंतु वोह साधारण बोलचालमें होता हे; क्योंकि तर्क तो इनके नियमोंकोभी निरीक्षण करे, यह उसका काम हे.

युक्ति—युक्तिका काम तर्कवत् हे; क्योंकि उभयसंगी हें. परंतु इतना अंतर हे कि तर्कतो आदर्शोंको लेकेभी अपना काम करती हे ओर युक्ति नैसर्गिकनियमोंको लेके अपना काम बजाती हे. उदाहरण.—

प्रतिज्ञा – यह सब चेतनका परिणाम हे? (तर्क) जडदर्शनसे एसा नहीं. (योक्तिक) उपादान उपादेयवत्, यह सृष्टिनियम हे; अतः एसा नहीं ॥ प्रतिज्ञा—

सब जडका परिणाम वा पुंज हे ? (तर्क) ज्ञानदर्शन याने चेतन होनेसे एसा नहीं. (यौ.) पूर्ववत ॥ प्र.—सब मिथ्या हे. (तर्क) तुम्हारा कथनभी मिथ्या होनेसे मान्य नहीं. (यो.) उसका ज्ञाता उस ज्ञेयसे जुदा होनेसे एसा नहीं. प्र.—एक अद्वैतही. (तर्क) साधक अन्य होनेसे नहीं. (यौ.) निष्फलत्वके अभावसे एसा नहीं. इ. ॥ ६८ ॥

यहांतक प्रमाके साघन ओर उपयोगी भेद कहे गये. अब आगे सूत्र ७६ तक अप्रमाके भेद कहेंगे, ताके शोधक जिज्ञासु उनसे बचके निर्णय करे, कुशकतर्क, व्यर्थयुक्ति ओर अप्रमामें न फंसे.

योग्यसंबंध अजन्य बाधित अयथार्थज्ञान ॥ ६९ (अप्रमा) ॥ **प्रतिबिंब अभावजन्य वत्** ॥ ७० ॥ **अतद्बुद्धि भ्रमज्ञान** (विभ्रम) ॥ ७१ ॥ **स्थाणु पुरुषज्ञान वत्** ॥ ७२ ॥ **पूर्वोत्तर नहीं सो अध्यास** ॥ ७३ (अनुत्तर) ॥ **मृगजल ओर स्वप्न वत्** ॥ ७४ ॥ **अयथार्थ अनुमानका जनक हेत्वाभास** ॥ ७५ (हेत्वाभास ॥ **वन धूम वत्** ॥ ७६ ॥

वृत्ति—योग्यसंबंध (सू. ४९में लक्षण दिये हें) से अजन्य अर्थात जो प्रतीति अयोग्यसंबंधसे जन्य हो ओर परिक्षा करनेपर उसका बाध होजाता हो याने निष्फल प्रवृत्तिकी जनक हुई हो एसी प्रतीति अर्थात एसा ज्ञान (प्रमासे भिन्न प्रकारका) अयथार्थज्ञान कहाता हे. इसेही अप्रमा कहते हें ॥ ६९ ॥ जेसे कोई अजान (प्रकाशविद्यासे नावाकिफ) प्रतिबिंबको देखके यह कहे वा मानें कि यह प्रतिबिंब अभावसे जन्य हे क्योंकि इसका उपादान कोई नहीं जान पडता, इसलिये अकसमात अभावसे उत्पन्न हुवा हे. उसका "अभावजन्य" यह ज्ञान (परिक्षा होनेपर) बाधित हे, अयथार्थ हे; इसलिये अप्रमा हे. क्योंकि वोह भावरुप किरणसे उत्पन्न हुवा हे ॥ ७० ॥ रज्जुमें सर्प, सीपीमें चांदीरुप जो ज्ञान सोभी अप्रमा हे; क्योंकि जब उसकी परिक्षा वा निवृत्ति होती हे तब जिस भाव-जिस प्रकारका जाना था वेसे भाव--वेसे प्रकारवाला अर्थ वा उसका ज्ञान नहीं होता किंतु अन्य प्रकार--अन्य भाववाला (रज्जु, सीपी ओर उनका ज्ञान एसे) होता हे. स्थाणुपुरुष ओर स्वप्नसृष्टिभी अप्रमामें गिनेजाते हें. (विवेचन आगे वांचोगे). अप्रमाके कितनेही भेद हें. अर्थ, ज्ञान, संसर्गज, असंसर्गज, भ्रम, अध्यास, हेत्वाभास, निश्चित, संशय, विप्रिय, अन्यथा, विलक्षण, अयथार्थस्मृति, वशात कल्पन, इत्यादि. पूर्वाध्यायमें वर्णन हुवा हे, कुछ आगे वांचोगे. यहां तो ३ भेद जनाते हें ॥ ७० ॥

जिसमें जिसकी बुद्धि न हो किंतु उससे अन्यथा हो उसे भ्रमज्ञान कहते हें ॥ ७१ ॥ जेसेके अज्ञानादिवश स्थाणुमें स्थाणुबुद्धि न हो किंतु यह चोर वा कोई आदमी हे एसी बुद्धि होजाना, इसको भ्रमज्ञान कहतें हें ॥ ७२ ॥ यहां इस ज्ञानका विषय अर्थशून्य हे याने वहां पुरुष हेही नहीं किंतु अज्ञानादिवश पुरुष, इस नामरुपका कल्पन होगया हे. इसलिये इसको ज्ञानाध्यासभी कहते हें. अर्थाध्यास नहीं (विशेष अ. १ में ओर बस. के अंतमें वर्णन हे) ॥ ७२ ॥

जो अपनी प्रतीतिसे पूर्व ओर प्रतीतिके उत्तरकालमें न हो उसे अध्यास कहते हें ॥७३॥ जेसे के मृगजल ओर स्वप्नसृष्टि अपने पूर्व ओर उत्तरकालमें नहीं होते ओर वर्त्तमानमें सत्यरुपसे जानपडते हें, इसलिये उनकी अध्यास संज्ञा हे ॥ ७४ ॥ इन उभय उदाहरणमें अर्थाध्यास ओर ज्ञानाध्यास दोनों हें. मृगजल प्रसंगमें शरीरके अंदर शेषा (ईथर) का जलरुप परिणाम हुवा हे ओर स्वप्नके नामरुप पूर्व संस्कारानुसार शेषाके परिणाम हुये हें. वे जिस भाव जिस प्रकारवाले हें वेसे भाव वेसे प्रकारमें नहीं जानपडते किंतु अन्य भाव अन्य प्रकारवाले जानपडते हें इसलिये, तथा पूर्वोत्तरमें वेसे नहीं होते इसलिये, उनकी अर्थाध्याससंज्ञा हे ओर उनके ज्ञानकी ज्ञानाध्याससंज्ञा हे. स्फटकका जियापुष्पके साथ संबंध हो तो स्फटक लाल जानपडता हे. यहां स्फटक लाल, यह अर्थाध्यास हे क्योंकि लाल अर्थ वहां हे. संसर्ग दोषसे कुसुमकी लाली उसमें जानपडती हे. ओर यह ज्ञान यथार्थ नहीं हे, इसलिये इसे ज्ञानाध्यास (भ्रमज्ञान) कहते हें. आत्मा-अनात्माका ओर जडचेतनके धर्मोका परस्परमें अध्यास होजाता हे. यह अध्यास कहीं अज्ञानादि सामग्रीसे संसर्गाध्यास (अन्योऽन्याध्यास) रुप होता हे, ओर कहीं असंसर्गरुप होता हे (वस्तुतः दोके विना अनुत्पत्ति होनेसे संसर्गाध्यासही सिद्ध होता हे. यथा आकाश नीला यह संसर्गाध्यास सिद्ध होगा). अज्ञान, भ्रम, अध्यास, भूल ओर संशय इनका संक्षेपमें अंतर.—

(१) अज्ञान, अपनी हयातीमें विषय होभी जाता हे ओर नहींभी होता. (२) भ्रम, अध्यास ओर भूल अपनी हयातीमें विषय नहीं होते किंतु निवृत्ति पीछेही भूत प्रत्ययसे मानेजाते हें. (३) जहां पूर्व ज्ञात, अज्ञात हो वहां भूलका प्रयोग होता हे. (४) पूर्वमें विशेषरुपसे ज्ञात न हो वहां भ्रम वा अध्यासका प्रयोग होता हे. (५) संशय प्रसंगमें एक भाग प्रमाका दूसरा अप्रमाका भाग होता हे. ओर कहीं उभय भाग अप्रमाके होते हें. जेसे डोरी वा सर्प इसमें डोरी भाग

प्रमाका हे. सर्प वा जलधारा, यहां उभय भाग अप्रमाके हें. (६) जहां अविद्या (दूषितवृत्ति)का ईश्वर (शेषा)के आकार (रुप आत्मक) परिणाम होजावे ओर दूषितवृत्तिका तद्ज्ञानाकार परिणाम हो वहां अध्याससंज्ञा हे. (७) जहां दूषितवृत्तिका ज्ञानस्वरुप परिणाम हो (कोई प्रकारका अर्थ न होनेसे) अर्थाकाररुप परिणाम न हो वहां ज्ञानाध्यास (भ्रम) का प्रयोग हे. (८) जेसे मृगजल, रज्जु सर्प वगेरे प्रसंगमें कहीं ज्ञानाध्यास, कहीं ज्ञानाध्यास ओर अर्थाध्यासभी होता हे. संसर्गाध्यासमें अर्थअध्यास अवश्य होता हे. (९) जिसने अंतरमें अनिच्छित छबी ओर दीपकके प्रकाशका तथा वक्ष्यमाण (अ. ४) दृश्यपरिमाण दर्शनका, निर्णय किया होगा वोह विवेकी अर्थाध्यास ओर ज्ञानाध्यासके भेदको जानसकता हे (इसका विवेचन मूलमें, बस. में, भू. में ओर अ. १ तथा ३ मेंभी हे) ॥७४॥

साध्यके साथ व्यभिचाररहित जो सहचारी हो उस साध्यका जो साधक, उसे हेतु (लिंग--व्याप्य) कहते हें. जो हेतुरुपमें न हो ओर हेतुवत् भासे उसे हेत्वाभास कहते हें. (इसके ओरभी लक्षण हें) अर्थात् जिसद्वारा खोटा (अयथार्थ) अनुमान होजावे सो हेत्वाभास कहाता हे. ॥ ७५ ॥ जेसे गामके पास बनी हो वहां गामकी धूवां वृक्षोंमें रुकाजाती हे ओर उर्धवायु होनेपर उर्धलिंगभी होती हे, उसको पंथाइ देखके बनीमें अग्नि होनेका अनुमान करके बनीमें आता हे ओर वहां अग्नि नहीं होती. यहां वोह धूम हेत्वाभासरुप हे. इसप्रकार अनेक प्रसंगमें खोटा अनुमान होजाता हे ॥ ७६ ॥ सरदऋतु विषे बनींमें धूमसको धुम मानके अग्निका अनुमान होजाता हे यह हेत्वाभास हे. कभी चतुर मासेमें--बनीमें अग्नि हे उसकी धूम वृक्षोंमें पसरी हुइ होती हे, उर्धलिंग नहीं होती; अतः उसको सहचारी हुयेभी धूमस जानके अग्नि होनेका अनुमान नहीं होता. यह निरुद्ध हेत्वाभास हे.

हेत्वाभास अनेक प्रकारके होते हें; यथा अनेकांतिक, विरुद्ध, सतप्रतिपक्ष, बाधित, ओर असिद्ध तथा निरुद्ध. पुनः उनकी शाखाके भेद हें; यथा साधारणादि अनेक अवांतरभेद हें. इनका वर्णन अ. १ में न्याय, वैशेषिकमतमें तथा बस. में किया हे ओर मूलमेंभी हे. विशेष उपयोगी न होनेसे यहां नहीं लिखा हे ॥७६॥

वक्ष्यमाण सूत्रोंकी परिभाषा.—

(१) प्रमा=ज्ञानस्वरुप चेतन. (प्रकाशाधिकरण वांचो), व्यवहारमें यथार्थ ज्ञान वा अबाधित ज्ञानको प्रमा कहते हें. (२) इस ज्ञानके विषयको प्रमेय कहते हें. (३) जिस साधन करके अबाधित ज्ञान हो उसे करण (प्रमाण) कहते हें;

जेसे के इंद्रिय, मन, वा विषय विषयी (प्रमाता) का योग्यसंबंधका नाम प्रमाण हे. (४) दूसरेकी अपेक्षा विना जो अंतिमप्रमाणके ज्ञान होनेमें आपही साधनरुप हो उसे **स्वतःप्रमाण** कहते हें. यथा मन ओर आत्माके संबंध तथा उनके भेदग्रहण होनेमें ज्ञानस्वरुप–चेतन स्वतःप्रमाणरुप हे. (५) इंद्रिय, मनद्वारा विषय–विषयीके योग्यसंबंधजन्य जो ज्ञान उसे प्रत्यक्षज्ञान (प्रमतिप्रमा) कहते हें. (६) जीवको प्रमाताचेतन, जीववृत्तिको प्रमाणचेतन ओर प्रमेयउपहितचेतनको प्रमेयचेतन कहते हें. (७) जो मन, इंद्रिय ओर सन्निकर्ष अर्थात पूर्वोक्तज्ञानग्राहकसामग्रीसे इतरसामग्री, ज्ञान होनेमें साधन हो उसे परतःप्रमाण कहते हें. जेसे के व्याप्तिज्ञान वा व्याप्यज्ञान जो हे सो अनुमान करनेकी सामग्री हे उसे परतःप्रमाण कहते हें (विशेष बस. गत परतःप्रमाण, स्वतःप्रमाण ओर स्वतोग्रह प्रसंगमें तथा मूलमें हे). इस परिभाषा लिखनेसे कोई विषयकी सिद्धि (परिभाषामें कहे हुये विषयकी सिद्धि) होगई हो वा कीगई हे एसा नहीं जानना चाहिये; किंतु वक्ष्यमाण सूत्रोंका अर्थ समझमें आवे इसलिये लिखी हे.

प्रमाका निषेध नहीं ॥ ७७ ॥ (प्रमा) ॥ **उसका प्रमेय होजानेसे** ॥ ७८ ॥ **करणकाभी** ॥ ७९ (प्रमेय) ॥ **संबंध विना ज्ञान न होनेसे** ॥ ८० ॥ **स्वतःप्रमाणका प्रमाग नहीं** ॥ ८१ (स्वतः) ॥ **अनवस्थासे** ॥ ८२ ॥ **परतः तद्वत् नहीं** ॥ ८३ (परतः) ॥ **सापेक्ष होनेसे** ॥ ८४ ॥ **ओर उसका विषय होनेसे** ॥ ८५ ॥ **करण अपना करण नहीं** ॥ ८६ (करण) ॥ **अनवस्था ओर असिद्धिसे** ॥ ८७ ॥ **तद्वत् प्रमेयभी** ॥ ८८ (अकरण) ॥

अर्थ—प्रमा याने ज्ञानस्वरुपका निषेध –खंडन नहीं होसकता ॥ ७७ ॥ क्योंकि खंडन, उसका प्रमेय होजाता हे ॥ ७८ ॥ याने खंडनमंडनकी साक्षी उसीसे मिलती हे. रुप अपने प्रकाशकका खंडन नही करसकताा; किंतु उसकी सिद्धिमें अन्यथा सहकारी हे; क्योंकि रुपकी सिद्धि प्रकाशसे होती हे. ओर रुप ज्ञान होनेसे प्रकाश सिद्धिमें उतेजन मिलता हे. जो प्रमा किसीका प्रमेय मानें तो अनवस्था चलेगी. जो वोह स्वतःप्रमाण न हों तो प्रमेय होनेसे अनवस्था चलेगी वा अप्रमाण होनेसे अमान्य ठेरेगा; अंतः प्रमाका निषेध नहीं होता, क्योंकि वोह परिशेषसे स्वयंप्रकाश स्वतःप्रमाणरुप सिद्ध होता हे.

चेतन अर्थात ज्ञानस्वरुपकी अनुत्पत्ति अ. १ चिदचिद्विवेकमें कही गई हे. अब जो ज्ञानस्वरुप प्रमाको क्षणिक मानें तो तिसका समकालीन प्रमेय न होसकनेसे

प्रमेयकी सिद्धि न होगी. जो प्रमाका नाश होना मानें तो जिसका नाश विषय हो सो प्रमा मान्ना होगा. जो नाशकी सिद्धि अनुमानसे मानें तो जिसका अनुमान विषय हे, सो प्रमा होगा. प्रमाका अभाव किसीने नहीं देखा; अतः उसके अभावकी सिद्धिमें कोई व्याप्ति नहीं मिलती. बालपनसे लेके शरीर त्याग पर्यंत शरीरका रुपांतर होता हे प्रमाका नहीं, किंतु प्रमात्वविशिष्टप्रमा (ज्ञानस्वरुपचेतन) समान रहता हे. अपनी उत्पत्ति वा नाश किसीनेभी देखी नहीं; जो अनुमानसे मानो तो जिसमें अनुमान विषय हुवा सो प्रमा मान्ना होगा. तन, मन, मगज ओर इंद्रियोंके जितने सशब्द वा अशब्द व्यापार होते हें (यथा में हुं, मुझे संशय हे, प्रकाश वा तमको में जानुं हुं, अज्ञान, ज्ञान, त्रिपुटीमात्र, खंडन, मंडन, अभाव, शून्य, भेद, अभेद, जाति) मेंदुःखी सुखी, इत्यादि) यह सब जिसमें ग्रहण होते हें सो प्रमा हे. प्रमाका व्यवहार तन, मन, इंद्रियद्वारा जानपडनेसे उनके समान उसकी उत्पत्ति--नास्ति नहीं मानसकते; क्योंकि हमेशे सम रहना अनुभवाजाता हे. जो परिणामी-रुपांतर होनेवाला जानपडता तो उत्पति-नाशकी कल्पना करलेते; परंतु एसा नहीं हे; अतःप्रमाका निषेध नहीं हे ॥ (विशेष विस्तार मूलमें, अ. १ में, बस. में, भू. में हे) ॥७८॥ ओर ज्ञानके साधन (मन, इंद्रिय, संबंध)काभी निषेध नहीं होसकता ॥७९॥ क्योंकि विषय-विषयीका सन्निकर्षरुप जो संबंध याने करण, उसके विना ज्ञान नहीं होता, इसलिये करणकाभी निषेध नहीं हे ॥८०॥ करण (मन-इंद्रिय, विषय-विषयीकासंबंध) सादि सांत होते हें तथापि उनके विना ज्ञानव्यवहार नहीं होसकता ॥८०॥ जो स्वतःप्रमाणरुप हो उसका प्रमाण नहीं होसकता ॥ ८१ ॥ क्योंकि जो प्रमाणका प्रमाण मानें तो अनवस्थादोष आता हे ॥ ८२ ॥ ज्ञानका ज्ञान, ज्ञानको ज्ञान ओर ज्ञानमें ज्ञान नहीं होता, इसलिये 'यह घट', 'में जानता हुं', 'यह यूं हे वा यूं नहीं एसा संशय, ईम्प्रेशन' इत्यादि वृत्तिओंका जिस ज्ञानस्वरुपमें ग्रहण होता हे उसको स्वतःप्रमाणस्वरुप मान्ना पडता हे ॥ ८२ ॥ जिसे परतः प्रमाण कहते हें वोह स्वतःप्रमाण जैसा नहीं हे ॥ ८३ ॥ क्योंकि उसको स्वतःप्रमाणकी अपेक्षा होती हे ॥ ८४ ॥ ओर स्वतःप्रमाणका विषय होजाता हे ॥ ८५॥ परंतु सूर्यकेप्रकाशसमान स्वतःको परतःकी अपेक्षा नहीं होती ओर न परतःका विषय होता हे; इसलिये परतःप्रमाण स्वतःवत् नहीं हे ॥

यहां अग्नि होनी चाहिये क्योंकि धूवां हे. इस अनुमानमें अग्नि ओर धूमके सहचर्यकाज्ञान (व्याप्तिज्ञान) ओर धूमका ज्ञान होवे तोही अग्निका अनुमान हो,

अन्यथा नहीं; अतः यह अनुमान परतः हे क्योंकि स्वतःकी अपेक्षा विना नहीं हुवा हे, ओर पुनः सो अनुमान स्वतःका विषय होता हे. इसीप्रकार शब्दप्रमाण, उपमानप्रमाण, अर्थापत्तिप्रमाण ओर अभावप्रमाण वास्ते योजलेना. इन सबको स्वतः-की अपेक्षा हे ओर स्वतःके विषय होते हैं ॥ ८५ ॥ करण (प्रमाण) अपना करण (अपने ज्ञानका साधन) नहीं होता ॥ ८६ ॥ क्योंकि इसकी असिद्धि हे ओर यदि मानें तो करणका करण पुनः उस करणका करण, एसे अनवस्था चलेगी परंतु अनवस्थादोष हे. ओर करणका करण होना न अनुभवमें हे ॥ ८७ ॥ अथवा जो करणोंको परस्परका करण मानें तो अन्योऽन्याश्रयदोष आवेगा. यथा क. प्रमाणका ख. ओर ख. का क. मानें तो या तो क. स्वतःप्रमाण सिद्ध होगा. नहींतो अन्यका प्रमेय होगा. परंतु परस्परके करण सिद्ध न होंगे. इसलिये क. का ग. ओर ग. का घ. ओर घ. का क. मानें तो चक्रिकादोष आवेगा. इसप्रकार करण अपना करण नहीं मानाजासकता ॥ ८७ ॥ वेसेही प्रमेयभी अपना प्रमेय (वा करण) नहीं होता; क्योंकि एसा मानें तो उक्तदोष आता हे ओर न सिद्ध होता हे; क्योंकि प्रमाता, प्रमेय भिन्न २ होते हैं, यह आगे सू. ३७५में वांचोगे ॥ ८८ ॥

(शंका) जबके कोई साक्षी चेतन स्वतःप्रमाणरुप हे अथवा स्वतःप्रामाण्यवाद (प्रमात्व अर्थात यथार्थत्वकी स्वतः उत्पत्ति ओर उस प्रमात्वका ज्ञान साक्षीमें स्वतः ग्रहण होना) हे तो भ्रम (अप्रमात्व)की अनुत्पत्ति हे अथवा भ्रमभी साक्षीमें ग्रहण होना चाहिये. उसके अभावकालमें परतः याने अनुमानका विषय नहीं होना चाहिये, परंतु एसा नहीं होता; अतः स्वतःप्रमाण, स्वतोग्रह वा स्वतःप्रामाण्यकी असिद्धि हे. (उ.) साक्षी, वृत्तिके परिणामका ग्राहक हे. प्रमात्व, अप्रमात्व यह बुद्धिवृत्तिके परिणाम हैं; वृत्ति प्रमात्वाकार न हो तो प्रमात्वका ओर अप्रमात्वाकार न हो तो अप्रमात्वका साक्षीमें ग्रहण नहीं होता. प्रमात्व ओर अप्रमात्व उभयमें ज्ञानत्वधर्म होता हे सो साक्षीमें ग्रहण होता हे. मनोवृत्ति दोष वा अप्रमात्वाकार नहीं होसकती; इसलिये भ्रमका भूतप्रत्ययसे ग्रहण होता हे. प्रमात्व, अप्रमात्वके प्रयोजक पदार्थकी स्थिति वगेरे हैं, इसलिये भ्रम, संशय ओर नानामतभेद होते हैं वे वेसे भावमें ग्रहण होते हैं. इसलिये स्वतःप्रमाणतामें दोष नहीं आता. इन तीनों प्रक्रियाओंका ओर इनकी परिभाषाका विशेष विस्तार मूलमें ओर बस. में हे ॥ ७७से ८८ तक ॥

प्रत्यक्ष आपमें प्रमाण नहीं ॥ ८९ (अनुभव) ॥ अनेकांत ओर प्र-

काश्य होनेसे ॥९०॥ तद्वत् अनुमानादिभी ॥ ९१ (परतंत्र) ॥ प्रतीति मात्र आधार योग्य नहीं ॥ ९२ (अपूर्ण) ॥ द्विधानियमसे ॥ ९३ ॥ मृगतृष्णिका वत् ॥ ९४ ॥ बहुमतमें यथार्थता नहींभी ॥ ९५ (निर्बल) ॥ विचित्रता दर्शनसे ॥ ९६ ॥ गौरव लाघवका बल यथायोग्य ॥ ९७ (बल) ॥ दोष ओर अदोष माने जानेसे ॥ ९८ ॥ प्रमाणकी संख्या ओर स्वरुप दृष्टिसे ॥ ९९ ॥ (विवाद) ॥

अर्थ—सब प्रसंगोंमें केवल प्रत्यक्षप्रमाण अपनी सिद्धिमें आप (स्वयं) प्रमाणरुपमें नहीं मानाजासकता ॥ ८९ ॥ क्योंकि एकही वस्तु किसी एकको जिस प्रकारकी जानपडती हे वोही वस्तु दूसरेको अन्यप्रकारमें जानपडती हे (यथा शब्द), ओर किसीको नहीं ज्ञात होती, किसीको ज्ञात होती हे (यथा आत्मा), इस प्रकार अनेकांत हे १. ओर प्रत्यक्षकी साक्षी मन, इंद्रियोंसे भिन्न किसी अन्यसे मिलती हे अर्थात दूसरेका प्रकाश्य हे २. ओर जेसा मगज, इंद्रिय हों वेसा भान होता हे ३. समझदारको आद्यप्रवृत्ति सकंप होती हे, (अपनेमें प्रमाण होता तो एसा न होता) ४. इसप्रकार अनेकांत ओर प्रकाश्य होनेसे प्रत्यक्ष अपने वास्ते आप प्रमाणरुप नहीं मानाजासकता (विशेष मूल ओर बस. में) किंतु परिक्षा ओर उपयोगसे उसमें प्रमाणताका प्रयोग होता हे. ॥ ९० ॥ जेसे प्रत्यक्ष अपने आपमें प्रमाणरुप नहीं वेसे अनुमान अनुमानकी, शब्द शब्दकी, उपमान उपमानकी, अर्थापत्ति अर्थापत्तिकी ओर अभाव अभावकी सिद्धिमें स्वयंप्रमाण नहीं माने जासकते; क्योंकि अनुमानादि प्रत्यक्षके अंतरगत हें, इसलिये पूर्वोक्ति तीनों, चारों हेतु उनको लगते हें ॥ ९१ ॥ उपरोक्त तीनों सूत्रोंका आशय यह नहीं हे कि प्रत्यक्षादिप्रमाण नहीं हें किंतु उनके विषयको विवाद प्रसंगमें वक्ष्यमाण मध्यस्थ ११९ । ११४ द्वारा परिक्षा कर्तव्य होती हे ओर परिक्षावत् उपयोगसे उनमें प्रमाणता हे, एसा जान्ना चाहिये. (विशेष आगेभी स्पष्ट होगा) ॥ ८९ से ९१ तक ॥ जो प्रतीत होता हे सो वेसाही हे, एसे आधार रखने योग्य नहीं होता ॥ ९२ ॥ क्योंकि नियम सू. ४४१ अनुसार भ्रम, भ्रमकालमें सत्यरुपसे प्रतीत होता हे ओर परिक्षाकालमें पूर्व जैसा नहीं जानपडता ॥ ९३ ॥ जेसे के मृगतृष्णिका जलरुपमें प्रतीत होनेपर पानी लानेजाते हें ओर पीछे अर्थशून्य जानपडता हे. ॥ ९४ ॥ तथाहि जब प्रत्यक्षकी उपर (८९) अनुसार दशा हे तो प्रतीतिमात्रकेलिये तो क्या कहना हे; अतः उसे परिक्षा ओर उपयोगके विना नहीं मानना चाहिये (बस. १९३ ।

१९४ भी देखो) ॥ ९४ ॥ मानव मंडलका अधिक भाग भावनामात्र वा रुढी मात्रसे जिसको मानता हो वोह यथार्थही हे, एसा नियम नहीं हे ॥ ९५ ॥ क्योंकि मानवमंडलमें भावना ओर संस्कारोंकी विचित्रता देखते हें ॥९५॥ उपादान विना अर्थात अभावसे भावरुप पदार्थकी उत्पत्ति, विशेषभाग मानता हे (ईरानी, याहूदि, किरानी ओर कुरानी संसारपर ध्यान दीजे[१]) जो के असंभव हे. इसीप्रकार अन्य दाखले मिलते हें ॥ ९६ ॥ गौरव (ज्यादा-विस्तार) ओर लाघव (संक्षेप--थोडा) का बल यथायोग्य लियाजाता हे. अर्थात कभी कहीं लाघवके ओर कभी कहीं गौरवके बलका स्वीकार होता हे ॥ ९८ ॥ क्योंकि दोष, अपवाद ओर अदोष उभयमें प्राप्त होते हें याने मानेजाते हें ॥ ९७ ॥ दो प्रमाणसे निर्वाह हो तोभी पांच, छ मान्ना गौरवदोष हे. एकही मान्ना परंतु उससे निर्वाह न हो तो लाघवतादोष हे. इतना लघुवाक्य कहना कि अन्यके विना उसका आशय ज्ञात न हो वहां लाघवता दोष हे. अन्यकी अपेक्षा विना स्वयं करसकना यह लाघवताभूषण हे. सब मंडलकी नियममें संमति हो यह गौरव भूषण हे. व्यवहारमें विशेष पक्ष हों तो यह गौरव भूषण हे. परंतु जहां नीति बलवान हो वहां नीति लघु होती हे तोभी यह लाघवता बलवान हे. यह जगत एकका रुपांतर हे एसा मंतव्य सिद्ध हो तो यह लाघवता भूषण हे, अन्यथा दूषित हे. इसप्रकार गौरव ओर लाघवकी कल्पना वा उनके उपयोग संबंधमें यथायोग्य मान्ना चाहिये ॥९८॥ प्रमाण कितने ओर उनका स्वरुप क्या, यह दोनों विषय अपनी अपनी दृष्टिसे माने गये हें ॥ ९९ ॥ ओर इसलिये उनमें परस्परमें विवाद हे. यथा एक प्रत्यक्षही, दूसरा अनुमानभी, तीसरा शब्दभी, एवं कोई ६ तक मानता हे. कोई इंद्रियोंको, कोई विषय विषर्यीके संबंधको तथा कोई ओरको प्रमाणताका स्वरुप देता हे. एक कहता हे कि एक प्रमाके दो प्रमाण नहीं होते, दूसरा कहता हे के होते हें. एक कहता हे के इंद्रिय ६ हें दूसरा ५ मानता हे. तीसरा इंद्रियको मनकी शक्ति कहता हे, चोथा शरीरके ज्ञानतंतु मानता हे. कोई विषयोंके भेदसे विभाग करता हे, कोई ईम्प्रेशनके भेदसे विभाग करता हे. इसप्रकार अनेक पक्ष ओर विवाद हें (बस. ७२ से ८६ तक देखीये). मूलमें विस्तार हे ॥९९॥

[१] भूमंडलमें आसरे १ अर्बुद ७८ किरोड मनुष्य हें. उनमेंसे बौद्ध ७० किरोड, याहूदी ख्रास्ति ४५, मुसलमान ३५ ओर हिंदु २८ ओर शेष जुंजवी हें. एसा अठसठा गतसदीमें सुना था.

योग्यप्रत्यक्ष व्यवहारमें मान्य ॥ १०० (प्रत्यक्ष) ॥ उपयोगी होनेसे ॥ १०१ ॥ प्रसिद्धत्याग ग्रहण वत् ॥ १०२ ॥ उसका लिंगी होनेसे अनुमानभी ॥ १०३ (अनुमान) ॥ जनक जन्य वत् ॥ १०४ ॥ शब्द सर्वथा स्वतंत्रप्रमाण नहीं ॥ १०५ (शब्द) ॥ परतंत्रता ओर व्यभिचार दर्शनसे ॥ १०६ ॥ शब्दादि वत् ॥ १०७ ॥ न सर्वथा त्याज्य प्रमाण होनेसे ॥१०८ (अत्याग) ओर कष्टसाध्यविषय सुखेन प्राप्त होनेसे ॥ १०९ ॥ यथा जनकबोधकवाक्य ॥ ११० ॥ ओर सदुपदेशकका ॥ १११ ॥

अर्थ—निर्दोष इंद्रिय वा मनद्वारा निर्दोष विषय ओर विषयीके योग्यसंबंधजन्य जो ज्ञान (वा उसका विषय) सो योग्यप्रत्यक्ष कहाता हे, सो व्यवहारमें मान्य हे ॥१००॥ क्योंकि उपयोगी होता हे—उससे जीवनव्यवहार चलता हे ॥१०१॥ जेसे कि प्रत्यक्ष होनेपर जनमंडलमें सुप्रसिद्ध लेनदेनरुप उपयोग होता हे. जो प्रत्यक्ष न होता तो एसा उपयोगी व्यवहार न होता ॥ १०२ ॥ (शं.) सू. ८९के विरुद्ध हे (उ.) नहीं. क्योंकि बहुधा व्यावहारीक विषय सर्वको समानगम्य ओर परिक्षा होने योग्य होते हें. ओर कोईक प्रत्यक्ष विवादित होता हे, जेसे के शब्द. उपर प्रत्यक्ष अनुपयोगी, एसा नहीं कहा किंतु आपमें प्रमाण नहीं एसा कहा हे, क्योंकि अन्यथाभी होता हे; इसलिये उपयोग ओर परिक्षा यह उसमें प्रमाणता कही हे; अतः दोष नहीं. तथा परोक्षविषय ओर पारमार्थिकविषय विवादितभी होते हें, जिनका विवेक प्रत्यक्षद्वाराभी करते हें; इसलिये अकेले प्रत्यक्षमें वा अनुमानादिमें स्वतःप्रमाणताका निषेध हे (उसकी अपूर्णता आगे वांचोगे); अतः विरोध नहीं आता ॥१०२॥ प्रत्यक्षके लिंगजन्यज्ञान होनेसे योग्य अनुमानभी व्यवहारमें मान्य हे ॥१०३॥ जेसे के अमुक व्यक्ति अपने पितासे जन्य हे. यहां जनक अनुमानका विषय हे ॥ १०४ ॥ वोह अटकल (अनुमान) व्याप्तिद्वारा होनी चाहिये, मनमुखी नहीं; किंतु साध्यका साधक हेतु, व्यभिचार रहित सहचारी ओर अविनाभावसंबंधवाला होना चाहिये; परंतु निरुद्ध हो (जेसे कि उपर हेत्वाभासमें कहा हे) तो वोहभी (उलटा) अनुमान होनेमें प्रतिबंध होजाता हे, जेसे के वनीगत अग्निकी धूवां अग्निकी साधक नहीं होती हे. इसलिये अनुमान विचारपूर्वक करके माननीय होता हे ॥ १०४ ॥

शब्द, यह प्रत्यक्ष जैसा स्वतंत्रप्रमाण नहीं हे याने जो शब्दमें कहा सो ठीकही हे, एसी उसमें सर्वांशमें स्वतःप्रमाणता नहीं हे ॥ १०५ ॥ क्योंकि वक्ताके प्र-

त्यक्ष (उपयोग-परिक्षा) ओर श्रोताके विश्वास आधीन होनेसे उसमें परतंत्रता पाइ-जाती हे तथा जितने शब्द मान्य (ईश्वरीयवाक्य, सर्वज्ञवाक्य, आप्तवाक्य, अवतार वा इशदूतवाक्य, योगीवाक्य) कहाते हें उनमें व्यभिचार देखते हें याने एकही विषयमें विरोधिमत वा मतभेद वाले हें (इसलिये परिक्षा, उपयोगके आधीन होनेसे स्वतंत्र वा स्वतःप्रमाणरुप नहीं मानेजासकते) ॥ १०६ ॥ जेसे के शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध, आकर्षण, गरमी, विद्युत, तम, प्रकाश, गुरुत्व, देश, काल, द्रव्य (मूल मेटर), गुण, शक्ति, जाति (सामान्यप्रत्यय), व्यक्ति, अभाव, किरण, मन, जीव, पुनर्जन्म, मोक्ष, ईश्वर, प्रमाण, आधार, आधेय, अज्ञान, अध्यास, तत्वसंख्या (कोई १, कोई २, कोई ३, कोई ४, कोई ५, कोई २४, कोई ७२, कोई ८० मानता हे), गुणादि ओर गुण्यादिकासंबंध, व्याप्यव्यापकभावसंबंध ओर तादात्म्यसंबंध इन ३४के[१] स्वरुपसंबंधमें आर्यप्रजाके-यूनानीप्रजाके ओर अन्यप्रजाके फिलोसोफर, रीफारमरके तथा उनके मान्य ग्रंथोंमें मतभेद देखते हें.[१] यदि शब्द, प्रमाणरुप होता तो मतभेद नहीं होता. इसलिये शब्द स्वयंप्रमाण नहीं ॥१०७॥ जहांतक परिक्षासे सिद्ध न हो वहांतक शब्द विश्वाससेही मान्य हे यह कहा जायगा कारणके दृश्य पदार्थोमें मतभेद हे तो परोक्ष जीव मोक्षादिके संबंधमें तो क्या कहना हे. इसलिये शब्द स्वयंप्रमाण नहीं ॥ १०७ ॥ शब्दप्रमाण सर्वथा त्याज्यभी नहीं हे; क्योंकि व्यवहारमें पदार्थज्ञान होनेका साधन हे ॥१०७॥ तथा उसद्वारा दूसरेका (वक्ताका) कष्टसाध्य जो अनुभव (वा परिक्षा) सो सुखेन याने थोडे प्रयाससे प्राप्त होजाता हे ॥ १०९ ॥ जेसे के पिताका ज्ञान, माताके शब्दज्ञानसे होता हे इससे अन्य कोई साधन नहीं. उससे वारसे वगेरेका व्यवहार होता हे; अतः वोह वाक्यप्रमाण हे ॥ ११० ॥ ओर किसीने दवाईके गुण, नाडी परिक्षा, रोगनिदान ओर पदार्थोंकी परिक्षा अति श्रमसे की हे उसका ज्ञान उस आप्तसदुपदेष्टाके वाक्यसे हमको थोडे श्रमसे होजाता हे ओर फेर उपयोगमें लेते हें; इसलिये अनुभवी, परीक्षक, सदुपदेष्टाका वाक्य प्रमाण हे ॥ १११ ॥ यद्यपि माता ओर आप्तका वाक्य विश्वाससे मानाजाता हे तथापि ज्ञानका साधन ओर उपयोगी होनेसे प्रमाण हे, त्याज्य नहीं. हुंडी-पत्री, लेनदेन इसी शब्द प्रमाणसे होता हे. यदि प्रमाणता न हो तो न हो. (शं.) परलोक संबंधी परोक्ष विषयमें शब्दका मतभेद हे, फिजीकल साईंस (शारीरिकविद्या) ओर योगविद्याके कथनमें अं-

[१] शब्दादिके स्वरुपमें मतभेद प्रसिद्ध हे. विस्तार बस. में हे.

तर हे; यथा प्राण मस्तकमें (ब्रह्मरंध्रमें) रोकना. ओर जीव, मोक्ष इत्यादिके स्वरुपमें मतभेद हे. एसे प्रसंगोंमें क्या करना ? (उ.) समाधान सू. ११४ में वांचोगे ॥ १११ ॥

खंडितसे खंडन नहीं ॥११२ (खंडन) ॥ अभावनिमित्तादिवत्[१] ॥११३॥

अ.–जो उपरोक्त प्रमाण, युक्ति वा तर्क स्वयं खंडित (अपूर्ण) हो उससे दूसरे (सत्य) विषयका खंडन नहीं होसकता अर्थात खंडन करनेवाले प्रमाणादिको प्रथम तोललेना चाहिये. जो वोह स्वयं खंडित हो तो उसका खंडन, स्वीकार करनेके योग्य नहीं होता. ॥ ११२ ॥ जेसे के कोई कहे कि सृष्टिउत्पत्तिमें अभावही निमित्त हे, इतने कहनेसे सृष्टिके निमित्तकारणका निषेध नहीं होता; क्योंकि निमित्तका स्वीकार हे. वा जेसे कोई कहे कि यह जगत मिथ्या हे. अब जो यह बात सत्य हो तो यह मिथ्यावाक्य मिथ्यात्वकीसिद्धि नहीं करसकता; क्योंकि यह (मन, बुद्धि, वाणि), जगत मिथ्याके अंतरगत होनेसे सत्यबोधक नहीं होसकता, अर्थात स्वयं मिथ्या हे. वा जेसे कोई कहे कि यह जगत मिथ्या हे, ब्रह्म सत्य हे; तो यहांभी खंडित दोष आता हे अर्थात जेसे मिथ्या जो रजुसर्प, स्थाणुपुरुषादि वे सत् सर्प की वा द्रष्टापुरुषकी सिद्धिमें असमर्थ हें, वेसे उक्त बोधक (प्रतिज्ञा-हेतुबोधक) वाक्यभी मिथ्या हे, अतः उससे सत् ब्रह्मकी सिद्धि नहीं होती. वा जेसे कोई कहे के जगत (शशशृंग, वंध्याके पुत्र समान) अजात हे तोभी खंडित दोष आता हे; क्योंकि वक्ताका कथन-मंतव्य, मेरे मुखमें जिव्हा नहीं, इस वाक्य समान व्याघातदोषवाला हे. इसीप्रकार प्रत्यक्षादिप्रमाण जो खंडित, दूषित ओर अपूर्ण हो तो उनमें यथायोग्य योजलेना ॥ ११३ ॥

विवाद प्रसंगमे निर्णय मध्यस्थद्वारा ॥ ११४ ॥ (श्रुति) (सूचक) ॥ केवल प्रत्यक्षादिकी अपूर्णतासे ॥ ११५ ॥ अन्यथा निरंकुश शांति न होनेसे ॥ ११६ ॥ दोष निवारणत्वही निर्णय ॥ ११७ (अपक्ष) ॥ अस्ति नियमसे ॥ ११८ (नपक्ष) ॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, युक्ति वा सृष्टिनियम बुद्धि इंद्रियके साथ अनुभव मध्यस्थ ॥ ११९ (मध्यस्थ) ॥ सपरिक्षा शांतिप्रद होनेसे ॥ १२० ॥ शब्दको साक्षीरुप ग्रहणमें अनाग्रह ॥ १२१ (अनाग्रह) अप्रमाण अमान्य ॥ १२२ (असफल) ॥ हानीप्रद होनेसे ॥ १२३ ॥

---

[१] अभाव निमित्त, मिथ्यासे मिथ्याका वा सत्यका प्रतिपादन, अजातदर्शन, प्रमाणकी अपूर्णता. यह ५ ॥

ओर अनुपयोगी रहनेसे ॥ १२४ ॥ धीपर युक्ति तर्क नहीं ॥ १२५ (धी) ॥ कल्पनाभी न होसकनेसे ॥ १२६ ॥

अर्थ—जहां प्रमाता, प्रमाण ओर प्रमेयगत संशय वा विवाद हो वहां (वक्ष्यमाण) मध्यस्थद्वारा निर्णय कर्तव्य हे ॥ ११४ ॥ कारण के प्रत्यक्षादि ६ अर्थात—अकेला प्रत्यक्षप्रमाण, अकेला अनुमान, वा अकेला शब्द, वा उपमान, वा अर्थापत्ति, वा अकेला अभावप्रमाण, अपूर्ण होता हे ॥ ११५ ॥ जो एसा नहीं करनेमें आवे तो शोधकजिज्ञासुको निर्भ्रांत, स्वतंत्र शांति नहीं होसकती अर्थात या तो विश्वाससे मान्ना पडता हे वा तो संशय-भ्रांति रहती हे; अतः मध्यस्थकी अपेक्षा होती हे ॥ ११६ ॥ (प्रसंगवश निर्णय ओर मध्यस्थके लक्षण लिखते हें). निर्णीयके संबंधमें जो दोष हें याने बुद्धिमें जो संशय, भ्रांति-विपरीतभावना वा असंभावनादोष हें उनका निवारण होना, इसीका नाम निर्णय कहाता हे ॥ ११७ ॥ कारणके अस्तिनियम (१८६) यह दरसाता हे कि सृष्टिमें स्वरुप वा स्वरुपज पदार्थ जेसे हें वेसे हें ओर जो हें सो हें. शोधककी कल्पना वा मान्यतासे वे अन्यथा नहीं होते ओर न न्यूनाधिक होसकते हें. जितने जेसे ओर जो हें उतने वेसे ओर सो हें; इसलिये पदार्थोंके स्वरुपमें जो अन्यथा प्रतीति उसका निवारणही निर्णय कहाता हे ॥ ११८ ॥ प्रत्यक्ष, अनुमान ओर युक्तिके साथ अनुभव मिले याने यह चार किंवा सृष्टिनियम, बुद्धि ओर इंद्रियके साथ अनुभव मिले याने यह चार--मध्यस्थ कहाते हें. अकेले प्रत्यक्ष, अनुमान, युक्ति, बुद्धि, इंद्रिय, सृष्टिनियम वा अकेले अनुभवका नाम मध्यस्थ नहीं हे किंतु चार चार संयुक्तसभाकानाम मध्यस्थ हे, एसा जान्ना चाहिये ॥ ११९ ॥ कारणके मानवमंडलकी सीमामें यह मध्यस्थ परिक्षापूर्वक शांतिप्रद होता हे, इसलिये इसको मध्यस्थपदवी दीजाती हे ॥ १२० ॥ इस मध्यस्थमें शब्दप्रमाणका इसलिये नाम नहीं लिया हे कि शब्द इसके अंतरगत हे. तथापि जो किसी प्रसंगमें शब्दका ग्रहण करना हो तो उसको साक्षीरुपसे ग्रहण करनेमें दुराग्रह नहीं रखना चाहिये. परंतु सर्वज्ञका वाक्य हे वा प्रत्यक्षादिसे उपर हे, एसी भावनासे ग्रहण करनेकी अपेक्षा नहीं रहती; कारणके मध्यस्थके अंतरगत उसका समावेश होजाता हे. सारांश कुदरत (सृष्टिनियम) मनुष्य ओर शब्द तीनों एकसंमत हों तो अति उत्तम हे. नहींतो मध्यस्थतो हेही ॥ १२१ ॥ जो निर्णय वा मंतव्य, प्रमाण (प्रत्यक्षादिप्रमाण)का विषय न हो उसको नहीं मान्ना चाहिये ॥ १२२ ॥ क्योंकि हानीकारक होजाता हे ॥ १२३ ॥ ओर अनुपयोगी

होता हे ॥ १२४ ॥ जेसे अताई (उंटवेद्य)की दवाई, प्रमाण याने प्रकृतिके नियममें परीक्षत न होनेसे या तो रोगीको हानीकारक होजाती हे वा तो निकम्मी होती हे. तद्वत् परोक्ष (परलोक) संबंधमें ज्ञातव्य हे अर्थात यथायोग्य घटालेना चाहिये ॥ १२४ ॥

जो विषय बुद्धिसे पर हे, उसमें युक्ति वा तर्कका उपयोग नहीं होसकता ॥ १२५ ॥ क्योंकि वोह हे, एसी कल्पनाभी नहीं होसकती तो फेर मन, बुद्धि वा वाणीका प्रवेश केसे होसकता हे. किंतु जिसका सामान्यज्ञान ओर विशेषअज्ञान हो किंवा जिसे अनुमानद्वारा कल्पते हों; किंवा जिसको विकल्पका विषय बनाते हों, किंवा जो सुना हो, उसीमें युक्ति, तर्कका प्रवेश होसकता हे ॥ १२६ ॥

विवेचन—यद्यपि बहुधा विवाद परोक्ष (ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म, मोक्ष वगेरे) विषयमें होता हे तथापि शब्दादि कितनेक अपरोक्ष विषयोंमेंभी विवाद हे ओर जीव अपरोक्ष होने योग्य हे उसमेंभी विवाद हे; एसे प्रसंगोंमें मध्यस्थकी अपेक्षा हे; क्योंकि अकेले प्रत्यक्षादिमें अपूर्णता हे. विचारिये—" कीडी ओर माखीको दूरसे शकरकी गंध आती हे मनुष्यको नहीं; उलुक, बिल्ली, भगेर ओर सर्पको अंधेरेमेंभी दीख पडता हे मनुष्यको नहीं; मोर दूरदूरके शब्द सुनता हे मनुष्य नहीं; तोटक जानवर विषयुक्त भोजनको विना खाये (गंधसे) जानलेता हे मनुष्य नही; सांडा जानवर वर्षाके ७ दिवस आने पूर्व अपने दरको बंद करलेता हे, मनुष्यको एसा ज्ञान नहीं होता; जमीनके अंदर खड्डा वा कूवा हो ओर वोह उपरसे ढका हुवा ओर अंदरमें पोला हो तो उसपर एवड (भेड बकरी) नहीं बेठता याने उतने स्थानको छोडके बेठेगा परंतु मनुष्य यह भेद नहीं जानसकता; जलगत जंतु हें वे सूक्ष्मयंत्रद्वारा जानसकते हें उस विना नहीं अर्थात मनुष्यकी वेसी चक्षु नहीं हें; दूरबीनसे दिवसको तारे देखसकते हें मनुष्यकी आंखका काच वेसा नहीं हे; रेगरके मकानमें दुर्गंधी होती हे याने कच्चीखाल गंधाती हे परंतु उससे पूछो तो गंध होना नहीं कहता, अब जो अपन वहां जावें तो मथवा होजाये; जिस गरम दूधके कटोरेको बावरची हाथमें लाता हे उसको अपन छुवें तो फफोला पडता हे; प्रत अश्वको कटु लगता हे मनुष्यको नहीं; नींब मनुष्यको कटु, उंट बकराको कटु नहीं; मधुमाखी अमुक औषधिका रस लेके मध बनासकती हें, मनुष्य नहीं; इत्यादि प्रमाणांतरकी अनेक नजीरें (उदाहरण) हें.

योगी, विद्वान, फिलोसोफर ओर मान्यग्रंथो (सर्वज्ञकृत ग्रंथ, ईश्वरीयग्रंथ,

ईश्वरके दूतके ग्रंथ) के लेखमें मतभेद हे, जेसे के शब्दादिके स्वरुपमें प्रसिद्ध मत-भेद हे; ओर जीव, मोक्ष, पुनर्जन्म ओर मोक्षके साधनमें मतभेद हे.

उपरके उदाहरणोंसे जाना गया होगा कि मनुष्यका प्रत्यक्ष प्रमाण (मन, बुद्धि, इंद्रिय) अपूर्ण हे, अल्पज्ञ हे ओर व्यभिचारी हे अर्थात सर्वांशमें आधार योग्य नहीं. माना के मनुष्य, कितनीक बातोंमें पशुपक्षियोंसे विशेष योग्यतावाला हे तथापि कितनीही बातोंमें इसकी योग्यता (प्रमाणरुप साधन) पशुपक्षिओंसेभी अल्प हे. ओर माना कि किसी योगी आदिका अमुक लेख, परीक्षा ओर उपयोग सिद्ध हो तथापि सर्व नहीं. जो उनमें पूर्ण योग्यता होती तो मतभेद न होता. इस-प्रकार जबके मनुष्यके प्रत्यक्षकी अपूर्णता वा दुर्बलता हे तो फेर उसके व्याप्ति-ज्ञान, तदजन्य अनुमान ओर शब्दादिप्रमाण तो केसे सर्वथा प्रमाणरुप माने-जायँ? इसलिये निर्णयार्थ मध्यस्थकी अपेक्षा होती हे. इष्ट (तत्व, श्रेय, साधन) संबंधमें जिज्ञासुकी बुद्धिमें जो अज्ञान, संशय विपरीतभावना, वा असंभावना दोष हें, उन दोषोंका निवारण होनाही निर्णय कहाता हे; क्योंकि ब्रह्मांडमें जो तत्वपदार्थ हें वे जेसे हें वेसेही थे ओर रहेंगे, तथा उनकी योग्यता (धर्म) भी जेसी थी वेसी हे ओर रहेगी अर्थात वे अमुकके साथ अमुक प्रकारसे संबंधमें आवें तो अमुक परिणाम (रुप-फार्म-उपयोग) हो किंवा अमुक प्रकारसे अमुक स्थितिमें आवेंगे; यह विषयभी अनादि नियमानुसार जेसे होता हे वेसेही हुवा ओर हे ओर होगा. इसलिये इनका ज्ञान होनाही निर्णय हे, नहींके कुछ न्यूनाधिक करना वा होना ॥ अज्ञानवश, हे में नहीं ओर नहीं में हे—भावना होजाना, जिसको जानसकें उसमें अगम्य ओर जिसको नहीं जानसकें उसमें जानसकनेकी भावना होना-इत्यादि विपरित भावना हें. सर्वथा असंभवको मानलेना यह असंभावना हे. यूं वा यूं इसका नाम संशय हे. (शं.) जेसी मगज ओर मन (बुद्धि) की रचना ओर जेसे द्रव्यका संबंध वेसा जान पडेगा (जान पडता हे) तो फेर दोष निवारणत्व क्या? (स.) जो हुवा उसके उपादानकी हद हे, उसको लेके दोषका निवारण होसकता हे.

अकेले प्रत्यक्ष वा अनुमानादिको मध्यस्थ न मान्नेमें ओर अनुभवके साथ ती-नको मान्नेमें जो कारण हे सो उपर कहा ओर उससे अन्यभी कहते हें.

(१) प्रत्यक्ष कहता हे कि पृथ्वि स्थिर, सूर्यचल. सृष्टिनियम (आधेय २६१) कहता हे के उभय गतिमान हें ओर युक्ति विद्याभी एसेही बताती हे. (२) अनु-मान कहता हे कि गृह वगेरे आकर्षण शक्तिके आधार हें, सृष्टिनियम कहता हे

कि नहीं. (अ. १ में वांचा हे ओर तीसरे अध्यायमें वांचोगे). (३) एक शब्द, कहता हे कि सृष्टि अभावजन्य हे, सृष्टिनियम कहता हे कि भावजन्य हे. (४) एक शब्द कहता हे कि असीमविभु, निरवयव ओर परिणामी; सृष्टिनियम ओर युक्ति कहते हें कि अपरिणामी होना चाहिये. (५) प्रत्यक्ष कहता हे के शरीरसे बाहिर जो रुप तिसहीका दर्शन होता हे. सृष्टिनियम ओर परिक्षा कहते हें कि नहीं. किंतु फोटोका दर्शन होता हे. (६) योरोपके फिलोसोफरोंका प्रमाण कहता हे कि शब्दादि विषय बाह्य वस्तु नहीं किंतु मगजका ईम्प्रेशन हे, आर्यप्रजाके फिलोसोफरोंका प्रमाण उनको बाह्य पदार्थोंका गुण मानता हे. (७) अनुमान कहता हे कि परमाणु (अेटम) सावयव, ओर बुद्धि कहती हे कि निरवयव. (८) इंद्रिय कहती हें कि बाह्यरुपका दर्शन होता हे, विद्या ओर परिक्षा कहती हे के नहीं. (९) युक्तिभी बलाबलवाली होती हें,—एक युक्ति कहती हे कि आकाश अनंत होनेसे तदगत जीव वा परमाणुभी अनंत हें; दूसरी कहती हे के आकाशभी जितना हे उतना होनेसे अनंतत्वका अपेक्षासे कथन मात्र हे.

अनुभव उत्तरकालीन होनेसे स्वतःप्रमाण नहीं; प्रमाता, प्रमाण ओर प्रमेयोंके भेद, संबंध ओर असंबंधका ज्ञान प्रमाणोंके आधीन नहीं, किंतु जिसमें स्वतोग्रह हों, सो अनुभव हे; इसलिये वोह प्रेसीडंट (सभापति) होनेके योग्य हे. अनुभवमें भूल न पडे इसलिये अन्य मेंबरों (प्रत्यक्षादि) की अपेक्षा हे, तथाहि अनुभवमें न उतरे वहांतक शांति नहीं होती; अतः अनुभवको सभापति मानागया हे. जिस प्रसंगमें प्रत्यक्षादि ४ मेंसे वा सृष्टिनियमादि ४ मेंसे तीन, एक तरफ होजावें याने दोके साथ अनुभव मिलजावे तो वहां वोह अमुक हदतक मानाजासकता हे तथापि पूर्णता तो चारोंके मिलनेपरही होगी. सब सृष्टिनियमोंका यद्यपि ज्ञान नहीं हे तथापि मनुष्यके इष्टविषयकेलिये जितनेकी जरुरत हे उतने ज्ञातभी हें; इसलिये मध्यस्थ उपयोगी हे. शंका, समाधान, संशय, भ्रांति वा कल्पना, यह सब मनुष्यमंडल तककी हदमें मानेजाते हें, कुदरतकी दृष्टिका फेसला मनुष्य नहीं करसकता. उक्त कथनका परिणाम यह आया कि मध्यस्थ, मानवमंडलकी सीमातकमें शांतिप्रद निर्णय करसकता हे; अतः उपयोगी हे. माना के शंकाकी सीमा नहीं, क्योंकि भविष्यमें अनेक अन्य उत्पन्न होसकेंगी तथापि वेसेही समाधान वास्ते जानलेना चाहिये. इसलिये सब मेंबरोंको साथ लेके फेसला करना चाहिये. विषयको मध्यस्थमें केसे तोलना, उसकी रीति अ. २ के स्वरुपसंभावना ओर सृष्टिनियममें दिखायी हे.

सो मूलग्रंथ विषे २ ओलीयम (१०० फारम) में हे. उसप्रकार तोलनेसें सत्य हाथ लगजाता हे. परंतु याद रहे कि भावना (श्रद्धा, विश्वास) ओर विवेक बुद्धिमें विवादभी होता हे (सू. ५०९ देखो) इसलिये प्रथम मध्यस्थको परिपक्व करलेना चाहिये, अन्यथा इष्ट परिणाम नहीं आनेका हे.

बहुतसे ग्रंथोंमें यह सुनते हैं कि उनका नामका पक्षी सिरपर फिरजाय तो चक्रवर्ती राज्य मिले; पारसपत्थर मिले तो लोहा सूवर्ण होजाय; कर्ता-भोक्ता-परिच्छिन्न जीव, ईश्वर जैसा (सारुप्य) विभु होजाय; इत्यादि वातें प्रमाण, युक्तिके विरुद्ध हैं; अतः परिक्षामें न तुलनेतक मान्य नहीं हैं तथा हानीप्रद होपडनेसे त्याज्य हैं. अलबत्ते जो युक्तियुक्तवाक्य हो तो एसे बालकके शब्दकोभी साक्षीमें लेना चाहिये, तो भावनामान्य सर्वज्ञोंके ग्रंथोंके वेसे वाक्य साक्षीमें क्यों न लियेजावें? लेना चाहिये. परंतु मध्यस्थकी परिक्षामें सिद्ध न हों तो प्रमाणरुपमें ग्रहण नहीं होसकते. प्रस्तुत दोनों मध्यस्थ, अपरोक्ष ओर परोक्ष विषयके निर्णयकी दृष्टिसे जुदा जुदा जानपडते हैं, विचारके देखोगे तो दोनों समान हैं, उपयोगमात्र अंतर हे ॥

जो मन, बुद्धि, वाणीसे पर हे उसमें युक्ति वा तर्कका उपयोग नहीं होसकता, यह स्पष्ट हे. परंतु कोई वस्तु मानना ओर जब उसके निर्णयार्थ शंका वगेरे हों तब यह कहना कि " धी पर होनेसे युक्ति तर्क नहीं " सो कहना काममें नहीं आता. यथा—(१) ईश्वर, दूध स्वयं दही होवे इस समान, स्वयंपरिणामी हे वा इसप्रकार उथलपथल होके आपही निमित्त हे, एसा मानो. (शं.) सावयव होगा. (उ.) नहीं. क्योंकि सर्वशक्तिमान हे, उसकी अचिंत्य शक्तिमें युक्तिवाद वा तर्क नहीं चलसकता; क्योंकि धीसे पर हे. (२) ईश्वर अभावसे भावरुप पदार्थ पेदा करता हे; एसा मानो. (शं.) अभावसे भावरुप होना असंभव. (उ.) वोह सर्वशक्तिमान, यथेच्छा अन्यथा कर्ता हे. मानवबुद्धि, उसकी योग्यताको नहीं जानसकती, क्योंकि वोह धीसे पर हे. (३) असीम विभु ईश्वर, जगतकर्ता हे; क्योंकि इच्छा, ज्ञान, बल ओर क्रिया यह सब उसमें स्वाभाविक हैं. (शं.) यदि सक्रिय हे, इच्छावाला हे तो परिच्छिन्न होगा, उसके विना प्रकृति (परमाणु वगेरे)में मोशन नहीं देसकता. (उ.) उसकी शक्ति अचिंत्य हे—याने विभु हुवे गति देती हे. धी पर होनेसे तुम्हारा तर्क वा युक्ति वहां काममें नहीं आसकते. (४) आकर्षणकरके तमाम ग्रह उपस्थित ओर सनियम गति करते हैं. (शं.) जो आकर्षण, व्यापक तो उसमें गति न होनेसे दूसरेको नियममें नहीं रखसकती ओर जो परिच्छिन्न वा प-

राधीन तो नियामक नहीं होसकती. इ. (उ.) यह एसी शक्ति हे कि धी पर हे, युक्ति तर्कका विषय नहीं हे.

इत्यादि अनेक बातें एसी चल रहीं हें कि विश्वास, हठ वा अज्ञानवश मानतो लेते हें परंतु जब उनके मंतव्यको सृष्टिनियम, युक्ति, तर्क वा स्वरुपसंभावनामें तोलने लगें के "धी पर युक्ति, तर्क नहीं", एसा कहके पीछा छुडाते हें; परंतु यह उत्तर मान्य नहीं होसकता किंतु सृष्टिनियम ओर स्वरुपसंभावनामें तोलके मध्यस्थमें तोलना चाहिये, वहांतक विश्वासमात्रसे मान्ना उचित नहीं हे. यातो यूं कहना चाहिये कि हम एंसा मानते हें, वस्तुतः क्या ओर केसा, सो हम नहीं जानते.

मध्यस्थका संक्षेपमें उदाहरण.— (१) क, चलके वा आकाशी विमानद्वारा परगामसे आया; तब कोई कहे कि नहीं. तहां आना प्रत्यक्ष, गतिसे गमन यह व्याप्ति प्रत्यक्ष, उससे उसके परोक्षगति–गमनका अनुमान, विना गतिके देश कटता तो यहांभी देशके विना होता यह युक्ति, अनुभवमेंभी एसाही आता हे कि गति करके आया हे. (२) गतिके विना देश नहीं कटता यह सृष्टिनियम, बुद्धिमें एसी व्याप्ति हे, इंद्रियोंसे एसाही जानाजाता हे ओर अनुभवभी स्वीकारता हे. (३) सब परिच्छिन्न (परिच्छिन्न ब्रह्मांड) गतिवान हें एसा मानें, तहां परिच्छिन्नगतिवान, यह प्रत्यक्ष व्याप्ति हे, इससे परोक्ष परिच्छिनोंमें गतिका अनुमान हे; युक्तिभी यही कहती हे—अर्थात यदि गतिमान न हों तो दृश्यकार्यभी न हों; मानसिकगतिद्वारा अनुभवभी उनके साथ शामिल होता हे. (४) परिच्छिनगतिमानही, यह सृष्टिनियम हे (आगे वांचोगे), इससे ब्रह्मांडगत परोक्ष परिच्छिन्नोंमें गतिवान होनेका स्वीकार हे; इसबातको बुद्धि, दृष्टव्याप्तिसे मानती हे; इंद्रियोंसेभी एसाही जानाजाता हे; ओर अनुभवमेंभी एसाही आता हे. तथा—

(५) जीव, अणु वा विभु हे ओर कर्ता–भोक्ता हे, एसा कहें वा मानें; तहां विभुमें गतिका अभाव हे यह सृष्टिनियम कहता हे; अतः कर्ता नहीं; दुःख-सुख अवस्था हें परंतु अणु वा विभुकी अवस्था नहीं होती, यह सृष्टिनियम कहता हे; ओर बुद्धिभी कहती हे. मन वा इंद्रियोंद्वारा एसा नहीं जानपडा कि दुःखसुख कोई नाशवान अवस्था नहीं हे; अनुभवमेंभी दुःखसुखावस्था विशेष हें एसा ग्रहण होता हे; अतः कर्ता भोक्ता जीव, अणु वा विभु हो, एसे मध्यस्थ नहीं कहता.

(६) जगतकर्ता कोई सर्वशक्तिमान, असीम (सर्वव्यापक) होना चाहिये, एसा कहें वा मानें; वहां–कार्य, उपादान ओर निमित्तके विना नहीं होता,

यह प्रत्यक्षव्याप्ति तथा सृष्टिनियम हे, उससे जगतके कर्तृत्वका अनुमान होता हे; बीजोंकी ओर शरीरोंकी अद्भुत रचना कोई चतुरा शक्तिके विना नहीं होसकती, यह बुद्धि कहती हे; युक्तिसेभी यही जानपडता हे; क्यांकि जड बीज वगेरेमें अपने आप गति करनेकी ओर दूसरे परमाणु खेंचके अपने अनुरूप करनेकी याने उत्पादन-वर्धन करनेकी योग्यता स्वतः सिद्ध नहीं होती किंतु किसी अगम्य शक्तिद्वारा प्रयोजित होनी चाहिये; बीजोंको अनादि मानें तोभी व्यवस्थापककी अपेक्षा हे; यह सब अनुभवभी स्विकारता हे; परंतु व्यापकमें गति होना यह बात सृष्टिनियम, अनुमान, युक्ति, प्रत्यक्ष ओर अनुभव नहीं स्वीकारते; केवल भावनामात्र एसा मानलेती हे, याने असंस्कृत-अविवेकी बुद्धि उसे स्वीकारलेती हे; इसलिये मध्यस्थरुपी सभा एक मेंबरके साथ नहीं मिलनेसे जगतकर्ता विभु एसा, नहीं मानाजासकता. ओर एसाही दोष परिच्छिन्नमें आता हे याने केवल भावना तो यह कहती हे के सर्वशक्तिमान होनेसे परिच्छिन्नभी जगतकर्ता क्यों न हो? परंतु बाकी तमाम मेंबर ओर प्रधान जो अनुभव सो, इस बातसे इनकारी हें; इसलिये परिणाम यह आता हे कि जगतका (उपादान ओर) निमित्त कारण तो होना चाहिये परंतु कुछ ओर भेद हे (विभु परिच्छिन्न-उभयविशिष्ट कोई निमित्तकारण होना चाहिये); इसका निदान बस. उत्तरार्द्धमें हे ॥ इत्यादि रीतिसे मध्यस्थका यथायोग्य अन्यत्रभी उपयोग होता हे. परंतु पक्षपात, आग्रह ओर अंधश्रद्धाभावनाको छोडके तटस्थ शोधक होके यथायोग्य उपयोग कर्तव्य हे.

उपरोक्त मध्यस्थाधिकरणका विशेष विस्तार मूल ओर बस. में हे.

ध्यानमें रखना चाहिये कि मत, थीयरी (पद्धति) ओर प्रयौगिक यह ३ प्रकार हें. उनमेंसे बुद्धि विश्वाससे मानलेना मत हे, उसको किसी पद्धतिसे साबित करना थीयरी हे ओर उसे प्रयोगसे बताना प्रयौगिक हे. प्रत्यक्ष वा प्राकृतक विषयमें प्रयोग काममें आता हे, जेसे के केमिस्टरी--साईसकी शैली हे. परोक्ष--आत्मा वगेरेके प्रयोगमें योग काममें आता हे. पद्धतिमें न्याय ओर सृष्टिनियमोंका उपयोग होता हे. मतमें अपना वा परका विश्वास होता हे. मध्यस्थद्वारा जब फेसला करें तो जीवादि प्रसंगमे योगज अनुभव प्रयोग हे. उससे थीयरी निकालना बुद्धिका काम हे. ओर केवल मानलेना, इसका साथी मध्यस्थ नहीं होता ॥

उपरोक्त प्रमाण प्रसंगगत (सू. ७७ से १२६ तक) यथामनेंद्रिय•प्रत्यक्ष, व्याप्ति, प्रमा ओर सृष्टिनियम इतनी बातोंका समावेश सृष्टिनियममें होजाता हे;

(तमाम नियम वांचनेपर जानलोगे) ओर शेषबातें जीवनियमके अंतरगत हैं, एसा जान्ना चाहिये ॥ १२६ ॥

॥ प्रमाण प्रकरण समाप्त हुवा ॥

सृष्टिनियम प्रकरण ३.

यहांतक उपोदघात ओर प्रमाण यह दो प्रकरण कहे. अब आगे सू. १२७से ४६८ तक उद्देशित विषय याने सृष्टिनियम लिखेंगे. जिस सूत्र-वाक्यके अंतमें ' ही ' पद हो उसे मुख्यसृष्टिनियमका बोधक जान्ना चाहिये. ही, व्यर्थ पद हे, एसा खयाल नहीं करलेना; किंतु निश्चयार्थमें अर्थ करलेना उचित हे. मुख्यनियमोंके अंतर-गत जो हें वे उसीका रुपांतर वा उसकी परंपरासे शाखा हें, सुगमतासे बोध हो इसलिये एसी शैली ली हे, एसा उपर कहा हे; सो यादमें रहे.[1]

सब सफलही ॥ १२७ (सफल) ॥ **निष्फलत्वके अभावसे** ॥ १२८ ॥

अर्थ—द्रव्य, अद्रव्य, योग्यता, स्वरुप (तत्त्व), अतत्व ओर देशकालादि जितनी वस्तु इस ब्रह्मांडमें हें, वे सब सफलही हें याने उपयोगी हें--निकम्मी नहीं रहती. सबका यूस होता रहता हे, एसा नैसर्गिकनियम हे ॥ १२७ ॥ क्योंकि निष्फलत्वका अभाव हे अर्थात जो निकम्मी होती तो होही क्यों? ॥ १२८ ॥

वि.–(शं.) एसी क्यों न हो ? क्यों न कहीं पडी हो ? सर्वज्ञके कहे विना इस अभावप्रमाणका केसे स्वीकार हो ? (उ.) निष्फलकी सिद्धिही नहीं करसकते; क्योंकि मुख्य द्रव्यकी सिद्धि, उसकी योग्यता (गुण, कर्म, वा शक्ति) के उपयोग-सेही होसकती हे. इसवास्ते जो हे वोह उपयोगमें आती हे. निकम्मी न रही, न हे ओर न रहेगी. अमुक क्षणके वास्ते असंसर्गी रहना यह दूसरी बात हे. परंतु जो हमेशेकेलिये अनुपयोगी रहे तो सृष्टिकाही उच्छेद होजाय जोके असंभव हे. ओर निष्फलत्वमें कोई प्रमाणभी नहीं हे. दृश्यव्याप्ति निष्फलत्वका अभावही बता रही हे. (शं.) दुष्ट कर्म वा मलादि अनुपयोगी हें. (उ.) वेभी कोई न कोई रुपमें सफल देखते हें ॥ व्यावहारिक सफलत्वकी व्याप्ति, मूलतत्व वा परोक्षतत्वोंका युक्ति पूर्वक सफलत्व बताती हे. यदि मुक्ति हे तो मुक्त किसी उपयोगमें आवेगा अर्थात दूसरेके संबंधसे उपयोग होगा. वा तो आवृत्ति होके उपयोग होगा. मिसरमें जो मोमीयायी हजारों वर्षसे पडी हें उनका जुत्थ पूर्वमें जुदाजुदा रुपसे उपयोगमें था

[1] अधिकरण ओर गुणोंका नाम अनुक्रमणिकासे ज्ञातव्य हे.

ओर भविष्यमें होगा. यदि अब हे तो वोहभी अनुपयोगी नहीं, किसी न किसी उपयोगमें आया होगा ओर आता रहेगा ॥ १२८ ॥

स्वरुपकी संभावना स्वरुपसंभावनामेंसे ही ॥ १२९ (स्वरुप) ॥ **असंभवमें नहीं ही** ॥ १३० (त्याग) ॥ **यथा द्रव्य गुणादिकास्वरुप** ॥ १३१ ॥ **न अन्यथा** ॥ १३२ (अस्वरुप) ॥ **अदर्शन ओर असंभव होनेसे** ॥१३३॥ **स्वरुप स्वरुपजसंज्ञासे भिन्न उभयकी** ॥ १३४ (स्वरुपविवेक) ॥

अर्थ—जितने तत्व ओर अतत्व स्वरुप हें उनके स्वरुपकी संभावना उपरोक्त (सू. ३) द्रव्यादि १३ संज्ञामें होसकती हे अर्थात एसे विशेषणवाले होसकते हें ॥ १२९ ॥ जो असंभवसंज्ञावाले विशेषण हें वेसे विशेषणवाले कोई मूलस्वरुप अथवा स्वरुपज (अतत्व) नहीं होसकते ॥ १३० ॥ जेसे के प्रसिद्धिमें द्रव्य गुणादिके स्वरुप देखते हें वे संभावनासंज्ञाके विषय हें. असंभावनासंज्ञाके नहीं जानपडते ॥१३१॥ उपर जो असंभवसंज्ञाको छोडके संभावनामें स्वरुपकी संभावना कही हे उससे इतर प्रकारके स्वरुपकी कल्पना नहीं करना चाहिये वा न मान्ना चाहिये ॥ १३२ ॥ क्योंकि आजतक मानवमंडलने उनसे इतरप्रकार न देखा हे ओर न सृष्टिनियमसे सिद्ध हुवा हे अर्थात असंभव जानपडता हे ॥ १३३ ॥ उपरोक्त द्रव्यादि १३ संज्ञा (स्वरुपसंभावनासंज्ञा)में जो मूलस्वरुप ओर स्वरुपजकेलिये संज्ञा हें उनको छोडके शेषसंज्ञा (विशेषण) स्वरुप ओर स्वरुपज—उभयकेलिये लगती हें, एसे जान्ना चाहिये ॥ १३४ ॥

विं.—संज्ञाप्रकरणमेंसे संभावना ओर असंभवसंज्ञाके जाने विना इन ६ सूत्रोंका आशय समझमें आना कठिन हे, इसलिये उन संज्ञाको लिखते हें. इस प्रसंगमें यह याद रहे कि द्रव्य योग्यतादिमें दर्शनकारोंमें मतभेद हे, ओर मूलस्वरुप

---

१३२ यदि भविष्यमें स्वरुपसंभावनासे इतरप्रकारका पदार्थ मालूम पडे वा अन्य ग्रहोंमें अन्य प्रकारका हो तो सूत्रोक्त कथन रद ठेरेगा, एसी शंकाका यह समाधान हे कि यह सब कुछ मनुष्यमंडलके ज्ञानकी सीमामें कथन हे, कुदरतकी दृष्टिसे नहीं; तथा जो मानवमंडलमें भविष्यमें अन्य न हो तो आप संशयात्मक रहनेसे व्यर्थ हेरान रहोगे. ओर जब आपको नवीन एसा जानपडे तो उसानुसार त्याग ग्रहण करलेना; उसमें हमको आग्रह नहीं हे. टूटे हुये ताराके पात हुये भागके दर्शनसे तारोंमें वर्तमानकी व्याप्ति ज्ञात होती हे तथापि जब अन्यप्रकार निकले तो वेसा मानलेना. अज्ञ ओर अज्ञात (सू. ४७७ । ६२८) देखिये.

अविषय हे; इसलिये तेराहीसंज्ञामें दृष्टांत, उदाहरण उनकी दृष्टिसे ओर स्थूल दृष्टिसे दिये हें; ताके पदार्थनिर्णयकीशैली समझमें आजावे. ओर द्रव्यादि १३ संज्ञामें पुनरुक्ति देख पडेगी, उसका कारण यह हे कि जिज्ञासुको सुगमता हो, ओर कितनीक पुनरुक्ति पक्षकारोंकी दृष्टिसेभी की गई हें; क्योंकि वे उनके लक्षण जुदा जुदा प्रकारके करते हें (जेसे के सत्, भाव, नित्यके लक्षणमें मतभेद हे). देशकाल वस्तु हें वा नहीं, यदि हें तो केसे, इत्यादि निर्णय-परिक्षा करनेके समय जहां संभावनासंज्ञामें देशकालका नाम लिया हे किंवा इस अध्यायके सूत्रोंमें कोई रुपमें उनका नाम लिया हे उस संज्ञा वा उस सूत्रपर आधार न रखके अन्य विशेषणोंसे निर्णय, परिक्षा कर्तव्य होती हे ॥ १३४ ॥

स्वरुपसंभावना ओर असंभावनाका वर्णन.—

द्रव्य ओर योग्यताकी द्रव्यादिसंज्ञा ॥ १ ॥ गुण १, कर्म २, स्वभाव ३, शक्ति ४, प्रभाव ५, अवस्था ६, धर्म ७ ओर संबंध ८, इन अष्टकी (योग्यता वा) गुणादि (संज्ञा). (इनकी संख्याका यथा प्रसंगभी उपयोग होता हे) ॥ २ ॥ गुणादिवालेकी गुण्यादि (संज्ञा) ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसमें कोई प्रकारकी योग्यता (गुण वा शक्ति वा कर्म वा उभय इत्यादि) हो उसका नाम द्रव्य. जेसे क्रिया रहित, अवकाशकी योग्यतावाला आकाश, गुण ओर क्रियाकी योग्यतावाला मूलपरमाणु, यह उभय नित्य द्रव्य हें. मगज ओर जल, गुणकर्म योग्यतावाले अनित्य द्रव्य हें। द्रव्य दो प्रकारके देखते हें–(१) कारणद्रव्य (परमाणु, प्रकृति उपादान कारणरुप ओर फोर्स=ईश्वर निमित्तकारणरुप). (२) कार्यद्रव्य (जेसे दहीका उपादान दूध, बर्फका उपादान जल, कुंडलका उपादान कनक ओर घटका निमित्तकारण कुम्हार यह कार्यद्रव्य हें). इसीप्रकार दृश्य-विजली, गरमी, प्रकाश, पृथ्वि, जंल, हवा वगेरे कार्यद्रव्य कहाते हें ॥ **योग्यता** अर्थात उपयोगमें आने वा उपयोगमें होनेकी लियाकत. यथा गुणादि योग्यता, नित्य द्रव्योंमें नित्य ओर अनित्योंमें अनित्य होती हे--अर्थात नित्योंके समूहकीही होती हे, विभाग पोनपर मूलमें विभक्त होजाती हे ॥१॥ (जिसमें योग्यता न हो उसकी अप्रसिद्धि हे वा असंगसंज्ञा हे[१]॥०॥). द्रव्यके आश्रित द्रव्यकी वोह योग्यता कि जो संयोगका कारण न हो उसे गुण १ कहते हें ॥ ओर जो योग्यता गति ओर संयोग होनेमें कारण हो उसे शक्ति ४ कहते हें ॥ द्रव्यकी समकालीन (देश वा वस्तुके

[१] इस अप्रसिद्ध संज्ञाकी कल्पना पक्षकारोंकी दृष्टिसे कथन मात्र हे.

साथ) स्पर्शास्पर्श अवस्था वा वेसे होनेकी योग्यताका नाम **कर्म** हे २ ॥ स्वरुप ओर योक्ताके समूहका अथवा अभ्यास होजानेका नाम **स्वभाव** हे ३॥कार्यद्रव्यका पर संबंधसे जो परिणाम (अवस्था) विशेष हो उसका नाम **प्रभाव** हे (इसे ईम्प्रेशनभी कहते हें) ५ ॥ देशका बदल होना वा अमुक काल विशिष्ट होना इन उभय स्थितिकोभी व्यवहारमें अवस्था कहते हें. ओर कार्यद्रव्यका परका संबंध हुये वा पर संबंध रहित रुपांतरको पाना वा परिणामको पाना इसका नामभी **अवस्था** (कंडिशन वा फॉरम) हे. यही खरी **अवस्था** हे ६. दूसरे द्रव्योंसे विलक्षण योग्यता (विशेष) वा दूसरेके समान योग्यता (सामान्य)का नाम व्यवहारमें क्रमशः विशेष वा सामान्य[१] धर्म हे ७. दोकी निसबत वा सहचर्य होनेका नाम संबंध हे ८. इन अष्टकी गुणादि संज्ञा हे. ओर अर्थापत्तिसे उनका 'द्रव्यकी योग्यता' इस पदमें समावेश होनेसे इनकी योग्यता संज्ञाभी हे. इनका उपयोग वा गणना यथा प्रसंग कर्तव्य होती हे.

उदाहरण.—अग्नि कोई एक द्रव्य वा व्यक्ति हे उसका स्वरुप गरमी हे. (पक्षकारोंकी दृष्टिसे उसके विभाग लिखते हें). उसका रूप (तैज) गुण. स्पर्शास्पर्श रुपावस्था अर्थात गति--कर्म. स्वरुपका उपरकी तरफ जाना स्वभाव (उपरका अर्थ यथा प्रसंग लेना). अग्निके संबंधसे समूहका प्रथक्करण होजाए एसी अग्निमें योग्यता हे जिसे दाहशक्ति कहते हें. अनुद्भुद् वा उद्भुद् प्रकाश होना वा उद्भुद् वा अनुद्भुद् स्पर्श होना इत्यादि उसकी अवस्था हें. लोह ओर शरीरादिमें संयोग संबंध हे. उषणत्व अन्यमें नहीं होता इसलिये व्यवहारमें अग्नित्व वा उषणत्वका नाम विशेष धर्म अर्थात विलक्षणपना हे. किंवा अन्य द्रव्योंसमान कर्म वगेरे दूसरी योग्यता इसमें हें इसलिये इस साधर्म्यका नाम व्यवहारमें सामान्य धर्म (जाति) हे. ओर अस्तित्व विशिष्ट होनेसे उसमें सामान्य जाती (अस्तित्व) हे, एसा मानते हें.

प्रभाव वा भाव अर्थात **संस्कार--ईमप्रेशन—ईफेक्ट, फीलिंग--असर** वा **परिणाम वा अवस्था विशेष.** । पदार्थके संबंधसे मनका तदाकार होजाना; ओर फेर पदार्थविना ज्ञाताज्ञात वेसा रुप होजाना **संस्कार.** पदार्थ संबंधसे मगजमें ज्ञात अज्ञात रुपसे जो असर अर्थात मगजका सूक्ष्म परिणाम विशेष होना (पदार्थरुप होना) **ईम्प्रेशन.** पदार्थके संबंधसे हरकोई पदार्थमें जो असर याने परिणामि विशेष

[१] पदार्थोंके अस्तित्वका नामभी सामान्य (जाति--सामान्य-प्रत्यय) हे.

हुवा उसका नाम इफेक्ट (यथा शराबसे बहकना, दवाइसे दस्त होना). पदार्थके संबंधसे मगज वा चित्तमें जो असर याने मन वा मगजका स्थूल परिणामविशेष उसका नाम फीलिंग (लगनी, यथा दुख-सुख, प्रेम-राग-द्वेष). असर, परिणाम ओर अवस्था यह उपरके चारोंके अर्थमें लगसकते हें. भाषा ओर रुढीके ज्ञानसे जाना जायगा कि संस्कारादि शब्द, किस प्रसंगमें लेना. यथा ईम्पेशन, सूक्ष्म मगजके प्रसंगमें ओर ईफेक्ट स्थूल प्रसंगमेंभी लियाजाता हे.

दोका संयोग वा तादात्म्य (अभेदरुपसे ओत प्रोत रहना), समवाय (नित्य साथ रहना वा समूहमें होना) वा व्याप्य व्यापकभावसे साथ रहना, इन स्थिति वा योग्यताका नाम संबंध हे. जेसे के आकाश ओर परमाणुका संबंध हे. सब संबंधोंका उदाहरण हे. (यहां बस. सू. ४३६ देखो).

गुण, शक्ति स्वरुपतः कोई वस्तु हें वा नहीं? यदि हें तो क्या ओर केसी, तथा जिसे द्रव्य कहते हें सोही गुण वा शक्ति वा जिसे गुण वा शक्ति कहते हें सोही द्रव्य; इत्यादि विषयमें मतभेद हे; आजतक ठीकठीक निश्चय नहीं हुवा हे. परमाणु वा मूलतत्वोंमें गुणशक्ति न मानें तो कार्य न बने. ओर मानें तो गुणी वा शक्तिवानमें वे बाहिरभीतर कहां हें? उनका परिमाण क्या हे? वे जड हें वा चेतन हें? इत्यादि सवालोंका उत्तर नहीं मिलता; इसलिये उनके वास्ते अनिर्वचनीय शब्द कहाजाता हे. गुण निकालो तो गुणी नहीं रहता, गुणी निकालो तो गुण नहीं रहता अर्थात साथसाथमें अनिर्वचनीय (तादात्म्य, समवाय, व्यापकव्याप्य वा संयोग वा भेदाभेद) संबंधसे रहते हें, एसा मानना पडता हे.

औक्षजन, हाईड्रोजन (वायु), अग्नि, पृथ्वी मिलके दृश्य जल—कार्य द्रव्य हे. उसका शीतगुण हे. देशबदल होना कर्म (गति). नीचेको गमन वा सीधीसपाटीमें होना उसका स्वभाव हे. जलत्व (द्रवत्व) उसका धर्म हे. पिंड बँधजाना उसकी शक्तिसे हे. शीतादिका जलके साथ तादात्म्यादि संबंध हे. किंवा शीतादि उसका स्वरुप हे वा अवस्था वा योग्यता हे, जो जलको छोडके अतिरिक्त नहीं जाती.

नोट.—द्रव्य वा गुण्यादिमें जो उपरोक्त गुणादि कहाते हें उनमेंसे कर्म (गति), स्वभाव, प्रभाव, अवस्था (स्थिति), धर्म (सामान्यप्रत्य वा अस्तित्व वा जाति वा समानत्व) ओर संबंध यह ६ स्वरुपतः कोई वस्तु नहीं हें किंतु द्रव्योंकी विशेषावस्थाओंका नाम हे ओर धर्म अमुक प्रकारकी संज्ञा हे. अतः प्रसं-

गोंमें इनका यथायोग्य उपयोग करना चाहिये. ओर द्रव्योंमें गुण तथा शक्ति यह दो विवादित वा अनिश्चित विषय हें, इनका विस्तार बसप. में किया हे; अतः इन उभयका उपयोग स्वरुपाप्रवेश (३८२)के निर्णय पीछे यथोचित करने योग्य हे. हमने यहां जो ८ संज्ञा कहीं हें सो तो पक्षकारोंकी दृष्टि लेके लिखीं हें, वस्तुतः गुण ओर शक्ति यह २ पदही बस थे.

उपर जो द्रव्य, योग्यता–गुणादिके संबंधमें उदाहरण दिये हें वे शोधकको निर्णय करनेवाली शैलीकी रीति ज्ञात हो, इस द्रष्टिसे दिये हें, वस्तुतः वेसाही हे एसा निश्चय नहीं करलेना चाहिये; क्योंकि (१) इस विषे दर्शनकार, शोधकोंमें मतभेद हे. (२) जिसको योग्यता कहा हे उसको कोई, द्रव्य ओर जिसको द्रव्य कहा हे उसको कोई, योग्यता वा कोई अर्थशून्य मानता हे. (३) कोई योग्यता (गुणादि) वस्तुही नहीं, एसा कहता हे. जेसे के अग्निमें दाहशक्ति नहीं, किंतु वोह दूसरी तरफ जाना चाहती हे, इसलिये पदार्थोंको हटना पडता हे; इस स्थितिका नाम दाहशक्ति हे. इत्यादि. (४) कोई योग्यतादि विशिष्टको सावयव–समूह–कंपोंड कहता हे. (५) कोई कहता हे के यह सब एकही के रुपांतर हें, इसलिये द्रव्य ओर योग्यताका भेद कहना वा मान्ना भूल हे. (६) कोई यूं कहता हे कि द्रव्य (गुण्यादि) मेंसे योग्यता (गुणादि) को किंवा गुणादिमेंसे गुणी आदिको निकालें तो शेष कुछ नहीं रहता, एसा कुछ हे; उपयोग भेद ओर व्यवहार दृष्टिसे उनकी दो संज्ञा कहीजाती हें, वस्तुतः एक स्वरुप हे. (७) पदार्थोंमें शक्ति (वा गुण) क्या हे, जिससे उपयोग होता हे; इसको कोईभी न जानसका; इसलिये उन विषे कुछ कहनेसे चुप रहनाही ठीक हे. (८) इत्यादि मतभेद हें. (यहां बस. ११७से १३३ तक ओर २२९ । ४३७ । का व्याख्यानभी देखना ठीक होगा.) ॥ २ ॥[१]

गुणी, गतिवान, स्वभाववान, शक्तिमान, प्रभाववान, अवस्थावान, धर्मी ओर संबंधी एसे योग्यतावालेकी (उपरोक्त) **गुण्यादि** (संज्ञा). उसमें सब वा अमुक योग्यता हो, एसा होना चाहिये. जेसे के अग्नि आदिक हें ॥ ३ ॥

अणु १, विभु २ ओर (अजन्य ३, जन्य ४, सजातीय ५ तथा वि-

[१] (नोट) इस ग्रंथ विषे सूत्रोंमें जहां गुणादि वा योग्यता पद आवे वहां कहीं आठोंका ग्रहण नहींभी होता अर्थात इनमेंसे यथा प्रसंग लियाजाता हे. इसलिये यथायोग्य पदका प्रयोग किया हे. गुणादिगत जो नोट हे वोहभी यादमें लेनी चाहिये.

जातीय ६) मध्यम इन ३ की परिमाण [संज्ञा] ॥ ४ ॥

अर्थ—छोटेसे छोटा जो अखंड, निरवयव सो परमाणु (किसीकी परिभाषामें अणु) उसका अणुपरिमाण (माप). ओर अखंड, निरवयव, एकस्वरुप जो बडेसे बडा अर्थात सबसे महत उसको विभु कहते हें; उसका महत वा विभु परिमाण. इन उभयके बीचमें जिसका रुप हो याने जिससे छोटाभी हो ओर बडाभी हो, उसका मध्यमपरिमाण कहाता हे. सो अजन्य ओर तत्वजन्य तथा सजातीय ओर विजातीयभी मानेजाते हें. **उदाहरण.**—

[१] परमाणु. [२] आकाश. [३] अजन्य मध्यम अप्रसिद्ध हे. अर्थात जो निरवयव हो, संकोच विकास रहित समरुप रहता हो, एसा मध्यम तत्व क्यों न हो ? संभव हे. जो मध्यम होनेसे टुकडे होना मानें तो आकाश ओर ईश्वरके टुकडे होनाभी मानसकते हे; तथापि एसा मध्यमतत्व अभीतक जाननेमें नहीं आया हे. [४] सूर्य, अंतःकरणादि. [५] प्रकाश. [६] गंधककी गोली, पीनेका पानी ॥ मध्यम पदार्थ, रसायणीयसंयोग और भौतिकसंयोगवाले होते हें. रसायणीय संयोग, विजातीयोंकाही होता हे; सजातीयोंका नहीं. भौतिक उभयका होता हे. जल रसायणीयसंयोगजन्य मध्यम [कंपोंड] रुप हे. ओर सुवर्णका गोला सजातीय भौतिकसंयोगजन्य मध्यम [कोहीजन] रुप हे. शरबत विजातीय संयोगजन्य मध्यम (मिक्श्चर) रुप हे. वस्तुतः सुवर्ण, गंधकादिके परमाणु [अणु-अवयव] कंपोंडरुप हें. बस. देखो.

अजन्य मध्यम अलचकी वा लचकी ओर जन्य मध्यम अलचकी अप्रसिद्ध हे. यदि जीव अलचकी मध्यम हो तो कीडीवाला हाथीके ओर हाथीवाला कीडीके शरीरमें नहीं जासकता. ओर जड अलचकी, परमाणुवत् अनेक कार्य होनेमें उपयोगी न होगा. [सू. १७२, १७३ देखो].

साकार १, निराकार २, मूर्त्त ३, अमूर्त्त ४, परिच्छिन्न ५, अपरिच्छिन्न ६, सावयव ७, निरवयव ८, मिश्रित ९, अमिश्रित १०, सखंड ११, अखंड १२, सगुरुत्व १३, गुरुत्व १४, रंगवान १५, रंगरहित १६, व्यक्त १७, अव्यक्त १८, अपरोक्ष १९, परोक्ष २०, दृष्ट २१, अदृष्ट २२, विरोधि २३, अविरोधि २४, इन चोबीसकी आकारादि (संज्ञा) ॥ ५ ॥

अर्थ—(१, ३, ५) जिसके इधर उधर कुछ (देश वा वस्तु) हो (यथा परमाणु, घट). (२, ४, ६) जिसके इधर उधर कुछ (देश वा वस्तु) न हो

(यथा आकाश). (७, ९, ११) जो संकोचविकास (लचक) वाला हो (यथा शरीर). (८, १०, १२) जिसमें संकोचविकास (लचक) न हो याने अलचकी हो (यथा परमाणु, आकाश). (१३) जिसमें वजन हो (यथा परमाणु, घटादि). (१४) जिसमें वजन न हो (यथा आकाश). (१५) शरीर, वृक्षादि. (१६) रंगके परमाणु, आकाश. (१७, २१) स्थूलरुप गोचर–प्रमेय (शरीर सूर्यादि). (१८, २२) सूक्ष्म, अदृष्ट, अप्रमेय (परमाणु). (१९) जो विषय हों (दुःखादि). (३०) जो विषय न हो (शक्ति आदि) ॥

भाषा ओर रुढीवश एक अर्थ वास्ते अनेक पद लिखने पडे हें.+ अमूर्त-देशको रोके वा न रोके, मन–इंद्रियका विषय हो वा न हो, ओर वजन रहित हो वा न हो परंतु साकार नहीं होसकता. ओर एसेही मूर्त, निराकार नहीं होसकता. देशसे १, कालसे २, वस्तुसे ३, ओर संख्यासे ४, परिच्छिन्न (सीमावाला) इसीप्रकार देश, काल ओर वस्तुसे अपरिच्छिन्न (असीम) यह ७ परिच्छिेद ओर अपरिच्छिेद भाव होते हें. संख्यासे अपरिच्छिन्न कोईभी नहीं होसकता.

चिद् १, जड २, अचिद्[१] ३, अजड[१] ४, चल ५, अचल ६, अनाधाराधार ७, आधेय ८, व्यापक ९, व्याप्य १०, संबंधी ११, अपनेमें असंयोगी १२, अपनेमें संयोगी १३, अजन्योपादान १४, अजन्य निमित्त १५, मूल १६, जन्य १७, उपादान १८, उपादेय १९, न उपादान २०, न उपादेय २१, परिणामी २२, परिणाम २३, न परिणामी २४, न परिणाम २५, इन २५ की चिदादि (संज्ञा) ॥ ६ ॥

अर्थ—(१) जो ज्ञान स्वरुप वा ज्ञाता, जिसके सब ज्ञेय वा जो किसीका ज्ञेय नहीं सो. (२) जो दूसरेके हलाये विना न हले ओर ठेराये विना न ठेरे ओर ज्ञानशून्य (यथा परमाणु, घटादि). (३ । ४) जड ओर चिद्भाव रहित, यथा दृश्यका मूल. **बस.** सू. २६८ का विवेचन वांचो. (५) सक्रिय (परमाणु, पृथ्वी). (६) अक्रिय (आकाश). (७) सर्व परिच्छिन्न विश्वका स्वयंभू मुख्याधार. (सू. २६१, २६८ देखो). पृथ्वी, सूर्य वगेरे पराधेय होके आधार हें. (८) पृथ्वी वगेरे ग्रह. (९) सर्वगत (यथा आकाश). (१०) आका-

+ सांख्यी प्रकृतिके अणु ३ गुण (३ अवयव) वाले. परंतु अखंड–जुदा न हों. [१] चिद् नहीं परंतु चेतन जेसा, जड नहीं परंतु जड जेसा. (यह संज्ञा, कल्पनामात्र हे).

शमें जेसे परमाणु, घटादि. (११) जिनका संबंध हो वोह संबंधी. यथा दो परमाणुका संयोगसंबंध हो वहां उभय परस्परके संबंधी हें. संयोगसे इतर अन्य साक्षात संबंध सिद्ध नहीं होता. (बस. ४३६ देखो). संसारके तमाम पदार्थोंमें परस्परमें साक्षात वा परंपरासे कोई न कोई संबंध अवश्य होता हे. (१२) तत्व पदार्थका अपनेमें संयोग नहीं होता. यथा आकाशका वा परमाणुका अपने आपमें संयोग नहीं हे. (१३) अतत्व मध्यमका अपनेमें अपना संयोग होसकता हे (यथा शरीरके अंगोंका). (१४) परमाणुओंका समूह. क्योंकि परमाणु अजन्य हें उनसे घटादि बनते हें. जिसमेंसे बने उसका नाम उपादान हे. जो बने सो उपादेय. यथा मृतिकापिंड उपादान; घट उपादेय. (१५) देशकाल न हों तो घटादि न बनसकें; इसलिये देशकाल अजन्य निमित्त हें. (१६) यथा परमाणु, सू. १३५ देखो. (१७) जो न होके समूहसे बने वा पेदा हो (यथा घट सूर्यादि). (१८) यथा घटका मृतपिंड, जन्यउपादान हे. (१९) घट उपादेय हे. (२०, २१) यथा आकाश. (२२, २३) उपादानकी समसत्तावाला उससे अन्यथारुप सो परिणाम. जिसका अन्यथारुप सो परिणामी (यथा दूध परिणामी, दही परिणाम. जल परिणामी, बरफ परिणाम). परंतु मूल तत्व परमाणुओंका परिणाम नहीं होता किंतु पुंज समूहकाही होता हे. तत्वोंका संयोग होता हे. (२४, २५) यथा आकाश, परमाणु ॥ ६ ॥

स्वरुपसे अनादि १, सादि २, स्वरुपसे अनादिअनंत ३, सांत ४, अनादि अनंत ५, सादिसांत ६, देशसे अनंत ७, देशसे सांत ८, कालसे अनंत ९, कालसे सांत १०, संख्यासे सांत ११, प्रवाहसे अनादिअनंत १२, इन बाराकी कालादि (संज्ञा) ॥ ७ ॥

अर्थ—[१] आरंभ रहित अनुत्पन्न [परमाणु]. [२] आरंभवाला उत्पन्न [सूर्य, घटादि]. [३] उत्पति-नाश रहित नित्य [मूल उपादान प्रकृति]. [४] नाशवान वा असीम [घटादि]. [५] नित्य [३ वत्]. [६] उत्पतिनाशवाला [सूर्यादि]. [७] असीम [मूलाधार]. [८] ससीम [परमाणु, मन, घटादि]. [९] अविनाशी [मूलाधार वा परमाणु]. [१०] नाशवंत [शरीरादि]. [११] गिनतीमें जितने हें उतनेही हमेशेसे हें [यथा परमाणु]. [१२] परमाणुओंके संयोग-वियोग [गति] का अनादि कालसे प्रवाह चलाआता हे ओर वेसेही रहेगा; इसलिये संयोग वियोग, यह प्रवाहसे नित्य हें. संयोग विभाग उत्पन्न ओर नाश

होते हें, इसलिये स्वरुपसे नित्य नहीं किंतु प्रवाहसे होते रहते हें. [नं. ६ तकके पद व्यर्थ हें; परंतु पक्षकारोंकी दृष्टिसे रखने पडे हें.]. ॥ ७ ॥

भाव १, अभाव २, सत् ३, असत् ४, नित्य ५, अनित्य ६, सभेद ७, अभेद ८, एक ९, नाना १०, सफल ११, इन ११की भावादि (संज्ञा)[१] ॥८॥

अर्थ—(१) जो प्रतीतिका विषय हो सो (यथा सूर्यादि). (२) कभी कहीं ओर किसीको भावरुप ओर कभी कहीं किसीको अभावरुप (यथा विजली). (३) जिसका अस्तित्व हो सो (यथा घट, परमाणु, प्रतिबिंब). (४) उत्पत्ति नाशवान. नहीं के शून्य; किंतु असत्रुप था, पीछे हुवा ओर पीछे न रहा एसे असत्रुप (यथा घटादि). (५) नित्य–अबाध्य (यथा परमाणु). (६) अनित्य (यथा घट, शरीर). (७) भेदवाला (यथा तम प्रकाश). (८) भेदरहित (यथा शक्ति, शक्तिमान). (९) संख्यामें एक (आकाश). [१०] संख्यामें अनेक [यथा परमाणु, घटादि]. [११] ब्रह्मांडमें जो कुछ हे सो सब सफल हे. (यथा जीव, सुषुप्तिमें थिर पुनः उपयोग) ॥ ८ ॥

भोक्ता १, भोग २, भोग्य ३ ॥ दृष्टा ४, दर्शन ५, दृश्य ६ ॥ ज्ञाता ७, ज्ञान ८, ज्ञेय ९ ॥ कर्ता १०, करण ११, कर्म १२ ॥ प्रकाश १३, प्रकाशक १४, प्रकाश्य १५ ॥ इन १५की त्रिपुटी [संज्ञा][२] ॥ ९ ॥

अर्थ—(१) भोगनेवाला (यथा दुःख ओर सरदीका भोक्ता जीव). (२) दुःख सुख भोगरुप फल. (३) जो भोगनेमें आवे सो (यथा शब्दादि पंच विषय ओर प्रतिकूल परिणाम). (४) कल्पना रहित देखनेवाला (यथा बालक वा गूंगा, रुपरंगको देखता हे). (५) जिसकरके देखाजाय (यथा चक्षु वगेरे इंद्रिय ५). (६) जो देखाजाय सो (यथा रुप रंग). (७) जो जान्नेवाला सो (यथा यह पीत हे लाल नहीं, एसे जान्नेवाला जीव). (८) जिसकरके जानाजाय सो (यथा श्रोत्रादि इंद्रिय ५ ओर मन). (९) जो जानाजाय (यथा शब्दादि विषय ओर दुःख). (१०) जो करनेवाला हो सो [यथा हाथपेरका हलानेवाला, घटका करनेवाला जो हे सो]. (११) जिसकरके कियाजावे सो [यथा हाथकरके त्याग ग्रहण होता हे इसलिये ५ कर्मेंद्रियोंका नाम करण हे. घट

[१] १ । ३–अबाध्यकोभी कहते हें. २ । ४–अर्थशून्यकोभी कहते हें. [२] कर्मेंद्रिय ५, ज्ञानेंद्रिय ५ ओर मन, यह ११–क्रिया ओर ज्ञान होनेमें साधन हें. इनकोही ५, ८, ११भी कहते हें. यथायोग्य–यथा प्रसंग इनका उपचार होता हे.

बनानेमें दंड, चक्रादि करण हें]. [१२] करनेकेलिये जो इच्छापूर्वक क्रिया की जाय, फलोत्पादक गति [यथा द्रव्य लेनेवास्ते हाथकी क्रिया होना]. [१३] जिससे वस्तु उजालेमें आवे याने प्रकाशित हो सो [यथा सूर्य, दीपकका प्रकाश हे; जिसमें रुप रंग प्रकाशित होके जानपडते हें; किंवा जिस ज्ञानप्रकाशकरके शब्द, स्पर्श, रस, गंध, दुःख, तम, अज्ञानादिका भान होता हे सो ज्ञान प्रकाश]. प्रकाश दो प्रकारके हें, जड ओर चेतन. [१४] इन जड वा ज्ञान–प्रकाशकोही उपाधि, उपयोग वा अपेक्षा दृष्टिसे प्रकाशक कहते हें. [१५] जो प्रकाशमें प्रकाशित हो सो [यथा रुप, रंग, शब्द, स्पर्श, रस, गंध, दुःखादि]. घटादि सूर्य प्रकाशके प्रकाश्य हें ओर सूर्यका प्रकाशभी किसीका [ज्ञान प्रकाशका] प्रकाश्य हे. इसीको चिद्प्रकाश कहते हें ॥

आभास १, प्रतिबिंब २, प्रत्याकृति ३, छाया ४, संस्कार ५, इन ५की आभासादि (संज्ञा) ॥ १० ॥

अर्थ—आभास वा प्रतिबिंबका उपादान, शेषा (ईथर)के भागकी किरणें हें. किरणोंका मुख जब चक्षुकी तरफ हो तब उसका **आभास नाम**. ओर जब पृष्टभाग चक्षुकी तरफ हो तब उसकी **प्रतिबिंब संज्ञा**. यथा घटादिका चक्षुमें आभास हे. जहां लाल वस्त्रपर श्वेत काच, तहां 'लाल काच', एसी प्रतीति होती हे, वहांभी उभय मिश्रितका चक्षुमें आभास हे. काचमें मुखका दर्शन प्रतिबिंब हे. यही जब चक्षुमें आवे तब आभास । १ । २ । किरणोंने केमेरेमें प्लेटके मसालेपर जो आकृति करी सो वा हाथसे जो छबी बनाते हें सो प्रत्याकृति । ३ । तमका पृष्टभाग छाया हे । ४ । संस्कार (ईम्प्रेशन) वास्ते पूर्व गुणादि याद कीजे ।५। ॥१०॥

कल्पित १[1], अकल्पित २, कल्पितवत् ३[1], अकल्पितवत् ४, इन ४ की कल्पितादि [संज्ञा] ॥ ११ ॥

अर्थ—[१] ईश्वर, [प्रकृति] वा जीवका बनाया हुवा [यथा सूर्य, घट]. [२] किसीका न बनाया हुवा [यथा परमाणु]. [३] शरीरके अंदर अनिछित जो छबी देखपडती हे सो; किंवा मनोवृत्तिके संस्कारद्वारा वहां जो आकार बनके जानपडता हे सो; किंवा स्वप्नके सूर्य, शरीरादि. [४] स्वप्नके अणु वगेरे मूल तत्व ॥११॥

एकही साध्य अनेक प्रकारका किंवा उस साध्यमेंभी एक अन्य, दूसरा अन्यप्रकारका, इन अनेकोंकी विविध [संज्ञा] ॥ १२ ॥

[1] १, ३—जो स्वाभाविक बनते हें उनकोभी कहते हें. यथा जल, भूकंपादि.

अर्थ—जेसे रंग ३ वा ४ वा ७ प्रकारके, रस [स्वाद] ६ प्रकारके, अभाव [भावप्रतियोगिक, अभावप्रतियोगिक] दो किंवा प्रागभावादि एवं ५ प्रकारके हें. इसीप्रकार साध्य कई प्रकारका ओर "कहीं कभी" किसी प्रकारका एसे योजनेसे विविधसंज्ञा होजाती हे.

यथा-एक प्रकारके साध्य जो द्रव्य वा योग्यता (गुण्यादि वा गुणादि) उनमेंसे कोईतो अणु, कोई विभु, तो कोई मध्यम, अण्वादि (३ वा ६ प्रकारका), एवं कोई साकार, कोई निराकार (साकारादि २४ प्रकारका), एवं चिदादिरुप (२५ प्रकारका), एवं कालादिरुप (१२ प्रकारका), एवं भावादिरुप (११ प्रकारका), एवं त्रिपुटीरुप (१५ प्रकारका), एवं आभासादिरुप (५ प्रकारका), एवं कल्पितादिरुप (४ प्रकारका), किंवा योग्यता रहित असंग.

तथा एकही साध्य कभी कहीं दृष्ट—अपरोक्ष, कभी कहीं अदृष्ट-परोक्ष, कभी कहीं चल, कभी कहीं अचल, कभी कहीं किसीके आश्रय रहा हुवा परका आधार[१], कभी कहीं आधेयही, कभी कहीं किसीका संबंधी, कभी कहीं किसीका असंबंधी, कभीं कहीं किसीका जन्यउपादान, कभी कहीं किसीका अजनक कार्य, कभी कहीं भावरुप तो कभी कहीं अभाव (उत्पत्तिके पूर्व नाशके उत्तर अभाव) रुप, कभी कहीं किसी उपयोगमें, कभी कहीं उपयोग रहित परंतु पुनः अन्य उपयोगमें, कभी कहीं भोक्ता-भोग्य, द्रष्टा-दृश्य, कर्ता-करण, प्रकाशक-प्रकाश्य ओर ज्ञाता-ज्ञेयरुपभी होजाता हे ओर कभी कहीं सोही भोक्ता, द्रष्टा, कर्ता, प्रकाशक ओर ज्ञाता नहीं होता.[२] इत्यादि, यथा प्रसंग विकल्प होसकते हें.

परंतु विकल्पकालमें असंभवसंज्ञावाले दोष न आवें, एसे विविध विकल्प कर्तव्य हें. तथा गुणादिके गुणादि नहीं होसकते, देशका देश नहीं होता इत्यादिका ध्यान रहना चाहिये. सारांश विविधकल्पनामें सृष्टिनियमसे विरुद्ध कल्पना न होना चाहिये; तोही उस कल्पनाकी स्वरुपसंभावनामें गणना होगी. अन्यथा नहीं.

साध्यवस्तु, [मनुष्य नहीं जानसकता अतः] अनिश्चित १, अनुभव-

[१] पहाड, आकर्षण. [२] शरीर कभी भोक्ता, कभी भोग्य. बिल्ली, कुत्तेकी भोग्य ओर चूहेकी भोक्ता. अंधा लंगडा उभय मिलके भोक्ता, परस्परके भोग्य. सुषुप्तिका जीव, भोक्ता वगेरे नहीं होता पुनः होता हे. जडवादिका जीव भोक्ता ओर भोग्य. किसीका जीव अणु, किसीका विभु, किसीका मध्यम. अन्योऽन्याभावं नित्य तथा अनित्य, ओर साम्यक्अभाव अनित्य. इत्यादि अनेक विकल्प हें.

मात्रकी विषय २, अनिर्वचनीय ३, लक्ष्यालक्ष्य ४, अनिर्णीय ५, अगम्य ६, परस्परकी अपेक्षासे परस्परमें अकथ्य प्रकारकी विलक्षण ७, इन ७ की मौन (संज्ञा) ॥ १३ ॥

[३] वाणी वा युक्तिसे जिसका कथन वा निर्णय न होसके. [४] बस. सू. ४३४ देखो. ओर नं. ७ के वास्ते बस. गत विलक्षणवाद सू. ४६८ वा ४९७ वा अ. ४में अवस्थावाद देखो. बाकी स्पष्ट हे.

द्रव्यादि १, गुणादि २, गुण्यादि ३, परिमाण ४, आकारादि ५, चिदादि ६, कालादि ७, भावादि ८, त्रिपुटि ९, आभासादि १०, कल्पितादि ११, विविध १२, ओर मौन [१३ संज्ञा कही उन [१२९] समूह] की संभावना वा स्वरुपसंभावना [संज्ञा] ॥ १४ ॥

संभावनासंज्ञामें वक्ष्यमाण असंभवसंज्ञाका प्रवेश नहीं हे—अर्थात् उसके विना साध्य वस्तु संभावनासंज्ञामेंसे कोई न कोई प्रकारकी सिद्ध होजायगी. जो इन प्रकारोंकी तुलनामें न घटे; किंतु विरुद्ध हो तो साध्य वस्तु कल्पनामात्र (अर्थशून्य) हे, एसा जान्ना चाहिये.

परंतु यह यादमें रहे कि अद्यापि मानवमंडलकी बुद्धि, अनुभवकी जो हद (पराकाष्टा) हे उस सीमामें स्वरुपसंभावनासंज्ञा मानीजाती हे. जो दूसरे ग्रहोंमें अन्यप्रकार हो वा भविष्यतमें परिक्षामें ओर प्रकारभी सिद्ध हो, तो इस स्वरुपसंभावनासंज्ञाका आग्रह नहीं रखना चाहिये.

शोधककी सुगमता वास्ते उक्त संभावना संज्ञामेंसे स्वरुप, स्वरुपज ओर उभयको कोनकोनसे प्रत्यय लगसकते हें सो छांटके लिखते हें. इनके अनुसार पदार्थ हें वा नहीं, इसपर दृष्टि रखनेकी अपेक्षा नहीं हे; किंतु एसे प्रत्ययवाले होना संभव हे, इतनाही यहां आशय हे.

(मूल) स्वरुप संज्ञा ॥ १५ ॥

तत्व (मूलस्वरुप), अणु ओर विभु इन दो परिमाणवाले होसकतें हें उनके प्रत्यय.—

(१) **अणुप्रत्यय**— अणुपरिमाण, नित्य, निरवयव, अमिश्रित, अखंड,

---

१५ क्योंकि अणवादि ओर विभु आदि प्रत्यय वा प्रकार स्वरुपजोंके नहीं होसकते.

अगोचर, अवर्ण, चिद्[१], अपनेमें असंयोगी, अजन्योपादान,[२] मूल (अजन्य), न परिणामी, न परिणाम, न उपादेय (कार्यरुप), अनादिअनंत, अकल्पित, लचकरहित, अबदल, स्पर्शास्पर्शसे इतर अवस्था नहीं, द्रष्टा, ज्ञाता[३], अनिर्वचनीय.

(२) **विभुप्रत्यय**—विभु परिमाण, नित्य, एक, निराकार, अमूर्त्त, अपरिच्छिन्न, निरवयव, अमिश्रित, अखंड, अगोचर, अवर्ण, गुरुत्व रहित, अचल (अक्रिय), अनाधाराधार, व्यापक, अपनेमें असंयोगी, अजन्य निमित्त, मूल (अजन्य), न उपादान, न उपादेय, न परिणामी, न परिणाम, अनादिअनंत, देशसे अनंत, अकल्पित, अलचकी, अबदल, अवस्था रहित (सम), ज्ञानप्रकाश, द्रष्टामात्र, ज्ञातामात्र, चिद्मात्र, अनिर्वचनीय.

(३) एवं उनमेंसे अणुप्रत्यय ओर विभु प्रत्यय—अर्थात नित्य, निरवयव, अमिश्रित, अंखड, अगोचर, चिद्, स्वे असंयोगी, मूल, अपरिणामी, अपरिणाम, न उपादेय, अनादिअनंत, अकल्पित, संकोच विकास रहित, अबदल, द्रष्टा, ज्ञाता, अनिर्वचनीय, [यह १८ उभयको लगते हैं]. उक्त तीनोंकी **स्वरुपसंज्ञा.**

स्वरुपजसंज्ञा ॥ १६ ॥

मध्यम [सजातीय वा विजातीय मध्यम], अभाव वा असत् (उत्पत्तिके पूर्व नाशके पश्चात् शून्य), सावयव, मिश्रित, सखंड, लचकी, सवर्ण, गोचर, अगोचरभी, पराधेयाधार, अपनेमें संयोगीभी, जन्योपादान, जन्यनिमित्त, कार्यका अजनकभी, जन्य (सोपादान), उपादेय, परिणामी, परिणाम, सादीसांत, कालसे सांत, प्रवाहसे अनादिअनंत, भोक्ता, भोग, भोग्य, द्रश्य, ज्ञेय, करण [इंद्रिय], आभास, प्रतिबिंब, प्रत्याकृति, छाया, संस्कार, कल्पित, कल्पितवत्, अकल्पितवत्—इन ३५ की **स्वरुपजसंज्ञा ॥ १६ ॥**

स्वरुप, स्वरुपजकी संज्ञा ॥ १७ ॥

(१) **अणु वा मध्यम परिमाणार्थि प्रत्यय.**—भेदवान, अभेदवान, अनेक, सफल, साकार, मूर्त्त, परिच्छिन्न, सगुरुत्व, जड, अचिद, अजड, चल (गतिवाला), कभी अचलभी, आधेय, व्याप्य, संबंधी, किसीका असंबंधीभी, दे-

[१] चेतन लक्षणवाला अणु हो वा नहीं यह विवादित विषय है. [२] संयोगजन्य उपादान, संयोगका उपादान; परमाणु, प्रकृति. [३] अणुमे भोक्तृत्व नहीं होसकता.

१६ क्योंकि मध्यमादि प्रकार मूल स्वरुपोंके नहीं होसकते.

शसे सांत, संख्यासे सांत, जडप्रकाश, प्रकाश्य, बिंब, कर्ता, द्रव्य, गुणादि संज्ञोक्त ८, गुण्यादि ८, विविध संज्ञोक्त.

(२) **विभु वा मध्यम परिमाणार्थि प्रत्यय**—सभेद, अभेद, सफल, जड, संबंधी, बिंब.

(३) **विभु ओर स्वरुपज उभय विशिष्टार्थि प्रत्यय**—कर्त्ता, भोक्ता, द्रष्टा, ज्ञाता, मंता, परस्परसे विलक्षणअस्तित्व[१]. ॥ एवं तीनोंकी **स्वरुप** स्वरुपज संज्ञा ॥ १७ ॥

असंभव संज्ञा ॥ १८ ॥

[१] द्रव्य ओर योग्यता उभयरुप, न द्रव्य ओर न योग्यता. [२] अभाव[२] रुप, वा भावाभाव उभयरुप, न भावरुप, न अभावरुप. [३] असत्रुप,[२] सदसद् उभयरुप, न सद्रुप, न असद्रुप. [४] नित्यानित्य उभयरुप, न नित्य, न अनित्य. [५] भेदाभेदवान, न भेदवान, न अभेदवान. [६] एक ओर नाना एवं उभय, न एक, न अनेक. [७] निष्फल [सर्वथा अनुपयोगी]. [८] अणु ओर विभु एवं उभय परिमाण, न अणु, न विभु, न मध्यम अर्थात परिमाण रहित. (९) विकासाविकासवान उभयरुप, न विकासवान, न अविकासवान. (१०) साकार निराकार उभयरुप, न साकार, न निराकार. [११] मूर्तामूर्त्त उभयरुप, न मूर्त्त, न अमूर्त्त. (१२) परिच्छिन्नापरिच्छिन्न उभय, न परिच्छिन्न, न अपरिच्छिन्न. (१३) सावयव निरवयव उभय, न सावयव न निरवयव. (१४) मिश्रितामिश्रित उभय, न मिश्रित, न अमिश्रित. (१५) सखंड अखंड उभय, न अखंड, न सखंड. (१६) सरंग अरंग उभय, न सरंग, न रंगरहित. (१७) सगुरुत्वागुरुत्व, न सगुरुत्व, न गुरुत्व रहित.(१८)व्यक्ताव्यक्त उभय, न व्यक्त, न अव्यक्त. (१९)समकालीन द्रष्टअद्रष्ट उभय, न द्रष्ट न अद्रष्ट.(२०)समकालीन परोक्षापरोक्ष उभय, न परोक्ष, न अपरोक्ष. (२१) चिदजड उभयरुप, न चिद्, न जड. [२२] अचिद्अजड, न अचिद्, न अजड. (२३) समकालीन चलाचल, न चल, न अचल. (२४) विभु ओर चल, अविभु ओर सर्वथा अचल. (२५) समकालीन साक्षातसे स्वयांधाराधेय उभय, न आधार, न आधेय. (२६) परस्पराश्रय वा परस्पराश्रित, परस्पराधार, परस्पराधेय.

---

[१] एसे प्रसंगोमें लक्षणा [भाव] से व्यवहार होता हे; क्योंकि विभुमें कर्तापना, भोक्तापना ओर अणुमें भोक्तापना नहीं होसकता. परंतु कर्तापना ओर भोक्तापना हे तो सही. सारांश दोनोंके विना नहीं होता. ॥ [२] शून्यरुप.

(२७) व्यापकव्याप्य उभय, न व्यापक, न व्याप्य. (२८) समकालीन एकका संबंधी असंबंधी, न संबंधी, न असंबंधी. (२९) निरवयव ओर अपनेमें आप संयोगी. (३०) मूल जन्य उभय, न मूल, न जन्य. (३१) अनुपादानजन्य (अभावजन्य भावरुप अर्थात नवीन उत्पन्न), असत् (शून्य) जन्य सत्रुप याने नवीनोत्पन्न. (३२) एक कार्यका अभिन्ननिमित्तोपादान, न उपादान, न निमित्त. (३३) समकालीन कारण कार्य, न कारण, न कार्य; अर्थात न उपादान, न निमित्त. (३४) अनुपादानजन्य सादि ओर तत्वस्वरुप. (३५) अनादि सादि उभय, न अनादि, न सादि. (३६) न अनंत, न सांत. (३७) अनादिअनंत ओर अनादिसांतभी. (३८) सादिसांत ओर सादिअनंतभी. (३९) न अनादिअनंत, न अनादिसांत, न सादि सांत, न सादिअनंत. (४०) संख्यासे अनंत, संख्यासे न अनंत ओर न सांत. (४१) देशसे अनंत ओर सांतभी, देशसे न अनंत ओर न सांत. (४२) कालसे अनंत ओर सांत, कालसे न अनंत ओर न सांत. (४३) समकालीन भोक्ता, भोग ओर भोग्यभी-एवं द्रष्टा-दर्शन द्रश्यभी, एवं ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयभी, एवं कर्ता-करण कर्मभी,[१] (४४) त्रिपुटी संज्ञामेंसे एक प्रकारकाभी नहीं. (४५)[२] विभु ओर कर्त्ता-भोक्ता. (४६)[२] अणु ओर भोक्ता. (४७) आभास, प्रतिबिंब, प्रत्याकृति, छाया, संस्कार ओर बिंब इन ६ छही रुपवाला, वा इनसे इतर प्रकारकाभी नहीं. (४८) एकही वस्तु किसीकी द्दष्टिमें जेसी हे उससे विरुद्ध धर्मवाली दूसरेकी द्दष्टिमें हे एवं उभय, किंवा एकही वस्तु विरुद्ध धर्मवाली[३], किंवा एकही वस्तुमें विरुद्ध धर्मका आरोप. (४९) संभावनामें कहे हुये प्रकारसे अन्यथा हे, एसे व्याप्ति रहित मनमुखी कल्पना करना. (५०) अनैकांत अर्थात सब अनिश्चित हे[४]. (५१) अणु परिमाणवाले प्रत्यय विभु वा मध्यममें, विभु परिमाणवाले प्रत्यय अणु वा मध्यममें, किंवा मध्यम परिमाणवाले प्रत्यय अणु वा विभुमें लगाना, मान्ना वा आरोप करना. इन उपरोक्त [१००] की **असंभवसंज्ञा** ॥ १८ ॥

---

[१]जड प्रकाश समकालमें घटादिका प्रकाशक ओर आप प्रकाश तथा ज्ञानप्रकाशका प्रकाश्य होता हे; इसलिये प्रकाशकी त्रिपुटी असंभवमें नहीं लिखी हे. [२]४५, ४६। विवादित हे. तथापि भोक्तृत्व अवस्था ओर अणु, विभुकी भोक्तृत्वावस्था असंभव हे; इसलिये यहां लिखा हे. वस्तुतः उपर कहे अनुसार स्वरुप स्वरुपज प्रसंगी हे. [३] तमप्रकाश, गरम-ठंडी वा जड-चेतन इत्यादि उभयरुप. [४] हम नहीं जानते इसलिये अनिश्चित, एसा नहीं; किंतु ब्रह्मांडके तमाम द्रव्यादि अनेक रुपके होते हें.—

असंभवसंज्ञामें कितनीक व्यर्थ वा पुनरुक्तिरुप कल्पना हें, वे पूर्वोक्त कारणको लेके रखी हें.

स्वरुपसंभावनासंज्ञाका संक्षेपमें उपयोग.—

जब कोई पदार्थका निर्णय करना चाहें तब– [१] प्रथम इस अध्याय २ में जो सृष्टिनियम दरसाये हें उनकी स्मृति होनी चाहिये. [२] साध्य पदार्थका नाम लिखो. [३] पीछे उसके जो लक्षण मानते वा जानते हो सो लिखो, परंतु अध्याय २ । सू. २३ । २४ । २५ ध्यानमें रखके लिखना चाहिये. [४] पीछे उसकी परिक्षा करिये; अर्थात वोह द्रव्य हे वा योग्यता [गुणादि] हे वा योग्यता रहित कुछ हे, एसी संज्ञा निश्चय करिये. [५] उस पीछे उसका परिमाण अणु वा विभु वा मध्यम लीजिये. [६] फेर उसके जितने संभव हों उतने परिमाण[१] अनुसार (स्वरुप-स्वरुपजके) प्रत्यय लिखिये अथवा आकारादि, चिदादि[१] इत्यादि संज्ञामें जो प्रकार लिखे हें उनमेंसे कोन कोनसे प्रकारवाला होसकता हे सो लिखिये. [७] इतना करने पीछे उलट पलटके परिक्षा करिये–व्यवहारमें उसकी व्याप्ति हे वा नहीं, होसकती हे वा नहीं, उसका परिणाम क्या आता हे ओर व्यष्टि, समष्टिपर उसका क्या असर होता हे, यह देखके यथा नियम निश्चय करना चाहिये.

यथा–जो जीव अणु चेतन हो तो उसकी भोक्तृत्व अवस्था नहीं होसकती, यदि मध्यम हे तो मुक्तिका पात्र नहीं होसकता ओर यदि विभु हे तो कर्ताभोक्ता नहीं होसकता. परंतु कर्तृत्व, भोक्तृत्व देखते हें; तो वोह क्या ओर केसा होगा? इस प्रकार नियम, व्याप्ति, मध्यस्थ तथा व्यवहारगत उपयोगसे निश्चय करना चाहिये. अन्यथा नहीं मानलेना चाहिये. बस. में सामान्य, अभाव, आक-

यथा एकही पदार्थ, कभी कहीं अणु, कभी कहीं विभु, कभी कहीं मध्यम, कभी कहीं तमरुप, कभी कहीं प्रकाशरुप, कभी कहीं जड, कभी कहीं चेतन, कभी कहीं सत्, कभी कहीं असत्, कभी कहीं सदसद्, कभी कहीं न सद, नअसद, कभी कहीं इनसे पंचम प्रकारवाला [नैयायक मानते हें] होजाता हे; इसलिये अनेकांत हे. दृष्टिभेदसे अनेकांत कहना व्यर्थ हे, वा शैलीमात्र हे. अमुक अंशदृष्ट, अमुक अंशअदृष्ट, अमुक भाग लक्ष्य, अमुक अलक्ष्य, इसका नाम अनेकांत नहीं हे.

[१] शक्ति, गुण यह जड वा चेतन, अणु, विभु वा मध्यम, सावयव वा निरवयव, व्याप्य वा व्यापक इत्यादि.

र्षण ओर जीव अणुकी परिक्षा नमूनेमात्र दिखाई हे, वोह उदाहरण ध्यानमें लीजिये. इसप्रकार करनेसे जो ग्रहण होगा तो सत्यही होगा. असत् नहीं.

लिखित मूल ग्रंथमें संभावना ओर असंभवसंज्ञाको लेके अभाव तथा सामान्यप्रत्यय (जाति) पदार्थकी परिक्षा दिखाई हे. लगभग ५० फारम जितना उसका विस्तार हे. उसीमें विकल्प–प्रत्ययप्रति कोष्टक हें, उनमें उदाहरण दिये हें. उपरोक्तकारणवश इसके साथ नहीं छपासके हें.

देशकालकी परिक्षा अ. ४ में अन्य प्रकारसे कीगई हे.

स्वरुपसंभावनासंज्ञा—एक बडा, लंबा, चोडा दरिया हे. उसमें अशक्त वा कायर थक जाता हे ओर बुद्धिमान, हिम्मतवान शोधक गोते लगालगाके सत्रुप मोति संपादन करलेता हे. जो, अज्ञोंके समान वा विना शिक्षक स्पर्श करेगा तो जेसे दरिया–समुद्रके जलग्रहणसे दस्त ओर खाज उत्पन्न होते हें एसी उसकी दशा होनेकी संभावना हे अर्थात भ्रममें पडजायगा; इसलिये बादलरुपी गुरुद्वारा ग्रहण करना चाहिये तो वही मिष्ट–रोग दूर करता हुवा शांति (तृप्ति–तृषा निवारण) प्रद होगा.

अब पूर्व प्रसंगपर याने नियम कथनपर आते हें.–

मूल अमूलही ॥ १३५ (मूल) ॥ **धारा प्राप्तिसे** ॥ १३६ ॥ **तिसकी अनुत्पत्ति** ॥ १३७ (अनुत्पत्ति) ॥ **मूल न होनेसे** ॥ १३८ ॥ **न नाश** ॥ १३९ (अनाश) ॥ **मूल रहनेसे** ॥ १४० ॥ **जैसा तैसाही** ॥ १४१ (सम) ॥ **अमिश्रित होनेसे** ॥ १४२ ॥ **संसर्गमेंभी वही** ॥ १४३ (न अन्यथा) ॥ **अजन्य होनेसे** ॥ १४४ ॥ **अविकारी** ॥ १४५ (अविकार) ॥ **तत्व होनेसे** ॥ १४६ ॥ **ओर यावत् तावत्** ॥ १४७ (विस्तार) ॥ **अनुत्पत्ति अनाशसे** ॥ १४८ ॥

जो अनादिअनंत, अमिश्रित, निरवयव, अखंड, अपरिणामी, स्वगतभेद्रहित, कैवल्य एकस्वरुप हो उसे मूल-तत्व, मूलस्वरुप वा मूलतत्व कहते हें, उससे उलटे अर्थात जो सादि, सांत, मिश्रित, सावयव, सखंड--खंड होने योग्य, परिणामी, स्वगतभेद्वाला हो उसे मूलज-अतत्व, स्वरुपज्ञ, सजातीय वा विजातीय कंपोंड कहते हें. (पृ. १२में कहा हे).

सूत्रार्थ–मूलस्वरुपका मूल नहीं होता अर्थात मूल अमूलही होता हे ॥१३५॥ क्योंकि जो मूलको अमूल न मानें तो धारा (इसका मूल, उसका मूल, एसे अनवस्था) दोषकी प्राप्ति होती हे ओर अंतमें धाराका अभाव होनेसे मूल अमूलही.

एसी सिद्धि होजाती हे. सारांश जो मूल तत्व हें वे अनादिसे स्वतः सिद्ध होते हैं ॥ १३६ ॥ कोई मूलस्वरुप कोई प्रकारसेभी नवीन उत्पन्न नहीं होता ॥ १३७ ॥ क्योंकि उसका मूल नहीं मानते, जो मूलज हे तो मूल स्वरुप न ठेरा (अभावजका निषेध (३१०) में वांचोगे) ॥ १३८ ॥ मूलस्वरुपका कोई प्रकारसे नाशभी नहीं होता ॥ १३९ ॥ क्योंकि उसका मूल तो रहनाही हे अर्थात भावका अभाव नहीं होता [सू. १८४ देखो] ॥ १४० ॥ मूलतत्वस्वरुप जेसे हें वेसेही हमेशे रहते हें ॥ १४१ ॥ क्योंकि अमिश्रित होते हें, बदलना मिश्रणमें होता हे ॥ १४२ ॥ ओर दूसरेके साथ संसर्ग हो तबभी अर्थात किसीके साथ स्पर्श, तादात्म्य, समवाय, अभेद, संयोग वा व्याप्य-व्यापकादिरुप संबंध हो तबभी वे जेसेके तेसे रहते हें । याने उनका स्वरुप नहीं बदलता,—वे अपने मुख्यस्वरुपको नहीं छोडते ॥१४३॥ क्योंकि वे जन्य नहीं हें ॥ १४४ ॥ उनमें कभीभी विकार [न्यूनाधिक होना, उनका परिणाम पाना, रुपांतर होना इत्यादि] नहीं होसकनेसे वे अविकारी होते हें ॥१४५॥ क्योंकि वे तत्वरुप हें ॥१४६॥ जिसमें विकार प्राप्त हो वोह तत्वरुप नहीं होता, किंतु अतत्व (कंपोंड-सावयव-मिश्रित) होता हे ॥ १४६ ॥ ओर ब्रह्मांडमें जितने मूलतत्व हें वे जितने हें उतनेही रहते हें ॥१४७॥ क्योंकि उनकी न नवीन उत्पत्ति हे ओर न नाश होता हे ॥ १४८ ॥

वि.—यदि आकाश ओर परमाणु, गरमी, ओक्षजनादि तत्व हों तो इस मूलस्वरुपाधिकरणमें उदाहरण देने योग्य हें; क्योंकि संसर्ग पानेपरभी उनका स्वरुप नहीं बदलता. यथा जलका पृथक्करण करें तो ओक्षजन, हाईड्रोजन वेसेके वेसे निकलते हें. गरम पानी, क्षार समुद्रका जल, दूध, शराब, लोही यह सब कंपोंडरुप हें ओर अन्यथा (तत्वरुप) जानपडते हें. इनका पृथक्करण करें तो जिन तत्वोंसे वे बने हें वे वेसेके वेसे निकल आते हें. जो मूलतत्व अन्य हुयेभी नवीन रुपमें जानपडते थे उसका कारण तत्वोंकी समीपता, रसायणीयमिश्रण ओर एक दूसरेकी योग्यताओंका उद्भव तिरोभाव हे. अर्थात् न नवीन तत्व उत्पन्न हुवा ओर न मूलतत्वोंने स्वरुप बदला; परंतु समीपसंबंध पानेसे ओर उनकी योग्यताके उद्भव तिरोधान होनेसे नवीन रुप बनगया सो दृश्य-स्वरुपज हे. सजातीय, विजातीय एक दूसरेमें केसे धुसके याने रसायणीयसंयोग होके केसे नवीन स्वरुप पेदा होजाता हे, यह आश्चर्यजनक बात हे. इस भेदको मनुष्य, अभीतक नहीं पासका हे ॥

(शं.) जो नवीनोत्पत्ति नाश नहीं तो स्वप्नसृष्टि क्या स्वरुपज हे. डोरीका सर्पादि

याने भ्रमज्ञानका विषय क्या तत्वज हे ? (उ.) स्वप्नका उपादान माया हे (सूक्ष्मशेषा हे), अनिच्छित अन्यथा रचना होनेसे उसे जाग्रतवत् नहीं मानते, वस्तुतः अनहुई वा अजातरुप नहीं हे; किंतु संस्कारजन्य हे. रज्जुसर्प प्रसंगमें सादृश्यादिवश सर्प नामका कल्पन होजाता हे याने रज्जुही सर्प रुपसे जानपडती हे, वहां सर्प वस्तु नहीं हे, इसे ज्ञानाध्यास कहते हें. ओर जहां अर्थाध्यास होता हे वहां सूक्ष्मा (अविद्या) का परिणाम अन्यथा भासता हे अथवा दो स्वरुपके संसर्गसे अन्योऽन्याध्यास होजाता हे. जेसेके रक्तवस्त्र वाला काच, लाल काच जान पडता हे; अतः अर्थशून्य नहीं. विस्तार मूलमें हे ओर भू. में हे.

यदि जीव तत्व स्वरुप हो तो इस अधिकरणानुसार बंध, मोक्षका पात्र नहीं होसकता, यदि अतत्त्व हो तो उसकी रागादि रुप अवस्था वा दुःख, सुखरुप अवस्था होसकती हे. तद्वत् पृथ्व्यादि तत्त्व ओर शब्दादि प्रसंगमें यथायोग्य लगालेना चाहिये. (अ. ४ में वांचोगे) ॥ १४८ ॥

(शं.) आकाश अनंत होनेसे तदंतरगत जो परमाण्वादि तत्त्व हें वे यावत तावत नहीं; किंतु संख्यासे अनंत होने चाहिये. (उ.)

संख्यासे अनंत नहीं ॥ १४९ [संख्या] ॥ **देशयावत् तावत् होनेसे** ॥ १५० [अनंत] ॥ **अनंत उन्नति अवनतिभी नहीं** ॥ १५१ [अवनति] ॥ **द्रव्यादि मर्यादित होनेसे** ॥ १५२ ॥ **अनंतताका अपेक्षासे कथन** ॥ १५३ [असीम] ॥

अर्थ—मूलतत्व संख्यासे अनंत नहीं हें किंतु संख्यामें अनादिसे जितने हें, उतनेही हें [उपर कहा हे] ॥ १४९ ॥ क्योंकि उनके रहनेका जो स्थान आकाश सो जितना हे उतनाही होने योग्य हे ॥ १५० ॥ जीवादि पदार्थोंकी उन्नति [विकास-इयुलेशन-उत्क्रांति] वा अवनति [अविकास, इनइयुलेशन, अनुत्क्रांति-पडती] भी अनंत [अनहद] नहीं हे ॥ १५१ ॥ क्योंकि उनका मूल अर्थात मूलतत्व वस्तु ओर उनकी योग्यता [गुण, शक्ति] मर्यादित याने जेसी ओर जितनी हें सो वेसी ओर उतनीही हें; इसलिये उनके परस्परके संबंध-मेल, असर, अभ्यास वा फोर्सद्वारा जितने समकालीन फारम-रचना, रुप-आकार-कार्य, गृहउपगृह, स्थिति-अवस्था हों वे सब मर्यादितही होंगी, अनंत नहीं ॥ १५२ ॥ लोक वा शास्त्रिय व्यवहारमें जो अनंतताका प्रयोग हे वोह मानवबुद्धिकी अपेक्षासे हे, वस्तुतः देशमें

अनंत [कदसे अनंत] कोईभी नहीं होसकता ओर इसलिये (१५० वश) संख्यासेभी अनंत कोई नहीं कहाजासकता ॥ १५३ ॥

वि.—देश, काल, वस्तु ओर प्रवाह तथा संख्या, इसप्रकार अनंतके पांच प्रकार हैं.—[१] देशसे जिसका अंत नहीं अर्थात जो सर्व देशमें हो वा जिसके आसपास देशभी न हो, एसा पररहित जो स्वरुप सो देशसे अनंत-पूर्ण कहाता हे. [२] जो स्वरुप पूर्ववत् वर्त्तमान (था, हे, रहेगा) याने अविनाशी हो वोह कालसे अनंत-नित्य कहाता हे. [३] जो होके न रहे ओर पुनः वेसाही हो, एसी स्थिति (अवस्था) को प्रवाहसे अनंत कहते हैं. यथा पदार्थोंका संयोग-वियोग, गति स्थितिका अनादिअनंत प्रवाह हे. यह संयोगादि, स्वरुप नहीं हैं. [४] किसी वस्तुमें हो किसीमें नहीं, एसा नहीं; किंतु सबमें हो वा वस्तुसे उसका अंत न हो याने वस्तु जिसकी सीमा न हो सो वस्तुसे अनंत कहाता हे. [५] जिसकी संख्या नहीं सो संख्यासे अनंत कहाता हे. जेसे देश १, ईश्वर १ वगेरे संख्यावाले हैं. संख्यासे अनंत कोई नहीं इसलिये उदाहरण नहीं मिलता. यहां संख्याका प्रसंग हे.

जितने अणु वा विभु परिमाणवाले ज्ञात अज्ञात तत्व हैं वे स्वरुपतः संख्यासे अनंत नहीं हैं. जो एककालमें उनके संयोग, विभाग, वा रचना, वा अवस्था, वा फारम करो तो वे संख्यासे अनंत नहीं होंगे. परंतु जो दो परमाणुओंकाही अनादिसे संयोग, वियोग, करते आये ओर भविष्यमें कियेजाओ तो इन संयोग-वियोगोंका अंत नहीं; क्योंकि यह स्वरुप नहीं हैं किंतु स्थिति-अवस्थाका सादिसांत प्रवाह हे. यहां प्रसंग मूलस्वरुपका हे. नहीं कि अवस्थाका.

जो प्रागभाव वा प्रध्वंसाभावको अनंत मानते हैं वोह कल्पनामात्र हे; क्योंकि अभाव स्वरुपतः वस्तु नहीं हे. जो वस्तु होती तो उसे अनादिसांत वा सादिअनंत कभी नहीं कहसकते.

यदि जीव अनंत मानें तो मोक्षमेंभी अनंत गये, एसा मानना होगा; तो फेर उन अनंतोंके उपयोगमें आनेवाले अनंत परमाणु निष्फल रहेंगे, सो असंभव हे. तथा अनंत एक होता हे अनेक नहीं. यथा अनंत जीव—अनंत जीव = ० होगा. अनंत—५ जीव=अनंत—५ के. इस रीतिसे अनंततत्वका खंडन होजाता हे.

देश यदि वस्तु तो उसका देश, इसप्रकार अनंत देश. एसेही अनंत ईश्वर ओर अनंतकाल मानना पडेगा. कालके नित्यत्वकी सिद्धिमें कोनसा काल लाओगे?

देशकी असीम सिद्धिमें कोनसा देश लाओगे? कोई नहीं. जो परमाणु वा देश अनंत हों तो ईश्वर उनका अधिष्ठान न होसकेगा; क्योंकि अधिष्ठान, आधेयसे कुछ न कुछ बडाही होता हे; इसलिये देश, अनंत नहीं मानसकते; यही आकाशको मर्यादित मान्नेमें हेतु हे. ओर इसी व्याप्तिसे परमाणुभी मर्यादित माने जायँगे; क्योंकि परमाणु विनाका आकाश होना मानसकते हें परंतु आकाश विनाके परमाणु होना नहीं मानसकते.

(शं.) काल अनंत हे. (उ.) यह प्रकरणांतर विषय हे; क्योंकि वोह संख्यासे अनंत नहीं. तथापि पूर्व उत्तरवश इतनाही कहना बस हे कि गतिके आरंभ अंतसे जिसका बोध होता हे सो काल हे (बस. सू. १२८ ओर अ. १ में न्याय प्रसंग देखो). वोह क्षणिक परिणामी वा सक्रिय नहीं हे. जो गतिमान, क्षणिक मानें तो भूतकाल सांत ठेरेगा, सांत, सादिही होता हे; इसलिये भूतकाल अनादि सिद्ध न होगा. ओर भविष्यभी सादि हुवा, सादि, सांतही होता हे; इसलिये भविष्यकाल अनंत न होगा. इन दोनोंके परिणाममें गतिके व्यवहारका अनादि प्रवाह न कहसकोगे. काल कहांसे आया था ओर कहां गया, यह न बतासकोगे. अब जो भूतको ओर भविष्यकोभी अनंत मानें तो दो अनंत नहीं होसकते. सृष्टिकी उत्पत्तिका आरंभही उसकी पूर्वताको सिद्ध करदेता हे. गतकाल भविष्यसे कम वा ज्यादा, यह नहीं कहाजाता; क्योंकि सम हे. अतः जितना हे, जेसा हे; उतना, वेसा हे; इतना कहना बस हे. जो सादि माने तो ब्रह्मादि अनादि हें एसा कहनाही नहीं बनता. काल कोई वस्तु नहीं एसा मानें तो यह कल्पनाही कालको सिद्ध करदेती हे (बस. १२८ देखो). इसलिये कालस्वरुपतः (तत्वतः) कुछ हे ओर उसका आदि अंत नहीं. गतिओंका प्रवाह अटूट होता चलाआरहा हे ओर होता रहेगा. इसलिये अनादिअनंत शब्दका प्रयोग हे; अन्यथा यह शब्द, कालकेलिये नहीं कहसकते; ओर उसी (गति, स्थिति) अपेक्षासे भूत-वर्तमान-भविष्य सर्व देशवर्ति ओर पहेले, पीछे इत्यादिका प्रयोग हे. वस्तुतः कालमें यह प्रत्यय नहीं लगते; अतः काल वास्ते काल, देशसे अनंत-असीम, जितना उतना, इत्यादि पद उसकेलिये नहीं हें; क्योंकि कालका काल नहीं होता. ओर अनुत्पन्न, अविनाशीको कालसे अनंत कहनेमें कोई दोष नहीं आता. (विशेष अ. ४ में). यदि देशकाल स्वरुपतः वस्तु मानें तो स्वरुपाप्रवेश (सू. ३८२) दोष आता हे. जो उनको न मानें तो व्यवहार नहीं बनता. देशकालके स्वरूपमें मतभेद हे. कोई ममकी अवस्था (याने बाह्य

वस्तुओंको देशकाल प्रत्यय देना--लगाना) मानता हे. कोई स्वरुपतः वस्तु मानता हे. इसकी बडी भारी तकरार हे. यहां इतना लिखना बस हे.–(१) स्वप्नसृष्टिमें देश ओर काल अनंत मालूम होते हें (परंतु हें जितने हें), जागने पीछे वेसे नहीं जानपडते. निदान देशकाल बुद्धिकी अपेक्षासे अनंत हें, वस्तुतः वेसा नहीं हे. इदमाकार वृत्ति ससीम होती हे ओर अहमाकार असीम होती हे; परंतु वस्तुतः हे जितनी हे. एसे देशकाल हें.

इसका विशेष वर्णन मूलमें हे. कुछ अ. ३, अ. ४ में आवेगा. विवेक होने तक, देश अनंत वा सांत ओर काल अनंत वा सांत, इन दोनों प्रसंग वास्ते चुप रहना पडेगा. तथापि संख्यासे तो अनंत कोई नहीं होसकता; यह निश्चित हे.

(शं.) जिसे उन्नतिकी टोच (मोक्ष) कहते हें वहां पहोंचके हमेशे उसी स्थितिमें रहेगा, भविष्यमें कभीभी वहांसे न डिगेगा ओर न पडती होगी, इसका नाम अनंत उन्नति हे. एसी अनंत उन्नति होसकती हे. किंवा जीवनामकातत्व अनादिसे उत्तरोत्तर उन्नतिमें आता रहता हे ओर हमेशे एसेही चढता जायगा, जिसके काल-की सीमा नहीं हे; एसी अनंत उन्नतिभी मानसकते हें.

(उ.) उभय कल्पना विकल्प मात्र हें. कारणके जो मोक्षसे पीछा न हो तो जबतब जीवोंका अंत आनेसे सृष्टिका उच्छेद होजायगा. जो जीवोंकी नवीनो-त्पत्ति मानोगे तो वे सांत ठरेंगे, उनकी मोक्षही क्या? तथा जबतब उनके उपादान-काभी अंत आजायगा; अतः मोक्षरुप उन्नति, अनंत उन्नति नहीं. दूसरे पक्षमेंभी यही दोष आजाता हे. जो जीवकी स्थितिआंतरको अनंत मानें तोभी उसके गुण, शक्ति ओर तत्संबंधी प्रकृतिके गुण, शक्ति, मर्यादित होनेसे नवीन नवीन स्थिति, एसे अनंत स्थिति नहीं होसकती. (विशेष मूलमें) ॥ सारांश एसे प्रसंगोंमें अनं-तताका कथन–अल्प बुद्धि वा अल्पज्ञ जीवकी दृष्टिसे हे अथवा महिमा, अलंकार भावमें रोचक हे, एसा जान्ना चाहिये ॥ २५३ ॥

धाराका विषय तत्व नहींही ॥ १५४ (धारा) ॥ **अव्यवस्थाकी प्राप्तिसे** ॥ १५५ ॥ **विज्ञानकी परीक्षासे** ॥ १५६ ॥ **ओर अव्याप्तिसे** ॥ १५७ ॥ **अभाववत्** ॥ १५८ ॥

अर्थ—जिस स्वरुपका बदल वा रुपांतर होता आया ओर होता रहेगा याने प्रवाहसे अनादिअनंत हे, वोह तत्वस्वरुप नहीं किंतु वोह स्वरुपज वा मिश्रित–सावयव–स्वगतभेदवाला होगा ॥ १५४ ॥ क्योंकि जो उसे मूलस्वरुप मानें तो

अव्यवस्था होती हे ॥ १५५ ॥ ओर पदार्थविद्या (साईंस) से यह परिक्षा हो-चुकी हे कि जो मूलतत्व हें उनका पृथक्करण नहीं होता अर्थात वे अपने स्वरुपको नहीं बदलते (मूलाधिकरण याद कीजे) ॥ १५६ ॥ ओर एसी व्याप्तिभी नहीं मिलती कि मूलस्वरुप प्रवाहसे बदलता हो किंतु एसा मान्ना कल्पनामात्र ठेरता हे ॥ १५७ ॥ जेसे के क. ख. परमाणुका ओर आकाश परमाणुका ओर घटपटका अन्योऽन्याभाव हे. अब इन अन्योऽन्याभावोंका परस्परमें अन्योऽन्याभाव होगा पुनः उनका अन्योऽन्याभाव मान्ना पडेगा; इसप्रकार अनवस्था (धारा) चलेगी. एसेही अनेकोंके अनेक प्रागभाव (यथा घटादिका प्रागभाव परमाणुओंमें वा कपा-लादिमें हे) अनादि हें, उनका अन्योऽन्याभाव हे उनकी अनवस्था चलेगी, परंतु जब प्रागभावका नाश होगया तो पूर्वोक्त अन्योऽन्याभावकाभी नाश होगा, फेर धाराकी सिद्धि कहां रहेगी. इसप्रकार प्रध्वंसाभावोंके अन्योऽन्याभाव उत्पन्न होके धाराके दोषवाले होंगे परंतु उनका आरंभ होता हे; इसलिये धारादोषकी अनु-त्पत्ति हे. सारांश अभावतत्व वा वस्तु नहीं हे. ओर मूलस्वरुपमें धारादोष नहीं कल्पसकते. जो कल्पते हें तो विकल्पमात्र हे ॥ (अभावोंके लक्षण ओर उसकी थीयरी तथा खंडनमंडनका विस्तार मूलमें हे) ॥ १५८ ॥

वि.—पदार्थोंके संयोग, वियोगकी अनादिअनंत धारा हे याने प्रवाहसे होते बिगडते आते हें ओर होंगे; परंतु वे स्थिति हें नहीं के मूलतत्व. कनकसे कुंडल, कुंडलसे कनक, फेर वींटी—इत्यादि फारम बदलनेकी धारा हे परंतु वे मूलस्वरुप नहीं; तथाहि वे समूहात्मक (मध्यम)के रुपांतर हें. तद्वत् सामान्यप्रत्यय (जाति), विशेष, ओर संबंध तथा अभाव इन ४को पदार्थ मानें तो उनमें धारादोष आता हे; अतः वे तत्वपदार्थ नहीं किंतु कल्पनामात्र हें वा पदार्थोंका वैलक्षण्यमात्र हे. (बस. १३५ । १३६में विस्तार हे). यथा पदार्थकी अस्ति पुनः इस अस्तिका अस्तित्व, इत्यादि धारा होनेसे अस्तित्व वस्तु नहीं. तद्वत् भाति (प्रतीति-ज्ञान) ओर विशेषादि वास्ते योजलेना चाहिये. (विशेष मूलमें) ॥

(शं.) सत्वरजतमात्मक प्रकृति—याने अनादिसे मिश्रिततत्त्व हें, वे अनादिसे उत्तरोत्तर रुपांतर होते चलेआते हें, एसेही भविष्यतमें होंगे ओर पूर्वमें हुये, एसे उनकी धारा हे तोभी वे तत्व हें. (उ.) मिश्रित कहनेसे उत्तर होचुका. यदि एकही तत्वकी धारा चलना कहते तो उत्तर देने योग्य होता, परंतु मिश्रितकी पूर्ववत् ओर नवीन स्थिति (परिणाम) होती हें; अतः दोष नहीं आता. यदि दे-

शकालादिको तत्ववस्तु मानें ओर फेर यह कहें कि देशका-देश, कालका-काल, आधारका-आधार, धर्मका-धर्म, गतिकी-गति, ज्ञानका-ज्ञान, किरणकी-किरण, इत्यादि प्रकारसे धारा कहें वा मानें तो देशादिमें तत्वस्वरुपता सिद्ध न होगी; ओर अव्यवस्थादिदोष आवेंगे; अतः जो धाराका विषय हो वोह तत्व नहीं होता ॥१५८॥

परिमाण अणवादि तीनही ॥ १५९ (परिमाण) ॥ अन्यकी अव्याप्तिसे ॥ १६० ॥ यदि परमाणु गोल ॥ १६१ (अणु) ॥ अन्यथा कार्य न होनेसे ॥ १६२ ॥ सजातीयही नहीं ॥ १६३ (विजातीय) ॥ विजातीयत्व दर्शनसे ॥ १६४ ॥ अखंड निरवयव ॥ १६५ (निरवयव) ॥ गति स्थिति दर्शनसे ॥ १६६ ॥ कल्पनासेपर ॥ १६७ (अपर) ॥

विभु क्रिया ओर गुरुत्व रहितही ॥ १६८ (अक्रिय) ॥ देशका व्याप्य न होनेसे ॥ १६९ ॥ दोनों अन्यमेंही ॥ १७० (सक्रिय) ॥ देशावरोधक होनेसे ॥ १७१ ॥ मध्यम जन्यही ॥१७२ (विकास)॥ वह अलचकी अप्रसिद्ध होनेसे ॥ १७३ ॥

जो छोटेसे छोटा हो, जिसके टुकडे न होसकते हों, निरवयव हो, उसका अणुपरिमाण कहाता हे. यथा परमाणुका ॥ जो बडेसे बडा, जिससे बडा अन्य न हो, निरवयव असीम हो उसका महतपरिमाण (विभुपरिमाण) कहाता हे. यथा व्यवहारमें आकाशका महतपरिमाण हे ॥ जो उभयका बिचला याने जिससे छोटा हो ओर बडाभी हो उसका मध्यमपरिमाण कहाता हे. यथाशरीर, सूर्य, जलादिका. ह्रस्व, दीर्घ परिमाण (स्वरुपका विस्तार—माप) का समावेश उक्त तीनों परिमाणमें होजाता हे.

सूत्रार्थ—यदि स्वरुपसे किसी पदार्थकी हस्ती (अस्तित्व) हो तो वोह परिमाण रहित न होगा किंतु उसका परिमाण अवश्य होगा. सो परिमाण अणु, विभु ओर मध्यम इन तीन प्रकारकाही होता हे ॥ १५९ ॥ क्योंकि सृष्टिमें इन तीनसे इतर प्रकारकी व्याप्ति नहीं देखते; अतः यह तीनही परिमाण हें ॥१६०॥ जो परिमाणरहित पदार्थ मानाजाय वोह कल्पना मात्र हे, एसे जान्ना चाहिये. यथा यदि सामान्य (जाति), अभाव, विशेष, संबंध, शक्ति वा संज्ञोक्त शब्दादि वस्तु हें तो उनका तीनोंमेंसे कोई न कोई परिमाण होगा. नहीं तो वे वस्तु नहीं हें, एसा जान्ना चाहिये ओर यदि साध्य, जन्यअवस्था—फारम हें तो वे मध्यम परिमाणके अंतरगत हें, एसा परिक्षाकालमें विचार करना चाहिये ॥ १६० ॥

यदि परमाणु (अणु परिमाण) हों तो वे गोलही होने चाहिये, एसा अनुमान करसकते हें ॥ १६१ ॥ क्योंकि जो एसे न हों तो जगतके कार्य सहजमें नहीं होसकते ॥१६२॥ अर्थात चोकोर वा त्रिकोणादि रुप हों तो किनारे अत्यंत समपि मिलनेसे दूसरोंकी गतिके निरोधक रहेंगे ओर यदि गोल हों तो समसमीप न होनेसे दूसरेकी गतिसे सहज खिसनेसे कार्य होंगे तथा गोलके समूहमें आकाश रहता हे, एसा जल, काच वगेरेमें देखतेभी हें यथा–जल भरे हुये प्यालेमें नमक डालें तो समाजाता हे. सुवर्णके गोलेमें पानी डालके गोलेको दाबें तो जलके अणु बाहिर आजाते हें. लोहेमेंसे अग्नि ओर किरण आवजाव करती हें. जो चोकोर वा त्रिकोण होते तो एसा न होता ॥१६२॥ सब परमाणु सजातीय (समान)ही हों, एसा नहीं हे ॥ १६३ ॥ क्योंकि दृश्यमें विजातीय–विरोधी ओर भिन्न प्रकारके कार्य देखते हें; इसलिये ओर ३०२ की अर्थापत्तिसे विजातीय सिद्ध होते हें ॥ १६४ ॥ जल, प्रकाश, सूर्य, पृथ्वी, मन, शरीरादि विजातीय कार्य हें; अतः उनका उपादानभी वेसाही होने योग्य हे ॥ १६४ ॥ यदि परमाणु हें तो वे अखंड ओर अवयव रहित (अमिश्रित) होने योग्य हें ॥ १६५ ॥ क्योंकि दूसरे पदार्थोंकी गति ओर उनकी स्थिति देखते हें ॥ १६६ ॥ जो क. परमाणु धारासे अनंत खंडवाला हो तो जब ग. परमाणु (वा तीर) उसको स्पर्श करता हुवा जावे तो उससे जुदा न होना चाहिये, कारणके अनंत विभागोंके ते करने वास्ते अनंत कालतक गति होना चाहिये. परंतु परमाणु (वा तीर) स्पर्श पाके आगे जाके ठेर जाता हे १, परिच्छिन्न (ससीम) के विभागभी ससीमही होने चाहिये २, अनंत=अनंत; अतः राई अनंत=परबत अनंतके. परंतु यह दृष्ट विरुद्ध दोष हे ३, ओर अनादिसे एसी (अखंड) वस्तु क्यों न हो ४, इन चार कारणोंसे परमाणुओंका

१६२ काचमेंसें किरण ओर गरमीका प्रवेश होता हे. कनक वगेरे सब ईथर स्वरुप होजाते हें. परमाणुकी, उसकी योग्यताकी ओर उनके संयोगकी तथा विजातीयत्वकी कल्पना, कार्य–दृश्यसे कीजाती हे. जो परमाणु न मानें तोभी पूर्वपूर्व मध्यम (सत्वरजतमात्मक समूह) मान्ना पडेगा.—-याने अणुकीही व्याप्ति होगी. जेसे ईश्वर वा आकाशके टुकडे नहीं होते वेसे परमाणुकोभी निरवयव मानसकते हें; अन्यथा ईश्वर आकाशकेभी टुकडे होना मानसकते हें. काचमें शब्दका प्रवेश नहीं होता, तहां काचके छिद्रोंमें स्थूल वायुका प्रवेश नहीं होता, इसलिये शब्दकी अभिव्यक्ति नहीं होती; यह कारण हे.

अखंड होना स्पष्ट होजाता हे. जो एसा न मानें तो (ईश्वर वा) आकाशकोभी एकरस विभु क्यों मानाजाय अर्थात उसकेभी टुकडे होसकना मान्ना पडेगा ओर सावयव–संयोगी सिद्ध होगा; परंतु यह असंभव. इसीप्रकार यदि हों तो परमाणुभी निरवयव अखंड होंगे. (बस. ११७ से १२७ तक देखो) ॥ १६६ ॥ उसका स्वरुप कल्पनासे पर हे याने विचारका विषय नहीं हे क्योंकि बुद्धिसेभी सूक्ष्म हे; अतः परमाणु समूहके कार्यसे उसका अनुमान कियाजाता हे ॥ १६७ ॥

विभु (अमूर्त्त) पदार्थमें गति ओर वजन (गुरुत्व) नहीं होते ॥ १६८ ॥ क्योंकि वोह देशका व्याप्य नहीं होता अर्थात उसके आसपास (बाहिर) देश नहीं होता. देश मिले विना गति नहीं होती (सू. २१९ देखो). ओर जिसमें गुरुत्व हो वोह देशको रोकता हे, विभु देशसे बाहिर हे याने विनादेशका हे, देशको नहीं रोकता; किंतु देश उसके अंदर मानाजायगा (व्याप्य कहना पडेगा); अतः विभुमें वजन सिद्ध नहीं होता (वजन क्या? बस. ११८ से १२३ तक देखो) ॥ १६९ ॥

जिसका केंद्र हो याने जो परिच्छिन्न हो उसीमें वजन होसकता हे, विभुका केंद्र नहीं ओर न सीमा, इसलिये वजन विनाका हे. (शं.) विभु कोई वस्तुही नहीं. (उ.) मत हो. यदि हो तो सूत्रोक्त जैसी होगी, इतनाही आशय हे. (शं.) आकाश उत्पत्तिवाला हे; यथा स्वप्नमें–अतः वजन होगा. (उ.) यदि परिच्छिन्न मध्यम वस्तु हे तो वजन हो, न मान्नेमें सूत्रका आग्रह नहीं हे. बात यह हे कि वजन क्या? इसको समझना चाहिये; ओर इसमें मतभेद हे. (बस. में विस्तार हे) ॥ १६९ ॥ क्रिया ओर वजन अन्यमेंही अर्थात अणु ओर मध्यम परिमाणवालेमेंही याने मूर्त्तमेंही होते हें ॥ १७० ॥ क्योंकि वे देशको रोकते हें ॥१७१॥ जेसेके कनक ओर वायुमें वजन देखते हें उससे अनुमान होता हे कि उसके मुख्य अणुमेंभी हो. जो अग्नि, प्रकाश ओर विद्युतादि परिच्छिन्न पदार्थ हों तो ओर यदि वजन कुछ अस्तित्व रखता हो तो अग्नि आदिमेंभी वजन होना चाहिये. यदि खिंचाव, यही गुरुत्वका प्रयोजक हो तो अणुमेंभी वजन न होगा. (विस्तार बस में हे). ओर यदि मुक्त अणुजीवमें क्रिया न मानें तो सफल, प्रवाह ओर अनुच्छेद नियमके विरुद्ध हे ॥ १७१ ॥ जो मध्यम परिमाणवाला पदार्थ हे वोह

१७० सब परिच्छिन्न वजनदार हों, यह आशय नहीं हे, किंतु जो वजन हे तो वोह परिच्छिन्नमेंही होगा, यह भाव हे ॥

अजन्य नहीं होता; किंतु मूल तत्वोंका समूह अर्थात जन्य होता हे ॥१७२॥ क्योंकि कोई जो मध्यम हो ओर जिसमें लचक (संकोचविकास–स्थितिस्थापकपना) न हो याने अजन्य हो, एसा पदार्थ आजतक न सिद्ध हुवा ओर न जान्नेमें आया हे ॥ १७३ ॥

अणु वा विभु परिमाणवालोमें लचक नहीं होती; क्योंकि अमिश्रित हें ॥ मध्यममेंही लचक (आपमें अपना संयोग) मानसकते हें. (शं.) लचक रहित समान रहनेवाला एसा अनादि मध्यम स्वरुप क्यों न माना जाय? (उ.) मानसकते हें. परंतु अद्यापि अलचकी मध्यमकी अव्याप्ति हे, उसकी व्याप्ति वा उसका कार्य मानवमंडलमें अप्रसिद्ध हे; अतः नहीं मानसकते ॥ (शं.) हो तो उसके टुकडे होंगे. (उ.) हठ करना ठीक नहीं (१६५ । १६६ याद करो). (शं.) जो अलचकी मध्यम हो तो. (उ.) सिद्ध होनेपर स्वीकार होगा. व्याप्ति रहित कल्पना मात्रसे नहीं मानसकते; इसलिये उसकी चर्चाकी अपेक्षा नहीं हे; यहां परिमाण संज्ञाभी याद कीजिये. सर्प, पानी, मगज, रबड, प्रकाश, विजली, गरमी ओर मनस इत्यादि मध्यम परिमाणवाले परिच्छिन्न हें ॥ (शं.) जो इंद्रिय ओर मनसे अगोचर हों ओर उन्हें जो एकत्र करें तोभी वे देशको न रोकें, एसोकों अमूर्त्त कहते हें. वे देशको नहीं रोकते; अतः उनमें वजन नहीं होना चाहिये. ओर अमूर्त्त जो आकाशादि उनमें गति नहीं हे; अतः उपरोक्त कथन ठीक नहीं हे. (उ.) गोचर हो वा न हो परंतु जिसके आसपास देशादि हो उसे साकार–मूर्त्त–परिच्छिन्न कहते हें उसको गतिके वास्ते देश चाहिये, देश विना गति नहीं करसकते, इसलिये देशको रोकते हें यह स्पष्ट हे. मन, शरीरी जो कर्ता-भोक्ताजीव ओर परमाणु यह सब मूर्त्त हें–साकार हें; जो तुम्हारा लक्षण मानें तो मूर्त्त जो इंद्रिय सोभी तथा मन, यह मन–इंद्रियके गोचर न होनेसे अमूर्त्त मान्ने पडेंगे. साकार–मूर्त्त जीवादी जो जघेको न रोकें तो एक बिंदुमें अनंतजीव आसकेंगे ओर परमाणुभी उस बिंदुमें जीव, मन वगेरेको स्पर्श न करता हुवा जायगा. जो यूं हो तो जीवपर परमाणु–प्रकृतिका असर ओर परमाणुप्रकृतिपर जीवका असर न होगा, इसलिये भोक्तृत्व ओर भोग्यत्वकी व्यवस्था न होगी, परंतु व्यवस्था देखते तो हें; अतः साकार हो ओर देश न रोके, यह असंभव हे. उन साकारोंमें वजन हे वा नहीं, इसका वर्णन बस. में हे ॥ अमूर्त्त (निराकार) में गतिका अवसर नहीं, यह उपर कहा हे. मूर्त्तमें गति होनेकी योग्यता हे, इसलिये होती हे.

यहां वजनके निर्णयकी अपेक्षा नहीं हे; क्योंकि वस्तुमें वजन हे अथवा आकर्षण याने खेंचावका नाम वजन हे? कुछभी मानो; जो मानोगे सो विभु (अमूर्त्त) में सिद्ध नहीं होगा. जो होगा तो मूर्त्त (परिच्छिन्न) मेंही सिद्ध होगा; इतनाही आशय हे. (वजनकी चर्चा मूल ओर बसमें हे).

तथापि यहां इतना जनादेना ठीक हे कि वजनके निर्णय समय इन वातोंको लक्षमें रखना उचित हे.—(१) यदि किसी एक शक्तिका जगत रुपांतर हे तो उसमें गुरुत्व वा आकर्षण हे वा नहीं. (२) सब परमाणु समान वा विजातीय. (३) जो विजातीयभी तो उनमें गुरुत्व रुपका विजातीयत्व हे वा नहीं याने कम, ज्यादा गुरुत्व विशिष्ट हें, वा नहीं. (४) वजनका प्रयोजक, विस्तार वा परमाणुकी संख्या, वा देशकी दूरी, वा स्नेहआकर्षण. (५) अथवा गुरुत्वाकर्षण शक्ति (जनरल खिंचाव), सोभी दरेक परमाणुमें वा जुत्थमें. (६) अथवा रगड वा हवाका दबान.

चांदी, सोना, गंधक, माटी, हवा, प्रकाश—इत्यादिको ध्यानमें लेके विचार करोगे तो उक्त दोष सबमें आवेगा. ओर व्यवहारमें तो यह सिद्ध होगा कि परमाणुओंमें स्नेहाकर्षण, उससे विस्तार ओर विजातीयत्वसे जुत्थमें अंतर १, मर्यादामें आकर्षित जो हिरण्यगर्भ (पसरी हुई परमाणुओंकी चादर ईथर जेसी गुंथी हुई शेषा) की लचक, उससे दबान ओर उठाव २, इस स्थितिका नाम वजन हे. बस. में स्पष्ट किया हे. ओर परमार्थ दृष्टिसे जो परिणाम आता हे सो बस. के उत्तरार्द्ध में हे. स्वप्नगत पदार्थोंके वजनपर दृष्टि दीजिये ॥ १७३ ॥ शेषाका वर्णन बस. सू. २६८ से २८० तक में हे ओर भू. में हे तथा मूलमें हे. यहां आवश्यक न जानके नहीं लिखा. शेषाके लक्षण उपर कह आये हें (सू. २६ का विवेचन यादमें लीजिये) ॥ १८३ ॥

निरवयवका परिणाम नहींही ॥ १८४ (अपरिणामी) ॥ **सावयवही परिणामी दर्शनसे** ॥ १७५ ॥ **विभु अणु अचलकी** ॥ १७६ (असंकोच) ॥ **अमिश्रित होनेसे** ॥ १७७ ॥ **विभु परिच्छिन्न नहीं** ॥ १७८ (अपरिमाण) ॥ **अमूर्त्त होनेसे** ॥ १७९ ॥ **उपादान नहीं** ॥ १८० (निराकार) ॥ **अचल निराकार होनेसे** ॥ १८१ ॥ **परिच्छिन्न विभु नहीं** ॥ १८२ (ससीम) ॥ **सीमा नियमसे** ॥ १८३ ॥

जो अपनेमें संयोगी न हो, संकोच विकास रहित हो, अमिश्रित हो, स्वगत

भेद रहित हो उसे निरवयव कहते हैं. रुपांतरपनेको परिणाम कहते हैं. जिसका अपनेमें अपना संयोग होसके, जिसमें लचक हो, जो मिश्रित हो, जो स्वगत भेद-वाला हो उसे सावयव कहते हैं. यदि हो तो परमाणु ओर विभु निरवयव होंगे. जलका बर्फ, कनकका कुंडल परिणाम हे. यहही सावयवके उदाहरण हैं.

सूत्रार्थ—निरवयव (अणु वा विभु) का परिणाम नहीं होता ॥ १७४ ॥ क्योंकि जो सावयव होता हे उसकाही परिणाम देखते हैं ॥ १७५ ॥ सावयवके परिणाम होनेमें कारण यह हे कि वोह अवयवोंसे जन्य होता हे. ओर जो धातु परिणामी हैं उनके त्रिअणुक आंकडीवाले होनेसे गुंथाये हुये होते हैं, इसलिये वि-कासकालमें नहीं छूटते. सोना, चांदीके पतरेका बारीक लंबा तार, ओर रबड गोल, चोकोर होजाता हे. दुधका दही ओर जलका बरफ बनजाता हे. प्रकाश संकोच-विकासको पाता हे. सत्व–रज–तम मिश्रित अणु हैं वे मिलके रुपांतरको धारते हैं. स्नेहाकर्षण, परिणाम होनेमें ओर रहनेमें सहकारी हे. इसलिये पतरादि परिणामी हैं. वे सावयव हैं तोही परिणामको पाते हैं. पतरे आदिको मोडें तो अपनेमें सं-योग होता हे. जितना देश संकोच प्रसंगमें लिया था उससे ज्यादा विस्तार–विकास प्रसंगमें जान पडता हे परंतु क्षेत्रफल तो पूर्व जीतनाही हे (२५० देखो). याने बीचबीचमें वा इधर उधर आकाश होजानेसे लंबाई चोडाईमें ज्यादे ओर मोटाईमें कम देश किया हे. एसेही अन्य सूक्ष्म पदार्थोंके प्रसंगमें ज्ञातव्य हे. आकाश निर-वयव हो तो उसका परिणाम नहीं होना चाहिये.

सावयवत्व ओर परिणामत्वके लक्षण ध्यानमें लेके विचारणीय हे. यथा क्षणिक विज्ञान हो, वा जीव, वा उसकी सत्ता (शक्ति), वा गुण शरीरमें व्यापक हों तो उनको सावयव परिणामी कहाजायगा; क्योंकि हाथकी दो उंगली मिलानेपर, वा ओष्ट मिलानेपर वा सर्प जब पूंछको मोंहमें लेवे तब, अवयवी (जीव, गुण, वा सत्ता वा सर्प) का अपने किनारोंका संयोग होता हे; संयोग दोकाही होता हे, एकका नहीं अतः संयोगी दो अवयव हैं अर्थात जीवादि सावयव ठेरे. कीडीके शरीरवाला जीव, हाथीके शरीरमें उस शरीर समान विकासको पाता हे ओर हाथीका जीव, कीडीके शरीरमें संकुचित होजाता हे, जो एसा होता हो तो जीव सावयव हे. जो सावयव न होता तो पूर्व विस्तार जितनाही क्षेत्र लेता. दोका संयोगीत्व, वा दोका सहच-र्यत्व (साथ रहनापना—यथा आकाश परमाणुका संयोग होना, गुण गुणी, शक्ति शक्तिमानका साथ रहना, जाति व्यक्तिका साथ होना) यह सावयवत्वका

प्रयोजक नहीं हे, किंतु अनेकत्व, स्वेसंयोगीत्व, संकोच-विकासत्व ओर स्वगत भेदत्व यह सावयत्वके प्रयोजक हें ओर सावयव मध्यम लचकी होता हे; अतः परिणामी होता हे, जेसे के क्षणिकविज्ञान परिणामी हे. निरवयवमध्यम लचकी नहीं होता; अतः अपरिणामी हे ॥ इसलिये दृश्य—जगत जो अपनेमें संयोगी, परिणामी ओर एक कालमें अनेक विरुद्ध गतिवाली हो तो उसे एक निरवयव विभुका परिणाम मान्ना असमीचीन ठेरता हे ॥ १७५ ॥

जिसके आसपास कुछभी (आकाशभी) न हो उस पूर्णको वा जिसका केंद्र सब जघे हो वा कहींभी न हो उसको विभु कहते हें. अणुपरिमाण वा मध्यमपरिमाणवालेको अर्थात अविभुको परिच्छिन्न कहते हें ॥

जो विभु वा अणु परिमाणवाले होते हें उनमें याने विभु ओर परमाणुमें लचक नहीं होती किंतु समान परिमाणमें रहते हें ॥ १७६ ॥ क्योंकि उनमें अन्य अवयव (वस्तु) का मिश्रण नहीं होता; मिश्रणके विना लचक नहीं होती ॥ १७७ ॥ विभु याने अमूर्त्त-निराकार, परिच्छिन्न नहीं होता ॥ १७८ ॥ क्योंकि वोह निराकार हे ओर परिच्छिन्न मूर्त्त (दृश्य, अदृश्य, गोचर वा अगोचर परंतु ससीम आकारवाला) होता हे ॥ १७९ ॥ यदि विभुमें लचक याने संकोच–विकास होता, व्ह परिणामी होता वा सावयव होता तोही मूर्त्त बनता परंतु एसा नहीं हे; अतः निराकार, साकार नहीं होसकता. ॥ १७९ ॥ ओर विभु, उपादानभी नहीं होसकता; अर्थात वोह कार्य (उपादेय) रुप होता हो एसाभी नहीं हे ॥ १८० ॥ क्योंकि विभु अक्रिय ओर निराकार होता हे; उपादेय सक्रिय ओर साकार होता हे. विभुके आसपास देश न होनेसे गतिका अभाव हे ओर गतिके विना उपादेय वा परिणामी नहीं होसकता, इसलिये विभु उपादेयरुप नहीं होता ॥१८१॥ जो परिच्छिन्न याने अणु वा मध्यम हे सो विभु (अपरिच्छिन्न) नहीं होता वा नहीं होसकता ॥ १८२ ॥ क्योंकि सीमा (२५०) का नियम हे अर्थात हरेक वस्तुका जितना क्षेत्र वा परिमाण हे उतनाही रहेगा, न्यूनाधिक नहीं होता; इसलिये परिच्छिन्न, विभुरुप क्षेत्र नहीं लेसकता. हां, उसमें अणु अणु मिलके समुद्रके समान कुछ बडारुप होजाना दूसरी बात हे, तथापि अपरिच्छिन्न तो नहीं होसकता ॥ १८३ ॥ (शं.) विभु जितना हे उतना हे, अतः ससीम हे तो तथा शक्तिमान हो तो संकुचित (परिच्छिन्न) क्यों न हो ? (उ.) यदि एसा हो तो वोह पररहित पूर्ण, विभु, निर्विकल्प नहीं होगा. ओर शक्तिमान अशक्य

कार्य नहीं करसकता. तद्वत् परिच्छिन्न, शक्तिमान वास्ते ज्ञातव्य हे. विशेष ४०१ में ॥ १८३ ॥ *

इसी कारणसे विरोधी सुगंधादिको मन वा मगज (ब्रेमेटर वा उसके सेंटर)का परिणाम नहीं मानसकते. जो हठ वा विश्वाससे यह मानलेवें कि निरवयकाभी परिणाम होता हे ओर उसके विरोधी परिणामभी होते हैं, तो यह सब दृश्य, एक परमाणुका कार्यभी मानसकेंगे; आप ना नहीं कहसकोगे. प्रंतु उभय मंतव्य दृष्ट विरुद्ध दोषवाले ओर व्याप्तिशून्य हैं; अतः त्याज्य हैं. अणु वा विभु परिमाणवालेमें संस्कार (अवस्था विशेष) ओर रागादिरुप अवस्था वा परिणाम नहीं हो-

*(नोट)—निरवयव एक ब्रह्मका किंवा निरवयव कोई एक शक्तिका परिणाम यह दृश्य जगत नहीं हे, क्योंकि व्यापक तत्वकी अवस्था वा उसका परिणाम वा उसमें क्रिया होना असिद्ध हे—असंभव हे; अतः उसका दूध दही समान विकारी परिणाम वा कनक कुंडलवत् अविकारी परिणाम नहीं होसकता. तद्वत् किसी अणु परिमाणका अथवा उसके गुणका परिणाम नहीं होसकता, क्योंकि वोह निरवयव अमिश्रित होता हे. सत्व, रज ओर तम इन तीनों मिश्रित यदि कोई पुंज हो तो उसका परिणाम होसकता हे, क्योंकि सावयव ओर मिश्रित हे. भ्रम प्रसंगमें रज्जुसंर्पादि ओर उनका ज्ञान यह दोनों किसी एकके परिणाम नहीं हैं, क्योंकि सर्पादि अर्थशून्य हैं ओर सर्पादिरुपसे जो डोरी आदिका ज्ञान सो ज्ञानवृत्ति (जीववृत्ति—मन) का परिणाम हे. तथाहि ज्ञेय ओर ज्ञाता वा द्रष्टा ओर दृश्य यह उभय परिणाम एक कालमें एकके नहीं होसकते. स्वप्नसृष्टिके देशकालादि ओर उनका ज्ञानभी किसी एक निरवयवका परिणाम नहीं हे, क्योंकि वे उभय समकालीन हैं. परंतु एक कालमें एकके नाना परिणाम तथा द्रष्टा-दृश्य इन उभयरुप परिणाम नहीं होसकते. यदि वे मनके परिणाम मानें तो संभव हे, क्योंकि वोह संस्कारी ओर सावयव हे.—निरवयव—अमिश्रित नहीं हे. सुगंध, दुर्गंध,[१] उष्ण शीत, तमप्रकाश, जडचेतन यह किसी एक निरवयवके परिणाम नहीं हैं; क्योंकि परस्परमें विरोधी जानपडते हैं; परंतु परिणाम परिणामीवत् होता हे; उससे विरुद्ध वा अन्यथा नहीं होता.

[१]फूल वगेरे सडजानेपर जहां दुर्गंधी होजाती हे वहां उनके उपादनोंमें तथा रसायणीसंयोगमें फेरफार होजाता हे.

सकते वा नहीं होते, क्योंकि संस्कार वा रागादि परिणाम किसी मध्यम वस्तु (जीवादि) केही होसकते हैं; तो फेर निरवयवका परिणाम कहना वा मान्ना हास्यास्पद नहीं तो क्या ? सारांश एक विभु वा एक अणुके अनेक परिणाम (याने कार्यरुप जगत) नहीं मानसकते, किंतु यह जगत किसी समूहकाही रुपांतर—परिणाम हे, एसाही सिद्ध होजाता हे, अर्थात यह निर्विवाद सिद्धांत हे.

शब्दसे मृतका, मृतकासे शब्द, विभुसे अणु, अणुसे विभु, तमसे प्रकाश, प्रकाशसे तम, गरमीसे शीत, शीतसे गरमी, जडसे चेतन, वा चेतनसे जड पेदा नहीं होसकते. दुराग्रह वा किसीके विश्वाससे वेसा मानलेना दूसरी बात हे. परंतु जो उपर कहे अनुसार न होता तो उनमें (कारण कार्यमें) विरोध न होता; क्योंकि उनका उपादान जो एक, उसमें अपने आपका विरोध नहीं हे (नहीं देखते), तो फेर उसमेंसे विरोधी पदार्थ केसे होसकते हैं ? नहीं होसकते (सू. ३०५। ३४० भी देखो).

सत्‌का अभाव ओर असत्‌का भाव नहींही ॥ १८४ (नित्य) ॥ **भाव अभावका विरोध होनेसे** ॥ १८५ ॥ **हे सो नहीं ओर नहीं सो हे, एसा नहीं** ॥ १८६ (अस्ति) ॥ **सत् ओर असत्‌का भेद होनेसे** ॥१८७॥ **कालांत देशांत** ॥ १८८ (अंत) ॥ **सहचारी होनेसे** ॥ १८९ ॥ **अनादि न सांत** ॥ १९० (असांत) ॥ **नित्य नियमसे** ॥ १९१ ॥ **न सादि अनंत** ॥ १९२ (सादि)॥ **अनभाव ओर अनुच्छेदसे** ॥ १९३ ॥ **ओर विचित्रतासे** ॥ १९४ ॥ **स्वरुप ओर प्रवाह यह दो भेद अनादिके** ॥ १९५ (अनादि) ॥ **सदुत्पत्ति वा नाश कथन व्याघात** ॥१९६(व्याघात)॥ **नित्य नियमसे** ॥१९७॥

अर्थ—जिसको कभीभी ' नहीं ' न कहा जावे उसे अर्थात नित्यको सत् कहते हैं, ओर जिसको कभीभी 'हे' न कहा जावे उसे असत् (शून्य) कहते हैं. एसे सत्‌का कभी अभाव नहीं होता ओर एसे असत्‌का कभी भाव नहीं होता॥१८४॥ क्योंकि भाव ओर अभावका विरोध होता हे; अतः सत्‌का अभाव ओर असत्‌का भावरुप नहीं होता. १३७। १३९ याद करो ॥ १८५ ॥ व्यवहारमें घटादि मध्यम पदार्थभी सत् (प्रतीतरुप) कहाते हैं परंतु उनका अभाव होजाता हे; अतः इसप्रसंगके विषय नहीं याने वे मूल सत्पदार्थोंकी रचना वा अवस्था हैं ओर उपयोगमें आते हैं; अतःव्यवहारनयसे सत् हैं वस्तुतः नित्य नहीं. यद्यपि सत्‌के संयोग-वियोगजन्य होनेसे व्यवहारमें वे सत् हैं परंतु उनका जन्याकार (घटादिकी

आकृति–व्यक्ति) ओर उनका कल्पित (घटादि) नाम नित्य नहीं हें. शेष ६७२ । । ६७३ में वांचोगे ॥ १८५ ॥ ब्रह्मांडमें " जो ज्ञात वा अज्ञात मूल-तत्व पदार्थ हें वा जेसे हें सो ' नहीं ' वा ' वेसे नहीं ', एसा " ओर जो नहीं हें वा एसे (अमुक प्रकारके) नहीं हें सो ' हें ', वा ' एसे होंगे ' एसा " नहीं हे किंतु जेसे हें वेसे हें, अर्थात किसीके आरोप वा मंतव्यसे वा किसी कारस्तानीसे वे अन्यथा नहीं होसकते ॥ १८६ ॥ क्योंकि सत् (अस्तित्व) ओर असत् (नास्तित्व) में भेद होता हे ॥ १८७ ॥ यथा प्रकृति (अव्यक्त–मूल उपादान) माया, परमाणु, ईश्वर, जीव यदि तत्व हें वा अतत्व हें वा विकल्प मात्र हें तो जेसे हें वेसे हें, वे किसीके अन्यथा मंतव्यसे अन्यथा नहीं होते हें. कोई स्वर्ग नरकका स्वरुप अमुक कोई अन्यथा मानता हे सो कथन मंतव्यमात्रसे वे वेसे हें वा वेसे नहीं हें, एसा नहीं मानाजासकता. तद्वत् शब्दादि वास्ते ज्ञातव्य हे (११७ भी याद कारिये) ॥ १८७ ॥ जिसका कालसे अंत हो उसका देशसेभी अंत होता हे अर्थात जो अमुक कालमें न हो वोह किसी देशमेंभी न होगा–न रहेगा ॥ १८८ ॥ क्योंकि इन उभयका सहचर्य हे. एक दूसरेके विना नहीं रहते. इसी वास्ते जो किसी देशमेंभी न हो वोह उस कालमेंभी न होगा; एसा होता हे ॥ १८९ ॥ यहां आशय समझना हे–यथा अमुक परमाणु एक देशमें हे, दूसरे देशमें नहीं हे; परंतु तीनों कालमें होता हे; अतः देशांत हे परंतु कालांत नहीं. घट देशांत ओर कालांतभी हे घटका भूत, भविष्यसे अंत हे परंतु वर्तमान देशकालसे अंत नहीं. यहां सूत्रका आशय यह हे कि (१) जो न होके हुवा था ओर न होके रहा सो कालांत (नाशवान)–किसी देशमेंभी न होगा. ओर जो किसी देशमेंभी न रहेगा वोह उस कालमेंभी न होगा याने नाशवान हे. यथा मध्यम घटादि ओर सूर्यादि नाशवान हें. (शं.) जो देशकाल साध्य हों तो सूत्र व्यर्थ ठेरेगा. (उ.) जेसे साध्य बुद्धि ओर साध्य (वक्ता) जीवकी व्यवस्था होगी वेसे इनकीभी होजायगी वा मेरे मुखमें जिव्हा नहीं, एसा उत्तर होगा अर्थात पक्षकार कितनाभी बल करें, देशकाल ओर बुद्धिके विना कोई वा किसीका ज्ञान नहीं होता ओर न विचार, न मंतव्य, न शंका, न समाधान (इन तीनोंके विना नहीं होसकता). एसेही नियम प्रसंगमें ज्ञातव्य हे. ओर जब देशकालको साध्य मानें तब जिस वाक्यमें देशकाल पद हें वोह वाक्य छोडके दूसरे नियमोंसे उसको उपस्थित करलेना चाहिये; यथा " एक देशकालमें नहीं होता ". इस वाक्यके बदले " साथसाथ नहीं

होता " एसा पद बोल देना (२११ देखो). देशकाल साध्य इस संबंधमें सू. १३४ का विवेचन ध्यानमें लीजिये वा एसे उपयोग करना चाहिये जेसेके अध्याय ४ ओर ३ में शैली कहेंगे. सू. ६७२ । ६७३ कोभी ध्यानमें लीजिये ॥१८९॥

जो न होके हुवा याने जिसका आरंभ हे उसे सादि ओर जो होके न रहे याने जिसका नाश हे उसे सांत ओर जिसका आरंभ नहीं हे उसे अनादि ओर जिसका नाश नहीं होता उसे अनंत कहते हैं; अर्थात अनादि अनंत, नित्य ओर सादिसांत, अनित्य कहाता हे. अब सू. १९० वगेरेका अर्थ—

जो अनादि हे वोह सांत नहीं होता ॥ १९० ॥ क्योंकि नित्य (१८४) नियम एसा बताता हे ॥ १९१ ॥ जो वस्तु हे ओर भूतमें कभीभी 'न' का वाच्य नहीं हुई तो भविष्यमेंभी ' न ' की वाच्य नहीं होसकती, क्योंकि उसका मुख्य स्वरुप तो रहनाही हे. अनुत्पत्ति (१३७) अनाश (१३९) नियम याद करिये ॥ कोई पक्षकार प्रागभावको अनादिसांत मानता हे. परंतु अभाव स्वरुपतः कोई प्रकारकी वस्तुही नहीं हे, अतः सो मंतव्य ठीक नहीं हे. (बस. १३७ । १३८ देखो). माया यदि स्वरुपतः वस्तु हे ओर अनादि हे तो उसे सांत नहीं मानसकते; कारण के जो विकल्पमात्र हे उसकी प्रतीति नहीं होती ओर जो कुछ हो ओर प्रतीत हो उसका मूल रहनाही हे. नहींतो उसे अनादिही नहीं कहसकते; क्योंकि कुछ हेही नहीं. विषयी–विषयके योग्यसंबंधाभावको अज्ञान कहते हैं इसलिये अज्ञान, अवस्था विशेष हे. नहीं के अज्ञान कोई पदार्थ हे. जब विषयीके ज्ञानका दूसरेमें उपयोग होता हो तब अपनेमें अपना उपयोग नहीं होता, इसको अपना अज्ञान कहते हैं. परंतु दृष्टासे दृश्य ओर ज्ञातासे ज्ञेय भिन्नभिन्न होते हैं अतः अपना अज्ञान कहनाही नहीं बनता; इसलिये अज्ञानको अनादिसांत कहना अलीक हे; क्योंकि अवस्था हे. संयोग–वियोग अवस्था हे; अतः उनका अनादिअनंत प्रवाह होसकता हे अर्थात प्रवाहसे सादिसांत हैं; यही मान्ना पडता हे. भ्रम अर्थशून्य होता हे याने कल्पनामात्र हे उसको अनादिसांत कहनेसे (कल्पलेनेसे) सूत्रोक्त नियमका बाध नहीं होता, क्योंकि सूत्रमें हरकोई पदार्थ जो अनादि हो वोह सांत नहीं होता, एसा भाव हे. इसप्रकार अनादि, सांत नहीं होता; किंतु जो अनादि हे वोह अनंतही होता हे; क्योंकि जो एसा न हो तो उसके स्वरुपको अनादित्व पद नहीं लगासकते. (विशेष बस. में) ॥ १९१ ॥ **जो सादि (उत्पन्न) होता हे वोह अनंत (अविनाशी) नहीं होता**

॥१९२॥ क्योंकि अनभाव (३१०।३१४) ओर अनुच्छेद (३६९) नियमके विरुद्ध हे ॥ १९३ ॥ अर्थात अभावसे उत्पत्ति नहीं होती तो उसकी उत्पत्ति जिससे हुई वोह पूर्वमें विद्यमान हे, यही मान्ना होगा. उस पूर्वका मूल अनादि होनेसे अनंतही हे. ओर अब जो एसा मानें के मूलोंसे बना हे; अतः सादि हे परंतु उसका अभाव न होगा याने अनंत रहेगा, सो कल्पनाभी नहीं बनती, क्योंकि जो एसा हो तो सृष्टि उत्पत्तिका अभाव होजायगा; क्योंकि सब एक स्थितिमें रहनेसे सृष्टिका व्यवहार न होगा. परंतु सृष्टिमें कोईभी उत्पन्न हुवा अनंत नहीं देखते. कागभुषंड, भर्तृहरी, स्तुत्थामाके नित्यत्वकी दंतकथा कथनमात्र हे ॥ १९३ ॥ तथाहि संसारमें विचित्रकार्य देखते हें, इसलियेभी उत्पन्न सांतही मान्नापडता हे ॥ १९४ ॥ जो बने हुये नित्य बने रहते हों तो विचित्र कार्योंका प्रवाह न रहे, सूर्यादिमें न्यूनाधिकता न हो, परंतु विचित्रता ओर न्यूनाधिकता तथा उत्पत्ति-नाश देखते आरहे हें ओर देखरहे हें; अतः जो न होके हुवा सो अंतमें न रहेगा अर्थात सादिअनंत नहीं किंतु जो सादि सो सांतही होता हे; यह नियम सिद्ध होता हे. कोई प्रध्वंसाभावको सादिअनंत मानता हे, परंतु अभाव वस्तुही सिद्ध नहीं होती. अर्थात अधिकरणके वैलक्षण्यका नाम अभाव हे; अतः उसका सादिअनंतपना कल्पनामात्र हे. कोई जीवको अभावजन्य मानके अनंत मानता हे, यहभी असंभव हे, उसका कारण उपर कहा हे ॥ १९४ ॥ पदार्थ (मूल स्वरुप) अपने स्वरुपसे अनादि होते हें. ओर उनका संयोग–वियोगादिरुप अवस्था तथा रागादि अवस्था होती–बिगडती रहतीं हें, एसा अनादिसे होता आया हे; इस व्यापारको प्रवाहसे अनादि कहते हें. इसप्रकार अनादिके दो भेद हें--(१) स्वरुपसे अनादि ओर (२) प्रवाहसे अनादि ॥ १९५ ॥ सृष्टि (नामरुप) स्वरुपसे अनादि नहीं हे किंतु प्रवाहसे अनादि हे अर्थात इसके सादिसांत होनेका प्रवाह हे ॥१९५॥

सत्की उत्पत्ति वा नाश कहना वा मान्ना वदतोव्याघात (असत्) हे (क्योंकि वोह उत्पत्तिके पूर्व न होनेसे सत्का ओर नाश होने पीछे सत्का वाच्य नहीं होता हे; अतः व्याघात हे) ॥१९६॥ क्योंकि नित्य (१८४) नियमके विरुद्ध हे (१३७ । १४० भी याद करिये) ॥ १९७ ॥ (शं.) तो फेर जो उत्पत्ति--नाश देखते हें सो क्या? (उ.) सू. ३५२ में उत्तर हे. ६७२ । ६७३ भी बांचना चाहिये ॥ १९७ ॥

एक दो न दो एकही ॥ १९८ (अमिश्रित) ॥ **संयोगी असंयोगी**

होनेसे ॥ १९९ ॥ **एकमेंसे न अनेक** ॥ २०० (अकार्य) ॥ **अनेकत्व प्राप्तिसे** ॥ २०१ ॥ **एक न अनेक** ॥ २०२ (अखंड) ॥ **व्याघात होनेसे** ॥ २०३ ॥ **अपेक्षासे एककर अनेक दर्शनसे** ॥ २०४ (अनेक) ॥ **नानासेही नाना** ॥ २०५ (नाना) ॥ **नाना होनेसे** ॥ २०६ ॥

अर्थ—जो स्वरुपतः एक हे वोह स्वरुपतः दो रुप नहीं होता ओर जो स्वरुपतः दो हें वे कभी एक स्वरुप नहीं होते ॥ १९८॥ क्योंकि संयोग दोका होता हे ओर एक अपनेमें असंयोगी होता हे ॥ १९९ ॥ एकके दो हुये तो उन दोनोंका संयोग होनेका. अर्थात वे पूर्वमेंही दो होंगे. ओर जो दो एक हुये तो अपनेमें संयोग हुवा अर्थात दोही रहे; क्योंकि अपनेमें अपना संयोग कहना हास्यास्पद हे ॥ १९९ ॥ एकतत्व वस्तुमेंसे विरोधी वा अविरोधि अनेक रुप नहीं होते (नहीं बनते–नहीं बनासकते) ॥ २०० ॥ क्योंकि एकत्वमें अनेकत्व कहना वदतोव्याघातदोष आता हे ॥ २०१ ॥ अनेककी गति, एक दूसरेसे दूसरी तरफ ओर अनेक प्रकारकी होती हें परंतु एककी गति तो एक कालमें एकही तरफ होगी. सृष्टिमें एक कालमें अनेकोंकी अनेक तरफ गति देखते हें; इसलिये दृश्यमें किसी एकके अनेक रुप हों एसी व्याप्ति नहीं मिलती, इसलियेभी एकत्वमें अनेकत्व नहीं मानसकते ॥२०१॥ एक स्वयं अनेक रुप नहीं धारसकता ॥२०२॥ क्योंकि पूर्वोक्त समान व्याघातदोष प्राप्त होजाता हे ॥ २०३ ॥ हां, समूहात्मक पुंज हो तो किसी एक निमित्तसे वोह पुंज अनेक रुपमें आसकता हे, क्योंकि एसा देखते हें (यथा बडके बीजसे वृक्ष हे) ॥ २०४ ॥ सारांश नानासेही नाना रुप होते हें ॥ २०५ ॥ क्योंकि वे नाना (द्रव्य, गुण, शक्ति) हें ॥ २०६ ॥ जो एसा न होता तो उष्ण, शीत, तम, प्रकाशादिका विलक्षणत्व ओर विरोधही नहीं होता. (सू. ३४० । ३४१ भी देखिये). (शं.) एकमें अनेक रुप होने वा करनेकी शक्ति क्यों न मानलीजाय? (उ.) जो कर्ता हे वोह आप हे तो अंशअंश प्रति शक्तिका केसे उपयोग होगा? जो उसके समान शक्तिकोभी सावयव, सांश, विभाग योग्य मान लेवें तो वदतोव्याघातदोष आवेगा अर्थात सावयत्वका स्वीकार होगया; क्योंकि शक्तिके टुकडे नहीं होते. ओर ४०२ । ४०३ के विरुद्ध हे ॥

एक कर्ता वा एक निमित्तद्वारा अनेक उपादानों (समूह) मेंसे अनेक कार्य होसकते हें परंतु एक उपादानसे अनेक कार्य नहीं होसकते. कनकके जिस भागसे कुंडल हुवा याने हे उससे इसी कालमें वींटी नहीं होती. संतानका उपादान माता

पिताका अमुक अंश हे, इसलिये एकसे अनेक संतान होती हैं. बीजमें दूसरे परमाणु मिलके वृक्ष होता हे, इसलिये एक बीजसे अनेक बीज होते हैं. जगतका मूल उपादान यदि एक वस्तु (शक्ति-माया) हो तो यदि वोह विभु हे तो उससे अणु होना असंभव, यदि अणुरुप हो तो उससे देशकाल वा नाना अणु–मध्यम होना असंभव, यदि वोह समूहात्मक हो तोही उसे जगतकाउपादान मानसकते हैं. जलका टीपा जलमें मिला तो दोनों एकस्वरुप होगये वा प्रकाशमें प्रकाश मिला तो दोनों एक होगये, एसा नहीं हे. जलगत ओक्षजन, हाईड्रोजन नामके अवयव ज्यादे हुये हें उनको जुदा करोगे तो वे जुदा जुदा निकलेंगे अर्थात मिलनेपरभी दोही हैं, समीपतासे एक रुप जान पडते हैं. ज्यादे प्रकाश होनेपर अक्षर नहीं दीखते, दो दीपक एक मकानमें रखके एकके आडे लकडी करो तो उसकी छायासे दूसरे प्रकाशका भिन्नत्व स्पष्ट होजायगा; परंतु सूक्ष्मताके कारणसे समीपस्थ हुये एक भासते हें. ब्रह्ममें यदि कोई मिले तो एक वोल्युम ज्यादा मानाजायगा; इसलिये ब्रह्म ओर जो (जीव वगेरे) मिला सो दोही हैं. घटाकाश, मठाकाश उपाधिसे दो भासते हें, वे घट, मठके होने न होनेपर एक रुपही हें. अर्थात दो एक न हुये हें. सत्व-रज-तम साथ रहें तोभी स्वरुपतः जुदा जुदा हें–तीनों एक न हुये, न हें, न होंगे. गुण-गुणी, शक्ति-शक्तिमान यदि कुछ हें तो वे दो हें, दोनों एक स्वरुप नहीं. भ्रमप्रसंगमें स्थाणु, पुरुष, यह दो एक नहीं होते, क्योंकि पुरुषका बाध मनोवृत्तिमें होता हे स्थाणुमे नहीं अर्थात पुरुषका अभावरुप स्थाणु नहीं. एसेही अन्यतरभी जानलेना. यथा–प्रतिबिंब, बिंब एक नहीं होते; क्योंकि प्रतिबिंबका उपादान किरणें हें, मुख नहीं; उसका बाध किरणोंमें होता हे मुखरुप नहीं. इत्यादि; अतः सू. १९८ ठीकही हे ॥ २०६ ॥

एकसे एक कालमें दो कार्य नहींही ॥ २०७ (असम) ॥ **कर्ता एक होनेसे** ॥ २०८ ॥ **यथा ज्ञान ओर क्रियाका क्रम** ॥ २०९ (अनुक्रम) ॥ **उनके समकाल दर्शनमें विवेक** ॥ २१० (समकाल) ॥ **समकाल एकके दो परिणाम नहीं** ॥ २११ (अपरिणाम) ॥ **असम नियमसे** ॥ २१२ ॥ **एकमें एक काल विषे दोकी अनुत्पत्ति** ॥ २१३ (अकाल) ॥ **संयोग शब्दवत्** ॥२१४॥ **अन्य होनेमें उसीका उपादेयत्व प्रतिबंधक** ॥२१५ (बाधक)॥

अर्थ—एक कर्तासे एककालमें दो कार्य (किसी तत्वसे दो गति, वा किसी ज्ञातासे दो ज्ञान किंवा क्रिया ओर ज्ञान) नहीं होते हें ॥ २०७ ॥ क्योंकि कर्ता

एक हे ॥ २०८ ॥ यथा एकसे ज्ञान ओर क्रिया, क्रमसे होते हें, एक साथ अनेक क्रिया वा अनेक ज्ञान वा क्रियाज्ञान नहीं होते ॥ २०९ ॥ चित्रपटकी एक एक विचित्रताका ज्ञान एककालमें नहीं किंतु क्रमशः होता हे. समूहका सामान्य ज्ञान समूहरुपसे होता हे वृक्षवत्. सभामें नाचने, गानेवाली एक सेकंडमें अनेक क्रिया करती हे, वे क्रमशः होती हें. ग. सडकपर चक्र देता हुवा पूर्वमें जा रहा हे, हस्तगत चक्रको उत्तर दक्षणमें घुमाता रहता हे, चक्रपर चूहा फिरता जाता हे. इसमें तीनोंकी एक एक बिंदुका देश स्पर्शास्पर्श विचारोगे तो हरेककी एककालमें एकगति हे. दोदो वा तीनतीन नहीं हें. शतावधानीके कार्यभी क्रमशः होते हें. लिखना ओर उसका दर्शन जुदा जुदा कार्य हें. एक क्षणमें इच्छानामा गति–परिणाम ओर इच्छा अनुसारगति (कर्म) होते हें परंतु उनका काल जुदा २ हे. एक क्षणमें असंख्य शब्द (क. ग. प. अ) क्रमशः उच्चारण होते हें. हाथपेर चलरहे हें ओर साथसाथ मन संकल्प कररहा हे; बात यह हे कि मनद्वारा इंद्रिय ओर अंगोंमें अभ्यास जारी होजाता हे ओर पुनः मन बीचबीचमें आके संभालता रहता हे. एसेही नृत, बोलने ओर लिखने प्रसंगमेंभी होता हे. सारांश एक क्रियाकालमें दूसरी क्रिया वा ज्ञान ओर एक ज्ञानकालमें दूसरा ज्ञान वा क्रिया नहीं होते वा नहीं होसकते; कारणके क्रिया–दृश्य ओर उसका द्रष्टा भिन्न २ होते हें (३७५) ॥ (शं.) जो यूं हो तो अपनी क्रिया (कर्म) का वा अपनी इच्छाका ज्ञान किसीकोभी नहीं होना चाहिये. (स.) अर्थ ओर उसकी क्रिया यह ओर इनका ज्ञान यह दोनों स्वरुपतः जुदाजुदा हें. इसलिये क्रिया ओर उसके ज्ञानका समकालत्व बनता हे. विवेकख्याति न होनेसे उभय एक जानपडते हें. (विशेष अ. ४ में). (शं.) उक्त अनेक क्रिया–कार्य, एकके ओर समकालीन क्यों जानपडते हें. (स.) जब बिजली जमीनपर पडती हे तो एक सेकंडमें असंख्य परामाणुओंके साथ संयोग, स्थिति ओर वियोग करना पडता हे अर्थात एक सेकंडमें असंख्यकार्य होजाते हें (बस. २९६ देखो). जो बनेटीके किनारोंको अग्निसे रोशन करके घुमावें तो अग्निका चक्र नहीं हे तोभी चक्र (आलातचक्र) जानपडता हे. इसप्रकार समीप ओर अत्यंत वेग होनेसे एकके ओर समकालीन जानपडते हें. (शं) जेसे प्रकाश, गति ओर प्रकाश करना यह दो कार्य समकाल करता हे, वेसे ज्ञाताभी ज्ञान ओर क्रिया समकाल क्यों न करे (स.) प्रकाशमें प्रकाशकत्व (कर्त्रि) प्रयोग नहीं होसकता; कारणके उससे जो संबंध पावे वोह प्रकाशित हो, एसा स्वाभाविक हे;

इसलिये गति एक कार्य हुवा. ज्ञातृत्वमें एसा नहीं मानसकते; क्योंकि क्रिया ओर उसका अभिमान; तथा ज्ञान, उसका अभिमान समकालमें होने असंभव हें ओर विचारके देखो तो जुदाजुदा हें. (शं.) पृथ्वीकी एक क्षणमें अनेक गति होती हें वेसे एकसे अनेक कार्य क्यों न हों. (स.) पृथ्वी मध्यम ओर लचकी हे इसलिये संभव हे. तथापि उसका क भाग जो गति कररहा हो, उससे उसीकालमें २ गति नहीं होसकती. जेसे के एक परमाणु समकालीन, अनेक गति नहीं करसकता उस दृष्टिसे यह नियम लगाना चाहिये. सावयव मध्यमोंके भागमें समकालीन अनेक गति हों, इससे इस नियमका खंडन नहीं होता. स्टीमरमें एक गेंद (वा पहैया) चलावें; वहां स्टीमरकी चलती ओर झुलती गतिसे गेंदमें गति, गेंदकी अपने शरीरकी उलटपलट गति ओर मुसाफरत करनेवाली (देश काटनेवाली) गति यह ४ कार्य एक साथ होते हें. परंतु विचारके देखोगे तो गेंदकी एककालमें एकही क्रिया हे. शरीर घुमनेसे देशका स्पर्शास्पर्श होताजाता हे, यही मुसाफरत ओर स्टीमरकी गतिसे गति हे. एसे सर्वत्र विवेक करलेना चाहिये. यहां तो ज्ञानक्रिया वालेका प्रसंग हे ॥ (शं) रातको मेदानमें काच रखें तो असंख्य तारोंका फोटो काचमें दीखता हे–झटपट होजाता हे १, एक मकानका स्मरण करें कि उसके अंतरगत जितना सामान था उस सहित अंतरमें देखपडता हे २, स्वप्नसृष्टि एक साथ होजाना जानपडती हे ३; यह सब कार्य, एक क्षणमें होते हें. (स.) एकसे नहीं होते किंतु-(१) किरणोंके जुदे जुदे जुत्थसे. (२) ओर अंतःकरणकी अति वेगवाली क्षणिक गतिसे. (३) तथा शेषाकी योग्यताद्वारा उसके विभागसे तथा इन तीनोंकी चपल गतिसे उपरोक्त तीनों कार्य क्रमसे होते हें ओर एकके समकाल जानपडते हें (बस. २७३ । १५६ देखो). इस सूत्रोक्त नियमको सूक्ष्मदर्शी, विचारशील ओर अभ्यासी पुरुषही विषय करसकता हे; क्योकि मनसकी योग्यता, संस्कार (एम्प्रेशेन) पहिछान्ना सहेज नहीं हे. किंतु जिसने योगका कुछ अभ्यास किया होगा वा जिसने सच्ची साइकोलोजी विद्याका परिक्षापूर्वक अभ्यास किया होगा सोही मन (अतंःकरण) को सामान्य रुपसे जान्ने योग्य होता हे, वही उसकी योग्यता वा संसारको पहिछानसकता हे ॥ २०९ ॥ जहां क्रिया ओर ज्ञान वा क्रिया ओर उसका ज्ञान अर्थात समकालमें एसे दो कार्य होना देखते हें वहां विवेक हे (जैसाके उपरके विवेचनमें कहा गया हे.) ॥ २१०॥ **लिखना ओर उसका ज्ञान, बोलना ओर उसका ज्ञान, पदार्थकी अतिगति ओर उसका ज्ञान**

साथसाथ होता हे; वे एकके कार्य हें एसा नहीं हे परंतु उनके समकालत्वका दर्शन हे. इसका विवेक पूर्व कथनवत् करलेना चाहिये ॥ २१० ॥ (जो तत्वस्वरुप होता हे बोद्ध तो अपरिणामीही होता हे (१७४). जो अतत्व सावयव हे, उस एक समूहके एक कालमें याने साथसाथ दो परिणाम नहीं होते ॥ २११ ॥ क्योंकि असम नियम (२०७) बता रहा हे ॥२१२॥ सावयवके विभाग इतर होके अनेक परिणाम होजाना जुदी बात हे. जेसे के जलका आधा भाग जमे आधा नहीं. शरीरगत उसके अवयव समकालमें जुदाजुदा परिणाम पाते हें परंतु एक कालमें द्रष्टाही, द्रष्टा ओर दृश्यरुप होजावे एसा नहीं होता. सर्प गोल ओर लंबा, कनक छुरी ओर कुंडल, दूध खोवा ओर दही, इसप्रकार एक कालमें दो दो रुप परिणाम पावें एसा नहीं होता. मन, इंद्रियोंको हलादेता हे वे अभ्यास, बलानुसार हलती रहती हें ओर उसी समय संकल्प कर रहा हे. सर्प सावयव हे, मुखसे काटता हे, पूंछसे लिपटता हे; परंतु यहां उपादानोंका भेद हे; इसलिये एकसे दो कार्य—दोकी उत्पति कहते हें. असम, अनुक्रम सूत्र ध्यानमें लीजिये ॥ २१२ ॥ एकमेंसे एक कालमें दो वस्तुकी उत्पत्ति (दो परिणाम वा दो उपादेय) नहीं होती ॥ २१३ ॥ जेसे के संयोग ओर शब्द हें अर्थात् एक काल एक देशमें एकसे दो संयोग उत्पन्न नहीं होते. जब पराशब्द क. रुप होता हे तो उसी समय, उसीमुखमें ट रुप नहीं होता ॥ २१४ ॥ लोहेसे छुरी कालमें कडाकारुप नहीं होसकता. सर्प लंबकालमें गोलरुप नहीं होसकता. मृतिका पिंड, घटकालमें खावरुप नहीं होता. **एक** (२३९), **अकार्य** (२००), ओर **अखंड** (२०२) सूत्रभी याद करिये ॥ २१४ ॥ एकको दूसरेरुप धारनेमें पहेला रुप याने उपादेयता प्रतिबंधक (आड) हे ॥ २१५ ॥ अर्थात जबतक पहेला रुप हे वहांतक दूसरारुप नहीं होता. कनक कुंडलाकार न रहे तबही उससे बींटी बनती हे. एसेही जगतके तमाम कार्य ओर उसके समूहात्मक विभागवाले उपादानके वास्ते ज्ञातव्य हे ॥ २१५ ॥

जड स्वयं गति स्थितिमें असमर्थही ॥ २१६ (जड) ॥ **योग्यता अदर्शनसे** ॥ २१७ ॥ **तीरवत्** ॥ २१८ ॥ **गति देशकी अपेक्षावालीही** ॥ २१९ (देशी) ॥ **अन्यथा अदर्शनसे** ॥ २२० ॥ **ओर असंभव होनेसे** ॥ २२१ ॥ **हलकेकी भारीकी अपेक्षासे विरुद्ध देशमें** ॥ २२२ (वलन) ॥ **जल अग्निवत्** ॥ २२३ ॥ **निमित्तसे** ॥ २२४ (अगति) ॥ **द्रव्य गुणवत् वैधर्म्यविशिष्ट नहीं** ॥ २२५ ॥ (वैधर्म्य) ॥ **वेगजनक नहीं** ॥ २२६ (वेग) ॥

टकरानेसे ॥ २२७ [क्षोभ] ॥ **न बलके बदलसे किंतु अन्यनिमित्तसे** ॥ २२८ (चलन) ॥ **अनाधार नियमसे** ॥ २२९ ॥ **एककी क्रियासे अनेकमें** ॥ २३० (गमन) ॥ **प्राण शरीरवत्** ॥ २३१ ॥ **करणसे साध्य** ॥ २३२ (साध्य) ॥ **लेखक लेखनीवत्** ॥ २३३ ॥ **संयोगकी स्थितिसे उसका अभावभी** ॥ २३४ (स्थिति) ॥ **ओर संयोग वियोग फल** ॥ २३५ (व्यापार)॥

घात प्रत्याघातका नियमभी ॥ २३६ (प्रत्याघात) ॥ **सूक्ष्मा ओर उभय संबंधियोंमें लचक होनेसे** ॥ २३७ ॥

गति (क्रिया—कर्म—मोशन—हरकत) यह कोई पदार्थ नहीं हे किंतु परिच्छिन्न (मूर्त्त) पदार्थकी देशस्पर्शा-पर्शरुपअवस्था (वा योग्यता) का नाम गति हे. गति अबुद्धा (जेसे वायु वगेरेकी) ओर बुद्धा (जेसे खान—पान, शब्द उच्चारण, लेन—देन) दो प्रकारकी होती हे, वे इस गति अधिकरणमें यथाप्रसंग ग्राह्य हें. जिसपर क्रिया कीजाय उसका नाम कर्म, एसा अर्थ नहीं करना. जीवके कर्मका गति ओर तद्जन्य संस्कारमें समावेश होजाता हे ॥ जो वस्तु अपने आप हलनेमें किंवा हलती हो तो आप ठेरनेमें अशक्त हो याने विना हलाये न हले ओर विना ठेराये न ठेरे तथा जिसमें ज्ञान शक्ति न हो उसे जड कहते हें. ओर गति होनेकी योग्यता मूर्त्तमेंही होती हे. जिसके आसपास कुछ हो एसे साकारको मूर्त्त (परिच्छिन्न) कहते हें. (आगे सूत्रार्थ).—

अर्थ—जड वस्तु अपने आप, क्रिया करने वा गतिमें आने पीछे आप अगति यानें ठेरनेमें असमर्थ होती हे अर्थात किसी दूसरे निमित्त विना उसका गतिमें आना वा ठेरना नहीं होता ॥ २१६ ॥ कारण कि उसमें स्वयं गति करनेकी योग्यता नहीं हे ॥ २१७ ॥ जेसेके तीरको दूसरेसे गति मिले तो गतिमें आता हे ओर पृथ्वीके खेंचान वा हवा वगेरेके दबानसे ठेरजाता हे ॥ २१८ ॥ विस्तृत हिरण्यगर्भ लचकवाला हे, ग्रहोंमें गुरुत्वशक्ति हे; इसलिये एक दूसरेके संबंधसे ग्रहादिमें गति उससे गरमी ओर हवामें गति उससे अन्योंमें गति होती हे. चंबुकमें लोष्टके अनुकूल स्नेहाकर्षण ओर विजली हे इसवास्ते लोहा सन्मुख होनेपर उस विजलीमें गति होती हे. इसप्रकार अन्यत्रभी यथायोग्य घटालेना (विशेष बस. में हे). यह अबुद्धा (इच्छाशून्य) गतिका सार कहा. बुद्धागति, इच्छापूर्वक होती हे उसका यहां विशेष प्रसंग नहीं हे; तथापि जो देखना हो तो बस. में देखिये. ओर इस गतिअधिकरणमेंसे बुद्धागतिमें जो नियम लगसकते

हों वोह यथायोग्य लगालेना चाहिये. यथा जीव वा मनको आसपासमें देश न मिले तो उसकी गति न होसके. इत्यादि ॥ २१८ ॥

हरकोईकी गति हो परंतु गतिको देश (आकाश--पोल) की अपेक्षा होती हे याने पदार्थकी गति (हलना--रुपांतर होना--परिणाम--अवस्था) देशके विना नहीं होती ॥२१९॥ क्योंकि देशके विना गति देखनेमें नहीं आती ॥२२०॥ (शं.) देश कोई वस्तु नहीं हे मगजका खयाल हे; इसलिये जेसे मालाके मनके एक पीछे एक जुडे हुये चलते हें एसे ब्रह्मांड पूरित परमाणुओंकी गति हे. वा जेसे समुद्रके अंतरगत पानीकी लगोलग गति हे वेसे देशके विना गति होती हे. (उ.) अगलेकी जघे पिछलेने ली, यही देश. [1]देशका असंस्कारी एक जन्मांध एक खाली पेटीके ढंकनेमें कीली ठोक रहा हे ओर वोह अंदर जाती हे सो देश. सारांश देशकालको माननाही पडता हे ॥२२०॥ ओर देशके विना गति असंभव हे; अतः गतिको देशकी अपेक्षा हे ॥ २२१ ॥ अंधा अपने मुखमें ग्रास चला रहा हे सो देशके माने विना नहीं रहसकता. शीशीमेंसे हवातक निकाल दें तो पुनः हवा जघे भरनेको दोड आती हे. यही देश. स्वप्नमें गतिका देश जानपडता हे वा नहीं हे, इसका बयान अ. ३ में वांचोगे ॥ २२१ ॥ जिधर भारी पदार्थकी गति होती हे उसकी अपेक्षासे विरुद्ध दिशा तरफ हलकेकी गति होती हे अर्थात हलका उपरको ओर भारी नीचेको जाता हे[2] ॥ २२२ ॥ जेसे कि जलका नीचेको

[1] जो पक्षकार देश (ओर काल) को आंतरिय--चित्तके प्रत्यय बताते हें-- अर्थात बाहिरमें देश (ओर काल) को नहीं मानते किंतु उसे चित्तकी अवस्थाही कहते हें, सारांश गतिको देश विना होना मानते हें, सो ठीक नहीं जानपडता; क्योंकि एसा होता तो तमाम मनुष्योंको देश ओर उसका दैशिक माप, समान ज्ञात न होता किंतु उनके दूर, समीप ओर मापमें (तथा कालकी गणना ओर कालिक मापमें) अंतर होता. परंतु एसी व्याप्ति नहीं देखते, इसलिये देश (ओर काल), चित्तकी अवस्था नहीं हे, किंतु उससे अन्य हे, बाह्य हे, ओर बाह्य पदार्थ देश-काल विशिष्ट हें, एसा सिद्ध होता हे. अ. २ सू. ३८२ । ३८३ गत स्वरुपा-प्रवेशके विवेचनका अंतिम भाग देखो ओर विशेष अ. ३ में वांचोगे. सारांश देश हो तबही गति होती हे, देशके विना नहीं होती.

[2] दिशा एक औपाधिक कल्पित संज्ञा हे. इस प्रसंगमें पृथ्वीकी अपेक्षासे उसकी सब तरफको ध्यानमें लेके अर्थ करना चाहिये. यथा अमेरिकाकी गरमी

ओर गरमीका उपरको गमन हे; क्योंकि जल, अग्निसे भारी हे. पानीमेंका तेल उपर-को आजाता हे. पानी गरम करें तो पहेले उपरका भाग गरम होगा, नीचेका ठंडा रहेगा ॥ २२३ ॥ गति कोई न कोई निमित्तसे होती हे अर्थात गति होनेमें वा बंद पडनेमें वा न होनेमें कोई न कोई निमित्त होता हे, यह नियम हे. अर्थात स्वयं स्वभावतः गति नहीं होती ॥ २२४ ॥ ईथर, पृथ्वी ओर तद्गत पदार्थ हवा, विद्युत, अग्नि, शब्द, प्रकाश वगेरेमें जो गति होती ह वे सब कोई न कोई निमित्त (फोर्स वगेरे) से होती हैं. मकान ठेरे हुये हैं—गति रहित हैं, लोहा पडा हुवा गति रहित हे, हवा चलके बंद पड गई, जीव सुषुप्तिमें गति रहित होगया, इन सबमें निमित्त हैं यद्यपि पृथ्वी हरेक क्षणमें गतिवान हे; अतः उपरोक्त पदार्थ स्थिर नहीं हैं तथापि स्थूलदृष्टिसे ठेरना मानाजाता हे. जो थिरता न हो तो संयोगजन्य घटादि पदार्थहीं न बनें ॥ २२४ ॥ अनेक द्रव्य ओर अनेक गुण जेसे जुदा जुदा धर्म (प्रकार) वाले (धर्म विशिष्ट) होते हैं वेसे गतियें वैधर्म्य विशिष्ट नहीं होती हैं. अर्थात कर्म—गतिओंमें वैधर्म्य नहीं होता, किंतु गतिमात्र समान होती हैं ॥ २२५ ॥ औक्षजनादि द्रव्य हैं परंतु एक दूसरेसे भिन्न प्रकारके होते हैं. रागादि—पीतादि गुण कहे जाते हैं परंतु वे एक दूसरेसे भिन्न प्रकारके होते हैं. तद्वत् अग्नि ओर औक्षजनादिकी योग्यता (गुण) जुदाजुदा प्रकारकी हैं. परंतु उंची, नीची, इधर, उधर, बांकी, टेढी, मंद, तिव्र इन सब गतिओंमें कर्मत्व (देश स्पर्शास्पर्शत्व) ओर प्रकारत्व एक समान हे. इससे स्पष्ट होजाता हे के नीलपीतादिरुप, ईथरकी गतिरुप नहीं हैं किंतु वेसी गति होनेसे एसा भान होता हे. जेसेके आलातचक्र (अग्निका गोलचक्र) वेगसे जानपडता हे वेसे. या तो नीलतादि कुछ ओर वस्तु हैं—याने गतिवानके फारम हैं. सारांश आकाशगत नीलता गतिका फारम नहीं हे. ओर गरमी, विद्युत, शब्दादि यह तमाम दृश्य, किसी एक शक्तिकी गतिओंका फारम नहीं हे, यहभी वैधर्म्याभावसे स्पष्ट होजाता हे. प्रस्तुत नियमपर ध्यान देनेकी आवश्यकता हे ॥ २२५ ॥ गति स्वयं वेग (तिव्रगति) को पेदा नहीं करती ॥ २२६ ॥ किंतु वेग होनेमें अन्य निमित्त होते हैं ॥ जेसे के

जो उपर—आकाशकी तरफ जाती हे वोह भारत निवासीकी दृष्टिमें निचेको जारही हे. एवं अमेरिकागत जल—वर्षा हिंदकी तरफ याने उपरको आरहा हे, हिंदका जल नीचेको जारहा हे. इसीप्रकार जापान वगेरेके देश—दिशाका विचार करके सूत्रका अर्थ करना हे

उपरसे नीचेको आवें वा उपरसे गोली डालें तो आकर्षणादिके बलसे पूर्वसे ज्यादा ज्यादा वेग होताजायगा एवं अन्यत्रभी जानलेना चाहिये. ॥ २२६ ॥ जब दूसरा पदार्थ टकरावे तब पहेले पदार्थमें गति पेदा होती हे. या कोई संबंधपाके खिंचे तब गति होती हे ॥ २२७ ॥ जब दंडा, गेंदसे टकराता हे तब गेंदमें ओर जब चंबुककी विजली, लोहेके साथ संबंध पाके उसे खेंचती हे तब लोहेमें गति होती हे ॥ २२७ ॥ दो टकरानेवालोंमें एक दूसरेकी शक्ति (बल) का बदल हुवा हो इसलिये गतिका वेग हुवा हे, एसा नहीं हे किंतु पहले धक्के (टक्कर) के पीछे गति बढनेमें अन्य निमित्त होते हें ॥ २२८ ॥ उपरसे नीचे आने वास्ते वेगकी अधिकताका कारण उपर कहा. नीचेसे उपर जानेमें धक्केसे ईथरमें जो उंची लचक पेदा हुई सो निमित्त हे. ओर गेंदको दंडेद्वारा फेंकने समय जोरके धक्केसे जो बलवान लचक पेदा हुई सो हे. ओर गोल होनेसे गेंद वा चक्कर लुढकताभी हे. सारांश बलके विनिमय होनेसे गति नहीं होती हे ॥ २२८ ॥ क्योंकि गुण, शक्ति, ओर गति अपने गुणि, शक्तिमान, क्रियावानको छोडके अन्यत्र नहीं जाते वा नहीं जा-सकते, यह बात अनाधार (३३२) नियम बतारहा हे; अतः किसी (दंडे, हाथ, वगेरे) का बल वा किसी (दंडादि) की गतिके विनिय होनेसे गति होना अ-सिद्ध हे ॥ २२९ ॥ जेसे गतिके प्रवाहमें अन्यनिमित्त हें वेसे उसके अभावमेंभी निमित्त होते हें याने उन निमित्तोंका अभावही निमित्त हे. डोरेके बांधके दो गोली अधर लटकाके दोनोंको अथडावें तो अंतमें वे अपने केंद्रमें कुछ टेढी रही हुई ठेर जावेंगी; क्योंकि ईथरकी लचक कम पडजानेसे उनमें गति न होगी. ओर यथा गुरुत्व एक दूसरेकी तरफ सूक्ष्मरुपमें टेढी रहेंगी. जो दोनोंमेंसे एकमें स्याहीकी बिंदु लगादोगे तो संयोग स्थानपर वोह बिंदु कुछ चोडी होजायगी, इसका कार-णभी लचक हे. जेसे ईथर, प्रकाश ओर शब्द तथा विजली वगेरेको ईधर उधर पहोंचाने याने गति कराके लेजानेमें निमित्त होता हे वेसे यथाफोर्स (धक्का, दबाव) गति होनेमेंभी निमित्त होता हे. सारांश गुरुत्व, शेषाकी लचक, इन उभय जन्य दबाव तथा खेंचान ओर फोर्स यह चार गति करानेमें मुख्य हेतु हें, ओर इनका न्यूनाधिक्य वा असंबंध गतिके अभावका निमित्त हे. नहीं के बलका बदल वा बलका नाश निमित्त हे (विशेष मूलमें) ॥ २२९ ॥ एककी क्रियासे उसके अनेक संबंधिओंमें गति होजाती हे ॥ २३० ॥ जेसे के प्राणकी गतिसे शरीरके अनेक अवयवोंमें गति होजाती हे ओर बाहिरके अंतरिक्षगत जो परमाणु मंडल

उसमेंभी गति होजाती हे ॥ २३१ ॥ स्टीमरमें मुसाफर हे, उसकी एक गति स्टीमरके साथ हे दूसरी अपनी गति हे याने स्टीमरमें फिरता हे सो गति हे; परंतु शरीरका देश स्पर्शास्पर्श उभय प्रसंगमें एकही हे. एक मीनीटमें स्टीमरने जो आधे मीलको काटा, उस आधे मीलके देशसाथ जो स्पर्शास्पर्श हे, उतनाही स्टीमरमें जो १ मीनीटमें सफर किया हे उसमें हे. ओर इस उपरांत शरीरगत यकृत वगेरेकी गतियें तदंतरगत जुदा हें. इसप्रकार एककी गतिसे जुदाजुदा गति होजाती हें ॥ २३१ ॥ गति किसी करण (साधन) द्वारा साध्य होती हे ॥ २३२ ॥ यथा लेखनी द्वारा लिखनरुप गति होती हे ॥ २३३ ॥ मनद्वारा शरीरकी, बलद्वारा घोडागाडीके चार पहैयोंकी ओर पूर्वमें कहे अनुसार हिरण्यगर्भ तथा ग्रहद्वारा सर्व दृश्यकी गति हे ॥ २३३ ॥ जब गतिवानका दूसरेके साथ संयोग होजावे तब, अथवा समान बल होनेपर दूसरे गतिवालेके साथ संयोग स्थित होजावे तब, किंवा किसी निमित्तसे गतिमान ठेरजावे तब, पहेली गतिका अभावभी होजाता हे ॥ २३४ ॥ इस समय—गतिके अभावकालमें पहेली गतिका अन्यमें बदल होगया हो, एसा नहीं हे, यह उपर कहा गया हे. एक गेंद जारही हे, उसकी टक्करसे दूसरीभी चलपडी ओर दोनों मिलके साथसाथभी चली, पुनः दोनों पत्थरसे टकराके अंतमें ठेर गई; एक आदमी चलती गाडीमें गति करके बेठ गया, बेठने पीछे आप गति नहीं करता. इत्यादि प्रसंगोंमें गतिका उपर कहे अनुसार विवेक करना चाहिये ॥ २३४ ॥ गतिवानका किसीके साथ संयोग हो वा किसीसे वियोग हो, यह गतिका फल होता हे. इससे अन्य फल नहीं ॥ २३५ ॥ गतिसे जो दूसरें कार्य होने मानेजाते हें, वे उपचारमात्र वा व्यवहारमें कथनमात्र हें अर्थात गतिके पीछे जो अन्य कार्य होते हें वे द्रव्यों (संयोगियों) के संयोग--वियोग हुये पीछे पदार्थोंकी योग्यता अनुसार होते हें. यथा—औक्षजन, हाइड्रोजनकी गतिके उत्तरकालमें उनके संयोग हुये पीछे प्रवाही दृश्य जल बनता हे. गंधक, शोरे, ओर कोयलेकी गति हुये पीछे उनका संमीलन होनेपर, उडाने—तोडनेवाला बारूद बनता हे. इ. ॥ २३५ ॥

जब एक पदार्थ दूसरेके साथ अथडे तब उस दूसरेकी तरफसेभी यथायोग्यता उसके साथ वेसा कुछ व्यापार होता हे अर्थात प्रत्याघात होता हे, एसाभी नियम हे ॥ २३६ ॥ क्योंकि व्यापक सूक्ष्मा (हिरण्यगर्भ—ईश्वर) में ओर उन उभय मिलनेवालोंमें लचक हे, इसलिये घात होनेपर प्रत्याघात होता हे ॥ २३७ ॥

एक गेंद पत्थरपर मारो तो जोके पत्थर सख्त हे तथापि उसके परमाणुकी तरफसे कुछ न कुछ अदृश्य प्रत्याघात होता हे ओर लचकके सबबसे गेंदको पीछा लोटना पडता हे. जो दो गोली अथडें तो उभयमें घात प्रत्याघात, होता हे. निदान उन उनकी योग्यताके अनुसार घात, प्रत्याघात होता हे ॥ किसीको शब्दद्वारा कटाक्ष किया-जाय वहांभी प्रत्याघात होता हे, परंतु परंपरा संबंधसे होता हे; साक्षातसे नहीं तथा बुद्धा हे; इसलिये अबुद्धा ओर बुद्धाके घात, प्रत्याघातके नियमोंमें अंतर हे. विशेष मूलमें ॥ (यहां ३६३ । ३६६ भी देखलेना चाहिये) ॥ २३७ ॥

संयोग गति विना नहीं ही ॥ २३८ (संयोग) ॥ अधिकरणमें एक-ही ॥ २३९ (एक) ॥ विशेष न होसकनेसे ॥ २४० ॥ ओर अंतराय र-हित विना कार्य न होसकनेसे ॥२४१॥ अव्याप्य वृत्ति ॥ २४२ (अव्याप्य)॥ अपना आप संयोगी नहीं ही ॥ २४३ (असंयोगी) ॥ अनन्य भाव होनेसे ॥ २४४ ॥ ओर संयोग दोकाही होनेसे ॥ २४५ ॥

अर्थ—अंतराय रहित दोके समीप मिलने-जुडनेका नाम संयोग (स्थिति वा अवस्था) हे. संयोग एक वा उभय संयोगीकी गति विना नहीं होता ॥२३८॥ संयोग एक अधिकरण (प्रदेश) में एकही होता हे ॥ २३९ ॥ क्योंकि एकसे अधिक होना असंभव हे-जो अनेक हों तो दोका अंतराय रहित होना नहीं बनता ॥ २४० ॥ ओरभी जो मानें तो दोनों संयोगीके अंतराय रहित हुये विना कार्य नहीं होता अर्थात कार्य नहीं होगा; इसलिये एक अधिकरणमें एकही संयोग होनेका नियम हे ॥ २४१ ॥ दो संयोगियोंका संयोग परस्परमें चारों तरफ नहीं होता; किंतु उनके एक प्रदेशमेंही होता हे; इसलिये संयोग अव्याप्यवृत्ति होता हे ॥ २४२ ॥ कोईभी अपना आप संयोगी नहीं होता अर्थात जो अमिश्रित-निरव-यव तत्व हैं, उनका अपने आपमें संयोग नहीं होता ॥ २४३ ॥ क्योंकि उसमें

२३७—जेसे ज्ञान शक्ति शोधनेका मान आर्यऋषियोंको हे, विजली शो-धनेका मान अमेरिकन (पाताल निवासी प्रजा)को हे, वेसे क्रिया (गति) शक्ति शोधनका मान योरोपीयनोंको हे. उनके गतिजनक संचोंकी रचना सुप्रसिद्ध हे ॥

२४२—जहां आकाश परमाणुका संयोग मानो तहां शून्य—(आकाश-पोल) में परमाणु हे, परंतु परमाणु स्वरुपमें शून्य नहीं हे याने परमाणुका स्वरुप शून्यरुप नहीं हे; अतः दोके संयोगमें शब्दादि नहीं मानसकते. जो मानोगे तो एक देशमें अनेकोंके संयोग मानने पडेंगे ॥

अन्यत्वका अभाव हे. ओर संयोगी स्वरुपतः जुदाजुदा होते हें ॥ २४४ ॥ ओर संयोग दोकाही होता हे, एकका नहीं, वोह तत्व एक स्वरुप हे; अतः अपनेमें अपने संयोगका अभाव हे (अतः जहां अपनेमें अपना संयोग जानपडे वहां उसे सावयव, मध्यम परिणामी जानलेना चाहिये) ॥ २४५ ॥

दो बादलोंका वा दो मींढोंका वा दो प्राणिओंका संयोग दोनोंकी गतिसे होता हे. वृक्ष ओर हाथका संयोग एक–हाथकी गतिसे होता हे. परमाणु ओर आकाशके प्रदेशके साथ संयोग एक परमाणुकी गतिसे होता हे. हाथका वृक्षके फलके साथ साक्षात नहीं; किंतु वृक्षद्वारा-परंपरासे संयोग हे. अंतराय रहित होनेसे साक्षात संबंध सयोगसंबंधही हे (शेष आगे). (शं.) दोके संयोगके मध्यमें आकाश, तम वा प्रकाश हे, जो न हो तो आकाश चालनी समान होगा. (उ.) यदि बीचमें आकाश हो तो दोनोंके संयोग विनाभी कार्य होना चाहिये परंतु नहीं होता; अतः देश नहीं हे. तो पीछे प्रकाशादिकेलिये तो क्या कहना हे. आकाश चालनी समान होगा वा आकाश वस्तु हे वा नहीं; इसकी चर्चाका यहां प्रसंग नहीं हे. तद्वत् उभयके बीचमें यदि हो तो ईश्वर विभु नहीं होना चाहिये. सारांश बीचमें कुछभी न हो उसका नाम संयोग हे. मानो कि एक बिंदुमें असंख्य जीव वा अनेक मन हें अर्थात देशको न रोकनेवाले पदार्थ हें. वहां एक परमाणु जावे तो यदि स्पर्श हुवा हे तो वहां एक कालमें परमाणुके एक प्रदेशमें असंख्य संयोग मान्ने पडेंगे. परंतु एसा मान्ना हाँसी उपजाना हे. ओर यदि उनके साथ परमाणुदेशका स्पर्श नहीं हे, क्योंकि देशको नहीं रोकते, तो उनके साथ परमाणुका संयोगही नहीं हुवा, एसा मान्ना पडेगा. जो एसा मानें तो जीव वा मनपर प्रकृतिका असर ओर प्रकृतिपर जीव वा मनका असर (संबंध) नहीं होता, एसा कहना होगा. परंतु परस्परका असर तो प्रत्यक्ष देखते हें; अतः उस परमाणुका उनके साथ क्रमशः संयोग मान्ना पडेगा. जीव वा मनको गतिकेलिये देश चाहिये, क्योंकि देशके विना गति नहीं होसकती, एसा हे; तो फेर वे देशको नहीं रोकते वा दोके संयोग देशमें वे होंगे, एसा मान्ना हठमात्र हे.

जबके अपनेमें अपना संयोग नहीं तो अपनेमें अपना विभाग-वियोगभी नहीं, ओर संयोग वियोगके विना कार्य नहीं होता, इसलिये संयोग वियोग जन्य यह दृश्यभी किसी एक शक्ति वा एक निरवयव तत्वका कार्य नहीं मानसकते. एवं एक तत्वकी राग-

दि अवस्था सिद्ध नहीं होगी (शेष अन्यत्र.) ॥ (यहां २६३ । २६६ भी देखलेना चाहिये) ॥ २४५ ॥

बलवानका निर्बल भोग्यही ॥२४६ (सबल)॥ यथा पश्वादि ॥२४७॥ न्यायादि तदंगरगत ॥ २४८ (न्याय) ॥ व्यवस्थापकहोनेसे ॥ २४९ ॥

अर्थ—जो बलवान व्यक्ति हे अर्थात जिसके तन, मन, गुण, कर्म (गति), शक्ति, बलवान हें उसकी निर्बलव्यक्ति भोग्यही होती हे ॥ २४६ ॥ जेसे के पशुपक्षी तिर्यकोंमें देखते हें. याने जो बलवान हे वोह निर्बलको भोक्ता हे ॥२४७॥ (शं.) तो फेर न्यायादि निष्फल होंगे. (उ.) न्याय, दया, प्रेम, प्रबंध ओर सभ्यता इनका समावेश उसी नियममें होजाता हे ॥ २४८ ॥ क्योंकि उस बलवानद्वारा इन गुणोंकी व्यवस्था होजाती हे अर्थात अंतमें वोह व्यवस्थापक होजाता हे, इस लिये न्यायादि निरर्थक नहीं किंतु उपयोगी हें ॥ २४९ ॥

वि.—बलवान निर्बलको भोगता हे यह स्पष्ट नियम हे ओर प्रचलित हे (यथा " दंडेव ईश्वर : " अलद्बद्बए रब्बतुन " जिसकी लाठी उसकी भेंस " बलियाके दो भाग " माइटइजराइट " सत्ता करे सो न्याय । इत्यादि वाक्य प्रसिद्ध हें) ॥ छोटे जानवरको बडाजानवर खाता हे वा भोगता हे. कीडेमकोडे, चूहाबिल्ली, बिल्लीकुत्ता, कुत्ता भगेर, चिडियाबाज, मींडकसर्प, बकरीमनुष्य, गायसिंह, इत्यादिका यही व्यवहार देखते हें, बडा वृक्ष छोटे वृक्षका भाग लेलेनेसे उसे नहीं बढने देता. मनुष्य मंडलमें देखिये—जिस पास तन, मन, बुद्धि, धन, विद्या, हुनर, कला, संप इनकी सत्ताका बल हे वा जिस व्यक्तिमें दूसरेसे अधिक योग्यता हे, वोह अपनेसे निर्बल व्यक्ति (कोम—प्रजा) को भोगता हे, ओर जीता हे. जिसमें यह नहीं वा दूसरेसे न्यून हें, वोह व्यक्ति यातो नष्ट होजाती हे या तो पराधीन होके परकी भोग्य होती हे. न्याय, व्यापार, व्यवहार, कुटंब, सोसाईटी, प्रबंध, सभ्यता, दायभाग, ओर पूर्वोक्त तन वगेरेमेंभी यही नियम हे. परंतु जो बलवान हे उसके बलके उपयोगकीभी सीमा हे, तथा नीति न्यायादिभी मनुष्योंमें गुण हें वेभी निरर्थक नहीं होने चाहिये, याने सफल हों यहभी नियम हे, तथा उदय अस्तकाभी नियम हे ओर स्थिति बदलनेकाभी नियम हे; इसलिये कुछनकुछ रुप बदलता हे. यथा बलवानका इष्ट पूरा होनेपर वोह दूसरोंको बहुमान्य नीति, हकपर रखना चाहता हे, उससे न्या-

२४७ । गायका दूध उसके वत्स वास्ते हे. मनुष्यको उसके लेनेका अधिकार

यादिका प्रचार ओर राइटइजमाइटका प्रसार होजाता हे. जो वोह बलवान धमंड, अज्ञानवश एसा न करे वा अन्याय अनीतिकाही सर्वथा सहायक रेह तो जैसे पांच गाय एक सिंहको मारडालती हें वेसे निर्बलोंका जुत्थ सबल होके कोईनकोई प्रकारसे उसको नष्ट करदेता हे ओर न्याय नीतिका बल होजाता हे. निदान इतिहासपरसे एसा जानपडता हे कि युद्ध (शक्तिवाद) यह शांतिका उत्तेजक हे याने बलही न्यायादिका प्रसारक हे; इसलिये युद्धकालमें अशांति (माइटइजराइट) ओर उद्योगकालमें शांति (राइटइजमाइट) होजाती हे ॥ २४९ ॥

देशकी अपेक्षा पूर्ववत्‌ही ॥ २५० (सीमा) ॥ **न्यूनान्यूनताके अभावसे** ॥ २५१ ॥ **ओर स्वरुपाभावके अभावसे** ॥ २५२ ॥ **स्वरुप, अधिकरणसे भिन्न नहीं** ॥ २५३ (अदेश) ॥ **सामग्रीके अभावसे** ॥ २५४ ॥ **यथा योगीका चित्त** ॥ २५५ ॥

अर्थ.—हरकोई परिच्छिन्न वस्तु कहींभी किसी स्थितिमेंभी हो उसको पूर्व जितनेदेश (क्षेत्रफल) की अपेक्षा होती हे ॥ २५० ॥ क्योंकि देश, स्थितिके बदलनेसे उसमें न्यूनाधिकता नहीं होती ॥ २५१ ॥ ओर उसके स्वरुपके अभावका अभाव होता हे याने देशस्थिति बदलनेसे उसका स्वरुप नष्ट नहीं होता ॥ २५२ ॥ जो स्वरुप हे वोह अपने स्वरुपअधिकरणसे भिन्न नहीं होता ॥ २५३ ॥ क्योंकि सामग्रीका अभाव हे ॥ २५४ ॥ जेसे के योगियोंके चितका व्यवहार होता हे ॥ २५५ ॥

वि.—जो १ फुट लंबा, १ फुट चोडा, ९ इंच मोटा सोनेका पतरा हो तो उसका क्षेत्रफल पावफुट होगा. इसका एक लंबा पतलेमें पतला तार करें वा गलाके छोटेसे छोटा गोला बनावें तो तार ओर गोलेका क्षेत्रफल पाव फुटही होगा याने

नहीं, तद्वत बेलको जोडने बधिया करने, घोडेपर चढने उसे बधिया करने, मध (शहेद) लेके खाने, वा रेशमके कीडे मारनेका, हक नहीं हे. ओर परके मांस खानेकाभी हक नहीं हे; परंतु मनुष्य बलिया, इसलिये उसने अपना हक बनालिया. हम, गाय, बेल, अश्व, भेंस, बकरीको पालते-पोषते हें इसलिये अर्थाअर्थी होनेसे हमारा हक हे; इत्यादि बातें बनाता हे. (शं.) जो एसा न करें तो जीवन न हो, कुदरत वा ईश्वरने एसाही करना बताया हे. (उ.) वनस्पतिसे जीवन होसकता हे. न जीसको तो क्या दूसरेका हक लेके जीना ! ! कुदरतने बनाया, इसीका नाम माइटइजराइट हे. अर्थात न्याय नीतिपनेका दावा मत करो ॥

उसने पाव फुट देश रोका हे. १ तोला गासलेट वा पानीने जितना देश अब लिया हे, उतनाही गेसरुप होनेपर लेगा. कीडीवाले जीव वा मनने जितना क्षेत्र लिया हे उतनाही हाथीके शरीरमें लेगा ओर हाथीवाला जीव, कीडीके शरीरमें लेगा. एसेही मोक्षादि प्रसंगमें जानलेना चाहिये. ओर जो एसा नहीं मानो तो कीडीवाला जीव, हाथीके शरीर जितना परिणाम नहीं पासकता, यही कहना पडेगा. वा अणुमात्र जीव हे, मध्यम नहीं; यह कहके पीछा छुडाना पडेगा.

जीवका स्वरुप केसाभी (देश न रोके, सूक्ष्म, चेतन, अप्राकृतक, इत्यादिरुप) मानो, परंतु वोह दो परमाणुके संयोगदेशमें नहीं आसकता. यदि देश नहीं रोकता; इसलिये दोके बीचमें रहना मानें तो परमाणुजन्य कार्य न होगा तथा दूरस्थ स्वर्ग, नरकादिकाभी जीवपर असर होना मान्ना पडेगा. तथा दो जीवके संयोगमें परमाणु नहीं आसकता, जो आवे तो संयोग न होनेसे कार्य न हो. जो जीव देश नहीं रोके तोही उन दोके संयोगमें परमाणु आसकता हे परंतु कार्य न होगा क्योंकि जीवोंका अंतराय रहित संयोग नहीं हुवा हे. सार यह हे के जीवकोभी पूर्ववत देशकी अपेक्षा हे. इसीप्रकार हरकोई परिच्छिन्न, सावयव, निरवयव, स्थूल, सूक्ष्मके वास्ते (विजली, किरण, ईथर, गुणगुणी, शक्तिशक्तिमान, गरमी, शब्दादि, प्रकाश; अंतःकरण इत्यादि वास्ते) जानलेना अर्थात यदि वे वस्तु हें तो उनको पूर्ववत् देशकी अपेक्षा हे. देशकादेश नहीं होता; अतः उसको देशकी अपेक्षा नहीं. तद्वत जो हो तो ब्रह्मचेतनको देशकी अपेक्षा नहीं ओर कालको देशकी अपेक्षा नहीं. इसका निर्णय अ. ४ में वांचोगे. संक्षेपमें मूलस्वरुप तत्वरुप हे वा अतत्वरुप हे, उसके स्वरुपका अभाव नहीं हुवा हे; अतः गोचर हो वा अगोचर हो, वोह पूर्ववत् देश लेगा. साकार वस्तुको देशकी अपेक्षा न हो अर्थात देश विना गति करसके यह असंभवबात हे. (उपर इशारा किया हे).

योगी अनेक चित्त उत्पन्न करके उनको परदेशमें भेजके अन्य देशस्थ पदार्थोंका वहांही भाग भोगता हे ओर ज्ञान करलेता हे; किंवा विधायक (मेस्मरेजर) का विधेयभी एसा कुछ करता हे, इसप्रकारके लेख वा दंतकथा वा मान्यता सृष्टि नियमके विरुद्ध हे; क्योंकि २५३ अनुसार उस योगीका जीव परदेशमें नहीं हे किंतु शरीरमें हे, अथवा शरीरमें नहीं हे वहां हे; एसा होसकता हे. नहीं के यहां रहे हुये परदेशस्थको भोगे. जीव बनानेकी सामग्रीभी योगीके पास नहीं हे. बात यह हे कि योगी वा विधेय शुद्धचित्त होता हे, अतः दूरस्थ विषयोंके फोटो-लहेर जो

ईथरमें होते हैं, उनको वोह जानलेता हे; इसीका नाम भोग हे. नहीं के दूरस्थ विषयका व्यय होता हे. यदि दूरस्थ वस्तु वहां न रहे ओर योगी पास आजावे तो वहां अन्य कारण होना चाहिये, नहीं के यहां बेठे हुये, योगी लेआया. कोठडीमें योगीका शरीर बंद हे तोभी वोह शरीर बाहिर निकलआता हे, एसीएसी बातेंभी सीमा नियमके विरुद्ध हें॥ इस विषयको नियममें जनानेका आशय यह हे के कोई अयुक्त दृष्टांत देके समय खराब न करे. यथा स्व अभावाधिकरणमें प्रतीति, यह अध्यासका लक्षण करें तो समीचीन नहीं; क्योंकि अदेश नियमके विरुद्ध हे; किंतु डोरीमें सर्प नहीं हे वहां अवश नाम कल्पन हे. नहीं के स्वाभावाधिकरणमें सर्प आके प्रतीत होने लगा. वहां तो डोरीही प्रतीत होती हे ओर सादृश्यदोष होनेसे सर्प नाम कल्पा गया हे ॥ २५५ ॥

अन्योऽन्याश्रयका अभावही ॥ २५६ (अनाश्रय) ॥ आत्माश्रय ओर अनवस्थाकी आपत्तिसे ॥२५७॥ ओर मूलाधारके विना असिद्धिसे ॥२५८॥ शरीरअवयव वत् ॥ २५९ ॥ ओर सूर्य भूमी वत् ॥ २६० ॥

अर्थ—एक दूसरे ग्रह (गोले) वा अन्य हरकोई वस्तु परस्परके आश्रय (आश्रित–आधार–आधेय) होसकते हों, एसा सृष्टिनियम नहीं हे (किंतु किसी स्वतंत्र--स्वयं मूलाधारके आश्रित होके अन्योऽन्यके आश्रय होसकते हें एसा नियम हे, सो आगे वांचोगे) ॥ २५६ ॥ क्योंकि मूलाधार हुये विना अन्योऽन्याश्रय मात्रेमें आत्माश्रय, (चक्रिका) ओर अनवस्था दोष आता हे ॥ २५७ ॥ ओर अन्योऽन्याश्रयकी सिद्धि किसी मूलाधारके विना नहीं होती. अतः अन्योऽन्याश्रय इस मंतव्यकी असिद्धि हे ॥ २५८ ॥ जेसे के शरीरके अवयव मूलाधारके आश्रित हुये अन्योऽन्यके आश्रय हें ॥ २५९ ॥ ओर सूर्य, भूमी आदि किसी मूलाधारके आश्रित हुये आश्रय होसकते हें ॥ २६० ॥

वि.—मानलो कि क्ष. ओर ज्ञ. परस्परके आश्रय हें. अब विचारो, क्ष=ज्ञ+क्ष का आश्रय हे अथवा केवल ज्ञ का ही आधार हे. पहेले पक्षमें क्ष. अपनाभी आधार ठेरनेसे आत्माश्रय दोष आया. दूसरे पक्षमें क्ष, ज्ञ. का आधार हुवा ओर अपना आप आधार रहा अर्थात अन्योऽन्याश्रय सिद्ध न हुवा. इसलिये क्ष का अन्य याने तीसरा त्र आधार माना ओर त्र का ज्ञ माना अर्थात ज्ञ=त्र+क्ष+ज्ञ का आधार ठेरा. अब जो ज्ञ को तीनों (ज्ञ. सहित) का आधार मानें तो पुनः आत्माश्रय दोष आता हे. ओर जो ज्ञ रहित दोनोंका आधार मानें तो ज्ञ अपना

आप आधार ठेरेगा. इसलिये उसका चोथा, इसका पांचवा एसे धारा मानें, तो अनवस्था दोष आवेगा अर्थात कुछभी व्यवस्था न होगी. अंतमें मूलाधार कोई मान्ना पडेगा. उसके माने पीछे अन्योऽन्याश्रय मानसकेंगे. जेसे भूमीपर दो लकडीके किनारे मिलाके खडी करें तो एक दूसरेको न पडने देंगी--परस्परकी आश्रय होजायँगी; क्योंकि दोनों पृथ्वीपर टिकी हुई हें. शरीरके अवयव (होजरी, यकृत, हृदय, तिल्ली, फेफसा, मगज, हस्त, मुखादि) एक दूसरे द्वारा पोषण पाते हें ओर जीते हें याने परस्परके आश्रय हें, परंतु आरंभमें किसी दूसरी सामग्रीसे बनेथे, पीछे एक दूसरेके पोषक हुये हें. भूमी, चंद्र, सूर्यादिभी एसेही हें अर्थात् शेषाके आधार हुये उसकी लचक ओर अपनी गुरुत्वशक्तिसे एक दूसरेकी गतिके कारण हें. (शं.) सूर्य अपने आप आधार हुवा सबको अपनी आकर्षणशक्तिसे धारे हुये हे याने आधार हे. (उ.) यहां अन्योऽन्याश्रयका विषय हे. स्वयंभू आधारकी चर्चा आगे आवेगी, वहां उत्तर होगा. यहां इतना कहना बस हे कि परिच्छिन्न गतिमत सूर्य, अपना आप आधार नहीं होसकता.

(शं.) जीवोंका व्यवहार ओर जीवन एक दूसरेके आधार हे (उ.) नहीं. अकेला मनुष्य पृथ्वीके आश्रित वनस्पतिसे जीसकता हे. ओर जो व्यवहार परस्परके आश्रय (व्यवहार) हे वोह पराश्रित हुवा हुवा हे. विशेष मूलमें ओर बस. में हे ॥ २६० ॥

परिच्छिन्न गतिमत आधेयही ॥ २६१ (आधेय) ॥ **अनाधारत्वकी अव्याप्तिसे** ॥ २६२ ॥ **नित्य एक दिशामें गमन नहीं** ॥ २६३ (अगमन) ॥ **व्यवस्था दर्शनसे** ॥ २६४ ॥ **आश्रितमें स्वाश्रयका नियामकत्व नहींही** ॥ २६५ (अनियामक) ॥ **यथा आकर्षणादिमें** ॥ २६६ ॥ **ओर अन्योऽन्याश्रयमें** ॥ २६७ ॥

अर्थ—जो पदार्थ ससीम ओर गतिवान होता हे वोह किसीके आश्रित (आधेय) ही होता हे ॥ २६१ ॥ क्योंकि दृश्य जगतमें कोई परिच्छिन्न गतिमान आधारके विना रहता हो, इसकी अव्याप्ति देखते हें ॥ २६२ ॥ (शं.) हरेक परमाणु, ग्रह, उपग्रह, नित्य किसी एक दिशामें जारहें हों, एसा क्यों न मानाजाय अर्थात आधार मान्नेकी अपेक्षा नहीं रहती. (उ.) ब्रह्मांड वा उसके किसी अंगका नित्य एक तरफ गमन होता हो, एसा सिद्ध नहीं होता ॥ २६३ ॥ क्योंकि ग्रहोंकी उनकी गतिकी ओर सृष्टिप्रबंधकी सनियम व्यवस्था देखते हें ॥ २६४ ॥ जो नित्य ग-

मन होता तो ग्रहोंकी सनियम वक्रगति न होती. ओर अंतके ग्रह अपनी सींमामें न रहते; क्योंकि आकर्षणका उत्तर बंध नहीं हे. ओर गरमी दूर पडजाती. ओर सबसे बडा सूर्य कभीका जुदा होके नीचे चला जाता, क्योंकि वोह अन्योंसे भारी हे. परंतु एसा कुछभी नहीं देखते; इसलिये नित्य एक दिशामें गमन मान्ना समीचीन नहीं हे. (शं.) जेसे एक गेंदमें दाने हों वोह गेंद दानों सहित जाती हे वेसे आकर्षणबद्ध ब्रह्मांडरुपी गेंद, सूर्यादि दानों सहित एक तरफ जारही हे, एसा क्यों न मानाजाय? (उ.) अन्योऽन्याश्रयके अभावसे आपकी शंकाका उच्छेद होजाता हे. याने ग्रह समूहकी गेंद मूलाधारके विना सिद्ध नहीं होसकती ॥२६४॥

जो आप किसीके आश्रित हे वोह अपने आधारका नियामक हो, एसा नहीं होसकता ॥ २६५ ॥ जेसे के आकर्षण (गुरुत्वशक्ति), गुण, शक्ति, कर्म (गति), विद्युत, हिरण्यगर्भ (ईथर), धर्म ओर स्वभाव यह हरेक अपने २ आधारका--याने जिसकी गुरुत्व नामा शक्ति हे उस आकर्षणवालेका (ग्रह, उपग्रहका), अपने गुणीका, अपने शक्तिमानका, अपने क्रियावानका नियामक नहीं होसकता. एवं परिच्छिन्न विजली, चंबुकका ओर हिरण्यगर्भ अपने मूलाधारका[१] ओर धर्म अपने धर्मीका ओर स्वभाव अपने स्वभाववानका नियामक नहीं होता; क्योंकि आकर्षणादि द्रव्यादिके आधेय हें, इसलिये उनके आधार वा उनके नियामक नहीं होसकते. उनसे इतर अन्य द्रव्योंके किसी अंशमें नियामकत्वके भावसे निमित्त हों, यह दूसरी बात हे. (आकर्षणादि नियामक ओर आधार नहीं, इसका विशेष बयान अ. ३ में भी वांचोगे) ॥ २६६ ॥ तथाहि जो अन्योऽन्याश्रय माने जाते हें वे अपने आश्रयके नियामक नहीं होते किंतु उपर कहे अनुसार अन्यके आश्रित हुये एक दूसरेके सहायक होसकते हें, परंतु स्वतंत्र नहीं ॥ २६७ ॥ सार यह आया कि ब्रह्मांडगत द्रव्यों (ग्रहादि)के जो आकर्षणादि सो द्रव्यादिकोंके स्वतंत्र आधार वा नियामक नहीं हें; किंतु सबका कोई अन्य नियामक, आधार होना चाहिये. ओर फेर तदाश्रित हुये परस्परके सहायक होसकते हें ॥ (शं.) जेसे जीव, शरीराश्रित रहा हुवा शरीरका, ओर ड्राइवर, अंजनका आश्रित हुवा अंजनका नियामक हे, एसे ब्रह्मांडगत गोलोंके वास्ते ज्ञातव्य हे. (उ.) जीव शरीरके विना रहसकता हे तथा शरीरका तमाम भाग तदाश्रित नहीं हे किंतु कुदरतभी नियामक हे. तद्वत् ड्राइवरभी जुदा रहसकता हे ओर स्टीमादिका उपयोग लेता हे. तथा शरीर, अंजन

[१] मूल असीम स्वयंभुरुप आधारका विस्तार ब्रस. सू. २६८ से २८० तकमें हे.

भूमीके आधेय हैं. इस रीतिमें जीव, ड्राइवरभी पराश्रित हैं, इसलिये आपकी शंका ओर दृष्टांत, विषम होनेसे उत्तरके योग्यही नहीं हे. ॥ २६७ ॥

मूलाधार स्वयंभ्वादि विशेषणवान एक ॥ २६८ (आधार) ॥ **आधेय नियम ओर व्यवस्थासे** ॥ २६९ ॥

अर्थ.—आधेय अधिकरण यह बताता हे कि ब्रह्मांडका कोई मूलाधार होना चाहिये; वोह स्वयंभु (अनुत्पन्न), असीम (अपरिच्छिन्न), पूर्ण, अचल सम ओर चेतन एसे विशेषणवाला होने योग्य हे अर्थात सर्वाधार एसाही हे (वा नियमसे एसा होना चाहिये) ॥ २६८ ॥ क्योंकि आधेय नियम (२६१) ओर जगतकी व्यवस्था एसाही बताती हे ॥ २६९ ॥

वि.—मूलाधार होनेकी सूचना पूर्वके आधेय अधिकरणने की. ओर पूर्वोक्त आकर्षणादिसे व्यवस्था न होना तथा जगतकी व्यवस्थाका दर्शन यह नियम बताता हे कि मूलाधार स्वयंभ्वादि लक्षणवाला होना चाहिये. वोह स्वयं आधाररुप ओर अनादि हे; जो वोह एसा न हो तो आधेय होगा; उससे अनवस्था चलेगी, तथा सादि, सर्वाधार नहीं होसकता. वोह असीम हे; जो ससीम (साकार) हो तो आधेय हो. वोह पूर्ण हे; यदि एसा न हो तो दरेक परमाणुका आधार न होसकेगा; अर्थात सबमें ओर उनसे बाहिर एसे विभु हो तोही सर्वाधार होसकता हे; जो टेबल, कागजके समान आधार हो तो परिच्छिन्न होनेसे आधेय होगा. वोह अचल हे; जो सक्रिय हो तो परिच्छिन्न होनेसे आधेय होगा. वोह सम हे; यदि एसा न हो तो चालनी जैसा स्वगत भेदवाला होनेसे परिच्छिन्न होगा. वोह चेतन हे; यदि एसा न हो तो जड आकाशके समान आधेयको मर्यादामें न रखसकेगा; आकाशमें अवकाश देनेकी योग्यता हे, आधेय रखनेकी नहीं हे; अतः वोह आकाश वा आकाशवत जड नहीं हे. उसमें आकर्षण वगेरे योग्यता हें ओर वे अचिंत्य हें; जो योग्यता न हों तो दृश्य मर्यादामें न रहे. इसप्रकारका वोह अधिष्ठान (आधार) हे. (शं.) जबके वोह पूर्ण सम हे तो भेद ३८२ नियम बाधक होगा. (उ.) इसका समाधान आगे वांचोगे ॥ यहां मूलाधारका वर्णन आधेयादि नियमकी अर्थापत्ति हे. स्वतंत्र प्रकरण (वा नियम) नहीं हे. विशेष अ. ३ में ॥ २६९ ॥

कारण विन कार्य नहींही ॥२७०॥ (कारण) **व्याप्ति दर्शनसे** ॥२७१॥ **साधारणादि कारण दो** ॥ २७२ (मुख्य) ॥ **प्रत्येक दो दो प्रकारके**

॥ २७३ (गौण) ॥ **असमवायी तदंतरगत होनेसे** ॥२७४ (असमवायी)॥ **कार्यसे पूर्वही** ॥ २७५ (अव्यवहित) ॥ **उभय सापेक्षक** ॥ २७६ (अपेक्षा)॥ **अन्यथा कार्य न होनेसे** ॥ २७७ ॥ **यदि स्वतंत्र असंगभी दोनोंमेंसे एक** ॥ २७८ (असंग) ॥ **निष्फलत्वके अभावसे** ॥ २७९ ॥

कार्यकी स्वयं अनुत्पत्ति ॥ २८० (अस्वयं) ॥ **कारणकी व्याप्तिसे** ॥ २८१ ॥ **निमित्त वा उपादानमात्रसे** ॥ २८२ (मात्र) ॥ **सापेक्षक होनेसे** ॥ २८३ ॥

अर्थ—उपादान वा निमित्तकारणके विना कोईभी कार्य नहीं होता ॥ २७० ॥ क्योंकि एसीही व्याप्ति देखते हैं. उन उभय विना कार्य होनेकी व्याप्ति नहीं देखते वा सिद्धि नहीं होती ॥ २७१ ॥ वे कारण साधारण ओर असाधारण एसे दो प्रकारके होते हैं ॥ २७२ ॥ साधारणभी दो प्रकारका होता हे, साधारण उपादान ओर साधारण निमित्त; तथा असाधारणभी दो प्रकारका होता हे, असाधारणउपादान ओर असाधारणनिमित्त ॥ २७३ ॥ तीसरा असमवायीकारण कहाता हे उसका समावेश उक्त कारणोंमेंभी होजाता हे. इसलिये मुख्य दोही कारण हैं ॥ २७४ ॥ कारण, कार्यसे पूर्व समीपमेंही होता हे, एसा नहीं हो तो कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ २७५ ॥ उपादानके विना केवल निमित्तद्वारा कार्य नहीं होते ओर निमित्त बिना केवल उपादानमेंसे कार्य नहीं होते; इसलिये दोनों कारण एक दूसरेकी अपेक्षावाले होते हैं ॥ २७६ ॥ क्योंकि जो इनमेंसे एकभी न हो तो कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ २७७ ॥

(२७० से २७७ का विवेचन)—न होके जो हो ओर होके जो न रहे उसे अर्थात मूलतत्वोंकी रचना, अवस्था वा परिणामको **कार्य** कहते हैं (यथा घट ३५० देखो). जिसमेंसे वा जिसद्वारा कार्य हो उसे **कारण** कहते हैं. सो कारण दो प्रकारका होता हे. जिसमेंसे उपादेय (कार्य—परिणाम) बने उसे **उपादान** कहते हैं (यथा मिट्टीका पिंड घटका ओर पानी बरफका उपादान हे). जिसद्वारा कार्य बने उसे **निमित्त**कारण कहते हैं. (यथा घटका निमित्तकारण कुम्हार हे). उपादान (समवायकारण) अपने उपादेयमें अनुमेय होता हे याने अभिन्न होता हे—उभयका भिन्न स्वरुप नहीं होता. ओर निमित्तकारण, कार्यसे भिन्न होता हे—भिन्न होके कार्यका निमित्त होता हे. यह उभयमें अंतर हे. उपादानके दो भेद हैं. जो सबका उपादान हो (वा मानाजाय) उसे व्यवहारमें साधारणउपादान कहते

हैं (जेसे के सत्व-रज-तम मिश्रित समूह प्रकृति वा जगतका उपादान जडवादिकी शक्ति). जो अमुक कार्यकाही उपादान हो उसे असाधारणउपादान कहते हैं (यथा बडकाबीज बडवृक्षका, जल बर्फका, माटीकापिंड घटका असाधारण उपादान हे). निमित्तकारणभी दो प्रकारके होते हैं. जो सब कार्यमें निमित्त हो उसे साधारणनिमित्त कहते हैं (यथा देशकालादि). जो अमुक कार्यकाही निमित्त हो उसे असाधारणनिमित कहते हैं (यथा घटका निमित्तकारण कुम्हार). उपादानसे पेदाहुवा कार्य होनेमें उपकारक ओर कार्यके साथ रहनेवाला जो हो उसे **असमवायी**कारण कहते हैं (यथा दरेक कार्यमें परमाणुओंका संयोग वा घटोत्पत्तिमें दोकपालोंका संयोग असमवायीकारण हे). दोके संयोगके विना कार्य नहीं होता ओर कर्त्ताकी इच्छाके विना उद्देश्य कार्य नहीं होता; इसलिये संयोग ओर इच्छाकोभी असमवायीमें गिनते हैं. परंतु इस असमवायीका समावेश उपादान ओर निमित्तमें होजाता हे, तथा किसी प्रयोजनसे कार्य कियाजाता हे उस (उद्देश्य) कारणकाभी समावेश निमित्तमें होजाता हे. इनसे इत्तर कारणोंकाभी समावेश इन दोनोंमें होजाता हे ॥

पृथ्वी, सूर्यका उपादान परमाणुपुंज वा प्रकृति. निमित्त सजातीयकी स्नेह आकर्षण, घात प्रत्याघात, गरमी ओर हिरण्यगर्भकी लचक तथा मूलाधार. हवा चलनेमें गरमी ओर पृथ्वीकी गति निमित्त हे. हवा उपादान हे. इसीप्रकार वर्षादि, बीजवृक्षादि ओर जन्यजनकादिमें यथायोग्य घटालेना चाहिये. जालेका उपादान मकडीका शरीर, ओर शरीरगत इच्छावान शरीरी निमित्त हे. लटभ्रंग प्रसंगमें भ्रंग निमित्त ओर लटउपादान हे. ज्ञान उत्पत्तिमें विषयविषयीका सन्निकर्ष निमित्त हे, जीववृत्ति (मगज वा) उपादान हे. चोरी नाम कार्यका उपादान वस्तुका ग्रहण होना ओर निमित्त चोर हे. उसकी शिक्षा होनेका प्रकार यह हे-चोर कर्म तो नष्ट होगया परंतु अद्रष्ट संस्कारादि सामग्री अंतःकरणादिमें होती हैं; सो जेसे बावले कुत्तेके काटेहुयेको जलादि प्रसंग पानेपर कालांतरमें विष होता हे एसे फलप्रद होपडती हैं. संयोग होनेमें उभयसंयोगी उपादान; इच्छा, फोर्स, देशकालादि निमित्त हैं. जल होनेमें अमुक मापके औषजन, उदजन, उपादान ओर फोर्सादि निमित्त हैं. लोहचंबुककी गति होनेमें विजली, आकर्षण निमित्त हैं. गतिका उपादान (विजली ओर) लोहा हे. एवं अन्यत्रभी यथायोग्य योजलेना ॥ २७७ ॥

जो किसीकी द्दष्टिमें कोईको कारणकार्यभावरहित, स्वतंत्र, असंगभी मान-

लियाजाय तो वोहभी उपादान वा निमित्त इन दोमेंसे एक प्रकारका अवश्य होगा ॥२७८॥ क्योंकि निष्फलत्व (१२७)का अभाव हे ॥२७९॥ जेसे के आकाश, निर्लेप हे तथा अवकाशप्रद होनेसे गति होनेमें निमित्त हे, अनुपयोगी नहीं हे. जो वोह असंग, उपयोगी नहीं हे किंतु केवल आपही आप हे तो उसकी हस्तिभी नहीं हे अर्थात कल्पनामात्र हे, एसा जानलेना चाहिये ॥ २७९ ॥

कोईभी कार्य अपने आप (स्वभावतः) उत्पन्न नहीं होता ॥ २८० ॥ क्योंकि उपर कारण नियममें कहे अनुसार कार्य होनेमें कारणकी व्याप्ति हे ॥२८१॥ उत्पत्तिके पूर्व अपनी गेरहाजरी हे-आप केसे उत्पन्न होगा? नहीं. हरकोई संयोग-वियोग, परिणाम, गति वा फारम, कारणके विना नहीं होसकते, यह उपर कहा हे ॥२८१॥ अकेले निमित्त वा अकेले उपादान मात्रसेभी कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ २८२ ॥ क्योंकि कार्य होनेमें उभयकी अपेक्षा हे-एक दूसरेकी अपेक्षावाले हें ॥ २८३ ॥ जेसे के घटोत्पत्ति, अकेले कुम्हार वा अकेले मृतिका पिंडसे नहीं हो-सकती. वेसेही अन्य प्रसंगमेंभी यथायोग्य जानलेना चाहिये ॥ २८४ ॥

तब हो कि, जब कुछ होही ॥ २८५ (पूर्व) ॥ **भावत्वकी व्याप्तिसे** ॥ २८६ ॥ **अभावसे भावरुप न होसकनेसे** ॥ २८७ ॥ **ओर अभाव भावका विरोध होनेसे** ॥ २८८ ॥ **उसमें उसकी योग्यता ओर अधिकरणता** ॥ २८९ (प्राक्) ॥ **अन्यथा कार्य न होनेसे** ॥ २९० ॥ **उपयोग निमित्त ओर नियमसे** ॥ २९१ (पश्चात) ॥ **न्यून नहीं** ॥ २९२(अन्यून) ॥ **स्वरुप होनेसे** ॥ २९३ ॥ **तिसके अभावसे उसका अभाव** ॥ २९४ (निःशेष) ॥ **न उलटा** ॥ २९५ (विद्यमान) ॥ **द्रव्यका द्रव्य गुणका गुण** ॥ २९६ (द्रव्य) ॥ **उपादान नियमसे** ॥ २९७ ॥ **स्वकार्यका अविषयही** ॥ २९८ (अविषय) ॥ **पूर्व ओर स्वरुप होनेसे** ॥ २९९ ॥ **असत्से असत्की अनुत्पत्ति** ॥ ३०० (शून्य) ॥ **वस्तु न होनेसे** ॥ ३०१ ॥

अर्थ—जब कुछ भावरुप वस्तु हो तबही कुछ भावरुप (कार्य-रुप-रचना-परिणाम-अवस्था-गति-फारम) होता हे, अन्यथा नहीं होता ॥ २८५ ॥ क्योंकि भाव (अस्ति) पनेकी व्याप्ति देखते हें. अर्थात जब कुछ हो तबही प्रतीत होता हे ॥ २८६ ॥ अभाव (शून्य-असत्) से भावरुप पदार्थ नहीं होते, इसलिये कुछ भावरुप पदार्थ हो तबही कुछ भावरुप बनता हे ॥ २८७ ॥ ओर अभाव भावका विरोध हे अर्थात जहां (किसीका) भाव वहां (उसका) अभाव ओर जहां अ-

भाव वहां भाव नहीं होता, इसलियेभी भावरुप कुछ हो तबही उससे भावरुप हो. अन्यथा याने अभावसे भावरुप नहीं होता ॥ २८८ ॥ जो अभावमेंसे भावरुप होना मानें तो आकाशमेंसे पुष्पभी हों, औक्षजन, हाईड्रोजनसे गंधकभी होना चाहिये परंतु नहीं होते. अभाव कोई वस्तु नहीं हे किंतु अधिकरणकी बिलक्षणता हे, सो भावरुप होनेसे कार्यकी निमित्त होजाती हे. यथा क. मनुष्यविशिष्ट देश हे, उसके न होनेपर वोह देश पूर्वसे विलक्षण (क. विनाका) जान पडता हे; इस वैलण्यका नाम अभाव हे. जब के अभाव स्वरुपतः कोई वस्तु नहीं तो उससे भावरुप वस्तु केसे होसकती हे? नहीं होसकती. इसलिये उपादान कुछ हो तबही उपादेय होता हे, यह नियम हे. (३१० । २७० देखिये)॥ २८८ ॥ जिसमेंसे (उपादानमेंसे) जो (उपादेय) होता हे उस उपादानमें उस उपादेय होनेकी योग्यता (गुण, शक्ति, लियाकत वगेरे) ओर अधिकरणता (उपादेयरुप होके रहना--समवर्तीता) हमेशे होती हे ॥२८९॥ जो उसमें वोह योग्यता, अधिकरणता न हो तो उससे वोह कार्य नहीं होसकेगा ॥ २९० ॥ यथा--अमूक मापमें औषजन, उदजन मिलें तोही उनसे पानी बने, कम ज्यादा हों तो न बने. इससे अनुमान होजाता हे कि उस-वेसे समूहमें जल होनेकी योग्यता ओर अधिकरणता हे. उभयमें संयोगकी अधिकरणता हे तोही संयोग होता हे, अन्यथा नहीं होता. तमसे प्रकाश नहीं होता, आकाशमें गति नहीं होती; क्योंकि उनमें एसी योग्यता नहीं हे. सजातीयपदार्थोंका भौतिक संयोग होता हे, परंतु रसायणीयसंयोग नहीं होता; क्योंकि एसी अधिकरणता उनमें नहीं हे, विजातीयोंमें हे ॥ २९० ॥

उपादानकी योग्यता ओर अधिकरणताका उपयोग किसी निमित्तसे ओर नियमसे होता हे; नहींके अन्यथा अर्थात् उनमेंसे जो कार्य होते हें उसमें कोई न कोई निमित्त होता हे ओर जेसे उसमें गुणादि हें उनके नियमानुसार कार्य होता हे ॥ यथा कार्य होनेपर उसके अमुक गुण उद्भव ओर अमुक तिरोधित होजाते हें. जेसे के यदि औक्षनका १ ओर हाइड्रोजनके २ परमाणु मिलें तबही जलरुप होगा. जो कमज्यादा मिलें तो न होगा. (हाईड्रोजनके १ में यदि १ वजन हे तो औक्षजनके १ में १६ वजन होता हे एसा हिसाब हे). जसद तांबा मिलनेसे पीतल होगा, सोना तांबा मिलनेसे नहीं होगा ॥ २९१ ॥ उपादान अपने उपादेयसे न्यून परिमाणवाला नहीं होता ॥ २९२ ॥ क्योंकि उपादेय, उपादानका स्वरुपही होता हे ॥ २९३ ॥ सूर्य वा दीपकका प्रकाश, उनका स्वरुप (उपादेय) नहीं किंतु उनसे भिन्न परमाणुओंका पुंज हे.

इसलिये बोह सूर्य वा दीपकसे बडा हे. उपादानसे उपादेय भिन्न नहीं होता, प्रकाश भिन्न हे; इसलिये बडा हे ॥ २९३ ॥ जो उपादानका अभाव (परमाणु समूह-पुंजका विभाग-नाश) होजावे जर्थात उपादानत्व न रहे तो कार्य (उपादेय—रचना) काभी अभाव होजाता हे ॥२९४॥ जेसे के मिट्टीपिंड, छिन्न-भिन्न होजाय तो, घटका ओर औ. उद. के रसायणीयसंयोगका विभाग होजाय तो जल वा बरफका अभाव होजाता हे ॥ २९४ ॥ परंतु कार्य (उपादेयत्व—रचना) के अभावसे मूल उपादानका नाश नहीं होता ॥ जेसे के जलके अभावसे औ. उद.का नाश नहीं होता ॥२९५॥ जहां नवीन द्रव्य वा नवीन गुणादि उत्पन्न होना जानपडे वहां मूलद्रव्य, द्रव्यका ओर मूलगुण (आदि), गुण(आदि)का उपादान होता हे ॥२९६॥ क्योंकि उपादानवत् (३०२) का नियम हे ॥२९७॥ नवीनकी अनुत्पत्ति हे (१३७ देखो). जेसे के घटद्रव्य मिट्टिद्रव्यसे, जलद्रव्य औ. वगेरे द्रव्योंसे, उनघट, जलके गुण, माटी ओर औ. वगेरेके गुणोंसे बनते हें; नवीन नहीं; फारमही नवीन हें. ओर इसलिये उपयोगका भेद हे. उपादान, अवयव, अंग, परिणामी, वा परमाणुपुंज, पर्याय; ओर उपादेय, अवयवी, अंगी, परिणाम, कार्य, विकृति—अवस्था—रचना, संयोगजन्यत्व, पर्याय हें. परंतु एकका दूसरे परमाणुके साथ संयोग कहाजायगा, नहीं के एक परमाणुका परिणाम. ओर समूहात्मक परमाणुपुंजका परिणाम (रूपांतर होना) कहा जासकता हे, न कि संयोग मात्र. इसप्रकार उपादानादि, उपादेयादि शब्दोंको कहां, किसप्रकार बोलना, यह ध्यान रखना चाहिये. वस्तुतः अंतर नहीं हे. (शं.)•कारणकार्यभाव सिद्ध नहीं होता; क्योंकि—(१) अमूर्त्तसे मूर्त्त नहीं होता.[1] (२) एक समान वस्तुसे दो समान नहीं होती. (३) जबतक कारण तबतक कार्यपद नहीं ओर जब कार्य तब कारणपद न रहा. (४) जो उभयसाथ

[1]संक्षेपमें क्रमसे उत्तर—(१) अमूर्त्तका उपादेय नहीं होता परमाणु मूर्त्त हें. (२) नवीनकी उत्पत्ति नहीं, इसलिये दो समान नहीं. (३, ४) स्थितिके अंतर होनेसे व्यवहारमें उपादान, उपादेय संज्ञा हे. (५) कारण स्वतंत्र नहीं हे, निमित्त की अपेक्षा रखता हे. (६) यह दोष जडवादमेंभी नहीं आता; क्योंकि निमित्तोंका उद्भव, अनुद्भव हे. चेतनवादमें तो निमित्त स्वतंत्रभी हे; अतः अनवस्था नहीं. (७, ८) मिश्रणमें जो अनेक द्रव्य उनके गुणोंके उद्भव, तिरोभाव होनेसे नवीन गुणवाला फारम जानपडता हे. तिरोधित होजानेसे सब गुण उद्भव नहीं होते. सब याने आठों प्रकारमें औ. उद. जन्य जल उदाहरण हे.

तो कोन कारण कोन कार्य, यह निश्चय न होगा. (५) जो कारण स्वतंत्र तो नित्य कार्य होना चाहिये, परंतु एसा नहीं होता. (६) जो अन्यकी अपेक्षासे तो अनवस्था चलेगी. (७) जो कारणमें एक गुण तो कार्यमें अनेक गुण कहांसे आये. (८) जो अनेक गुण तो कार्यमें सब नहीं जानपडते; अतः कारणकार्य-भाव असिद्ध हे. (स.) इन सब शंकाओंका समाधान २८५ से ३१९ तकका विवेचन कर रहा हे. नं. १ का समाधान १८० में (अमूर्त्त उपादान नहीं होता). नं. ५ का समाधान २१५, २७६, ३१५ में हे, ओर कार्य कोई स्वयं नवीन नहीं किंतु अवस्था हे (३५०), इसलिये उक्त शंका व्यर्थ हे. इसीप्रकार असत् (कार्य) का प्रादुरभाव किंवा असत्की सत्से उत्पत्ति किंवा पूर्व विद्यमान सत् (कार्य)का प्रादुर्भाव -आविर्भाव, इत्यादि पक्ष हें, वे व्यर्थ जान पडते हें. मुफतकी तकरार (विवाद) हे. कारण, उपादान, उपादेय, स्वरुपज ओर अनुत्पत्तिअधिकरण (सू. ३०७ से ३१३ तक) विचारनेसे इन तकरारोंकी समाप्ति होजाती हे.

कनकद्रव्यसे कुंडलद्रव्य उत्पन्न होता हे, पीतत्व नहीं. पीतलसे कनक पेदा नहीं होता. हलदीमें लाल रंग हे सो चूना मिलनेसे उद्भव होता हे. न के नवीन गुण हुवा हे. संयोग यह कोई पदार्थ वा गुण नहीं हे, किंतु द्रव्योंकी अवस्था विशेष हे; अतः संयोगगुणकी उत्पत्ति वा संयोग यह किसीका उपादान; इत्यादि कथन व्यवहार मात्र हे. तद्वत् गति स्वरुपतः कोई वस्तु नहीं हे. (आगे वांचोगे).

सत्व-रज-तम यह तीनों द्रव्य अनादिसे मिश्रितही रहते हें, एकके विना दूसरा नहीं रहता, परमाणुभी इन्हींका अनादिसे मिश्रण हे, कितनाभी पृथक् करो वा मानो, इन तीनोंका समूह रहेगा, एसा सांख्यानुसार मानें तो परिणाम शब्दका प्रयोग होगा. परंतु जो परमाणुको केवल अमिश्रित माने तो दो परमाणुओंका संयोग, एसा प्रयोग होगा. परमाणु-पुंजके रुपांतर होनेपर परिणाम शब्दका प्रयोग होता हे; अतः यथाप्रसंग लगालेना चाहिये ॥ २९७ ॥

उपादान अपने उपादेयका विषय नहीं होता ॥ २९८ ॥ क्योंकि उस रचनासे वोह पूर्व हे ओर उपादेयका स्वरुप हे ॥ २९९ ॥ जिस रजवीर्यसे शरीर बना हे, उसको शरीर विषय-ग्रहण नहीं करसकता. जितने तत्वोंसे बुद्धि वा मन बना हे, उनको वे नहीं जानसकते. द्रष्टा (३७५) नियमानुसार अपनेको आप नहीं जानसकता; इसलियेभी अपने अभिन्नस्वरुप-कार्यका अविषय हे ॥ उत्पन्न प्रत्यक्ष ज्ञान अपने उपादानभागको, बुद्धि अपने उपादान प्रकृतिको वा उस जेसे अन्यको,

भोग्य, भोक्ता वा भोगको, ब्रह्मजन्य ब्रह्मको, ब्रह्ममायाजन्य ब्रह्म मायाको, जीव उपादेय (मिश्रण) हो तो अपने उपादानको, ज्ञान गुण अपने गुणीको, शक्ति अपने शक्तिवानको ओर ईम्प्रेशन अपने उपादान मगजको विषय नहीं करसकते, यह स्पष्ट हे. ओर इसी कारणसे मतभेद पडरहे हें. विषय शब्दके अर्थ उपर लिखआये हें ॥ २९९ ॥

पूर्वोक्त पूर्व (२८५) नियमसे यहभी स्पष्ट होजाता हे कि असत्की असत्से उत्पत्ति नहीं होती ॥ ३०० ॥ क्योंकि असत् कोई वस्तुही नहीं होती ॥३०१॥ जेसे के डोरीके सर्पसे विष नहीं चढता; स्थाणु पुरुष, पकड नहीं सकता. पूर्वमें ईश्वरसे इतर असत् था उससे यह शून्यरुप (डोरीके सर्प जैसी) जगत पेदा हुई, यह बात इस नियमानुसार असिद्ध हे ॥ ३०१ ॥

कार्य उपादानवत्ही ॥ ३०२ (उपादान) ॥ **न इतर गुण सत्तावाला** ॥ ३०३ (अनवीन) ॥ **न आश्रयादि** ॥ ३०४ (अपरस्पर) ॥ **ओर न विरोधी** ॥ ३०५ (अविरोध) ॥ **अभिन्न स्वरुप होनेसे** ॥ ३०६ (न भिन्न) ॥

अर्थ—जेसी उपादानकी उद्भवयोग्यता होती हे वेसाही उपादेय याने उसका कार्य होता हे ॥३०२॥ उपादेय, उपादानसे इतर प्रकारके गुण सत्तावाला नहीं होता ॥ ३०३ ॥ उपादान ओर उपादेयका, आश्रयआश्रित, संयोगीसंयोग वा व्यापकव्याप्यभाव नहीं होता अर्थात उपादान उसका आश्रय (आधार), संयोगी वा व्यापक हो, एसा नहीं होता ॥ ३०४ ॥ ओर यह आपसमें विरोधी हों एसाभी नहीं हे ॥ ३०५ ॥ (इन चारों बाबतमें हेतु यह हे) क्योंकि उपादेय उपादान—उभय अभिन्न स्वरुप होते हें—वे स्वरुपतः दो वस्तु नहीं होतीं ॥३०६॥

वि.—साकार (मूर्त्त) उपादानसे साकार (मूर्त्त) उपादेय होता हे. तद्वत् भावरुपसे भावरुप, सगुणसे सगुण होता हे. माटी पीत तो घटभी पीत, ताम्र कसेला तो लोटाभी कसेला. जडका जड ओर चेतनका चेतनरुप उपादेय होगा. परंतु जडका चेतन, चेतनका जडरुप नहीं होसकता; क्योंकि उपादान विना नवीन फॉरमकी अनुत्पत्ति हे. जहां कच्चेश्याम घटका अग्निके संबंधसे लालरुप होजाता हे, वहां अग्निके संबंधसे रंगके अवयवका मिश्रण हे. जहां मातापितासे अन्यथा गुणवाली संतान होती हे वहां पूर्वोक्त संस्कारादि हेतुहें, नवीन नहीं. औक्षजन, हाईड्रोजनमें जलत्वरुप नहीं जानपडता, परंतु यह योग्यता तिरोधित होती हे, उभयके रसायणीयमिश्रण होनेपर उद्भव होके जलरुप होता हे अर्थात उनसे अन्यथा नवीनरुप नहीं हे. तथा उभयके

मिश्रणपर अन्य क्षारादि तत्व मिलनेसे स्वाद ओर शीततादि होते हैं. एक कपाल ओर एक परमाणु पानीको नहीं रोकसकता, परंतु घट रोकलेता हे, यह योग्यताभी उपादानसे नवीन नहीं हे; क्योंकि उपादानके अंग (परमाणुमात्र)में नहीं हे; परंतु समूह ओर समूहकी रचनामें हे; अतः इतर नहीं हे. वृक्षके फलका ओर गर्भसे निकली हुई संतानके शरीरका उतनाही उपादान हे जो के उनमें अनुमय हे. नहींके तमाम वृक्ष वा माताका तमाम शरीर; इसलिये नवीनताकी शंका नहीं होसकती. इस नियमसे यहभी सिद्ध होगया के अमूर्त्तसे मूर्त्त ओर मूर्त्तसे अमूर्त्तरुप उपादेय नहीं होता॥ उपादान (परमाणुकासमूह--अवयव--कार्यका अंग, परिणामी, अवस्था धारने योग्य, रचनामें आने योग्य, संयोगजन्यसमूह, प्रकृतिका मिश्रितभाग, मेटर) ओर उपादेय (अवयवी, अंगी, परिणाम, अवस्था, रचना, संयोगज, फारम, कार्य) यह दोनों परस्परमें आश्रय, आश्रितभाववाले वा संयोगी वा व्याप्यभाववाले हें वा उपादान, उपादेयरुप हें; एसा नहीं समझना चाहिये; क्योंकि वे भिन्नस्वरुप नहीं हें, यदि उपादानको निकाल लें तो उपादेय ओर उपादेयको निकाल लें तो उपादान शेष नहीं रहता.-इसीवास्ते यह आपसमें विरोधी हों एसाभी नहीं हे; क्योंकि एकरुप हें, उपयोग ओर व्यवहारकी दृष्टिसे जुदाजुदा नाम रखलिये गये हें. जेसे के शरीरका माथा, हाथ वगेरे. मकडीका जाला, स्त्रीका संतान ओर रेशमके कीडेका तंतु, यह मकडी वगेरेके घातकभी होते हें परंतु जब मकडी वगेरेसे वे जुदा पडगये तब मकडी वगेरे, उनके शरीरके उपादान वा वे उनके विद्यमान अंगके उपादेय नहीं रहे. जेसे के सर्पनी अपने बच्चेको खाजाती हे, वहां वे उभय जुदाजुदा ओर परके ताबे हें. इसलिये मकडी आदि प्रसंगमें विरोध दोष नहीं आता. अपघात करनेमें कर्ता ओर शरीर जुदाजुदा वस्तु हें. माया (प्रकृति) के कार्य परस्परमें विरोधी हें, तहां प्रकृति सावयव होनेसे जुदाजुदा रुपवाली हे अथवा कल्पनामात्र होगी; इसलिये सूत्रका विरोध नहीं आता.

अग्नि, काष्टसे उत्पन्न होके उसीको जलाती हे, वहां अग्नि नवीनोत्पन्न वस्तु नहीं हे, किंतु पूर्वमें हे परंतु तिरोधित हे. जो कदाचित रगड वगेरेका उपादेय होती तो जिन दोकी रगड हुई उन उभयसे जुदा देशमें अग्नि (गरमी) का गमन नहीं होता ओर उन दोनों (रगडवाले) जेसी होती. परंतु गरमी जुदा देशमें चलीजाती हे तथा दोनों जेसी नहीं हे; अतः पूर्वमें जो थी सो उद्भव हुई, एसा हे. तथा असुपादान अभावसे भावरुपकी उत्पत्ति नहीं होती; इसलिये अग्नि, काष्टादिपदार्थोंसे

जुदा द्रव्य हे यही सिद्ध होता हे; अतः काष्टकी दाहक होनेमें सूत्रका विरोध नहीं हे. पटका, तंतु उपादान हे, पट उपादेय हे, अग्निके संयोगद्वारा पट, तंतुके नाशमें निमित्त हे, एसी कल्पनाभी व्यर्थ हे; क्योंकि तंतुका जो दाह सो पटका ओर जो पटका सो तंतुका दाह हे. तंतु निकाले पट ओर पट निकाले तंतु शेष नहीं रहता. एवं अन्यत्रभी यथायोग्य विवेक करलेना चाहिये ॥ जो कारण कार्यका भेद होता तो माटी ओर तदजन्य घटका तथा दूध दहीका संयोग ओर वियोगभी होता परंतु एसा नहीं होता हे. उपादान, उपादेयके भेदसूचक वाक्य (न्यून, अविरोधी, अविषय, नाश, इत्यादि) व्यवहार दृष्टिसे जान्ना; वस्तुतः एसे नहीं हे ॥ ३०६ ॥

असत्की सत्से अनुत्पत्ति ॥ ३०७ (नासत्) ॥ ओर सत्की असत्से ॥ ३०८ (नसत्) ॥ विरोध होनेसे ॥ ३०९ ॥ अभावसेभी ॥ ३१० (अनभाव) ॥ उत्पन्न भावरुप होनेसे ॥ ३११ ॥ ओर नाशसेभी ॥ ३१२ (ध्वंस)॥ उपयोग दर्शनसे ॥ ३१३ ॥ [1]पूर्वकेही उपादानसे उत्पत्ति ॥ ३१४ (अनुपादान) ॥ अन्वय होनेसे ॥ ३१५ ॥

अर्थ—सत् उपादानसे असत्की उत्पत्ति नहीं होती ॥ ३०७ ॥ ओर अस-

---

[1]कार्यकी स्वयं अनुत्पत्ति ॥ २८० ॥ कारणकी व्याप्तिसे ॥ २८१ ॥ निमित्त वा उपादानमात्रसे ॥ २८२ ॥ सापेक्षक होनेसे ॥ २८३ ॥ असत्की असत्से ॥ ३०० ॥ वस्तु न होनेसे ॥ ३०१ ॥ सद्उत्पत्ति व्याघात ॥ १९६ ॥ नित्य नियमसे ॥ १९७ ॥ इन २८० से १९७ तककी वृत्ति उपर कही हे. नियम प्रसंगवश उपर जुदा प्रसंगमें लिखें हें. अब जो इन ८ सूत्रोंको ओर ३०७से ३१३ तकके सात सूत्रोंको यथायोग्य क्रमसे मिलावें तो अनुत्पत्तिप्रकरण (अधिकरण) पूरा होजाता हे. ३०७ वगेरे " उपादानवत्ही " इस नियमकी दृष्टिसे यहां लिखे हें. एवं कारण, उपादान, उपादेय ओर स्वरुपज अधिकरणोंमें फेरफार किया हे. वस्तुतः एक प्रकरणके हें ॥ इस अनुत्पत्तिप्रकरणमें असत्, अभाव वगेरेका उपयोग व्यर्थ हे तथापि यह सब कल्पना पक्षकारोंके मंतव्यवश करनी पडी हें. अ. ३ में वांचोगे ॥

असत्से सत्का जन्म सुगत, सतसे असत् (नवीन) का आविर्भाव नैयायक, ओर नामरुपात्मक वस्तु सत् नहीं किंतु सत्का विवर्त्त हे अर्थात मायाकरके वा अज्ञानकरके सत्ही अन्यरुपसे भासता हे एसा वेदांती मानते हें, सत्से सत्का जन्म सांख्य, ओर सत् असत्से उत्पत्ति हेगलश्री कहता हे. इ. ॥

त्से सत्‌की उत्पत्ति नहीं होती ॥ ३०८ ॥ क्योंकि सत् ओर असत्‌का परस्परमें (तम–प्रकाश समान) विरोध होता हे ॥ ३०९ ॥ यथा भ्रम प्रसंगमें सत् डोरीसे असत् सर्पकी उत्पति नहीं होती किंतु सादृश्य दोषसे सर्प यह नाम कल्पनामें हो-जाता हे. ओर मृगजलसे मछली नहीं होती ओर न प्यास जाती हे. इन दोनों नियमोंकी सिद्धिमें यह हेतु हे कि सत्, असत्‌का विरोध हे तथा असत्, कोई व-स्तुही नहीं होती; परंतु उपादान, उपादेयका तो अविरोध होता हे तथा सत् वस्तु प्रतीतिकी विषय होती हे; अतः सत्‌से असत्‌की ओर असत्‌से सत्‌की उत्पत्ति मान्ना अलीक हे ॥ ३०९ ॥ अभावसेभी भावरुप पदार्थकी उत्पत्ति नहीं होती ॥३१०॥ क्योंकि उत्पन्न भावरुप हे अर्थात उपादान (३०२) नियमके विरुद्ध हे ॥३११॥ बीजमेंसे वृक्ष होता हे वहां बीजमें दूसरे परमाणु मिलके होता हे. लट यह भ्रंग-काही अंडा हे, इसलिये उसकेपर होजाते हें; भ्रंगकी लाल (राल), चटकेद्वारा उसके उत्तेजनमें हेतु हे (वाह कुदरत). औक्षजन, हाइड्रोजनसे जो जल बनता हे वोह उन उभयकी योग्यताका आविर्भाव हे, जो के जुदा न रहने कालमें तिरो-धित थीं–अर्थात उभयके मिलनेपर अभावजन्य नवीन जल पेदा हुवा हो, एसा नहीं हे. जो अभावसे भावरुप होनेका नियम होता तो नाइट्रोजन मिलनेसेभी जल होजाता, परंतु नहीं होता. उभय (औ. हा.) के मिलनेपर ईथरमेंसे अन्य तत्व मिलते हों तोभी अभावमेंसे भावरुप होना सिद्ध न हुवा. इसीप्रकार जलजन्य बर्फ, कनकजन्य कुंडल, हलदीचूनेजन्य रक्तता, (वा सूर्यकी किरण द्वारा रक्तरंग आके मिलना ओर न चुसानेसे बाहिर आना), मृतिकाजन्य घटमें जल आनयनता, कोयला–गंधक ओर शोराजन्य वारुदगत शक्तिरुप जो नवीन गुण वा योग्यता उनके वास्ते जानलेना.–वे अभावजन्य नहीं हें. किसी सर्वशक्तिमान द्वारा अभा-वसे भावरुप पेदा होजाना यह कल्पना–भावना, विश्वासुके लिये छोड दो ॥ ३११ ॥ ओर किसीके नाशसेभी किसी भावरुप पदार्थकी उत्पत्ति नहीं होती हे ॥ ३१२ ॥ क्योंकि उत्पन्नका उपयोग देखते हें, ध्वंस हुये पीछे उपयोगका अ-भाव होता हे; तथा किसी मूलका नाश नहीं होता. (१३९ नियम यादमें लो).

३१२–जो नाशसे उत्पत्ति होती हो तो घटनाशसे कपाल, दही नाशसे दूध, ओर औ. हाइ० नाशसे जल होजाता; बर्फ नाशसे पुनः जल नहीं होना चाहिये. एक उपादेयके नाशसे दूसरे उपादेयमें उतनाही वजन रहता हे; इसलिये परमाणु-से भिन्न घटका नाश नहीं हे.

अतः नाशसेभी उत्पत्ति नहीं होती ॥ ३१३ ॥ कनकसे कुंडल हुवा. पीछे कुंडलसे तोडा बनाया. यहां कुंडलके नाशसे तोडा नहीं बना हे. बीजके ध्वंससे वृक्ष होता तो बीजके भूने पीछे वा मर्दन करनेपरभी वृक्ष होजाता, परंतु एसा नहीं होता. वृक्षमें बीजके ओर दूसरे परमाणु शामिल हैं. लोहीके नाशसे दूध, दूधके नाशसे दही, जलके नाशसे बरफ ओर बरफके नाशसे जल–इत्यादि प्रसंगोमेंभी यही विवेक हे, सो यथायोग्य योजलेना ॥ ३१३ ॥ जितनी उत्पत्ति (कार्य) होती हैं वे पूर्वके उपादानसेही होती हैं ॥ ३१४ ॥ क्योंकि उपादेयमें मूलउपादानका अन्वय होता हे ॥ ३१५ ॥ यथा कनकसे कुंडल, अशरफी वा तोडा क्रमशः बनावें तो पूर्व सुवर्णही उपादान हे, उससेही कुंडलादिकी उत्पत्ति हुई हे. दूध, दहीजामकसामग्रीविशिष्ट दहीका उपादान हे. जब दहीसे छाछ, छाछसे मक्खन होता हे, तहां पूर्वके उपादानके अवयवोंमें न्यूनाधिकता होनेसे कार्य होता हे; नहींके दही वा छाछके नाशसे नवनीत हुवा हे. किंतु दूधमें था सो एकत्र हुवा हे. सारांश सब कार्योंका मूलउपादान, परमाणुपुंज वा प्रकृतिजन्य सत्वरजतममिश्रित परमाणु हैं. इनके मिश्रण ओर मिश्रण तथा गुणशक्तिके उद्भव तिरोधान होनेपर तथा न्यूनाधिक विभाग होके नाना प्रकारके रुप बनते हें–जेसे के लोहीरुपपुंज, दूधका उपादान हे. इत्यादि (यहां २८० । २८२ । ३०० । ओर १९६ नियमोंकाभी पाठ करलेना चाहिये) ॥ ३१५ ॥

३१० । ३११–दो भावरुप वस्तु मिलनेसेभी तीसरी नवीन (अभावजन्य) नहीं होती. इन्हीं सूत्रोंसे उसका व्याख्यान होजाता हे ओर उपादनसूत्र यादकीजिये. भोजनके अभावसे अशक्ति नहीं होती किंतु भोजमसे रसादि धातु होती हैं, जो न खावें तो रसादि धातु नहीं होती हैं; इसलिये अशक्ति हे. दानके अभावसे पाप ओर हिंसाके अभावसे पूण्य नहीं होता; किंतु दान देनेसे पूण्य ओर हिंसा करनेसे पाप होता हे. योग्यसत्ताधारीके आगमनपर सत्काराभावसे दोष नहीं होता; किंतु असत्कारके भावसे दोष पेदा होता हे. ईश्वरकी प्रार्थना, स्तुति नहीं करनेसे पाप नहीं होता; किंतु उसके स्मरणसे जो अपने अंतःकरणकी पवित्रता होती थी सो नहीं होती. ईश्वर अभावमेंसे सृष्टि नहीं करसकता; किंतु भावरुप (परमाणु वा शक्ति–प्रकृति) मेंसे करता हे. स्वप्नसृष्टि (नामरुप फारम) अभावसे पेदा नहीं होती; किंतु माया–शेषा–सूक्ष्मप्रकृतिसे होती हे. अनुत्पत्ति ओर अनाश–सूत्र याद कीजिये ॥ ३०७ से ३१५ तक ॥

अवयव अवयवी, उपादान उपादेय वत् ॥ ३१६ (अभिन्न) ॥ समुच्चय होनेसे ॥ ३१७ ॥ एवं परिणामी परिणाम ॥ ३१८ (परिणामी) ॥ जल हिमादीवत् ॥ ३१९ ॥

अर्थ—जेसे उपादानअधिकरण ओर उपादेयअधिकरणमें उपादान तथा उपादेयके संबंधमें जो नियमादि लिखे हें, वेसे वे अवयव ओर अवयवीके संबंधमेंभी यथायोग्य लगालेने चाहिये ॥ ३१६ ॥ क्योंकि अवयवी (उपादेय), अवयव (परमाणु वा मिश्रण–उपादान) का समुच्चय होता हे; समुच्चयसे इतर अवयवी कोई भिन्न वस्तु नहीं होती हे ॥ ३१७ ॥ इसीप्रकार (उपादान उपादेयवत्) परिणामी, परिणामके संबंधमें उपरोक्त नियमादि लगालेने चाहिये; क्योंकि किसी सावयव--मिश्रण-परिणामी (उपादान) का परिणाम होता हे ॥ ३१८ ॥ जेसे के जलबरफ, दूधदही, कनककुंडल ओर मृतिकाघटमें देखते हें ॥ ३१९ ॥

वि.—परमाणुवादमें मूल परमाणुओंका संयोगवियोग एसा शब्द होता हे, जब वे विशेष पुंजरुप होजावें तब उन पुंजोंको संयोगविभाग शब्द लगाते हें ओर परिणाम पदभी लगता हे. यथा जल, शकर संयोगजन्य शरबत, ओर बरफ, जलका परिणाम वा जल तथा सरदीके संयोगसे जलका संकोच पाना. परिणामवादमें मूल परमाणुभी सत्व-रज-तममिश्रित मानते हें; अतः सब जघे परिणाम पदका प्रयोग होता हे वा परिणामोंके संयोगका प्रयोग होता हे. जेसे मृतिकापिंड, पृथ्वीका परिणाम ओर उसका घट परिणाम. वा दो पिंडरुप परिणामोंका संयोग घट. निदान शैलीका भेद हे, उभयका सार एकही हे. इसीप्रकार अवयवअवयवी ओर अंगअंगी वास्ते जानलेना. शैलीमात्र अंतर हे.

अवयवअवयवी, परिणामीपरिणाममें जो नियमादि लगाये जायँ उनका नमूना यह हे-॥ २८५–जब परिणामी वा अवयव हो तबही परिणाम वा अवयवी होता हे. ॥ २८९–उन परिणामी ओर अवयवोंमें परिणाम पाने ओर अवयवी बननेकी योग्यता, अधिकरणता होती हे ॥ २९१–इन योग्यता ओर अधिकरण-

---

३१९—उपादान, उपादेय, अनुत्पत्ति, स्वरुपज ओर मूल अधिकरणके विचारनेसे क्षणिकवादिके निरवयवक्षणिकविज्ञानका परिणाम १, आरंभवादकी नवीनोत्पत्ति (मृतिकासे घट नवीन उत्पन्न) २, ओर परिणामवादकी पूर्व विद्यमानता (घट कुंडल पूर्वमें थे. वर्तमानमें तो व्यक्त हुये हें) ३, यह तीनों कल्पनामान्यता, असमीचीन ठेरती हें.

ताका उपयोग, निमित्त ओर नियमसे होता हे. उटपटांग नहीं होता ॥ २९२–परिणामी, परिणामसे ओर अवयव, अवयवीसे न्यून नहीं होता ॥ २९४–परिणामी वा अवयवके अभावसे परिणाम ओर अवयवीका अभाव होजाता हे ॥ २९५–परंतु परिणाम वा अवयवीके अभावसे परिणामी वा अवयवका अभाव नहीं होता ॥ २९६–द्रव्यपरिणामीका द्रव्यपरिणाम, द्रव्यअवयवका द्रव्यअवयवी (अंगी) ओर गुणपरिणामीका गुणपरिणाम ओर गुणअंग (अवयवी) का गुणअंगी होता हे ॥ २९८–परिणामका परिणामी ओर अवयवी (अंगी) का अवयव अ-विषय होता हे ॥ ३००–असत्का परिणाम वा असत्का अवयवी नहीं होता ॥

३०२–परिणाम वा अंगी, परिणामी वा अवयववत्‌ही होता हे ॥ ३०३–इतर गुण सत्तावाला नहीं होता ॥ ३०४–वे परस्परके आश्रयाश्रितादि भाववाले नहीं होते ॥ ३०५–ओर न परस्परके विरोधी होते हें ॥ ३०७–सत् परिणामीका असत्परिणाम ओर सत् अवयवका असत्अवयवी नहीं होता ॥ ३०८–उससे उलटाभी नहीं होता ॥ ३१०–अभावरुप परिणामी वा अवयवसे भावरुप परिणाम वा अवयवी नहीं होता ॥ ३१२–परिणाम नाशसे अन्य परिणाम ओर अवयवी नाशसे अन्य अवयवी नहीं होता ॥ ३१४–किंतु पूर्वके परिणामीसे अन्य परिणाम ओर पूर्वके अवयवोंसेही अन्य अवयवी होता हे ॥ २८०–अपने आप नवीन परिणामी वा नवीन अवयव नहीं होते ॥ २८२–अकेले परिणामी वा अवयवोंसे प-रिणाम वा अवयवी नहीं होते ओर अकेले निमित्तमात्रसे नवीन परिणाम वा अव-यवी नहीं बनते; किंतु परिणामी हो, ओर अवयव हों, ओर निमित्त कारण हो तब परिणामी ओर अवयवी बनते हें ॥ २८३–असत् परिणामसे असत् परिणाम, असत् अवयवसे असत् अवयवी नहीं होते ॥ इसीप्रकार ३०१ । ६७२ । ६७३ ओर स्वरुपजअधिकरण (३५० से ३६६ तक) में लगालेना चाहिये; लग जा-यँगे. उनके वर्णन–विवेचन वा विवेक प्रसंगमें जो अंतराभास वा विरोधाभास जा-ननेमें आवे तो वे नियमोंसे निवारण होसकेंगे. यथा–शरीर अंगी हे ओर अवयव (अंग) हाथ हे, सो शरीरका विरोधी होसकता हे; अतः अंगअंगीभी विरोधी हो तेहें. एसी शंका होवे तो वहां उपरोक्त जीव ओर ड्रायीवरका नियम लेके विरोध निवारणीय हे. अर्थात हाथ, अन्य (जीव) के आधीन हे तथा शरीरसे भिन्न वस्तु नहीं हे; अतः शरीरके भागका उपयोग अन्य कररहा हे. परंतु हाथ शरीरका विरोधी नहीं हे. इ. इ. ॥

परमाणु वा अमुक समूहका आना जाना होनेसे अवयवी वा परिणामीका रुपांतर होताजाता हे. यथा जननीसे संतान, वृक्षसे फल जुदा पडगये; तहां उत्पत्ति, वृद्धि ओर पृथकत्व सामग्रीके न्यूनाधिक होनेसे हे. जो जुदा पडा, उसका उपादान वा अवयव वा परिणामी भाग उसके साथ हे; पूर्ववाला नहीं रहा. शरीरादि दीपककी लो समान क्षणक्षणमें बदलते रहते हें, परंतु घटादिमें फेरफार क्षणिक नहीं. यद्यपि काल विशिष्टताका तो अंतर हे तथापि व्यवहारमें पूर्व क्षणवाला मेटर हे. अवयव वा परिणामीकी आकृति ओर व्यक्तिमें भेद नहीं हे; क्योंकि आकृति उसकी रचनाका नाम हे. पटमेंसे तंतु वा वृक्षमेंसे डाली वा फल निकालें तो पट, वा वृक्ष न्यून होंगे. यदी अवयवअवयवी, वा परिणामीपरिणामका आश्रयाश्रित वा व्याप्यव्यापकभाव होता तो पट वा वृक्ष न्यून नहीं होते परंतु न्यून होजाते हें; अतः आधाराधारादिभाव नहीं हे.

विशेष, ओर विद्यमान सूत्रोंकी दृष्टिसे ३१६ । ३१८ सूत्र पुनरुक्ति हे. तथापि आरंभवाद (न्यायादि), परिणामवाद (सांख्यादि) की द्रष्टिको लेके यह पुनरुक्ति हे (एसाही अन्य प्रसंगमें यथायोग्य जानलेना. अर्थात पुनरुक्तियें सकारणकी गई होंगी) ॥ ३१९ ॥

करणवत् निमित्त भिन्न ही ॥ ३२० (निमित्त) ॥ **मकडी तंतुवत्** ॥ ३२१ ॥ **कार्यनाशमें निमित्तभी** ॥ ३२२ (अनिमित्त) ॥ **घटकुलालवत्** ॥ ३२३ ॥ **साकारका निमित्त निराकार होभी** ॥ ३२४ (साकार) ॥ **घटाकाशवत्** ॥३२५॥ **विपरीत नहीं** ॥ ३२६ (असाकार) ॥ **सम होनेसे**॥३२७॥

निमित्तोपादान अभिन्न नहीं ही ॥ ३२८ (आकर) ॥ **भिन्नाभिन्नका भेद होनेसे** ॥ ३२९ ॥

अर्थ—कार्य (उपादेय, परिणाम, अवयवी, अंगी) का निमित्तकारण, उपादान (परिणामी, अवयव, अंग) समान कार्यमें अनुमेय (कार्यस्वरुप) नहीं होता; किंतु करणसमान कार्यके स्वरुपसे भिन्न स्वरुपही होता हे ॥३२०॥ जेसे के मकडीके जाले बननेमें मकडीका शरीर तंतुओंका उपादान होता हे ओर शरीरी (जीव) निमित्तकारण होता हे. अर्थात् जीव, विलपावर (इच्छा) द्वारा शरीरगत अवयवोंमें (मुखके थूक समान) से तंतु निकालके रचता हे. वहां उभय स्वरुपतः भिन्न हें ॥ ३२१ ॥ ज्ञानोत्पत्तिमें इंद्रिय (करण) भिन्न हें ओर निमित्त हें. घटोत्पत्तिमें देशकाल (साधारणनिमित्तकारण) ओर कुम्हार (असाधारणनिमित्तकारण)

घटसे भिन्न स्वरुप हैं. कुम्हारकी इच्छा, उद्देश्य यहभी निमित्त हैं ओर दंडचक्रादि (करण) यहभी निमित्त हैं परंतु सब घटसे भिन्न स्वरुप हैं. कनकके कुंडल होनेमें सुनार ओर करण हतोडादि भिन्न ओर निमित्त हैं. दूधसे दही होनेमें गरमी, सरदी आदि उससे भिन्न निमित्त हैं. तद्वत् जलके बरफ होनेमें वायु, गरमी वगेरे भिन्न ओर निमित्त हैं. संतानोत्पत्तिमें मातापिताका जीव भिन्न ओर निमित्त हे. जल होनेमें याने औ. उद. के संयोग होनेमें वायु, ईथरादि निमित्त ओर भिन्न हैं. तद्वत् सृष्टिउत्पत्ति प्रसंगमें उसके उपादानमेंसे उत्पत्ति होनेमें कोई शक्ति भिन्न ओर निमित्त होनी चाहिये. ॥३२१॥ कार्यकी उत्पत्तिमें जो निमित्त हे, वही उसी कार्यके नाश होनेमें निमित्तकारण हो, एसा नियम नहीं हे किंतु हो ओर नहींभी होता हे ॥ ३२२ ॥ जेसे के घटका कर्ता कुम्हार, घटके नाश करनेमें निमित्त हो ओर नहींभी होता हे ॥३२३॥ देशकाल साधारणकारण होनेसे उत्पत्तिनाशमें निमित्त कारण हैं. सार यह हे कि उत्पत्ति ओर नाश यह भिन्नभिन्न कार्य हैं; अतः उनका एकही निमित्त हो एसा नियम नहीं हे ॥ ३२३ ॥ साकार याने मूर्त्तरुप कार्य होनेमें निराकार निमित्तकारण होभी ॥ ३२४ ॥ जेसे के गति ओर घटके होनेमें आकाशभी निमित्त हे. क्योंकि आकाश न हो तो गति न होसके ओर न घट बनसके ओर न उसका नाश होसके ॥ ३२५ ॥ परंतु निराकारके संबंधमें साकार वस्तु, निमित्तकारण नहीं होसकती ॥ ३२६ ॥ क्योंकि निराकार, असीम-एकरस-अचल ओर कूटस्थ होता हे अर्थात उसमें गति, अवयव ओर उसका परिणाम न होसकनेसे उसमें साकारकी सहकारीताकीभी आवश्यकता नहीं हे, तो निमित्तताकी बातही क्या करना ॥ (अपरिमाण १७८, निराकार १८१ याद करो) ॥ ३२७ ॥

उपरके नियमोंसे यह नियम ज्ञात हुवा कि निमित्तकारण ओर उपादानकारण यह दोनों अभिन्न नहीं होते अर्थात अभिन्ननिमित्तोपादानकारणकी असिद्धि हे. याने एकही वस्तु एकही उपादेयका उपादानभी हो ओर निमित्तभी हो, एसा नहीं होता ॥ ३२८ ॥ क्योंकि उपर कहे अनुसार उपादान ओर निमित्तके लक्षणमें भेद हे.—उपादान, उपादेयमें अनुमेय होता हे, निमित्त उसके स्वरुपसे भिन्न होता हे ॥ वा अभिन्न कहने वा मान्नेसेही भिन्न-अभिन्नका भेद स्पष्ट होजाता हे ॥ ३२९ ॥ यथा मकडी, तंतु वगेरेके दृष्टांत उपर दिये हें (३२१) ॥ तद्वत् कछ्वा ओर सर्पके शरीरके संकोचाविकास वास्ते शरीर उपादान ओर जीव निमित्त हे, एसे जानलेना चाहिये. हां, किसी सावयव समूहका एक भाग उपादान हो

ओर एक भाग निमित्त हो, यह दूसरी बात हे. जेसे के शरीरका लोही हे. याने मांसका उपादान ओर गतिका निमित्त हे. सारांश सावयव होनेसे दोष नहीं आता, क्योंकि उपादान भाग ओर निमित्त भाग जुदा जुदा हें ॥

अणु ओर विभुमें उपादानता असंभव. सावयव समूह (मध्यम) मेंही उपादानता होसकती हे. उसके एक अंगमें उपादानता ओर दूसरेमें निमित्तताकी संभावना हे, जेसे मकडी ओर जननीके शरीरमें हे. परंतु एक निरवयवमें अभिन्ननिमित्तोपादानता असंभव हे. ब्रह्म वा शक्ति जो समूहात्मक हों तोही अभिन्ननिमित्त होसकते हें (यथा मायाविशिष्टचेतन वा परमाणुपुंज). चित्रपट लिपटा हुवा खोलें उसमें इच्छानिमित्त ओर सावयवपट उपादान होसकता हे. जगतमें विरोधी पदार्थोंका उपादान जुदाजुदा देखते हें तो निमित्तकारण जुदा हो, इसमें क्या कहना हे. जगत जडचेतनात्मक होनेसे उसका निमित्त, उपादान भिन्न २ ही स्पष्ट होता हे, क्योंकि चेतन, जडका ओर जड, चेतनका उपादान नहीं होसकता. जो असत् कल्पना ओर अयुक्त हो, उसकी लाघवता मान्य नहीं होसकती ॥३२९॥

गुणादिके गुणादि नहीं ही ॥ ३३० (अगुण) ॥ **अदर्शनसे** ॥३३१॥ **वे स्वाश्रयसे अन्यत्र नहींही** ॥ ३३२ (अनाधार) ॥ **अनाश्रय न दर्शनसे** ॥ ३३३ ॥ **न अन्यमें बदल** ॥ ३३४ (न प्रतिक्रम) ॥ **स्वसंबंधीकेही संबंधी रहनेसे** ॥ ३३५ ॥ **द्रव्यवत् गति न होनेसे** ॥ ३३६ ॥ **उनका उपयोग निमित्त नियमसे** ॥ ३३७ (उपयोग) ॥ **उनका संबंध द्रव्योंके संयोग संबंधसे भिन्न नहीं** ॥ ३३८ (सद्रव्य) ॥ **द्रव्येतर न होनेसे** ॥ ३३९ ॥

अर्थ—गुणका गुण, कर्म (गति) का कर्म, स्वभावका स्वभाव, शक्तिकी शक्ति, प्रभावका प्रभाव, अवस्थाकी अवस्था, धर्मका धर्म ओर संबंधका संबंध नहीं होता ॥ ३३० ॥ क्योंकि गुणादिके गुणादि होना सृष्टिमें नहीं देखते हें ॥३३१॥ द्रव्य ओर गुणादिके लक्षण उदाहरण, उपर स्वरुपसंभावनामें लिखआये हें. स्मरणमात्र उदाहरण–अग्नि (गरमी) द्रव्य हे. उसमें रुप गुण हे. गमन होना गति हे. उपरको जाना स्वभाव हे. पुंजका पृथक्करण होना उसका प्रभाव हे. यहही-दाह उसमें शक्ति हे. संबंधसे दबा रहना, चुसाना इत्यादि उसकी अवस्था हें. उष्णत्व उसमें धर्म हे. गरमी प्रकाशका सहचर्य उसका संबंध हे. इन गुणादिके पुनः गुणादि नहीं होते॥ तद्वत् शब्दका शब्द, स्पर्शका स्पर्श, रसका रस, दाहका दाह, गंधका गंध, गरमीकी गरमी, देशका देश, ज्ञानका ज्ञान, अज्ञानका अज्ञान, कालका काल, इ-

त्यादि नहीं होते, एसा सृष्टिमें देखते हैं ॥ गुण, शक्ति वगेरे क्या हैं, इसविषे सब फिलोसोफरोंका मतभेद हे (ओर अंतमें अनिर्वचनीय ठेरते हैं). कोई शब्दादीको मगजका ईम्प्रेशन (सूक्ष्मावस्था), कोई मनकी अवस्था, कोई शरीरसे बाह्य पदार्थोंके गुणादि मानता हे. कोई एक शक्तिके रुपांतर कहता हे. (परंतु अंतमें वे अनिर्वचनिय ठेरते हैं). कुछभी मानो, यह नियम सब पक्षोंमें लगेगा; क्योंकि योग्यता विना कोई कार्य वा उपयोग नहीं होता. (विशेष बस. में हे) ॥ ३३१ ॥

पूर्वोक्त गुण, कर्म, स्वभाव, शक्ति वगेरे अपने आश्रय गुणिआदि (गुणी, गतिमान, स्वभाववान, शक्तिमान, प्रभाववान, अवस्थावान, धर्मी ओर संबंधी) को छोडके दूसरे देश वा दूसरी वस्तुमें नहीं जाते वा नहीं वर्तते ॥ ३३२ ॥ क्योंकि वे अपने स्वाश्रय (गुणीआदि) के विना रहते हों एसा नहीं देखते ॥ ३३३ ॥ इसीवास्ते यह सृष्टिनियम जानपडता हे कि " नित्यद्रव्यों (मूल स्वरुपों) के गुण, शक्तिभी नित्य होते हैं. " यह उपरोक्त मूलअधिकरणसे जान लियाजाता हे. गंधवाले परमाणु घ्राणकेसाथ व रुपका फोटो चक्षुके साथ जब संबंध पाता हे तब गंधादिका ज्ञान होता हे. नहींके गंधवान, वा रुपवानको छोडके गंध वा रुपमात्र आता हो. तद्वत् किस्तुरी ओर कपूर तथा अतरमें ज्ञातव्य हे. अग्निसे वस्त्र तपावें तब अग्निके परमाणु वस्त्रके साथ संबंध पाते हैं ओर तब वस्त्र गरम जानपडता हे; क्योंकि जो अग्नि बुझादें वा वस्त्र अलग लेजावें तबभी वस्त्र गरम रहता हे. किस्तुरी, कपूर, अत्तर तोलके उघाडे रखो तो कालांतरमें कम होजायँगे जो भाग रहेगा वोह गंध विनाका वा अल्प गंधवाला रहेगा. शरीरमें फासफोरस पेदा होने लगजाय तो उद्भव होनेपर उपरकी चमडी जलेगी ओर धूवांभी निकलेगी. तब लोक कहते हैं के भूत दाग देता हे वस्तुतः वेसा नहीं हे; गरमीने वोह काम किया हे. दोका संयोग उन संयोगियोंके विना नहीं होता अर्थात संयोगियोंसे इतर नहीं हे. दीपकसे दीपकका प्रकाश भिन्नवस्तु हे तथा वोह दीपकका गुण वा शक्तिरुप नहीं हे; अतः जुदा होता हे. तद्वत् सूर्यके प्रकाश वास्ते ज्ञातव्य हे. प्रकाश किसीका गुण वा शक्ति नहीं हे किंतु तेजके परमाणु ईथरमें प्रसारित हैं, अमुक निमित्तसे वे प्रकाशित वा उद्भव होते हैं. अग्निकी ज्वाला एक वस्तु नहीं हे उसमें अनेक पदार्थ हैं ओर उद्भवप्रकाशभी हे. यदि जीव, अणु हो ओर उसमें ज्ञान–गुण हो तो तमाम शरीरमें ज्ञान–गुण वा चेतनता नहीं होसकती; क्योंकि चेतनता वा ज्ञान–गुण, जीव देशको छोडके अन्यत्र नहीं जासकता. जलका

शीतत्व जलसे जुदा नहीं होता. विजली (शक्ति) स्वयंभिन्न द्रव्य हे, इसलिये वोह आताजाता ओर उद्भव तिरोधित होता रहता हे; वोह चंबुकादिकी शक्ति नहीं हे. हां, उसमें वोह रहसके एसा रसायणीयसंयोगवाला चंबुक हे. विजलीका विनिमय करलियाजाता हे; अतः वोह किसीका गुण वा शक्ति नहीं हे. यदि गुरुत्व कोई शक्ति हो तो वोह गुरुत्ववान (सूर्य-भूम्यादि) से बाहिर नहीं जासकती, किंतु ज्यादे गुरुत्ववाला थोडे गुरुत्ववालेको खेंचता हे, वहां ओर प्रकार हे अर्थात ब्रह्मांड विस्तृत हिरण्यगर्भकी लचक ओर ग्रहोंके गुरुत्वसे ग्रहोंकी गति ओर मर्यादामें रहने (खिंचने) का व्यापार होता हे (विस्तार बस. उत्तरार्द्धमें हे). सुवर्णादिका रंग ताम्रादिमें नहीं आता; इसलिये कीमिया असिद्ध बात हे. हां, जिस योग्यता, समूह ओर गरमीसे कुदरतमें वे बनते हें वोह योग्यतादि मनुष्य जानता हो तो नवीन सुवर्ण, तांबा, चांदी बनासकता हे.

जेसे उपर कइ प्रसंग वास्ते संक्षेपमें कहा वेसे अन्य प्रसंगोंमेंभी यथायोग्य विवेक कर्तव्य हे. यदि नित्यगुणी वा शक्तिमानके गुण वा शक्तिआदि उससे बाहिर जाना मानें तो वे गुणादि नहीं हुये किंतु गुणीआदि समान कोई प्रकारके परमाणु ठेरेंगे, जोकि पूर्व द्रव्यके साथ संयोगी थे. अथवा पूर्व द्रव्य योग्यता शून्य होजायगा ओर कोई काममें न आवेगा, परंतु निष्फलत्वका अभाव हे; अतः गुणादि, गुण्यादिको छोडते हें एसा मान्ना अलीक हे. सारांश नित्यद्रव्योंमें नित्य गुणादि होते हें (ओर उनका यथानिमित्त उपयोग होता हे.) नित्यमें अनित्य गुणादि नहीं होते. यदि यह मानें के उनका एक किनारा अपने गुण्यादिमें, दूसरा किनारा दूसरेमें होता हे (जेसे आकर्षणशक्तिकी रस्सी हे), तो वे गुण वा शक्ति रुप नहीं किंतु अमुक प्रकारके परमाणुओंकी संकोचविकासवाली रस्सी हें ओर नाशवान हें; एसा मान्ना पडेगा अर्थात नित्यद्रव्योंके नित्यगुण, शक्ति नहीं ठेरे. ॥ ३३३ ॥ (शं) गुणादि गुण्यादिको छोडके मत रहो, परंतु उनका दूसरे गुणादिमें बदल होके वे दूसरे गुण्यादिके आश्रय रहसकते होंगे. (उ.)

उन गुणादिका अपने गुण्यादिको छोडके दूसरेमें बदल होता हो, एसाभी नहीं हे ॥ ३३४ ॥ क्योंकि वे स्वसंबंधी (गुण्यादि) के ही संबंधी रहते हें ॥ ३३५ ॥ ओरभी, उनमें द्रव्योंके समान द्रव्योंके विना गती नहीं होती, इसलियेभी उनका अन्यमें बदल नहीं होता ॥ ३३६ ॥ जब के स्वाश्रयसे अन्यत्र नहीं होते, यह उपर कहा हे तो सूत्रोक्त नियम स्पष्टही हे अर्थात एक द्रव्यका गुण दूसरेमें, एककी गति

दूसरेमें ओर एककी शक्ति दूसरेमें नहीं जाती, नहीं बदलाती. एवं स्वभावादिभी नहीं जाते, नहीं बदलाते; यह स्वयंसिद्ध होगया. विवेचन उपर आचुका हे ॥ जहां एक दूसरेके संबंधसे एक दूसरेमें ज्ञान--बुद्धि, दया, राग--द्वेष वगेरे गुण होते हें तहां वे उसउसमेंही होते हें, याने मनका अभ्यास-संस्कार बदलता हे. नहींके दूसरेके आये. संतानमें माता--पिताके गुणादि आते हें, एसा नहीं हे किंतु संतानके तन--मनके समूहमेंही वेसे परिणाम होजाते हें. जैसा बीज होता हे ओर जैसी उसमें योग्यता होती हे वेसेही परमाणु खिचके पत्ते, फूल, फल बनते हें; नहींके बीजकेही आगये. जो एकका लोही निकालके दूसरेके शरीरमें डालें तो पहेला निर्बल होजायगा ओर दूसरा शरीर सबल होजायगा. तहां लोही द्वारा जो हड्डी, पट्ठे वगेरेमें शक्ति होती हे सो लोहीके चलेजानेसे कम पड गई हे. ओर दूसरेको सशक्त लोही मिलनेसे शक्ति बढी हे. एक चलती हुई गेंद दूसरी गेंदको गति पेदा करके आप ठेरजावे तो वहां गेंदकी गतिका बदल नहीं हुवा हे; किंतु फोर्स पडनेसे नवीन गति पेदा हुई हे. इसीप्रकार हाथ वा दंडेसे गेंद वा तीर चलावें तब चलानेवालेकी गति वा बल, गेंद वा तीरमें नहीं गया; किंतु फोर्ससे नवीन गति पेदा हुई हे ओर उनके रचनात्मक शरीरकी शक्ति हे. जब महनत करें वा कुश्ती लडें तब थकान होता हे, वहांभी शरीरके अवयवोंमें निर्बलता आती हे. नहींके दूसरेमें बलका बदल हुवा हे. बालीमें एसी योग्यता थी के लडनेवालेका आधा बल उसमें आजाता. तहां या तो यह बात दंतकथामात्र हे वा तो बालीमें नोट-विन्नोट विद्या (शरीरकी कलविद्या) थी. इस कलविद्यासे सामनेवालेका बल काम नहीं देता वा तो कम काम देता हे. वर्त्तमानमेंभी इस विद्याका जान्नेवाला कोईकोई देखनेमें आया हे. सारांश जहां गति, शक्ति वा गुण वा स्वाभावादिका बदल जानपडे वहां कुछ अन्यप्रकार होगा, एसे जानलेना. परंतु गुणादिका अन्यमें बदल होजाता हो, एसा नहीं हे ॥ ३३६ ॥

द्रव्यगत गुणादिका उपयोग उटपटांग (अनियमित) नहीं होता किंतु निमित्तद्वारा ओर सृष्टिनियमानुकूल होता हे ॥ ३३७ ॥ जेसे के अग्नि, विजली, हवा, जलके नियम योरोपयीनप्रजाने जानके वोह उनके अद्भुत उपयोग करनेकी निमित हुयी हे. सू. २९१ याद करिये ॥ ३३७ ॥

दो द्रव्योंके मिलनेपर जो उनके गुणादिका संबंध होता हे सो द्रव्योंके संयोगसे इतर अन्य कोई संबंध नहीं होता ॥३३८॥ क्योंकि वे द्रव्यसे इतर नहीं हें

॥ ३३९ ॥ शोरा, गंधक, कोयला तीनों मिलावें, तहां शोरेमें उडनेकी, गंधकमें उडने, बलनेकी योग्यता हे ओर कोयलेमें गेस हे, तीनोंके मिश्रणमें इन गुणोंका कोई संबंध जुदा नहीं हे किंतु द्रव्योंकाही जो संबंध सोही संबंध हे, उससे इतर अन्य संबंध नहीं हे ॥ गुण ओर शक्ति-यह कोई वस्तु हें वा नहीं ? जो नहीं तो कार्य नहीं होगा. जो हें तो गुणगुणी, ओर शक्तिशक्तिमानादि किस संबंध (संयोग, समवाय, तादात्म्य, भेदाभेद, व्याप्यव्यापक वा अन्यसंबंध) से रहे हुये हें १, क ओर ग दो द्रव्य हें, उनके गुणादि (योग्यता) उनमें केसे रहते हें २, क. ओर ग. के संबंधकालमें क. ओर ग. का संयोग, क. के गुणादिका ग. के गुणादिके साथ संयोग संबंध वा अन्य कोई संबंध ओर क. के गुणादिका ग. द्रव्यके साथ संयोग ३; इन सवालोंके उत्तरमें यह सूत्र हे. परंतु गुणादिके संबंधमें मतभेद हें. जिसे एक गुण कहता हे उसेही दूसरा द्रव्य कहता हे, कोई गुण वा शक्ति कोई वस्तु नहीं किंतु द्रव्यमात्र हें ओर गुणादि उनकी अवस्था हें, एसा कहता हे.—इत्यादि मतभेद हें. सूत्रको खंडनमंडनकी अपेक्षा नहीं हे अर्थात गुणादि स्वरुपसे कुछ हों तो सूत्रोक्तवत् होगा; यदि नहीं तो द्रव्यसंयोगसे इतर अन्यसंबंध नहीं, यह आशय निकल आवेगा. गति यह द्रव्यकी अवस्था हे उसका दूसरे द्रव्यके साथ कोई संबंध नहीं कहाजासकता. संयोगादि ओर रागादि अवस्था हें उनका परके साथ क्या संबंध ? कुछ नहीं. बरफ, कुंडल, छुरी, अवस्था हें उनका जो संबंध सो क्रमशः जल, कनक ओर लोहकाही संबंध हे. यद्यपि न्याय वैशेषिकमतमें पदार्थ निर्णयार्थ प्रक्रिया बांधी हें,—यथा गुणगुणीका समवाय, गुणत्वगुणीका समवेतसमवाय, परद्रव्यसाथसंयोग ओर परद्रव्य परगुणका संयुक्त समवेत-समवायादि संबंध दरसाये हें; परंतु जब इसको शोधोगे तो एक अनिर्वचनीय अकथ्य बात हे, एसा जानपडेगा. यहां प्रसंगमें तकरारकी अपेक्षा नहीं हे, यह उपर कहा हे. जेसे ताम्र ओर जसतका मिश्रण (संयोग) होके पीतल होता हे तहां उभयके गुणोंका जेसा संबंध होता हे वेसे, किंवा जेसे औषजन, उद्जन मिलके जल होता हे वहां उनके गुणोंका जेसे संबंध होता हे वेसे जानलेना चाहिये; किंवा कल्पित, अनिर्वचनीय मानना होगा; क्योंकि तीनों (क.+ग. ओर क. के गुणशक्ति+ग. ओर ग. के गुण शक्ति + क. इन तीनों) का संयोग एक अधिकरणमें नहीं होसकता; अतः यह विषय विचारणीय हे ॥ ३३९ ॥

विरोधिधर्म एकमें नहीं ही ॥ ३४० (विरोधि) ॥ अव्याप्तिसे ॥ ३४१ ॥

असंयोगका नियम नहीं ॥ ३४२ (अविरोधि) ॥ अधिकरणकी भिन्नतासे ॥ ३४३ ॥ विरोधिसे निवृत्तिही ॥ ३४४ (निवर्तक) ॥ ज्ञान अज्ञान ओर तमप्रकाश वत् ॥ ३४५ ॥ समानविषयक विशेषज्ञान ओर अज्ञानका परस्पर विरोध ॥ ३४६ (विरोध) ॥ स्थाणु पुरुषज्ञान वत् ॥ ३४७ ॥ निश्चयका संशयसे ॥ ३४८ (अवरोध) ॥ स्वरुपाप्रवेशवत् ॥ ३४९ ॥

अर्थ—एक तत्व वस्तुमें विरोधी दो धर्म नहीं होते ॥ ३४० ॥ क्योंकि इसकी व्याप्तिका अभाव देखते हें ॥ ३४१ ॥ यथा एकही वस्तु तम--प्रकाशवाली (वा तम--प्रकाशरुप), उष्ण--शीतधर्मवाली (वा उष्ण--शीतरुप), कटु--मिष्टधर्मवाली वा जड चेतन धर्मवाली नहीं होती. जहां एकमें दो विरोधीधर्म जानपडते हें वहां वोह सावयव वस्तु होती हे. जेसे के आंब, मृतिकापुंज ओर दीवासलाई.--यदि संसारमें जुदा २ विरोधिधर्मवाली वस्तु नहीं मानें तो दृष्ट विरुद्ध दोष हे. परंतु " विरुद्धधर्माश्रय " न कहना चाहिये. नेगीटिव-पोजीटीवका विरोध क्यों देखते हें? वादि-प्रतिवादिका विरोध स्पष्ट हे. जो उभयका निश्चय मानें तो अव्यवस्था होगी; कुछ निर्णय न होगा. मान्नेमें विरोधी वस्तु नहीं ओर वर्तनमें विरुद्धधर्म, यह बात कोई नहीं मानसकता. एकहीको किसीकी दृष्टिसे सत् ओर असत् नहीं कहसकते ओर न हे. राग--द्वेष विरोधी हें परंतु सावयवकी विषमकालीन अवस्था हें याने समाधिकरणमें नहीं होते. घटाश्रितघटत्वका भाव ओर पटत्वका अभाव हे याने भाव, अभाव एक अधिकरणवर्ती हें; परंतु अभाव कोई वस्तु नहीं हे, अधिकरणकी विलक्षणताका नाम अभाव हे. (शंका) एक कूंडेकी मृतिकामेंसे नीम, ईक, चूका, मिरची, गुलाब, मरवा इत्यादि विरोधीधर्मवाले पेदा होते हें यह विरुद्धधर्माश्रयता प्रत्यक्ष हे. (उ.) अभावसे भावरुप पदार्थ नहीं होता. माटीमें अनेक प्रकारके परमाणु हें, उनके रसायणीय ओर बीजके रसायणीयसंयोगसे बीजके अनुरुप परिणाम आता हे; नहींके एक परमाणु विरुद्धधर्मवाला हे. अमुक वनस्पति अमुक जघे नहीं होती, मनुष्यमेंसे पशु नहीं होता. यदि सबही परमाणु विरुद्ध धर्मवाले होते किंवा सजातीय होते तो एसा नहीं होता; किंतु सबमेंसे सब पेदा होजाता. परंतु एसा नहीं देखते; अतः एक वस्तु विरुद्धधर्मवाली नहीं मानसकते.

इस प्रसंगमें विरोधके ३ प्रकार ध्यानमें रखना चाहिये.—

१—**सहेनावस्थारुप**—यथा तप्त शीत, गरम पानीका हे.

२—**सहाप्रतीतस्वरुप**—यथा अज्ञान, ज्ञान ओर अभाव, प्रतियोगीका हे.

३—विलक्षण (अनिर्वचनीय) रुप.—यथा आकाश परमाणुकी व्यापक-व्याप्यता. अर्थात सत्ताकी विलक्षणतासे एसा होता हे (आगे बांचोगे) तथापि स्वरुपाधिकरण जुदाजुदाही होता हे.

(शं.) सृष्टिमें बिरोधीधर्मवाली वस्तुही नहीं हे. जो विरोध भासता हे वोह बुद्धिकी मान्यता वा बिकार हे. सू. ५१७ देखो (उ.) तो फेर बंध-मोक्ष, दुःख-सुख, राग--द्वेष क्यों होते हें. तमप्रकाशादि क्यों देखते हो, विरुद्धधर्माश्रय, यह सिद्धांत क्यों मानते हो? संतोषकारक उत्तर नहीं मिलता. ओर सू. ५१७ का आशय इस प्रसंगका विषय नहीं हे ॥ ३४१ ॥

दो विरोधीधर्मवालोंका संयोग न हो, एसा नियम नहीं हे ॥ ३४२ ॥ क्योंकि उनका अधिकरण (आश्रय) जुदाजुदा हे ॥ ३४३ ॥ ओरभी यदि असंयोगही हो तो एक दूसरेकी निवृत्ति न होनेसे व्यवहारकी रचनामें खामी आती हे—याने सृष्टिका प्रबंध न होसके ओर विरोधकी सिद्धिही न हो; इसलियेभी असंयोगका नियम नहीं हे. यथा तम प्रकाशका संयोग देखते हें. पानी उषण होता हे, वहां पानीके अवयवोंके बीचबीचमें गरमी (उषणता) का प्रवेश होनेसे उसका शीतत्व तिरोभावको प्राप्त होजाता हे; उसके अभाव हुये उद्भव होता हे. नेगीटीव-पोजीटीवके संयोग विना वे एक दूसरेको नहीं हटासकते. यद्यपि स्वरुपाप्रवेश नियम सर्वत्र विरोध बताता हे याने एकस्वरुप दूसरेको नहीं आने देता (३८२); तथापि संयोगका निषेधक नहीं हे. जहां तमप्रकाशका संयोग हे वहां उन उभयके अधिकरण-देशभिन्न हें. जहां एक कोठडीमें अंधेरा हो वहां दीपक करें तो तमका अभाव होजायगा. वोह तम कहां भाग गया? पुनः दीपक बुझादेवें तो तम उद्भव होता हे. यह प्रकाश कहां भाग गया?[१] बात यह हे के यहां सहनावस्थारुप विरोध हे. जेसे पानी गरम होता हे वेसे वा जेसे ज्ञान, अज्ञानका प्रकाशक हे वेसे ॥ ३४३ ॥ जिनका आपसमें विरोध हो उनका एक दूसरेसे निवारण होजाता हे. उनमें जो बलवान होगा वही अपने विरोधीको निवृत्त करसकेगा ॥ ३४४ ॥ जेसे के विशेष ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति होती हे ओर तमकी विशेष प्रकाशसे निवृत्ति होजाती हे, क्योंकि वे परस्परके विरोधी हें ॥३४५॥ यदि अज्ञानको वा कोटडीगत तमको वा प्रकाशको तलवार, बर्छीसे निवृत्त करना चाहें तो नहीं होगा. अगर चंचलताको ज्ञान वा कर्म (यज्ञादि) से निवृत्त करना चाहो तो न

[१] प्रकाशका अभावही तम हे, इस मंतव्यका निषेध बस. में किया हे. सू. १२४ का विवेचन देखो.

होगी किंतु चित्तके निरुद्ध संस्कारसे निवृत्त होगी. किसीकी उत्पत्ति, नास्ति (नाश-करना) वा वृद्धि चाहो तो ज्ञान वा उपासनामात्रसे न होगी किंतु कर्मसे होगी. यद्यपि कर्म, उपासना ओर ज्ञान यह तीनों परस्परके सहकारी हें तथापि उनके मुख्य फल जुदा २ हें यह उपर साधनाधिकरणमें कहा हे. भ्रमज्ञान अधिष्ठानके अज्ञानसे होता हे. उसकी निवृत्ति उसके विरोधी-अधिष्ठानके विशेषज्ञानसे होती हे. इ. (यह नियम सू. १९ में भी हे. वहां प्रासंगिक हे, यहां नियमसूचक हे) ॥३४५॥

अज्ञानकी सिद्धि ज्ञानसे होती हे यथा—" में अमुक नहीं जानता " इसका मुझको भान हे. इसलिये सामान्यज्ञान, अज्ञानका विरोधी नहीं जानपडता. किंतु जहां वस्तुका विशेषज्ञान ओर अज्ञान समानकालीन विषयक हों वहां उभयका विरोध हें—अर्थात विशेषज्ञान, अज्ञानका निवर्त्तक होजाता हे ॥ ३४६ ॥ जेसे के पूर्ववर्तीस्थाणुपुरुष, इस अज्ञान ओर उत्तरवर्तीस्थाणु-ज्ञान इन दोनोंका विरोध हे. अज्ञानका विषय पुरुष हे याने स्थाणुके अज्ञानसे पुरुष, एसा भ्रमज्ञान हे ओर ज्ञानका विषय स्थाणु हे याने स्थाणुका विशेषज्ञान हे. इसलिये उभय समान विषयक होनेपर अज्ञानका ओर उसके कार्यभ्रमका नाश होजाता हे. इस समान विषयक कालमें अज्ञान ओर ज्ञानका संबंध अत्यंत समीप होनेसे ज्ञान अज्ञानका निवर्त्तक हुवा, एसा मान्नाही पडता हे. वस्तुतः यूं हे के ज्ञानके उत्तर क्षणमें (ज्ञान होनेके पीछे) वृत्तिका पूर्ववत् अज्ञान परिणाम नहीं होसकता, इसीका नाम अज्ञानका अभाव हे ॥ ३४७ ॥ निश्चित यथार्थ ज्ञानका संशयसे विरोध होता हे ॥ अर्थात जब निश्चयज्ञान हो वहां संशयकी निवृत्ति होजाती हे अथवा संशयका आगमन नहीं होने पाता ॥ ३४८ ॥ जेसेके जब एकके स्वरुपमें दूसरेके स्वरुपका प्रवेश नहीं होता (३८२) एसा निश्चितज्ञान होजावे तो द्वैत हे वा अद्वैत, एसे द्विकोटीग्राही ज्ञान याने संशयका अभाव होजाता हे ॥ ३४९ ॥ द्विकोटीग्राही ज्ञानका नाम संशय हे. यथा डोरी वा सर्प, या सर्प वा लकडी, अथवा डोरी वा अन्य, अथवा सर्प वा अन्य, एसे ज्ञानको संशय कहते हें. यहभी वस्तुके विशेषअज्ञानका कार्य हे ॥ ३४९ ॥

कार्यरुप अवस्था षडविकारवालीही ॥ ३५० (विकारी) ॥ दर्शनसे

३४७ । ज्ञान ओर अज्ञान यह जीववृत्तिकी अवस्था वा परिणाम हें. बस. उत्तरार्द्धमें विस्तार हे. सू. ३४६ से ३४९ तकका उपयोग आत्मा, प्रमा ओर अप्रमाके निर्णय प्रसंगमें होता हे.

॥ ३५१ ॥ संयोगवियोगरूप अवस्थाही उत्पत्तिनाश ॥ ३५२ (कार्य) ॥ परिणामांतर वा ॥ ३५३ ॥ न होके हो सो न रहनेसे ॥ ३५४ (अवधि) ॥ ओर मूल पूर्ववत् रहनेसे ॥ ३५५ ॥ घटादिवत् ॥ ३५६ ॥

उत्पत्यादि तीन क्षणसे न्यूनमें नहीं ॥ ३५७ (क्षण) ॥ वर्त्तमानमें उपयोग दर्शनसे ॥ ३५८ ॥ नाश क्रमशः ॥ ३५९ (क्रमशः) ॥ संयोगज होनेसे ॥ ३६० ॥

परिणामादि मूलपदार्थ नहीं ॥ ३६१ (जन्य) ॥ पूर्ववालेका रुपांतर होनेसे ॥ ३६२ ॥ गतिभी देशस्पर्शास्पर्शरुपावस्था होनेसे ॥ ३६३ (थिर) ॥ संयोगभी ॥ ३६४ (समीप) ॥ संयोगीसे भिन्न अन्य अदर्शनसे ॥ ३६५ ॥ उभय आश्रयोंके विना अप्रत्यक्ष ॥ ३६६ (अप्रसिद्ध) ॥

अर्थ—मूलस्वरुप, उत्पत्ति-नाश रहित अविकारी होते हें ओर संख्यामें जितने हें उतनेही हें यह मूलाधीकरणमें कहा हे. परंतु जो स्वरुपज याने कार्यरुप अवस्था (संयोगज, रचना, परिणाम, संस्कार, ईम्प्रेशन, रसायणीयसंयोग, रसायणीयपरिणाम, अंगी, अवयवी, उपादेय, मध्यमपरिणामवाली अवस्था) हें वे षडविकारी अर्थात उत्पत्ति, वृद्धि, स्थिति, परिणाम (विपर्य, रुपांतर पाना), क्षय (क्षीण होना) ओर अभाव (नाश)—इन छ विकारवाली होती हें. सारांश मूल स्वरुपोंसे अन्यथा याने जो मूल स्वरुपजन्य हे सो, संबंधादि प्रसंगमें वा असंसर्ग प्रसंगमेंभी विकारवाली होती हें. (इन कार्यरुप अवस्थाका प्रवाह रहनेसे इनकी संख्या (गणना) नहीं होसकती अर्थात प्रवाहसे अनादि अनंत हें) ॥ ३५० ॥ क्योंकि संसारमें जितने जन्य कार्य हें उनमें उक्त ६ विकार देखते हें. इन विकार रहित कोई उपादेय-कार्य नहीं होता एसा देखते, सुनते, सुनाते, मानते आये हें ओर वर्तेमानमें देख रहे हें. इसलिये जो स्वरुपज (मूल स्वरुपजन्य अवस्था-कार्य) याने जो अतत्व हें वे तत्व जेसे नहीं होते किंतु उत्पत्यादि षडविकारवाले होते हें. उनकी उत्पत्ति, तत्त्वसमवायसे होती हे ओर पुनः वोह रचना नाश होके मूल स्वरुपरुप होजाती हे. ॥३५१॥ मूल स्वरुपोंके संयोग ओर संयोगजके विभागजन्य जो स्थिति-अवस्था-इसीका नाम उत्पत्ति वा नाश हे, (एसा १३७ । १३९ नियम कहता हे. याने इन नियमोंकी अर्थापत्ति हे) ॥ ३५२ ॥ किंवा किसी समूह पुंजका परिणामांतर होना उसका नाम उत्पत्ति नाश हे ॥ ३५३ ॥ क्योंकि कार्यरुप अव-

स्था न होके होती हे ओर होके नहीं रहती ॥ ३५४ ॥ ओर उसका मूल पूर्ववत् रहता हे ॥ ३५५ ॥ जेसे के घट, बर्फ, जल, दूध, दही आदि अतत्त्व बनते, बिगडते हें परंतु उनका मूल रहता हे ॥ ३५६ ॥

घट, परमाणुओंकी वा दो कपालकी संयोगजन्य अवस्था (वा कार्य) हे. यह घट न था, हुवा ओर नहीं रहता; उसके मूलपरमाणु रहते हें. जलका बरफ परिणाम न होके हुवा ओर न रहेगा; जलके मूल औ. उद. शेष रहेंगे. दही, दूध न होके हुये ओर नाश होंगे; उनके मूल सत्वरजतममिश्रितपरमाणु शेष रहेंगे. रसायणीयसंयोगजन्य औषधिभी एसीही हें. स्वप्नसृष्टिभी किसी (माया–सूक्ष्मा) का परिणाम याने उत्पत्ति–नाशवाली हे. परिणामका बदलना–न रहनेका नामही उत्पत्ति-नाश हे. जेसे शरीर (वा वृक्ष)की उत्पति, पुनः वृद्धि, पुनः स्थिति, पुनः उसमें न्यूनाधिकता, पुनः न्यूनता होके अंतमें वोह नाश होजाता हे, एसे सब कार्योंमें घटा लेना चाहिये. (शं) गति (कर्म) ओर संयोगकी उत्पत्ति तथा नाश देखते हें. उनमें इन दोसे अन्य उक्त ४ प्रकार नहीं देखते. (उ.) कर्म यह कोई कार्यरुप वस्तु नहीं हे किंतु अवस्थाविशेष हे; अतः शंका अप्रासंगिक हे. तथापि देशकी स्पर्शास्पर्श-वाली बिंदुको ओर गतिके क्रमको सूक्ष्म विचारद्वारा देखोगे तो उसका आरंभ, मंद–तिव्र रुपमें बदल ओर मध्यमें स्थिति तथा अंतमें नाश होना जानपडेगा. तद्वत् संयोग विभाग कोई वस्तु नहीं हे किंतु अवस्था हे; तथापि कमसे कम ३ क्षणमें उसकी उत्पत्ति तथा नाश होता हे. उपरांत गति ओर संयोग षडविकार होनेमें सहकारी निमित्त हें; अतः उनके संबंधमें आपकी शंका नहीं बनती.

कपाल वा परमाणुओंमें जल आनयनकार्य नहीं होता ओर घटमें होता हे इसलिये व्ह मृतिकापिंड वा कपालसे अन्य-नवीन हे, अवस्था नहीं. एसा मान्ना समीचीन नहीं हे. क्योंकि परमाणुओंकी रचनासे आकाश घिराया हे, इसलिये जलको आधार मिलनेसे जलानयनकार्य होता हे. उपादानोंके गुण–योग्यता, उद्भव तिरोधित होनेसे तथा रचनाका भेद होनेसे नवीनता जानपडती हे. वस्तुतः घट नवीन वस्तु नहीं हे. जब घटकी श्यामता बदलके घट लाल होता हे वहां अग्निके संबंधसे रंग आया हे, नहींके नवीन घट हुवा हो. घट (वा कुंडल, दही, बरफ वगेरे) क्षणिक पारीणामी हे; अतः दीपककीलो समान नवीन हे, षडविकारवाला नहीं हे, एसा मान्नाभी भूल हे; क्योंकि उसे स्थाई देखते हें. एक घटको दो पुरुष साथ पकडके लेजाते हें, एक सूर्य अनेकोंको भासता हे, इसलिये घटादि क्षणिक ओर नवीन नहीं हें.

घटादि प्रागभाव (घटादिकी उत्पत्तिके पूर्व उसके उपादानमें उसका जो अभाव सो) से पेदा होते हों तो द्विअणुक, त्रिअणुकसेभी पेदा होने चाहिये; क्योंकि घटादिका प्रागभाव (अनादिसे) अणुअणुमें मात्रा पडता हे ओर आप मानतेभी हो, क्योंकि प्रागभावके विभाग-टुकडे नहीं होते. तथाहि जो प्रागभावके उपादेय हों तो घटादि अभावरुप होने चाहिये. (सू. ३०२ । ३१० याद कीजिये), परंतु उनको भावरुप देखते हें; अतः घटादि, प्रागभावसे जन्य याने नवीन नही हें. जो एसा मानें कि घटादि पूर्वमें थे परंतु अव्यक्तरुपमें थे, वर्तमानमें व्यक्तरुपमें आये हें; अतः षडविकारी नहीं हें । तो घटादिके व्यक्त होने पूर्व तो परमाणुरुप हें, उनमेंसे एसे घटादिरुप नवीन कार्य कहांसे आगये? इसका योग्य उत्तर नहीं मिलता. तथा जो प्रथममें हें तो उपादानकारण, इस व्यापार-व्यवहार-मात्रेकी क्या आवश्यकता हें. सत्की उत्पत्ति कहना व्याघात ओर असत्की उत्पत्ति कहना हास्यास्पद हे. सत्से सत्का संयोग हुवा हे ओर उपयोग होता हे; अतः कार्य सत् हे परंतु सत्का अभाव नहीं होता ओर कार्यका नाश होता हे; अतः असत् हे--इत्यादि विवाद, बुद्धिके विलासमात्र हें. सू. ६७२ । ६७३ भी देखो. सारांश जो अतत्व-कार्य-अवस्था हें वे सब विकारी होते हें ओर उनकी उत्पत्ति--नाश होता हे ॥ ३५६ ॥

हरकोई कार्यरुप पदार्थकी उत्पत्ति, स्थिति ओर नाश याने यह तीनों कार्य तीन क्षणसे कममें नहीं होते ॥ ३५७ ॥ क्योंकि उत्पत्ति पीछे ओर नाशके पूर्व उसका उपयोग देखते हें ॥३५८॥ जो तीन क्षणसे पहेले नाश होता याने क्षणिक होता तो उसका ज्ञानभी नहीं होता ओर न व्यवहारमें उसका उपयोग होता. उपयोग वा ज्ञान होना उसके ३ क्षण सिद्ध करदेता हे. क. शब्दकी उत्पत्ति हुई यह पहेली, उसका ज्ञान हुवा यह दूसरी ओर फेर उसका लय होगया यह तीसरी क्षण हुई. दीपककी लोका क्षणिकप्रवाह हे, परंतु अंतकी बिंदुपर प्रकाशका परमाणु आके जारहा हे तहां उसका आना तहां विषम होजाना ओर चलते जाना यह तीन क्षण हें. गेंद गतिमें हे. पहिलीक्षणमें आकाशके एक बिंदके साथ उसका संयोग हुवा, दूसरीमें स्पर्श हुवा ओर तीसरीमें उससे वियोग हुवा हे. विजली जब जमीनपर आती हे तब उसके अग्र परमाणुका अंतरिक्षस्थ असंख्य (बहुत) परमाणुओंके साथ पृथम संयोग पीछे समानमिलान पीछे उससे वियोग, एसे तीन काम क्रमशः होते हें. इसप्रकार असंख्य (अनेक) परमाणुओंके साथ तीनतीन कार्य हुये अर्थात असंख्य (अगणित) कार्य एक क्षणमें जान पडे. परंतु वस्तुतः

क्रमशः असंख्यकाल ओर असंख्य प्रदेशमें हुये हें. अब विचार करिये के देश, काल ओर गतिका स्वरुप कितना दुर्बोध्य हे. जीव, मन वा विजली, एक क्षणमें तमाम ब्रह्मांडकी परिक्रमा क्यों न करसकें ? संभव हे. अब जो एसा होवे तो विचारिये कि देशके कितने प्रदेश, ओर कितने असंख्यानअसंख्य परमाणुओंके साथ एक क्षणमें तीनतीन कार्य होंगे अर्थात किसकिस देश बिंदुमें ओर कितनी समयमें एकएक कार्य हुवा होगा. सारांश देश, काल ओर गति कितने सूक्ष्म ठेरते हें ! ओर पुनः उनका प्रकाशक (जिसमें वे ग्रहण हों वा जिसके प्रकाश्य-ज्ञेय हों सो) ज्ञान स्वरुप उनसेभी कितना ज्यादा सूक्ष्म ओर दूर्बोध्य होगा ? उत्तरमें अकथ्य, अवाच्य ओर अनिर्वचनीय पद मिलेगा ॥ ३५८ ॥

हरकोई परमाणुजन्य कार्य वा मध्यमपरिणामका जब अभाव (नाश) होता हे तब क्रमशः होता हे याने एक क्षणमें नहीं होता ॥ ३५९ ॥ क्योंकि वोह संयोग-जन्य हे. एक संयोगवियोगमें ३ क्रम होते हें ॥ ३६० ॥ जेसे अनेक संयोग क्रमशः होते हें वेसेही उनका वियोगभी क्रमशः हो यह स्पष्टही हे. यथा पटका आगसे दहन हो तब, कुहाडेसे लकडी फाडें तब, बिजलीसे वा अग्निसे शरीरका नाश हो तब, घटका मुदगरसे–नाश हो तब, मनोवृत्तिका परिणाम बदले तब, स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति, ओर नाश हो तब, ओर जलबर्फरुप हो वा बर्फ जलरुप हो तब जो नाश होता हे सो कालके क्रमसे होता हे, एकदम नहीं होता. उत्पत्तिका क्रम, नाशकी अर्थापत्तिसे आजाता हे; इसलिये सूत्रमें उत्पत्ति शब्द नहीं लिया हे. यह नियम ६७६ से विरुद्ध नहीं हे ॥ ३६० ॥

---

३५८ एक पक्ष स्थितिकी क्षण नहीं मानता. यथा ककारकी उत्पत्ति पीछे नाशही हे. सो नाशही ख. की उत्पत्ति हे. एक पक्षकार पहली क्षणमें ककारकी उत्पत्ति, दूसरी क्षणमें नाश, तीसरी क्षणमें खकारकी उत्पत्ति. एसे २ क्षण मानता हे. इसप्रकार ९ क्षण तक उत्पत्ति स्थिति-नाश मान्नेवाले हें. एसे ६ पक्ष-वाद हें. उनमेंसे १ ओर २ क्षणवादीका मत असमीचीन रहता हे. सर्प सीधा होके गोलाकार होरहा हे; यहां सीधे होने, रहने ओर उसके अभाव होनेमें ३ क्षण हें. जो ३ क्षण न मानें तो आलातका चक्र नहीं विषय होना चाहिये. अंतिमध्वनिके अभावमें अन्योंका आघात निमित्त हे. क्षणिकवादि दीपककी लो समान एकही क्षण मानता हे. परंतु उसके उपादान ओर प्रतीतिकी व्यवस्था नहीं करसका हे. दर्शनसंग्रहगत बौधप्रसंग यादमें लो.

परिणाम, प्रभाव (असर), अवस्था, उपादेय, अवयवी, अंगी यह स्वरूपतः मूल पदार्थ याने तत्व नहीं हें ॥ ३६१ ॥ क्योंकि अपने पूर्ववालेकेही रुपांतर हें ॥ ३६२ ॥ जहां गरम जल होने पीछे जल ठंडा होनेपर जलका स्वाद बदलजाता हे वहां गरमीद्वारा जलगत जंतु मरनेसे तथा विजली वगेरेके फेरफारसे न्यूनाधिकता होती हे, इस अवस्थाका नाम असर हे; दूसरे पदार्थोंके साक्षात वा परंपरा संबंधसे वा शब्दादिसे मगजमें ईम्प्रेशन (मगजकी सूक्ष्म अवस्था) वा फेरफार होता हे, वा कोई कारणसे मनकी गति अन्यथा होने लगती हे, यहभी अवस्था हुई; नहींके कोई असरनामका नवीन पदार्थ पेदा हुवा. एसेही दवाइ खानेसे जो अंदरमें फेरफार होता हे उस प्रसंगमें जानलेना चाहिये. सूत्रगत परिणामादि शब्द स्पष्ट हें; विवेचन उपर आचुका हे ॥३६२॥ गतिभी कोई भिन्न तत्वपदार्थ नहीं हे; क्योंकि द्रव्यकी देश (वस्तुदेश वा आकाशदेश) स्पर्शास्पर्शरुप अवस्था हे ॥ ३६३ ॥

ओर संयोगभी कोई पदार्थ (तत्व) नहीं हे ॥ ३६४ ॥ क्योंकि जब दो पदार्थोंका अंतरायरहित संयोग होता हे तब उन संयोगियोंसे इतर अन्य कोई पदार्थ नहीं जानपडता ॥३६५॥ गति करता हुवा पदार्थ जब स्थित होजावे तब गति, वा संयोग हुये पीछे गति वा संयोग यह दोनों गतिवान वा संयोगीसे इतर अन्य दूसरी वस्तु नहीं जानपडती; अतः उभय पदार्थ नहीं. किंतु द्रव्योंकी स्पर्शास्पर्शरुपावस्था हें ॥ ३६३ । ३६४ । ३६५ ॥ गति ओर संयोग यह दोनों अपने आश्रय अर्थात जिसकी गति हो उसके ओर जिनका संयोग हो उन दोनोंके प्रत्यक्ष हुये विना प्रत्यक्ष नहीं होते. जो एक संयोगी प्रत्यक्ष हो तोभी दूसरा अप्रत्यक्ष रहनेसे संयोग प्रत्यक्ष न होगा; क्योंकि उसका दूसरा आश्रय अप्रत्यक्ष हे. (यहां गतिका आश्रय गतिवान, एसा वाक्य उपचारमात्र वा रुढीमात्र हे; क्योंकि गति गतिमान यह दो जुदा वस्तु नहीं हें) ॥ ३६६ ॥

उपयोगार्थे स्थित्यांतरका प्रवाहही ॥ ३६७ (प्रवाह) ॥ **सफलत्वकी आपत्तिसे** ॥ ३६८ ॥

सृष्टिका अनुच्छेद ॥ ३६९ (अनुच्छेद) ॥ **एक स्थितिका अभाव** ॥ ३७० ॥ **विभुका नित्य उपयोग** ॥३७१ ॥

अर्थ—जितने परिच्छिन्न पदार्थ हें उनका उपयोग होता हे; इसलिये उनकी स्थितिका अनादि अनंत प्रवाह हे अर्थात किसी एक परिच्छिन्न वस्तुका साधारण वा अतिउपयोग होनेपर उस वस्तुकी वहांके उपयोगसे निवृत्ति होके वोह दूसरे

उपयोगमें आवे एसा होते रहनेका याने इन दोनों क्रम (निवृत्ति–प्रवृति स्वभावतः) का प्रवाह हे. जोकि स्वभावतः वा निमित्ततः होता रहता हे. सारांश एक परिच्छिन्न वस्तुका वा उसकी योग्यताका एक जघे उपयोग हो तो फेर वहांसे निवृत्त होके उनका दूसरी जघे उपयोग होगा, यह स्वाभाविक–नैसर्गिकनियम हे. इसीका यह अर्थ हे " कि उपयोगार्थ स्थित्यांतरका प्रवाह हे " ॥ ३६७ ॥ क्योंकि सफलत्व (१२७) की आपत्ति हे. निष्फल (निरुपयोगी) वस्तु कोईभी नहीं हे ॥ ३६८ ॥ कोई अणु, कोई कारणवशात थोडा समय उपयोग विना रहसके, परंतु पुनः उपयोगमें आवेगा. क्योंकि एक स्थितिमें न रहे ओर स्थितिमें फेर बदल होता रहे, एसा अनादिअनंत प्रवाह हे (३७० वांचो). एक वस्तु हमेशे एक देशमें एकही उपयोगमें क्यों न रहे? परंतु उसकी दूसरी योग्यता (गुणशक्ति) निकम्मी रहेंगी; अतः एसा नहीं होसकता. जो एक उपयोगमेंही रहना वा निकम्मी पडी रहना मानलेवें तो जबतब सृष्टिका उच्छेद होजाय. परंतु यह बात असंभव हे–अलीक हे; तथा सफल नियमका कोप हो; अतः प्रवृत्ति निवृत्ति-स्वभावतः यह सृष्टिनियम समचीन ओर योग्य हे ॥ ३६८ ॥

इससे यह दो नियम निकल आते हें.–(१) सृष्टिका कभी उच्छेद नहीं होता क्योंकि उपयोगका प्रवाह हे ओर निष्फलत्वका अभाव हे ॥३६९॥ (२) परिच्छिन्न वस्तु एक स्थितिमें नहीं रहसकती, इसमेंभी उक्त दोनों हेतु हें ॥३७०॥ (मुक्ति यदि हो ओर वहां एक स्थितिमें जीव रहें याने पीछे संसारमें न आवें, यह नहीं बनसकता. यह बात यूही नियम बताते हें) ॥ ३७० ॥ विभु वस्तुकी स्थिति नहीं बदलती, यह बात ठीक हे परंतु सर्वत्र होनेसे उसका नित्य उपयोग होता हे; (इसलिये सफल नियमबाधक नहीं होसकता) ॥ ३७१ ॥ आकाशका नित्य उपयोग होता हे–निष्फल नहीं हे. यदि ब्रह्मांडका कोई विभु अधिष्ठान होगा तो उसकाभी नित्य उपयोग होता होगा. क्योंकि वोह सर्वव्यापक–सर्वाधार हे अर्थात वोह निष्फल नहीं हे ॥३७१॥

***मूर्त्तामूर्त्तादि स्वरुपसे इतर इतरही ॥ ३७२ (भिन्न) ॥ वैलक्षण्य होनेसे ॥ ३७३ ॥ यथा गुण गुण्यादि ॥ ३७४ (पृथक) ॥ ओर द्रष्टा**

* सू. ३७२ से ३८७ तक भेद (इतरेतर) अधिकरण हे. तदंतरगत संबंध (३७८ से ३८१ तक), भेद (३८२ । ३८३) ओर वैलक्षण्य यह गुण हें, जो इतरेतरसे उद्भव होते हें. इतरेतरसे संबंधकी कल्पना, संबंधसे स्वरुपाप्रशकी कल्पना, उससे भेदत्वके विवेककी कल्पना; एसे संगति ओर गुण हें.

दृश्यादि ॥ ३७५ (दृष्टा) ॥ न उपादानोपादेय ॥ ३७६ (अभिन्न) ॥ अन्य स्वरुप न होनेसे ॥ ३७७ ॥

संयोगसे इतर अन्य साक्षातसंबंध नहीं ॥ ३७८ (संबंध) ॥ अन्यमें अंतराय होनेसे ॥ ३७९ ॥ कल्पित संबंधभी ॥ ३८० (व्यापक) ॥ आकाश परमाणुवत् ॥ ३८१ ॥

स्वरुपमें अन्यका अप्रवेश ॥३८२ (भेद)॥ अनन्यत्व न होनेसे ॥३८३॥

प्रकाश ओर तमसे भिन्नभी अधिकरण ॥ ३८४ (परमाणु) ॥ यथा वायु ओर शब्द ॥ ३८५ ॥

विलक्षणत्वही भेद ॥३८६(अभेद)॥ वस्तु देशकी विलक्षणतासे ॥३८७॥

अर्थ.—जितने मूर्त्तामूर्त्तादि (विगत ३८२ में हे) स्वरुपतः पदार्थ हें वे अर्थात जितने मूलस्वरुप हें वे परस्परमें ओर जितने स्वरुपज स्वरुप हें वे परस्परमें ओर अपने उपादेय (परिणाम–अवयवी) से भिन्न जितने मूलस्वरुप ओर स्वरुपज हें वे परस्परमें स्वरुपसे जुदाजुदा होते हें ॥ ३७२ ॥ क्योंकि वे परस्परमें विलक्षण स्वरुपाधिकरणवाले किंवा देशविलक्षणअधिकरणवाले होते हें ॥ ३७३ ॥ जेसे के गुण ओर गुणी, शक्ति ओर शक्तिमान, जाति ओर व्यक्ति (धर्म ओर धर्मी), स्वभाव ओर स्वभाववान, प्रभाव ओर प्रभाववान, अवस्था ओर अवस्थावान, क्रिया ओर क्रियावान, संबंध ओर संबंधि, (यह योग्यता ओर जिसकी योग्यता) हें सो यह उभय यदि स्वरुपतः कोई वस्तु हों तो वे साथ रहेते हों तोभी अपनेअपने स्वरुपभावमें परस्परमें भिन्नभिन्न हें ॥ ३७४ ॥ जो वे स्वरुपतः दो न हों तो दूसरी बात हे. जेसे के गति ओर गतिवान दो वस्तु नहीं, इत्यादि ॥ आकाश, अग्निके परमाणु, जलगत औषजन-उदजनके अणु, कनकके मूलपरमाणु, प्रकाश-गरमी विजलीके अणु–इत्यादि जो स्वरुपतः वस्तु हों तो वे स्वरुपसे भिन्नभिन्न हें, एसा जानना चाहिये (विशेष मूलमें ओर बस. में). ॥ ३७४ ॥ ओर जेसे के दृष्टा ओर दृश्य, ज्ञाता ओर ज्ञेय, आधार ओर आधेय, प्रकाश ओर प्रकाश्य, व्यापक ओर व्याप्य, भोक्ता ओर भोग्य, प्रतियोगी ओर अनुयोगी, संबंध ओर संबंधि तथा कर्ता ओर कर्म यह यदि स्वरुपतः कोई वस्तु हों तो वे जुदाजुदा होते हें (होंगे), यह सबके अनुभवमें हे ॥ ३७५ ॥ यथा शब्दादि पंचविषय ओर घटादि पदार्थका विषयकरनेवाला उनसे भिन्न हे. जो दृष्टा, द्रश्यादिको एकरुप मानें ओर जुदा स्वरुप न मानें तो दृष्टादि भावकी सिद्धिही नहीं होगी; अथवा दृष्टादि सावयव-मध्यम-नाशवान ठेरेंगे वा तो

एकभाग दृष्टादि ओर दूसरा भाग दृश्यादि होगा अर्थात स्वरुपसे भिन्नही सिद्ध होंगे. तद्वत् इदम, अहं, त्वं, सो, के जो वाच्य हैं वे स्वरुपतः एक दूसरेसे भिन्नही होते हैं. जो कभी में, तू, का ओर तू, में का यह, उसका ओर वोह, यहका वाच्य होता हे सो व्यवहारमात्र हे. कनककी दो गोली समान हों तहां स्वरुपतः वे भिन्न हैं; क्योंकि उभयका स्वरुपाधिकरण ओर देशाधिकरण भिन्न हे. प्रज्ञाचक्षुके हाथमें वे दो गोली भिन्नभिन्न कालमें दीजावें ओर पुनः देके पूछें तो बतावेगा कि यह पूर्वमें ओर यह उत्तरमें दी थी. (मारतंड कवि, गट्टुलाल प्रज्ञाचक्षु मशहूर हुये हैं. सजातीय ओर समान पांच वस्तु, पांच आदमी जब उनको देते थे तो वे त्वचाद्वारा उनका वैलक्षण्य जानके उनउनके नाम लेके पीछी देतेथे. इससे यही सिद्ध होता हे कि यह, वोह, तू ओर में के वाच्य भिन्नभिन्नही होते हैं ॥ (विशेष मूल ओर बस. में हे) ॥ ३७५ ॥

उपर सब इतेरतर कहे हैं परंतु उसमें इतना अपवाद हे अर्थात जो उपादान (परिणामी-अवयव) हे उसीका जो उपादेय (परिणाम-अवयवी) हे सो याने उपादेयउपादान जुदाजुदा नहीं हैं ॥ ३७६ ॥ क्योंकि वे दोनों जुदा स्वरुप नहीं हैं किंतु एक स्वरुप हैं. व्यवहार ओर उपयोगकी अपेक्षाको लेके जुदा कहेजाते हैं, यह उपर कहा हे ॥ ३७७ ॥

दोका दोनोंके संयोगसंबंधसे इतर अन्यसंबंध, साक्षातसंबंध नहीं हे अर्थात संयोगसे इतर दूसरा कोई साक्षातसंबंध नहीं होता हे ॥ ३७८ ॥ क्योंकि संयोगसंबंधसे इतर संबंधोंमें अंतर होता हे अर्थात परंपरासे होता हे ओर संयोगअंतराय रहित होता हे (संयोगअधिकरण याद करिये) ॥ ३७९ ॥ हाथ, वृक्षका संयोग संबंध साक्षात हे. फलके साथ परंपरासे हे. कलम, अक्षर, कागजका संयोगसंबंध साक्षातसे हे, हाथ कागजका, कलमद्वारा हे ॥ ३७९ ॥ लोक व शास्त्रीयव्यवहारमें कल्पितसंबंधभी मानाजाता हे ॥ ३८० ॥ जेसे के आकाश ओर परमाणुका संयोगसंबंधभी हे, क्योंकि परमाणुकी गति होनेपर संयोगवियोग होताजाता हे ओर व्याप्य व्यापकभावभी कल्पाजाता हे, क्योंकि आकाशके अंदर परमाणु हे, आकाशके अंदरही गति करता हे ओर परमाणुमें आकाश नहीं हे याने परमाणु आकाश रुप नहीं हे ॥ ३८१ ॥ ओरभी संयोगसंबंध अंतरायरहित होता हे—यथा दो परमाणुके संयोगमें आकाश, तम, प्रकाश, ईश्वर वा अन्य नहीं होसकता. यदि हो तो दो देशांतरवालोंसेभी कार्य होना चाहिये परंतु नहीं होता. गुणगुण्यादिका संबंधभी

विचारणीय हे, गति गतिवानका कोई संबंध नहीं; क्योंकि गति उसकी अवस्था हे. नहींके संयोग वा समवाय. तद्वत् गुण-शक्ति, योग्यता हें; न कि कोई वस्तु; ओर जो वस्तु हों तो गुण्यादिके साथ संयोगी होंगी. जो संबंधको विचारें तो यह परिणाम आता हे कि या तो ईश्वर वा विभु वस्तु नहीं वा तो परिच्छिन्न संयोगीवस्तु नहीं. व्याप्यव्यापक, तादात्म्य, समवाय, भेदाभेद वा संयोगसंबंध नहीं बनता किंतु अनिर्वचनीय विलक्षणसंबंध (स्वप्नदृष्टादृश्यसमान) मानसकते हें. नहीं तो स्वरुपाप्रवेश (३८२ भेदसूत्र) बाधक होता हे. ओर संबंध अनेक होनेसे संबंधका संबंध मान्नेसे अनवस्था ओर अव्यवस्था होती हे ॥ ३८१ ॥

उपरोक्त मूर्त्तामूर्त्तादि हरकोई प्रकारके (सजातीय, विजातीय, इदं, अहं, तु ओर वोह, के वाच्य) स्वरुपाधिकरणमें दूसरे स्वरुपाधिकरणका प्रवेश नहीं होता (स्थूल रुपमें यूं कहते हें कि एक कालमें एक देशमें दो वस्तु नहीं समाती) ॥ ३८२ ॥ क्योंकि उनका अनन्यत्व नहीं हे याने जो उनकी हस्ति हे—अस्तित्व हे सो स्वरुपसे इतरेतर (जुदाजुदा) हे ॥ ३८३ ॥ इसका विवेचन.—

स्वरुपाप्रवेश.—

स्वरुप वा तत्व उसे कहते हें कि जिसमें दूसरेका किंचितभी मिश्रण न हो, आप अपना संयोगी न हो, स्वगतभेदरहित हो, अपरिणामी हो, निरवयव, अखंड, एकरस, अनादिअनंत, हो. जो स्वरुपज हें वेभी व्यवहारमें स्वरुप वा तत्व कहाते हें. जेसे के पानी, गंधक इत्यादि. यहां उनका प्रसंग नहीं हे. किंतु मूल स्वरुप—मूल तत्वका प्रसंग हे. यथा हो तो शक्तिकास्वरुप, शक्तिवानकास्वरुप, द्रव्य (अणु वगेरे) स्वरुप, गुणस्वरुप इत्यादि. इसीको जात वा जाहेरभी कहते हें. देश, काल ओर वस्तु—स्वरुप, यह तीन अधिकरण कहाते हें.

उक्त एक स्वरुपअधिकरणमें दूसरे स्वरुपाधिकरण (वा स्वरुपजाधिकरण) का प्रवेश नहीं होता; यह सृष्टिनियम—सूक्ष्मदर्शी, अनुभवी, तत्ववेता बुद्धिको गम्य हे. (ब्रह्मसिद्धांतगत स्वतः ग्रहणप्रकारी, सू. ३८६) अनुभव गम्य करिये ॥ मूर्त, अमूर्त, जड, चेतन, साकार, निराकार, स्थूल, सूक्ष्म, अणु, विभु, मध्यम, सगुरुत्व, गुरुत्वरहित, व्यक्त, अव्यक्त, गोचर, अगोचर, सगुण, निर्गुण, सावयव, निरवयव, सजातीय, विजातीय, विरोधि, अविरोधि, गुण, गुणि, शक्ति, शक्तिवान, व्यक्ति, जाति, द्रव्य, निरावरण, सावरण, संबंध, संबंधी, धर्म, अधर्म, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पारदर्शक, न पारदर्शक, उपाधि, उपहित, विशेषण, विशेष्य, व्यापक,

व्याप्य, चल, अचल, प्राकृत, (मेटीरीयल–जो स्थूल रुपमें आवे तो दृश्य हो), अप्राकृत, (इनमीटरीयल जिसके वजन न हो, गरमी–वीजली वगेरे,)[१] संक्षेपमें जो **इदं, अहं, सो** ओर **तू** का विषय (वाच्य) हो.-इनकी **मूर्त्तामूर्त्तादि** संज्ञा हे.

इन मूर्त्तअमूर्त्तादि संज्ञावाला यदि कोई स्वरुपतः स्वरुप हो तो–अस्तित्व रखता हो तो उस एक स्वरुपमें दूसरे स्वरुपका प्रवेश नहीं होता. यथा यदि आकाश वा ज्ञान वा शब्द स्वरुपतः वस्तु हों तो आकाशमें आकाश, ज्ञान वा शब्द ओर ज्ञानमें ज्ञान, आकाश वा शब्द ओर शब्दमें शब्द, आकाश वा ज्ञानके स्वरुपका प्रवेश नहीं होसकता. यह विषय स्थूल शब्दोंमें यूं कहाजाता हे के एक कालमें एक देश विषे दो वस्तु नहीं रहसकती. (यह–हम आंखसे देखते हें, मुखसे खाते हें, एसा प्रसिद्ध विषय हे, परंतु हम आंख ओर मुखको नहीं देखते, ऐसा दुर्बोध्य होपडा हे. इसलिये कुछ खोलके लिखते हें.)

जो यूं हे तो उपरोक्त गुणादि गुणीआदि यदि स्वरुपतः कोई वस्तु हों तो वे नित्य साथ रहते हों वा जुदा न होसकते हों तोभी, वे स्वरुपतः जुदाजुदा ओर परस्परमें संयोगी हें; एकके स्वरुपका दूसरेमें प्रवेश नहीं हे, एसा मान्ना पडेगा. एसेही व्याप्य, व्यापक, तादात्म्य, समवाय, ओर अभेद संबंधवाले संबंधी, ओर उनके संबंध वास्ते ज्ञातव्य हे, यानि एसे संबंध सिद्ध नहीं होते; क्योंकि जब सूक्ष्म विचार करें-अर्थात गुणादि गुणीआदिके ओर गुणीआदि गुणादिके ओर व्याप्यादि व्यापकादिके ओर व्यापकादि व्याप्यादिके अंदर वा बाहिर वा किसीएक देशमें हें वा क्या? तो यातो उनको संयोगी मान्ना पडेगा वा तो स्पष्ट उत्तर न मिलेगा वा तो उनमेंसे एक वस्तु हे, दूसरा वस्तु नहीं हे, यह कहना होगा. जो यह मानें " के गुणादिको गुणीआदिसे ओर गुणआदिको गुणादिसे निकालें तो शेष कुछ नहीं रहेगा, तब तो यह सिद्ध होगया कि गुणादि अथवा गुणीआदि स्वरुपतः जुदाजुदा वस्तु नहीं, किंतु दोनों एक स्वरुप हें. वे दो नहीं हें; परंतु व्यवहारार्थ उपचारमें कभी गुणादि कभी गुणीआदि संज्ञा देते हें. " जो यह सिद्ध हुवा हो तो यद्यपि स्वरुपाप्रवेशका सवाल तो न रहा; परंतु जगतके कार्य न होसकेंगे, क्योंकि शक्ति वगेरे विना कार्य नहीं होते; इसलिये यह मान्ना पडेगा कि गुणादि ओर गुण्यादि पदके जो वाच्य हें उनका समूह होनेसे गुणादि, गुणीआदिका प्रयोग होता हे (**ब्रह्म**

[१] मूर्त्तअमूर्त्तादि संज्ञामें पुनरुक्तिवाले विशेषण पक्षकारोंकी दृष्टिके कारणसे ओर शीघ्र बोध होनेकी मुरादसे रखे हें.

सिद्धांत गत सू. २३० से २३४ तकका विवेचन देखिये). परंतु उपरोक्त व्याप्य व्यापकादि संबंधमें तो यूं भी नहीं बनता, क्योंकि व्यापकव्यापकादिमें संयोगसंबंध नहीं मानसकोगे. यथा आकाश ओर परमाणुका संयोगसंबंध होता ओर बिगडता चलता हे. अब जो यही मानलें तो आकाशकी व्यापकता नहीं रहती, क्योंकि शून्य (आकाश–पोल) में परमाणु वा जीव हे. परंतु परमाणु वा जीव, पोल–शून्य नहीं हे. अर्थात परमाणुमें आकाश नहीं. ओर व्याप्य मानें तो संयोगसंबंध नहीं होसकता; इसीप्रकार तादात्म्यआदि संबंधोंमें योजलेना चाहिये ॥ अथवा यूं मानें कि जिन संबंधोंको मनुष्य नहीं जानसकता वे अनिर्वचनीय, अवाच्य वा अगम्य हैं; तो इत्थमभावसे स्वरुपप्रवेश न मान्ना चाहिये वा यह अनिर्वचविषय हे, एसा कहना ओर मान्ना चाहिये.

क्षारजलमें पानीका ओर खारका स्वरुप भिन्न हे, समीपसंयोगी होनेसे एक स्वरुप जानपडता हे; क्योंकि जो यंत्रमें खेंचें तो मीठापानी ओर खार जुदे होजाते हैं. इसीप्रकार जलगत ओक्षजन, हाईड्रोजनके मिश्रणमें रसायणीयसंयोग हे; न के वे एकस्वरुप हुये, क्योंकि प्रथक्करण करनेपर वे उतनेके उतने–पूर्वजेसे निकल आते हैं. कनकके गोलेमें पानी डालके दाबें तो पानी बाहिर आजायगा. लोहकी नलीमें पारा डालके अग्नि दें तो लोहेमेंसे पारा निकलजायगा. काचके नीचे जो रंगदार वस्त्र हे उसकी किरणें काचके छिद्रोंमेंसे निकलके आती हैं; यदि दसबीस काच उपर रखदें तो वस्त्र नहीं दीखेगा. पक्षी उडता उडता ज्यादे उपर जावे तो नजर नहीं पडता अर्थात सूक्ष्मपरमाणुओंकी आडीटेढी आडमें आगया. (शं.) काचमें वायु न जानेसे शब्द नहीं जाता परंतु प्रकाश वा गरमी जाती हे, इसप्रकार स्वरुपप्रवेश होता हे. (उ.) काचमें छिद्र हैं, वायु न जासके एसे वे सूक्ष्म हैं. जो दसबीस काच जोडदिये जायँ तो पूर्ववत् प्रकाश उसमें नहीं आसकेगा. ओर गरमीका यदि प्रवाह होगा तो बहुत देरसे आवेगी अर्थात किरणों समान आडी टेढी होती हुई छिद्रोंमें होके चलेगी; इसलिये काचके मुख्य परमाणुके स्वरुपमें उसका प्रवेश नहीं होता; यह परिणाम निकला.

घटके अंदर जो आकाश हे वोह घटके साथ चलता जानपडता हे परंतु एसा नहीं हे. क्योंकि प्रकाशवाला आकाश घटके साथ कमरेमें नहीं आया. घटका आकाशमें पसार हुवा हे. तारोंकी किरणोंका जुत्थ किरोडों कोसमें भरे हुये परमाणुके समुद्रको चीरके आता हे, दो मनुष्य परस्परमें आंखें मिलायें तो एक दूसरेके मुखकी

किरणें एक दुसरेकी आंखोंमें प्रतिबिंब करती हें, परंतु परस्परमें नहीं अथडाके जाती हें.

उक्त उदाहरणोंसे स्वरुपकी जुदाई ओर आकाशकी सूक्ष्मता जानी होगी. आकाश यदि स्वरुपसे वस्तु होतो परमाणुके स्वरुपमें उसका ओर परमाणुके स्वरुपका आकाशमें अर्थात परस्परमें उनका प्रवेश नहीं हे. किंतु परमाणुके स्वरुपांशको छोडके इधर उधरमें आकाश संयोगी हे. मानो चालनी समान होय नहीं; नहींकि एकरस घन, विभु. क्योंकि परमाणु, शून्यमें हे परंतु उसमें शून्य नहीं हे, परमाणु शून्यरुप नहीं हे. जो आकाश वस्तु नहीं तो गति करनेको अवसर न होना चाहिये. किसी दो परमाणुके संयोग प्रदेशमें प्रकाश, तम, आकाश वा ईश्वर नहीं होना चाहिये. ओर जो मानें तो कार्य न होना चाहिये. वा तो दोनोंके संयोग हुये विनाभी कार्य होना चाहिये; क्योंकि दरमियानमें प्रकाशादि हुयेभी कार्य होना मानलेते हो, बुद्धिसे विचारके देखिये. ईश्वर, अपने ओर गरमी वगेरेके परमाणुके स्वरुपको यदि जुदाजुदा विषय करता हो तो यही सिद्ध हुवा के परमाणुके स्वरुपसे ईश्वरका स्वरुप ईतर हे अर्थात उभयमें परस्परका प्रवेश नहीं; किंतु ईश्वर चालनी समान ठेरेगा. जगत प्रत्यक्ष हे, इसलिये जहांजहां जगत वा उसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) हे वहांवहां हरकोई व्यापक (आकाश, काल, ईश्वरादि) वस्तु न होना चाहिये, ओर जहांजहां व्यापक-विभु-वस्तु हो वहांवहां प्रकृति (एटम) न होना चाहिये. जब यूं हे तो क्यातो अधिष्ठान (समप्रकाशचेतन याने ईश्वर) को विभु (असीम, निराकार, अपरिच्छिन्न) न मानसकोगे वा तो विभु (ईश्वर) की मान्यता भ्रमका विषय हे, यूं कहना पडेगा. परंतु एसा मानें तो अधिष्ठान–आधार न होनेसे इस परिच्छिन्न व्याप्यका व्यवहार न होगा ओर गति न होगी, इसलिये दृश्य परिच्छिन्नको अन्यथारुप मान्नाचाहिये, याने जेसे रज्जुमें सर्प ओर शुक्तिमें रजतदर्शन अन्यथा हे एसे असीमचेतनमें यह दृश्य (अव्यक्त ओर इसका कार्य) अन्यथारुप हे, एसा मान्नेसे स्वरुपाप्रवेशनियम बाधित नहीं होता. (शं.) आकाशमें परमाणु, प्रकाश, तम, विजली, शब्द, गरमी ओर स्थूल शरीरमें मन, यह सर्व एक जघे देखते हें. आकाश, परमाणुकी गतिसे न टकराता हे, न पीछे हटता हे, ओर न गतिका प्रतिबंध हे; अतः विभु हे. इस सर्वमान्य व्याप्तिका निषेध नहीं होसकता; अतः स्वरुपका स्वरुपमें प्रवेश नहीं होसकता, इसका स्वीकार हठमात्र हे; इसलिये स्वरुपप्रवेश बनता हे, दोष नहीं हे ओर न सृष्टिनियमके विरुद्ध हे. (उ.) जो प्रतीतिमात्रको आधारयोग्य मानें तो पृथ्वी चलती हुई नहीं देखते–उसे स्थिर मान्नाचाहिये, परंतु पृथ्वी तो

चलती हे १, वस्तुतः हाथमें रही हुई कलमकोभी हम नहीं देखते हैं, उसका बाह्यरुप देखना माननापडेगा, परंतु एसा नहीं हे किंतु कलमका फोटो मगजमें देखते हें २, मृग तृष्णा देखके पानी लेनेजाते हें वहां पानी मिलना चाहिये, परंतु नहीं मिलता ३, स्थाणुमें चोर देखपडता हे, उससे हमको हानी होनी चाहिये, परंतु नहीं होती ४, स्वप्नसृष्टिमें तादृश्य द्रव्यकी प्राप्ति होती हे ओर देशकाल देखते हें परंतु जागते हें तो द्रव्य नहीं मिलता ओर वे देशकाल नहीं देखपडते ५, इत्यादि उपर कहे अनुसार जैसे दृष्ट प्रसंगमें भूल वा भ्रम हे, वेसेही शंकामें कहे हुये-अनेक स्वरुप एक जघे मालूम होनेमें भ्रम हे, एसा क्यों न मानाजाय? क्योंकि भ्रम, भ्रमकालमें भ्रमरुपसे नहीं जानाजाता; इसलिये आपको स्वरुपप्रवेश ठीक जानपडता हे, विचारोगे तो भ्रमरुप मानसकोगे. (शं.) जो प्राकृत--वजनदार--इंद्रिय गोचर पदार्थ हें वा जिनका समूह स्थूलरुपमें आसकता हे उनका परस्परमें स्वरुपप्रवेश नहीं होता; क्योंकि वे जघे रोकते हें. परंतु अप्राकृत--जिनमें वजन नहीं वा जिनका जुत्थ स्थूलरुपमें नहीं आसकता एसे सूक्ष्म, निरवयव, निराकार ओर अमूर्त्त पदार्थमें उसके बाहिर--भीतरका व्यवहार न होसकनेसे यह नियम नहीं लगता; इसलिये सूक्ष्मका स्थूलमें, निरवयवका सावयवमें, अमूर्तका मूर्तमें, निरावरणका सावरणमें ओर एसेही सूक्ष्मका सूक्ष्ममें, निरवयवका निरवयवमें, निराकारका निराकारमें, निरावरणका निरावरणमें ओर अमूर्तका अमूर्तमें स्वरुपप्रवेश होसकता हे. अर्थात दो एक देशमें--एक अधिकरणमें रहसकते हें; क्योंकि वे जघेको नहीं रोकते (उ.) प्रथम तो आपने सूक्ष्म स्थूलादि, सूक्ष्म सूक्ष्मादि, एसे दो स्वरुप स्वीकारलिये, इसलिये शामिल हुयेभी वे जुदा हें; यह सिद्ध होनेसे अपने भ्रमको सिद्ध करचुके. उपरांत विचारिये---(१) असंख्य, अमूर्त, निरवयव वा सूक्ष्म पदार्थ आकाशके एक बिंदु प्रदेशमें रखें तो आपके मंतव्यानुसार वे आकाशको नहीं रोकके वहांही ओतप्रोत रहेंगे. एसी दशामें एक मूर्त्त वा परमाणु वा अमूर्त अणु उनको स्पर्श करता हुवा जावे तो उन असंख्योंके साथ, एक साथ समानसंयोग होगा, यह नहीं कहाजायगा कि किसका कहां संयोग हुवा, परंतु एसा होना असंभव हे; क्योंकि एक अधिकरणमें अनेक संयोग नहीं होते किंतु एकही होता हे; ओर संयोग दोकाही होता हे, एक जघे अनेकोंका नहीं होता; ओर संयोग क्रमशः ओर अव्याप्यवृत्ति होता हे; यह स्पष्ट हे. जो उपरोक्त एककी जघे दो जुडे हुये परमाणु स्पर्श करते हुये जावें तो दोनोंके संयोग देशमें वे असंख्य नहीं रहसकते.

यदि हें तो दोनोंके साथ संयोग हुवा ओर जो नहीं हें तो एक परमाणुके साथ किसी एक तरफ स्पर्श होंगे. इससे सिद्ध होगया के वे साकार सीमावाले हें; इसलिये उनका परस्परमें अप्रवेश हे. (२) जो उन असंख्योंको एक उपर एक एसे, तेः करके रखें ओर फेर मूर्त्त वा अमूर्त्त परमाणु उनको स्पर्श करता हुवा जावे तो क्रमसे स्पर्श होंगे. इसीप्रकार जब वे ओतप्रोत शामिल थे तबभी क्रमसे स्पर्श हुये थे. (३) जब वे जघे नहीं रोकते तो किसी मूर्त्त परमाणुके साथ संयोग–स्पर्श ही सिद्ध न हुवा तथाहि परमाणुके अंदर होकेभी जासकेंगे; परंतु एसा मान्ना हठमात्र हे; क्योंकि जब स्पर्शही नहीं हुवा तो एक दूसरेकी योग्यताका एक दूसरेपर असर न होसकनेसे उभयसे जो कार्य होना देखते हें सो कार्य न होना चाहिये. तथा परमाणु पोले–सावयव मान्ने पडेंगे. परंतु एसे नहीं हें. (४) आकाशके साथ अणुका संयोग–वियोग क्रमशः अनेक तरफ होताजाता हे; नहींके सब तरफ–एकदम–एक साथ सब आकाशका, एक परमाणुके साथ. इसीप्रकार उन असंख्योंके साथ हुवा; कारणके उनको निरवयव, अमूर्त्त वा सूक्ष्म केसाभी मानें, उनके चारुं तरफ आकाश हे; इसलिये वे परिच्छिन्न साकार हें. वे यहां नहीं वहां हें, इधर नहीं उधर हें; एसे व्यवहारके योग्य हें. इसी वास्ते संयोग-वियोग क्रमशे होगा. (५) देशको नहीं रोकनेवाले अनंत पदार्थ देशकी एक बिंदुमें आसकते हें. जो यूं हो तो, एक दूसरा मूर्त्त वा अमूर्त्त परमाणु उनको स्पर्श करता हुवा जावे तो उनसे जुदा न होना चाहिये; क्योंकि अनंत स्पर्शास्पर्श वास्ते अनंतकाल होना चाहिये; परंतु एक परमाणु एक क्षणमें कोसोंमें गति करजाता हे. जो एसा न हो तो क. मनुष्यसे जो ख. १० हाथपरे जारहा हे, उसको क. कितनाभी भागे, नहीं पकड सकेगा; क्योंकि बीचमें अनंत प्रदेश हें. राइ ओर परवत बराबर होंगे; क्योंकि उभयके अनंत टुकडे हें--अनंत=अनंतके–परंतु वहां एसा नहीं हे.

उपरके कथनसे ज्ञात हुवा होगा कि यदि परमाणु हो तो उसके अनंत टुकडे (भाग) मान्ना भूल हे. (वसु. गत गुरुत्वप्रकरण देखिये).

ओर तद्वत् सूक्ष्म–अमूर्त्त–निरावण–निरवयवोंके स्वरुपोंकाभी परस्परमें प्रवेश नहीं होता, क्योंकि उभयके स्वरुप जुदाजुदाही रहते ओर होते हें. जो तमप्रकाश वा गरमजल–इन समान एक स्थानमें सहनावस्थारुप अवरोध मानें तोभी स्वरुपाधिकरणकी भिन्नता–भेद तो रहेहीगा; नहीं तो स्वरुपकी सिद्धिही न होगी. इसीका नाम स्वरुपाप्रवेश हे.

(शं.) आकाश (देश) कोई वस्तु नहीं हे, किंतु चित्तका स्वभाव हे कि जब बाहिरके द्रव्योंका इंद्रियोंद्वारा संबंध हो तब गंध, रस, स्पर्श—इत्यादि-रुपसे अनुभूति होती हे—याने एसा ईम्प्रेशन होता हे किंवा चित्तका वेसा परिणाम होता हे. अर्थात गंध बाहिर नहीं हे. ओर चित्त उनको देशकाल यह दो प्रत्यय देता हे; यह प्रत्ययभी बाहिर नहीं हैं. इसलिये उपरोक्त समाधान ठीक नहीं मानसकते. अर्थात स्वरुपप्रवेशकी संभावना हे.

(उ.) गंधादि बाह्य वा अंतर, इसके बयान करनेका यहां प्रसंग नहीं हे. सू ४५१ के विवेचनमें वांचोगे. इसलिये उससे उपेक्षा करके देशकालको आंतरिय प्रत्यय (चित्तका परिणाम) मानें तो शंका होती हे कि चित्तको पहले कभीभी देशकालका ईम्प्रेशन तो हुवाही नहीं हे, तो फेर एसा भाव (देशकाल) कहांसे लाया ? इसका संतोषकारक उत्तर नहीं मिलता; क्योंकि जो जीव वा चित्तकी उत्पत्ति मानें तो मूल मेटर (रजवीर्य—प्रोटोपलाजम—सेल्स, एमीबा वगेरे जो सादि हें सो) में उनका ईम्प्रेशन सिद्ध नहीं होता, क्योंकि देशकाल उनसे बाहिर कहींभी नहीं मानते. इसलिये उनके चित्तके परिणाम वा कल्पना नहीं मानसकते. जो चित्तका एसा मान्ने वा कल्पनेका स्वभाव हे, एसा मानें तोभी उसका कारण बताना चाहिये क्योंकि चित्तजन्य हे, अनादि नहीं हे. परंतु कोई कारण नहीं मिलता; इसलिये एसा मानें कि चित्त (जीव) अनादि हे; अतः पूर्वपूर्वके संस्कारोंसे देशकालकी कल्पना—भाव—प्रकार—होता हे. तो अचिद्वादिने अपना सिद्धांत छोडदिया तोभी, अपना इष्ट सिद्ध नहीं करसका; क्योंकि जब पूर्वपूर्व अनादिसे देशकालका अस्तित्व माना तो उपरोक्त समाधान आके खडा होगा; क्योंकि ज्ञेय हो तब ज्ञान, ओर ज्ञान हो तब संस्कार होते हें. सार यह आया के देशकालके अनुसार चित्तका देश कालरुप परिणाम होता हे. ओर चित्त वस्तु होनेसे उसके परिणामभी वस्तु मान्ने होंगे. जबके यूं हे तो उपरोक्त दृष्टांत, समाधान अठीक नहीं. (शं.) जेसे बाह्य पदार्थोंके संबंधसे अनहुवे गंधादिरुप ईम्प्रेशन (मगजकी स्थिति) होता हे, तद्वत् देशकालभी संस्कार विना अनहुये होते हें याने चित्तका देशकालरुप फारम होता हे; क्योंकि मगजकी एसीही बनावट हे. (उ.) ईम्प्रेशन अंदरमें ओर उपयोग बाहिर, एसा मान्ना हास्यास्पद हे. जो देशकाल बाहिर न होते तो जन्मांधका हाथ लंबा न होता. अंधा खाली टंकमें कील ठोके तो अंदर न जाती; क्योंकि उसकी दृष्टि (चित्त) में आंखोंवाले समान

देशकाल बाहिर नहीं हैं. परंतु उसको लेनदेनमें अंतराय ओर गमनागमनमें देश होता हे; इसलिये देशकाल अंदरके प्रत्यय नहीं मानसकते. गंधादि वास्ते ४५१ देखो. (शं.) स्वप्नके देशकाल समान अंतरमें मानके बाह्य प्रतीति मानलो. (उ.) स्वप्नमेंभी स्वप्नके शरीरसे बाहिर देशकाल प्रतीत होते हैं, ओर उनमें बाह्य व्यवहार होता हे; अतः दृष्टांत विषम हे.

इसके सिवाय ओरभी विचारणीय हे अर्थात जो देशकाल चित्तके प्रत्यय होते तो सब (जीव--चित्त--प्राणि) के दैशिक ओर कालिक माप समान नहीं होते, उनमें अंतर होता; परंतु तमाम जनमंडलमें एसा नहीं देखते; किंतु सबमें समान माप हे. सूर्य, चंद्रके जुदाजुदा साल मान्नेमें अंतर हे परंतु उसके काल, भाव, ओर कालरुप माप तो समानही हें याने गतिके आदि ओर अंतके मध्य जो काल वोह सबको समान ज्ञात होता हे. फुट, गज वगेरे संज्ञा मान्नेमें अंतर हे, परंतु दो वस्तुओंके बीचमें जो देश उसमें दैशिक भाव ओर उसका परिमाण सबको समान हे. इस परीक्षा ओर व्याप्तिसे स्पष्ट होजाता हे कि देश (ओर काल) आंतरिय चित्तका प्रत्यय नहीं हे (अर्थात आकृति, विस्तार, गति-यह जीव वा मन वा मगजके प्रत्यय नहीं हें) किंतु बाहिरभी हें. इसलिये उक्त शंका, दृष्टांत ओर समाधान ठीक ओर विचारणीय हें. योरोपके एक फिलोसोफरका यह मत हे के देशकालको बीचमें लेके निर्णय नहीं करना चाहिये; क्योंकि देशकालको दरमियानमें लेवें तो निर्णय न होसकेगा. परंतु यह मंतव्य ठीक नहीं जानपडता; कारणके सामान्य, विशेष, अभाव, चित्त, ज्ञान, अज्ञान, अध्यास, देश, काल, गुण, शक्ति, रसायणीयसंयोग, स्वप्नसृष्टि, ओरभी एक दो एसे विषय हें कि जिनको बीचमें लेनेसे मूल तत्वोंके स्वरुपका तथा कारणवादका भली प्रकार निर्णय होजाता हे; अतः उनको निर्णयमें सहकारी बनाना चाहिये. अलबत्ते जो जडवादि हें वा संप्रदायी हें वे इनसे दूर भागते हें; क्योंकि इनको बीचमें लेनेसे उनका मंतव्य उडजाता हे वा लूला-पांगला होजाता हे.

प्रस्तुत ‘ स्वरुपमें स्वरुपका अप्रवेश ’--यह प्रसंग केवल तर्क मात्रका विषय नहीं हे किंतु सूक्ष्मबुद्धि ओर मध्यस्थद्वारा वारंवार विचारनेके योग्य हे ॥ ३८३ ॥

(पूर्वप्रसंग).—

सब स्वरुपाधिकरण प्रकाशवाले वा तमवाले (प्रकाश वा तमविशिष्ट)ही हें, एसा नहीं हे किंतु उन विनाकेभी अधिकरण होते हें ॥३८४॥ जेसे के वायु ओर

शब्दका स्वरुपाधिकरण, तमप्रकाश रहित हे ॥ ३८५ ॥ प्रकाश, तमरहित ओर तम, प्रकाशरहित हे तथा गंध, शीत ओर स्पर्श यह तमप्रकाश रहित हैं. दोके संयोगअधिकरणमें तम प्रकाश वा देश नहीं होता. तम कोई द्रव्य वा प्रकाशाभाव तम, वा न्यूनप्रकाश तम, एसे तमको कुछभी मानो; परंतु इस नियमका बाध नहीं होता. विशेष बस. में हे ॥ ३८५ ॥

भेद (वा अभेद) कोई वस्तु नहीं हे किंतु स्वरुपोंके वैलक्षण्यकी संज्ञाही भेद (वा अभेद) हे ॥ ३८६ ॥ क्योंकि वे (पदार्थ) स्वरुपसे वा देशसे वा कालसे विलक्षण होते हें, यह विलक्षणताही भेद (वा अभेद)की प्रयोजक हे ॥३८७॥ विजातियोंके स्वरुपका विलक्षणत्व तो स्पष्टही हे. मध्यम शरीरादिकोंका कालसेभी विलक्षणत्व हे. सजातियोंका देशसे वैलक्षण्य हे. यथा परमाणवादि वा विभुओंका उनके स्वरुप, गुण ओर उपयोगसे वैलक्षण्य हे. यदि भेदको कुछ (वस्तु, विशेषण वगेरे) मानाजाय तो आत्माश्रयादि दोष आवेंगे. यथा मानलो कि--क. (परमाणु-आकाश), ख. (परमाणु-ईश्वरादि)का भेद हे. क. का भेद ख. में ओर ख. का भेद क. में रहता हे. इसप्रकार उभयका अन्योऽभाव (भेद) हे ॥ अब विचारो.— क. में ख. का भेद हे सो (जो ख. का भेद हे सो) उस भेदरहित ख. का भेद हे वा उस सहित भेद हे. आद्यपक्षमें भेदभावका उच्छेद होगा. उत्तरपक्षमें अनवस्था होगी अर्थात उस भेदका ख. के साथ भेद, क. के साथ भेद, ख. गत जो क. का भेद उसके साथ भेद, पुनः इन भेदोंका परस्परमें भेद, एसे अनवस्था चलेगी जोके दोष हे. इसलिये अन्योऽन्याभाव याने भेद कोई वस्तु सिद्ध नहीं होती; इसलिये उसका परिमाण (अणु, विभु वा मध्यम)भी सिद्ध नहीं होता. जो अभाव कुछ वस्तु होती तो उसका परिमाणभी होता; अतः वोह वस्तु नहीं हे, किंतु वैलक्षण्यका नाम भेद (अन्योऽन्याभाव) हे. नहींके कोई वस्तु हे. (ओर जो अपनेमें अपना अभेदत्व (अपना अभेद) हे, वोहभी स्वरुपतः वस्तु नहीं हे, किंतु स्वरुपाधिकरणका अन्यसे जो वैलक्षण्य यही अभेदत्वका प्रयोजक होसकता हे; ओर जब अन्यकी अपेक्षा विना कहाजाय तो भेद वा अभेदकी कल्पनाका अवसर नहीं होता; अतः अस्तित्वविशिष्ट स्वरुप वैलक्षण्यसेही भेद प्रयोज्य हे). भेद ओर अभेद, स्वरुपतः कोई वस्तु नहीं किंतु स्वरुप, देश ओर कालकी विलक्षणतासे यह संज्ञा मानी वा कल्पी गई हें. इसका विस्तार मूलमें ओर बस. में हे ॥ ३८७ ॥

प्रकाश चित् ओर जड दो प्रकारकेही ॥ ३८८ (प्रकाश) ॥ व्या-

सिसे ॥ ३८९ ॥ ओर ज्योतिष प्रकाश्य होनेसे ॥ ३९० ॥

चित् ज्ञानरुप होनेसे स्वप्रकाश ॥ ३९१ (स्वयंप्रकाश) ॥ **व्यवहारमें असीम नहीं** ॥ ३९२ (ससीमप्रकाश) ॥ **वस्तुतः अन्यथा** ॥ ३९३ (यथा तथा) ॥ **प्रकाश्य नहीं** ॥ ३९४ (प्रकाशक) ॥

उनके समाधानाधिकरणवर्ती उनके प्रकाश्य यथायोग्यतासे ॥ ३९५ (बिंदु) ॥ **अन्यथा सर्वज्ञ वत् दोषापत्ति** ॥ ३९६ (अप्रकाशी) ॥ **प्रकाश्यसे विरोध नहीं** ॥ ३९७ (अविमुख) ॥ **उपयोग द्रष्टिसे सामान्य विशेष** ॥ ३९८ (निरंश प्रकाश) ॥ **अचिद् चिद्वत् सबका प्रकाश नहीं** ॥ ३९९ (असहकारी) ॥ **विषय परीक्षासे** ॥ ४०० ॥

अर्थ.—दृश्य जगतमें चित् (चेतन) प्रकाश ओर जडप्रकाश इसप्रकारके दोही प्रकाश हें; उनसे इतर तीसरा प्रकाश नहीं जान पडता ॥ ३८८ ॥ क्योंकि दोनोंकीही व्याप्ति हे, अन्यकी नहीं हे ॥ ३८९ ॥ ओर जो दृश्य ज्योति (सूर्य, तारा, विजली, दीपक, अग्नि, हृदयके अंतर जो ज्योति, मगजमें ब्रह्मरंध्रमें जो झिलमिलज्योति, रीडयम वगेरे ज्योति) हें वे अन्यकी प्रकाश्य हें याने ज्ञानप्रकाश करके जानीजाती हें, इसलिये प्रसिद्ध जो जडप्रकाश ओर जिसमें यह प्रकाश, प्रकाश्य होता है सो ज्ञानप्रकाश--यह दो प्रकाश सिद्ध होते हें ॥३९०॥

सूर्यादि प्रकाशकी सिद्धि, प्रकाश्य घटादिकोंसे होजाती हे, क्योंकि उसके विना घटादिकोंका ज्ञान नहीं होता, ओर जिसको जडप्रकाश नहीं प्रकाश सकता एसे (शब्दादि पंचविषय, ईम्प्रेशन, मनकीगति, प्राणकीगति, दुःख-सुख अवस्था, इत्यादि) का तथा प्रकाशका ओर प्रकाश, प्रकाश्यके भेदका जिस द्वारा प्रकाश (वा ज्ञान) होता हे सो चेतनप्रकाश हे, उसकी सिद्धि प्रस्तुत प्रकाश्योंसे होजाती हे. जडप्रकाश ज्ञाता वा ज्ञान स्वरुप न होनेसे चित् जैसा नहीं हे ओर चितप्रकाश द्रष्टा वा ज्ञान स्वरुप होनेसे जडप्रकाश जैसा रंगरुपवाला नहीं हे एसे भेदवाले दो प्रकाश हें ॥ ३९० ॥ चित् ज्ञानप्रकाश होनेसे स्वप्रकाश हे, याने ज्ञानका ज्ञान न होने, अन्यकी अपेक्षा विना सबको प्रकाशने, किसीका ज्ञेय न होने ओर परकी अपेक्षा रहित स्वयं प्रतीतरुप होनेसे स्वयंप्रकाश वा स्वप्रकाश

३८९–सत्, असत्, तम, प्रकाश, जड, चेतन, चितप्रकाश (ज्ञान), जडप्रकाश इत्यादि संज्ञा, पदार्थोंकी विलक्षणता, उपयोग ओर लक्षणभेदकी अपेक्षासे, अपेक्षितसंज्ञा हें. अन्यथा संज्ञा (नाम) नहीं होसकती.

कहाजाता हे ॥ ३९१ ॥ यद्यपि अन्य जड पदार्थोंकी अपेक्षासे जडप्रकाशभी स्वयं-प्रकाश हे तथापि उसकी सिद्धिमें ज्ञानप्रकाशकी अपेक्षा हे, इसलिये स्वप्रकाश नहीं कहाजाता ॥ ३९१ ॥ उपाधिवश व्यवहारदृष्टिसे तो घटाकाश वत् चित्प्रकाश-भी ससीम जानपडता हे (जेसे के शरीर प्रति जो दुःख-सुखादि उनका प्रकाशक जुदाजुदा ससीम हे) ॥ ३९२ ॥ परंतु जब उसको भली प्रकारसे विचारके अनु-भव कियाजाय तो उसे ससीम वा असीम नहीं कहाजासकता किंतु जेसा हे वेसा हे, इतना कहके चुप होना पडता हे (बस. के उत्तरार्द्धमें इसका विवेचन हे. ओर चोथे अध्यायमेंभी आवेगा.) ॥ ३९३ ॥ चित्प्रकाशका जडप्रकाश प्रकाश्य हे; परंतु चित्प्रकाश उसका वा किसीका प्रकाश्य नहीं, यह उभयमें अंतर हे ॥३९४॥ जो, उन प्रकाशोंके समानाधिकरण होते हें वे उनके प्रकाश्य होते हें (उनसे प्रका-शित होते हें), जेसी योग्यता हो उस रीतिसे प्रकाशित होते हें ॥ ३९५ ॥ यथा सूर्यका प्रकाश जहां हे वोह वहांके पदार्थकोही प्रकाशता हे, अन्यत्रको नहीं. ए-सेही निरवयव चितप्रकाश जहांका तहां वहांके पदार्थोंको प्रकाशता हे, एसा जानलेना चाहिये. विवेचन ४१० में आवेगा ॥ ३९५ ॥ जो ३९५ अनुसार नहीं मानें किंतु एक देशकालवालेको सर्वका प्रकाशक वा ज्ञाता मानें तो आगे जो सर्वज्ञ प्रसंग (४०६ से ४०९ तक) में दोष कहे हें वे दोष आवेंगे. इसलिये समानाधिकरण-वर्तिही प्रकाश्य होना सिद्ध होता हे ॥ ३९६ ॥ प्रकाशोंका प्रकाश्य (घट, अ-ज्ञान, ईम्प्रेशनादि)के साथ विरोध नहीं होता ॥ ३९७ ॥ जो विरोध होता तो प्र-काश्योंकी सिद्धिही नहीं होती. परंतु प्रकाश, प्रकाश्य ओर ज्ञान, ज्ञेय--भाव प्र-सिद्ध हें ॥ ३९७ ॥ वे प्रकाश उपयोग भेदसे सामान्य ओर विशेष कहेजाते हें ॥ ३९८ ॥ यथा तेजका सामान्य प्रकाश, सूर्यका दर्शन न हो तबभी पृथ्वीपर हे; क्योंकि तेजका सागर सब जघे हे. लकडीमें अग्नि सामान्यतः हे ओर सूर्यादिमें विशेष हे. वेसे चित्प्रकाश आकाशवत् सब जघे हे, परंतु जहां जहां " प्रोटोपला-जम ", " ग्रेमेटर " ओर मनस होते हें वहां वहां उसका विशेष उपयोग होता हे (बस. सू. २७७ । २७८ । ४०६ । ४०७में इसका विवेचन हे) ॥ ३९८ ॥ अचिद् याने जडप्रकाश (अग्नि-तैजसका, विजलीका, सूर्य-ग्रहादिका), चिद्वत् स-बका प्रकाशक नहीं होता ॥३९९॥ एसा विषयकी परीक्षासे स्पष्ट होता हे ॥४००॥ यथा-शब्द, स्पर्श, रस, गंध ओर दुःख, सुखादिको जडप्रकाश, नहीं प्रकाश सकता; ओर चित्प्रकाश उनकोभी तथा जडप्रकाशकोभी प्रकाशता हे ॥ ४०० ॥

एकमें सर्व शक्ति नहींही ॥ ४०१ (अशक्ति) ॥ **नियमको अन्यथा न करसकनेसे** ॥ ४०२ ॥ **ओर विरोध आपत्तिसे** ॥ ४०३ ॥

अर्थ--ससीम वा असीम (साकार, निराकार)-हरकोई एक व्यक्तिमें उसके योग्य जितनी होनेके योग्य हों उतनी शक्तिये हों, परंतु ब्रह्मांडमें जितनी शक्तियें हें वे तमाम किसीएकमें नहीं होसकती अर्थात सर्वशक्तिमान कोई न हुवा, न हे, न होने योग्य होसकता हे ॥ ४०१ ॥ क्योंकि अनादि जो नैसर्गिकनियम हें उनको अन्यथा कोई नहीं करसकता.-अर्थात यह शक्ति किसीमेंभी नहीं होसकती; अतः सर्वशक्तिमानत्वका अभाव हे ॥ ४०२ ॥ यथा एकको दो, दोको एक, निरवयवको सावयव ओर सावयवको निरवयव कोई नहीं करसकता. मूल द्रव्योंके स्वरुप कोईभी नहीं बदलसकता. अभावसे भावरुप कोईभी नहीं बनासकता. कोईभी अनुपादान, उपादेय नहीं करसकता. जो वोह विभु हे तो परिच्छिन्नोंको स्वदेशसे बाहिर नहीं करसकता. किंवा अपनेको वोह नहीं मारसकता. अपना जेसा वा मूल तत्वों जेसा नवीन उत्पन्न नहीं करसकता. सत्को असत्, असत्को सत् नहीं करसकता. ओर अन्याय नहीं करसकता. इ.; अतः सर्वशक्तिमानत्वका अभाव हे ॥ ४०२ ॥ ओरभी जो एकको सर्वशक्तिमान मानें तो विरोध दोषकी आपत्ति होती हे ॥४०३॥ अर्थात् सत् असत्रुप, तम प्रकाशरुप, शीत उष्णरुप, एक अनेकरुप, दो एकरुप, विभु परिच्छिन्नरुप, परिच्छिन्न विभुरुप, करने वा होनेकी शक्तिभी उसमें मान्नी पडेगी, परंतु एसा मान्नेमें विरोध दोष आता हे; क्योंकि सदसदादिका विरोध है, वे एक धर्मीमें नहीं होसकते. तथाहि दूसरे द्रव्योंमें जो शक्ति देखते हें वे निष्फल होजायँगी; क्योंकि सब काम उस एक शक्तिमानसे होसकते हें. किंवा उससे इतर जो दूसरे हें वेभी अनादिसे सर्वशक्तिमान क्यों न हों? होने चाहिये. उपादानत्व ओर निमितत्वकी शक्ति भिन्नही होती हें, एकमें नहीं होसकती; अतः सर्वशक्तिमानत्वका अभाव हे[१] ॥ ४०३ ॥

अकृत ओर प्रवाहका ज्ञान नहींही ॥ ४०४ (अकृत) ॥ **अनुत्पन्न होनेसे** ॥ ४०५ ॥

---

[१] जेसे स्वप्नके तमाम पदार्थोंकी शक्ति, द्रष्टाचेतनकी सत्तासे उपयोगमें हें, वहां उस विना कुछ नहीं होता; अतः वोह स्वप्नसृष्टिका सर्वशक्तिमान हे; तद्वत् इस ब्रह्मांडगत पदार्थोंकी तमाम शक्तिओंका किसी अचिंत्य शक्तिद्वारा उपयोग होता हो तो उसे सर्वशक्तिमान कहेंगे. इसप्रकार सर्वशक्तिमानका प्रयोग एकमें होसकता हे.

एक देशकालमें सबका ज्ञान नहींही ॥ ४०६ (असर्वज्ञ) ॥ स्वीकारक एक होनेसे ॥ ४०७ ॥ सर्व पूर्वउत्तरकाभी ॥ ४०८ (अत्रिकालज्ञ) ॥ अकृत नियमसे ॥ ४०९ ॥

चिद्‌को सर्व विषय होनेकी संभावना ॥ ४१० (सर्वज्ञ) ॥ योग्यतासे जब तब जहां तहां साक्षीमात्र होनेसे ॥ ४११ ॥ जेसे के स्वप्न ओर शरीर ज्ञानका क्रम ॥ ४१२ ॥

अर्थ.—जो कर्म (गति) वा कार्य नहीं हुवा हे उसका ज्ञान ओर जो प्रवाह से अनादिअनंत हें (यथा सृष्टिका प्रवाह, परमाणुओंके संयोग-वियोगका प्रवाह हे) उनका तमाम ज्ञान किसीकोभी नहीं होता ॥ ४०४ ॥ क्योंकि अकृत-अनारंभ हे ओर प्रवाहका ज्ञान हो तो प्रवाहरुप न रहा; किंतु आरंभ ओर सांत ठेरा. (इसका विवेचन वक्ष्यमाणसूत्रोंमें हे) ॥ ४०५ ॥

परिच्छिन्न वा अपरिच्छिन्न-एक व्यक्तिको एक देशकालमें सर्ववर्त्तमानका ज्ञान नहीं होसकता ॥ ४०६ ॥ क्योंकि ज्ञानका स्वीकारक एक हे ॥ ४०७ ॥ चंद्रस्थ व्यक्तिका जिस कालमें ज्ञान हो उसी कालमें शनीस्थ व्यक्तिकी क्रिया का ज्ञान नहीं होगा; क्योंकि इदंत्वका ग्राहक एकही हे ॥ यदि कोई सर्वज्ञ हो तो उससे पूछें वा कहें कि वोह अपनेको जानता हे? यदि जानता हे तो दृष्टा (३७५) नियमके अनुसार सावयव होगा ओर जो अपनेको नहीं जानता तो अज्ञानी होगा. पुनः वोह अपनेको जो एसे जानता होगा कि में इतना हुं तो ससीम होगा. जो नहीं जानता तो अज्ञानी ठेरा. जो में अनंत हुं, एसा जानता होगा तोभी अज्ञानी होगा; क्योंकि जितना हे उतना हे ॥ (शं.) उसकी ज्ञानशक्ति अनंत हें. (उ.) अनंतत्व असंभव (१५०), ओरभी वोह ज्ञानशक्तिवाला तो एकही हे. (शं.) मनुष्य अपने ज्ञान ओर शक्तिसे उस सर्वज्ञमें अंदाजा लगाता हे. (स.) सर्वज्ञत्व ओर सर्वशक्तिमानत्वभी तो बुद्धिहीकी कल्पना हे, वोह व्यक्ति तो आके नहीं कहती वा अपनी योग्यताको सिद्धकरके नहीं बताती. (शं.) जेसे असंख्य तारोंका ज्ञान एक साथ करते हें वेसे होता हे. (स.) किरणोंके जुदाजुदा पुंज हें ओर क्रमसे ज्ञान होता हे (२०७)[१] ॥ ४०७ ॥ तमाम भूत-भविष्यकाभी एक व्यक्तिको ज्ञान नहीं होसकता अर्थात त्रिकालज्ञ कोई नहीं होसकता ॥ ४०८ ॥ क्योंकि

---

[१] सर्वशक्तिमानत्व ओर सर्वज्ञत्व केसे हे ओर किस भावमें होता हे उसका खुलासा ४१०में हे, ओर बस. सू. ३३४ । ३३५ देखो. ओर विचारो.

जिस कृतिका आरंभ नहीं हुवा हे उसको ओर जिसकी उत्पत्ति नहीं हे–अनादि हे उसके आदिको ओर जो अनादिसे संयोग-वियोगका प्रवाह हे उसके आरंभको ओर जो भविष्यमें अनंत प्रवाह रहेगा उसको कोई नहीं जानसकता (४०४)। ओर यदि जानागया तो जीवादि सर्व परतंत्र तथा सब सादि ओर सांत होंगे; कोईभी तत्व अनादिअनंत न होगा; ओर अनुपादान सृष्टि होगी, जोके असंभव हे. (बस. २०७ मेंभी विवेचन हे) ॥ (शं.) ज्योतिषि भविष्यका ग्रहण बताते हें. योगी, विधेय ओर विद्वान भविष्य कहते हें. (स.) जिस विषयका मूल हे उसको व्याप्तिक्रम वा गणितसे बतायाजाता हे. सूर्य, चंद्रकी गति ओर गतिका नियम ज्ञात हे, इसलिये गणितसे भविष्यका ग्रहण (ग्रास) कहते हें. गर्भमें शरीरकी बुनियाद पडे तब पुत्र-पुत्री होना कहाजाता हे. किसीने आनेका संकल्प किया हो तो योग वा तैजस विद्याद्वारा अनुमानसे बताते हें; अन्यथा नहीं. कदाचित बतानेके समयकी स्थिति वा गति बदलजाय वा नष्ट होजाय तो वोह भविष्यका अनुमान असत् होजायगा ॥ जीवकी अमुक काल पीछे अमुक समय मुक्ति होगी वा भविष्यमें अमुक समय एसा काम करेगा, एसा ज्ञान होजाना मानें तो जीव स्वतंत्र न रहा, क्योंकि सर्वज्ञका ज्ञान अन्यथा न होगा; जीवको वेसा करनाही पडेगा. जो एसा हो तो पुरुषार्थ व्यर्थ माना जायगा ॥ ४०९ ॥

जो ईश्वर सर्वज्ञ ओर जीव अनंत हें, एसा मानें तोभी ईश्वरका असर्वज्ञत्व सिद्ध होगा; क्योंकि अनंतत्वका कथनही अज्ञानताका प्रयोजक हे. तथाही जीवोंको कर्मफल देनेंमें असमर्थ रहेगा; क्योंकि अनंतत्व कहनेसेही यह सिद्ध होजाता हे. जो सर्वका ज्ञान हे तो जीवोंका अनंतत्व न होगा. तद्वत् अनंत मुक्त जीवोंकी आवृति, अनावृति वास्ते योजलेना चाहिये ॥ ४०९ ॥

असीम-पूर्ण-समचेतनको सर्व विषय होते हों एसी (सर्वज्ञताकी) संभावना हे ॥४१०॥ क्योंकि यदि उसमें प्रकाशकत्वकी योग्यता हो तो जब तब (कालमें) जहां तहां (देशमें) साक्षीमात्र होसकता हे, वा हे ॥ ४११ ॥ जेसे के स्वप्नका द्रष्टाचेतन स्वप्नसृष्टिका सर्वज्ञ हे, वहां एसा कुछ नहीं हुवा वा नहीं होता वा न होगा कि जो उसका विषय न हो. किंवा जन्मसे लेके मरणपर्यंत शरीरकी जितनी वे चेष्टा कि जो साक्षीकी विषय हुई हों उन सबका ज्ञान साक्षीको हुवा हे. इसरीतिसे इसप्रकारका सर्वज्ञत्व सिद्ध होता हे ॥ ४१२ ॥ दीपकका प्रकाश बडे मकानमें तमाम रात किंवा सूर्यका प्रकाश अनेक नगरोंमें होता हे; वहां वोह प्रकाश,

जेसे जबजब वहांके पदार्थ गति करें, बिगडें वा बनें ओर जहां जहां एसा हो तब तब तहांका तहां (जो प्रकाशांश वहां हे सो) प्रकाश देता हे—याने पदार्थ उसमें प्रकाशित होते हें, इसलिये उस प्रकाशको सर्व वर्तमानका ओर सर्व भूत-भविष्यका प्रकाशक कहाजासकता हे; इसीप्रकार यदि कोई अभिमान विनाका निरंश, निर्विकल्प, व्यापक चेतन (ज्ञानप्रकाश) हो तो उसमें इसप्रकारसे सर्वज्ञत्व, ओर त्रिकालज्ञत्वकी वर्त्तमानवत् संभावना होसकती हे. नहींके अमुक देशदेशकी भावना किंवा भूत-वर्त्तमान-भविष्यकी भावना वा वेसे पद प्रयोगसे सर्वज्ञत्व हे. जेसे आकाशमें सर्व (गत, वर्त्तमान, भावि) क्रियाका विषयकत्व हे, परंतु देशभावत्व, कालभावत्व वा सावयत्वभावना नहीं हे; जेसे कालमें सर्वका विषयकत्व हे, परंतु कालभावत्व वा देशभावत्वकी भावना नहीं हे; इसी रीतिसे पूर्वोक्त चित्तप्रकाशमें पूर्व कहे अनुसार सर्वज्ञत्वभाव हे. परंतु भूत, वर्त्तमान, भावि वा में-तु-यह-वोह, एसा भावत्व नहीं हे; अतः वर्त्तमानवत् सर्वका द्रष्टा, प्रकाशक हो, एसा सिद्ध होसकता हे. (ओर हे । ३९५ ।) ॥ ४१२ ॥

विभु एकही ॥ ४१३ (ब्रह्म) ॥ स्वरुपाप्रवेशसे ॥ ४१४ ॥

अर्थ.—असीम-पररहित-विभुवस्तु एकही होती हे याने उसके जैसे (सत्तावाले—अस्तित्वप्रकारवाले) अन्य विभु वा अन्य परिच्छिन्न नहीं होते ॥ ४१३ ॥ क्योंकि उसके स्वरुपमें दूसरेका प्रवेश नहीं होसकता (३८२ याद करिये) ॥ ४१४ ॥ इसी नियमसे यूं कहसकते हें कि अद्वैतवादियोंका चेतनब्रह्म हो तो वोह अद्वितीयही होना चाहिये. ओर दृश्यपरिच्छिन्न ब्रह्मांडकी ओर उसकी हस्ती (अस्तित्वप्रकार) में कुछ भेद होना चाहिये. जो एसा नहीं तो ब्रह्म (व्यापक) वस्तुकी असिद्धि हे; क्योंकि दृश्यपरिच्छिन्न तो प्रसिद्ध हे ॥ ४१४ ॥

समसत्तावान साधक बाधकही ॥ ४१५ (सत्ताप्रभाव) ॥ दर्शनसे ॥४१६॥ यथा वृक्ष पक्षी ओर जल तृषा ॥४१७॥ विषम नहींभीही ॥४१८ (विषम) ॥ यथा स्वप्न ओर तद्द्रष्टा ॥ ४१९ ॥ आस्तित्वप्रकार सत्ता ॥ ४२० (अस्तित्व) ॥ वोह विलक्षण भेदवती ॥ ४२१ (सत्ता) ॥ यथा स्वप्न ओर तद्द्रष्टाकी ॥ ४२२ ॥ उसके नियमोंमेंभी विलक्षणत्व ॥ ४२३ (भिन्नत्व) ॥ सत्ताप्रभाव ओर विषमनियम वत् ॥ ४२४ ॥ ओर परमें अध्यस्त वत् ॥ ४२५ (अनंतर) ॥ अतः ब्रह्मेतर तद्विलक्षण अध्यस्त ॥ ४२६ (अवतिष्ठित) ॥ भेद ओर अनंतरनियमसे ॥ ४२७ ॥

गुणगुणीकी समसत्ताही ॥ ४२८ (अविषम) ॥ **यथा अग्नि ओर उष्णताकी** ॥ ४२९ ॥ **उपादान-उपादेयकीभी, तद्रूप होनेसे** ॥ ४३० ॥ **अनवीनकी व्याप्तिसे** ॥ ४३१ ॥ **यथा स्वप्न ओर उसके उपादानकी** ॥४३२॥ **दृश्य ओर तद्द्रष्टाकी विषम** ॥ ४३३ ॥

अर्थ.—जिनका अस्तित्वप्रकार समान होता हे वे आपसमें साधक ओर बाधकही होते हें ॥ ४१५ ॥ एसा सृष्टिमें देखते हें ॥ ४१६ ॥ जेसे वृक्ष ओर पक्षीका अस्तित्वप्रकार समान हे तो वृक्ष, पक्षीका साधक होजाता हे ओर जल-तृषाका अस्तित्वप्रकार समान हे तो जल, तृषाका बाधक होजाता हे. स्वप्नका वृक्ष जाग्रतके पक्षीका साधक ओर मृगजलका पानी तृषाका बाधक नहीं होता, क्योंकि वे विषम सत्तावाले हें ॥ ४१७ ॥ विषम सत्तावाले परस्परके साधक नहीं हों एसा नियम नहीं हे किंतु बाधक नहींभी होते, एसा पाते हें ॥ ४१८ ॥ जेसे के स्वप्न-सृष्टिका अस्तित्वप्रकार ओर उसके द्दष्टाचेतनका अस्तित्वप्रकार परस्परमें विषम हें, तोभी द्दष्टा उसका साधक हे बाधक नहीं हे ॥ ४१९ ॥ जिस भाव, जिस प्रकार-वाला अस्तित्व हे (वा प्रतीत होता हे) उस भाव–उस प्रकारविशिष्ट जो अस्तित्व उसका नाम इस प्रकरणमें सत्ता हे. शक्तिका नाम यहां सत्ता नहीं हे ॥ ४२० ॥ वो सत्ता (अस्तित्वप्रकार वा अस्तित्वभाव) विलक्षण भेदवाली होती हे याने उसका एकही प्रकार नहीं हे. (वे प्रकार--भेद अ. ३ मेंभी बांचोगे). ॥ ४२१ ॥ जेसे के स्वप्नसृष्टिकीसत्ता ओर उसके द्रष्टाचेतनकीसत्ता समान नहीं हें किंतु एक दूसरेसे विलक्षण हें (यह विलक्षणत्व याने सत्ताका वैलक्षण्य जो सूक्ष्म-दर्शी, विचारशील, विवेकी हें उनको स्वप्नसे जागने पीछे मुकाबला करनेपर अनुभव-गम्य होजाता हे, परंतु उनका स्वरुप वाणिसे कह नहीं सकते.) ॥ ४२२ ॥

सत्ताके नियमोंमेंभी विलक्षणत्व हे ॥ ४२३ ॥ जेसे के " समसत्ता साधक बाधक " ओर " विषम नहींभी " यह **सत्ताप्रभाव** ओर **विषम** सूत्रमें कहा हे ॥ ४२४ ॥ ओर परसत्तावालेमें अपरसत्तावाला अध्यस्त (अवरोध विना अस्पर्श) रहसकता हे ॥ ४२५ ॥

विवेचन—(सू. ४१५ से ४२५ तकका) जो अस्तित्व समान रहे अन्यथा न हो ओर स्वतःसिद्ध हो उसकी **परासत्ता,** एसी संज्ञा हे. जेसे के आधार (सू. २६८) में जिसे अधिष्ठान कहा हे उसकी परासत्ता हे. अथवा स्वप्नका जो द्दष्टाचेतन हे उसका अस्तित्व परासत्तावाला हे ॥ जिसका अस्तित्व स-

मान न रहे, अन्यथा होता हो ओर जिसकी सिद्धि परसे हो उसकी **अपरासत्ता,** एसी संज्ञा हे. जेसे के समचेतन अधिष्ठानसे इतर-दृश्यकी अथवा स्वप्नसृष्टिमें दृष्टासे इतरकी अपरासत्ता हे. (शेष अध्याय ३ सिद्धप्रकरणमें विस्तार होगा). जितनी देशकालादि सामग्री चाहिये उतनी सामग्रीके विना जो प्रतीत हो, वर्तमानमें पूर्वोत्तर जेसे भाव--प्रकारवाला जो न हो, अपने अधिष्ठानका जो विरोधि न हो, बाधकालमें जो पूर्वसे अन्यथा जानपडे ओर जो अन्यकी सत्ता विना न जनाय, उस (वस्तु वा अवस्था वा अस्तित्व--हस्ति) की **अपरासत्ता** हे, एसा जान्ना चाहिये. इस लक्षणवाली स्वप्नकी सृष्टि हे; क्योंकि उसमें यह सब लक्षण मिलते हें. स्वप्नकालमें जेसी ओर जिस भाव--प्रकारवाली उसकी प्रतीति हे सो प्रतीति उसके बाधकालमें याने जाग्रतकालमें पूर्वके भाव--प्रकारसे अन्यथा जान पडती हे. इससे उस प्रतीति तथा तद्वानका अस्तित्वभाव वा प्रकार उसके साथ अनुभवमें आजाता हे. तथा उसका दृष्टा पूर्ववत् सम हे, यह अबाध्य समरुप अस्तित्वभी जानपडता हे. इन उभयके अस्तित्वप्रकारका मुकाबला करो तो दृष्टाकी सत्तामें पराके ओर स्वप्नसृष्टिकी सत्तामें अपराके लक्षण जान पडेंगे. इस विलक्षणताको अनुभवमें लीजिये (शेष तीसरे, चोथे अध्यायमें वांचोगे). इस परा, अपराके भेदका दृष्टादृश्य (स्वप्नका दृष्टा ओर स्वप्नसृष्टि दृश्य) जेसा उदाहरण अन्य नहीं मिलता[१]. अपरासत्तावाला परावालेका ओर परासत्तावाला अपरावालेका बाधक नहींभी होता; इसलिये स्वप्नसृष्टिगत व्यापक दृष्टाचेतनमें देशकाल सहित तमाम स्वप्नसृष्टि अध्यस्तरुपसे रहसकती हे--रहती हे. आकाशमें नीलता क्या हे? उसमें मुख्य इतनी[२] कल्पना हें--(१) ब्रह्मांडमें कहीं नीला पहाड हे उसकी नीलताका आभास. (२) अंतरिक्षमें जलके परमाणु सो दूर दो-

[१] रज्जु--सर्पादिके उदाहरणमें साध्यसम दोष आजाता हे. ओर निर्विकल्प समचेतनको विकारी (अज्ञानी, पूर्वपूर्वसे--अनादिसे संस्कारवाला) मान्ना पडता हे. विस्तार बसु. में हे ॥

[२] नीलगिरीका आभास मान्ना नैयायकोंका ढकोसला हे ॥ छोटे उंचे पहाड दूरसे नीलरुपमें जानपडते हें, पहाडपर जाते हें तो नीले नहीं जानपडते. जो पानीके परमाणु होते तो वस्त्रसीले होजाते परंतु एसा नहीं होता. तथा जल श्वेत जानपडता हे, नीला नहीं होता. जहां नीला जानपडता हे वहां आकाशकी नीलताका प्रतिबिंब होता हे. इसलिये आकाशकी नीलता पाणीके परमाणु नहीं मानसकते, किंतु अनिर्वचनीय स्वाभाविक दिखाव सिद्ध होता हे.

षसे नीलरुप भासते हें. (३) ईथरकी सूक्ष्मगति हो तब व्ह इस रुपका भासे (नीलता नहीं ओर भासे) जेसे के आलातमें वेगसे अग्निका चक्र भासता हे वेसे. (४) आकाशका कुदरती स्वभाव हे के दूरसे नीला जानपडे. इनमें उत्तरकी दोनों कल्पना समान हें. अब समझो के स्वप्नसृष्टि अथवा परासत्तावाले पदार्थ आलातके चक्र वा नीलता जेसे सत्तावाले होते हें. जो वे नहीं हें, एसा मानें तो नहीं बनता; क्योंकि ४३७ नियमके विरुद्ध हे. ओर जो वे हें एसा मानें तो उनके अधिष्ठानाधारके स्वरुपमें उनका प्रवेश नहीं होसकता, इसप्रकारका विरोध आता हे. परंतु जबके वे विलक्षण सत्तावाले हें तो यह विरोध नहीं रहता. अर्थात उपरोक्त आधेय (२६१), आधार (२६८), भेद (३८२)–इन तीनों नियमोंकी व्यवस्था अनंतर (४२५) से होजाती हे ॥ ४२५ ॥

उपरोक्त नियमोंसे वक्ष्यमाण (सू. ४२६ से ४३३ तक) विषय वा स्थिति प्रकार निकलआता हे. उनमेंसे १ फल हे सो यह हे.

दृश्य प्रत्यक्ष हे ओर ब्रह्म हो तो एकही हे (४१३); इसलिये यदि कोई विभु (ब्रह्म) वस्तु हो (कोई विभु अधिष्ठान चेतन हो) तो उससे इतर जो कुछ ज्ञात वा अज्ञात हे सो तमाम ब्रह्मकी सत्तासे विषम याने विलक्षणसत्तावाला (अपरासत्तावाला) होना चाहिये ओर (स्वप्नसृष्टिवत् वा आकाशकी नीलता समान) उस ब्रह्ममें अध्यस्त होने योग्य हे; इसलिये उन उभयका अनिर्वचनीयविलक्षणसंबंध बनसकता हे ॥ ४२६ ॥ क्योंकि भेद (३८२) नियम तो विभुमें स्वरुपाप्रवेश बताता हे ओर अनंतरनियम (४२५) सत्ताकी विलक्षणतासे अध्यस्तवत् रहना सूचता हे. इसलिये उभयका विलक्षणसंबंध बनसकता हे ॥ ४२७ ॥

गुण ओर गुणीकीभी समसत्ताही होती हे, विषम नहीं ॥ ४२८ ॥ जेसे के अग्नि ओर उसका उष्ण गुण समसत्तावाले हें. परस्परके साधक हें, बाधक नहीं ॥ ४२९ ॥ इसी प्रकार शक्ति--शक्तिवान, गति--गतिमान, स्वभाव--स्वभाववान, प्रभाव--प्रभाववान, अवस्था--अवस्थावानकी ओर धर्म--धर्मीकी समानसत्ता होती हे. यहां गुण यह गुणादिका उपलक्षित हे ॥ ४२९ ॥ उपादान (परिणामी--अवयव--समवाय--कारण) ओर उपादेय (परिणाम--अवयवी--कार्य) इनकीभी समानसत्ता होती हे, क्योंकि उपादेयादि, उपादानरुप होते हें उससे भिन्न वस्तु नहीं होते ॥ ४३० ॥ ओर अनवीन (३०३) नियमकी व्याप्ति हे अर्थात उपादानसे उपादेय इतर गुणसत्तावाला नहीं होता; अतः उभयकी समसत्ता हो,

यह स्पष्टही हे. ॥ ४३१ ॥ जेसे के उपादेयरुप स्वप्नसृष्टि ओर उसका जो उपादान हो (माया---प्रकृति--शेषा--हिरण्यगर्भ--ईश्वर--अविद्या--मन--मगज) उनकी समसत्ता हे. (वेसे अन्यत्रभी समझलेना चाहिये) ॥४३२॥ दृश्य (ब्रह्मांड) ओर उसके दृष्टाकी विषमसत्ता हे ॥ ४३३ ॥ इस सूत्रका भाव यह हे कि सू. ४२२ अनुसार स्वप्न ओर उसके दृष्टाचेतनकी विषमसत्ता हे ओर प्रकृति-मायासे इतर उपादान नहीं हे, इसलिये स्वप्नसृष्टि ओर जाग्रतसृष्टिका उपादान प्रकृति-माया-शेषाही हे. ओर दृष्टाचेतन जो स्वप्नमें हे, सोही जाग्रतमें हे अर्थात उभयका दृष्टा एकही हे ओर उयभका उपादान एकही हे ओर ४३० अनुसार स्वप्न जाग्रतरुप उपादेयकी समानसत्ता हे, इसलिये दृष्टाचेतन ओर दृश्यकी विषमसत्ता हे, यह सिद्ध हुवा. यह सूत्र ४२२ वा ४२३की पुनरुक्तिरुप नहीं हे ॥४३३॥ विशेष अ. ३ ओर ४ में तथा बस. गत उत्तर फिलोसोफीमें ॥ ४१५ से ४३३ तक ॥

प्रतीति सत्ताकीही ॥ ४३४ (सत्ता) ॥ **स्थाणु प्रतिबिंबवत्** ॥ ४३५ ॥ **ओर मृगजल वत्** ॥ ४३६ ॥ **अनहुईकी नहींही** ॥ ४३७ (अनन्यथा) ॥ **वंध्या पुत्र वत्** ॥ ४३८ ॥ **अज्ञानादिसे अन्यथा** ॥ ४३९ (न्यून) ॥ **स्थाणुपुरुष प्रतिबिंब वत्** ॥ ४४० ॥

अनुत्तरभ्रम असिद्धही ॥ ४४१ (अनुत्तर) ॥ **मृगजल वत्** ॥ ४४२ ॥

अर्थ.—कोई प्रकारका अस्तित्व होता हे तबही कुछ प्रतीतिका विषय होता हे ॥ ४३४ ॥ जेसे के अंधेरेमें स्थाणुपर दृष्टि जाय तब वहां यह कुछ (स्थाणु) हे तबही स्थाणु वा तिस जैसा कुछ प्रतीतिका विषय होता हे, ओर प्रतिबिंब कुछ वस्तु हे तबही प्रतीत होता हे. अन्यथा नहीं ॥४३५॥ ओर जहां मृगतृष्णिका मालुम हो वहांभी मरुस्थल ओर रोशनीका चक्कर हे, तबही जल जेसा प्रतीत होता हे. सारांश जब कुछ हो तबही कुछ प्रतीत (सामान्यज्ञानका विषय) होता हे ॥४३६॥ जो स्थाणु व्यक्ति, आकृति (प्रतिबिंब) ओर मरुभूमि तथा रोशनी न होती तो स्थाणु वगेरेभी प्रतीत न होते. जो स्थाणु कोई आकृति न होती तो भय न होता. प्रतिबिंब शेषाके सूक्ष्म भाग किरणोंका परिणाम हे. ओर मृगजल कभी उसीके आंतरिय सूक्ष्माका परिणामभी होता हे. स्थाणु, स्थूल प्रकृतिका परिणाम हे. जो प्रतिबिंब वस्तु न होती तो मुख ओर पगडीके दोष न मालुम होते. किंवा चिडया ओर अज्ञबालक उसके

४३२ । ४३३—स्वप्न ओर जाग्रतका उपादान समान हे, इसका विस्तार अ. ३ । ओर ४ में आवेगा.

साथ कलोल न करते, कुत्ता उसको देखके न भुसता, केमेरेमें फोटो न होता, मृगजल कोई आकृति न होती तो पानी लेने न जाते. माना के जलके विना जलरुप जानपडता हे तोभी वहां जिसे जल नाम देते हें सो कोई वस्तु हे. अन्यथा नाम न देसकते ॥ ४३६ ॥ कुछभी वस्तु न हो तो कुछ प्रतीत नहीं होता अर्थात अनहुई किसीभी प्रतीतिका विषय नहीं होती ॥४३७॥ जेसे के वंध्याके पुत्र किसीकोभी नहीं जानपडता ॥ ४३७ ॥ ओर न वंध्याको गर्भ जानपडता हे, एवं रज्जु सर्पादि अन्य प्रसंगोंमेंभी ज्ञातव्य हे. यहां इतना ध्यानमें रहे कि भ्रमप्रसंगमें दोषवशसे वस्तुका नाम कल्पन होजाता हे, नहींके नामी, ज्ञानका विषय होता हे; ओर अध्यासप्रसंगमें कोई न कोई भाव वा प्रकारमें नामीभी होता हे ॥ ४३८ ॥

जहां कोई दृश्य अन्यरुपमें जानपडे वा कोई वस्तु अन्यप्रकारकी मान लीजाय वा उसके अभाव अधिकरणमें प्रतीतिका विषय हो, वहां अज्ञानादिसे अन्यथा प्रतीतिका विषय हे; नहींके वोह वस्तु वहां हे; एसा जान्ना चाहिये ॥ ४३९ ॥ जेसे के अज्ञानादिसे स्थाणुमें पुरुष ओर प्रतिबिंबमें बिंबत्वकी अन्यथा प्रतीति होजाती हे. वेसेही अन्यत्र ज्ञातव्य हे ॥ ४४० ॥

वि.—जहां डोरीमें सर्प जानपडे वा डोरीही सर्परुप जानपडे—(वा स्थाणुपुरुष, शुक्तिरजत, मृगजल, जयापुष्पके संबंधसे स्फटक लाल, प्रतिबिंब कोई सच्चा बिंबरुप, इत्यादि प्रतीति प्रसंगमें) वहां वस्तुका सामान्यज्ञान (यह कुछ हे), विशेष अज्ञान (मूंझका बलदार आकार), पूर्व दृष्ट वस्तुके संस्कार (सर्पके संस्कार), प्रमाता दोष (जीवमें भय, लोभ वगेरे), प्रमाणदोष (चक्षु आदिमें तिमरादि दोष), ओर प्रमेयदोष (डोरी जेसा लंबा सर्प)--यह छ दोष वा कारण हों तव रज्जुआदिमें अन्यथा—सर्पकी भ्रांति वा प्रतीति होती हे. उस विना नहीं. यथा, इतना अंधेरा हो के डोरीका इदं रुपमेंभी भान न हो, वा यह मूंझ बलवाली वस्तु हे एसा विशेषज्ञान हो, वा कभी सत्य वा असत् (लकडीका, वा सर्पकी छबी) सर्प न देखा हो, मनमें भयादि न हो, आंखमें अंधेरा न हो, ओर सन्मुखमें लंबाकार न हो, तो सर्पकी भ्रांति वा सर्पकी प्रतीति नहीं होती. पूर्व स्वप्नगत सिंह दर्शनसे जाग्रत होगई वा न हुई तोभी कालांतरमें स्वप्न विषे वही वा उस जेसा स्वप्न-सिंह देखते हें. जल तत्वरुप हे, एसाही नित्य जानपडा था (वर्तमानमें नहीं). वायु, वजन विनाकी जानपडती थी (वर्तमानमें नहीं). मृगजलके संस्कारसे कालांतरमें सच्चा जलभी मृगजलरुप जानपडता हे. स्वप्नगत दृष्ट मकान जेसा मकान, जाग्रतमें देखके स्वप्नमें देखा था, यह वही, एसा

निश्चय होजाता हे. इत्यादि दाखलोंसे यह नियम निकला के अन्यथाप्रतीतिके प्रसंगमें सत् वस्तुकेही संस्कार, भ्रम वा अध्यासके हेतु नहीं किंतु सत्के हों वा असत्के हों परंतु 'वस्तुके संस्कार', इतनाही हेतु होना बस हे. इस भ्रांति प्रसंगमें विवाद हे तथापि दृश्य जगतके स्वरुपका उससे फेसला होजाता हे. अध्याय १में जनाया हे. अध्यासका विशेष वर्णन भू. बस. ओर तद. १ में हे. यहां तो नाममात्र कहा हे. सू. ६२४ से ६५४ तकमेंभी वांचोगे ॥ ४४० ॥

भ्रम (ज्ञानाध्यास), अध्यास (अर्थाध्यास, ज्ञानाध्यास) यह भ्रम वा अध्यासकालमें भ्रम वा अध्यासरुपसे सिद्ध नहींही होते वा प्रतीतिके विषय नहीं ही होते; किंतु जब वे निवृत होजावें अर्थात भ्रम वा अध्यासका भाव वा प्रकार न रहे तिस पीछे भ्रम वा अज्ञान था वा हुवा था, एसे विलक्षण अनुमानके विषय होते हें ॥ ४४१ ॥ दृश्य जगतमें एक यही एसा विषय हे कि अपनी हयातीमें अपनेको सिद्ध नहीं होने देता, किंवा सिद्ध नहीं होता. अपने बाध हुये पीछेही सिद्ध होता हे. इसलिये यह कहाजाता हे कि भ्रम–अध्यास नहीं जानाजाता.–उत्तरके विना उसकी सिद्धि नहीं होती ॥ ४४१ ॥ जेसे के मृगतृष्णिका अपनी प्रतीतिकालमें उस रुपसे विषय नहीं होती. अधिष्ठान (मरुभूमी, रोशनी) के ज्ञान होनेपर उसकी निवृत्ति हुये पीछे भ्रम वा अध्यास था, एसे रुपमें मानीजाती हे. यद्यपि एसा ज्ञान हुये पीछेभी जानपडती हे तथापि पूर्ववाले भाव ओर प्रकारमें विषय नहीं होती ॥ ४४२ ॥ स्वप्नादिकी निवृत्ति होने पीछे वे अन्यभाव, अन्यप्रकारमें जानेजाते हें; इसलिये उनका अध्यासनाम रखा हे. तद्वत् जाग्रत, स्वप्नकालमें अन्यथा जानपडती हे. उपरोक्त रज्जु-सर्पादि प्रसंगमेंभी एसाही ज्ञातव्य हे. भूलभी, भूलकालमें भूलरुपसे नहीं जानपडती, तथापि भूल, पूर्व ज्ञात प्रसंगमें कहाती हे. ओर भ्रम, अध्यास वा दोष पूर्वमें ज्ञात हुये नहीं होते; इतना उभयमें अंतर हे. ओर भ्रम, अध्यास, भूल वा संशय यह सब अज्ञान करके होते हें ॥ ४४२ ॥

विषय अविषय नहींही ॥४४३ (ज्ञेय)॥ अन्यथा असिद्धिसे ॥४४४॥ अपना आप विषय नहीं ॥ ४४५ (अज्ञेय) ॥ दृष्टानियमसे ॥ ४४६ ॥ विषयमात्रकी सिद्धिमें ज्ञानकी अपेक्षा ॥ ४४७ (ज्ञान) ॥ तिसविना सिद्ध न होनेसे ॥ ४४८ ॥ न विपरीत ॥ ४४९ (स्वप्रमेय) ॥ प्रमा स्वतः सिद्ध ओर स्वतः प्रमाण होनेसे ॥ ४५० ॥

अर्थ.—ब्रह्मांडमें हरकोई द्रव्यादि विषय साक्षात वा परंपरासे (स्वतोग्रह वा

परतोग्रहसे[1]) विषय होना चाहिये. वोह चाहे भूमंडलवाले जीवोंका वा अन्य ग्रह-वालोंका वा अन्य कोई शक्तिका विषय होगा वा विषयहोने योग्य हे (४१०). याने सर्वथा अविषय हो, एसा नहीं हे[2] ॥४४३॥ क्योंकि जो वोह साक्षात अथवा अपने गुणआदिद्वारा विषय न होता हो तो उसके अस्तित्वकी सिद्धिही नहीं होगी. अर्थात उसका नाम कथन वा नाम न रखसकनेसे नहीं जेसा होगा. परंतु सफल नियमसे उसका उपयोग होनेसे किसी न किसीको कोई न कोई प्रकारसे ज्ञेय होना चाहिये, अथवा स्वयंप्रकाश होने योग्य हे. (शं.) सू. ३९४का विरोध होगा. (उ.) नहीं. क्योंकि बुद्धिका ज्ञेय नहीं हे तथापि योग्यवृत्तिमें सूर्यके प्रकाश समान स्वयंप्रकाशमान (३९१) होता हे, उससे उसको लक्ष्यालक्ष्य कहाजाता हे. यदि एसा अद्भुत् अकथ्य प्रकारसे साक्षातकार न होता तो उसके नाम रखनेकीभी कल्पना न होती. सारांश इस सूत्रका भावार्थ विषयपदके अर्थको विचारके समझना चाहिये ॥४४४॥ (जेसे अपना आप कोइ संयोगी नहीं होता २४३ याद करो वेसे) कोईभी तत्व पदार्थ अपने स्वरुपका आप विषय (ज्ञेय-दृश्य-भोग्य) नहीं होता. ॥ ४४५ ॥ क्योंकि दृष्टानियम (३७५) यही बताता हे; अर्थात वोह तत्व वस्तु दूसरेभावविनाकी स्वरुपतः एकही हे. ओर दृष्टादृश्यादि जुदा जुदा होते हें. हां, दृष्टादृश्यादि यदि सावयव हों तो एक भाग दृष्टादि ओर दूसरा भाग दृश्यादिरुप होसकता हे ॥४४६॥ जेसे दृष्टा अपना दृश्य नहीं होता वेसेही ज्ञाता अपना ज्ञेय, भोक्ता अपना भोग्य, कर्ता अपना कर्म, प्रकाश अपना प्रकाश्य, व्यापक अपना व्याप्य, आधार अपना आधेय, प्रतियोगी अपना अनुयोगी, ओर संबंध अपना संबंधी नहीं होता. एसा दृष्टानियमकी अर्थापत्तिसे जानलेना चाहिये. (विस्तार मूलमें हे) ॥ ४४६ ॥

(उपरके नियमसे यह सिद्ध होगया कि) जितने ज्ञात वा अज्ञात विषय हें उनकी सिद्धिमें अपरोक्ष वा व्याप्ति वगेरे–ज्ञानकी अपेक्षा हे ॥ ४४७ ॥ क्योंकि ज्ञानके विना उनकी सिद्धि नहीं होसकती; जेसाके उपर कहा हे ॥ ४४८ ॥ यथा प्रकाश ओर प्रकाश्य, शब्दादिविषय, मन वा में हुं, यह सब कोई स्वप्रकाश चेतनके विषय हें, उसके विना उनकी सिद्धि नहीं होती. ओर मनोवृत्तिज्ञानके विदून याने ज्ञानस्वरुपमें प्रकाशित जो वृतिज्ञान उसके विना, अन्यविषयकी ओर

[1] बस. में इसका विस्तार हे. [2] यदि सर्वज्ञ ईश्वर हो तो व्याप्तिज्ञानद्वारा उसकी सिद्धिमेंभी इसका उपयोग होसकता हे.

व्याप्तिज्ञानके विना परोक्षविषयकी सिद्धि नहीं होती. ओर उस ज्ञानप्रकाशके विना ज्ञान ओर ज्ञेयका व्यवहारभी नहीं होता. ईम्प्रेशन ओर ज्ञानवृत्तिभी उसीमें ग्रहण होते हें ॥ इस प्रसंगमें सूत्रोक्त विषय पदका अर्थ ज्ञेय वा दृश्य हे, एसा जान्ना चाहिये ॥ ४४८ ॥ (परंतु) ज्ञान (प्रमा) की सिद्धिकेलिये ज्ञेयकी अपेक्षा होती हो, एसा नहीं हे ॥ ४४९ ॥ क्योंकि जो ज्ञानस्वरुप-प्रमा-होता हे वोह स्वतः सिद्ध (अलुप्तप्रकाश) होता हे ओर स्वतःप्रमाण (प्रमेयके ग्रहण होनेमें आपही करणरुप) होता हे ओर ज्ञेय--जड, ज्ञानशून्य होनेसे स्वयंप्रमेय होता हे, इसलिये उसकी सिद्धिमें किसी अन्य-ज्ञेयकी अपेक्षा नहीं होती॥ तथा वोह किसीका विषयभी नहीं हे, इसलियेभी उसकी सिद्धिमें ज्ञेयकी अपेक्षा नहीं होती ॥ ४५० ॥ यथा—अन्य रुपोंका प्रकाशक जो प्रकाश सो चिद्प्रकाशको नहीं प्रकाशता, प्रत्युत उसकी सिद्धिमें ज्ञानप्रकाशकी अपेक्षा हे (प्रकाशाधिकरण याद करो). हां, व्यवहारमें यूं कहसकते हें कि जो (प्रकृति-मन-विषय) न होते तो ज्ञान हे, एसा सिद्ध न होता; अतः उसकी सिद्धिमें ज्ञेयकी अपेक्षा हे. परंतु यह कथन व्यवहारमात्र हे. क्या दीपकके प्रकाशमें कोई प्रकाश्य न हो तो उसकी सिद्धि स्वतः सिद्ध न होगी? होतीही हे. एसेही प्रमा (चेतन-ज्ञानप्रकाश) वास्ते जानलेना चाहिये. (शं.) प्रमा, अविषय होनेसे ४४३ । ४४७ नियमका विरोध होगा. (उ.) जो चेतन ज्ञानस्वरुप होनेसे प्रमा कहाजाता हे वोह स्वतः सिद्ध ओर स्वतःप्रमाण रुप हे. इसलिये वोह किसीका प्रकाश्य-विषय नहीं हे. किंतु सूर्यके प्रकाश समान अलुप्तप्रकाश हे; अतः विरोध नहीं आता ॥ इसका विवेचन प्रमा ओर प्रकाशप्रसंगमें आचुका हे[१] ॥ ४५० ॥

(शं.) कहीं ब्रह्मांडमें शश, शृंगवाला क्यों न हो? ओर वोह अविषय हे. (उ.) हो. परंतु प्रसिद्ध व्याप्तिवत् शश, शृंग रहितही क्यों न हो? सारांश संशयपद हमारे लाभमें हे. अर्थात् व्याप्ति मिले विना एसा कुछभी नहीं मानसकते॥ प्रस्तुत विषयअधिकरण मनुष्यमंडलकी सीमातक उपयोगी हे ॥ ओर मानलो के हो, तोभी वोह किसीका विषय होगा. अन्यथा असिद्ध ओर कल्पनामात्र माना-

[१] सर्व प्रकाशक अलुप्तप्रकाश, स्वप्रकाशस्वरुप लक्ष्यालक्ष्यरुप हे. यदि एसा न होता तो उसका नामभी नहीं लियाजाता; लक्षणकी तो बातही क्या करना. परंतु अकथ्यप्रकार ओर अद्भुतप्रकारसे आपही लक्ष्य होता हे, इसलिये जडवाद ओर चेतनवादकी तकरारका विषय होपडा हे ॥

जायगा. जो मन वा इंद्रियसे अगोचर शक्ति वगेरे यदि पदार्थ हों तो उनकी सिद्धि, उनके कार्य वा योग्यताके ज्ञान विना अथवा कोई प्रकारके व्याप्तिज्ञानके विना नहीं होगी. सारांश विषयकी सिद्धिमें ज्ञानकी अपेक्षा होती हे. ॥ ४४३ से ४५० तक ॥

ज्ञान ज्ञेयानुसारी ॥ ४५१ (ज्ञाता) ॥ **तद्वत् उपयोगी होनेसे** ॥ ४५२ ॥ **विपरीत नहीं** ॥ ४५३ (अतत्ता) ॥ **अनुपयोगी रहनेसे** ॥ ४५४ ॥ **घट प्रतिबिंब वत्** ॥ ४५५ ॥

अर्थ.—जो ज्ञान (वृत्तिज्ञान) होता हे सो जेसा ज्ञेय होता हे उस भाववाला होता हे ॥ ४५१ ॥ अर्थात जो ज्ञान होता हे सो जिस भाव–जिस प्रकारमें होता हे उसी भाव ओर उसी प्रकारमें होता हे. परंतु उपर लिखे अनुसार (४९) योग्यसंबंध होना चाहिये. (अन्यथा, कुछ अन्यप्रकारमें मान लियाजाता हे वा अन्यथा विषय होता हे) ॥ ४५१ ॥ क्योंकि जेसा ज्ञान होता हे उस अनुसार ज्ञेय उपयोगी (ज्ञेयका उपयोग) होता हे; अतः ज्ञेयानुसार ज्ञान होता हे, एसा जानपडता हे ॥ ४५२ ॥ ज्ञेय अन्य ओर ज्ञान अन्यप्रकारका हो किंवा जेसा ज्ञान हुवा उसके अनुसार ज्ञेय हो, एसा सिद्ध नहीं होता ॥ ४५३ ॥ क्योंकि जो ज्ञानाधीन ज्ञेय मानाजाय तो ज्ञेय अनुपयोगी रहसकता हे. क्योंकि ज्ञेयानुसारी ज्ञान नहीं हुवा हे ओर उपयोग ज्ञेयका होता हे; न के ज्ञानका. ज्ञानतो उसके गुण कर्मके बोधमें याने उपयोगमें सहकारी कारण हे ॥४५४॥ जेसे के घट, गोलाकारवाला हे ओर प्रतिबिंब, बिंबाकार जेसा हे ओर वे वेसे जानपडते हें. ओर प्रकारके विषय नहीं होते. इसलिये जलानयनता ओर पगडीकी सुधारना होती हे. ज्ञानानुसारी डोरीमें सर्प वा डोरीरुप सर्प जानपडता हे, सो ज्ञान सफलप्रवृत्तिका जनक नहीं होता; अतः ज्ञेयानुसारी ज्ञान नहीं हे ॥ ४५५ ॥

वि.—एक हजार मनुष्योंमेंसे ९९९ को अमुक कुदरती वा मनुष्यघडत पदार्थोंसे एकही प्रकारका ईम्प्रेशन देखनेमें आता हे. जुदा जुदा नहीं. जेसे के रोगी न हो तो शकर सबको मिष्ट, नींब सबको कटु, वृक्ष सबको हरे, अग्नि सबको दाहक, ओर मकान सबको हमारी घडताकृतिमें जान पडते हें ओर वेसाही उपयोग होता हे. इससे स्पष्ट होता हे कि ज्ञेयके अनुसार ईम्प्रेशन होता हे. ओर जहां एकही वस्तु जुदा जुदा रुपमें जान पडती हे, वहां यातो जेसे पीलीयाके रोगीको आंखद्वारा सब पीत जानपडे वा तो जेसे भस्मक रोगीको भूखही भूख लगे ओर

खूब खावे वा तो जेसे मगजके रोगीको कटु--मिष्ट, शुद्ध--अशुद्ध नहीं भासता वा उलटा जानपडता हे, या तो जेसे बुद्धिकी दृष्टिमें याने अपने स्वार्थवश वा अनुकूलता--प्रतिकूलताके आधीन एकही वस्तुमें कभी ईष्टपना, कभी अनिष्टपना माना-जाता हे—मित्रकोभी शत्रु मानलियाजाता हे (५१६ देखो); वेसेही इंद्रिय, मगज वा ज्ञेय दूषित होनेसे, वा सुनके विश्वासमें आनेसे वा अनुकूलता-प्रतिकूलता (स्वार्थ) वश, अन्यथा जानपडता हे. या तो कोईभी कारणसे (अज्ञानादि दोष वा प्रमाणकी अपूर्णतासे) विषयविषयीके योग्यसंबंधका अभाव हे, इसलिये अन्यथा जानपडता हे वा मतभेद होता हे, वहां अपने ज्ञान (मंतव्य) अनुसार ज्ञेयको मानलेते हें, नहींके ज्ञानअनुसारी ज्ञेय हुवा, वा हे.

(शं.) बाह्यपदार्थका स्वरुप मनुष्य नहीं जानसकता किंतु अमुक पदार्थ (परमाणु--पुंज) का ज्ञानतंतु (इंद्रिय) के साथ संबंध पानेपर मगजमें ईम्प्रेशन होता हे, उस ईम्प्रेशनानुसार पदार्थ मानलिये जाते हें. यथा कटु, मिष्ट, गंधादि यह बाह्यमें वस्तु नहीं, किंतु ईम्प्रेशन हे. इसलिये ज्ञेयानुसारी ज्ञान नहीं, किंतु ज्ञानानुसारी हे. एकही वस्तु किसीको मोटी, किसीको छोटी, किसीको श्वेत, किसीको पीत, किसीको मिष्ट, किसीको कटु, किसीको उष्ण, किसीको शीत, किसीको अनुकूल, किसीको प्रतिकूल, किसीको शत्रु, किसीको मित्र, जानपडत्ती हे; ओर वस्तुके स्वरुपोंमें फिलोसफरोंके मतमें भेद हें; इतनाही नही किंतु एकहीको एक वस्तु एक कालमें अनुकूल तो दूसरेकालमें प्रतिकूल जानपडती हे; इसलिये ज्ञेयानुसारी ज्ञान नहीं माना जासकता.

(उ.) सृष्टिके नाना प्रकारके असंख्य पदार्थोंका एक मगजमें ईम्प्रेशन होसके वा तम-प्रकाश, कटु-मिष्ट, सर्द-गरम, विरोधी पदार्थोंका विरोधी ऐम्प्रेशन होसके, यह असंभव हे; क्योंकि मगज मर्यादित परमाणुओंका समूह हे. ईम्प्रेशनका ज्ञाता (अनुभवकर्ता) उससे भिन्न हे. ओर जैसा ईम्प्रेशन हुवा वेसा ज्ञान हुवा हे, इस तुम्हारी रीतिसेभी ज्ञेयानुसारी ज्ञान हुवा हे. वस्तुतः जो बाह्य वस्तुजन्य ऐम्प्रेशन हो तो, (क.) स्वप्नकी अशरफीसेभी दालद्र नाश होना चाहिये. (ख.) शुक्तिमें किसीको रजत, किसीको भोडल, किसीको शुक्ति, प्रतीत न होना चाहिये. (ग.) मानसिक दुःख सुख न होना चाहिये. (घ) जन्मांधके हाथसे सिंदूक देशमें कील न गडनी चाहिये, क्योंकि अंधको देशका ऐम्प्रेशन नहीं हे. (घ) ऐम्प्रेशन अनुसार ज्ञेय नहीं तो बाह्य पदार्थोंके उपयोगसे उन अनुसार फल न होना चाहिये. प-

रंतु इन सबसे उलटा होना देखते हैं; अतः सब ज्ञेय ईम्प्रेशनरुप तदाधीनही हैं, एसा सिद्ध नहीं होता. शब्दादि बाह्य पदार्थोंके गुण हैं किंवा स्वयं पदार्थ हैं तोभी सूत्रोक्त नियमही सिद्ध रहता हे; क्योंकि मन, इंद्रियद्वारा तदाकार होके ज्ञातामें ग्रहण होता हे; वा ईम्प्रेशन ग्रहण होता हे, उभयपक्षमें ज्ञान, ज्ञेयाधीन हे ॥

ज्ञेयाधीन ज्ञान—अर्थात् ज्ञेय हो तब ज्ञेयका ज्ञान हो, एसा कहाजाता हे. जो एसा न हो तो संशयमें रहनेसे प्रवृत्तिका अभाव होनेसे जीवनही नहीं हो, ओर शब्दप्रमाणभी निरर्थक होजाय. परंतु ज्ञानाधीन ज्ञेय-अर्थात जैसा ज्ञान हे उसानुसार ज्ञेय न हो (ज्ञानका विषय तो अर्थशून्य हो ओर ज्ञानसे अन्यथा हो. रज्जुसर्पवत्), एसा मान्ना हास्यास्पद हे. क्योंकि वोह ज्ञान किसी ज्ञेयका नहीं मानसकोगे. ज्ञेय पहेले १, वा ज्ञान पहेले २, वा उभय साथ साथ ३. ? आद्यपक्षमें ज्ञेयानुसारी ज्ञान ठेरा. दूसरे पक्षमें ज्ञानोत्पत्तिका अभाव होनेसे ज्ञेयका अभावही ठेरेगा. तीसरे पक्षमेंभी उनके उपादान भिन्नभिन्न होनेसे ज्ञान व्यवहार तो उत्तरकालीनही मान्ना पडेगा. (शं.) ज्ञान, ज्ञेयके आधीन हो तो प्रत्यक्ष, स्वतंत्रप्रमाण क्यों न मानाजाय ? परंतु अप्रमाणभी होता हे. यथा भ्रमप्रसंगमें देखते हैं. (उ.) जबके ईम्प्रेशन अनुसार ज्ञेय नहीं तो ज्ञेयकी सफलता क्यों होती हे ? बाह्य पदार्थोंका उपयोग, ज्ञानके अनुसार क्यों होता हे ? इसलिये बाह्योंके संबंधसे जो मगजमें ईम्प्रेशन हुवा वा मनका तदाकार परिणाम हुवा सो ज्ञेयाधीनही मान्ना होगा. प्रत्यक्षकी अप्रमाणताका हेतु, दोष ओर साधनकी अपूर्णता हे, नहींके ज्ञानाधीन ज्ञेयता. ओर बाह्य सूक्ष्मद्रव्य, गोचर न होसकते हों, यह दूसरी बात हे ॥ भ्रमप्रसंगमेंभी इस नियमका बाध नहीं होता. यथा रज्जुसर्प प्रसंगमें किरणोंने लंब, श्यामरुप रखा तिस अनुसार मनका (मगजका) आकार हुवा १, ओर एसाभी हो वा हे कि उसी समय सर्पसंस्कारीमनके संस्कार अनुसार अंदरके ईथरका सर्पाकार परिणाम हुवा २, एसे दो प्रकार हुये, कभी तो केवल पहिलाही ग्रहण होता हे ओर कभी दूसराही ग्रहण होता हे ओर कभी पहेलेविशिष्ट दूसरा ग्रहण होता हे. जो पहेलाही सामान्य रुपमें ग्रहण हुवा ओर सादृश्य दोषसे सर्पसंस्कार उद्भव हुये, यह सर्प एसा नाम कल्पन होगया तो वहां ज्ञानाध्यास हे. अर्थानुसारी ज्ञान नहीं हे तथापि ज्ञानानुसारी वहां ज्ञेयभी नहीं हे, किंतु कल्पनामात्र—अर्थशून्य हे. ओर यदि दूसरा प्रकार हे तो वहां सर्पाकार विषय हे, इसीको अविद्यारचित (परिणाम) कहते हैं. यहां ज्ञेय हे परंतु अध्यासरुप होनेसे अर्थाध्यास हे अर्थात जेसे काली

लकडीका सर्प देखके भयादि उत्पन्न होते हैं एसा हे. नकली सर्पमें असली सर्प मानलिया हे. यहां आकार भागमें ज्ञेयाधीन ज्ञान हे ओर सत्य सर्प, एसा कल्पनामात्र हे, याने इतना अंश अर्थानुसारी ज्ञान नहीं हे तथापि ज्ञानानुसारी वहां ज्ञेयभी नहीं हे. ओर जहां उभय विशिष्ट तीसरा प्रकार हे वहां या तो संशय होगा वा तो जो सर्परुप निश्चय हुवा तो संसर्गाध्यास (इदंविशिष्ट अविद्या-ईश्वर रचित सर्पाकार) हे. यथा लालवस्त्र संबंधी श्वेतकाच, लालकाच जानपडता हे वेसे हे. परंतु लालकाचके प्रसंगमें लाली सत्य हे. रज्जु -सर्प प्रसंगमें शेषाका सर्पाकारमात्र असत् नहीं हे परंतु वोह विषधर रुपसे नहीं हे किंतु नाम कल्पन हे. इतना उभयमें अंतर हे. ओर दूसरे प्रकारानुसार एक भाग ज्ञेयाधीन ज्ञान ओर दूसरा भाग अर्थशून्य हे; नहींके ज्ञानानुसारी ज्ञेय हे. भ्रम वा अध्यासमें तो नाम वा नामरुपमात्र होता हे ओर सत्य (अबाधित) में यथाताथ्य होता हे, इतना अंतर होता हे. जहां शब्दादिमें मतभेद हे वहां विषयीविषयके योग्यसंबंधका अभाव हे वा योग्यसंबंध नहीं होसकता (अविषय) एसा हे. इस प्रसंगमेंभी ज्ञानाधीन ज्ञेयकी सिद्धि नहीं होती. यद्यपि एसे प्रसंगोंमें ज्ञेयानुसारी ज्ञान हे, यह नहीं कहाजासकता ओर इसका कारण योग्यसंबंधका अभाव हे, तथापि ज्ञानानुसारी ज्ञेय, एसाभी नहीं हे.

यद्यपि मनुष्यके प्रमाण अपूर्ण हैं, यह उपर कहा हे ओर मूल द्रव्य, उनकी शक्ति, परमाणु वगेरे—कितनेक बाह्यांतर पदार्थ, गोचर नहीं होसकते किंतु उनके कार्योंसे वा समूहपुंजसे उन मूलद्रव्यादिका अनुमान कियाजाता हे, तथापि स्थूल पुंजोंका सर्वथा ज्ञान न हो एसाभी नहीं मानसकते. अगोचर भागमें तो उभयपक्ष (ज्ञेयानुसारी ज्ञान, ज्ञानानुसारी ज्ञेय) से किनारा करना पडेगा. ओर स्थूलोंमें सूत्रोक्त नियम स्पर्श होगा; क्योंकि ज्ञानानुसारी ज्ञेय (ईम्प्रेशन थीयरी) मानें तो कागजपर वा लकडीपर बारीक चित्रकारी न करसकेंगे, मकान न बनासकेंगे, पदार्थोंका भेदग्रहण न होगा, पहलेको पीछे ओर पीछेको आगे (असत्) न कहसकेंगे, बाह्य पदार्थोंकी योजना, वर्गीकरण, नियम, बंधन, विवेचन, ऐम्प्रेशनकी सिद्धि ओर अनुमानादि कार्य न होसकेंगे; क्योंकि ऐम्प्रेशनका उपयोग मगजमें हे; ज्ञेयानुसारी नहीं मानते; अतः बाह्य उपयोग नहीं होसकता. परंतु उक्त कार्य तो होते हैं. वृक्षपर हाथपेरद्वारा चढते हैं, फल लेते हैं. लडाई वगेरेका सामान भविष्यार्थ एकत्र करते हैं. रोग निवारणार्थ दवाईका उपयोग होता हे. केमेरेमें किरणोंद्वारा फोटो लेते हैं. एसे एसे उदाहरणोंपरसे ज्ञेयानुसारीज्ञान होना स्पष्ट हे. जो एसा न

होता तो वृक्षपर चढने समय हाथपेर टूटजायँ. दवाईसे मरण होजाय. फोटो न हो, भोजनमें प्रवृत्ति न हो, क्योंकि भेदग्रहणादिरुपकार्य ईम्प्रेशन नहीं बताता– नहीं सिखाता ओर न वोह अपनी सिद्धि करसकता हे. माना के चक्षुवृत्ति बाह्य नहीं जाती ओर किरणे फोटो लेके जब अंदर जाती हें तब रुप ओर आकारका ज्ञान होता हे; तथापि जो होता हे वोह किरणरुप ज्ञेयानुसारी हुवा हे. माना के किरणोंके अटूट शंकलासे वृक्षादिकोंका ज्ञान ओर इसलिये चित्र करना वगेरे ओर वृक्षपर चढना वगेरे कार्य होते हें तथापि ज्ञेयानुसारी हुवा हे. (चक्षुवृत्ति बाहिर नहीं जाती तो ज्ञान केसे यह अनिर्वचनीय विषय हे इसकी चर्चा अध्याय तीनमें होगी). (शं.) ज्ञेयानुसारीज्ञान हो तो भ्रम न होना चाहिये. (उ.) उपरोक्त भ्रम विवेकसे इसका उत्तर होजाता हे.

इतने विस्तारका सार यह हे कि जो पदार्थ मनुष्यके मन, इंद्रियोंकेद्वारा विषय होने योग्य हें वे बाह्यपदार्थ, जिसभाव जिसप्रकारमें उद्भव हें (ग्रहण होने योग्य हें) उन पदार्थोंके साथ निर्दोष मन, इंद्रियद्वारा विषयीका योग्यसंबंध होजावे तो विषय उद्भवित भावप्रकारमें ग्रहण होजाता हे (ज्ञेय होता हे). जो इस सामग्रीमें कुछ कमीज्यादती, तो जितनी खामी उतनीही ज्ञेयत्वोत्पत्तिमें (प्रमात्वमें) न्यूनता हे, एसा जानना चाहिये. परंतु ज्ञानानुसारी ज्ञेय, एसा सिद्ध नहीं होता.

(शं.) शरीरसे बाह्य कोई पदार्थही नहीं हे, ओर बाहिर अंतरपनाही नहीं हे, अर्थात सब स्वप्नसृष्टिवत् हे–मनके प्रत्यय हें वा चित्तकी अवस्था–परिणाम हें अर्थात शब्दादि ओर आकार, विस्तार याने नामरुपात्मक जगत चित्तकी आंतरिय अवस्था हें, तो फेर 'ज्ञेयानुसारी ज्ञान' इसकी तो बातही क्या करना. (उ.) जेसे स्वप्नसृष्टिमें स्वप्नद्रष्टाका शरीर होता हे उससे बाह्य अन्य पदार्थ होते हें ओर वे द्रष्टासे जुदा होते हें वेसेही यहांभी मानलो. यद्यपि वहां ज्ञान ओर ज्ञेय समकालीनभी जानपडते हें, यह उभयके उपादान मायाकी विचित्रता हे तथापि उपयोग तो ज्ञेयके ज्ञान हुये पीछे, ज्ञेयकाही होता हे; अतः उनका अंतर हे ओर वोह अंतर सूक्ष्म हे. गुरुत्वका भार लगना, हाथ जलना, त्याग ग्रहण होना, वृक्षपर चढना, गिरनेसे चोट लगना, यह सब उपयोग–स्थिति, बाह्य पदार्थ हें, एसा सिद्ध करबताती हें.

(शं.) सब पदार्थ क्षणिक विज्ञान–इस तत्वके दीपककी लो समान क्षणिक परिणाम हें. ज्ञेयकालमें ज्ञान ओर ज्ञानकालमें ज्ञेय परिणाम नहीं होता; अतः

ज्ञेयानुसारी ज्ञान मान्ना समीचीन नहीं. (उ.) आपकी रीतिमेंभी प्रथम क्षणमें ज्ञेय परिणाम उस पीछे ज्ञानाकार परिणाम माना हे; इसलिये ज्ञेयानुसारी ज्ञान ठेरता हे. तथापि क्षणिकवादकी असिद्धी हे, इसलिये यह समाधान प्रोढीवादकी रीतिसे हे. नहींके यथावत्. क्योंकि जो क्षणिकवाद मानें तो एक कालमें एक घटको दो पुरुष ग्रहण करें तहां वोह घट किसका परिणाम, तथा उसको ओर उभयका ग्रहण रुप यह किसका परिणाम मानोगे? एक सूर्य, चंद्र ओर उनका समकालीन अनेक पुरुषोंका विषय होना यह ज्ञान किसका परिणाम मानोगे? इसका योग्य उत्तर नहीं मिलता. जो पूछनेवालेकाही वा उत्तरदाताकाही मानोगे तो एक दूसरेमें परस्पर द्वेष विरोध न होना चाहिये, परंतु होता हे. तमप्रकाश—विरोधीपरिणाम एकके नहीं होसकते ओर सावयवकाही परिणाम होता हे, इत्यादि दोष आते हें. तथा (१७४। १९८। २११। ९४३॥ २६१। ३४०। ३५०। ४४३ ओर ३७५ इन नियमोंका बाध आवेगा.—जो ज्ञाता, ज्ञेय ओर ज्ञान यह याने त्रिपुटी क्षणिकरुप हो तो जो स्थाई व्यवहार देखते हें सो न होना चाहिये, क्योंकि ज्ञान ओर ज्ञाताकालमें ज्ञेय होना नहीं मानते. बाहिरमें उपर कहे अनुसार जो नकशी वगेरे ओर वृक्ष वगेरेका उपयोग होरहा हे सो न होना चाहिये, परंतु होता हे; अतः विषयीसे इतर बाहिर पदार्थ हें ओर पूर्ववत् ज्ञेयानुसारी ज्ञान हे ओर भ्रम—अध्यासभी हे॥ "बाहिरपना (शरीरसे इतर देश) असिद्ध हे", यह मंतव्य कथनमात्र हे; मेरे मुखमें जिव्हा नहीं, इस कहने समान हे; क्योंकि जिसप्रति कहाजाता हे वोह उससे भिन्न देशमें हे. ओर जन्मांधसे पूछागया तो देशकाल वस्तुके नाम, लियेविना तथा बाह्यांतर इसे संज्ञाके कहे विना खानपान, हस्तपादकी क्रियासे दूर नजदीक ओर पदार्थोंका भेद (इतरेतरत्व) बयान किया. इससे जानपडा कि बाह्यांतर ओर देशकालका भान अंधेकोभी कुछ होता हे सो उसकी भावनामय भाषामें हे; जेसे के पशुओंको हे. इसलिये बाह्यांतरका भेद स्पष्ट होता हे.

(शं.) बाहिरके पदार्थ प्रत्यक्षज्ञानके विषय नहीं किंतु अनुमानके विषय हें; अतः ज्ञेयानुसारी ज्ञान, एसा नहींकहाजासकता, क्योंकि अनुमान अन्यथाभी होजाता हे. (उ.) अनुमान, व्याप्तिज्ञानके विना नहीं होसकता, इसलिये व्याप्तिही ज्ञेयानुसारी ज्ञान कहाजायगा; अतः शंका नहीं. तथाहि आप प्रश्नकर्ता ओरमें उत्तरदाता, यह क्या अनुमानका विषय हुवा? बात यह हे के लेखक वा शोधक सब तरफसे शोधे तो "बाह्य नहीं, ज्ञेयानुसारी ज्ञान नहीं," एसा कभी न कहे. फेर-

भी हठके वश हुवा न माने तो उसको कहना चाहिये कि हमारे हाथमें चिमटेमें अग्नि हे जो कि आपसे जुदा (बाह्य) हे उसके अंगली लगाके परिक्षा करलीजे, जलता हे वा नहीं. अथवा मकानपरसे गिरके देखिये, हाथपेर टूटते हें वा नहीं. इसप्रकार करनेसे यह परिक्षा होजायगी के बाह्यता ओर बाह्य वस्तु तथा ज्ञेयानुसारी ज्ञान यह ठीक हें वा अठीक हें. हां, पदार्थोंका मूल (रागुण एटम, शक्तिवाली माया–प्रकृति) सूक्ष्म हे, इसलिये अपरोक्ष रुपमें विषय नहीं होता, यह बात ठीक हे. तहां ज्ञानानुसारी ज्ञेयकाभी प्रयोग नहीं होसकता. ओर आपने जो अन्यथा अनुमान होनेका हेतु दिया हे सो सर्व स्थलमें नहीं लगता, जेसे के उपरके उदाहरणोंमें अन्यथा अनुमान नहीं हे किंतु प्रत्यक्ष हे. तथापि जहां असत् अनुमान होजाता हे वहां हेत्वाभास हे. जब उसकी शोध करते हें तब उसका बाध होजाता हे ओर ठीक अनुमान होजाता हे. इसलिये व्याप्ति ग्रहण होना ज्ञेयानुसारी ज्ञान हे.

यद्यपि मनुष्यके प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी अपूर्णता उपर दरसाई हे, इसलिये ज्ञेयानुसारी ज्ञान, एसा कहना विरोध दोष हे तथापि मध्यस्थानुकूल परिक्षा करनेसे मानवमंडलकी सीमातकमें ज्ञेयानुसारी ज्ञान कहाजासकता हे. विशेषतः मानवमंडलका सफलप्रवृत्तिवाला जो व्यवहार उस दृष्टिको लेके तो ज्ञेयानुसारीज्ञान, रीज्ञान, एसाही मान्ना पडता हे क्योंकि उसअनुसार उपयोग-फल देखते हें, एसा माने विना जीवनव्यवहारही नहीं होसकता. परंतु कुदरतकी दृष्टिसे मनुष्य, कुछ फेसला करे तो उसकी भुल मानसकते हें, क्योंकि मनुष्यमें उतनी योग्यता नहीं हें. ओर मानवमडलमें जो एसा न मानें तो आपकी शंकाभी नहीं बनेगी. यथा "ज्ञेयानुसारी ज्ञान नहीं", "ज्ञानानुसारी ज्ञेय हे". यह आपका अनुभव, कथन वा मंतव्य गलत होजायगा. क्योंकि यह ज्ञेयानुसारी ज्ञान नहीं ठेरा. ओर ज्ञानानुसारी हे याने कल्पनामात्र ठेरा. तद्वत् आपके अनुमान संबंधमें लगालीजिये.

(शं.) बाह्य पदार्थोंके मूलका स्वरुप इंद्रिय वा बुद्धि नहीं जानसकती; अतः शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध, आकृति, विस्तार, वजन, देश, काल, गति-यह उन मूलके प्रत्यय हें, एसा केसे मानसकें? किंवा शब्दादि अंतर (मगज, चित्त वा मन) के प्रत्यय हें ओर आकृत्यादि बाह्यके प्रत्यय हें, अथवा उभय अंतर (चित्त) के प्रत्यय हें जो बाह्य अज्ञाततत्वके संबंधसे होते हें, एसा क्यों न मानाजाय? ओर जो माना तो ज्ञेयानुसारी ज्ञान न ठेरेगा.

(उ.) उक्त सब प्रत्यय बाह्यके सिद्ध होते हैं. ओर इंद्रिय, मगज, मनकेसाथ संबंध पानेपर मन तदाकार हुये ज्ञानप्रकाशमें ग्रहण होते हैं. एसा हे.

जो सब अंदर (शरीरके अंदर) मगज वा मनकेही हों तो बिंदूकसे आदमी नहीं मरना चाहिये, पत्थर पकडके मारते हैं उससे खूनका दर्शन न होना चाहिये. हाथ, बाह्यमें न मालूम होना चाहिये, हाथ द्वारा येथेच्छा लेख वा चित्र होके न जान पडना चाहिये, वृक्षपर न चढसकें, मकान न बांधसकें. जो केवल बाहिरही हों तो शरीरमेंसे वृत्ति वगेरे बाहिर न जानेसे उनका ज्ञान न होना चाहिये. गुरुत्वका भान न होना चाहिये. देश–काल जो बाह्य न हों ओर चित्तकेही प्रत्यय हों तो अंधेको हाथ ओर मूंहका अंतर हे, एसा भान न होना चाहिये. अंधा पेटीमें कील गाडे तो आगे न चलनी चाहिये. परंतु उक्त तमाम कार्य होते तो हैं. यद्यपि अंधेको देश–काल बाह्यांतरका विशेषज्ञान नहीं होता, तथापि व्यवहारकी प्रेक्टिस हुये सामान्य (अटकली) ज्ञान तो होहीजाता हे. ओर चक्षुवालेको कुछ विशेषज्ञान होना स्पष्ट हे. अंधेको न होना ओर चक्षुवालेको होना यही इस बातको सिद्ध करदेता हे कि देश बाह्य प्रत्यय हे चित्तका रचित नहीं हे. तद्वत् अंधे ओर सब सचक्षुको गतिकारक वस्तुका व्यवहार करावें तो आगे पीछे, पहेले, पीछेका ज्ञान याने कालका भान होहीगा. हां, देश–काल यह दो नाम वे संस्कारके विना नहीं रखसकते. बालककी वृत्तिपर ध्यान दीजिये, उसको देश--काल ग्रहण हुयेभी वोह उनकी नाम संज्ञाका कल्पन वा उनका व्यवहार नहीं करसकता. (यहां स्वरुपाप्रवेश याने भेद सूत्र (३८२) के विवेचनका अंतिम भागभी यादमें लेना चाहिये).

स्वप्नसृष्टिमें संस्कारी जीववृत्तिके वश प्रत्यय (शब्दादि नामरुपाकार) होते हैं, उस आकार बाह्यमें (ईथर–मायामें) प्रत्यय होते हैं ओर वे स्वप्नवाले शरीरसे बाह्य, एसे जान पडते हैं. इसीका नाम दृष्टिसृष्टिवाद हे. जो उन बाह्यको मगजके सेंटर वा संस्कारीमनकाही परिणाम अर्थात भावप्रत्ययवाद मानें तोभी वे बाह्यांतरभेद ओर देश–कालवाले होते हैं. इसलियेभी जिसमें ग्रहण होते हैं उस (ज्ञाता) से ओर जिनद्वारा ग्रहण होते हैं उनसे इतरही ठेरते हैं ओर उसके अनुसार ज्ञान होता हे.

जाग्रतमेंभी स्थूलदृष्टिसे 'स्वप्नवत्' एसा कहसकते हैं अर्थात बाह्य पदार्थोंका संबंध होनेपर तदाकार (प्रत्ययाकार) मन होता हे तब वे ज्ञान प्रकाशमें

ग्रहण होते हैं. इसका नाम सृष्टिदृष्टिवाद हे. अंतर इतना हे के स्वप्नमें संस्कारी-के संस्कार अनुसार नकल (फोटोवत्) होके पुनः दृष्टामें ग्रहण होते हैं. ओर जाग्रतमें बाह्यके असलकी नकल मन रखता हे तब ग्रहण होते हैं.

जो ओरभी सूक्ष्म विचार करें तो प्रत्यय (दृश्य) साधन (जिस द्वारा ग्रहण हों) यह उभय समकाल होते हैं, परंतु वे बाह्यांतर ओर देश-कालके भेद सहित-ही होते हैं. इनको जुदा न करसकनेसे ओर उनका मूल उपादान न जानसकनेसे तथा उसका स्थूलरुप, गम्य ओर सूक्ष्म, अगम्य होनेसे उसके मूल माया (प्रकृति) को अनिर्वचनीय कहाजाता हे. उसके मूलकी तकरारको छोडके व्यवहारमें तो बाह्यांतरका भेद ओर पदार्थोंका भेद तथा तमाम पदार्थ देशकाल सहितही होते हैं एसा मान्नाही पडेगा. इस रीतिसे देश, काल ओर वस्तु, बाह्य ओर अंतरमेंभी सिद्ध होते हैं, इसलिये बाह्यमें जो ज्ञेय हे उसानुसारी ज्ञान होना स्पष्ट होता हे.[१] ॥ ४५१ से ४५५ तक ॥

सत् एक ओर स्वतः सिद्धही ॥ ४५६ (सत्) ॥ **अन्यथा न होनेसे** ॥ ४५७ ॥ **झूठनानाभी** ॥ ४५८ (असत्य) ॥ **कल्पित होनेसे** ॥ ४५९ ॥ **मिथ्याका विषय सत्य नहीं** ॥ ४६० (साधक) ॥

अर्थ.—सत्, स्वरुपसे एक रुपही होता हे ओर अपनी सिद्धिमें स्वतः सिद्ध होता हे ॥ ४५६ ॥ क्योंकि वोह पूर्वसे अन्यथा नहीं होता ॥ ४५७ ॥ जेसे के ईश्वर, जीव, माया वा प्रकृतिका यदि कोई प्रकारका मुख्य स्वरुप हे तो जैसा हे वैसा—सत् एक रुपही हे. नहींके पक्षकार जेसे जुदाजुदा कहते हैं वेसा हे. यदि अन्यथा हों तो या तो वे तत्वरुप नहीं वा तो वस्तुरुप नहीं होंगे. शब्द वा गरमी कोई तत्व हैं तो तत्वरुपसे सत् हैं. यदि किसीकी अवस्थारुप हैं तो अवस्थारुपसे नाशवान हैं यह सत् हे. परंतु कोई उनको तत्त्व, कोई अतत्व मानता हे एसा नहीं हे. अबाधित अर्थका नाम सत्यार्थ हे. बाधितका नाम सत्यार्थ नहीं हे. सतका सं-योग ओर वियोग सत्यार्थ हे. आश्चर्य हे कि जीव निजरुपसे अत्यंत समीप हे ओर जेसा सत्रुप हे वेसा एकरुप हे, तोभी कोई उसको (निजरुपको) अणु, कोई विभु, कोई मध्यम, कोई जड, कोई चेतन, कोई केसा ओर कोई केसा मान रहा हे, तद्वत् नित्य उपयोगी शब्दादिके स्वरुपमें मतभेद होरहे हैं.

---

[१] यह विषय बारीक हे. यहां तो नियमप्रसंगमें जितना उपयोगी जाना उतना लिखा हे. इसकी अनिर्वचनीयताका प्रसंग अ. ३ ओर ४ में वांचोगे.

व्यावहारिक सत्का यह आशय हे.—बालक जेसा देखता, मानता ओर सुनता हे वेसाही कहता हे. विद्वान, बुद्धिवान, आप्त जेसा देखता, सुनता, मानता, ओर जानता हे वेसाही कहता हे. अर्थात कुदरत सत्पर हे इसी सत्को शुद्ध नीतिं कहते हें. यह स्वयं सिद्ध हे. यहां कुदरतमें जेसा हो वेसाही हम जानते हों इस कल्पनाकी आवश्यकता नहीं हे ॥ ४५७ ॥

झूट अनेक रुपवालीभी होती हें ॥ ४५८ ॥ क्योंकि अर्थशून्य विकल्पमात्र अर्थात बनावटी (कल्पित) होती हें ॥४५९॥ बाधितको असत् कहते हें. व्यवहारमें उसका नाम झूठ हे. असत् स्वरुपतः कोई वस्तु नहीं होती. यथा जीव स्वरुपतः चेतन हो ओर हम जड कहें तो असत् कहा याने अर्थशून्य विकल्पमात्र ठेरा. क ने रिशवत ली वा चोरी की ओर फेर कहे कि नहीं ली वा नहीं की. यह असत् (अर्थशून्य-विकल्पमात्र) हुवा. जहां असत्से स्वार्थ सिद्ध हुवा हो वहांभी असत्से नहीं हुवा हे; क्योंकि असत् स्वतः वस्तुही नहीं हे. किंतु इस बनावटी विकल्पने सत्की गद्दीपर बेठके काम किया हे. एकही तत्वमें नाना कल्पना मंतव्य, यह नाना झूठ हें. परंतु जान बुझके नीयत (भावना) पूर्वक नहीं हें; अतः उनको असत् नहीं कहाजासकता. इनको वही असत् कहसकता हे कि जो सत् स्वरुपकी परिक्षा वा निरीक्षा कराके अनुभव करादे. अन्यको असत् कहनेका अधिकार नहीं हे. व्यवहारमें एक असत्के वास्ते नाना असत् करनी पडती हें, तोभी परिक्षा होनेपर वोह उघडजाती हें. उससे स्पष्ट होजाता हे के झूठ नानाभी होती हें ॥४५९॥ बाधितज्ञानको मिथ्याज्ञान ओर बाधित अर्थको मिथ्यार्थ कहते हें. जेसे रज्जु-सर्प प्रसंगमें सर्प, मिथ्या ओर उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान हे. अर्थात परिक्षाकालमें बाधित होजाते हें. (सूत्रार्थ) जो मिथ्यापदका विषय (वाच्य) हे उसका विषय सत्य नहीं होता अर्थात मिथ्या, सत्यको प्रतिपादन नहीं करसकता वा विषय नहीं करसकता (नहीं जान सकता) ॥ ४६० ॥ स्थाणु पुरुष, स्थाणुकी सिद्धि वा हम जान्नेवालेको लूट नहीं सकता. 'ब्रह्मसे इतर सब मिथ्या' यह बात याने ब्रह्मकी सिद्धि ओर मिथ्यात्वकी सिद्धिको जो ब्रह्मसे इतर (मिथ्या) हो वोह सिद्ध नहीं करसकता वा उसे नहीं जानसकता. दत्तद्रव्यको अदत्त कहना, मान्ना मिथ्या हे. यह मिथ्यात्व दत्तपनेकी सिद्धि नहीं करसकता ॥ ४६० ॥

किरणोंकी गति सीधीही ॥ ४६१ (किरण) ॥ **परीक्षासे** ॥ ४६२ ॥ **स्पर्शीवत्रूप** ॥४६३(उपाकृति)॥ **उसके विचित्र कार्य प्रसिद्ध** ॥४६४(विचित्र)॥

अर्थ.—किरणोंकी गति सीधीही होती हे अर्थात समसूत्र (समकूना, काटकूना, कायमुजजाविया करके) चलती हें, गोलाकार होके वा बांकी टेढी होके वे नहीं चलती, एसा स्वाभाविक नियम हे (एसी उनकी कुदरती योग्यता हे)॥४६१॥ यह नियम वर्तमानके साईंस (पदार्थविज्ञान) वेताओंने परिक्षासे सिद्ध किया हे ॥ ४६२ ॥ रोशनी ओर सूर्यकी किरणें प्रसिद्ध हें. किरणें उपरोक्त (सू. २६) शेषा—हिरण्यगर्भ-ईथरका अमुक भाग हे.' प्रतिबिंब वा आभासकी तथा अध्यासके विषयकी यह उपादान होती हें. केमेरामें फोटो होनेकी निमित्तकारण यही होती हें. यह सीधी चलती हें यहबात देशीय परिक्षासेभी सिद्ध हे. यथा कटोरीमें पेसा डालें, इतनी दूर ले जाके रखें के पेसा न मालूम हो, फेर कटोरीमें पानी डालें तो पेसा गोचर होगा. कारणके पहेले पेसेकी किरणें बांक पडनेसे आंखमें नहीं आसकतीथीं. पानी ओर आंखकी सीधी लेन मिली तो आंखमें प्रवेश होनेसे पैसा दीखने लगा. इससे समकून हुये सीधी होके पडनेका नियम सिद्ध होगया ॥ किरणें स्वच्छ पदार्थकी तरफ जलदी दोडती हें १, जबतक किसीके साथ न टकरावें वहांतक नहीं जान पडती २, वे इंद्रियगोचर नहीं होती परंतु कार्य पुंजरुपमें जान पडती हें ३, तीनोंकी परिक्षामें प्रतिबिंब उदाहरण हे. ॥४६२॥ जिसको वे स्पर्श करें वेसाही उनका आकार बनजाता हे, एसी उनमें योग्यता हे ॥ ४६३ ॥ जेसा के केमेरेकी प्लेटपर फोटो देखते हें. मुखपर कालि बिंदु रखें तो प्रतिबिंबमेंभी वेसाही जानपडेगा. अर्थात मगज वा मनमें विषय (ईम्प्रेशन) होगा ॥ ४६३ ॥ किरणोंके विचित्र कार्य जगतमें प्रसिद्ध हें ॥४६४॥ यथा—एक मोटे ओर कोरदार काचमें किरणोंका धसारा होता हे. एक काचद्वारा अंधेरेमें रखे हुये काच विषे फोटो जानपडते हें. आडमें आये हुये पदार्थोंकी नकल सामने करदेती हें. दो बडे मोटे काच आमने सामने हों तो पीठके दर्शन कराती हें. गुप्त पदार्थोंके फोटो वा अन्य ग्रहमें रहे हुये पदार्थोंकी नकल लेके अंतरिक्षमें फिरती हें, उससे दूरस्थ पदार्थोंका भान होजाता हे. इ. ओरभी सू. ४६६ देखो. काचमें मुखका प्रतिबिंब हे. अब मुखपर काली, लाल, पीत, वा श्वेत बिंदु रखें तो किरणेंभी

' किरणोंका स्वरुप क्या ओर यह क्या हें, इसका निर्णय अभीतक नहीं हुवा हे. इसको अनिर्वचनीयही माना गया हे. जिसने प्रकाशविद्याका अभ्यास किया हे उसको इसकी अद्भुतताका भान होजाता हे. माया (प्रकृति) के स्वरुप निर्णयमें स्वप्न यह उसका पुत्र ओर किरणें उसकी पौत्री हें.

वेसाहीरुप रखके अथडाके लोटेंगी तब जान पडेंगी. इसप्रकार स्पर्शवित् विरुद्ध-रुप बनजाना केसे होसकता हे? रंगके समुद्रमेंसे रंग मिलता होगा. कुछभी हो, परंतु इसके स्वरुप ओर योग्यताका अभीतक निश्चय नहीं हुवा हे; अनिर्वचनीय पदार्थ माना गया हे; अतः उत्तरसे उपेक्षा हे ॥ ४६४ ॥

निरुपमें प्रतिबिंब नहींही ॥ ४६५ (निराभास) ॥ **सामग्रीसे सबका प्रतिबिंब** ॥ ४६६ (आभास) ॥ **स्वप्नके निरीक्षणसे** ॥ ४६७ ॥ **स्थितिमेंभी क्षणिक** ॥ ४६८ (अस्थिर) ॥

बिंब (मुख) की किरणें मुखाकार होके काचमें टकराके उलटे पगें उलटें, एसी स्थितिको प्रतिबिंब कहते हें (मानो किरणोंका मुख काच तरफ ओर पीठ-चक्षु तरफ हों). जो किरणें पीछी उलटे पगें होने विना जान पडें उसे आभास कहते हें (मानो किरणोंका मुख आंखकी तरफ हो). यथा लालवस्त्रकी किरणें श्वेतकाचमेंसे पार होके चक्षुमें आती हें; यह आभास हे. इसप्रकार काचद्वारा फोटो दर फोटो होते हें वहां विवेक हे.

सूत्रार्थ—निराकार पदार्थमें निराकारका वा साकारका प्रतिबिंब नहींही होता हे ॥ ४६५ ॥ क्योंकि अमूर्त्तको किरणें स्पर्श नहीं करसकती ओर न उसके साथ टकरासकती हें. (शं.) आकाशका काच वा पानीमें प्रतिबिंब होता हे याने दूरता, गंभीरता जनाती हे. (उ.) किरणोंका आकाशके साथ टकराना न होनेसे काचवत् वा चक्षुवत् वा जलवत् आकाशमें प्रतिबिंब वा आभास नहीं होता. याने जिसके साथ टकरावे उसीमें होता हे. दीपककी रोशनी ओर चंद्रका प्रकाश यह आकाशमें हें तोभी विषय नहीं होते परंतु जहां टकरावेंगे वहांही जानपडेंगे. आकाशका प्रतिबिंब होना दूसरी बात हे. परंतु निराकार-चेतन पदार्थका आभास वा प्रतिबिंब नहीं होसकता, क्योंकि गोचरकाही प्रतिबिंब होसकता हे; अगोचरका नहीं. (विशेष मूलमें) ॥ अधिकरण भावसे आकाशमें वा सर्वाधारमें सब हें याने प्रतिबिंबभी उनमें हे. तथापि जेसे क्रियाभी उनमें हे परंतु वे स्वयंगति रहित हें, एसेही प्रतिबिंब होनेका भाव लेना ॥ ४६५ ॥

यदि सामग्री हो तो सब गोचरोंका प्रतिबिंब होसकता हे ॥ ४६६ ॥ क्योंकि स्वप्नसृष्टिके पदार्थोंका वारीक शोध करनेसे यह बात सिद्ध हे. ॥ ४६७) स्वप्नमें शब्दादि पंच विषय, आकार, दुःख, सुख, देशकालादिकी सूक्ष्म नकलें (आभास वा फोटो) हें अर्थात चेतनसे इतर तमाम प्रकारके परिणाम शेषा धरलेती हे

(अ. ३ । ४ में वांचोगे). जाग्रतवत् स्वप्नमें सब विषय सर्वको अनुभवसिद्ध हें. जेसे किरणें केवल आकार ओर रंगकीही नकल रखलेती हें (अन्यकी नहीं), वेसे शेषामें एसी योग्यता हे कि यथासंस्कार सब विषयोंका रुप रखलेती हे. प्रतिबिंब वा आभास, बिंबाधीन हे; शेषाके कार्य बिंबाधीन नहीं, किंतु संस्कारके वा अन्य फोर्सके आधीन हें. प्रतिबिंब ओर आभास, चक्षुके गोचर होते हें; शेषाके स्वप्नवाले कार्य मनोवृत्ति वा साक्षीके विषय होते हें; इतना उभयमें अंतर हे. परंतु जो हिरण्यगर्भका उपयोग मनुष्य जानसकेगा तो किरण समान सब विषयोंकी नकल होसकेगी, एसा अनुमान होता हे. (शं) प्रतिबिंब वा जो फोटो करनेका मेटर अर्थात किरणोंका प्रतिबिंब नहीं होसकता, इसलिये सूत्रका कथन अव्याप्ति दोषवाला हे. (उ.) मेटरका मेटर वा मूलका मूल नहीं होता अर्थात किरणोंके फोटो वा प्रतिबिंब होनेकी सामग्री नहीं हे, इसलिये उसका प्रतिबिंब नहीं होता. इसलिये अव्याप्ति दोष नहीं आता क्योंकि सूत्रमें सामग्री पदका प्रयोग हे. ॥ ४६७ ॥

हरकोई प्रकारका प्रतिबिंब वा आभास, उसका बिंब अस्थिर हो वा थिर हो ओर उसका अधिकरण स्थिर हो वा अस्थिर हो, परंतु दीपककी लोके समान क्षणिक होता हे याने क्षण क्षणमें बदलता रहता हे, एसा किरणोंकी गतिका प्रभाव हे ॥ ४६८ ॥ काच स्थिर ओर चंद्र थिर हे परंतु चंद्रका फोटो क्षणिक हे. आकाश थिर ओर काचभी थिर हे परंतु उसमें आकाशका फोटो क्षणिक हे. काच चलता हे.ओर आकाश थिर हे परंतु उसमें आकाश, तारागणका फोटो क्षणिक हे. इसका सबूत यह हे कि केमेरेका काच कलसे फेरते जाओ तो एकही प्रकारके असंख्य फोटो होते जावेंगे. काच ओर बिंबके बीचमें जितने जितने काच रखते जाओगे उतने उतने फोटो होते जावेंगे. एक काचमें फोटो डालो उसके सामने जितने काच रखोगे उन सबमें फोटो होजायँगे. इ. सारांश किरण एसा अनिर्वचनीय पदार्थ हे कि उससे विचित्र कार्य होते हें ओर वे क्षणिक हें, याने अंतरिक्षमें उसकी लहरोंका प्रवाह चलता रहता हे ॥ ४६८ ॥

उपरोक्त सृष्टि नियमोंको संक्षेपमें दरसाया हे. अनेक शंका, समाधान, विकल्प, तर्क, दृष्टांत, ओर उदाहरण सहित विस्तार, मूल लिखित मसव्वदः (ड्राफ्ट-असंशोधितलेख) में हे. ॥ १२७ से ४६८ तक ॥

सृष्टिनियमप्रकरण समाप्त.

जीवनियमप्रकरण ४.

(सृष्टिबद्ध-मंडलबद्ध)

संगति.-पदार्थ निर्णयमें जेसे सृष्टिके नियमोंकी अपेक्षा हे वेसे जीवसंबंधी नियमोंकीभी अपेक्षा हे. यद्यपि सृष्टिनियम हुये उनकी अपेक्षा नहीं, क्योंकि जीव संबंधी नियम उसके अंतरगत ओर कार्यरुप हें तथापि जीव संबंधी कितनेक एसे नियम हें कि जिनका संबंध सृष्टिनियमके साथ हे.-यथा प्रमाण प्रसंग. ओर कितनेक एसे हें कि जो जीव वा जीव सोसाईटीके साथ संबंध रखते हें.-यथा अधिकार ओर स्थिति. इन उभयकी सृष्टिनियमके उपयोगमें ओर पदार्थनिर्णयमें जरुरत होती हे; इसलिये उनका आरंभ करते हें. तथाहि सब ज्ञान, देशकाल ओर बुद्धिकी अपेक्षा रखते हें, बुद्धिका संबंध जीवके साथ हे, इसलिये नियम बुद्धिग्राह्य होनेसे जीवके नियमोंका कथन हे. जो नियम जीव सोसाईटीने व्यवस्था अर्थ नियत किये हें वे जीव सोसाईटी संबद्ध नियम कहाते हें. यही उनका लक्षण हे. जो नियम-धोरण कुदरत वश ओर जीव अपेक्षासे नियत हुये हें वे सृष्टिसंबद्ध जीवनियम हें. यही उनका लक्षण हे. यथा-आज्ञा सूत्र ५२५ जीव सोसाईटीसंबंधि नियमका उदाहरण हे ओर प्रमाणनियम यह सृष्टिसंबंधिनियमका उदाहरण हे. इनका कहां ओर केसे उपयोग लेना यह उनके संबंधसे जान लिया जाता हे. ओर कुछ प्रकार अ. ३ में वांचोगे. संक्षेपमें उक्त हेतुको लेके उपयोगी जीवनियमोंका आगे कथन हे.--

जीवमात्र अज्ञ नहीं अदर्शनसे ॥ ४६९ (अल्पज्ञ) ॥ **सर्वज्ञ नहीं परिच्छिन्न होनेसे** ॥ ४७० ॥ **विशेषज्ञान अपेक्षासे** ॥ ४७१ ॥ (विशेष) ॥ **व्याप्तिसे** ॥ ४७२ ॥ **तिसके योग्यको उपयोगी** ॥ ४७३ (उपयुक्त) ॥

अर्थ.— देव, योगी, वा अयोगी हरकोई लोकमान्य रागादि लिंगवान याने जीवमात्र, सर्वथा ज्ञानशून्य (पाषाणवत अज्ञ) नहीं होता; क्योंकि एसा देखनेमें नहीं आता ओर न उसकी व्याप्ति हे किंतु जीवमात्र (पशु, पक्षी, तिर्यक, मनुष्य) में कुछ न कुछ ज्ञान होता हे ॥ ४६९ ॥ ओर जीवमात्र (देव योगी वगेरे) सर्वथा सर्वज्ञ (भूत, वर्तमान ओर भविष्यका ज्ञाता) नहीं होता क्योंकि जीव परिच्छिन्न हे, परिच्छिन्नको अपनेसे अधिक अपरिच्छिन्न वा दूरस्थ परोक्षका साक्षात ज्ञान नहीं होसकता ॥ ४७० ॥

वि.—खान, पान, विहार, मैथुन, निद्रा, भय वा बचाव, इनका ज्ञान होना लोकमें सामान्यज्ञान कहता हे. वोह मच्छर, मक्खी, जूं, खटमल, गाय, बेल, तोता, सर्प, कीडे, मकोडे ओर मनुष्यके बालकोंमेंभी होता हे. यहां तक कि सूक्ष्मयंत्रसे देखने योग्य एमीबामेंभी होता हे. यह सामान्यज्ञानभी परंपराकी अपेक्षासे होता हे. नहींके स्वाभाविक वा अनादि, सबमें सामान्यज्ञान हे. इसके उदाहरणकी अपेक्षा नहीं क्योंकि जगतमें हरकोई जानता हे. कीडियें, अमुकको खाती हें अमुकको नहीं, तिनके वा पानीसे बचती हें, मैथुन करके अंडे देती हें, रहनेको जवे बनाती हें, मुरदोंको गाडती हैं, मधुमाखीके प्रबंध प्रसिद्ध हें. चिडियाको जब गर्भ रहे तब वोह ओर उसको गर्भ देनेवाला (पति) दोनों मिलके किसी आडवाली रक्षित जघेमें घूंसला बनाते हें ताके अंडे सहीसलामत रहें ओर बच्चे निकलने पीछे पलसकें. यह ज्ञान उनको किसीने नहीं सिखाया. किंतु पूर्वपूर्वसे बहुतकालमें उन जीवोंको प्राप्त हुवा हो एसा निश्चय होता हे. इत्यादि-अनादि एसे सामान्यज्ञान जान पडते हें कि जिनद्वारा पूर्वजन्म सिद्ध होजाता हे ओर प्रकृतिवाद वा इल्युशन थीयरी वा अपुनर्जन्मवादि उसका उत्तर नहीं देसकते. अ. १ विषे अचिद्विकासवादमेंभी कितनेक दाखले दियेगये हें.

जीव अर्थात क्या ओर जीव किसे कहना, वोह अणु, विभु वा मध्यम, सादि वा अनादि, चेतन वा जड, इसके निर्णयका यहां प्रसंग नहीं हे; अतः यहां इतनाही लिखना बस हे कि जिसको राग, द्वेष, इच्छा, दुःख, सुख, संस्कार, तथा ज्ञान होता हो ओर जिसमें प्रयत्न हो उसका नाम जीव हे. (वनस्पतिओंमेंभी सिद्ध हुवा हे). उपरोक्त सामान्यज्ञान विनाका कोई जीव देखनेमें नहीं आता ओर आजतक किसीने नहीं देखा ॥ ४६९ ॥ यद्यपि भाविकग्रंथ वा भाविक अनुयायी-अवतारी, योगी, पेगंबर, ईशके पुत्र ओर देवयोनीके जीवोंको सर्वज्ञ मानते हें, जेसे कि उनके वे आचार्य मानेजाते हें; तथापि वोह रोचक पद्धति हे, एसी पद्धतिके विना उनकी संप्रदाय न चले; इसलिये मानेजाते हें. क्योंकि जो किसी जीवकोभी सर्वज्ञ मानें तो असर्वज्ञाधिकरणवाले दोष आवेंगे. ओर कहवाते सर्वज्ञोंके मतमें जीवके स्वरुप, पुनर्जन्म, मोक्ष तथा ईश्वरके स्वरुपसंबंधमें मतभेद हे, ओर वेही एक दूसरोंको असर्वज्ञभी बताते हें. इत्यादि कारणोंसे कहवाते जीव (शरीरधारी) सर्वज्ञ नहीं. तथा वे परिच्छिन्न हें; अतः सर्वज्ञ नहीं होसकते ॥४७०॥

(सू. ४७१ की भूमिका)—उपरोक्त अहारादिको उपर सामान्यज्ञान कहा

हे, तथापि विचारोगे तो वोहभी विशेषज्ञान हे, स्वाभाविक नहीं हे. यथा मैथुन कहां, कब, किस स्थानमें और किसके साथ करना, अमुक खाना, अमुक न खाना इत्यादि स्वाभाविक ज्ञान नहीं हे किंतु कालांतरमें अपेक्षासे (शनै शनै वा किसीद्वारा) संपादित होता हे. तथापि लोकमें इसको स्वाभाविकज्ञान मान रखा हे, क्योंकि पशुपक्षिओंमेंभी विना सिखाये स्वतः होजाता हे; इसलिये सूत्रमें विशेषज्ञान यह पद दिया हे. अर्थात स्वाभाविकज्ञानसे इतर विशेषज्ञान हे. यथा पद, पदार्थ, इन उयका संबंध–इन तीनोंका ज्ञान वा भेदग्रहणादि (भेदग्रहण, पूर्व उत्तरकरण, तोलन, योजन, वर्गीकरण, निषेधकरण, विवेचन, नियमन, ईश्वरादिका अनुमानकरण) यह विशेषज्ञान कहाता हे. उसका सूत्रमें ग्रहण हे.

सूत्रार्थ—जीवको जितना विशेषज्ञान होता हे सो परंपराकी अपेक्षासे होता हे, अपने आपही एक दम होता हो वा अनादिसे उसमें हो, एसा नहीं हे ॥४७१॥ क्योंकि एसी व्याप्ति देखते आये हें ॥ ४७२ ॥

वि.–जेसे के बालक जन्मने पीछे सृष्टिदर्शनसे, फोर्ससे, ईम्प्रेशनसे, पशुपक्षिओं ओर वृक्षोंके साथ संबंध पानेसे ओर दूसरे मनुष्य (मातापिता, गुरु आदि) से सीखते हें, बेसेही पूर्वपूर्वमें होना चाहिये ओर उत्तरउत्तरमें एसाही होगा, एसा अनुमान करसकते हें. इस विषयमें जडवाद ओर चेतनवादकी बडी भारी तकरार हे. परंतु ईश्वर, जीव, सृष्टिउत्पत्यादिके निर्णय हुये विना इस विषयका निर्णय नहीं होसकता. तथापि सूत्रोक्तनियम उभय संमत हे जडवादि कहता हे कि– सृष्टिके आरंभ पीछे जब मनुष्य–सृष्टि होने लगी तब उस पीछे कुदरत, ईम्प्रेशन पशु, पक्षी, झाड वगेरे द्वारा शनैशनै ज्ञान ओर भाषाकी प्राप्ति हुई हे, वे वंसमें उतरते आये ओर नवीन होते गये (किसी अगम्य शक्तिद्वारा भाषा वा ज्ञान नहीं मिला हे), इसप्रकार विशेषज्ञान परकी अपेक्षासे हुवा हे. चेतनवादि (जीव, शरीरसे भिन्न चेतन ...ान्नेवाले) वेसे नहीं मानते, किंतु इस विषे उनमें अनेक पक्ष हें.–(१) ... हे, इसका आरंभ वा नाश नहीं हे, इसमें मनुष्यसृष्टिका अ... इसीप्रकार विशेषज्ञानका प्रवाह हे, पूर्वपूर्वसे उत्तरउत्तरमें एक ...ते विशेषज्ञान प्राप्त होता आया हे. (२) सृष्टि हमेशेसे हे ...ती, अर्थ बोधक पदभी नित्य ओर व्यापक हें सो पूर्वपूर्वसे

गुप्तस्थान परोंमें ढंका हुवा होता हे, तोभी वे विना सिखाये

सुनते आते हैं उनसे विशेष ज्ञान होता हे. जो सुनते. सुनाते आये हैं उसे श्रुति कहते हैं. (३) ईश्वरने अभावसे सृष्टि बनाई, जवान पुरुष स्त्री पेदा किये; उनको विशेषज्ञान सिखाया, सो संतानमें परंपरासे चला आ रहा हे. (४) ईश्वरने सृष्टिके आरंभकालमें जीवोंके पूर्वकर्म अनुसार उनके शरीर बनाये उनमेंसे ब्रह्माको वेदज्ञान (विशेषज्ञान) सिखाया. वा योग्य चार मनुष्योंके हृदयमें मनुष्योपयोगी विशेषज्ञान (वेदज्ञान) प्रेरा. उससे परंपरा चली. (५) वर्तमानसृष्टिके आरंभमें ईश्वरकी शक्तिद्वारा यथाकर्म जीवोंको शरीर मिले, उनमें एसे संस्कारी जीवभी थे के उनमें पूर्वशिक्षित विशेषज्ञानके संस्कार उपस्थित थे, उन्होंने पद बनाके पदार्थ ओर पदपदार्थका संबंध याने विशेषज्ञान दूसरोंको सिखाया, एसे परंपरा चली. (६) इ.॥ इन सब पक्षोंमें विशेषज्ञानकी प्राप्ति अपेक्षासेही मानी हे. स्वयं नहीं. यही सूत्रका आशय हे. इनमेंसे कोनसी बात ठीक हे, इसका ठीकठीक पता अभीतक नहीं लगा हे; क्योंकि यह ऐतिहासिक बात हे ओर सृष्टिका पूरा इतिहास मिलना अशक्य हे. (सू. ६९३ देखो). ज्ञान अर्थात क्या, जीव अर्थात क्या, सृष्टिका आरंभ वा नहीं, इनके निर्णय होनेपर इस विषयका निर्णय होसकता हे. (बस. में विस्तार हे)॥ वा बीसपच्चीस बालक-बालकी जंगलमें रखे जावें, ओर उनके साथ संबंध न रखा जावे एसे उनकी ३ पीढी तककी परिक्षा कीजावे तो इसविषयका निर्णय होसकता हे ॥ ४७२ ॥

विशेषज्ञान उसके योग्यको उपयोगी होता हे ॥ ४७३ ॥ यथा यदि शूकको पद, पदार्थ ओर उनका संबंध सिखावें तो उसको कंठस्थ करने सिवाय उपयोगी नहीं होता. परंतु मनुष्यमें उसकी योग्यता हे इसलिये उसको उसका सीखना उपयोगी हे, यह स्पष्टही हे ॥ ४७३ ॥ जीवको जितने ज्ञान होते हैं वे सब अपेक्षित हैं, याने कोई न कोई अपेक्षासे होते हैं. जीवमें ज्ञान-गुण उत्पन्न होना मानें वा जीववृत्तिका परिणाम विशेषज्ञान, एसा मानें किंवा मगजका ईम्प्रेशन मानें, निदान कुछभी मानें; परंतु जीवका ज्ञान अपेक्षावाला होता हे, यही सिद्ध होगा; इसलिये उसके योग्यको उपयोगी होता हे. (यहां चित्ज्ञान–प्रमाचेतन–स्वयंप्रकाशरुप ज्ञानका प्रसंग नहीं हे क्योंकि वोह निरपेक्ष होता हे ॥ ४७३ ॥

स्वाभाविक क्षणिकमें स्मृति स्थिति नहीं ॥ ४७४ (क्षणिक) ॥ **तीन क्षण विन न होनेसे** ॥ ४७५ ॥ **ओर स्मृतिवानमें क्षणिकत्व** ॥ ४७६ (अक्षणिक) ॥

अर्थ.—दीपककी लो समान जिसका क्षणक्षणमें परिणाम बदलता हो याने जिसका क्षणिक परिणाम होना स्वभाव हो एसे (जीव) में स्मृति ओर उसकी स्थिति नहीं होती ॥ ४७४ ॥ क्योंकि स्मृतिकेलिये कमसेकम तीन क्षणकी अपेक्षा होती हे ॥ ४७५ ॥

वि.—पूर्वदृष्टके संस्कार (ईम्प्रेशन) ज्ञातामें स्थित--अभ्यासित होते हें, वे कालांतरमें स्फुरते हें ओर विषय होते हें. इस स्फुरणको स्मृति कहते हें, उसके ज्ञानको स्मृतिज्ञान कहते हें. यथा-कभी घडियाल नहीं देखी ओर देखनेमें आवे तो ज्ञाता (जीव) में उसके संस्कार होजाते हें. कालांतरमें स्फुरते हें. यथा-अमुक प्रकारकी घडीयाल देखी थी, एसी याद होती हे ओर उसयादका ज्ञान होता हे. तहां आद्यमें विषय-विषयीका संबंध, तदाकारता ओर विषयसे असंबंध यह ३ क्षण होती हें. पुनः उसका स्फुर्ण, उसका ज्ञाताके साथ संबंध (ज्ञान होना) पुनः उस स्फुर्णका अभाव एसे ३ क्षण होते हें अर्थात ३ क्षणके विना स्मृतिकी असिद्धि हे. क्षणिकवादमें एक क्षणसे इतरभाव नहीं मानते, इसलिये उसके परिणामका ज्ञान नहीं होनेसे उसका स्मृतिपरिणाम सिद्ध नहीं होता. कारणके स्मृतिरुप परिणामकालमें उसका ज्ञानपरिणाम ओर ज्ञान परिणामकालमें स्मृतिपरिणाम नहीं मानते. इसलिये क्षणिकपरिणामी जीवमें संस्कार ओर तद्‌जन्य स्मृति तथा स्मृतिज्ञानकी व्यवस्था नहीं होती. प्रथम तो कोईभी अतत्व वस्तु हो उसका क्षणिक परिणामही नहीं होसकता किंतु उसके रुपांतर होनेमें कमसेकम तीन क्षण चाहिये. यथा-सर्पका गोल लंबा परिणाम, जलका बर्फ, ओर बर्फका जलपरिणाम एक क्षणमें नहीं होता; अतः क्षणिक परिणामकीही असिद्धि हे. (शं.) दीपककी लो, प्रतिबिंब, शरीर, क्षणक्षणमें बदलते हें अतः क्षणिक हें (उ.) दीपकमें परमाणुओंका प्रवाह हे आते ओर जाते हें. पूर्ववाला उपादान नहीं होता. एसेही प्रतिबिंब ओर शरीरकी दशा हे. जो आपके क्षणिक परिणामीमें अन्य उपादानका आना ओर चलाजाना एसा हो तो उसमें स्मृति होही नहीं सकती. ओर यदि एकही मेटर कनक कुंडल, वींटी समान वा सर्प लंब-गोल समानपरिणामी हे तो सावयव हुवा, उसके परिणाम बदलनेमें ३ क्षण होनीही चाहिये. इस रीतिसे एकका क्षणिकपरिणाम होनाही नहीं बनता ॥ ४७५ ॥

ओर जिसमें स्मृति वा जिसका स्मृतिपरिणाम होता हे उसमें स्वाभाविक क्षणिकत्व नहीं होसकता, यह उक्त सूत्रकी अर्थापातिसे स्पष्ट होजाता हे ॥४७६॥ क्योंकि पूर्वदृष्टका संस्कार लेना, फुरना, ज्ञान होना याने स्मृतिकी सिद्धि होना

इतने कार्य उसमें क्षणिकत्वका अभाव दरसाते हें. अर्थात परिणामी हे. परंतु क्षणिकपरिणामी नहीं, एसा सिद्ध होजाता हे. (शं.) मगज क्षणिक हे, बदलता रहता हे तोभी स्मृति होती हे क्योंकि जानेवाले परमाणु अपनी संतान (संस्कार) छोडजाते हें. एसेही क्षणिकविज्ञानपक्षमें मानलो. (उ.) क्षणिकविज्ञानपक्षमें रुपांतर होना माना हे, अन्य नवीन आके मिलते हों एसा नहीं मानते. मगजके पक्षवाले मगजको स्थिर होनाभी ओर ईम्प्रेशन ग्रहण होना मानते हें; इसलिये विषम दृष्टांत हे. जो पूर्व परिणामको उतर संतानका जनक मानें तोभी ३ क्षणके विना न होगा. बात यह हे कि स्मृति यह शरीर, मगजसे भिन्न जो चेतनयुक्त मनस हे उसका परिणाम हे ओर वोह क्षणिक नहीं हे; अतः ज्ञान, अनुभव, संस्कार, स्मृति ओर प्रत्यभिज्ञा होना बनता हे ॥ ४७६ ॥

स्वअज्ञात सर्वको अज्ञात एसा नियम नहीं ॥ ४७७ (अज्ञ) ॥ **वृत्ति बाह्यागमन वत्** ॥ ४७८ ॥ **प्रमात्वके अनिश्चय ओर अप्रमात्वके निश्चयसे प्रवृत्ति नहीं** ॥ ४७९ (अप्रवर्त्तक) ॥ **सुज्ञोंके व्यवहारमें दर्शनसे** ॥ ४८० ॥

अर्थ.—जो अपनेको (अमुक जीवको) अज्ञात हो वोह विषय वा पदार्थ अन्य सब जीवोंकोभी अज्ञात हे वा हो, एसा नियम नहीं हे ॥ ४७७ ॥ जेसे के चक्षुकी वृत्ति बाह्य नहीं जाती किंतु रुप, रंग, आकारकी किरणें चक्षुमें आती हें तब रुपका ज्ञान होता हे, यह बात बहुतोंको अज्ञात हे; वे एसा मानते हें कि चक्षुवृत्ति बाहिर जाके रुपका फोटो लेके आती हे तब रुपका ज्ञान होता हे ॥४७८॥ परिक्षा करनेसे पहेला प्रकार याने वृत्तिका बाह्यगमन नहीं होता, यह सिद्ध होता हे ॥ वृत्ति बाह्यागमनका विस्तार अध्याय ३ में वांचोगे; तथापि यहां इतना जनाना ठीक हे कि किरणोंका स्वरुप ओर योग्यता अनिर्वचनीय होनेसे चक्षुमें उसका फोटो लेजाना ओर वहां उसका ज्ञान होना, परंतु किरणोंके अटूट संबंधसे बाहिर ज्ञान होना ओर बाहिर उपयोग होना याने बिंबका उपयोग बाहिरमें करना वा होना, यह सब अनिर्वचनीय विषय हें. स्वप्नसृष्टिके निर्णयपर इसका फेसला होसकता हे ॥४७८॥ जब तक प्रमात्व (यह यथार्थ हे, एसे धर्मवाला ज्ञान) का निश्चय न हो वहांतक ओर अप्रमात्व (यह सत् नहीं, भ्रम हे, वा संशयात्मक हे एसे धर्मवाला ज्ञान) का निश्चय हो वहांतक विषयमें निष्कंप प्रवृत्ति नहीं होती ॥ ४७९ ॥ क्योंकि सुज्ञोंके व्यवहारमें एसाही नियम देखते हें ॥ ४८० ॥

जो प्रमात्व अप्रमात्वके निश्चय करनेकी योग्यतावाले नहीं, जेसे के बालक, दे-

वाना ओर योग्य मन-इंद्रियका अभाववाला; उनका यहां प्रसंग नहीं हे. कितनेक मोह वा स्वार्थवश, संशयात्मक विषयमें प्रवृत्त होते हें (जेसा के जनमंडलमें अकसर देखते हें) वेभी इस प्रसंगके विषय नहीं हें; क्योंकि बालकादिकोंकी प्रवृत्ति, निवृत्ति, विश्वास, प्रवाह, प्रकृति वा स्वभावके आधीन होती हे अथवा सकंप होती हे; निष्कंप नहीं होती. ओर बोह नाना धर्म धारणकी हेतु होपडती हे. हरकोइकी आद्यप्रवृत्ति, विश्वास (परविश्वास वा बुद्धि विश्वास) से होती हे, वा सकंप होती हे, उस पीछे दूसरा प्रकार होता हे ॥ सुज्ञोंकी प्रवृत्ति प्रमात्वके निश्चय होनेपर होती हे; अन्यथा नहीं. जो अन्यथा हो तो निष्कंप नहीं किंतु सकंप प्रवृत्ति होगी ॥ ४८० ॥

समीपादि प्रत्यक्षके प्रतिबंधक[1] ॥ ४८१ (अदृष्ट) ॥ **प्रमाणाभावसे प्रमेयका अभाव नहीं** ॥ ४८२ (अनास्ति) ॥ **यथा नेत्राभावसे रुपका** ॥ ४८३ ॥ **सिद्ध अदृष्टसे व्यापारकी कल्पना** ॥ ४८४ (व्यापारी) ॥ **स्नेह आकर्षण वत्** ॥ ४८५ ॥

अर्थ.—पदार्थोंके प्रत्यक्ष होनेमें समीपादि प्रतिबंधक होते हें. अर्थात् अति समीपता १, अतिदूरता २, अतिप्रकाश ३, आवरण ४, समानाभिहार ५, प्रमाण —प्रमाता वा प्रमेयकी अयोग्यता ६, सूक्ष्मत्व ७, अनुद्भवत्व ८, तिरोधानत्व ९, लय १०, ओर अभाव ११. यह ११ प्रत्यक्ष होनेके प्रतिबंध होजाते हें ॥४८१॥ यथा (१) आंखकी काली पुतली. (२) दूरगया हुवा आकाशका पक्षी (क्योंकि परमाणुमंडलकी आड होजाती हे). (३) दिवसको तारे नहीं दीखना. (४) तम होजानेसे न दीखना. (५) जलमें जलकी बूंद डालें तो मालूम नहीं होती. (६) डोरीमें सर्पका भान होता हे डोरीका नहीं, वहां प्रमाणादि तीनों दोष हें (४३९ यादकीजे). (७) परमाणु नहीं दीखते. (८) प्रकाशका स्पर्श, वायुका रुप. (९) जलमें नमक. (१०) बरफ पानी स्वरुप होना. (११) घटादिका अभाव होजाना ॥ इस प्रकार प्रत्यक्ष होनेके प्रतिबंध हें. ॥४८१॥ मन, इंद्रिय न हों तो प्रमेय (पदार्थ) नहीं हे, एसा नहीं हे ॥ ४८२ ॥ यथा अंधेके चक्षु नहीं तो रुपका अभाव हे, एसा

---

[1] सृष्टिमें अनेक प्रकारके पदार्थ होते हें. जैसे के स्वरुप संभावनामें कहे हें. उनमेंसे अनुद्भवादि रुपवालेभी हें अर्थात अनुद्भव १, उद्भव २, तिरोधित ३, प्रादुर्भूत ४, लय ५, दृष्ट ६, अदृष्ट ७, लौकिक प्रत्यक्ष ८, अलौकिक प्रत्यक्ष ९, ओर अप्रत्यक्ष योग्य १० भी होते हें ॥ (१) प्रकाश अनुद्भव स्पर्श, (२) उसका रुप उद्भव, (३) सुषुप्तिमें मन, (४) जलमेंसे मछली, (५) घट माटी स्वरुप होजा-

नहीं हे. पदार्थोंके विषय करने योग्य हमारे मनेंद्रिय नहीं, इसलिये पदार्थ नहीं, एसा नहीं माना जाता ॥ ४८३ ॥ जो अद्रष्ट हो परंतु कोई प्रकारसे सिद्ध हो तो उसके व्यापारकी कल्पना होसकती हे ॥४८४॥ जेसे के स्नेहाकर्षण वा गुरुत्वाकर्षण प्रकार, अद्दष्ट परंतु सिद्ध हें तो उनके व्यापारकी याने गणित करके व्यवस्थाकी जाती हे. एवं अन्य प्रसंगमेंभी यथायोग्य योजलेनाचाहिये ॥ ४८५ ॥

योग्य कल्पना न अनादरणीय ॥ ४८६ (कल्पना) ॥ **लाभ दर्शनसे** ॥ ४८७ (लाभ) ॥ **ओर अन्यमें प्रवेशकी संभावना होनेसेभी** ॥ ४८८ (प्रवेशक) ॥ **इष्ट राशीवत्** ॥ ४८९ (अध्यारोप) ॥ **परीक्षाके विना आधारके योग्य नहीं** ॥ ४९० (अधार्य) ॥ **कल्पना होनेसे** ॥ ४९१ ॥ **अयोग्य अनादरणीय** ॥ ४९२ (अपवाद) ॥ **अनिष्टकी प्राप्तिसे** ॥ ४९३ (अनादर)॥ **कल्पितके नियम व्यवस्थापर** ॥ ४९४ (निर्वाहक) ॥ **यथा जाति ओर अभावके** ॥ ४९५ ॥ **अभाव प्रतियोगीका विरोध** ॥ ४९६ (अप्रतियोगी) ॥ **यथा घट ओर उसके अभावका** ॥ ४९७ ॥ **भात्र अभावकाभी** ॥ ४९८ (अननयोगी) ॥ **यथा घट ओर उसके प्रागभावका** ॥ ४९९ ॥ **अभावका अभावभी प्रतियोगी** ॥ ५०० (प्रतियोगी) ॥

अर्थ.—समष्टि वा व्यष्टिको जिससे योग्य लाभ हो उसे योग्य कल्पना कहते हें, एसी कल्पना अनादर करनेके योग्य नहीं होती किंतु स्वीकारने योग्य होती हे ॥ ४८६ ॥ क्योंकि उसमें लाभ जानपडता हे ॥ ४८७ ॥ ओरभी उसद्वारा अन्य इष्ट विषयमें प्रवेश होजानेकी संभावना होती हे, इसलियेभी आदरणीय हे ॥ ४८८ ॥ जेसे के इष्ट सिद्धिके वास्ते इष्टराशीकी रीतिसे अंकोंका अध्यारोप (कल्पना) क्रियाजाता हे ओर उनद्वारा इष्ट अंक निकल आता हे. ओर फेर कल्पित अंकोंका अपवाद (त्याग) करदिया जाता हे. इसीप्रकार व्यवहार, धर्म वगेरे प्रसंगोंमेंभी योग्य कल्पनाद्वारा लाभ होता हे अतः आदरणीय होजाती हे ॥४८९॥ पूर्व अध्यायगत अवतारादि प्रकरणमें कल्पितके उदाहरण दिये हें ओर इष्टराशीका उदाहरण यह हे. बताओ एसे तीन अंक कि जिनका जोड २० हो, उनमेंसे एक $\times \frac{१}{२}$ + दूसरा $\times$ २ + तीसरा $\times$ ३ = २० के हो? (उ.)

ना (अभाव, नाशका पर्याय हे.) (६) घट, दुःखादि, (७) परमाणु आदि, (८) शब्दादि, (९) योग वा तैजसवृत्तिसे विषय हो (बस. ८६), (१०) निराकार—अमूर्त ॥

यहां अध्यारोप, अपवाद करनेसे १४, + ५ + १ उत्तर निकल आता हे. बा की कल्पनाका त्याग होता हे. अध्यारोप (वस्तुमें अवस्तुका आरोप करना) अपवाद (उस आरोपमें जितना अंश असमीचीन–असिद्ध–अनुपयोगी--अलीक ओर अयुक्त हो उसे निकाल डालना. किंवा सब आरोप वेसा हो तो सबका परित्याग करना) इन उभयका उदाहरण पहेली अध्याय सू. ४ की टीकामें हे ॥ ४८९ ॥ परंतु लाभ होनेकी परीक्षा विना, कल्पनामात्रपर आधार नहीं होसकता ॥ ४९० ॥ क्योंकि वोह कल्पनाही तो ठेरी ॥ ४९१ ॥ तथापि जो उससे उत्तम फल होता हो तो आदरके योग्य हे. यथा " अमुक स्त्री अमुककी " एसी कल्पनाका फल उत्तम होनेसे उसका आदर कर्तव्य होरहा हे; क्योंकि सृष्टिनियममें अमुककी अमुक स्त्री, एसा नियम नहीं हे. इसलिये इसको कल्पनाजन्य (कल्पित) व्यवहार माना जाता हे ॥४९१॥ अयोग्य कल्पनाका आदर न होना चाहिये ॥४९२॥ क्योंकि उससे अनिष्टकी आपत्ति होजाती हे ॥ ४९३ ॥ जेसे के संतानपर माता पिताकी सेवा करनेका फर्ज इसलिये नहीं हे कि संतानने उत्पन्न वा पालन करनेके लिये सूचना नहीं की थी. इस कल्पनासे संतानका अनिष्ट होजाता हे, इसलिये यह कल्पना अनादरणीय हे. अभावसे भावरुप सृष्टिकी कल्पनाभी एसीही हे ॥४९३॥ कल्पितके नियम व्यवस्थाके अनुकूल बनाये जाते हें ॥ ४९४ ॥ जेसे के नैयायकों के कल्पित अभाव ओर जातिके नियम हें ॥ ४९५ ॥ अभाव वा जाति स्वरुपतः कोई वस्तु नहीं हें (बस. १३६ । १३७ ओर मूलगत स्वरुपसंभावनामें विस्तार हे) परंतु उनको कल्पके उपयोग लेनेपर पदार्थ निर्णयके सहकारी होजाते हें; इसलिये जेसी उनसे योग्य व्यवस्था हो वेसे उनके नियम बनायेजाते हें ॥ किंवा जेसे के लग्न, कल्पित व्यवहार हे तोभी उससे व्यवहार-सुखकी व्यवस्था हो, एसे प्रकारसे उसके नियम बनाये जाते हें ॥ ४९५ ॥ अभावके नियमके उदाहरण यह हें.- अर्थात अभाव ओर उसके प्रतियोगीका विरोध होता हे ॥ ४९६ ॥ जेसे के घटरुप प्रतियोगी ओर उसके अभावका विरोध होता हे अर्थात जहां घट हो वहां घटके अभावका अभाव होता हे ॥ ४९७ ॥ ओर भाव अभावकाभी विरोध होता हे ॥ ४९८ ॥ जेसे के घटोत्पत्ति पूर्व उसका अभाव (प्रागभाव) था. भावरुप घट उत्पन्न होनेपर उसके प्रागभावका ध्वंस होगया ॥ ४९९ ॥ भाव अभावकाही विरोध हे इतनाही नहीं, किंतु अभावका अभावभी प्रतियोगी (विरोधी) होता हे, एसे एसे नियमोंकी कल्पना हे ॥ ५०० ॥ जिसका (घटका) अभाव सो (घट)

अपने अभावका प्रतियोगी कहाता हे. जिसमें वोह अभाव रहे वोह उस अभावका अनुयोगी कहाता हे. यथा घटका अभाव पटमें हे. तहां इस अभावका घट प्रतियोगी ओर पट अनुयोगी हे. घट ओर पटका अन्योऽन्याभाव हे १, आकाश ओर परमाणुका अन्योऽन्याभाव हे २, इन नं. १, २ के अभावोंका अन्योऽन्याभाव हे. तहां एक अभाव दूसरे अभावका प्रतियोगी हे ओर दूसरा अनुयोगी हे. पुनः कोई अभाव अनादिसांत, कोई सादिअनंत, कोई अनादिअनंत, कोई सादिसांत हे, एसी कल्पनाकी हें. इसीप्रकार जाति (सामान्य प्रत्यय) की ओर उसके नियमोंकी कल्पनाकी हे. इसीप्रकार तत्वोंके मूल विषे अध्यारोप होता हे, जेसे के पहेले अध्यायमें अध्यारोप अपवाद किया हे. वेसेही धर्म व्यवहारमें अनेक कल्पित बातें चलाई वा मानीजाती हें. बात यह हे कि जिससे व्यष्टि, समष्टिको लाभ हो वोह कल्पना आदरणीय हे. अन्यथा नहीं ॥ ५०० ॥

गोचरकेही संस्कार ॥ ५०१ (संस्कार) ॥ वे ज्ञानके आश्रयमेंही ॥ ५०२ (आश्रित) ॥ अन्यत्र अदर्शनसे ॥ ५०३ ॥ इच्छाके हेतु ॥ ५०४ (प्रवर्त्तक) ॥ घट स्वर्गादि वत् ॥५०५॥ प्रबलका निर्बलसे नाश नहीं ॥५०६ (न द्रष्ट)॥ प्रबल अनुकूल निश्चय ॥ ५०७ (निश्चय) ॥ मोमनादिवत्॥५०८॥

अर्थ.—जो मन इंद्रियका विषय (ज्ञानका विषय) हो उसीके संस्कार हुवा करते हें ॥ ५०१ ॥ संस्कारके लक्षणोंमें मतभेद हे, यह उपर लक्षण प्रसंगसे ज्ञात हुवा होगा; इसलिये यहां सामान्यलक्षण कहते हें.–विषय विषयीके आद्य योग्यसंबंध जन्य विषयीकी विषयाकारता रुप जो सूक्ष्मावस्था उसका नाम संस्कार हे. यही कालांतरमें स्मृतिका हेतु हे–याने यह अभ्यास फुरता हे. जो विषय (शब्दादि–रागादि–दुःख सुख–यथार्थ–अयथार्थ इत्यादि—हरकोइ विषय) मन वा इंद्रियका विषय हो वा यूं कहो कि जो ज्ञानका विषय हो, उसीके संस्कार (इम्प्रेशन) होते हें. फेर वे चाहे सत्यरुपमें हों, वा असत्यरुपमें हों; इसके विवेचनकी अपेक्षा नहीं हे ॥ ५०१ ॥ जिसको ज्ञान हुवा हे, उसीके आश्रय वे ज्ञानजन्य संस्कार रहा करते हें अर्थात ज्ञान अन्यको (क. को) ओर संस्कार अन्यको (त. को) एसा नहीं होता, किंतु ज्ञानके आश्रयमेंही होते हें ॥ ५०२ ॥ क्योंकि वे उस संस्कारीसे इतरमें नहीं पाये जाते–इस प्रकारसे अन्य प्रकार देखनेमें नहीं आता. ॥५०३॥ यथा यदि हों तो ब्रह्म वा ईश्वरको जो किसी सद् वा असद्का ज्ञान होता हो तो उनमें ओर यदि किसी जीवको हुवा हे तो उस जीवमें वे संस्कार (अभ्यास) होंगे. अ-

न्यको नहीं ॥ ५०३ ॥ सो ज्ञात वा अज्ञात रुप रहे हुये संस्कार, ज्ञात वा अज्ञात रुपसे परोक्ष वा अपरोक्ष विषयमें प्रवृति वा निवृतिरुप इच्छाके हेतु होते हें. (ओर उपर कहे अनुसार स्मृति होनेकेभी हेतु होते हें) ॥ ५०४ ॥ यथा घट ज्ञान जन्य संस्कार उसमें या उसके संबंधिमें प्रवृति वा निवृत्तिरुप इच्छाके हेतु होते हें अथवा परोक्ष **स्वर्गादि** याने स्वर्ग ओर नरक (वगेरे) हें, एसा सुनके जो संस्कार हों तो उसकी प्राप्ति वा निवृत्तिकी इच्छा होती हे. (एवं स्वप्नमेंभी पूर्व दृष्ट श्रुतके संस्कारसे स्वप्नमें प्रवृत्ति होती हे वा यूं कहो कि अनेच्छित स्वप्न होता हे, परंतु संस्कार जन्यही होता हे) ॥ ५०५ ॥ प्रबल (द्रढ–अभ्यासित) संस्कारोंका निर्बल (साधारण) संस्कारोंसे नाश नहीं होता किंतु बलिष्टोंसे निर्बलोंका उच्छेद होभी जाता हे. (संस्कार, फल दिये विना नाश नहीं होते किंवा उसका फल हुये वे नाश होजाते हें, यह दूसरी बात हे, प्रसंगका विषय नहीं हे) ॥५०६॥

प्रबल संस्कारोंके अनुकूलही मनुष्यका निश्चय (मंतव्य) होजाता हे ॥५०७॥ जेसाके मोमन (मुसलमान) याने मोहमदन, याहूदी, वा रोमन संसारमें देखते हें ॥ ५०८ ॥ वि.–बहुधा आद्यसंस्कार प्रबल होते हें, एसी मनुष्यकी प्रकृति हे. यथा-जिस आर्यसंतानमें एक व्यक्तिने पहेले योरोपीयन **हेगल**श्रीकी ओर दूसरी व्यक्तिने **कण्ट**श्रीकी फिलोसोफी सीखी हो तो उनके विचार परस्परमें टकरावेंगे. वे प्राचीन आर्यफिलोसोफीको बालककी कल्पनासमान मानेंगे (एसा देखतेभी हें). ओर जिसने पहेले आर्य दर्शनोंकी फिलोसोफी सीखी हो तो वोह योरोपकी फिलोसोफीको बालकोंकी कल्पना समान मानके उससे उपेक्षा करता हे (एसा देखतेभी हें). वाहरे आद्यसंस्कारकी महिमा! यदि वे तीनों अपनी अपनी दृष्टिको छोडके सत्संग द्वारा शोधन ओर मंथन करें तो उनसे कोई अन्यप्रकार निकल आवेगा; यह स्पष्टही हे. मुसलमानमंडल अपनी संतानको बालपनमेंही "अभावसे भावकी उत्पात्ति, खूदा, रसूल (नबीमुहम्मद) ओर कुरानशरीफ मान्य, अन्य मान्य नहीं", एसे संस्कार डालदेते हें, अतः वे एसे प्रबल रहते हें कि वे नहीं बदलते ओर वक्त पडनेपर वेही काम देते हें. कदाचित उनमेंसे कोई बहुत सत्संग करे ओर पदार्थविज्ञानशास्त्र तथा सृष्टिनियमोंको सीखे तो वे संस्कार शायद मंद पडजायें वा नष्ट होजावें, अन्यथा वे नहीं जाते. एसाही रोमन केथोलिक ओर याहूदियोंमें हे. आर्यप्रजाकी कितनीक संप्रदायोंमेंभी[1] इस जेसा रुप देखते हें. यद्यपि उक्त थोडा

---

[1] यथा–जैन, पुष्टिमार्ग, स्वामीनारायण वगेरेमें.

बहुतरुप भरतखंडकी वा अन्य खंडकी संप्रदायोंमें देखते हें, तथापि इस रुपकी विशेष चमक मोमनादिमें पाते हें. वाहरे तालीम ओर संगत !

परंतु इस विषयके मूलपर कोई ध्यान नहीं देता. विचारिये.—यदि एक मुसलमान स्त्रीके ओर ब्राह्मणीके एक कालमें पुत्र पेदा हों तब जो उनके मातापिताको ज्ञात[२] न हो एसी तरकीबसे अदलबदल करदिया जावे तो जब वे बडे होंगे तब जो मुसलमानका पुत्र (बीज) हे वोह वेदानुयायी, गोरक्षक, संध्योपासना करनेवाला, मूर्तिपूजक, रामकृष्णादिको अवताररुप मान्नेवाला, पुनर्जन्मवादि, कुरान तथा नबी मुहम्मदमें अरुची रखनेवाला ओर मुसलमानोंको हलकी दृष्टिसे देखनेवाला होगा. ओर जो ब्राह्मणका पुत्र (बीज) हे वोह कुरान रसूलका अनुयायी, गोभक्षक, नमाज कलमा पढनेवाला, मूर्तिनाशक, रामकृष्णादिमें अभाव रखनेवाला, अपुनर्जन्मवादि, पंचतनको उंची दृष्टिसे देखनेवाला, तथा कुरान ओर रसूलका भक्त होगा. तथा उभय परस्परके विरोधिभी हो पडेंगे. एसा होनेका कारण क्या ? ईश्वरीय पुस्तक (धर्म पुस्तक) नहीं, धर्म नहीं, ईश्वरकी इच्छा नहीं; किंतु एसा होनेका कारण आद्यसंस्कार याने शिक्षण हे. यही प्रकार सब धर्म-मत-पंथ-संप्रदायोंके संबंधमें जान लेनाचाहिये. इस कहनेका सार यह हे कि जेसे (उच्च-नीच) अपने पुत्र पुत्री बनाने हों वेसी उनको तालीम दे देनाचाहिये, इसीका नाम लौकिक धर्म हे. क्या अच्छा हो कि मनुष्यमंडल, कोई उपयोगी समानतावाला सिद्धांत कायम करे ओर वही पहेले बालक बालकियोंको सिखाया जावे ॥ ५०८ ॥

भावना ओर बुद्धिका विवादभी ॥ ५०९ (भावना) ॥ **अवतार निराकार वत्** ॥ ५१० ॥ **योग्यमें तत् योग्यकी सिद्धि** ॥ ५११ (योग्य) ॥ **विश्वासमात्रसे नहीं** ॥ ५१२ ॥ **जेसे अग्निमें दाहअदाहकी** ॥ ५१३ ॥ **आशा बंधनभी** ॥ ५१४ (आशा) ॥ **अनिष्टमेंभी आकर्षक होजानेसे** ॥५१५॥ **अनुकूलता प्रतिकूलता बुद्धिके भेद** ॥ ५१६ (अनुकूल) ॥ **एकमेंही इष्ट**

---

[२] वर्त्तमानमें पबलकको ज्ञात न होसके एसी हिकमतसे मातापिताकी संमतिसे उनकी बालक संतान (पुत्र) ले लईजाती हे ओर पूर्वोक्त परिणाम निकलता देखते हें, यहांतक के मुसलमानका वोह पुत्र सूवर ओर ब्राह्मणका वोह पुत्र मांस खाता हे. धर्मका विनिमय (हिंदु, मुसलमान वा ख्रिस्ति होजाना, मुसलमान, हिंदु धर्ममें आजावे इत्यादि) तो सुप्रसिद्ध हे.

अनिष्टकी कल्पनासे ॥ ५१७ ॥ कांता बंधु सर्प वत् ॥ ५१८ ॥ त्याग ग्रहणमें विवेक ॥ ५१९ (विचार) ॥ प्रकृति मिश्रित होनेसे ॥ ५२० ॥ योगादिके चमत्कार परीक्षासे ॥ ५२१ (चमत्कार) ॥ अनुवृत्तिआदि वत् ॥ ५२२ ॥ विशेष्य विशेषणका व्यवहार विशिष्टमेंभी ॥ ५२३ (विशिष्ट) ॥ दंडीआदि वत् ॥ ५२४

अर्थ.—(दृष्ट–श्रुत संस्कारकी उत्तर अवस्थाका नाम भावना हे. सूक्ष्म होनेसे स्पष्टरुपमें नहीं आती. स्थूल भाव वालीका भान होभीजाता हे. अंतःकरणका परिणाम विशेष याने शिक्षित–संस्कारी–विवेक बुद्धिका नामही योग्यबुद्धि हे–जिसे कॉनशेंसभी कहते हें. इन दोनों–भावना ओर बुद्धिका विवादभी होता रहता हे. याने किसी विषयमें दोनों संमत होती हें ओर किसी विषयमें असमंतभी होती हें ॥ ५०९ ॥ जेसेके भावना, ईश्वरका अवतार होना मानती हे ओर विवेक बुद्धि, यह कहती हे कि निराकारका अवतार नहीं होता; एसे विवाद होता हे ॥ ५१० ॥ एवं अन्यत्रभी. यथा--भावना, ईश्वरका दूत होना मानती हे ओर बुद्धि सर्वशक्तिमान ईश्वरको दूतकी अपेक्षा नहीं, एसा कहती हे. दुःखनिवारण ओर सुखप्राप्तिमें उभय संमत्त हें, परंतु उनके साधनोंमें उनका विवाद हे. विषयके अनुचित अथवा उसके अति भोगका परिणाम दुःख हुवा, एसे अनुभव हुयेभी भावना विषयासक्तिकी तरफ लेजाती हे ओर विवेकबुद्धि उससे ना कहती हे; एसा विवाद किसी न किसी विषयमें सबको हुवा हे वा होता रहता हे. इन दोनोंमें जिसका बल हो उधरको मनुष्य खिंचा जाता हे ॥ धर्मअवलंबी--मंडलवाले कॉनशेंसको किसी परोक्ष शक्तिकी प्रेरना मानते हें परंतु एसा सिद्ध नहीं होता. यथा–मूर्तिपूजक ओर मूर्तिनाशक-इन उभयका धर्म वा धर्मग्रंथजन्य विरुद्ध कोनशेंस क्यों हुवा ? क्योंकि कॉनशेंसको निर्दोष ओर सच्चा भूमिया बताते हो. आर्यनको चचाकी लडकीपर कुद्रष्टि करनेसे प्रत्यवाय ओर किरानी, कुरानीको उसके लग्नसे आनंद होता हे. मुसलमानका लडका चिडियाको उबलतेहुये पानीमें डालके आनंदित होता हे ओर जैनी गश खाके पडता हे. सारांश कॉनशेंस, अंतःकरण वा जीवकी अवस्था विशेषका नाम हे. जिस किसी काममें शंका, भय, लज्जा हो तो वोह काम न करना चाहिये क्योंकि उससे परिणाममें दुःख होता हे, एसा विवेक बुद्धिमें हुवा तब उसका कॉनशेंस, नाम पडजाता हे; इसमेंभी अपवाद हें. (विशेष मूल ग्रंथमें) ॥ ५१० ॥

जिसमें जो योग्यता हे उस योग्यतामें, उसके लाभ लेने योग्य जो पुरुष सो, यदि पूर्ण भावना–श्रद्धा–विश्वास रखके लाभ लेनाचाहे तो लाभकी सिद्धि होजाती हे ॥ ५११ ॥ परंतु विश्वासमात्र रखनेसे सिद्धि नहीं होती याने कुविश्वास वा अंधाविश्वास हो–कुभावना वा अंधभावना हो--कुश्रद्धा वा अंधश्रद्धा हो तो इष्टकी सिद्धि नहीं होती ॥५१२॥ जेसे कि अग्निमें दाहशक्ति हे, उसके उपासक उसको रक्षक देवता मानके पूजते हें, परंतु जब उसका स्पर्श होगा तबही वोह उपास्यको जलादेगी. उससमयमें उसका देवरुप विश्वास वा उसकी देवरुपवाली भावना यह दोनों काममें नहीं आते ॥ ५१३ ॥ निरक्षरसे व्याकरण विद्याकी भावना व्यर्थही होती हे. निदान भावनामात्रसे सिद्धि नहीं होती परंतु भावना, श्रद्धा, विश्वास ओर आत्मबलसे भारीकाम सहेजमें होजाते हें अतः उनका निषेध नहीं हे. परंतु उपर कहे अनुसार योग्य होने चाहिये ॥ ५१३ ॥ आशासे जीवन होता हे, सबका सब काम आशासे चलरहा हे, परंतु वोह बंधनकारकभी होजाती हे ॥५१४॥ क्योंकि स्वार्थीको अनिष्टमेंभी खेंचलेजाती हे ॥५१५॥ क्योंकि गरजमंदको उस समय बुद्धि नहीं होती. अर्थात इष्टअनिष्ट परिणाम नहीं विचारसकता. जेसे के कनोजके राजा जयचंद्र ओर राय पृथ्वीराज तथा शहाबुद्दीन गौरीकी कथा प्रसिद्ध हे. ओर दामाजी गायकवाड महाराजाकी (रसायणकी) गाथा हे. ॥ ५१५ ॥ यह अनुकूल (अच्छा-सुखकारी) यह बुरा (प्रतिकूल-दुःखकारी) एसा मंतव्य मनुष्यकी शरीरस्थ बुद्धिका भेद हे, मूलतत्वों (कुदरत)की द्रष्टिसे किसीको अच्छा वा बुरा नहीं कहाजाता ॥ ५१६ ॥ क्योंकि एकही वस्तुमें कभी इष्टता कभी अनिष्टता, ओर एकही वस्तु किसीको इप्ट, किसीको अनिष्ट जानपडती हे ॥ ५१७ ॥ जेसे कि स्त्री, पुरुषको प्रिय ओर ऋतुकाल वा कुलटाकालमें प्रतिकूल (अप्रिय), एकही बंधु वा पुत्र आज्ञावर्तनकालमें अनुकूल ओर आज्ञाभंगकालमें प्रतिकूल, एकही सर्प सर्पनीको प्रिय ओर मनुष्यको अप्रिय होता हे ॥ ५१८ ॥ अग्नि सर्दकालमें प्रिय, स्पर्शकालमें दाहक हुये अप्रिय, मधुमाखीका उच्छिष्ट मधु प्रिय, अन्यकी उच्छिष्ट अप्रिय, मांसजन्य दूधप्रिय ओर मांस अप्रिय, एकको मांस प्रिय, दूसरेको अप्रिय, इत्यादि. विशेष विवेचन बस. सू. ७९ में ईश्वर मलिन संबंधी प्रसंगमें हे ओर सू. ८ का विवेचनभी यादकीजे ॥५१८॥ इसलिये हरकोई विषयके त्याग वा ग्रहण करनेमें विवेक कर्तव्य रहता हे ॥ ५१९ ॥ क्योंकि प्रकृति, सत्व रज ओर तम–इन तीन गुणोंसे मिश्रित होती हे ॥ ५२० ॥ अतः कभी जो एक विषय लाभकारी होता

हे तो कभी वही हानिकारक होजाता हे; तद्वत् हानिकारक कभी इष्ट होजाता हे. जेसे के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, यह ओर इंद्रिय तथा इनके शब्दादि विषय जो स्वाधीन न हों ओर विवेक रहित उनका उपयोग हो तो अरीवर्ग याने हानीकारक होते हें ओर जो स्वाधीन हों तथा इनका सविवेक उपयोग हो तो व्यवहारमें यही लाभकारी होते हें, यहांतकाकि इनके विना जीवनही नहीं होता. बुद्धि ओर जीवनमें काम, आसक्तिसे अरुचीमें उसका द्वेष, वीर्यदानमें लोभ निष्कामतामें मोह (राग), प्रतिज्ञापालनमें अभिमान, ओर अपनी उन्नतिमें परोन्नतिके साथ स्पृधा, एवं कामादि कामके हें. एसेही तन, मन, धन, स्त्री, पुत्र, पंच विषय ओर राज्यादिके लाभ हानी समझ लेनाचाहिये (प्रसिद्ध ग्रंथ **प्रकृति विवरण** में विस्तार करआये हें) ॥ ५२० ॥ योग, इंद्रजाल, ओर तंत्रके चमत्कार नहीं हें, एसा सर्वथा नहीं हे. परंतु जैसे ओर जिस प्रकारके अशिक्षित मंडल विषे माने जाते हें वैसे ओर उस प्रकारकेभी नहीं हें, तथा वे कोई बिरलको प्राप्त होते हें ओर विशेष उपयोगमेंभी नहीं आते; इसलिये योगादिकका चमत्कार परीक्षा होनेपरही मान्नाचाहिये, परीक्षा हुये विना सुनसुनाकर वा देखने मात्रसे नहीं मानलेना चाहिये. ॥ ५२१ ॥ जेसे के योगवृत्तिजन्य अनुवृत्ति ओर इंद्रजालविद्या द्वारा नींबुका उडना ओर तंत्रविद्या द्वारा अग्निकुंडमेंसे अग्निविषे अमुक मूर्तिके दर्शन होना देखते हें, वे सृष्टिनियमके अनुकूल हें; इसलिये माने जासकते हें. अन्यथा नहीं ॥ यथा अनुवृत्ति द्वारा यथेच्छा पदार्थ दिखा देना, इंद्रजालकी क्रिया (औषधि) द्वारा मकानमें सर्प दीख पडना, तिलस्मविद्या द्वारा कुछकाकुछ मान लेना. इन बातोंकी परीक्षा करोगे तो अर्थशून्य परिणाम आवेगा. अतः अनादरणीय हें क्योंकि एसे प्रयोगोंको मान्नेसे व्यर्थ आशा ओर वहेममें फंसजानेकी संभावना हे जोकि हानीकारक हे ॥ ५२२ ॥ मेस्मेरेझम-तैजसविद्या द्वारा किसीको संभव गुप्त परोक्ष पदार्थका कभी ज्ञान होभीजाता हे, सो सृष्टिनियमानुकूल हे. क्योंकि शुद्ध विधेयके शुद्ध अंतःकरणमें वाह्य पदार्थाकारी किरणोंका ग्रहण होता हे (विशेष सुप्रसिद्ध ग्रंथ पूर्वार्द्ध हिंदी मानसिकयोगमें विस्तार लिखआये हें) एसेही योगवृत्तिद्वारा होता हे. चित्तकी वृत्तिके निरोधका नाम **योग** हे (विशेष योगशास्त्रमें देखो). अनुवृत्तिका लक्षण ओर उसके प्रयोगका दाखला सू. ६१५ में लिखा हे. इंद्रजाल उस प्रयोग (वा विद्या) का नाम हे कि जिसद्वारा एसा प्रकार बताया जावे कि जो सर्व साधारणको अद्भुत जान पडे. जेसे कूंडे गत पानीमें लकडीकी एसी

बतख डालें कि जिसके पेटमें लोहेका पतला टुकडा हो ओर जिस रोटीके टुकडेमें चंबुकका टुकडा हे, उसको हाथमें लेके उपर नीचे, इधर उधर करें तो बतख नाचेगी. एसे एसे इंद्रजालके प्रयोग होते हैं. मंत्र (विचार) ओर पदार्थोंके रसायणीय संयोगसे अप्रसिद्ध प्रयोग दिखाया जावे जिस विद्यासे, उसे तंत्रविद्या कहते हैं. जेसे के विना खंबेके, ओर तारके डोरे विना, दूरके समाचार लेना. सन १८७७ इ. में दिल्ली विषे कैसरीदरबार हुवा तब एक तंत्रीने हवाई चलाई, उसके फूटने पीछे आकाशमें मरहूमा श्री मलिका विकटोरीयाकी हूबहू छबी कई सेकंडतक मनोहर रुपमें नजर पडी, उसको सब विद्यमान अफसर ओर प्रजाने सलाम किया. मंत्रविद्याका इसीमें समावेश होजाता हे; क्योंकि विचार, श्रद्धा ओर दृढताके विना इसका प्रयोग ओर फल नहीं होने पाता. इंद्रजाल ओर तंत्रोंके प्रयोगोंमें उपर लिखे सिवाय बहुधा चालबाजी–हाथचालाकीभी होती हैं. जेसे के धूलके चांवल बनाना, पारा तांबेका सोना–चांदी बताना, गुठलीसे तुरत आंबका झाड बनजाना.–इन प्रयोगोंमें चालबाजी हे. परंतु फोनोग्राफ, रेल्वे, तार, बलुन वगेरे, उपयोगी ओर सृष्टिनियम अनुकूल हैं; अतः माननीय हैं. इन तीनों विद्याके विस्तारका यहां प्रसंग नहीं हे. सार यह हे के इनके प्रयोग, दर्शन-श्रवण मात्रसे नहीं मानलेना चाहिये, किंतु जब परिक्षा करली वा कराली जावे ओर सुउपयोगमें आवे, तब मान्ना चाहिये. वहांतक उनसे उपेक्षा कर्तव्य हे[1] ॥ ५२२ ॥

विशेषण ओर विशेष्यका व्यवहार उनउनमेंही होता हे; परंतु उभयका विशिष्ट (उभयमिश्रण) मेंभी होता हे, एसा जीवसृष्टिमें नियम हे ॥ ५२३ ॥ जेसा के दंडी, शस्त्री ओर घटाकाशका व्यवहार विशिष्टमें होना देखते हैं ॥५२४॥ विशेष्यके स्वरुपमें वर्तता हुवा अपने सहित विशेष्यको जनावे ओर अन्योंसे पृथक् करके जनावे उसे विशेषण कहते हैं, जेसे समुद्रके जलका खार विशेषण ओर जल विशेष्य हे. पानी खारा नहीं होता तोभी 'पानी खारा' एसा विशिष्टमें व्यवहार होता हे. उपहितके स्वरुपमें जिसका प्रवेश न हो ओर अपने सहित उपहितको जनावे ओर अन्यसे पृथक् करके जनावे उसे उपाधि कहते हैं.

[1] इसीप्रकार प्रचलित देवताई प्रयोगोंके संबंधमें समझलेना चाहिये. अर्थात प्रयोग, दर्शन–श्रवण मात्रसे नहीं मानलेना. अन्यथा भूलमें आपडना हे ओर हानीके भोग हो पडोगे. अ. १ का अवतारप्रकरण यादमें लीजिये. विशेष **मानसिक योगके** उत्तरार्द्धमें इसका विस्तार हे; यह लिखित ग्रंथ हे. छपा नहीं हे.

जेसे घटाकाशकी घट, उपाधि हे घटाकाश, उपहित हे. घट उसको महाकाशसे पृथक् करके अपने सहित (घटाकाश एसे) जनाता हे. दंडी खाता हे; यहां विशेष्य जो पुरुष उसका दंडी (विशिष्ट) में व्यवहार हुवा क्योंकि दंड भोजन नहीं खाता. शस्त्री युद्धमें जाता हे; यहां शस्त्र (विशेषण) पुरुष (विशेष्य) उभय लडाईमें जारहे हें अर्थात् उभयका विशिष्टमें व्यवहार हुवा. घटाकाशका नाश हुवा. यहां घट (विशेषण-उपाधि) का नाश हे आकाशका नहीं, तोभी विशेषणका व्यवहार, विशिष्टमें हुवा हे. वा अमुक पुरुष मरगया. यहां शरीर मरा हे जीव नहीं मरा हे, तोभी विशेषणरुप शरीरका व्यवहार विशिष्ट (शरीरजीव) में हुवा हे. इसप्रकार विशेषण, विशेष्यका विशिष्टमेंभी व्यवहार हो, एसा जीवसृष्टिमें नियम हे. यह विषय जीवके स्वरुपबोधनमें उपयोगी हे. विस्तार बस. ओर मूलमें हे॥५२४॥

विधि निषेध देशकाल स्थिति अनुसारभी ॥ ५२५ (आज्ञा) ॥ **नियोगादि वत्** ॥ ५२६ ॥ **निषेधका निषेधभी** ॥ ५२७ (कथन) ॥ **आकाश निरुप वत्** ॥ ५२८ ॥ **ज्ञातव्य, कर्तव्य, प्राप्तव्य यथाअधिकार** ॥ ५२९ (अधिकार) ॥ **यथा जनकादिको अपूर्व वाक्य** ॥ ५३० (अपूर्व) ॥ **अन्यथा अनुपयोगसे** ॥ ५३१ ॥ **यथा बालकको शृंगार शिक्षण** ॥५३२(अनधिकार)॥ **रौढिक वर्णाश्रमपर नहीं** ॥ ५३३ (रुढी) ॥ **परिवर्तन पानेसे** ॥ ५३४ ॥ **गुणादिके संस्कारादि मुख्य कारण** ॥ ५३५ (वर्णाश्रम) ॥

अर्थ.—(यद्यपि अमुक विधि, निषेध सर्व देशकाल स्थिति वास्ते हो वा न हो परंतु) विधि (हितार्थी कर्तव्य), निषेध (अहितार्थी—अकर्तव्य); देशकाल ओर स्थिति (ओर परिस्थिति) अनुसारभी होता हे ॥ ५२५ ॥ जेसे कि नियोग, भक्ष्याभक्ष्य ओर यज्ञ—इनका (वा बाललग्न ओर आपतकालके कर्म—इनका) विधि निषेध यथादेशकाल स्थिति होता हे. वेसेही अन्यप्रसंगमेंभी यथायोग्य योजलेना चाहिये ॥ ५२६ ॥

आपतकालमें संबंधिओंकी संमतिसे संतानोत्पतिके उद्देशसे अमुक विधवा ओर अमुक विधुर, अमुकसे वीर्य ले वा अमुकको दे, इसका नाम नियोग प्रसिद्ध हे. वेद, मनुकाग्रंथ देखो. यह प्राचीनकालमें आर्यप्रजामें विध मानाजाताथा, वर्तमानमें निषिद्ध माना जाता हे. प्राचीनकालमें मधुपर्क ओर संस्कार प्रसंगमें मांस भक्षण विध था, वर्तमानमें नहीं हे. प्राचीनकालमें यज्ञमें पशुवध करते थे वर्तमानमें नहीं. मुसलमानी राज्यमें परिस्थितिवश याने कन्याहरणवश बाललग्न विध माना-

गया परंतु प्राचीनकालमें उसका निषेध था. उष्णखंड-शीतखंड इत्यादि देश, युद्ध, शांति इत्यादि काल, ओर बाल--युवान--वृद्ध--रोग--निरोग--स्वाधीन--पराधीन--इत्यादि स्थिति परिस्थितिके भेदसे खान, पान, पहेरान, भाषा, लग्न, नीति, धर्म, व्यवहार, व्यापार ओर राज्यादिके प्रसंगोंमें विधि निषेध जुदाजुदा प्रकारके होते हें. कभी जो विध वही निषेध ओर जो निषेध वही विध मानलिया जाता हे. अमुक दरजे तकका मंडल जिसे विध कहे, सो विध ओर जिसे निषेध कहे, सो निषिद्ध माना जाता हे. विधि, निषेध मनमुखी नहीं माना जाता. अपनी जातकेलिये कुछ अपवादभी हे उसका यहां प्रसंग नहीं॥ अपने मान्य ग्रंथानुसार विध, निषेध मान्ना वोह उसकी अनुयायी सोसाईटीके वास्ते हे. सबकेलिये नहीं हे ॥ ५२६ ॥ परिस्थितिका खुलासा विकासवादमें अ. १ विषे लिखआये हें.

दूसरेके लाभार्थ निषेधकार्भी निषेध कियाजाता हे ॥ ५२७ ॥ जेसे कि आकाशरुपरहित हे, तोभी बोध किया जाता हे कि आकाशका कोई आकार वा रंग नहीं हे. एसेही अन्यप्रसंगोंमें निषेधका निषेध कियाजाता हे॥ ५२८ ॥ यथा-ईश्वर अमूर्त्त (आकार रहित) हे, अगोचर हे इत्यादि निषेधका निषेध हे ॥५२८॥ जो जिसके जान्ने योग्य, करने योग्य वा प्राप्त होने योग्य अधिकार (योग्यता) रखता हे उसीको सो ज्ञातव्य, कर्तव्य वा प्राप्तव्य होता हे, सबको सब ज्ञातव्य वा कर्तव्य वा प्राप्तव्य नहीं होसकता, यह मनुष्यसृष्टिका अटल नियम हे. (ओर यह नियम जीव प्रकृतिवद्धभी हे, केवल जीव नियत नहीं हे) ॥५२९॥ जेसे के राजाजनक क्षत्रीय था, जाबालऋषि अज्ञात कुल था, गार्गी स्त्री जाति थी, वाल्मीकिऋषिभी हिंसक डाकु-भील था, छापकली जुलाहा था (छापकली उपनिषद देखो-५२ में हे), लोपामुद्रा स्त्री ओर वेदाचार्या थी. इत्यादिओंको ब्रह्मबोधक वेदवाक्य (अपूर्वश्रुति) याने ब्रह्मविद्या प्राप्त हुई हे, एसा ग्रंथोंमें स्पष्ट हे. जो उनका अधिकार न होता तो उनको वेदज्ञान वा ब्रह्मज्ञान प्राप्तही न होता ॥ ५३० ॥ जो एसा न मानें तो अन्यथा (इससे ओर प्रकारमें) उपयोग नहीं होसकता तथा योग्यता ओर ज्ञातव्यादि अनुपयोगी होजायँगे ॥ ५३१ ॥ जेसे के हरकोई वर्ण (जाति)का बालक हो उसको शृंगारका शिक्षण व्यर्थ हे. क्योंकि वोह उसको नहीं समझसकता ओर न उसका उपयोग करसकता हे ॥ ५३२ ॥ अंधको रुपका वधिरको शब्दका ज्ञान वा उपयोग नहीं होसकता. एवं कोई जातिका संतान कुमार्गी हो, मगजका कूढ (शिथिल--मूढ) हो वोह ब्राह्मणत्वको वा विद्याको प्राप्त नहीं होसकता. इसलिये

यथाअधिकार ज्ञातव्यादि, यह नियम, मानव सृष्टिमें स्वाभाविक ओर सर्वतंत्र हे. व्यवहार ओर परमार्थ-उभय प्रसंगमें लगता हे. ओर पुरुषार्थका मूल हे अर्थात ज्ञातव्यादिकी योग्यता संपादन करनेका उतेजक हे. विस्तार मूल ग्रंथमें हे. यहां तो इतनाही लिखना बस हे कि इस नियमको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्थात धर्म, नीति, शारीरक तथा मानसिक प्रसंग, व्यवहार, व्यापार, विद्या, गुण, हुनर, कर्म, कला, सोसाईटी, राज्य, आपत तथा अनापतकाल ओर परमार्थ—इत्यादि, वर्णाश्रमके सब प्रसंगों (संबंध)में यथायोग्य योजलेना चाहिये ॥ ५३२ ॥ ज्ञातव्यादिको वर्त्तमान प्रचलित रुढिवाले वर्णाश्रम अनुसार नहीं जान्ना चाहिये ॥५३३॥ क्योंकि रुढियें बदलती आई हें ओर बदलेंगी. परंतु ' ज्ञातव्यादि, यथाअधिकार ' यह नियम न बदला हे ओर न बदलेगा, एसा सिद्ध होसकता हे ॥ ५३४ ॥ शरीरधारी—मनुष्यमात्रमें गुण, कर्म, स्वभाव, शक्ति, प्रभाव, अवस्था, धर्म ओर संबंध इनके न्यूनाधिक होनेमें संस्कारादि (संस्कार, रज-वीर्य, स्वभाव, अहार, संग, आवश्यकता, परिस्थिति ओर संबंध) मुख्य कारण होते हें. वीर्यमात्र नहीं. क्योंकि मनुष्य मध्यम हे ॥ ५३५ ॥

वर्त्तमानमें " ब्राह्मणकी संतान ब्राह्मणही, क्षत्रीकी क्षत्रीयही ओर शूद्रकी शूद्रही, इसप्रकार रजवीर्यपर जाती (वर्ण) मानते हें. ब्राह्मण जातीसे इतरको वेद, संन्यास वा उपदेशका अधिकार नहीं तथा स्त्रियोंको वेदका अधिकार नहीं, इत्यादि भेद (वर्णाश्रमके भेद) " माने हें; परंतु प्राचीनकालसमान गुणकर्मानुसारही होना चाहिये, एसा प्रचार नहीं हे. मानवसृष्टि विषे किसीमें ज्ञानशक्ति[१], किसीमें पराक्रम[२], किसीमें क्रिया (योजना) शक्ति[३], ओर किसीमें मूढता[४] विशेष होती हे ओर इनका बीज स्वाभाविक (संस्कारादि) होता हे. इसका नाम **वर्ण** (जाती) हे. इसको योग्य बनाके उसका उपयोग लेना इसका नाम **आश्रम** हे. सारांश उत्तम वा मध्यम गुणकर्म संपादन संबंधमें **संस्कारादि** कारण हें ॥ रुढि बदलती हे, परंतु यह नियम नहीं बदलता. जेसे के राजा जनक क्षत्री, जाबाल अज्ञातकुल, वेदवक्ता गार्गीय स्त्री, वेदाचार्या लोपामुद्रा स्त्री, ब्रह्मवेता मैत्र्य स्त्री, विश्वामित्र क्षत्रीय तथा वालमीकी, विशिष्ट, मातंग, छापकली, नारद, व्यास, विदुर वगेरे कोन थे ओर किस पदवीको प्राप्त हुये, वे ऋषि, मुनि ओर ब्राह्मणभी कहलाये अर्थात अपूर्व वाक्य (वेदके ब्रह्मबोधक वाक्य) उनको प्राप्त हुये याने ब्रह्मविद्या उनको प्राप्त हुई;

[१]सिविल, [२]मिलटरी, [३]मरचंट, [४]शूद्र.

इसमें संस्कारादि हेतु थे, नहींके रजवीर्यमात्र. ओर आर्यप्रजामें तथा परखंडोंमेंभी वर्तन तो गुणकर्मपरही हे. जेसे आर्यप्रजामें रोटीबेटीके संबंधमें रजवीर्यपर व्यवहार हे, एसे परखंडोंमें द्रव्य ओर प्रतिष्ठापर हे, तथापि अन्य तमाम वर्तन तो सर्व खंडोंमें गुणकर्मपरही हे ॥ जो रजवीर्यमात्रपरही वर्णव्यवस्था मानें तो सब ब्रह्मा वा महादेव (बाबा आदम) की औलाद हें अर्थात सबकोही ब्राह्मण ओर सैयद मान्ना चाहिये. जनकादिको अन्यथा नहीं मान्ना चाहिये. परखंडोंसे आई हुई जाती आर्यवर्णमें शामिल हुई हें (दक्षणमें हें. अहिंसापरमोधर्म ग्रंथ देखो) उनको जुदा करदेना चाहिये. परंतु एसा नहीं हे ओर न होसकता हे ॥ वीर्यकी महिमा (कुलका महातम्य) सर्वथा त्याग करनाभी भूलमें आपडना हे; क्योंकि वोहभी गुणकर्मकाही परिणाम हे. जेसे कि किसीभी वर्णवाले कुलमें पांच सात पीढीसे जेसे उत्तम वा मध्यम गुणकर्मका बल होगा वेसाही लोही (रजवीर्यका मूल) में असर आवेगा अर्थात वेसीही संतान होंगी. पुनः बाह्यसंस्कारादिसे परिवर्तनभी होगा (सू. २१ याद करें). इसप्रकार रजवीर्य-गुणकर्म बदलनेकी संभावना रहती हे. ब्राह्मण (मुद्राराक्षस) ने क्याक्या किया, अमेरीकामें १ बेरिस्टरने ३० खून किये थे; कुलवान, दुःखी, गरीबभी अनीतिपर न आया. उत्तम गुणकर्म ओर उच्च कुल वालेके संबंधमें तो उत्तमता स्पष्टही हे ॥ **सार** यह आता हे कि वर्णाश्रमका व्यवहार गुणकर्मपरही ठीक हे, नहींके रजवीर्यमात्रपर. ओर रजवीर्यका ग्रहण, गुणकर्मपर हे. नहींके रजवीर्यमात्रपर. पंडितजी वा देवानजी वा '**एम. ए.**' की संतान, पंडितादि पदवी ले, एसा नियम नहीं हे (साक्षीमें उनकी पुत्रियें हें). परंतु योग्यसामग्री हो तो वेसा होनेकी संभावना हे. जेसा के गार्गी, लौपामुद्रा हुई. इसलिये वोह संतान जब जेसी हो तब वेसा मानके उसके साथ वर्तना चाहिये. वहांतक नहीं. अमुक पुरुष किस पदवीके योग्य हे, इसका साधारण निश्चय उसकी २५ वर्षकी उमरमें होसकता हे. (ओर स्त्रीका १६ वर्षकी उमरमें होसकता हे) ओर उसके पीछे विशेषताके प्रसंगमें आवेगा. यद्यपि कुछभी हो, जब तब समीप निवासी ओर दूरवासियोंमें देशकाल, स्थिति अनुसार जाति भेद तो पडेगाही, तथापि बुद्धिमान मंडल उसका उपयोग तो गुणकर्मपरही करेंगे ॥ [१]५३५ ॥

---

[१]बहुत कालसे वर्णाश्रमका अभ्यास ओर टेव तथा वर्तन, ओर प्रकारका होगया हे, इसलिये यह कहना पडता हे कि यह विषय तो सीधा हे. परंतु कानून (हिंदु लॉ), दायभाग, स्त्री दर्शन, संतानका प्यार, मातापिताकी सेवा,

सत्यादरणीय ॥ ५३६ (आदर) ॥ स्वतः सिद्ध होनेसे ॥ ५३७ ॥ अयथार्थ नहीं ॥ ५३८ (न आदर) ॥ अनिष्ट होजानेसे ॥ ५३९ ॥ सत् विन न जीवन ॥ ५४० (जीवन) ॥ दर्शनसे ॥ ५४१ ॥ एकसे प्रमागता वा अप्रमाणता नहीं ॥ ५४२ (स्वीकार) ॥ व्यभिचार प्राप्तिसे ॥ ५४३ ॥

अर्थ.—अपना वा दूसरेका अर्थात कोई धर्म-मत-पंथवाले वा बालककाभी जो सत्य (वाक्य वा अर्थ) हो सो आदर करने — स्वीकार करने योग्य हे ॥ ५३६ ॥ क्योंकि सत् यह स्वतःसिद्ध होता हे, उसमें बनावट नहीं होती (विचारके देखो तो यही एक शुद्ध नीति हे) ॥ ५३७ ॥ ओर अयथार्थ (असत्, विपर्य, संशयात्मक) वाक्य किसीकाभी आदरणीय नहीं हे ॥५३८॥ क्योंकि उसका फल अनिष्ट होजाता हे ॥ ५३९ ॥ सारांश किसी धर्म, मत, पंथ, भाषा वा खंडका हो, सत्यबोधकवाक्य आदरणीय हे, असत् त्याज्य हे ॥ ५३९ ॥ सत्के विना जीवन नहीं होसकता ॥ ५४० ॥ एसा देखते हें ॥ ५४१ ॥ पशु-पक्षी यथाज्ञानव्यवहार करते हें. बालक सत्यपरही होते हे. यदि भूखमें बालक खाना मांगे, माता उसे असत् मानें तो बालक मरजावे. इसीप्रकार मानवजीवनका आधार सत्यपर हे याने सत्यचेष्टा, सत्यपद ओर सत्यवर्तनसे जीवन हे. जहां झूठसे व्यवहार चलजाता हे वहांभी झूठ, सत्यकी प्रतिनिधि हुई हे. नहींके झूठसे काम चला हे. यद्यपि मनुष्योंमें सत्यवादी कोईही होगा; तथापि हरेक व्यक्तिके नित्यका वर्तन शोधोगे तो उसमें असत् थोडा, सत् ज्यादे होगा, इसलिये जीवन होता हे. असत्वादिको सुखी ओर सतवादिको दुःखी देखते हें, यह दलील अपने गुप्तदोष वा कमजोरीको प्रघट करती हे. अर्थात् असत्से सुख वा सत्से दुःख हो, एसा नहीं किंतु उसमें अन्य हेतु होनेचाहिये. वास्तिविक सत् क्या, व्यावहारिक सत्य क्या, ओर एसेही असत्य क्या, इसको जो समझें तो उक्त शंका न हो, शुद्ध सत्य अ. ४ ओर बस. ३१, ३२, १९३ में कहा हे. अमुक स्त्री अमुककी मात्रा, इत्यादि व्यावहारिक सत्य हे. इसके विरुद्ध असत्य हे. विशेष मूलमें ॥ [1]५४१ ॥ किसी एक व्यक्तिमें एक गुण वा कर्म प्रमाणरुप अर्थात सच्चे ओर अच्छे हों, तो उसके

इत्यादि विषयोंपर विचार करें तो उपयोग दृष्टिमें यह विषय बारीक ओर बांका हे. इसमें अनेक शंका समाधान हें. विशेष विस्तार मूलग्रंथमें हे. यह विषय मनुष्यकी उन्नति वा अवनतिका मूल हे; इसलिये जरा विशेष लिखागया हे ॥

[1] भिक्षुकनिबंध ओर नीतिमीमांसामें इसका विशेष विस्तार किया हे.

सर्व वेसेही हों किंवा वोह सर्वथा प्रामाणिक व्यक्ति हे, एसा नहीं माना जासकता; तद्वत् उसके एक निषिद्ध कर्म वा गुणसे उसके सबमें वेसा आरोप वा अप्रमाणिकता नहीं मानसकते ॥ ५४२ ॥ क्योंकि जो एसा मानें तो व्यभिचारदोष आवेगा. अच्छेको बुरा ओर बुरेको अच्छा, सच्चेको झूठा ओर झूठेको सच्चा कहना पडेगा ॥ ५४३ ॥ सारांश किसी ग्रंथके एक सत्यबोधसे उसके सब सत्य ओर एक असत्यबोधसे उसके सब असत्य, एसा नहीं मान्ना चाहिये. किंतु सत्यासत्यका निर्णय करके त्याग-ग्रहण होनाचाहिये। यद्यपि जेसे १ मन आटेमें १ तोला संखिया हो तो वोह तमाम आटा त्याज्य होता हे, एसे ग्रंथ ओर व्यक्तिके एक दोषसे उसके सब वाक्य वा गुण अप्रमाण मानसकते हें; तथापि जेसे यंत्रद्वारा क्षार समुद्रमेंसे मीठा जल ले लेते हें, क्षार भाग छोडदेते हें; जेसे माटीमेंसे कंचन ले लेते हें, माटी छोडदेते हें; एसे जो सत्य हो वोह ले लेना ओर असत्य त्याग देना चाहिये. प्रत्यक्ष, जीवके आधीन नहीं हे इसलिये उसमें विवादभी अति कम, अनुमानमें जीवका नाममात्र हाथ हे इसलिये उसमें थोडा विवादभी ओर शब्दमें मनुष्यका पूरा हाथ हे इसलिये उसमें विवादभी अधिक हे. परंतु जीवनव्यवहारमें उपयोगी हे, इसलिये उपरोक्त रीतिसे शब्द, ग्रहण करने योग्य हे ॥ ५४३ ॥

प्रेम, दया, न्याय भिन्न ओर अविरोधि ॥ ५४४ (प्रेम) ॥ **हितमें होनेसे** ॥ ५४५ ॥ **यथार्थमें लोकभय अयथार्थ** ॥ ५४६ (अयथार्थ) ॥ **सत् प्रवृत्तिमें प्रतिबंधक होनेसे** ॥ ५४७ ॥ **लोकनीति रहित वा परलोक विमुख पतितभी** ॥ ५४८ (अनार्य) ॥ **विषयवश स्वभाव होनेसे** ॥५४९॥ **न लोक अवश नीति अविरुद्ध विवेकी** ॥ ५५० (आर्य) ॥ **दूषितमें प्रवृत्त न होनेसे** ॥ ५५१ ॥ **केवल प्रारब्धवाद अज्ञान** ॥ ५५२ (प्रारब्ध) ॥ **पुरुषार्थजन्य होनेसे** ॥ ५५३ ॥ **न विभाग कर विवेक** ॥ ५५४ (विवेकी) ॥ **अवश जनानेसे** ॥ ५५५ ॥ **शरीरधारीमात्रको रागादि** ॥ ५५६ (राग) ॥ **प्रकृति स्वभावसे** ॥ ५५७ ॥ **मनकी स्थिरताभी** ॥ ५५८ (चंचल) ॥ **अभ्यासकृत परीक्षासे** ॥ ५५९ ॥ **परमें प्रियताभी स्वप्रियतासे** ॥ ५६० (प्रिय) ॥ **स्वकाम होनेसे** ॥ ५६१ ॥

अर्थ.—**प्रेम** अर्थात धर्म, जाति वा स्वार्थ रहित, किसी उत्तम (व्यक्ति वा विषय)में अनन्यभाव होना (चित्तकी अवस्था विशेष बस. ४६ । ४८ देखो). **दया**=दुःखीमें अनुकंपावृत्ति होना. **न्याय** अर्थात जेसा सत्-असत् हो उसके अ-

नुसार यथायोग्य व्यवस्था होना. यह तीनों स्वरुपसे जुदाजुदा अवस्था हैं, परंतु वे एक दूसरेकी विरोधी नहीं हैं[१] ॥५४४॥ क्योंकि यह सब हितमें होते हैं, अहितमें नहीं हैं ॥ ५४५ ॥ निष्कामता ओर यथायोग्य व्यवस्थाका सबमें प्रवेश हे. बालककी कुचेष्टापर उसको ताडन करना दया हे, दुष्टको दंड देना यह उसपर (दुःखप्रद दुर्गुणसे छुटाना) दया हे ओर दूसरे योग्योंको दुःखसे बचाना, यह दया हे. तथा कर्मका फल मिलना यह न्याय हे (क्या फल ओर किस प्रकारसे, यह दूसरी बात हे). उत्तममें प्रेमका आविर्भाव होना अपनेको लाभकारी होजाता हे ओर परके लाभका उत्तेजक होता हे. दुष्टोंपर दया, दया नहीं; निरपराधीको दंड देना, न्याय नहीं; अपनेको वा दूसरेको जो हानीकारक हो उसमें प्रेम होना, प्रेम नहीं; किंतु राग वा मोह हे. (विशेष मूलमें) ॥ ५४५ ॥

यथार्थ कथन वा मंतव्यमें लोकका भय रखना यथार्थ (बस. १९३) — उचित–ठीक–नहीं हे किंतु अयथार्थ–अनुचित–अठीक हे ॥ ५४६ ॥ क्योंकि इस प्रकारका भय (कमजोरी–उपेक्षा वा एसा व्यवहार) उपयोगी सत्यकी प्रवृत्तिमें आडरुप होजाता हे ॥ ५४७ ॥ " यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं ना करणीयं ना करणीयं, " यह वाक्य सोसाईटीके दासवास्ते जरुरी हे वा जहां धर्मराज्य न हो वहां इसकी अपेक्षा हे. परंतु जो मान, अपमान ओर अपने शरीरतककी प्रवाह नहीं रखते वे लोकके इस वाक्यकी प्रवाह नहीं करते. जेसे के राजा हरिश्चन्द्रादि हुये हें. अलबत्ते उस यथार्थ–सत्–का वर्तन प्रिय ओर हितरुपमें होना चाहिये, क्योंकि उसका फल तबही होता हे. एसा प्रकार हो तो बस हे ॥ ५४७ ॥ जो कोई निश्चित सर्वतंत्र लोकनीतिकी प्रवाह नहीं रखके स्वच्छंदी होजाता हे, किंवा परलोकवादको नहीं स्वीकारता हे, वोह संभव हे के पतितदिशा (शारीरक, मानसिक दुःख) को प्राप्त हो ॥५४८॥ क्योंकि एसे पुरुषका विषयवश होजाना, एसा मनका स्वभाव होजाता हे, उससे दुःखी होता हे ॥ ५४९ ॥ असत्य, चोरी, जिना, खून, विश्वासघात, परके तन-मन-धनका कुरीतिसे हरण, प्रतिकूल आहार-विहार–इत्यादि लोकनीतिसे विरुद्ध हे ॥ उन्मत गजमनकेलिये लोकनीति वा परलोकवाद (ईश्वर--पुनर्जन्म--मोक्षकी मान्यता) एक प्रकारका अंकुश हे के जो स्वछंदीपनेको रोकता रहता हे. उसमें स्वार्थ हानी ओर भय कारण हे. कितनेक जडवादी

---

[१] ईश्वर दयालु, न्यायकारी होसकता हे वा नहीं. इ. के निर्णयार्थ. तद्वत अन्य विषयोंमें आशय रहा हुवा हे.

परलोकवादियोंसे उत्तम नीतिवाले होते हैं, उसका कारण यह ओर विद्या हे. (यहां ४४६से विरोध नही हे)॥ ५४९ ॥ जो लोककी निंदा स्तुतिकी प्रवाह नहीं करते ओर निश्चित प्रवर्तका नीति (अ. ४) के विरुद्ध नहीं चलते, एसे विवेकी, पतित (दुःखी) नहीं होते ॥५५०॥ क्योंकि वे दूषित (स्व वा परके हानीकारक) विषयोंमें प्रवृत्त नहीं होते ॥ ५५१ ॥ केवल प्रारब्धवादका स्वीकार अज्ञान वा हठ जान पडता हे ॥ ५५२ ॥ क्योंकि प्रारब्धवाद, प्रारब्धका मूल-पुरुषका प्रयत्न (पुरुषार्थ) मानता हे ॥ ५५३ ॥ अर्थात पूर्वमें प्रयत्न (पुरुषार्थ) न कियागया हो तो प्रारब्ध कहांसे हो ॥ यदि बीज वृक्षसमान उभयका प्रवाह मानें तो केवल प्रारब्धवाद न रहा. जीव सादि हे, जीवके प्रयत्न विना ईश्वरने अपनेआप भाग (किसमत), कर्म ओर भोग नियत किया, एसा मानें तो प्रारब्ध शब्द न रहा. ओर न प्रारब्ध भोग. किंतु जीव परतंत्र हुवा प्रवृत्त होता हे, यह सिद्ध होगा. ओर जीव सादि हे याने स्वभावतः उसकी उत्पत्ति हे एसा मानें तो जीवके प्रारब्ध न ठेरे. इसीप्रकार शुदनी (भावी–चांस) वास्ते योजसकते हैं. सारांश केवल प्रारब्धवाद नहीं टिकता. तथाहि प्रारब्ध भाग ओर भावी अज्ञात हैं इसलियेभी पुरुषार्थपरही आधार रखना पडता हे ॥ ५५३ ॥ जो प्रारब्ध, संचित ओर क्रियमाण (बस. कर्मयोग देखो) का विवेकवाद हे[१] वोह अज्ञान (वाद) नहीं हे ॥ ५५४ ॥ क्योंकि पूर्व किये हुये कर्मका फल होना जीवके स्वाधीन नहीं रहता ओर न मनुष्य उसको जानसकता हे किंतु सृष्टिनियम (कुदरत) के आधीन होता हे ॥ ५५५ ॥ जीव अपनी मर्यादामें कर्म करनेमें स्वतंत्र हे ओर फल भोगनेमें परतंत्र हे (बस. २५). पूर्वजन्म न मानें ओर जडवादकाही स्विकार करें तोभी प्रारब्ध, संचित ओर क्रियमाणकी सिद्धि होती हे (२१ याद करीये). इसलिये "कर्मविवेक" अज्ञान नहीं हे ॥ ५५५ ॥ अवतारी हो, दूत हो, योगी हो, अयोगी हो, भक्त हो, अभक्त हो, जडवादी वा चेतनवादी हो निदान कोईभी हो परंतु शरीरधारी हो तो उसको राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, सुख, दुःख, संस्कार ओर ज्ञान–यह जरुर होते हैं ॥ ५५६ ॥ क्योंकि शरीर संबंधवाले चितकी एसी स्वाभाविक प्रकृति होजाती हे ॥ ५५७ ॥ परंतु इतना अंतर हे कि जो विवेकी ज्ञानवान हैं उनको सुख, दुःख, संस्कार होता तो हे परंतु उसमें उनको राग-द्वेष, हर्ष–शोक नहीं होता; कारणके वृत्ति विषयांतर रहती हे, ओर उनके रागादि

[१] तकदीर ओर तदबीरमें अंधपुंग न्याय हे.

यह बाधित वृतिवाले होते हैं, इसलिये वे वीतराग कहाते हैं (बस. ४०० से ४०३ तक देखिये). किंवा जो वे व्यवहारसे संबंधी हों तोभी उनके रागादि पानीकी लकीर समान होते हैं; इसलिये उनको ज्यादे नहीं सताते. ओर जो विषयी, दुराचारी, आपस्वार्थी, अज्ञानी वा प्रकृतिके नियमोंके विरुद्ध चलनेवाले हैं उनके रागादि पत्थरकी लकीर समान होते हैं; इसलिये आगमापाई (उत्पत्ति-नाशवाले) होते हुयेभी उनको ज्यादे सताते हैं ॥ ५५७ ॥ कितनेक एसा मानते हैं कि मन कभीभी स्थिर नहीं होसकता, परंतु सर्वथा एसा नहीं हे. किंतु वैराग्य अभ्याससे कुछ कालकेलिये रुकभी सकता हे ॥ ५५८ ॥ यह अभ्यासीकी परिक्षा सिद्ध बात हे (योगदर्शनानुसार करके देख लीजे) ॥ ५५९ ॥ गाढ सुषुप्तिमें मन स्थिर होता हे (पृथ्वीके साथ उसकी गति होना यह दूसरी बात हे), कलोराफारम सूंघनेसे ठेरता हे. (शं.) परवश. (उ.) वहांभी वैराग्य ओर प्राणायामादिके अभ्यासवश ॥५५९॥ दूसरेमें जो प्रियता हे वोह अपनी प्रियतासे हे याने सो अपनेमेंही प्रियता हे, एसा जान्ना चाहिये ॥५६०॥ क्योंकि जिसमें प्रियता हे उसमें हमारी सकामता हे, इसलिये परमें प्रियता हे ॥५६१॥ स्वकामताके भेद हैं. जैसा अपनेको दुःख सुख होता हे वेसा सबको होता हे, अपनी आत्माकेसमान सर्वमें आत्मा समान हे ॥ पुत्रके मित्रमें प्रियता पुत्र वास्ते, ओर पुत्रमें प्रियता अपने वास्ते हे. पति--पतनीकी प्रियताभी एसीही हे. पुत्रकी रक्षार्थ द्रव्य खर्च करदेते हैं, परंतु जब पुत्र, पिता दोनोंके वस्त्र वा अंगमें आग लगे तब पहेले अपने बुझाये जाते हैं. जिंदगीका साधन जो लोही सो जो बिगडके दुःख दे रहा हो तो उसकोभी निकालाजाता हे. हस्तादिपर प्रहार हो तो कमर ओर चक्षुआदिपर प्रहार हो तो हाथ आगे करदिया जाता हे, एसा स्वाभाविक होता हे. चक्षुकी पीडा दुःख दे रही हो तो काना होजाना पसंद करता हे, मन दुःख दे रहा हो तो उसके निग्रह करनेके उपाय लेता हे, प्राण दुःख दे रहे हों तो प्राणत्याग पसंद पडता हे. इत्यादि उदाहरणोंसे साबित होता हे कि परमें जो प्रियता हे वोह अपनेमें हे (अपने स्वार्थमें हे.) याने अपनेको अपने आप (अपना आत्मा) प्यारा हे. एसेही सबके आत्मावास्ते हे. दूसरेमें जो द्वेष—वैरभाव होता हे उसमें स्वार्थ, हानी वा अज्ञानता कारण हे, उससे प्रियताका बाध होजाता हे, एसे आत्महंता कहाते हैं ॥ जो विवेकी समदर्शी होते हैं उनकी दृष्टि, 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' होनेसे रागादि रहित अकथ्य प्रकारकी ओर स्ववेद्य होती हे (विशेष मूल ओर बस. में) ॥ ५६१ ॥

स्वभाव सृष्टिनियम ओर योग्यतावश अगम्यमें प्रवृत्ति॥ ५६२ (मति)॥ **सकंप वा निष्कंप प्रवृत्ति, बुद्धि विश्वाससे** ॥ ५६३ (मोह) ॥ **स्वकृपादि श्रेयके हेतु** ॥ ५६४ (कृपा) ॥ **ममतादि प्रतिबंधक** ॥ ५६५ (रुंधन) ॥

अर्थ.—मनुष्य जिस विषयको नहीं जानसकता, जिसे मन बुद्धिसे परे मानता है अथवा जिसके जाने बिनाभी सृष्टिमें जीवन होसकता है, उस विषयमेंभी उसकी प्रवृत्ति होती हे; क्योंकि शोध करनेका उसका स्वभाव हे, ओर शोधन करनेकी उसमें योग्यता हे ओर उसके स्वभाव तथा प्राप्तयोग्यताका उपयोग हो यह सृष्टिनियम हे; इसलिये योग्य मनुष्यकी अगम्यकी शोधमेंभी प्रवृत्ति होती हे ॥ ५६१ ॥ यद्यपि इस प्रवृत्तिका फल हो वा न हो यह दूसरी बात हे, ओर अगम्यमें प्रवृत्ति यह वाक्यही नहीं बनता; तथापि अन्यको लक्ष्यालक्ष्य ओर अपनेको अगम्य जानके वा किसीकी कल्पना वा सुने-सुनाये विषयपर दोड करता हे. (विशेष मूलमें) ॥ ५६२ ॥

बालकोंकी प्रवृत्ति माताके विश्वाससे होती हे, अथवा सफल निष्फलके विचार विना स्वाभाविक होती हे ओर उन्मतोंकी प्रवृत्ति प्रकृतिके प्रवाहवश होती हे, इन उभयकी प्रवृत्ति प्रस्तुत प्रसंगकी विषय नहीं हे. (सूत्रार्थ)—साधारण तो पूर्व न जाने हुये विषयमें आद्यप्रवृति सकंप याने संशय सहित होती हे, ओर परिचित होने पीछे निष्कंपप्रवृति (प्रवृति वा निवृति) होती हे. इन प्रवृत्तिओंमें बुद्धि विश्वास निमित्त हे ॥ ५६३ ॥ थीयरी (पद्धति-शैली), मत (मतिसे मानलेना) ओर प्रायोगिक-यह तीन प्रकार हें. आकर्षणवाद थीयरी हे. ईश्वर अनिश्वरवाद मत हे. जल कंपोंड हे, औक्षजन तत्व हे-यह प्रयोगिक हे. यह तीनों मंतव्य बुद्धि विश्वाससे हें. कार्यसे कारणका निश्चय करना वा कारण मानके उस अनुसार कार्यकी व्यवस्था करना, यह दो थीयरी हें. तत्वदर्शनकी थीयरी कार्यसे कारणपर जानेकी हे. यह सब बुद्धि विश्वाससे हे. आद्यप्रवृत्ति पीछे, प्रवाहसे प्रवृत्ति होना १, ओर परिचित हुये पीछे, सकारण-सयुक्त-बुद्धि विश्वास होना २, यह इन उभयमें अंतर हे. याने उत्तर प्रकारमें स्वाभाविक वा स्वतंत्रप्रवृत्ति हे, पहेले प्रकारमें बुद्धिको व्याप्ति, नियमादि कारणके वश होजाना पडता हे. परंतु बुद्धिका आधार उभयमें हे. शोधक जिज्ञासुको यह विषय विचारणीय हे ॥ ५६३ ॥

स्वकृपादि अर्थात स्वकृपा (उत्कट जिज्ञासा-दृढप्रयत्न-उत्साह होना), विद्या बुद्धिकी कृपा (कुछ विद्या सीखी हो, कुछ विवेक करने योग्य बुद्धि हो), दैव-

कृपा (पूर्व संचित' उत्तम हों, जिज्ञासा पूरी होनेके सहकारी हों-एसे हों, इसीको ईशकृपाभी कहदेते हें), ओर गुरुकृपा (शिक्षककी पूर्ण यह इच्छा हो कि हानी-रहित येनकेन प्रकारेण इसको बोध प्राप्त हो), यह चार कृपा मुख्यश्रेय (इष्ट) प्राप्तिकी हेतु होती हें ॥ ५६४ ॥ इन चारोंमें जितनी न्यूनता होगी उतनीही इष्ट-प्राप्तिमें हरकत होगी वा जो चारोंमेंसे एककीभी खामी रही तो इष्टकार्य न होगा. यह नियम, व्यवहार (प्रेयस्) ओर परमार्थ (श्रेयस्) उभयप्रसंगमें लगता हे. परंतु कहीं साक्षातसे ओर कहीं परंपरासे लगता हे. जडवाद ओर चेतनवाद इन उभयपक्षमेंभी लगता हे. (विवेचन मूल ओर बस. २४५ । २४६में हे) ॥५६४॥

इष्ट (श्रेय) सिद्धिमें ममत्वादि ११ आड होजाते हें अर्थात भूतप्रतिबंध, भाविप्रतिबंध ओर ममतादि ९ वर्तमानप्रतिबंध यह तीन विघ्न होते हें ॥ ५६५ ॥ (१) भूतकालमें जो दृष्ट अथवा अदृष्ट--प्रतिकूलकारण पेदा होचुके उसे भूतप्रतिबंध कहते हें. यथा मातापिताके रोग ओर कुविचारका तनमनमें अवतरण वा पूर्वजन्म-कृत अनिष्ट संचितकर्म (संस्कार). (२) प्रतिकूल भावीके जो मूल किंवा भावीमें जो प्रतिकूल होनेवाले हें वे भाविप्रतिबंध हें. यथा वडीलउपारजित क्षय, दम वगेरे. किंवा वेसे बलवान कर्म कि जिनका फल उत्तर जन्म हे. (३) जो वर्तमानमें पेदा होरहे हें वा वर्त्तमानमें फलप्रद हों वे वर्तमानप्रतिबंध हें. वे अनेक हें तथापि जिस उद्देशसे इस ग्रंथकी रचना हे उस उद्देश पूरा न पडने देनेमें ९ वर्तमान मुख्यप्रतिबंध हें वे यह हें-**ममता** (दृश्य भोग भोगायतनमें मेरेपनेका अभिमान–गांठ), **मंदता** (बुद्धि मंद), **कुतर्क** (निकम्मी सुशकतर्क. यथा पीडा नजर नहीं आती इसलिये नहीं हे. ई.), **कुसंग** (मूर्ख, दुराचारी, अविद्वानके साथ सहवास होना), **दुराग्रह** (अपना मंतव्य कथन वा अमुक ग्रंथका कथन ठीक न हो तोभी पक्षपातसे उसेही मान्ना वा उसकी सिद्धिमें वा उसके न छोडनेमें उद्यत होना), **शंका** (अमुक शिक्षण वा विषय मुझे प्राप्त होगा वा न होगा एसा संशय), **भय** (में इस वातको सीखुंगा वा करुंगा तो मेरी हानी होजायगी इत्यादि. झूंटी भीती), **आसक्ति** (हानीकारक विषयोमेंभी वा विषय सेवनमें मोह), ओर **सिद्धि** (मंत्र, जंत्र, भूत, देवता वा योगबलसे जो सिद्धि प्राप्त होती हें उनको मानके उनमें प्रतिष्ठा

'रजवीर्य, मातापिताके संस्कार, गर्भमें संस्कार, माताकी खूराक.—यह जडवादियोंके संचितकर्म कहाते हें. चेतनवादमें जीवके पूर्वजन्ममें किये कर्म संचित कहाते हें. जिन किये हुये कर्मोंका फल भोग रहे हें वे प्रारब्ध कहाते हें.

अर्थ इच्छा रहना वा उसमें लगे रहना अर्थात जो सृष्टिनियमके विरुद्ध बातें हें उनको सुनसुनाके उनमेंभी प्रवृत्त होना) ॥ यह ९ वर्त्तमानप्रतिबंध हें. किसी विद्यार्थिको जो वर्त्तमानप्रतिबंध हों तो वोह यथायोग्यविद्या संपादन नहीं करसकता. परंतु यह सब प्रतिबंध निवारण होसकते हें. तद्वत् भूतप्रतिबंधभी पुरुषार्थसे दूर होसकता हे. अलबते कोई भावीप्रतिबंध हो तो उसकी निवृत्ति कठिन होती हे तथापि वोह न होके हुवा हे इसलिये प्रबलप्रयत्नसे निवारण होने योग्य हे; क्योंकि पुरुषप्रयत्न बलवान हे. सर्व प्रकारसे प्रयत्न करते हुयेभी निवारण न हो तो संतोषपूर्वक भोग लेनाही पडता हे.

सार यह आया के शोधकजिज्ञासुको उक्त ४ कृपा संपादन करना चाहिये ओर प्रतिबंध हों तो उनको दूर करना चाहिये; तब इष्टकी प्राप्ति होसकेगी. जेसे कृपाबोधक नियम, व्यवहार तथा परमार्थ ओर जडवाद तथा चेतनवादमें लगते हें, वेसेही प्रतिबंधसूचक बातोंके वास्तेभी यथायोग्य योजलेना चाहिये.

इन उभय सूत्रोंका शंका समाधान उदाहरण सहित विस्तार, मूल ओर बस. में हे ॥ ५६५ ॥

प्रमाणादिका फल—(परिणाम–उपयोग).

संगति–उपर जो प्रमाण ओर अप्रमाणप्रकरण कहागया हे, उसमें जो विषय वहां नहीं लिखसकते थे ओर उनका बयान होना आवश्यक हे; उनका विशेषमें बयान हो ओर जीवनियमप्रकरणमें उनकी गणना हो, इस दृष्टिसे परिणाम (फल–उपयोग) यह नवीन संगति पेदा होनेपर उन विषयोंका बयान वक्ष्यमाण सूत्र ५६६ से लेके ६५६ तकमें कियाजायगा. ओर यह प्रसंगही जीवनियमप्रकरणका उपसंहार हे.

प्रत्यक्षका निष्कंप व्यापार परिणाम ॥ ५६६ (स्वतः प्रवृत्ति) ॥

अर्थ.—उपरोक्त प्रत्यक्षप्रमाणका यह फल (परिणाम) होता हे कि सफल प्रवृत्ति हो अर्थात निष्कंप व्यापार (व्यवहार) हो. जेसा के उपर अपवाद सहित कहागया हे ॥ ५६६ ॥

अनुमानका परोक्ष भान ॥ ५६७ (अनुप्रवृत्ति) ॥ **यथा क्रिया गुणवानसे तद्वानकी सिद्धि** ॥ ५६८ (विशेषण) ॥ **कार्य कारणादिसे परस्परकी** ॥ ५६९ (व्याप्ति) ॥ **अन्वय व्यतिरेकसे योग्यता ओर कारणताकी** ॥५७० (योग्यता) ॥ **परिशेषसे परिशेषीकी** ॥ ५७१ (अवशेष) ॥ **अनिरुद्ध अ-**

व्यभिचारी सहचारी हेतुसे अनुमिति ॥ ५७२ (शुद्ध) ॥ न अन्यथा हेत्वाभास वत् ॥ ५७३ ॥

अर्थ.—अनुमानप्रमाणसे परोक्ष विषयकी समझन होजाती हे यह परिणाम होता हे ॥ ५६७ ॥ (चार सूत्रोंमें उसका उदाहरण हे) । जेसे के जो अगोचर पदार्थ हें उनकी सिद्धि वा समझन, उनकी क्रिया ओर उनके गुण (योग्यता)से होजाती हे. इसके विना नहीं होती ॥ ५६८ ॥ यथा चंबुकके सामने लोहा खिंचनेपर चंबुकगत अदृष्ट विजलीकी सिद्धि होजाती हे. क्योंकि चंबुकमें गति नहीं हुई हे ओर लोहा खिंचा हे; अतः चंबुकमेंसे गतिवान कुछ बाहिर गया ओर उसने खेंचा याने वोह गति ओर खेंचनेकी योग्यता--गुणवाला हे, एसी समझन हुये उसका अनेक प्रकारसे उपयोग लियागया ओर उसका नाम विजली रखा. अग्नि तत्वकी, उष्णतासे ओर वायुकी स्पर्शसे सिद्धि होजाती हे. हृदय ओर प्राणकी गति प्रसिद्ध हे, इस वास्ते वे कोई वस्तु हें, एसी सिद्धि होजाती हे ॥५६८॥

ओर कार्य-कारण १, उपादेय-उपादान २, परिणाम-परिणामी ३, अंगी-अंग ४, अवयवी--अवयव ५, साधन--साध्य ६, व्याप्य--व्यापक ७, संबंध-संबंधी ८, तादात्म्य ९, (समवाय १०)—इनसे उनउन—परस्परकी सिद्धि होजाती हे ॥५६९॥

वि.—पदार्थसिद्धिमें दो पद्धति हें--कार्यसे कारणपर जाना १, ओर कारणसे कार्यपर आना तथा उस अनुसार व्यवस्था बांधना २. कारणको मानके कार्यकी व्यवस्था करनेमें भूल होजाती हे, यह थीयरी संतोषकारक नहीं होती. परंतु जो कारणका ज्ञान हो वा सिद्ध कारण हो तो, उससे कार्यकी व्यवस्था-योजना ठीक पडती हे. ईश्वर वा कोई एक शक्ति हे एसा मानके उसको जगतका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण वा अन्यथाकर्त्ता ठेराके जगतकी व्यवस्था करना, यह दूसरा प्रकार हे. कार्य, कारणके विना नहीं होता ओर परिच्छिन्न गतिमान, आधारके विना नहीं होता; अतः कोई मूल कारण—मूलाधार होना चाहिये, यह पहली पद्धति हे. कार्य कारणादिकी परस्परमें सिद्धि--यह व्याप्तिसे होती हे; अतः अनादरणीय नहीं हे. सूत्रोक्तके उदाहरण यह हें, क्रमशः लगा लेना. (१) कुरसीसे उसके कर्त्ताकी, गरमीसे वर्षाकी. (२) पटसे रुईकी, माटीसे घटकी. (३) दहीसे दूधकी, पानीसे बर्फकी. (४) पत्तेसे वृक्षकी ओर वृक्षसे पत्तेकी. (५) मनुष्यसे मन वा मगजकी, जंगलमें हाथ कटा देखके मनुष्य वधकी. (६) धूमसे अग्निकी, क्षुधा निवृत्तिसे भोजनकी. (७) गतिवानसे देशकी, सर्वव्यापक देशसे गतिवानकी.

(८) संयोगसे संयोगीकी, संयोगीसे संयोगकी. (९) प्रकाशसे उष्णताकी ओर उष्णतासे अग्निकी. (१०) माटीसे घटकी ओर घटसे माटीकी सिद्धि वा समझन होजाती हे ॥ यहां कारण, उपादान, उपादेय ओर निमित्त इन ४ अधिकरणकोभी यादमें लीजे. उपरोक्त तमाम विषय वा उदाहरण एक अनुमानप्रमाणके विषय हें. हमारे जन्मसे पूर्वकी कार्यकारणादिकी व्याप्ति हें, एसे उदाहरण दिये हें. परंतु इस पद्धतिके ज्ञानसे परोक्ष पदार्थोंकीभी समझन होजाती हे; इसलिये यह सर्वमान्य दृष्टांत वा उदाहरण ठीक हें. ओरभी कार्यकारण, इतने पदसेही आशय निकल आता था अर्थात् उपादेयउपानादिसंज्ञा ज्यादे कहनेकी अपेक्षा नहीं थी. परंतु पक्षकारोंमें मतभेद हें ओर व्याप्तिके बडे झगडे हें; इसलिये गौरव कियागया हे. (विस्तार मूलमें ओर पहेले अध्यायमें) ॥ ५६९ ॥

ओर अन्वयव्याप्ति तथा व्यतिरेकीव्याप्तिसे पदार्थकी योग्यता ओर कारणताकी सिद्धि वा समझन होजाती हे ॥ ५७० ॥ यथा जलमें औक्षजन ओर उदजनका अन्वय हे इसलिये विलक्षण प्रकारका जल होता हे ओर उनके विना विलक्षण रुपवाला जल नहीं बनता; इस अन्वय व्यतिरेकीसे जलमें जो विलक्षणत्व हे उस विलक्षण योग्यताकी उनमें होनेकी सिद्धि होती हें ओर उन उभयमें जलका उपादानत्व (कारणता) हे, यह सिद्ध होजाता हे तथा अग्निमें जलका ओर अग्निका जलमें व्यतिरेक हे, इससे उनकी योग्यताका भान होजाता हे ॥ ५७० ॥

जो अन्यप्रकारसे सिद्ध न होता हो तो एसे परिशेषकी परिशेषानुमानद्वारा सिद्धि होजाती हे ॥ ५७१ ॥ यथा सर्वाधारकी सिद्धि करनेपर आत्माश्रय दोष आता हे वा अनवस्था चलती हे, वहां परिशेषसे स्वयंभू आधारकी समझन होती हे. जितना उतना होनेसे कोई असीम नहीं, इतने तर्कपर " पररहित " एसा परिशेषसे सिद्ध होता हे. विभुमें स्वरुपाप्रवेश होनेसे ओर व्याप्यदर्शनसे व्याप्य, विभुके अस्तित्वसे विलक्षण हे, एसा परिशेषसे मान्ना पडता हे. इसप्रकारको सामान्यतो दृष्ट अनुमानभी कहदेते हें ॥ ५७१ ॥

उपर अनुमान होनेकी जितनी रीति कही हें उन सबमें एसा हेतु होना चाहिये कि जो हेतु हुयेभी हेतु स्वरुपमें न भासे एसा न हो अर्थात अनिरुद्ध (लक्षण पूर्वमें कहे हें) हो ओर अपने साध्यका व्यभिचार रहित सहचारी हो याने साध्यकी उसमें व्याप्ति हो—एसे निर्दोष होनेसे अनुमिति करना चाहिये ॥५७२॥ जो एसी निर्दोष व्याप्ति न हो तो किया हुवा अनुमान (अटकल—परोक्षकी समझ-

न) मान्य नहीं होसकता–विश्वासपात्र नही होता. जेसे के जो हेत्वाभास हो वोह साध्यकी सिद्धिमें मान्य (साधक–साधन) नहीं होसकता, वेसेही वोह अनुमान विश्वासपात्र–मान्य नहीं होता. (यहां मध्यस्थाधिकरणकोभी यादमें लीजिये. विशेष विस्तार अ. १ के दर्शनसंग्रहगत न्या. वै. मतमें हे. पूर्वोक्त अनुमान प्रसंग सू. ५२ । ५४ का विवेचन ध्यानमें लीजिये) ॥ ५७३ ॥

(शं). अन्य ग्रहोंमें मान्य व्याप्तिसे अन्यप्रकार क्यों न हो ? सुस्से सींगवाले क्यों न हों ? मोर, सर्पका मित्रभाव क्यों न हो, पुरुष, स्त्रीके संयोग विना संतानोत्पति क्यों न हो ? इ. होना संभव हे. ओर एसा ग्रंथोंमेंभी सुनते हैं; अतः अनुमानप्रमाण मान्य नहीं. (उ.) आपकी शंका हमारे अनुकूल हे अर्थात वेसे नहींभी क्यों न हों ? दृश्य समान क्यों नहों ? सारांश व्याप्ति विना आपका कथन मान्य नहीं होसकता. (शं.) हमारे जन्मके पूर्वकी व्याप्ति, प्रत्यक्षप्रमाणका विषय हे उससे परोक्षका अनुमान नहीं होसकता (उ.) आपकी आंख, मुख ओर नाक आपने कभी प्रत्यक्ष देखे ? व्याप्तिद्वाराही मानते हो. प्रत्यक्ष नहीं[१] ॥५७३॥

शब्दका परोक्ष अपरोक्ष संबंधी व्यापार ॥ ५७४ (परतः प्रवृत्ति) ॥ **सांकेतिक भान होनेसे** ॥ ५७५ ॥ (शब्द शक्ति)–

पदार्थ स्मृतिका हेतु संकेत भान न संकेत मात्र ॥ ५७६ (पद) ॥ **संकेत अनेकार्थमें कल्पित होनेसे** ॥ ५७७ ॥ **ओर संकेतमें अर्थबोधक शक्ति सिद्ध न होनेसे** ॥५७८॥ **एवं शाब्दबोधकाभी** ॥ ५७९ (वाक्य) ॥ (अनुपयोग)—**तात्पर्य शून्यसे शाब्दबोध नहीं** ॥ ५८० (अबोध्य) ॥ **संदिग्धसेभी** ॥ ५८१ (न बोध) ॥ **विशिष्टके वाच्यका भिन्न ग्रहण नहीं** ॥ ५८२ (वाचक) ॥ **पित्तल वत्** ॥ ५८३ ॥ **विवेचन हुये व्याकरणकी बाहुल्यता बाधक नहीं** ॥ ५८४ (प्रयोजन) ॥ **आशय इष्ट होनेसे** ॥ ५८५ ॥ **सदोष हो तो अन्यथा निर्णय** ॥ ५८६ (निर्णय) ॥ **विवादित हुयेभी** ॥ ५८७ (विवादित) ॥ **ओर संशयप्रसंगमेंभी** ॥ ५८८ (संशयी) ॥ **सफलतामें दृष्टि होनेसे** ॥ ५८९ ॥

अर्थ.—शब्दद्वारा परोक्ष (मनके विचार–दूरस्थ पदार्थ वगेरे) ओर अपरोक्ष पदार्थ संबंधी व्यापार होसकना, यह शब्दप्रमाणका परिणाम (उपयोग) हे

---

[१] अन्यके चक्षु वगेरेके देखनेसे वा प्राप्त प्रतिबिंबके दर्शनद्वारा अनुमान करते हो ओर उसकी त्वचा, त्वचाद्वारा जानते हो.

॥ ५७४ ॥ क्योंकि शब्द यह सांकेतिक भान (समझन) हे ॥ ५७५ ॥ प्रत्यक्ष प्रमाणसे प्रत्यक्षकाही उपयोग होता हे. अनुमानप्रमाणसे परोक्षका भान होता हे. परंतु शब्दप्रमाणसे परके आंतरीय विचार ओर परके देखे हुये परोक्षकाभी भान होता हे ओर कहीं कहीं अपरोक्ष पदार्थकाभी भान होजाता हे. कारणके शब्द यह अर्थबोधकेलिये बनाया हुवा संकेत हे ओर उसके अर्थकी बुद्धिमें समझन हे. (विवेचन उपर आगया हे) ॥ ५७५ ॥ आगे शब्दशक्तिका बयान हे.—

पदार्थकी स्मृतिका हेतु संकेतभान हे नहींके पद वा वाक्यमात्र ॥ ५७६ ॥ कल्पित पद (शब्द) की कल्पितवृत्ति (शब्दार्थ) सहित पदपदार्थका कल्पित संबंध, इनके जानवाली जो बुद्धि उसको **संकेतभान** कहते हें, इसलिये पदार्थ स्मृतिका हेतु (जिस बुद्धिमें शब्द संकेतका भान हुवा हे सो) उक्त बुद्धि (संकेत भान) हे, नहींके पद वा वाक्यमात्र हे ॥ ५७६ ॥ क्योंकि जुदाजुदा देश–मंडलमें एकही संकेत (शब्द) अनेकार्थ वास्ते कल्पा गया हे वा कल्पा जासकता हे ॥ ५७७ ॥ ओरभी संकेत (पद) में अर्थ जनानेकी स्वतः सिद्ध शक्ति सिद्ध नहीं होती. इन दोनों हेतुसे पदार्थ स्मृतिका हेतु संकेत भानही सिद्ध होजाता हे॥५७८॥

जेसे के बनमाणस स्वादिष्ट फल बनस्थ कबाडी मनुष्योंको देजाते देखा हे. उससे सिद्ध होता हे के अर्थ जान्ने वा संतानको जनानेकी शक्ति शब्दमें नहीं हे किंतु संस्कारी बुद्धिमें हे.

जेसे कपडोंकी लाल, पीली झंडी बनाके जो लाल दिखावें तो अंजन ठेरालेना, पीली दिखावें तो मंद चलाना, एसे ड्राईवरको समझा दें तो प्रसंग आनेपर वोह वेसाही करता हे, क्योंकि संकेत देखके उसकी बुद्धिमें उसी अर्थकी स्मृति होती हे. जो झंडीमें यह शक्ति होती तो उसी झंडीको दूसरे संकेत (लाल झंडी देखनेपर जलदी चलाना) में नहीं लेसकते. तारके डोडवार्डके संख्यावाले संकेतभी एसेही हें. इसीप्रकार कुदरती शब्दोंके अ. क. वगेरे पुनः उनसे अर्थबोधकोलिये पदवाक्यरुप संकेत बनायेगये हें. तहां पहेले पद पदार्थके संबंधके संस्कार बुद्धिमें होते हें, इसको संकेतभान कहते हें; उस पीछे यथा प्रसंग पदसे उसके अर्थकी स्मृति होती हे. जो बुद्धि, संकेत भान इस पदवीको प्राप्त नहीं हुई हे, उसको पदश्रवणसे अर्थकी स्मृति नहीं होती. इसलिये संकेतभानमें अर्थबोधकी शक्ति[१] (योग्यता)

[१] यहां शक्ति कोई वस्तु नहीं हे, किंतु बुद्धिकी योग्यता वा अवस्थाका नाम हे. परंतु पदकी शक्ति, इस संबंधमें विद्वानोंकी महान तकरार–विवाद हे.

हे. जो पदमें होती तो राम पदश्रवणसे ईरानी नाराज ओर हिंदु प्रसन्न न होता. क्योंकि ईरानीकी बुद्धिमें राम अर्थात अनुचर ओर हिंदुकी बुद्धिमें ईश्वर एसा संकेतभान हे. एसे अनेकार्थी अनेक शब्द हें. (यथा अप. के २० अर्थ हें). शब्दशक्ति प्रसंगमें विद्वानोंका मतभेद हे. यथा–पद नित्य उसमें अर्थ जनानेकी स्वतःसिद्धशक्ति १, पदमें ईश्वरकी शक्ति २, पदमें ईश्वरदत्त शक्ति ३, प्रकृति प्रत्ययके स्फोटनमें शक्ति ४, इत्यादि पक्ष हें. मान्यग्रंथको स्वतःप्रमाण वा ईश्वरीय ठेरानेकेलिये इसप्रकारका प्रयास हो एसा जान पडता हे. (विस्तार मूलमें) ॥ ५७८ ॥ वाक्य (शब्द) के ज्ञानद्वारा जो ज्ञान होता हे उसे शाब्दबोध कहते हें. इस शाब्दबोधका हेतुभी उक्त संकेतभान हे, वाक्य वा पदमात्र नहीं हे, यह उपरके कथनसे स्पष्टही हे ॥५७९॥ जो वाक्य तात्पर्य शून्य हो उससे शाब्दबोध नहीं होता. जेसे के " कपचलय " इस तात्पर्य शून्यसे कुछ बोध नहीं होता ॥ ५८० ॥ जो संश्यात्मक (अस्पष्ट–द्विअर्थि) वाक्य हो उससे (वक्ताके आशयवाला) शाब्दबोध नहीं होता. यथा-आत्मासे आकाश हुवा, लाख टकेकी सेर, आकाशीवृत्ति, आकाशी रोटी, शरीरी. यह वाक्य द्विअर्थि होनेसे वक्ताके आशयवाला शाब्दबोध नहीं होता. तद्वत प्रत्यय वा मात्राकी जिस वाक्यमें भूल हो उस संदिग्धसे शाब्धबोध नहीं होता ॥ ५८१ ॥ जो शब्द, विशेषण विशेष्य उभय याने विशिष्टका वाचक हो, उसको विशिष्टबोधकशब्द कहते हें, एसे विशिष्टके वाच्यका भिन्न याने उसमेंसे एकका ग्रहण ओर एकका त्याग नहीं कियाजाता, किंतु उभयका ग्रहण होता हे ॥ ५८२ ॥ जेसे के पीतल कहनेसे अकेले तांबा वा अकेले जसदका ग्रहण नहीं होता, किंतु उभयका ग्रहण होता हे ॥ ५८३ ॥ परंतु जहां भिन्न ग्रहणकी अपेक्षा हो याने फर्ज पडे वहां लक्षणाके जो नियम हें उन अनुसार ग्रहण होता हे; मनमुखी नहीं ॥ ५८३ ॥ जबके वक्ताने अपने वाक्यका आशय खोलदिया हो (विवेचन करदिया हो) वहां जो व्याकरण वा कोशके बलसे (वा रुढी वश) अनेक अर्थ होसकते हों तोभी किंवा वक्ताके विवेचनानुकूल शब्दार्थ न होसकता हो तोभी दूसरा अर्थ नहीं लियाजासकता ॥ ५८४ ॥ क्योंकि वक्ताका प्रयोजन क्या हे, इतना मालूम होनाही वहां इष्ट हे ॥ ५८५ ॥ अब वोह आशय ठीक हे वा नहीं वा उसके पदके अनुसार अर्थ बेठा वा नहीं, इससे विशेष प्रयोजन नहीं होता. ओर जहां विवेचनभी नहीं हुवा वा आशय स्पष्ट नहीं हे, वहां व्याकरण कोशादिके बलद्वारा अर्थके नियमानुसार (याने पूर्वापर प्रसंग, संगति, तबके देशकाल रुढी वगेरे देखके) अर्थ करनेकी आवश्यकता होती

हे. नहींके व्युत्पत्तिमात्रसे अर्थ लियाजाय[1] (विशेष मूल ओर बस. में) ॥ ५८५ ॥ जिस वाक्यार्थमें कोई अतिव्याप्ति आदि दोष हों तो उसको छोडके इष्ट विषयका अन्यप्रकार निर्णय कर्तव्य हे ॥ ५८६ ॥ जो वाक्य अपने अर्थमें विवादवाला हो तोभी उसको छोडके इष्ट विषयका अन्यप्रकार निर्णय कर्तव्य हे ॥ ५८७ ॥ जो वाक्य संशयात्मक हो तो उसको छोडके इष्ट विषयका अन्यप्रकार निर्णय करना चाहिये ॥ ५८८ ॥ कारणके सफलतामें दृष्टि होती हे, शब्दमात्रमें प्रयोजन नहीं होता हे. जिससे इष्ट सफल न हो उसमें माथा मारना व्यर्थ हे ॥ ५८९ ॥ अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असंभव, विपरीतभाव, अर्थकी तकरार, अनेकार्थत्व, अस्पष्टता, वदतोव्याघात, अनुपयोगीत्व, परिक्षामें बाधित, इत्यादि प्रकारवाले वाक्यसे इष्टफल नहीं निकलता; इसलिये एसे वाक्योंके आधार बेठनेकी अपेक्षा नहीं हे. हां. किसी देशकाल वा किसीकी स्थितिको उद्देश करके वा उस कालकी रुढी लेके कहागया हो तो इसको विचारलेना चाहिये अर्थात खंडनकी प्रकृतिवश उसके निषेधमें प्रवृत्त होना सुज्ञोंका वा शोधकोंका काम नहीं हे ॥ ५८९ ॥

(तबके) **शक्यार्थ होते लक्षणा अमान्य** ॥ ५९० (वाच्यार्थ) ॥ **अनेकांतकी संभावनासे** ॥ ५९१ ॥ **प्रसंगवशात योग्यतासे लक्षणा** ॥ ५९२ (लक्षणा) ॥ **तात्पर्य अनुपपत्तिभी बीज** ॥ ५३९ (बीज) ॥

अर्थ.—जिससमय जिसभावमें शब्दकी योजना हुइ हे उस अनुसार अर्थ होनेसे वक्ताका आशय निकलता हो तो लक्षणा करनेका अस्वीकार होता हे ॥ ५९० ॥ क्योंकि जो एसा न मानें तो अनेक अर्थ ओर अनेक भावार्थ (लक्षणा) लेनेकी संभावना (आपत्ति) होती हे. परंतु वक्ताका आशय एकांत हे; अतः शक्यार्थ (वाक्यार्थ) होते हुये लक्षणा (भावार्थ) अमान्य हे ॥ ५९१ ॥ जब लक्षणा करनेकी आवश्यक्ता हो तो पूर्वापर अविरोध, प्रस्तुत प्रसंग, संगति ओर सं-

[1] जो प्रसंग, आशय ओर सभ्य व्यवहारपर दृष्टि न डालें तो व्याकरणके उणादि प्रत्यय ओर व्याकरणकी बाहुल्यतासे एक पद, वाक्यके अनेक अर्थ होसकनेसे अनृत ग्रहण होनेकी संभावना हे. यथा ईश्वरको विष, चंडाल, चोर ओर पाखंडी ठेरायाजाय तो ठेरासकेंगे-यथा-गिरति प्रलयकाले सर्वेषां शरीराणीतिगरलः ॥ चंडयति दुष्टान इति चंडालः ॥ चोरयति दुष्टानां सुखधने इति चौरः ॥ पापं खंडयति इति पाखंडी ॥ " वारवार " इसके ९ ओर " बेचारा " इसके ११ अर्थ होजाते हें. इस लिये व्युत्पति मात्र अग्राह्य हे.

बंध अनुसारी हुये आकांक्षा, योग्यता, आसति ओर प्रयोजन इन चारोंके नियमसे लक्षणा कर्तव्य होती हे ॥ ५९२ ॥ पदके अन्वयकी अनुपपत्तिही लक्षणा करनेका बीज नहीं होता किंतु वक्ताके तात्पर्य अनुपपत्तिभी लक्षण करनेमें बीज होता हे, एसा मान्ना चाहिये ॥ ५९३ ॥

वि.—जिसपद (घट)से जो अर्थ (कलस) जानाजाय सो अर्थ (कलस) उस पद (घट) का शक्यार्थ कहाता हे. शक्यके संबंधको लक्षणा कहते हें. लक्षणासे जो जानाजाय उसे लक्ष्यार्थ कहते हें. यथा “ नारायण सरोवरमें रहता हुं. ” यहां नारायणका खुदाया हुवा पानीसे भरा हुवा जो सरोवर सो पदका शक्य हे ओर उसका संबंधी तीरस्थ गाम[१] वा तीर हे. सरोवर ओर तीरके संबंधका नाम लक्षणा हे. इस लक्षणाका लक्ष्यार्थ तीरस्थ गाम वा तीर हे. सरोवरमें मनुष्य नहीं रहसकता, इसलिये वक्ताका भावार्थ लक्षणा करके लेनेकी जरुरत पडी हे. लक्षणाके कई भेद हें. यथा-जहति, अजहति ओर भागत्याग तथा लक्षितलक्षणा इत्यादि अ. १ में बताये हें. (१) जिस पदसे जिस पद विना शब्दबोधकी जिज्ञासा न हो तिस पदमें जो तिस पदकी समीपता उसे **आकांक्षा** कहते हें. यथा-घट इस पद को—का, में, करके, से, इत्यादि प्रत्ययकी आकांक्षा हे, उस विना बोधकी जिज्ञासा नहीं होसकती. (२) एक पदार्थ, परपदार्थका जो संबंध उसे **योग्यता** कहते हें. यथा—घटको ला, घटमें भर. यहां घट ओर ला (वा भर) का संबंध योग्यता हे. (३) अन्वय अपेक्षित वालेका व्यवधान रहित समीपपना सो **आसति.** यथा यहां घटको ओर ला पदकी समीपताका नाम आसति हे. परंतु घटको.... (मठ)....ला, एसे व्यवधान रहित बोलें तो बोध नहीं होता. (४) इस पदसे श्रोताको अमुक बोध हो, एसी वक्ताकी जो ईच्छा तिस ईच्छाका जो विषय सो **तात्पर्य** (अन्वयार्थ वा भाव) कहाता हे. यथा—घटको ला. यहां लानेमें तात्पर्य हे; फोडनेमें नहीं. “ जल ला ” यहां जकार लकार लानेमें भाव नही किंतु पानी लानेमें भाव है ॥ इसप्रकार आकांक्षादि इन चारोंपर ध्यान देके योग्यतासे लक्षणा कर्तव्य हे. मनमुखी लक्षणाका त्याज्य हे. ऐच्छिकलक्षणा अमान्य हे. मुख्यतः यह बात हे कि निर्दोष वाक्य हुयेभी वक्ताका तात्पर्य नहीं निकलता हो वहां प्रसंगवशात लक्षणाका ग्रहण हे. (विशेष अ. १ में हे) ॥ ५९३ ॥

[१] तीर, लक्ष्यार्थ ओर गाम लक्षितलक्षणासे लियाजाता हे, एसाभी हे. दर्शनसंग्रह गत न्याय, वै. प्रसंग यादकीजिये.

जहां कहीं परोक्ष विषय प्रसंगमें शब्दप्रमाणमात्रपर आधार रखें वहां इतने नियम ध्यानमें अवश्य लेने चाहिये.—

१—जो वक्ता सामने मोजूद हे तो अपने कहे हुये अर्थको वा तदोक्त विषयको सिद्ध करनेका जवाबदार वा जोखमी आपहे. सयुक्त परिक्षासे सिद्ध नहीं करे तो वोह अपनाआप अपमान करता हे—उसका वाक्य मान्य नहीं होगा.

२—जब कि वक्ता—लेखक—विद्यमान नहीं हे, तो उसके वाक्यको जो प्रमाणरुप मानता हे उसपर, सयुक्त परिक्षा पूर्वक अर्थ ओर विषय सिद्ध करनेका भार हे. अन्यथा प्रमाणरुप नहीं माना जायगा.

३—किसीके वाक्यको अप्रमाण रुप नहीं कहसकते. परंतु जब अप्रमाणताका आरोप कियाजाय, तब उसको अप्रमाण हे; एसा सिद्ध करनेका भार अप्रमाणरुप कहनेवालेपर हे.

४—किसीके वाक्यको सर्वथा प्रमाणरुप नहीं मानसकते. ओर यदि मानें तो सयुक्त परीक्षासे सिद्ध करदेना चाहिये.

५--प्रमाण वा अप्रमाणरुप न कहके साक्षीमात्रसे दाखिल करना वा न करना पक्षकारोंकी इच्छापर हे.

६--कोई वाक्य किसी देशकालकेलिये प्रमाण ओर किसी देशकालके लिये अमान्य होता हे. यथा—नियोग, द्यूत, जुगारपर करलेना, कभी प्रमाण था वर्त्तमानमें नहीं हे.

७--वक्ताका आशय, किसी विशेषदृष्टिसे हे वा सामान्य व्यापकदृष्टिसे हे? इस बातका निर्णय होजाना चाहिये.

८—जो अर्थ कियाजाता हे वोह वक्ताकी दृष्टिका हे वा नहीं?

९--जब कि प्रसंग, संगतिकोभी लेवें ओर अर्थमें संशय रहे अर्थात् अर्थ वा भाव विनाका वाक्य मानसकें, एसा हो, वा नाना अर्थ या भाव होसकते हों, तो उसको छोडदेना चाहिये. क्योंकि वक्ताके अभिप्रायानुसार यदि अर्थ होजाय, एसाभी मानलें तोभी उसकी प्रमाणता वा अप्रमाणता तो सयुक्त परिक्षापर हे. अमुक वक्ताका वाक्य हे, इसलिये प्रमाण हे, एसा नियम नहीं माना जासकता.

१०--जो कोई किसीका प्रमाण देता हे ओर उसके अर्थ--वाच्यको सयुक्त सिद्ध नहीं करता वा नहीं करसकता, उसने वक्ताका अपमान किया, उसके वाक्योंको अयुक्त सिद्ध किया ओर उसमेंसे श्रद्धा उठानेका हेतु हुवा—एसा माना-

जायगा. इसलिये कोईके कहे हुयेको प्रमाणरुपसे रजू नहीं करना अच्छा हे. ओर जो रजू करें तो सयुक्त सिद्ध करनाचाहिये.

११–शब्द ओर भाव बहुल्य जेसे हें. संभव हे कि वक्ताका अर्थ वा भाव रहजाय. क्योंकि अनुभवको शब्द–वाणी, यथावत् अदा नहीं करसकती, यह बात स्पष्ट हे; अतः किसीके वाक्यार्थ वा भावार्थपर जोर देके " वक्ताका यही रहस्य हे " एसा नहीं मान्नाचाहिये.

१२–मानो कि शब्दप्रमाणके विना अन्यप्रकारवाला निर्णयका साधन नहीं हे, तो जो कोई उसको मानता वा उसपर आधार रखता हे वोह पुरुष कहे हुये पक्षको सिद्ध करे. नहींतो वोह वाक्य संसारमें हुवाही नहीं, एसा मानके अन्यप्रकार निर्णय कर्तव्य हे.

१३–'जो इस वाक्यका यह अर्थ हो ओर इस वाक्यानुसार विषय मानलिया जाय तो अमुकके किये हुये अर्थ वा दूसरे ग्रंथ वा मत–पंथकी मान्यताके विरुद्ध होता हे, वा अमुक प्रमाण, युक्ति, नियम वा परिणामके प्रतिकूल हे', इत्यादि दूषण–भूषण विचारके जबतक सर्वतंत्रसिद्धांत न हो तबतक उसपर आधार नहीं होसकता. सर्वतंत्रसिद्धांत होनेमें सत्य सूत्र सहकारी हे. अन्यथा वोह वाक्य संशयात्मक हे, वा उसके वाक्यबोधमें प्रमाणरुपता नहीं, एसा माननाचाहिये.

१४–शूक, (तोता), अज्ञ, छली, स्वार्थी, फोनोग्राफ वगेरे यंत्र, वा उन्मादी द्वारा–वा अन्यप्रकारसे नीति, यथार्थबोधक वाक्य सुनते हें, तहां शूकादि वा पदमात्रमें प्रमाणता नहीं हे किंतु पदके वाच्यकी यथार्थतापर उसका आधार हे. निदान हरेक प्रकारका शब्द (आप्तकाभी क्यों न हो) स्वतंत्रप्रमाण नहीं हे किंतु उसके वाच्यका आधार **मध्यस्थकी** परीक्षापर हे, एसा जान्नाचाहिये ॥५८३॥

शब्दवत् चेष्टामेंभी उसके नियमसे ॥ ५९४ (भाव) ॥ **उभय संकेत भानमात्र होनेसे** ॥ ५९५ ॥

अर्थ.—जेसे शब्दप्रमाण वास्ते कहागया (वा कहेंगे) वेसे चेष्टासंबंधमेंभी उसके नियमानुसार यथायोग्य योजलेना चाहिये ॥ ५९४ ॥ क्योंकि शब्द ओर चेष्टा यह दोनों संकेतभानमात्र हें ॥ ५९५ ॥ शब्दभी एकप्रकारकी चेष्टा हे. चीन देशमें चेष्टाकेभी (क. ख. समान) संकेत बनारखें हें ओर पत्रमें वे आकृति उपयोगमें आती हें. परंतु शब्द संकेत संक्षेपमें हे, उत्तरकालमें चलसकता हे ओर चेष्टा वेसी महिमावाली नहीं हे; इसलिये शब्दको प्रमाणरुप माना हे. ओर चेष्टाको

तात्काली मानते हें ओर परंपरामें नहीं हे. चेष्टा, सर्वव्यापि याने एक संकेतमें सर्वत्र नहीं होनेसे उसमें आकांक्षादिका नियम नहीं रहता; इसलिये तात्काली प्रसंगमें भी उसके नियमसे उपयोग हे. शब्दके तमाम नियम उसमें नहीं लगते. वर्तमानमें चेष्टाप्रमाणका ज्यादे उपयोग हे. कवायद, बिगुल, तार, चेष्टपल्ली, प्रकाशपल्ली, एसे अनेक चेष्टाके संकेत हें. जिनमें छल, कपट, भूल हो तो कोर्टमें केस चलते हें. (विशेष मूलमें) ॥ ५९५ ॥

शब्दमात्रसे निर्णित आधार योग्य नहींभी ॥ ५९६ (असाक्षी) ॥ **अपूर्णता ओर अंतर दर्शनसे** ॥ ५९७ ॥ **विषयके अभावमें शाब्दबोध भ्रमरुप** ॥ ५९८ (शाब्द भ्रम) ॥ **सदोष वाक्य प्रमाण नहीं** ॥ ५९९ (अप्रमाण) ॥ **व्यभिचार प्राप्तिसे** ॥ ६०० ॥ **अज्ञ उन्मादि ओर शूककाभी** ॥ ६०१ (न मान्य) ॥

अर्थ.—किसी शब्दने कुछ निर्णय बताया हो वोह निर्णय सर्वांशमें ठीक ओर आधार योग्यही हो, एसा नियम नहीं हे ॥ ५९६ ॥ क्योंकि वक्तामें अपूर्णता, तथा शब्दानिर्णत विषयोंमे मतभेद पाते हें ॥ ५९७ ॥ यथा जीव ईश्वरादि प्रसंगमें अपूर्णता ओर मतभेद देखते हें ॥ (इन उभयका विवेचन सू. १०५, १०८, ओर ११५ ओर १२१ में हे). (शं.) तुम्हारा कथनभी आधार योग्य नहीं होगा. (उ.) हां. परिक्षा ओर उपयोगमें नापास हो तो त्याज्यही हे. अन्यथा नहीं. तद्वत् अन्यत्रभी एसाही जान्ना चाहिये ॥ ५९७ ॥ किसी शब्दने कोई बात कही ओर वस्तुतः वेसा न हो तो उस शब्दसे जो बोध हुवा हे वोह भ्रमज्ञान हे; क्योंकि उस वाक्यका विषय अर्थशून्य वा अन्यथा हे, कहे अनुसार नहीं हे ॥ ५९८ ॥ यथा अभावसे भावरुपकी उत्पत्ति, इस वाक्यजन्य बोध भ्रमरुप हे ॥ ५९८ ॥ उपरोक्त (५८६ से ५८९ तक) दोषवाले वाक्य प्रमाणरुप नहीं मानेजासकते ॥ ५९९ ॥ क्योंकि उससे व्यभिचारदोषकी प्राप्ति होती हे. अर्थात सदोष वाक्यको प्रमाणरुप मानलियाजाय तो निर्दोष—सत्य--बोधक वाक्यमें व्यभिचार होगा, – सद् ओर असद् दोनों मान्ने होंगे वा सत्यबोधकका त्याग होजायगा, उससे हानी होजायगी ॥ ६०० ॥ जो अज्ञबालक वा देवाना हो ओर वाक्य बोलसकनेवाला तोता (वगेरे पशुपक्षी) हो, इनका वाक्यभी प्रमाणरुप नहीं मानाजाता ॥ ६०१ ॥ क्योंकि वे बुद्धिपूर्वक ओर परिक्षा किये हुये समान नहीं बोलते हें, किंतु दूसरेने जेसा सिखा दिया वा रोगवश जेसा मगज चला वेसे वे

बोलते हें ॥ उनको अर्थका बोध नहीं होता. यथा-पाला हुवा पोपट पिंजरेसे बाहिर बोलरहा हे के " पोपटजी पीछेसे बिल्ली आरही हे, पिंजरेमें जाओ, मारडालेगी." बिल्ली आने तक उसको वाक्यका बोध नहीं हे. यहां वाक्य ठीक हे परंतु बोध विनाका हे. एसेही देवाने ओर अज्ञके वाक्य होते हें ॥ (विशेष मूलमें) ॥६०१॥

निर्दृष्टांत विषय नहीं दर्शनसे ॥ ६०२ (निर्दृष्टांत) ॥ **लोक ओर परीक्षककी समान बुद्धिका विषय दृष्टांत** ॥ ६०३ ॥ **अथवा वादि प्रतिवादिकी** ॥ ६०४ ॥ **यथा विभु अक्रिय आकाशवत्** ॥ ६०५ ॥ **ओर चंद्र विनाशी घट वत्** ॥ ६०६ ॥ **एक भागमेंभी ग्रहण योग्यतासे** ॥ ६०७ (दृष्टांत) ॥ **यथा ईश्वर आकाश वत्** ॥ ६०८ ॥ **दूषितका अस्वीकार असत् ग्रहण होजानेसे** ॥ ६०९ (दूषित) ॥ **यथा दोकी ऐक्यता जल जलवत्** ॥ ६१० ॥ **ओर कीट भ्रंगवत् सारुप्यता** ॥ ६११ ॥ **साध्य वा विकल्परुपकाभी** ॥ ६१२ (विकल्प) ॥ **अवतार ओर मूर्ति शक्तिवत्** ॥ ६१३ ॥ **ओर योगी आदिओंकाभी** ॥ ६१४ (मिष) ॥ **अनुवृत्यादि वत्** ॥ ६१५ (अनुवृत्ति) ॥ **अन्य देनेपर आक्षेप त्याग** ॥ ६१६ (अनिग्रह) ॥ **आशयकी प्रतीति प्रयोजन होनेसे** ॥ ६१७ ॥ **ओर द्रष्टांतमात्रसे साध्यकी सिद्धि न होनेसे** ॥ ६१८ ॥

साध्यके निर्णयप्रसंगमें साध्य, हेतु कहके अपना अभिप्राय समझानेके वास्ते दृष्टांत (वा उदाहरण) दियेजाया करते हें. इसलिये दृष्टांताधिकरणका आरंभ हे.

सूत्रार्थ—जिसका दृष्टांत याने जिसके साधर्म्य वा वैधर्म्य भाग अन्यमें न मिले एसा कोई विषय नहीं होता, एसा देखते हें ॥ ६०२ ॥ जिसमें लोक वा परिक्षकोंकी समान बुद्धि हो उसको दृष्टांत कहते हें ॥ ६०३ ॥ अथवा जो वादि प्रतिवादि उभयकी समान बुद्धिका विषय हो उसे दृष्टांत कहते हें ॥ ६०४ ॥ यथा—विभु अक्रिय होता हे आकाश वत्. यहां अक्रिय आकाश दृष्टांत हे, क्योंकि विभुके अक्रियत्व साधर्म्यका बोधक हे. परिक्षकोंकी बुद्धिमें अभिमत हे ॥६०५॥ ओर जेसे चंद्र नाशवान हे घटवत्. यहां नाशवान घट दृष्टांत हे क्योंकि चंद्र परिच्छिन्न मध्यमके नाशत्व—साधर्म्यका बोधक हे. घट नाशवान यह सब लोक, वादि ओर प्रतिवादि उभयकी बुद्धिमें संमत हे ॥ ६०६ ॥ दृष्टांतके लक्षणोंमें विवाद हे उससे यहां प्रयोजन नहीं हे. दार्ष्टांत ओर दृष्टांतका कोई साधर्म्य भाग वा वैधर्म्य भाग मिलनेसे दृष्टांतका प्रयोग होजाता हे इतनाही कहना बस हे. (शं.)

माया वा ब्रह्म दृष्टांत रहित हैं. (उ.) यद्यपि इनको मान्नेवालोंकी रीतिसे उनके सब धर्म नहीं मिलते तथापि अमुक धर्म मिले, एसे वे पदार्थ हैं. यथा ब्रह्म ओर आकाशका व्यापकत्व तथा अक्रियत्वका साधर्म्य हे. ओर चेतनत्वका आकाशमें ओर जडत्वका ब्रह्ममें वैधर्म्य हे. माया ओर ब्रह्ममें जडचेतनत्वका वैधर्म्य हे. ओर उभयमें उपयोगत्व साधर्म्य हे. (तद्वत् दुःखादिमें ज्ञातव्य हे). सारांश जो दृष्टांत रहित हो उसकी असिद्धि हे[1] ॥ ६०६ ॥ दृष्टांतका एक वा अनेक वही भाग लियाजाता हे जिससे दार्ष्टांतका साधर्म्य वा वैधर्म्य भाग मिलता हो. ओर वेभी दृष्टांतके नियमानुसार योग्यतासे ग्रहण करनेमें आते हैं ॥ ६०७ ॥ यथा—ईश्वर, आकाशवत्. यहां आकाशके विभुत्वका ग्रहण हे, आकाशकी जडता वा नीलताका ग्रहण नहीं हे. अथवा आकाशकी विभुता, एकरसता, असीमताका ग्रहण हे, जडताका नहीं हे ॥ ६०८ ॥ जो दूषित दृष्टांत हो वोह कोईभी उपस्थित क्यों न करे, उसका स्वीकार नहीं कियाजाता; क्योंकि उसके स्वीकार होनेसे असत्का ग्रहण होजाता हे ॥ ६०९ ॥ यथा—दोकी ऐक्यता होती हे, जेसे जुदाजुदा जल मिलनेसे एक होजाते हें वेसे. यहां जलवाला दूषित दृष्टांत हे; क्योंकि जलजल मिलनेसे वजन ओर विस्तार बढा हे, जलके भाग औषजन, उदजन जुदा जुदा करें तो जुदा जुदा निकलेंगे. सारांश जलके जो भाग मिले वे एक नहीं हुये, किंतु जुदा जुदाही रहे हें; अतः यह दृष्टांत विषम दोषवाला हे इसलिये स्विकारने योग्य नहीं ॥ ६१० ॥ ओर जेसे—दो विषम, सारुप्य होजाते हें, कीट भृंगवत्। यह दृष्टांतभी विषम हे; क्योंकि परीक्षासे सिद्ध होचुका हे के वोह कीट (लट), भृंगके अंडेसे हुवा था अर्थात भृंगने पत्तोंपर अंडे छोडे थे उससे प्रथम लटरुप हुवा पीछे भृंगके चटके ओर रालसे उसके पांख वगेरे निकले हें. जो एसा न होता तो हरकोई प्रकारकी लटको भ्रंग बनालेता, परंतु एसा नहीं होता ॥६११॥ (शं.) एक हरा लंबा लट ओर दूसरा पीत पांखवाला भ्रंग था, पीछे लट उसके सारुप्य हुवा के नहीं? (उ.) मुरगीके अंडेका रस श्वेत पीत था पांव चांच ओर पर नहीं थे, पीछे हुये हें. अर्थात वोह रस पूर्वमेंही इन अवयववाला था सो वे उद्भव हुये हें. कुंडलको ताव देनेसे दूसरी टुकडीका सारुप्य हुवा, इसका नाम सारुप्यता नहीं हे. किंतु जो एक परमाणु वा परिच्छिन्न वस्तु, निरवयव आकाशके समान-निरवयव, व्यापक हो ओर वेसी योग्यतावाली होजावे तो उसका नाम सारुप्य

[1] सब भाग मिले तो सजातीय उदाहरण होगा. दृष्टांत नाम नहीं होगा.

होना हे. वैधर्म्यवाला किसीका बिलकुल साधर्मी होजावे उसका नाम सारुप्यता हे, सो एसा होना असंभव हे. (शं.) एक कूंडमें मिट्टी डालके नींब ओर ईकका बीज डालें तो मिट्टीके विलक्षण परमाणु बीजके सारुप्य हुये वृक्षरुप होते हें; अतः सारुप्यता हे. (उ.) नवीन रसायणीयमिश्रणसे वृद्धि होती हे, सजातीय विजातीयका मिश्रण हे, विजातीयकाही रसायणीयसंयोग होता हे. एवं वृक्षरुप होनेमें समूहोंके गुणोंका उद्भव, तिरोभाव होता हे; इसलिये एसा होता हे ॥ क्योंकि अभावसे भावकी उत्पत्ति नहीं होती; जो धर्म योग्यता मूलमें नहीं वोह नवीन, अभावजन्य नहीं होती (२८७ । ३०२ । ३१२ याद कीजे); अतः नवीनता-सारुप्य नहीं हे. उपादान विना आकाशमें अभावसे भावरुप बाग लगता हे, जेसे के ईश्वरने अभावसे भावरुप सृष्टिकी वेसे. यह दृष्टांतभी असंभव दोषवाला हे; अतः मान्य नहीं ॥ ६११ ॥ जो दृष्टांत अभी साध्य (तकरारी) हे उसका तथा जो विकल्पमात्र याने अर्थशून्य हो उसकाभी अग्रहण हे—याने निर्णय वा वक्ताके भाव जान्ने प्रसंगमें ग्रहण नहीं होता ॥ ६१२ ॥ जेसे के अमुक योगी वा अवतारीने मुरदे जीवते किये, जेसे ईश्वरके अवतारने किये तद्वत्. यहां ईश्वरका अवतार होना साध्य होनेसे साध्य दृष्टांत हे ॥ अमुक शिला बातें करती हें, प्रतिष्ठित मूर्तिवत्. यहां मनुष्य घडित जडमूर्तिमें बोलनेकी शक्ति मानके उसका दृष्टांत दिया हे, सो दृष्टांत विकल्परुप हे. क्योंकि जड मूर्तिमें यथायोग्य बुद्धिपूर्वक बोलनेकी शक्ति नहीं होती. फोनोग्राफमें शब्दाघातकी नकल होती हे. तद्वत् कूवामें होती हे. वे शब्द यथायोग्य, यथाप्रसंग, बुद्धिपूर्वक नहीं हें ॥६१३॥ निर्णय प्रसंगमें योगी, इंद्रजाली ओर तंत्रीके दृष्टांतकाभी स्वीकार नहीं होता ॥६१४॥ क्योंकि बहुधा वे अर्थशून्य होते हें ॥ यथा-अनुवृत्तिमें तथा औषधि व तंत्रद्वारा तथा चालाकीसे अन्यथा भासते हें ॥ ६१५ ॥ विधायक जब विधेयपर तैजस प्रयोग (मेस्मेरेझम) करता हे, तब विधायक जेसा संकल्प करे, वेसारुप विधेयको जानपडता हे. जेसे के पानीको कहे के दूध हे, पी ले. तो विधेयको दूध जेसा स्वाद जानपडता हे. जो विधायक अपनेको वा अन्यको सिंहादिरुप कहे तो विधेयको वेसा जानपडता हे. इस अवस्थाको अनुवृति कहते हें. तहां मनके संकल्पसे शेषामें वेसेरुप भान होने लगजाते हें वस्तुतः वे सत नहीं हें (विशेष मानसिक योगमें देखो). दवाईका दीपक बालनेसे मकानमें सर्प नजर आते हें, वे वस्तुतः नहीं हें; परंतु चक्षुमें दवाईका प्रभाव ओर रोशनीकी किरणें ईथरमें सर्प जेसी होजाती हें; अतः एसा जानपडता हे. तंत्रका

उदाहरण (बतख नचानेका प्रकार) उपर सू. ५२२ में कहआये हें. धूलके चांवल ओर कंकरीका रुपैया बनाना इत्यादि चालबाजी प्रसिद्ध हें. इत्यादि प्रकारके दृष्टांत नहीं लियेजाते ॥ ६१५ ॥ निर्णय प्रसंगमें यदि एक पक्ष संमत वा साध्यरुप दृष्टांत दिया गया हो इसलिये, किंवा दिया हुवा दृष्टांत, दार्ष्टांतके अनुकूल न हो इसलिये, दूसरा दियाजावे; तो पहेले दृष्टांतपर आक्षेप नहीं करना चाहिये. याने निग्रह पदका उपयोग करना उचित नहीं होता ॥ ६१६ ॥ क्योंकि दृष्टांत देनेमें वक्ताका आशय समझमें आवे, इतनाही प्रयोजन होता हे ॥ ६१७ ॥ ओर केवल दृष्टांतमात्र देनेसे साध्यकी सिद्धि होगई, एसाभी नहीं हे; अतः आक्षेपकी आवश्यकता नहीं होती ॥ ६१७ ॥ यथा–ईश्वर विभु आकाशवत् ॥ इतने दृष्टांतसे ईश्वरका विभुत्व सिद्ध नहीं होता. किंतु आकाश पद, वक्ताका आशय जो व्यापकत्व उसका बोधक हे ॥ ६१८ ॥ जो शोधक परीक्षक होते हें, वे भूले हुये हेत्वाभास (बस. ८८) ओर वेसे दृष्टांत-उदाहरण ओर छल-जाति ओर निग्रहस्थान(बस. ७६ । ७७) को बीचमें नहीं लेते वा इसकी तकरारमें समय नहीं गुमाते; किंतु उनका लक्ष्य निर्णयपर होता हे, जिससे निर्णय हो वेसा प्रकार लेते हें, जल्प वितंडा (बस. ७६ । ७७) में नहीं उतरते; क्योंकि उनकी दृष्टि जयाजय ओर प्रतिष्ठा-कीर्तिपर नहीं होती. किंतु निर्णय ओर लोकोपयोगपर होती हे ॥६१८॥

उपमानका साधर्म्य वा वैधर्म्यका उपयोग ॥ ६१९ (कवित्व) ॥ **अभावका निवृत्ति वा प्रवृत्ति** ॥ ६२० (उपेक्षा) ॥ **युक्तिका निर्णय** ॥६२१ (युक्तिफल)॥ **तर्कका सुपक्ष रक्षण** ॥ ६२२ (तर्कफल) ॥ **सृष्टिनियमसे परीक्षा लाभ** ॥ ६२३ (परीक्षा) ॥

अर्थ.—उपरोक्त उपमानका साधर्म्य वा वैधर्म्यका उपयोग यह परिणाम[1] (फल) हे ॥ ६१९ ॥ वैद्यलोक एक औषधिमें साधर्म्य पाके दूसरीके बदले प्रतिनिधि रुपसे काममें लेते हें उससे रोगकी निवृत्ति होती हे. कविलोक साधर्म्य, वैधर्म्य दरसाके बोधका असर करते हें, उसे उपमान अलंकार कहते हें. शोधक परीक्षकको इसद्वारा पदार्थका बोध होता हे ॥ ६१९ ॥ पूर्वोक्त अभावप्रमाणसे किसी विषयसे निवृत्ति वा तदन्यमें प्रवृत्ति, यह परिणाम (फल) होता हे ॥ ६२० ॥ यथा वस्तुका अभाव हो तो वहांसे उपेक्षा होती हे अथवा प्रतिकूलके अभाव हुये प्रवृत्ति होती हे ओर पदार्थ निर्णयमेंभी उपयोगी हे ॥ ६२० ॥ पूर्वोक्त युक्तिका पदार्थके स्व-

[1] परिणामपदकी उपरसे आवृत्ति हुई हे.

रुपका निर्णय, यह परिणाम हे ॥६२१॥ यथा "द्वैतका खंडन ओर अद्वैतका मंडन, में करता हुं"; एसा कोई कहे तो प्रतिपादक प्रतिपाद्य दो होनेसे वक्ताको वदतोव्याघात लगाना युक्ति हे. ई. ॥६२१॥ तर्क सच्चे स्वपक्षके रक्षणमें उपयोगी याने सुपक्षका रक्षण, यह उसका परिणाम हे ॥६२२॥ यद्यपि षुषक तर्ककी अप्रतिष्ठा हे तथापि वाजबी तर्क बागकी बाडके समान सच्चे स्वपक्ष रक्षणमें उपयोगी हे; इसलिये आवश्यकता होनेपर ग्राह्य हे ॥६१२॥ उपरोक्त सृष्टिनियमोंका, पदार्थ निर्णयकी परिक्षाका लाभ होना, यह परिणाम हे। उदाहरण उपर दिये हें। ४१३। १७४। ४२६ याद कीजे ॥ ६२३ ॥ यहांतक प्रमाणका परिणाम—फल कहा ॥

अध्यास निरक्षणका दृश्य विवेक ॥ ६२४ (दृश्य विवेक) ॥

अर्थ—अध्यास (भ्रम) के बारीक शोधका दृश्यविवेक (दृश्यके स्वरुपका निर्णय–दृश्यके स्वरुपका भाव) परिणाम होता हे (जेसा के पूर्वमें अ. १ में बताया गया हे) ॥ ६२४ ॥

भ्रम वा अध्यास, उपर उपरसे स्थूल, मोटा ओर सहेज विषय जानपडता हे परंतु जब इसका शोधन करें ओर इसकी सामग्रीपर दृष्टि डालें तो बारीक, अनिर्वचनीय जान पडता हे ओर उस द्वारा जगतके स्वरुपका भान होजाता हे. इस विषयको अनेक फिलोसोफरोंने अपने मुख्य सिद्धांतके अनुकूळ बनानेकेलिये इसके भिन्न-भिन्न लक्षण किये हें ओर उसको ख्याति एसा नाम देके उसके भिन्न भिन्न नाम रखें हें. यथा सत्ख्याति, आत्मख्याति, असत्ख्याति, सदसद्ख्याति, अन्यस्थख्याति, अन्यथाख्याति, अन्यरुपेणख्याति, अन्यख्याति, अख्याति ख्याति, अनिर्वचनीयख्याति, विलक्षणख्याति, इत्यादिका बस. में वर्णन हे. (ओर उपरभी कह आये हें). उस उस दृष्टिसे भ्रमके लक्षणभी भिन्न भिन्न किये हें. यथा सदन्यथा, विज्ञान परिणाम, पूर्वोत्तराभाव, सदसद्रुप, अन्य देशस्थ प्रतीति, अन्य धर्मकी प्रतीति, अन्यधर्मीकी प्रतीति, अन्यरुपसे प्रतीति, अन्यरुप हुये प्रतीति, इदं ओर स्मृतिके विवेककी अख्याति, सदसदसे विलक्षणकी प्रतीति, सदसे विलक्षण अनिर्वचनीय, इत्यादि. तथाहि अन्यथा प्रतीति, अतद्बुद्धि, स्वाभावाधिकरणमें अवभास, निष्फल प्रवृत्तिका जनक, बाधित, दोषवश नामकल्पन (कल्पित), दोषवश आरोपन, अन्यमें अन्यकी प्रतीति, अन्यरुपसे प्रतीति, इत्यादि—अध्यासके लक्षणभी भिन्न भिन्न किये हें. अद्यापि १५ ख्याति जानेमें आई हें. इस अध्यास अधिकरण (सू. ५५४ तक) का संक्षेपमें उपयोगी विवेचन (भ्रम अध्यासका भेद, शंका समाधान, दृष्टांत सिद्धांत सहित) भू. बस. तद.

अ. १, ३ ओर मूल अ. २ में किया गया हे. वृत्तिप्रभाकर भाषा ग्रंथमें वादविवाद सहित हे. उससे अधिक ख्यातिवाद ग्रंथमें हे. इसलिये यहां संक्षेपमें सूत्रकी वृत्तिमात्र लिखेंगे. अध्यास ओर भ्रम इनमें नाममात्र वा शैलीमात्र अंतर हे अर्थात भ्रममें ज्ञानाध्यास ओर अध्यासमें ज्ञानाध्यास ओर अर्थाध्यास उभय मानेजाते हैं इसलिये यह अधिकरण उभय प्रसंगमें यथायोग्य घटालेना चाहिये. सू. ६२५ से लेके ६५४ तकका उपयोग तव होता हे कि जब अध्यासकी बारीक शोध करें, अन्यथा नहीं. इसलिये यहां वृत्तिमात्र लिखी हे ॥ ६२४ ॥

अध्यास—

वक्ष्यमाण अध्यास प्रसंगमें ज्ञान ओर प्रमात्व, यह निर्दोषवृत्तिज्ञानके ओर अज्ञान तथा अप्रमात्व यह सदोषवृत्तिज्ञानके भेद हें परंतु वे द्दष्टा–जीव साक्षीके भेद नहीं हें, एसे जान्ना चाहिये ॥

धर्म धर्मी वा संबधका अन्यथा अवभास सो अध्यास ॥ ६२५ (अध्यास) ॥ **सो एक धर्म विशिष्टही** ॥ ६२६ (धर्मी) ॥ **स्वाश्रयका आवरक** ॥ ६२७ (आवरक) ॥ **रज्जु सर्पवत्** ॥ ६२८ ॥ **प्रमाका प्रतिबंधकभी** ॥ ॥ ६२९ (प्रतिबंधक) ॥ **रज्जु ज्ञानवत्** ॥ ६३० ॥ **सामग्रीभी अपने ज्ञान-साथ** ॥ ६३१ (प्रतिबंध) ॥ **शब्द ज्ञानवत्** ॥ ६३२ ॥ **प्रमा अप्रमा परस्परके अनुत्पादक** ॥ ६३३ (प्रतिबंध) ॥ **विरोधी होनेसे** ॥ ६३४ ॥

अर्थ.—अधिष्ठान (जिसमें भ्रम वा अध्यास हे सो) में अन्यके धर्मका वा अन्य धर्मीका वा अन्यके संबंधका अवभास (प्रतीति) होना, इसे अध्यास कहते हें ॥ ६२५ ॥ एक कालमें एक (अधिष्ठान) विषे, एक धर्मी विशिष्ठ धर्मीका अध्यास होता हे, अनेकका नहीं ॥ ६२६ ॥ जिस अधिष्ठान (अधिकरण) विषे अध्यास होता हे उस स्वआश्रयका अध्यास, आवरक होजाता हे ॥ ६२७ ॥ जेसे कि डोरीरुप अधिष्ठानमें सर्प धर्मीका अवभास होता हे, सो सर्प ओर उसका ज्ञान अध्यास कहाजाता हे, यह सर्पाध्यास जबके सर्परुप हे तब दूसरे रुपका (लकडी, जलधारा वगेरेका) अध्यास नहीं होता. ओर सो सर्प अपने आश्रय डोरीका आवरक होजाता हे अर्थात डोरीको डोरीरुपसे प्रतीत होनेमें आवरक' हे ॥ ६२८ ॥ अपने अधिष्ठानके यथार्थज्ञान होनेमें अध्यास प्रतिबंधकभी' होजाता हे ॥ ६२९ ॥

'जेसे धूम, आकाशाश्रित हुई आकाशकी ओर सिंवाल जलाश्रित हुई

जेसे के सर्पाध्यास, डोरीके ज्ञान होनेमें प्रतिबंधकभी हे ॥६३०॥ एक कालमें दो ज्ञान न होसकनेसे एक ज्ञान दूसरे ज्ञान होनेमें प्रतिबंधक मानाजाता हे, इतनाही नहीं किंतु ज्ञानकी सामग्रीभी अपने ज्ञानके साथ प्रतिबंधक होजाती हे ॥ ६३१ ॥ जेसे के अनिष्ट (खबर) शब्द सुन्नेपर वोह शब्द ओर उसका ज्ञान दूसरे ज्ञान होनेमें प्रतिबंधक होजाते हें[1] ॥ ६३२ ॥ अबाधितज्ञान (प्रमा), बाधितज्ञान (अप्रमा) यह परस्परके उत्पादक नहीं होते याने जो यथार्थ विशेष ज्ञान हो तो भ्रमज्ञान नहीं होता ओर जो निश्चित अयथार्थज्ञान हो तो यथार्थ ज्ञान नहीं होता ॥ ६३३ ॥ क्योंकि यह दोनों विशेषरुपमें एक दूसरेके विरोधी होते हें ॥ ६३४ ॥ यद्यपि सामान्यज्ञानका ओर अध्यासके कारण–अज्ञानका विरोध नहीं हे, तथापि विशेष ज्ञान ओर अज्ञानका विरोध हे, इसलिये विशेष रुप हुये विरोधी कहेजाते हें. जेसे के डोरीका सामान्यज्ञान (इदंज्ञान) डोरीके अज्ञान होनेमें विरोधी नहीं होता; किंतु डोरीका विशेषज्ञान डोरीके अज्ञानका विरोधी होता हे ॥६३४॥

संसर्गके विना अन्यमें अन्यकी अप्रतीति ॥ ६३५ (अन्यथा) ॥ **लाल स्फटिकवत्** ॥ ६३६ ॥ **अज्ञानादिके विना असंसर्गीमें** ॥६३७ (भ्रम)॥ **रज्जु सर्पवत्** ॥ ६३८ ॥ **परोक्ष भ्रम सादृश्य विनाभी** ॥६३९ (असादृश्य)॥ **प्रमासे भ्रमवाध्य न उलटा** ॥ ६४० (वाध्य) ॥ **शुक्तिरजतवत्** ॥ ६४१ ॥ **अधिष्ठानके ज्ञान विना भ्रमसेभी पूर्व भ्रमकी निवृत्ति** ॥६४२ (अनिवृत्ति)॥ **शुक्ति अभरकवत** ॥ ६४३ ॥ **अज्ञानसहित तो उसीके अपरोक्ष ज्ञानसे** ॥ ६४४ (निवृत्ति) ॥ **यथा रज्जु ज्ञानसे उसके अज्ञान ओर सर्पकी** ॥ ६४५ ॥ **विरोध नियमसे** ॥ ६४६ ॥

ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे उसके धर्मकाभी ग्रहण ॥ ६४७ (गृहि) ॥ **संबंध संबंधिवत्** ॥ ६४८ ॥ **प्रमात्व ग्रहणपर भ्रम संशय नहीं** ॥ ६४९ (प्रमात्व) ॥ **विरोध होनेसे** ॥ ६५० ॥

भ्रम अग्राह्य ॥ ६५१ (द्विधा) ॥ **तद् निवृति शेष अधिष्ठान** ॥ ६५२

जलकी आवरक हे ओर उनके ज्ञान होनेमें आड हे; वेसे अध्यासभी अधिष्ठानका आवरक होजाता हे.

[1] अध्यात्म तत्व विचार प्रसंगमें यदि दृश्यके किसी भागकाभी दर्शन, श्रवण वा स्मरण होजाय तो वोह ओर उसका ज्ञान, इष्टसिद्धि (प्रमाचेतन) के भान होनेमें प्रतिबंध होपडते हें (जेसे के प्रकृतिवादिओंमें एसा देखाजाता हे).

(अधिकरण) ॥ **भावरुप होनेसे निवृत्तिरुप नहीं** ॥ ६५३ (अल्प) ॥ **स्वप्राधिष्ठानवत्** ॥ ६५४ ॥

अर्थ.—किसी दोके संसर्गके विना उन अन्यमें अन्यकी वा अन्यके धर्मकी अन्यमें वा एकके संबंधकी अन्यमें प्रतीति नहीं होती ॥ ६३५ ॥ जेसे के श्वेत स्फटिक मणिमें जहां लाल वस्तुका संबंध (साक्षात वा किरणद्वारा संबंध) हो तहां लालमणि जनाती हे. जो उनका संबंध न हो तो श्वेतही प्रतीत होती हे. सारांश अध्यास, संसर्गसे होता हे ओर उसे संसर्गाध्यास कहते हें ॥ ६३६ ॥ (जहां संसर्गी गोचर न होता हो याने) जहां असंसर्गी वस्तुमें अध्यास होजाता हे वहां अज्ञानादि सामग्रीके विना नहीं होता, एसा जान्नाचाहिये ॥ ६३७ ॥ जेसे के असंसर्गी डोरीमें सर्पकी भ्रांति अज्ञानादि सामग्रीसे होती हे. वेसेही अन्यत्र (संसर्गी, असंसर्गी प्रसंगोंमें) भी यथायोग्य जानलेना चाहिये ॥ ६३८ ॥ अज्ञानादि ओर उनसे भ्रम होनेका बयान ४३९ में कहआये हें. यद्यपि अज्ञानादि ६ सामग्री हें वे अध्यासकी हेतु होती हें; तथापि सबही हों एसा नही हे. किंतु उनमेंसे कोई एक होगी. यथा आकाशमें नीला आशक, एसा सर्वको अध्यास होता हे, तहां उक्त सब सामग्री नहीं हें किंतु दूरदोष (प्रमाणदोष) ही हे. आलातचक्रमें सबको अग्निचक्रका भ्रम होता हे तहां प्रमाणदोष हे, प्रमाता वगेरेके दोष नहीं होते. इसीप्रकार असंसर्ग अध्यासमेंही अज्ञानादि कारण हें, एसा नहीं जान्नाचाहिये किंतु अध्यासमात्रमें अज्ञानादिमेंसे कोई न कोई वा सब कारण होंगे अर्थात संसर्गाध्यासमेंभी अज्ञानादिमेंसे कोई न कोई कारण अवश्य होगा. यथा-जहां स्फटिकमणि, लाल जानपडे वहां उसके ओर किरणोंके स्वरुपका तथा उनके संबंधका अज्ञानकारण हे. जब आलातचक्रको जान लें ओर समझलें, तथा मृगतृष्णिकाको जान लें ओर स्फटकमणिको पहिछान लें, तबभी वे पूर्ववत प्रतीत होते हें. यह प्रतीति भ्रमज्ञानका विषय नहीं हे किंतु बाधितवृत्तिके[1] विषय हें; क्योंकि पूर्ववत निष्फल प्रवृत्तिके हेतु नहीं होते ॥ ६३८ ॥

जहां कहीं परोक्षमें भ्रम होता हे वहां अज्ञानादिगत सादृश्यदोष (प्रमेयदोष) के विनाभी भ्रम होजाता हे ओर उसे असत्ख्याति (अर्थशून्य-विकल्पमात्र) का विषय कहाजाता हे ॥ ६३९ ॥ जेसे के व्यापकमें गति ओर परिच्छि-

[1] विवेकी ज्ञानीकी एसी दृष्टि होजाती हे.

न्नताका भ्रम सादृश्यदोषके विना होजाता हे.[१] सू. ६५१ भी ध्यानमें लीजिये ॥६३९॥ प्रमा (सत्यज्ञान) से भ्रमका बाध होजाता हे, फेर उसमें भ्रम नहीं होता. परंतु भ्रमसे प्रमाका बाध नहीं होता ॥ ६४० ॥ जेसे के शुक्तिके ज्ञान होनेसे रजतभ्रमका अभाव होजाता हे परंतु जिसको शुक्तिका ज्ञान हे उसको उसमें रजतभ्रम नहीं होता. किंवा रजतभ्रमज्ञानसे शुक्तिज्ञानका बाध नहीं होता ॥ ६४१ ॥ जिसमें भ्रम हुवा हे उसके अर्थात् अधिष्ठानके ज्ञानविनाभी दूसरा भ्रम होनेपर, पहेले (पूर्ववाले) भ्रमकी निवृत्ति होजाती हे. ॥ ६४२ ॥ जेसे के शुक्तिमें रजतभ्रम निवृत्त होके अभ्रक हे, एसा भ्रम होजाता हे ॥ ६४३ ॥ वा जेसे जगतको स्वप्नवत् भ्रमरुप वा अजातरुप मान्नेवालोंकी दृष्टिमें स्वप्नके सिंहसे स्वप्नाध्यास निवृत्त होके जाग्रतरुपी अध्यास होजाता हे, वेसे ॥ ६४३ ॥ परंतु अधिष्ठानके अज्ञान ओर तद्कार्य जो भ्रम इन उभयकी निवृत्ति तो उस अधिष्ठानके अपरोक्ष ज्ञानसेही होती हे ॥ ६४४ ॥ जेसे कि रज्जुके ज्ञान होनेसे रज्जुके अज्ञान ओर सर्पभ्रम इन उभयकी निवृत्ति होजाती हे. फेर डोरीमें दूसरा भ्रम नहीं होता ॥६४५॥ कारणके विरोध नियम (३४६) से एसाही होना पायाजाता हे ॥६४६॥ जीवात्माको कोई अणु, कोई विभु, कोई मध्यम, कोई जड ओर कोई चेतन मानता हे; कोई अनादि, कोई सादि,कोई कर्त्ताभोक्ता,कोई अकर्ता अभोक्ता,कोई अकर्त्ताभोक्ता ओर कोई क्षणिक कहता हे; इससे उसके स्वरुपमें भ्रम हे, एसा मानसकते हें ओर यह भ्रम उसके स्वरुपाज्ञानसेही होनाचाहिये. सो अज्ञान ओर तदजन्य भ्रम (अन्यथा प्रतिती वा कल्पना) उसके अपरोक्ष ज्ञान हुये निवृत्त होने योग्य हे; अन्यथा नहीं ॥६४६॥ ज्ञानकी ग्राहक जो सामग्री (इंद्रिय, मन, विषयविषयीका योग्यसंबंध) हे उससे उसके धर्मकाभी ग्रहण होता हे अर्थात ज्ञानत्व विशिष्ट ज्ञान (वा प्रमात्व विशिष्ट प्रमा) याने ज्ञानधर्मीका ओर ज्ञानत्वरुप जो उसका धर्म उस धर्मकाभी ग्रहण होजाता हे ॥ ६४७ ॥ जेसे के संबंधरहित संबंधीका ज्ञान नहीं होता किंतु संबंधीके ज्ञानसे उसके संबंधकाभी ग्रहण होजाता हे, वेसे विषयका ज्ञान होनेपर ज्ञानत्व अथवा प्रमा (यथार्थज्ञान) होनेपर उसका प्रमात्वभी ज्ञानग्राहक सामग्रीमें ग्रहण होजाता हे ॥ ६४८ ॥ प्रमात्व (विषयज्ञानमें जो यथार्थता हे सो) ग्रहण, हो-

[१]ईश्वरको निराकार—व्यापक माननेवाले, सक्रिय ओर परिच्छिन्न होना मानते हें, वहां विभुत्व ओर सक्रियत्वका असादृश्य हे. जो न हों तो स्वर्ग-नरकादि, पीपल गत भूतके समान, सादृश्यदोषके विना भ्रमरुप कहें जायँगे.

नेपर याने स्वधर्मसहित प्रमा ग्रहण होनेपर भ्रम अथवा संशय नहीं रहते वा नहीं होते ॥ ६४९ ॥ क्योंकि प्रमात्व (यथार्थ ज्ञानपना) ओर अप्रमात्व (अयथार्थ ज्ञानपना) का विरोध होता हे. उभय एककालमें समानाधिकरणवाले नहीं होते ॥ ६५० ॥ इस प्रमात्व अप्रमात्व, (स्वतः प्रामाणयवाद, परतः प्रामाण्यवाद) का सविस्तृत वर्णन बस. में किया गया हे ॥ ६५० ॥ भ्रम, भ्रमकालमें भ्रमरुपसे साक्षीचेतनमेंभी ग्रहण नहीं होता ॥ ६५१ ॥ अर्थात अध्यास वा भ्रम, अध्यास वा भ्रमकालमें अध्यास वा भ्रमरुपसे विषय नहीं होता किंतु उसके बाध हुये पीछे भ्रम वा अध्यास था याने निष्फल प्रवृत्तिका जनक हुवा था, एसा परतःयाने अनुमानद्वारा उसकी सिद्धि होती हे. उसके विद्यमानकालमें उसकी प्रतीति नहीं होती, एसा नियम (सृष्टिबद्ध जीवनियम) हे.[1] (४४१ याद करो) ॥ जेसे के मृग, जलको देखके जल लेनेवास्ते जावें ओर जल न मिलनेपर तथा रोशनी ओर मरुके ज्ञान होनेपर उस अध्यास वा भ्रमकी निवृत्ति होने पीछे भ्रम वा अध्यास हुवा था, एसा ज्ञान होता हे--जानपडता हे; एवं सर्व भ्रमस्थलमें योजलेना चाहिये. याने भ्रम वा अध्यास अग्राह्य हे. यह विषय--यह नियम, शोधक परिक्षकको जघे जघे विचारने जैसा हे. यथा किसीके मंतव्यमात्रसे, उसके मंतव्यानुसारी हे, एसा होनेका नियम नहीं कहसकते. किंतु मध्यस्थानुकूल मान्नापडता हे. वहांतक किसीके नास्तित्व वा अस्तित्वका स्वीकार नहीं होनाचाहिये.

(शं.) सब मंतव्य ओर व्यवहार तथा तुम्हारा कथन मंतव्यभी भ्रमरुप क्यों न माने जावें, एसा सवाल पेदा होसकता हे. ओर जो यूंही हो तो जीवनही न होसकेगा तथा अनेक अव्यवस्था होंगी. (उ.) जिसका जबतक अदर्शन

[1]यह द्विधा---अनुत्तर नियम ४४१ मेंभी हे. वहां सृष्टिनियमकी दृष्टिसे हे. ओर यहां सृष्टिबद्ध जीवदृष्टिसे हे; अतः सकारण पुनरुक्ति हे. अपने दोष, दोषकालमें नहीं जनाते सो इसीनियमकी नकल हे. कोई कहे वा माने कि दृश्य-जगत भ्रमरुप हे, तो कहना चाहिये कि भ्रम अग्राह्य हे याने उसकी निवृत्तिके पूर्व यह मंतव्य माननीय नहीं होसकता. आजतक निवृत्त न हुवा ओर निवृत्त हुये पीछे प्रश्नकर्ता, निषेधकर्ता ओर सिद्धकर्ताभी न होगा; अतः उक्त कथन व्यर्थ हे. हम जो मानते हें सोही सत्य हे ओर अन्यका भ्रम हे, एसे मान्नेवालेकोभी यह नियम ग्रसता हे. कहींतकभी मंतव्यका खंडनमंडन कियेजाओ, यह नियम आगे खडा पाओगे ! ! विशेष बस. में ओर मूलमें वर्णन हे.

न हो, बाध न हो ओर जो जबतक असिद्ध न हो वहांतक उसमें भ्रम पदका प्रयोगही नहीं होसकता. इसलिये जीवनमें वा व्यवस्थामें हरज वा संशय, नहीं होसकता. इसीप्रकार तमाम व्यवहार ओर हमारे कथन मंतव्य वास्तेभी मानलेना चाहिये याने बाध होने वा असिद्ध होनेपर भ्रमका विषय मानसकते हें ॥६५१॥

जिसके आधार वा जिसमें कोई वस्तु हो वा प्रतीत होती हो, अथवा वोही अन्यरुपसे जानीजाती हो, अथवा जिसमें किसीकी अन्यथा कल्पना होजाय सो अधिष्ठान (आधार) कहाजाता हे. भ्रमकी निवृत्तिका शेष, अधिष्ठान होता हे. ज्ञानका विषय अधिष्ठानाश्रित कोई उपादेय हो, वा प्रतीत मात्र हो, वा अधिष्ठानही अन्यरुपमें प्रतीत होता हो, वा दोषवश अन्यथा कल्पित हो, इन सब भ्रमज्ञान विषयककी निवृत्तिका शेष अधिष्ठान होता हे ॥ ६५२ ॥ क्योंकि वोह अधिष्ठान पूर्वमेंभी भावरुप था; अतः भ्रमकी निवृत्तिस्वरुप नहीं, किंतु भ्रम निवृत्तिका शेष हे ॥ ६५३ ॥ जेसे के स्वप्नसृष्टिकी निवृत्ति पीछे उसका अधिष्ठान संस्कारी जीव रहता हे; वेसे भ्रम निवृत्तिका शेष अधिष्ठान रहता हे. यहां स्वप्नसृष्टिका उपादान कहींभी रहता हे वा नहीं यह दूसरा विषय हे ॥ ६५४ ॥

(शं.) अ. २ सू. ७१ । ७३ में भ्रम ओर अध्यासका अंतर बताया हे ओर सू. ४५० में असंसर्गाध्यासभी कहा हे. परंतु भ्रम ओर अध्यासमें कोई अंतर नहीं जानपडता तो फेर एसे भ्रमवर्धक थीयरी कहनेका प्रयोजन क्या ? (उ.) जेसे अनिर्वचनीयका अर्थ " बचनसे अगोचर " ओर किसी संप्रदायमें " सत् असत्से विलक्षण " एसा पारिभाषिक अर्थ हे; वेसेही इस तत्वदर्शन ओर ब्रह्मसिद्धांत ग्रंथमें भ्रम ओर अध्यासका पारिभाषिक अर्थ हे. क्योंकि भ्रमकी निवृत्ति (कल्पितकी निवृत्ति) अधिष्ठान स्वरुप होती हे ओर अध्यासकी निवृति उसके उपादान स्वरुप होती हे. ओर अवभास बाधस्वरुप होनेसे उसकी प्रतीति वा निवृत्ति समान हे; अधिष्ठानरुप नहीं होती. इसप्रकार सिद्धांतमें अंतर होजानेसे तीनोंका जुदा जुदा प्रकार कहा हे. ओर कार्य–व्यवहार दृष्टिको छोडके देखें तो दो भावरुपके विना अध्यास नहीं होता. यथा वेदांतके एक पक्षमें अधिष्ठान (ब्रह्म) से विषमसत्तावाली अनिर्वचनीय भावरुप माया ओर ब्रह्म यह दो हें तब अन्योऽन्याध्यास (संसर्गाध्यास) होता हे. अर्थात माया स्वयं अध्यास–भ्रमरुप--अर्थशून्य नहीं हे. वेसेही इस ग्रंथमें हे. याने जहां असंसर्गी (४५०) में अध्यास कहा हे वहां भ्रम, अध्यास दोनों प्रकार कहे हें.

भ्रम, अध्यास, स्वाभाविक अवभास (अधिष्ठानसे विषम सत्तावालेका अनिर्वचनीयावभास) यह तीनों वा दो दो पर्याय हें तथापि उद्देश, शैली, परिभाषाकी दृष्टिसे इनमें अंतर हे. विस्तार बस. गत उत्तरफिलोसोफीमें हे. यहां नाममात्र दरसाते हें (यहां अ. १ पृष्ट २०६ से २१२ तकभी वांचलेना ठीक होगा).

(१) दोषबलसे रज्जुमें सर्प वा लकडीमें चंदन बुद्धि होके रज्जुकाही सर्प नाम ओर लकडीकाही चंदन नाम कल्पाजाना, इसका नाम भ्रम हे. अध्यासवादि इसको ज्ञानाध्यास कहता हे. प्रतितीका विषय अर्थशून्य हो वहां भ्रमपदका प्रयोग कियागया हे. वहां कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानसे भिन्न नहीं किंतु अधिष्ठान स्वरुप होती हे.

(२) प्रतीतिका विषय अर्थशून्य न हो परंतु अधिष्ठानसे विषमसत्तावाला भावरुप हो ओर जिस भाव जिस प्रकारवाला प्रतीति कालमें जानपडता था वेसे भावप्रकारवाला ज्ञानकालमें न हो, एसे अर्थको अर्थाध्यास ओर उसके ज्ञानको ज्ञानाध्यास कहागया हे. जेसेके काचमें कमरे (पदार्थवाली कोटडी) का दर्शन, लाल पुष्प संबंधी श्वेतकाच, लालकाचसे प्रतीत होना, दो चंद्रके दर्शन. यह अर्थ अध्यास हे. यहां कमरा, काच, लाली, काच, दो चंद्र[१] विद्यमान हें. परंतु वे संसर्ग वा तादात्म्यवश अन्यथा रुपमें जान पडते हें. अज्ञान कालमें कमरे वगेरे सत् रुपमें जान पडते थे. ज्ञानकालमें पूर्व जेसे भाव–प्रकारवाले नहीं जान पडते. इसलिये कमरे वगेरेको अध्यास संज्ञा दीगई हे. अब यहां कमरा स्थूलरुप हे, काच लाल हे, आकाशमें दो चंद्र हें, एसा कल्पन तो भ्रम प्रसंगमें लियाजासकेगा; क्योंकि वेसा अर्थ नहीं हे. परंतु प्रतीतिके विषय (कमरा, लाली, २ चंद्र) हें; अतः अध्यासमें माने जायँगे क्योंकि हें ओर अन्यथा जानपडते हें.

जहां संसर्गाध्यास–अन्योऽन्याध्यास होता हे वहां आरोपित (कमरे वगेरे) का स्वरुपसे अवभास (अध्यास) होता हे ओर उनमें जो सतवस्तु हो उसका धर्म वा संबंध अध्यस्त होता हे (काच वगेरे) ॥ इसमेंभी दो पक्ष हें. (१) कमरा, लाली, दो चंद्र यह वहां नहीं थे परंतु अविद्यामें क्षोभ होके नवीन अनिर्वचनीय

[१] आंखकी कीकीमें दो छिद्र हों तो किंवा चंद्रका प्रतिबिंब दोनों आंखोंमें जुदा जुदा पडता हे वे अंदरमें जाके एक रुपमें न होसके एसे आंखे रखें तो दो चंद्र दीखेंगे. यह दोनों किरणसे बनें हें ओर हें. परंतु इतनेसे आकाशमें दो चंद्र हें, एसा कल्पना भ्रम हे.

उत्पन्न हुये हें, अधिष्ठानके ज्ञानसे बाधको प्राप्त होंगे. फेर वे कहींभी नही होंगे. (२) कमरे वगेरे थे सोही प्रतीत हुये थे. परंतु संबंधवश अन्यभावमें जानपडते थे. ज्ञान होने पीछे अपने उपादानमें लय होंगे. इस तकरारसे यहां प्रयोजन नहीं हे.

भ्रम ओर अध्यास, अज्ञानादि दोषके विना नहीं होसकते. जहां रज्जुमें सर्प, शुक्तिमें रजतकी प्रतीति होती हे वहां दो प्रकार होते हें—कभी तो सर्प, रजत अर्थशून्य याने भ्रमज्ञानमात्र—नामकल्पनमात्र. ओर कभी शेषा (दो चंद्रवत् ईश्वर-हिरण्यगर्भ-अविद्या) का परिणामरुप (अ. १ अध्यासप्रसंग यादमें लो). पहेले प्रकारमें विवाद नहीं हे. उसकी रीति उपर कही हे. दूसरे प्रकारमें विवाद हे. याने सर्पादि अविद्याके नवीन परिणाम हें तो भावरुप अविद्या (माया) के परिणामरुप जो सर्पादि सो रज्जुआदिसे भिन्न कोई आकार हें जो रज्जुआदिके इदंविशिष्ट हुये प्रतीत होते हें, किंवा अविद्या दोषसे रजुआदिही सर्पादिरुपसे प्रतीत होते हें ? पहेले पक्षमें उसकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप नही किंतु उसका अविद्यामें लय होना मानाजायगा; ओर डोरी आदि तथा सर्पादिका तादात्म्य होनेसे संसर्गाध्यास स्वीकारना होगा. यह विलक्षणवादिका मत हे. ओर न्याय मकरंदकारका पक्ष हे. दूसरे पक्षमें सर्पादिकी निवृत्ति, डोरीआदि (अधिष्ठान) स्वरुप हे ओर अविद्या (माया) भी सांत (कहींभी न रहनेसे) होनेसे असंसर्गाध्यास हे. परंतु यह कल्पना सयुक्त नहीं हे, स्वप्नादि उत्पन्न होके निवृत्त होते रहते हें. इसलिये उन नामरुपका मूल मान्नाही पडेगा.

(३) जहां अज्ञानादि दोषके विना अधिष्ठानसे विषमसत्तावाला कुछ प्रतीत हो उसे भ्रम—अध्यास नहीं कहसकते किंतु स्वाभाविक अवभास कहाजायगा. जेसे के आकाशकी नीलताका अवभास हे. क्योंकि अज्ञ-तज्ञ, योगी-अयोगीको अज्ञानादि दोषके विनाभी प्रतीत होती हे. ओर उसके संसर्गसे आकाश नीला हे, एसा आरोप होजाना अध्यास हे. नीलता अर्थशून्य न होनेसे भ्रमज्ञानकी विषय नहीं कहसकते. आकाश निरुप होनेसे चक्षुका विषय नहीं ओर यदि आकाशका सामान्यज्ञान याने बुद्धिवृत्तिका विषय होना मानो तोभी सबको नीलता जान पडती हे. इस रीतिसे उभयथा अज्ञानादिके दोषके विना जानपडती हे. जब विवेक होता हे तब पहेलेके भाव--प्रकारसे अन्यथा भासती हे, ओर बाधरुपमें भासती हे; इसलिये उसको भ्रम वा अध्यासका विषय कहदेते हें, वस्तुतः स्वाभाविक अवभास हे. एसी यह दृश्य (ब्रह्मांड) हे, एसा कहाजाता हे.

जहां अधिष्ठानसे विषम सत्तावाले अनिर्वचनीयकी प्रतीति हे वहां ज्ञानाध्यास हे अर्थात अध्यस्त अंतःकरणकी वृत्तिका ज्ञानरुप बाधित परिणाम हे. ओर इस ज्ञानवृत्तिका विषय अर्थाध्यास हे. संसर्गाध्यासमें उभय वस्तु पूर्वमें होती हें, उनका अनिर्वचनीय संबंध पेदा होता हे. जेसे के कमरा ओर लालकाचके उदाहरणमें हे. शुक्तिमें रजत उपर कहे अनुसार जहां अनिर्वचनीय नवीन पेदा हो (ईश्वरका परिणाम हो) वहां स्वरुपाध्यास हे. जहां अर्थशून्य हो वहां भ्रम–ज्ञानाध्यास कहाजाता हे.

सार—दोषवश अपने अभावाधिकरणमें नामकल्पन होजाना (आरोप होजाना) भ्रम–ज्ञानाध्यास हे, सो अधिष्ठानके ज्ञानसे प्रतिबध्य होता हे ॥ १ ॥ सम विषम सत्तावालोंके संबंध वा धर्मकी अन्यथा प्रतीति सो स्वरुप–वा संसर्ग वा अन्योऽन्य अध्यास हे. सोभी अधिष्ठानके ज्ञान हुये प्रतिबध्य होता हे. ॥ २ ॥ अधिष्ठानसे एसे विषम सत्तावालेका दर्शन (प्रतीति) के जो अधिष्ठानके ज्ञान हुयेभी अप्रतिबध्य हो ओर ज्ञानके पूर्वभी बाधरुप हो, सो स्वाभाविकअवभास हे. यथा नीलता, स्वप्न ॥ ३ ॥ नं. १, २ इस नं. ३ के अंतरगत हें. क्योंकि अधिष्ठानसे विषम सत्तावाले–अध्यस्तके अंतरगत सर्व (त्रिपुटीमात्र) का समावेश होजाता हे. अ. ३ व ४ में वांचोगे. अ. ३ गत सत्ताप्रकरणमें इसका बयान होगा.

उपर कहे अनुसार भ्रम, अध्यास, संसर्गाध्यास ओर असंसर्गाध्यास तथा स्वाभाविक अवभासका अंतर–बारीक भेद हे. ब्रह्म ओर जगत तथा जीवके स्वरुप निर्णय करनेमें इनका उपयोग होता हे ॥ ६५४ ॥*

***अध्यासका संक्षेपमें सार.—**

(१) स्वप्नसृष्टि अध्यासरुप हे, एसा मानें तो वोह मगज, मन वा द्दष्टाका परिणाम नहीं हे ओर न अर्थशून्य हे, उसे सत्, असत् वा सद्सद्रुप नहीं कहसकते; एसे विकल्पादि २८ रुप नहीं किंतु उसका उपादान कोई अनिर्वचनीय विलक्षण पदार्थ हे; जिसे माया--हिरण्यगर्भ--सूक्ष्मा--ईश्वर नाम दें वा ओर कुछ कहें; एसा अ. ३ में वांचोगे. ओर भ्रम–अध्यास, यह सद् असद् वा सद्सद्रुप नहीं एसे १३ विकल्परुप नहीं, यह अ. १ में वांचचुके हो. स्वप्नसृष्टि देशकाल वस्तुवाली योग्यदेशकाल रहित हे. परंतु जेसा उसके उपादानका अद्भुतरुप हे–याने सब प्रकारके विषयका रुप (जीवके संस्कारानुसार) धारलेता हे एसाही अध्यास-भ्रमका स्वरुप हे; सो अपने असली रुपसे प्रतीत नहीं होता किंतु अन्यथा (स्वप्नसृ-

ष्टिरुप--सत्‌रुप) भासता हे; इसलिये उसका अध्यास नाम डालते हें. वोह जीवकी इच्छानुसार नहीं होता; अतः कल्पित नहीं. ओर संस्कार विना नहीं होता; अतः अकल्पित नहीं; किंतु कल्पितवत् (मानो हमारा रचा हुवा), अकल्पितवत् (उपादान विषयरुप हुवा हुवा सामने खडा हुवा, एसा) हे; जेसे उदासीन पुरुष अपने अंदरमें अनिच्छित अकस्मात छबी विषय करता हे एसा हे. उभयमें स्पष्टास्पष्टमात्र भेद हे. अनहुयेकी अप्रतीति हे ओर स्वप्न विषय होता हे तथा उसके भोगकी स्मृति होती हे; अतः कुछ हे. केसा हे ? अनिर्वचनीय विलक्षण. क्योंकि उसका उपादान, विलक्षण–अनिर्वचनीय सिद्ध होता हे. स्वप्नसृष्टि असंसर्ग अध्यासका विषय हे. नाम कल्पनमात्र (अर्थशून्य) नहीं हे. लकडीका काला सर्प सामने हो उसमें सर्पबुद्धि होजाती हे, वहां सर्पका आकार हे परंतु वोह सचेत विषधर सर्प नहीं हे. स्वप्नमें मनुष्य वगेरेके आकार हें परंतु जागने पीछे ज्ञात होता हे कि जिस भाव जिस प्रकारमें जान पडते थे उससे विलक्षण थे. थोडे अंधेरेमें कहीं डोरीभी हो ओर सर्पभी हो, वहां डोरीमें सर्प भ्रम ओर सर्पमें डोरीका भ्रम अथवा सर्पमें सर्पकी ओर डोरीमें सर्पबुद्धि होजाती हे, वहां मनोवृत्तिसे अन्यप्रकारकी वृत्ति आई हो, एसा नहीं जान पडता; इसीप्रकार अन्य भ्रमप्रसंगमेंभी विचार लेनाचाहिये अर्थात भ्रम, न भ्रम यह मनोवृत्तिके परिणाम विशेष हें, जिसे व्यवहारमें प्रमा (यथार्थ ज्ञान), अप्रमा (बाधित वा भ्रमज्ञान) नाम रखा हे; क्योंकि उसके परिणाम (सफल वा निष्फल प्रवृत्ति) में अंतर पडता हे. विष भक्षण वा डसनका वहेम होजाय तो आदमी मरजाता हे; क्योंकि उससे मनमें भय, कमजोरी आजाती हे, उसका असर मगज ओर हार्टपर होनेसे धीरेधीरे गति बंद होके प्राण पीछे नहीं आते याने मरजाता हे. एसे भ्रम वा अध्यासरुप सर्पादिकी मनपर असर होजाती हे. भ्रमरुप रजतादिके दर्शनसे याने कल्पित आशाओंसेभी मनपर शुभ असर होजाती हे. एसेही स्वप्नदर्शनसेभी मनपर अच्छी वा बुरी असर होती हे; सो जाग्रतमें कहताभी हे. (उपरोक्त मार्मिक बातें ध्यानमें रखें). अब यह रहा के स्वप्नका उपादान माया क्या ? तहां सो स्वयं अध्यासरुप वा भ्रमवत् अर्थशून्यरुप नहीं हे, किंतु अधिष्ठानसे विलक्षणसत्तावाली कोई अनिर्वचनीय शक्ति हे, एसा सिद्ध होता हे. जाग्रतसृष्टिका ओर स्वप्नसृष्टिका कोई भिन्न सत्तावाला जुदाजुदा उपादान नहीं माना जासकता. (इसके वर्णनकी यहां अपेक्षा नहीं हे); अतः मायाके परिणामका ओर अधिष्ठानका संबंध होनेसे अन्योऽन्याध्यास याने संसर्गा-

ध्यास हे. संसर्गाध्यासका जो विषय हे सो तो नहीं हे; परंतु वेसा कल्पन होजाता हे. जेसे काचलाल नहीं हे परंतु रक्तवस्त्र वा रक्तकिरणोंके संबंधसे वेसा (लाल) जानपडता हे. जल तो खारा नहीं हे परंतु क्षारके तादात्म्यसे खारा प्रतीत होता हे. सारांश उपाधि वा अज्ञानादि वश, अन्यथा कल्पन होजाना भ्रम हे. इसलिये माया, स्वयं भ्रमरुप नहीं हे किंतु उसके जो परिणाम अन्यथा जानपडते हें सो अध्यासरुप हें ओर उनका अधिष्ठानके साथ संबंध होनेसे इन उभयका अन्योऽन्याध्यास हे.

दूसरी तरफ डोरीमें जो सर्प हे वोह वस्तुतः नहीं हे, परंतु अज्ञानादि दोषसे डोरीही सर्प रुपसे भासती हे. यहां डोरी स्वयं सर्परुप नहीं हुई ओर न आप सर्परुपसे प्रतीत होती हे, याने रुपांतर वा छलरुप नहीं हुई हे; किंतु अज्ञानादि करके डोरीमेंही सर्पका आरोपन होजाता हे; ओर जो-विषय होती हे वोह डोरी ही हे, परंतु दोषबलसे सर्परुपसे विषय होती हे. दोषवश कल्पित नामरुप (सर्प) अध्यस्त हे याने हेही नहीं. इसका अर्थ यह हुवा के अधिष्ठान अपने स्वरुपको नहीं छोडके ओर प्रकारका भासता हे. इस थीयरीका नाम विवर्त्त हे. तहां सर्प विवर्त्त हे ओर अधिष्ठान (डोरी) विवर्त्तोपादान हे. नहीं के डोरी, माटी घट समान वा दूध दही समान रुपांतरको पाइ हे. याने उपादान वा परिणामी नहीं हे. इसीप्रकार शुक्तिरजत वगेरे भ्रम प्रसंगमें योजलेना चाहिये. (शं.) वे अज्ञानादि ६ क्या ? (उ.) माया शक्तिके संसर्ग वा संबंधसे अधिष्ठानके विशेष स्वरुपकी अस्पष्टता (अप्रतीति) इसका नाम अज्ञान हे याने अज्ञान स्वरुपतः कोई वस्तु नहीं हे; क्योंकि स्वरुप प्रतीत हुये उसका पताभी नहीं लगता १, अधिष्ठानकी सामान्यसे प्रतीति सो सामान्यज्ञान हे २, जेसे पूर्व स्वप्न वा जाग्रत दृष्टजन्य संस्कारसे उत्तर स्वप्न वा जाग्रतमें वेसा प्रतीत होजाता हे, इसीप्रकार विवर्त्त जो नामरुप वे पूर्वपूर्वके संस्कारानुसार जानपडते हें अर्थात पूर्व कल्पनावत् हें; इसका नाम वस्तुसंस्कार हे ३, प्रमाता, प्रमाण ओर प्रमेय यह तीन दोष विवर्त्तके अंतरगत हें ६, (सू. ४४० यादमें लीजिये). सार यह आया कि माया उपाधि करके उसका जो अधिष्ठान सो नामरुपवाला भासता हे. वहां न तो मायाका परिणाम हे ओर न अधिष्ठानका रुपांतर हुवा हे. किंतु विवर्त्त (अधिष्ठानसे विषम सत्तावाला जो अन्यथारुप सो. यथा डोरीका सर्प) होना--अन्यरुप भासना, यह स्वाभाविक हे.

उपरोक्त स्वप्न ओर रज्जु आदिके उदाहरणसे यह सिद्ध हुवा कि किसीके-

वलाद्वैत अधिष्ठानमें मायामात्र द्वैत हे वा तो माया शक्तिके संबंधसे एसा अध्यास स्वभाविक ओर अनादिअनंत हे. (शं.) स्वप्नमें यथासंस्कार, मायाका परिणाम माना हे ओर दूसरी थीयरीमें मायासे विवर्त्तरुप भासना माना हे, इस विरोधसे संशय होता हे. (उ.) व्यवहार द्दष्टिसे रज्जु-सर्पादि भ्रमप्रसंगमें दो प्रकार उपर कहे हें–(सू. ४३९ देखो) नाम कल्पन होजाना (ज्ञानाध्यास) ओर हिरण्यगर्भका अन्यथा मालूम होना सो अध्यास. इसका अधिष्ठानके साथ संबंध होनेसे संसर्गाध्यास (अर्थाध्यास). जहां जेसा परिक्षासे जान पडे वहां वेसा मानलेना चाहिये. परंतु वस्तुतः दोनोंका आशय एकही हे. क्योंकि स्वप्नवाली माया, अन्यथा जान पडती हे अर्थात जिस रुपमें भासती हे वेसी वोह नहीं हे, ओर डोरी आदि प्रसंगमें कहीं तो ईथरका अन्यथा भासना हे ओर कहीं तो सर्पादिकका कल्पनमात्र हे. डोरी, ईथर ओर स्वप्न इन तीनोंका उपादान एक ओर इन तीनोंका अधिष्ठान इनसे इतर एकही कोई ओर हे (आगे वांचोगे), उस द्दष्टिसे देखोगे तो व्यवहारमें दो पक्ष मानने होंगे. नामरुप मायाके परिणाम सो अधिष्ठानके विवर्त्त (इसको विलक्षणवाद कहते हें) १. ओर माया करके अधिष्ठानही नामरुपात्मक भासे (इसका नाम विवर्तवाद हे) २. आद्यमें अध्यास निवृत्तिका शेष अधिष्ठान हे ओर उत्तर पक्षमें भ्रमकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप हे. यह उभयप्रकार, व्यवस्था द्दष्टिसे भेदवाले हें. विस्तार बस. में हे. ज्ञानाध्यास, अर्थाध्यास, असंसर्गाध्यास, संसर्गाध्यास, स्वरुपाध्यास, धर्मीअध्यास, धर्माध्यास ओर संबंधाध्यास इनका वर्णन मूलमें हे. यहां अध्यासका सार अतिसंक्षेपमें कहा हे, जो लौकिक प्रसंगमें लगता हे ओर मूलाधिष्ठान अध्यस्त (तमाम ब्रह्मांड) प्रसंगमेंभी लगजाता हे. परंतु जब यह सवाल उठे कि भ्रम वा अध्यास वा अज्ञान किसको हे ओर एसा किसने जाना ओर यह कोन कहता हे, तब इस थीयरीमें बडी हिलचाल होजाती हे, जवाब नहीं बनता. एक जीवकी व्यष्टि द्रष्टिसे निर्णय करें तोभी ओर समष्टि द्रष्टिसे शोधें तोभी जवाब नही बनता. अंतमें मायाके स्वरुपवास्ते अन्यथा, अनिर्वचनीय ओर अधिष्ठानके स्वरुपवास्ते नेतिनेति कहके चुप होजाना पडता हे, एसा यह अध्यास प्रसंग हे. इस विषयका विस्तार बस. गत उतरफिलोसोफी प्रसंगमें किया हे. ओर कुछ अ. ३ में कहेंगे. यहां तो अध्यस्त-भ्रम-अध्यासका निवृत्ति शेषाधिष्ठान (६५२) समझनेके वास्ते यह नोट लिखी हे. क्योंकि यह विषय तकरारी हे ॥ ६२४ से ६५४ तक. ॥

असत् दुराग्रहका अनिष्ट परिणाम ॥ ६५५ (दुराग्रह) ॥ **ओर निदिध्यास, योगका विवेकख्याति** ॥ ६५६ (विवेक ख्याति) ॥

अर्थ.—जो असत् मंतव्यपर हें वा (सत्य न हुयेभी) हमाराही सत्य, अन्यका (सत्य होते हुयेभी) असत्य, एसा दुराग्रह रखते हें उनको उसका अनिष्ट परिणाम होता हे. यह स्पष्टही हे.—देख रहे हें याने नाना धर्म--मत--पंथोका दुराग्रह कितना हानीकारक होरहा हे सो जगत प्रसिद्ध हे । जो इस नानात्वको दुराग्रह समझते हें वेभी स्वपक्षको नहीं छोडते ! ! (यहां सू. ५६६ दूर पडजानेसे परिणाम पद लेना पडा हे) ॥ ६५५ ॥ ओर मध्यस्थ निर्णितके श्रवण तथा उसके मननके अनुसार जो निदिध्यास कियाजाय तो इस निदिध्यासरुप योग वा निदिध्यास ओर योगका विवेकख्याति परिणाम होता हे ॥ ६५६ ॥ तेलकी अटूट धारावत इष्टाकार वृत्तिको करना वा वेसी वृत्ति होना, **निदिध्यास** कहाता हे. ओर चित्तका निरोध (संस्कार रहित निरुद्ध परिणाम) **योग** कहाता हे. जिसने योग करके इष्टाकार चित्त किया वा जिसने तदाकार निदिध्यास किया, उसको इष्ट--मूल स्वरुप (आत्मा, जीव, प्रकृति, मन वगेरे) की ख्याति (प्रतीति—साक्षात् अनुभव) होजाता हे याने विवेकसिद्ध (निर्णित) का बोध होजाता हे. योग साधनमें समाधि होनेके पहिले कुछ विश्वदृष्टि अवस्था (मानसिकयोगके पूर्वार्द्धमें वर्णन कियागया हे) उस पीछे शून्यसमाधि (चित्तका निरोध) उसके पीछे विवेकख्याति होती हे. ओर निदिध्यासकी रीतिमें केवल विवेकख्यातिही होती हे ॥६५६॥

जीवनियमप्रकरण समाप्त.

सूचना प्रकरण ५.

संगति.—उपर जो सृष्टिनियम ओर जीवसंबंधी नियम लिखे हें, उनके उपयोग संबंधी—पदार्थ निर्णय संबंधी—ओर तद् संबंधी अन्य सूचना लिखनेकी अपेक्षा हे, सो आगे सूचनाप्रकरण (सू. ६५७ से ७४७ तक) में लिखते हें. वे मिश्रित भाग होनेसे, उनका यथाप्रसंग यथायोग्य उपयोग कर्तव्य हे. इस सूचना गत कोई जीव संबंधी नियमसूचक, सहकारी ओर कोई सृष्टि संबंधी नियमसूचक, सहकारी होगी; अतः उनके साक्षात वा परंपरासंबंधको जाने विना शंकाको अवसर नहीं मिलता हे, एसा जानना चाहिये.

हुवा न अनहुयेवत् होतव्य न अहोतव्यवत् ॥ ६५७ (संचित) ॥ अनहुवा न हुवा अहोतव्य न होतव्य ॥ ६५८ (कर्तव्य) ॥ हुवा सो फेर नहीं ॥ ६५९ (नाश) ॥ देशकालके भेद होनेसे ॥ ६६० ॥ हुये जैसा संभव ॥ ६६१ (समान) ॥ विना परीक्षा न योग्य उपयोग ॥ ६६२ (गुण) ॥ जीववत् ॥ ६६३ ॥

विभुवत् तद्भिन्न अगोचरभी ॥ ६६४ (अगोचर) ॥ यथा परमाणु ॥ ६६५ ॥ रुप रहित अपरिच्छिन्न ओर रंग रहित परिच्छिन्नभी ॥ ६६७ (रूप) ॥ नभ रंग परमाणुवत् ॥ ६६७ ॥

अर्थ.—जो भूतमें होचुका, वोह नहीं हुये समान नहीं होता ओर जो भविष्यमें होनेयोग्य हे, वोह न होनेयोग्य जेसा नहीं होगा ॥ ६५७ ॥ कन्या प्रोढा होजाय वा निपुत्री सपुत्री होजाय उसपीछे उसका पूर्ववाला भाव, प्रकार नहीं होता, अगामी वृद्ध अवस्था, जवानी वा अनाशवत् नहीं होगी. एसेही अन्यत्रभी जानलेना चाहिये ॥ ६५७ ॥ जो होचुका हे सो नहीं होनेके योग्य (असंभव) हुवा हो एसा नहीं मान्ना चाहिये; क्योंकि हुवा हे. ओर जो नहीं होनेके योग्य हे (असंभव हे) वोह नहीं होवेगा एसा मान्ना चाहिये किंतु योग्य हुवा हे ओर योग्य होगा, एसा जान्ना चाहिये ॥६५८॥ प्रारब्ध, भावि, चांस, किसमत, निर्मित, अनिर्मित, संयोगसंबंध वा अकस्मात अथवा अन्य कुछभी मानो परंतु जो हुवा ओर जो होगा वोह असंभव नहीं हे ओर न होगा ॥ तद्वत् वर्तमान वास्ते ज्ञातव्य हे. यह संचित ओर कर्तव्य उभय सूत्र संतोषपूर्वक पुरुषार्थके बोधक हें. विस्तार मूलमें हे ॥ ६५८ ॥ जो हुवा वा होचुका वोह (वोही) फेर नहीं होता ॥ ६५९ ॥ क्योंकि देशकालका भेद पड जाता हे ॥ ६६० ॥ हां, हुयेके जैसा (समान) होनेकी संभावना हे ॥ ६६१ ॥ यथा क. पात्रमें जल डालके वोही जल निकालके पुनः डालें तो पूर्ववाला रुप नहीं होगा किंतु पूर्व जेसा होगा. क्योंकि जलके परमाणुओंके संयोग ओर पात्रके देश तथा परमाणुओंके संयोगमें अंतर पड गया हे ओर पूर्व उत्तरकी स्थितिके कालका अंतर तो स्पष्टही हे. परंतु पूर्व जैसा आकार हुवा हे. इसीप्रकार सत्वरजतमात्मक प्रकृतिके हरकोई दो परमाणुके संयोग वियोगरुप स्थितिके तथा शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंधादिके प्रसंगमें यथायोग्य जानलेना चाहिये. यह प्रकार तत्वमें नहीं होता किंतु कार्य परिणाम अर्थात अतत्वोंमें लगता हे (सारांश सब कार्यरुप फोर्म नाशवान हें ॥ ६६२ ॥

पदार्थकी योग्यताकी परिक्षाके विना मनुष्य उसका योग्यउपयोग नहीं करसकता ॥ ६६२ ॥ जेसे के जीव क्या हे, उसकी योग्यता केसी हे, इसकी परिक्षा याने उसके अनुभवके विना उसका जेसा चाहिये वेसा उसका उपयोग नहीं होता किंतु अन्यथाभी होता हे वेसे ॥ ६६३ ॥ जेसा कुदरतमें योग्यउपयोग होता हे, वेसा मनुष्य नहीं करसकता; कारणके पदार्थकी परिक्षा करनेमें अपूर्ण हे. तथापि योरोपके शोधकोंने वायु, अग्नि, विजली ओर ईथरकी दूसरोंसे अधिक शोधकी हे, इसलिये दूसरोंसे, ज्यादा उनका उपयोग लेते हें. गुणादि पदार्थोंके स्वरुपमें फिलोसोफरोंका मतभेद हे; अतः योग्योपयोग नहीं होता. स्वरुप संभावना (१२९) का विवेचन[1] देखिये ॥ ६६४ ॥

जेसे निराकार–असीम, इंद्रियोंका विषय नहीं होता वेसे कोई अविभुभी (साकारभी) एसे पदार्थ हें कि जो इंद्रियोंके विषय न हों ॥ ६६४ ॥ जेसे कि परमाणु (मन ओर किरण) हें (उन अगोचरोंकी सिद्धि उनके कार्योंसे होजाती हे) ॥ ६६५ ॥ अपरिच्छिन्नके रंग ओर आकार नहीं होता ओर परिच्छिन्नपदार्थ रंगवाले ओर रंग विनाकेभी होते हें ॥ ६६६ ॥ जेसे के आकाश, रंग ओर आकार विनाका हे. तथा रंगरुप परमाणु, रंग रहित हे ओर हाइड्रोजनादिके परमाणु रंग रहित होते हें ॥ ६६७ ॥

सिद्ध अनवस्थादि दोष नहीं ॥ ६६८ (निर्दोष) ॥ **संयोग वियोग ओर अस्तित्व वत्** ॥ ६६९ ॥ **सादृश्यकी समानताभी** ॥ ६७० (सादृश्य) ॥ **मनुष्य कृपिविशेष वत्** ॥ ६७१ ॥

अपने पूर्वोत्तरमें न सद् न सदसद् ॥ ६७२ (सादृश्य) ॥ **मध्यमें न असत् न सदसद्** ॥ ६७३ (अनिर्वचनीय) ॥

ज्ञान ओर विषयका समकाल उत्पत्ति नाशभी ॥ ६७४ (काली) ॥ **यथा स्वप्नमें** ॥६७५॥ **व्यावहारिक ज्ञानका ज्ञानसे बाधभी** ॥६७४(बाध)॥ **शब्दरुप ज्ञानवत्** ॥ ६७७ ॥

जाति देश ओर काल भेदसे अवस्थाके प्रकार ॥६७८(अवस्था)॥

सबका खंडन यह व्याघात ॥ ६७९ (मंडन) ॥ **तत्त्वोंमें क्यों हे की अनुत्पत्ति** ॥ ६८० (अति) ॥ **स्वभावतः अनादि होनेसे** ॥ ६८१ ॥

अर्थ.—जो सिद्ध अनवस्था ओर सिद्ध आत्माश्रय हें, वे दोष नहीं माने-

---

[1] यह जिल्द–वोल्युम जुदा हे. अवसर–सामग्री होनेपर छपेगा.

जासकते क्योंकि प्रमाणसिद्ध ओर हें ॥ ६६८ ॥ जेसे के सृष्टिमें संयोग वियोगके प्रवाहकी धारा ओर अस्तित्व अन्याश्रय विना स्वयंसिद्ध हे ॥ ६६९ ॥ उत्तरसे पूर्व पूर्व सृष्टि हे ओर उत्तरउत्तरमें होती रहेगी यह धारा हे. सर्वाधार कोई स्वयंभु होना चाहिये ओर वोह स्वयंभु अनाधार होना चाहिये (यह उपर कहा हे) यह आत्माश्रय हे. तत्व वा उसका अस्तित्व आत्माश्रय हे ॥ ६६९ ॥ यद्यपि स्वरुप ओर अधिकरण भेदसे पदार्थ मात्र असमान हें, तथापि दो पदार्थोंका जो सादृश्य भाव होवे तो व्यवहारमें उनकी समानता मान ली जाती हे[1] ॥ ६७० ॥ जेसे के विकासवादि मनुष्य ओर बंदर (गोरीले, उटांग, वनमाणस) की समानता मानते हें, क्योंकि वे सादृश्य हें. इनकी समानता अ. १ जडविकासवादमें दरसाइ हे. (खडे होके चलना, पूंछ न होना, झूंपडी बनाना,. महिमानबाजी करना वगेरे, उक्त बंदर ओर मनुष्य—इन उभयमें सादृश्यता हे). (छुवारे खिजूर, बिंब प्रतिबिंब ओर नींब बकायनकी सादृश्यतासे समानता प्रसिद्ध हे)॥६७१॥

कोईभी अपनी उत्पत्तिके पूर्व ओर अपने नाशके पीछे सद् किंवा सदसद् रुप होता हो एसा नहीं हे, याने एसा सिद्ध नहीं होता वा उसे एसा नहीं कहाजासकता ॥ ६७२ ॥ जेसे के स्वप्नसृष्टि, रज्जुसर्पादि वा घटादि उनकी उत्पत्तिके पूर्व ओर नाशके पीछे सद् वा सदसद्रुप नहीं हें वा सद् वा सदसद्रुप नहीं कहे जाते वा नहीं कहसकते ॥ ६७३ ॥ किसीकी उत्पत्ति पीछे ओर नाशके पूर्व अर्थात मध्य-वर्त्तमानमें उसे असद् वा सदसद् नहीं कहाजाता वा नहीं कहसकते. क्योंकि असद् कोई वस्तु नहीं, ओर वोह दृश्य वस्तु हे; ओरभी कोई वस्तु सदसद्रुप विरोधी धर्मवाली होही नहीं सकती (३४० याद करो); क्योंकि जो अपने भावमें (द्रव्य, क्षेत्र, काल रुपमें) सत् हे वोह पर दृष्टिसे असत् मानाजाय यह कल्पनामात्र हे. इसलिये कोई वस्तु सदसद्रुप नहीं होती ॥ ६७३ ॥ जेसे के प्रतीत कालमें स्वप्नसृष्टि, कनककुंडल, ओर रज्जुसर्पादिको असत् वा सदसद्रुप नहीं कहसकते. (शं.) जो पूर्वमें न था तो मध्यकालमें कहांसे आया (नित्य

[1]जबतक दोके तमाम गुण, कर्म, शक्ति, धर्म न मिलें वहांतक उनके वास्ते सजातीयत्वका प्रयोग व्यवहारमात्र हे. जहां सब मिलजावें (यथा कनकके दो अणु) वहांभी स्वरुपाधिकरण, भेदत्वही विलक्षणता हे. बात यह हे सामान्य प्रत्यय (जाति) कोई वस्तु नहीं हे. व्यवहार दृष्टिसे सजातीयत्व ओर सादृश्यताकी कल्पना हे. यही प्रकार सूत्रमें हे.

नियम याद करो). (उ.) पूर्व वस्तुके संयोग–वियोगजन्य वा परिणामांतररुप रचना हे, जो पूर्व उत्तरमें नहीं रहती. जेसे के कनकका कुंडल ओर माटीका घट हे. परंतु यह मंतव्य स्वप्नसृष्टि ओर रज्जुसर्पादि प्रसंगमें नहीं घटता; क्योंकि वहां जो रचना ओर जिसकी रचना, उनको अनिर्वचनीयके सिवाय कुछ नहीं कहाजासकता, इसलिये मध्यवर्तीको अनिर्वचनीय कहनेसें सर्व प्रसंगमें निर्वाह होके व्यवस्था होजाती हे¹ ॥ ६७३ ॥

साधारणतः तो एसा हे कि जब ज्ञेय हो, तब ज्ञान हो अर्थात ज्ञेय पूर्व क्षणवर्ति होता हे ओर ज्ञान, ज्ञेयके पूर्व नाश होजाता हे. परंतु ज्ञान तथा विषयका समकालभी उत्पत्ति नाश होता हे ॥ ६७४ ॥ जेसे के स्वप्नमें नामरुप विषय ओर उनका ज्ञान दोनों समकालमें उत्पन्न नाश होते हें ॥ ६७५ ॥ तद्वतही स्मृति ओर तद्ज्ञान, उदासीन अवस्थामें शरीरके अंदर अनिच्छित जो छबी सामने होती हे, काच गत प्रतिबिंब, ओर डोरीका सर्प-इत्यादि प्रसंगोंमें होता हे. परंतु इनप्रसंगोंमें ज्ञानवृत्तिका ग्रहण हे, एसा जान्ना चाहिये. यथा यह घट, में जानता हुं, इसप्रकारका वृत्तिज्ञान, ज्ञेयके संबंध होतेही होता हे. एक प्रकारका ईम्प्रेशन वा उसका परिणाम, यह घट पटादि एसे सब, ज्ञानवृत्तिही हे. ज्ञानशक्ति, प्रकाश समान प्रथमसे विद्यमान हे, उसमें ज्ञेय प्रकाशित होतेही ज्ञानवृत्तिका उदय ज्ञेयका समकालीन कहाता हे. उस ज्ञान कृतिका व्यवहार उत्तरकालीन हे. इसप्रकार दो प्रकार हें. यथा योग्य रीतिसे विवेक कर्तव्य हे. ज्ञामस्वरुप वा ज्ञानशक्तिका उत्पन्न नाश होना वृत्तिज्ञानके व्यवहारसे कहाजाता हे, यह बात यहां स्मरणमें रहना चाहिये. चित्तप्रकाश अधिकरण ध्यानमें लीजिये. विशेष मूलमें ॥ ६७५ ॥ विषय संबंधजन्य पहेली एक ज्ञानवृत्ति, दूसरी (उत्तर) संबंधजन्य ज्ञानवृत्ति होनेपर अभावको प्राप्त होजाती हे; इसीको व्यवहारमें व्यावहारिक ज्ञानका ज्ञानसे बाधभी एसा कहते हें ॥ ६७६ ॥ जेसे के किसी रुपका ज्ञान कर रहे हें, उसी समय इष्ट शब्द सुनतेही पूर्ववृत्ति ज्ञानवाला प्रकार बदल जाता हे अर्थात शब्द ज्ञानवाली वृत्ति (वृत्तिज्ञान) होजाती हे ॥ ६७७ ॥ यद्यपि यहां पूर्वज्ञान परिणाम बाध होने याने बदलनेमें

¹ सत्से सत्का सत्संयोग होता हे ओर उस संयोगजन्यका उपयोग होता हे; अतः कार्य सत् हे १, सतका नाश नहीं होता ओर कार्यका नाश होता हे; अतः कार्य सत् नहीं, असत् हे २, सन्संयोगोंका वियोगभी सत् होता हे; अतः कार्यरूपका अदर्शनभी सत् हे ३, इत्यादि अनेक विवाद, बुद्धि विलासमात्र हें ॥

शब्दसंबंध निमित्त हे; नहींके शब्दज्ञान निमित्त हे क्योंकि एक कालमें एक वृत्तिके दो ज्ञानरुप परिणाम नहीं होसकते; पूर्ववालारुप वृत्तिज्ञान परिणाम बदलने पीछे शब्दज्ञान परिणाम होता हे. तथापि शब्द ओर उसका ज्ञान समकालीन होते हें, इसलिये अत्यंत समीपवृत्ति होनेसे पूर्ववाले ज्ञानके बाध होनेमें उत्तर ज्ञानवृत्तिकी निमित्तता मानीजाती हे. यथा डोरीका अज्ञान ओर सर्पका ज्ञान (ज्ञान-वृत्ति) पूर्वमें हे. उत्तरज्ञान अर्थात डोरीका ज्ञान उन उभयका बाधक होता हे.--याने पूर्वोक्त रीतिअनुसार अतिशिघ्रतासे बदलता हे–रुपांतरको पाता हे. इसीप्रकार दुःख, दुःखाभाव, सुख, ओर इनका ज्ञान यह समकालीन होते हें. ओर पूर्वके बाध होनेमें उत्तरको निमित्त मानते हें. सारांश पूर्ववाली ज्ञानवृत्तिका समफोर्स (संबंध–संस्कार) से अन्य ज्ञानरुप परिणाम तुरत (उसी समय) होजाता हे. इसीका नाम व्यवहारमे ज्ञानसे ज्ञानबाध्य हे. वस्तुतः उत्तरवर्ती, पूर्ववर्त्तीका बाधक नहीं होसकता. (३५ का विवेचन याद करिये) ॥ ६७७ ॥

जाति ओर देश तथा कालसे अवस्थाके प्रकार (भेद) हुवा करते हें ॥६७८॥ जेसे के द्रव्य प्राप्तिजन्य सुख ओर पुत्र प्राप्तिजन्य सुख यह सुखत्वमें समान हुयेभी उन सुखोंमें विलक्षणता हे. तद्वत् शरीरकी पीड़ा ओर पुत्रनाशजन्य दुःख यह सजातीय हुयेभी उनमें विलक्षणता हे. घोडागधीजन्य खच्चरका जातिभेद हे (यह जातिभेद अवस्था). दिनमें देखा हुवा रंग रातमें वा तममें, ओर रातका देखा हुवा रंग दिनमें अन्यप्रकारसे जानपडता हे (यह तमप्रकाश देशभेदसे अवस्था). गरम ओर वर्षाऋतु कालमें वृक्षोंका रुपांतर होता हे, युवा वृद्ध होता हे (यह कालभेदसे अवस्था). तमाम घट, घट भावसे सजातीय हें, तोभी देशकाल ओर उपादानकी रचनासे वे विलक्षण हें. इसप्रकार जेसे सजातीयसजातीय वा सजातीय–विजातीय, जाति (व्यक्ति) हो उनके मिश्रणसे ओर जेसे देशकाल हों वेसे अवस्थाके प्रकार (भेद) हुवा करते हें ॥ ६७८ ॥

सब मंतव्य, विषय वा कल्पनाका खंडन होजाता हे, एसा कहना वा मानना वदतोव्याघात हे, क्योंकि यह मंतव्यभी उसके अंतरगत् आजाता हे (उसका विषय होजाता हे) ॥ ६७९ ॥ (शं.) ४४१ के विरुद्ध. (उ.) सू. ७७ से समाधान होजाता हे ॥ इसलिये मानवमंडलकी ज्ञानकी सीमातकमें जो सत्य (यथार्थ) हो उसका खंडन नहीं होसकता. मनुष्यकी अपूर्णता तो खंडनमंडन इन उभय पक्षमें मानसकते हें. इसलिये मन, इंद्रिय ओर बुद्धिका जो विषय हो उसका

ओर मनेंद्रियादि वा कल्पनामात्रका खंडन होसकता हे ओर मनुष्य बुद्धिकी मर्यादामें उनका मंडनभी होजाता हे (विशेष अ. ४ में) ॥ ६७९ ॥

(अग्नि उष्ण क्यों हें, औ. उद. से पानी बने एसे वे क्यों हें, विजातीय तत्व क्यों हे, वे क्यों नहीं बदलते वा क्यों नहीं नाश होते इत्यादि प्रकारमें) " तत्व क्यों हें, एसे क्यों हे ", इस प्रश्नकी अनुत्पत्ति हे याने अतिप्रश्न हे ॥ ६८० ॥ क्योंकि स्वभावतः अनादिसे एसेही हें ॥ ६८१ ॥ यदि कोई अनादि दूसरा प्रकार होता तबभी आप एसाही प्रश्न करसकते थे ओर वोह व्यर्थ होता; इसलिये वे तत्व केसे हें, उनका उपयोग केसे होता हे एसे प्रश्न ओर उनका जवाब होसकता हे; मानो के मनुष्य इन सवालोंकाभी पूरा उत्तर न देसके तथापि एसा सवाल होसकता हे. साइंसविद्याकी यही खूबी हे, कि वोह अतिप्रश्नोंमें नहीं पडती किंतु जिसका उपयोग होसके उसमें ओर उपयोगमेंही अपनी योग्यता लगाती हे ॥ जीवन वा प्रवृत्तिरुप व्यवहारमें तो इतनाही उपयोगी हे. ईश्वरादि विषयोंमें मगजको थकाना अपनी नेशन, अपनी कोम ओर अपनी व्यक्तिका नाश करना हे, एसा वर्तमानमें मान्ने लगे हें. परंतु नेशन--जाति बन्नेमें कोनसा तत्व हे इसपर ध्यान दोगे तो ओरहीप्रकार जानपडेगा ॥ ६८१ ॥

अज्ञाततत्वकी संभावना ॥ ६८२ (अज्ञात) ॥ गोचरसे इतर नहीं एसा नहींभी ॥ ६८३ (परोक्ष) ॥ स्नेहाकर्षण ओर शक्ति वत् ॥ ६८४ ॥ अनिश्चितमें संमति ओर उसका मंतव्य अयोग्य ॥ ६८५ (अनिश्चित) ॥ अनिष्ट होजानेसे ॥ ६८६ ॥ असिद्धितक खंडित वत् आधार योग्य नहीं ॥ ६८७ (अमान्य) ॥ अन्यथाकी संभावनासे ॥ ६८८ ॥ मंतव्यमात्रसे अस्तित्वका नियम नहीं ॥ ६८९ (घटक) ॥ परीक्षातक अग्राह्य ॥ ६९० (असिद्ध) ॥ अन्यथा आपत्तिपर दुःखप्रद होनेसे ॥ ६९१ ॥ जेसे कि अनिर्णित परधर्म ग्रहण होजानेसे परिणाममें दुःख ॥ ६९२ (धर्म) ॥

अर्थ.—मानवमंडलमें जितने तत्व (वा सत्) आजतक ज्ञात हुये हें उनसे इतर अज्ञातभी हों, एसी संभावना हे; क्योंकि दूसरे ग्रहोंका अज्ञान हे. किंवा मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हे ॥६८२॥[1] (शं.) जो एसा हो तो जितना निर्णय वा नि-

---

[1] यह तत्वदर्शन ग्रंथ एसा नहीं बताता वा नहीं मानता के जो जेसा ओर जितना इसग्रंथमें कहा हे, सो वेसा ओर उतनाही हे; किंतु इसमें जो भूल हो तो उसको त्यागना, उससे अन्यथा हो तो उसे शोधना—परीक्षा करना ओर

श्रय हे वोह अपूर्ण ठेरेगा वा अन्यथा रहेगा. (स.) मानव अपनी सीमातकमेंही शंका समाधान ओर मंतव्य, अमंतव्य करने योग्य हे, इसलिये कोई दोष नहीं. अज्ञात जबतक ज्ञात न हो वहांतक हेही, एसाभी नहीं कहसकते, संभव हे के न हो; अतः मनुष्यकी सीमातक व्यवस्था होसकती हे ॥६८२॥ जो हे सो इंद्रियोंका विषयही हे. ओर जो गोचर नहीं हे, वोह हेही नहीं, एसा नहींभी हे ॥६८३॥ यथा स्नेहाकर्षण वा शक्ति (गुरुत्वाकर्षण), गोचर नहीं हें ओर हें. पदार्थोंकी शक्ति हे याने कार्योंसे उसका अनुमान होता हे परंतु गोचर नहीं हे. इत्यादि अनेक तत्व अगोचर हें ॥ ६८४ ॥ जिस विषयका अपनेको निश्चित ज्ञान वा निश्चय नहीं हे, उस विषयमें हां वा नाकी संमति देना वा उसको निश्चितरुपमें कुछ मानलेना योग्य नहीं हे ॥६८५॥ क्योंकि एसा करनेसे अपना वा दूसरेका अनिष्ट होजाता हे ॥६८६॥ यथा स्वर्गादि (स्वर्ग, नरक) परोक्ष होनेसे अनिश्चित रुपमें हों तो उसके लोभ वा भयसे दूसरेको किसी अयोग्य-हेय विषयमें प्रवृत्ति वा योग्य-इष्ट विषयमेंसे निवृत्ति कराना वा उनमें आप प्रवृत्त वा निवृत्त होना, यह द्रव्य, काल ओर श्रमको व्यर्थ गुमाना हे; क्योंकि संभव हे के वे न हों वा अन्य—एसे प्रकारके हों कि जो हमको इष्ट नहीं हें. यदि प्रस्तुत प्रवृति वा निवृत्तिका फल व्यष्टि वा समष्टिके वास्ते उत्तम हे तो योग्य कल्पना अधिकरणका विषय होजायगा. याने यथायोग्य निर्णय ओर परिक्षा कर्तव्य हे. अन्यथा त्याज्य हे ॥ ६८६ ॥ जबतक कोइ विषय सिद्ध (११९) न होजाय वहांतक वोह आधार योग्य नहीं हे अर्थात जेसे उसके खंडनमें प्रवृत्ति नहीं होती वेसे उसपर आधारभी नहीं रखना चाहिये, किंतु जेसे खंडित (असिद्ध किये हुये) आधार योग्य नहीं वेसे उसकोभी मान्ना चाहिये ॥ ३८७ ॥ व्यवहारमें अयोग्यमेंभी प्रवृत्ति देखते हें, ओर असिद्ध विषयको मानके प्रवृत्ति होना देखते हें, इसलिये यह विषय व्यावहारिक प्रवाहसे संबंध नहीं रखता किंतु किसी विशेष निर्णय प्रसंगसे संबंध रखता हे, एसा जान्ना चाहिये ॥ ६८७ ॥ क्योंकि संभव हे कि असिद्ध विषयको जेसा हम प्रवाहमें मान रहे हें उससे व्ह ओर प्रकारका निकले, अतः सिद्धितक आधार योग्य नहीं हे ॥६८८॥ प्रचलित धर्ममत पंथोंमें प्रावाहिक (परंपरा), रौढिक, एसे कितेनेही मंतव्य, अमंतव्य निकलआते हें के जो अन्यथा हें ॥६८८॥ हमने जेसा माना हे इस मंतव्यमात्रसे-

---

उससे विशेष हो तो उसे ग्रहण करना उचित हे, एसा कह रहा हे. सो इस शोधन अधिकरणसे स्पष्ट हे ॥ ६८८ । ६८९ ॥

वोह पदार्थ एसाही होना चाहिये वा होगा, एसा कोई नियम नहीं हे ॥६८९॥ जो एसा नियम होता तो शब्दादि विषयोंमें मतभेद न होता; याती यथा मंतव्य परिक्षामें वे पास होते, परंतु एसा नहीं देखते, इसलिये मंतव्यमात्रसे अस्तित्व कायम नहीं किया जासकता. ॥ ६८९ ॥

जब कोई अपरोक्ष वा परोक्ष विषय, मंतव्यमें लेना हो याने मानना हो तो परिक्षा किये विना अग्राह्य हे ॥ ६९० ॥ क्योंकि जो परिक्षा विना ग्रहण हुवा हो ओर फेर अन्यप्रकारका निकले तो वोह दुःखप्रद होजाता हे ॥ ६९१ ॥ जेसे के किसी अनिर्णित परधर्मके ग्रहण होनेसे ज्ञात, अज्ञातरुपसे परिणाममें दुःख फल निबडता हे. वेसेही अपरिक्षित विषयमें अन्यथा निकलनेकी संभावना हे ओर उससे हानी होनेकी संभावना हे ॥ ६९२ ॥ स्वधर्म परिचित हे. उसमें जो हानीकारक विषय सिद्ध हो उसकी सुधारना कर्तव्य हे. परधर्म अपरिचित ओर अनिर्णित हे उसके ग्रहणमें दुःख होनेकी संभावना हे. ब्राह्मण (विद्वान) यदि शूद्र (मूढ—अबुद्ध) के ओर शूद्र यदि ब्राह्मणके, क्षत्रीय (वीर) यदि शूद्रके ओर शूद्र यदि क्षत्रियके, गृहस्थ यदि संन्यासीके ओर संन्यासी यदि गृहस्थके कर्म—कर्तव्य—याने विशेषधर्म धारण करे तो प्रथम तो उससे वे होनेही कठिन हें ओर हठसे जो करनेजाता हे तो दुःखी होजाता हे. तद्वत् अन्य प्रसंगके लिये हे. जेसे के जो हिंदु, मुसलमान वा खिस्ति, विना परिक्षाके परधर्म ग्रहण करलेता हे उसको दुःख पडते देखा हे. एवं बंदरसे मनुष्य हुवा इत्यादि—अन्यप्रसंगमेंभी यथायोग्य समझलेनाचाहिये. (शं.) वैद्यकी दवाईकी परिक्षा हम नहीं जानते तो क्या अग्राह्य हे. (उ.) नहीं. क्योंकि उस विषयसे हम अज्ञात हें; अतः विश्वासके सिवाय उपाय नहीं हे, तथापि वोह वैद्य हे वा नहीं, एसा दूसरोंद्वारा अवश्य निर्णय करेंगे, उसके पीछे खायँगे. एसेही परधर्म वा अन्य विषय वास्ते ज्ञातव्य हे (५६३ । ७२१ भी यादकीजिये) ॥ ६९२ ॥

सम्यक प्राचीन इतिहासकी अप्राप्ति ॥ ६९३ (इतिहास) ॥ हिमप्रलयादि होनेसे ॥ ६९४ ॥ सृष्टिनियम, क्रमकीभी ॥ ६९५ (सर्ग) ॥ अल्पज्ञ होनेसे ॥ ६९६ ॥ अतः सृष्टि आरंभ प्रकार निश्चित नहीं ॥६९७ (अप्रमेय) ॥

अर्थ.—सृष्टिके आरंभसे उसका प्राचीन इतिहास नहीं मिलसकता, याने उसमें प्राणियोंकी उत्पत्ति कब, कहां कहां ओर केसे हुई ओर कबतक कहां कहां

केसे रही इत्यादि इतिहास नहीं जाना जासकता ॥ ६९३ ॥ क्योंकि हिमप्रलय, जलप्रलय ओर भूकंपकी प्रलयसे बसूती-नगर नष्ट होते ओर नवीन वा दूसरे होते जाते रहे हैं तथा मानव उत्पत्तिसे प्रथमकी बात हे ॥ ६९४ ॥ जेसे के पूर्व कालमें लंकासे जंगबारतक बसूती थी ओर अब समुद्र हे, एसा इतिहाससे जाना-गया हे; पूर्वमें हिमालयतक समुद्र था, क्योंकि अभीतक समुद्रके जानवरोंकी हड्डी ओर अंग हिमालयमें मिलते हैं ओर अब बसूती हे. इ. विशेष बस. १५९ से १६८ तक देखो) ॥ ६९४ ॥ सृष्टिके तमाम नियम[1] ओर सृष्टिउत्पत्ति प्र-लयका क्रमभी आदमीको प्राप्त नहीं होसकता ॥ ६९५ ॥ क्योंकि मनुष्य अल्प-अपूर्ण ओर परिच्छिन्न हे ॥ ६९६ ॥ इसलिये सृष्टिके आरंभका प्रकार मनुष्यको निश्चित नहीं मिलसकता ॥ ६९७ ॥ तथाहि यह बातें मानवके जन्मसे पूर्वकी हैं. ओर ११५ । ४७० सूत्र याद करिये; एसा हे. तथापि जिनकी व्याप्ति, वर्तमा-नमें मिलती हे, उनसे थोडा बहुत जानसकता हे, बाकी इस विषयमें जो कहा वा मानाजाता हे वोह कल्पना वा अनुमानमात्र हे; इसलिये जबतक अज्ञात-अ-दृष्ट श्रुतका ठीकठीक निर्णय न हो वहांतक श्रवणमात्रसे उस विषयको नहीं मान्ना चाहिये. जेसे के मनुष्यकी उत्पत्ति कपीसे हे, एसा अनुमान यथार्थ निर्णयतक स्वीकारने योग्य नहीं हे. इत्यादि ॥ ६९७ ॥

योग्य उपकार आप्तविद्वानोंका कर्तव्य ॥ ६९८ (उपकार) ॥ **प्रत्यु-पकार दृष्टि होजानेसे** ॥ ६९९ ॥ **आद्यप्रचारकको धन्य**[2] ॥ ७००(धन्य) ॥ **नवीन उपकारी शोधका उत्तेजक होनेसे** ॥ ७०१ ॥

व्यवहार ओर यथार्थमें अंतरभी ॥ ७०२ (अंतराय) ॥ **जेसे के यथार्थ सत्य ओर भावमें** ॥ ७०३ (विभाव) ॥ **व्यावहारिक दृष्टि मात्रसे सन्निर्णय नहीं** ॥ ७०४ (व्यवहार) ॥ **अध्यासकी विचित्रतासे** ॥ ७०५ ॥

भिन्नत्व अज्ञान, व्यवहार उन्नति निर्वाहक ॥ ७०६ (उन्नति) ॥ **परंपरामें दर्शनसे** ॥ ७०७ ॥

---

[1] संभव हे के अन्य ग्रहोंमें कुछ अन्य प्रकार हो.

[2] वेद ओर प्राचीन आर्यप्रजाने आरंभमें कोन कोनसी विद्याओंका जगतमें उ-पदेशद्वारा विस्तार किया उसकी विगत अ. १ वेदप्रसंगमें ओर अ. ३ के मूल ग्रंथ पृष्ट ६५६ में जनाई हे; अतः तमाम मानवमंडल उनका जितना धन्यवाद माने उतनाही थोडा हे.

संशयका हेतु एक नहीं ॥ ७०८ (संशय) ॥ उसमें अनुमान नियमसे ॥ ७०९ (अनुसंशय) ॥ संशयीको उत्तर प्रत्युत्तर ओर परीक्षा ॥७१० (चर्चा) ॥ विनाशका प्रतिबंध होजानेसे ॥ ७११ ॥ अन्यथा अनुपयोगी ॥ ७१२ ॥ लक्षण ओर स्वरुप भेदसे व्यवस्था ॥ ७१३ (प्रत्युत्तर) ॥ परोक्ष ओर अपरोक्ष ज्ञानका हेतु होनेसे ॥ ७१४ ॥

यथार्थज्ञानका विषयही मान्य ॥ ७१५ (मान्य) ॥ संशयाभावक होनेसे ॥ ७१६ ॥

अर्थ.—किसी दूसरेकी हानी न हो, सर्वतंत्र नीतिके विरुद्ध न हो ओर जिसमें अपना जाती स्वार्थ न हो एसे प्रकारसे किसी दूसरे (व्यष्टि वा समष्टि) को उचित लाभ पहोंचाना सो उपकार कहाता हे. सो उपकार आप्तविद्वान पुरुषोंका कर्तव्य होता हे याने वे अपना कर्तव्य मानते हें. ॥ ६९८ ॥ क्योंकि उनकी प्रत्युपकार दृष्टि होजाती हे. अर्थात तमाम सृष्टिका हमारे उपर उपकार हुवा हे, इसलिये यथाशक्ति उसका प्रत्युपकार होना चाहिये, एसी उनकी उदार, विशाल दृष्टि होजाती हे ॥ ६९९ ॥ इस प्रकारके प्रत्युपकारको वे अपनाही उपकार समझते हें, क्योंकि सृष्टिके वे अंग हें-एक अंगको लाभ तो उससे अन्यकोभी लाभ होता हे, तथा ऋण निवारणार्थ प्रत्युपकार दृष्टि हे. लोकदृष्टिमें इसका अर्थ परोपकार होता हे, क्योंकि वे महानुभाव—निष्काम—परउपकारी होते हें ओर विशेष अंशमें उनका जीवन परार्थ होता हे (विशेष बस. में). सकाम परोपकार, अर्थीअर्थी कहाता हे वा उद्देशित प्रत्युपकारभी एसाही होता हे. अपनेको जिसके फलकी इच्छा नहीं हो एसी वृत्तिसे परार्थ जो कर्म उनको यहां निष्कामकर्म माना हे ओर एसे-निष्कामी महात्मा संसारमें नहीं हें एसाभी नहीं हे परंतु विरल होते हें ॥ ६९९ ॥ जिस महोदयने लोक सुखकारक नवीन शोधकी हो उसको धन्यवाद हे उसका उपकार मानके उसका सत्कार करना चाहिये ॥ ७०० ॥ क्योंकि वोह अपने अपूर्वश्रम करके लोक लाभकारी, उपयोगी नवीन शोधका उत्तेजक हुवा हे याने दूसरेभी एसे शोधक बनें, इस बातका निमित्त भूत हुवा हे ओर लोकोपकारक-सुखकारक हुवा हे ओर नवीन उत्पन्न करनेवालाभी हे[१] ॥ ७०१ ॥ आरंभकी

[१] जीवनके कर्तव्य-ज्ञातव्य-प्राप्तव्य (धर्मादि ४) इनका आद्य शिक्षक वेद वक्ता, उपनिषद् कर्ता—इनको १, फोटोग्राफी, लेथुग्राफी, प्रीन्टींग प्रेस, स्टीमबल, विद्युतबल, विद्युतशक्ति, गुरुत्व आकर्षणके नियम, घडी, रेल्वे, खंभे विनाका तार,

रचनाही मुशकिल होती हे उसकी नकल करने वा उसकी मददसे दूसरा बनालेनेमें--उतनी मुशकिली नहीं होती जितना के आरंभवालेको श्रम लेनापडता हे. इसलिये आद्यशोधक ओर प्रचारक वारंवार धन्यवादके योग्य हे. (शं.) वोह न करता तो दूसरेसे होता. (उ) जिससे आरंभमें मिलता सोही धन्यवादके योग्य. (शं.) आरंभक मान नहीं चाहता. (स.) उपकारी माता-पिता-गुरु क्या हमपर मानसंपादनार्थ उपकार करते हें? नहीं. क्या हम उनके प्रत्युपकार वास्ते आभारी नहीं हें? हेंही. ॥ ७०१ ॥ व्यवहार (रुढी) ओर यथार्थमें अंतरभी होता हे ॥ ७०२ ॥ जेसे के यथार्थ, सत्य ओर नियत (इरादे, मनके भाव) में अंतर होता हे वेसे ॥ ७०३ ॥ मेरी आंख में काना, मेरी नाक में नकटा, मार्ग चलता हे, छप्पर चूता हे इत्यादि व्यवहारमें समानत्व ओर सत्य जानपडता हे, वस्तुतः अन्यथा हे. परका राज्य ले लेना व्यवहारमें शौर्य गुण हे, वस्तुतः अन्यथा हे. व्यवहारमें सब परस्परके परतंत्र हें, वस्तुतः मनुष्य अपनी मर्यादामें स्वतंत्र हे. व्यवहारमें शरीर कर्ताभोक्ता, वस्तुतः अन्यथा हे. जो देखा, सुना, जाना, माना सो सत्य कहाता हे; ओर जेसा कुदरतमें हो वेसाही जानें, मानें, सो यथार्थ कहाता हे; इसे सत्यभी कहते हें; यह उभयमें अंतर हे. डाकटर पेट चीरता हे रोग निवृत्ति अर्थ; यह भाव हे; परंतु रोगी मरजाता हे, यह उस भावका परिणाम नहीं हे ॥ ७०३ ॥ (इसलिये) व्यावहारिक दृष्टिमात्रसे सत्यका निर्णय नहीं होसकता ॥ ७०४ ॥ कारणके व्यवहारमें मनुष्योंका अध्यास-अभ्यास-टेव विचित्र हे ॥ ७०५ ॥ मनुष्य--रुची, रुढी, टेव, अल्पता, भावना ओर अपवाद वश अन्यथा मान्ने लगजाता हे, इसीवास्ते जो एकको ठीक सत्य जानपडता हे वोह

बलून, फोनोग्राफ--इनके शोधक योरोपीयनोंको २, हम अंतःकरणपूर्वक प्रणाम करते हें; क्योंकि उनके हम (तमाम मानव) उपकृत हें ओर इसीवास्ते उनका धन्यवाद मानते हें. यद्यपि गौतम, कनाद, पतंजलि, जेमिनि, व्यास, कपिल, बुद्ध, जिन, तांत्रिक रावन, चर्क, शुश्रत-धनवंत्री, खगोल शोधक गर्गादि, शंकर, राम कृष्णादि यह सब अवतरणमें हें तथाहि ईरानी, चीनी, याहूदि, किरानी, कुरानी, थीयोसोफी वगेरे संसारके जरतोश्तादि आचार्य-नबी यह सब अवतरणमें हें, तथापि वे (गौतमादि) अमुक प्रजा (आर्य, ईरानी, योरोप, अरब, चीन, वगेरे) के सुधारक-भोमिया हुये हें, इसलिये वेभी धन्यवादके योग्य हें, उनकोभी हमारा आदरपूर्वक नमस्कार हो.

दूसरेको अठीक मालूम पडता हे. जेसे के ईश्वरादि विषयमें ओर शब्दादि नित्योपयोगी पदार्थोंमेंभी मत भेद हे ॥ ७०५ ॥ परस्परका भेद ओर अज्ञान यह व्यवहार उन्नति वा व्यवहार ओर उन्नतिके निर्वाहक हें. किंवा भेदका अज्ञान (ऐकता-समानताका ज्ञान) व्यवहार उन्नति वा व्यवहार ओर उन्नतिका निर्वाहक हे ॥ ७०६ ॥ क्योंकि परंपरामें एसा देखते आरहे हें[१] ॥ ७०७ ॥ (१) भेदके विना स्वार्थ ओर स्वार्थकी सिद्धि नहीं होती, स्वार्थके विना प्रवृत्ति नहीं होती, इष्ट सिद्धिका अज्ञान हो इसलिये उसके ज्ञान सीखने ओर उसकी प्राप्ति वास्ते प्रयत्न होता हे. इसप्रकार जरुरत, व्यवहार उन्नति वा व्यवहार ओर उन्नतिपर लाती हे. (२) सृष्टिमें अपनी २ योग्यता अनुसार सब हकदार हें एसी समानता, एक दूसरेके विना एक दूसरेका काम नहीं चलता एसी समानदृष्टि, मेरे वास्ते भोग्य हें अन्यके वास्ते नहीं वा अन्यके वास्ते मेरेसे पीछे—एसे भेदका अज्ञान, किंवा 'आत्मवत् सर्वभूत' एसी समानता (भेदाभाव वा भेदाज्ञान), व्यवहारोन्नति वा व्यवहार ओर उन्नतिके निर्वाहक हें. (विशेष मूलमें) ॥ ७०७ ॥

संशय होनेमें एकही हेतु हो, एसा नहीं हे किंतु कहीं सामान्यज्ञान ओर विशेषअज्ञानसे कहीं साधर्म्य ओर वैधर्म्य दर्शन श्रवणसे तथा कहीं अन्यथासे होजाता हे ॥ ७०८ ॥ संशयमें अनुमानका भाग अवश्य होता हे, (यथा--स्थाणु वा पुरुष वा अन्य इस प्रसंगमें अनुमानभी हे) ॥ ७०९ ॥ संशय प्राप्त होनेपरही निर्णयार्थ प्रश्न, उत्तर, प्रत्युत्तर ओर परिक्षा कर्तव्य होती हे ॥ ७१० ॥ क्योंकि संशय, विनाशका हेतु होपडता हे; यह प्रत्युत्तर परीक्षा उस नाशके प्रतिबंध होजाते हें (सत्संगद्वारा जो निर्णय सो विनाशका प्रतिबंध होजाता हे)[२] ॥ ७११ ॥ संशयके विना संवाद व्यर्थ होजाता हे ॥ ७१२ ॥ इसलिये संशयकालमेंही प्रश्नोत्तरकी अपेक्षा हे ॥ तत्व वा पदार्थके बोध वास्ते जल्प वा वितंडावाद (बस. ७६।७७) त्याज्य हे. कोई परिक्षा अर्थ, कोई अपना पांडित्य जनाने अर्थ, कोई चालाकीसे कुछ उपरसे उडा लेने अर्थ, वादविवाद वा प्रश्नोत्तर करता हे, उससे उपेक्षायोग्य

---

[१] जिस प्रजामें संशयोत्पादक शक्ति नष्ट होजाती हे उसकी उन्नतिभी होना मुशकिल होता हे. इसलिये उसके मूल अज्ञानको उन्नति निर्वाहक कहाजाता हे.

[२] नियमादि याने इस अध्यायमें पुनरुक्ति, व्याघात, असंभव ओर विरोध वगेरे दोषोंका आरोपन होसके इसलिये सूत्रके विवेचनमें शंका समाधानसहित आरोपोंका निवारण किया हे, उसकी १ थोकडी मूलग्रंथके साथमें हे.

हे. जिस जिज्ञासुको विपरीत भावना वा संशय हो तो उसकी इच्छा ओर प्रश्नपर उसकी शांतिअर्थ बोध कर्तव्य हे. अन्यथा व्यर्थ हे. लीला, विनोद वा विशेष शोधनार्थ ओर पद्धति (थीयरी) बनाने वास्ते आरोप ओर अपवाद करना यह दूसरी बात हे. इसी अध्यायके सू. १२९ के विवेचन उदाहरणमें मूल १ बुक हे वोह इसीका उदाहरण हे. तथा एक बुकमें नवीन व्याख्यान हे; वोहभी इसीका उदाहरण हे ॥७१२॥ साध्यकी अथवा शिष्यको जो बताना हे उसकी, लक्षण ओर स्वरुपके भेदसे व्यवस्था कर्तव्य होती हे ॥ ७१३ ॥ क्योंकि परिक्षितलक्षणके बोधसे परोक्षका भान ओर स्वरुपलक्षणसे अपरोक्ष ज्ञान होजाता हे. स्वरुपलक्षणका बोध शब्दोंसे नहीं होता किंतु अभ्यासद्वारा उसका अनुभव होता हे. (संभावनासंज्ञाका उपयोग १२९ में ओर सू. २५ । २७ याद कीजे. परमाणु आदिका परोक्ष ओर आत्माका अपरोक्ष बोध होजाता हे) ॥ ७१४ ॥ यथार्थ ज्ञान (अबाधित प्रमा) का जो विषय हो (परिक्षामें सिद्ध होचुका हो) वही मान्य होता हे (वस्तुतः सत्य हो वा न हो, परंतु किसीके कथनमात्रपर विश्वासकरके मान बेठना यह दूसरी बात हे)[१] ॥ ७१५ ॥ क्योंकि परिक्षा करने (उपयोगमें लाने) सेही संशयका अभाव होता हे ॥ ७१६ ॥ देखते हें कि जीव ओर मोक्षके प्रसंगमें परिक्षा नहीं करने ओर विश्वासमात्रमें रहनेसे अनेक मतभेद ओर संशय चल रहे हें ॥ ७१६ ॥

दोषाभास अ. २ । सू. ७१० के संक्षेपमें उदाहरण.—

(शं.) सूत्र ७३ । ४४१ । ६५१ की पुनरुक्ति हे. (उ) ७३ में लक्षण हें, ४४१ में अनुतर हे, ६५१ में अग्राह्य हे; अतः पुनरुक्ति नहीं. (शं.) १४७ । १४९ की पुनरुक्ति हे. (उ.) १४९ शंशयका प्रतिबंध हे. (शं.) १९ । ३४४की पुनरुक्ति हे. (उ.) १९ में बोध हे । ३४४ नियम हे. (शं.) ४३९। ६३७ की पुनरुक्ति हे. (उ.) ४२९ सामान्य हे, ६३७ खास हे. (शं.) १९८ । २०० । २०२ । २०७ । २११ की पुनरुक्ति हे. (उ.) १९८ खंडमें हे, २०० दूसरेद्वारा हे, २०२ अपने आपमें हे. २०० । २०२ यह दोनों १९८ की शाखा-रुपांतरसे हे. सू. २०७ ज्ञान क्रियाके भेदमें हे. २११ परिणाममें हे; अतः पुनरुक्ति नहीं. (शं.) ४७० । ४०६ की पुनरुक्ति हे. (उ.) ४०६ ईश्वरके उद्देशसे हे, ४७० जीवके उद्देशसे हे. (शं.) २२८ । २३४ की पुनरुक्ति हे. (उ.) २२८ हेतु हे,

[१] यहँ १२२ की पुनरुक्ति प्रासंगिक सूचना वश हे.

२३४ नियम है. (शं.) २८ । १०० वगेरे । ५८६ वगेरे प्रमाणप्रसंग यह गौरव, पुनरुक्ति ओर निष्फल दोषग्रसत हे. (उ.) अनुमान, शब्द ओर अध्यासके विशेष वर्णन वास्ते उपयोग नामकी संगति हे. सामान्यरुप-प्रमाणप्रसंगमें उनका बयान नहीं होसकता; अतः सदोष नहीं. (शं.) १२२ । ६८७ । ६९० । ७१५ की पुनरुक्ति हे. (उ.) १२२ केवल शब्द वास्ते हे, ६८७ संशयप्रसंगमें हे, ६९० लक्षण निर्णयप्रसंगमें हे, ७१५ सर्व सामान्य उपदेशमें हे. इसप्रकार प्रसंगांतर होनेसे दोष नहीं हे. (शं.) २०९ । २१० पूर्वापर विरुद्ध हे. (उ.) २१० में विवेक शब्द होनेसे विरोध दोष नहीं आता.

(शंका) कितनेक पदार्थोंके लक्षण, लक्षणप्रसंग (२ । २६) में लिखे हें, पुनः स्वरुपसंभावनाके वर्णनमें कहे हें, पुनः उन उनके प्रसंगोंमें कहे हें, यथा सत्, अनादि, कल्पित, जड, चेतन, मूर्त्त, अमूर्त्त, दृष्टांत, उपादान, निमित्त, असमवायी, संस्कार, परिमाण,—इनके लक्षण, लक्षणप्रसंग सू. २६६से २७३ तकमें ओर स्वरुपसंभावनाप्रसंग पेज ३१५से ३२२ तकमें ओर तत्प्रसंगपर (पेज ३३६ । ३४१ । ३४२ । ३४४ । ३४६ । ३५३ में किये हें; यह व्यर्थ पुनरुक्ति, व्यर्थ गौरव हे. तथा अन्योऽन्याश्रयके ओर अध्यारोप अपवादके उदाहरण दो दो जघे दिये हें (१७३ । ३६३) यह पुनरुक्ति हे, एवं मुक्ति (१५) जीव वगेरेकी हे.

(उ.) लक्षणप्रसंगमें एक एक पदार्थके अनेक लक्षण दिये हें, उनमें ग्रंथप्रसंगवालेभी आने चाहिये. एसा न करते तो उद्देश्य नाश होजाता. स्वरुपसंभावनामें वहांकेही प्रसंगवश अर्थ दर्साने चाहिये. जो एसा न करते तो स्वरुपसंभावनाका सहजमें ओर उचित उपयोग न होता. तदेतर प्रसंगपर लक्षण देनेका कारण यह हे कि फिलोसोफीका विषय व्यवहारवत् परिचित नहीं हे, हिंदी भाषामें एसा ग्रंथ विरल हे, इसलिये पाठक जिज्ञासुको सुगमता पडे इस दृष्टिसे लिखे हें, यही कारण अध्यारोपापवाद, अन्योऽन्याश्रयवाद समझानेके प्रसंगमें हे तथा जीव मुक्ति वगेरेके संबंधमें हे.

(शं.) स्वरुपसंभावनाकी १३ संज्ञामें कितनीक संभावनाकी पुनरुक्ति हें, ओर व्यर्थ गौरव हे. यथा—आकारादि ५ में सावयव—मिश्रित, अपरोक्ष—दृष्ट वगेरेकी; कालादि नं. ७ में सादि, सादिसांत, अनादि, अनंत, कालसे अनादिअनंत इत्यादिकी; भावादि नं. ७ में भाव, सत् ओर नित्यकी पुनरुक्ति ओर व्यर्थगौरव हे.

(उ.) जिसने दर्शनकारोंके मत, शब्द, रुढी, ओर परिभाषापर ध्यान दिया

होगा वोह आपके कथनानुसार न कहेगा. प्रसंगमें कहागया हे कि पक्षकारोंकी दृष्टिसे पुनरुक्ति करनी पडी हे. यहां थोडाक पदार्थोंका उदाहरण दे के समझाते हैं.

१. (आकारादि)–सावयव, मूर्त अंतःकरण (मन), (वे.). मन परिच्छिन्न ओर अमूर्त निरवयव (न्याय). जीव, मन निराकार (न्या.). साकार (वे.). प्रकृतिका अणु त्रिगुणात्मक (सावयव-सखंड) परंतु अखंड (सांख्य). आत्मा, साईसका कनक, शुद्धाद्वैतका ब्रह्म, हेगलश्रीकी शक्ति, जैनका जीव, बौधका क्षणिक विज्ञान. यह निरवयव, अमिश्रित तत्व तथापि परिणामी, नानारुप धारी, समकालीन विरुद्धदिशामें नाना गतिकरनेवाले. एसी भावनाओंको देखके सावयव मिश्रित, निरवयव अमिश्रित जुदा जुदा लिखने पडे. शब्दादि अपरोक्ष. (आर्य फिलोसोफी). शब्दादि वस्तु नहीं (पच्छमकी फिलोसोफी). गुरुत्व परोक्ष ओर शक्ति (आर्य फि.) गुरुत्व वस्तु नहीं (प. फि.). दृष्ट घटादि, अदृष्ट संस्कार, शक्ति, पृष्टवाला बिंब. ईश्वरका दृष्ट सो जीवका अदृष्ट; एवं अपरोक्ष, परोक्ष ओर दृष्ट–मूर्त्त वास्ते अपरोक्ष वर्तमान वास्तेभी. इसलिये जुदा जुदा लिखना पडा हे.

२. (कालादि)–प्रागभाव स्वरुपसे अनादिसांत (न्याय) इसको नं. १ । ४ के प्रत्यय लगेंगे, दूसरे नहीं. प्रध्वंसाभाव (न्याय) को नं. २ । ९ के प्रत्यय लगेंगे, दूसरे नहीं. नं. ३ वेदांतके ब्रह्मको लगेंगे अन्यको नहीं; क्योंकि कालको सादिसांत वा अनादिसांत माना हे. नैयायकोंके कालकोभी लगता हे; क्योंकि कालको कालसे अनादिअनंत नहीं कहसकते किंतु स्वरुपसे अनादिअनंत अथवा अनादिअनंत इतनाही कहसकते हैं. नं. ५ न्याय ओर जैनकी रीतिसे देश (आकाश) को लगासकते हैं, ब्रह्मको नहीं. नं. ६ घटादिको लगासकते हैं, परंतु नं. १० नहीं लगासकते. अनादि पदार्थोंके अन्योऽन्याभावको नं. ३ लगासकते हैं, परंतु नं. ५, ९ वा १० नहीं लगासकते; क्योंकि वेदांत, ब्रह्मेतरको अनादिसांत कहडालता हे. नं. ७ ब्रह्मसे इतरको नहीं लगता. नं. ८ परमाणुको लगता हे. नं. १२ संयोगवियोगको लगता हे, अन्यको नहीं. एतद्दृष्टि जुदा जुदा संज्ञा लिखी हैं; अतः व्यर्थपुनरुक्ति नहीं हे.

३. (भावादि)–असत्का भाव ओर अभावका सत्रुप नहीं होता (गीता-वेदांत). घटका प्रागभाव था सो नवीन भावरुप हुवा (नै.). उस भावरुप घटका अभाव होगा (नै.). घट भावरुप सत्रुप हे तद्वत परमाणु. परंतु घट नित्य नहीं परमाणु नित्यभी हैं (नै.). अज्ञान भावरुप हे परंतु उसका अभाव होता हे (वे.).

अनेकांतरुप हो सो सत् (जैन). क्षणिकरुप हो सो सत् (बौद्ध). अबाध्य हो सो सत् (वे.). प्रतीत होता हो सो सत् (नै.). इस प्रकार भाव, सत्, नित्य, अभाव, असत्, अनित्यकी भावनामें अंतर देखनेसे जुदा जुदा लिखने पडे.

एवं अन्य अनेक शब्द ओर विषय हैं जिनके वास्ते न रुचे एसा प्रकार विवश होके लेना पडा हे. इनके बयान स्वरुपसंभावनाकी बुकमें हे; अतः जहां व्यर्थ पुनरुक्ति, निष्फल गौरव ओर विरोध–इनका आभास जान पडे वहां कोई न कोई कारणवश एसा हे, इस प्रकार जानके उसकी निरीक्षा कर्तव्य हे.

संभव हे कि अमुक कारणवश (प्रस्तावना देखो) कहीं पुनरुक्ति ओर गौरवदोष एसे रुपमें हुवा हो कि जो वेसा न होता तो अभिप्राय जाननेमें हानी न होती;[1] तथापि सर्व स्थानमें तो वेसा नहीं हे. ओर सिद्धांतमें विरोधापति कहींभी नहीं. शैलीवश अन्यथा भासना यह जुदी बात हे. इन बातोंका विशेषरुप तमाम ग्रंथ प्रसिद्ध होनेपर ज्ञात होसकेगा. परंतु जिज्ञासु–शोधकको इनकी अपेक्षा नहीं हे; इसलिये यह प्रसिद्ध भाग, बस जान पडता हे.

(शं.) अ. २ सू. १३७ । १३९ के वाक्यमें विभक्तिका दोष हे. (उ.) भाषाकी रीतिसे दोष नहीं हे; क्योंकि अधिकरण ओर उत्तरपद जिस लिंगका हो वेसी विभक्तिसे अर्थ कियाजाता हे. वहां सूत्रार्थ यह हे. मूल मूलरहित होता हे । १३५ । (मूलकी) उत्पत्ति नहीं होती (१३७) । न नाश होता हे ।१३५। जैसा तैसाही रहता हे । १४१ । संसर्गमेंभी वही बना रहता हे । १४३ । अतः दोष नहीं हे.

(शं.) पेज ४६ में आकाशादिको अमूर्त्त परोक्ष लिखा हे सो गलत हे. (उ.) आकाश अमूर्त्त हे, चंबुककी ओर भ्रुमछलीकी खेंचनेवाली विजली तथा आकर्षणादि परोक्ष हें. हां आकाशसे इतर अमूर्त्त नहीं हें, इसलिये वा का प्रयोग हे तथा मूर्त्त अमूर्त्त पदार्थ संबंधि ओर आकाशके स्वरुपसंबंधमें विवाद हे. यहां तो साधारण द्रष्टिसे वाक्यका प्रयोग हे; अतः शंका व्यर्थ हे.

(शं.) वर्णत्व स्वाभाविक हे. परंतु अ. १ सू. १७४ में कल्पित कहा हे यह दोष हे.

(उ.) अमुक व्यक्तिमें सिविलियन (ब्राह्मणत्व) अमुकमें मिलटरी (क्षत्रिय-

[1] पेज २० ओर २१ में आ. अप. के चिन्ह सूचनाकी व्यर्थ पुनरुक्ति हे. प्रुफ शोधनमें रहगई हे. इ.

त्व) एवं मरचंट (वैश्य) शूद्रत्वकी योग्यता होती हे, यह स्वाभाविक हे (अ. ४ में वांचोगे) परंतु अमुक वर्णका पुत्र उसी वर्णवाला हो एसा नियम नहीं हे, इसका बयान हे--वीर्यपर जातिभेद मान्ना कल्पित हे, एसा भाव हे. ॥ इ. ॥

योग्यसंग सदाकर ॥ ७१७ (सदाकर) ॥ **तिस विना न शांति** ॥ ७१८ (अशांति) ॥ **सविवेकादि निरंकुश सेवनीय न विश्वासमात्र** ॥७१९ (निरंकुश) ॥ **अन्यथा अनिष्टभी** ॥ ७२० (अनिष्ट) ॥ **विश्वास अनिष्टप्रदभी** ॥ ७२१ (विश्वास) ॥ **उद्देश ओर अपेक्षापर सारदृष्टि न विवाद** ॥ ७२२ (सार) ॥ **प्रति अधिकारभी कथन होनेसे** ॥ ७२३ ॥ **अन्यथा सद् अप्राप्तिका संभव होनेसे** ॥ ७२४ ॥ **मथनसे सदुद्भव नवनीत वत्** ॥ ७२५ (अपरोक्ष) ॥

अर्थ.--आप्त, विद्वान, बुद्धिमान, पक्षपात रहित, दयालु, हितकारी, तत्ववेता, सदाचारी, अनुभवी, निस्पृहि ओर सत्यवक्ता पुरुषोंके समागम (कथन श्रवण) को योग्यसंग कहते हैं--उसीको सद्की खान याने **सदाकर** कहते हैं. किंवा जो योग्य संग हे सो सद् प्राप्तिका हेतु होनेसे सद्की खान--सदाकर कहाता हे. ओर सद् हितबोधक ग्रंथोका पठन, पाठन, विचारनाभी सदाकर कहाता हे, क्योंकि पहेलेकी शाखा हे ॥ ७१७ ॥ ईश्वरादि विषयमें इस सदाकरके सेवने विना यथायोग्य शांति नहीं मिलती ॥ ७१८ ॥ यद्यपि सत्संग कल्पतरु हे उसमें जिसकी जो इच्छा हो सो प्राप्त होसकता हे तथापि इस ग्रंथका विषय ईश्वरादिका निर्णय हे--याने तत्व निर्णय हे ओर तद् ज्ञानजन्य परमशांति प्रयोजन हे; इसलिये ईश्वरादि तत्वका प्रयोग हे. बात यह हे के वर्तमानमें सेंकडों संप्रदाय ओर हजारों भावना चलरही हैं ओर उनमेंभी कितनीक तो एक दूसरेसे विरोधीभी हैं, इसलिये सबके ग्रंथ वांचने, सबके व्याखान सुन्ने ओर सबके विचारोंके अवलोकन करनेकी अपेक्षा होगई हे, इसलिये वेसे करता हुवा सदाकरको सेवे तो संशय--भ्रांतिका अभाव होके सदेष्टकी प्राप्ति हो तथा भविष्यमें संशय भ्रांति पेदा न हो, यह आशय हे ॥७१८॥ सो सदाकर विवेक, वैराग्य, षड्संपति तथा तत्त्व प्राप्तिकी जिज्ञासा (मुमुक्षता) इन चार साधन संपन्न हुये स्वतंत्र बुद्धि वृत्तिसे सेवने योग्य हे, नहीं के विश्वासमात्र वा कोई प्रकारके दबान मात्रसे कर्तव्य हे. ॥७१९॥ हेय उपादेय वा सत्यासत्य निर्णयका नाम विवेक हे, वोह मध्यस्थद्वारा होजाता हे. अनिष्ट (विषयासक्ति) का मनसे त्याग सो वैराग्य. शमादि षड् यह हैं--(१) शम अर्थात मनको

रोकना--अपने काबुमें रखना. (२) दम अर्थात इंद्रियका निग्रह. (३) उपरति याने अनिष्ट विषय प्राप्त हुयेभी उससे उपेक्षा (४) तितिक्षा याने सरदी गरमी, दु:ख सुख, मान अपमान, हर्ष शोक, वा राग द्वेष हुये सहनशीलता. (५) श्रद्धा याने अपने सद्गुरु वा कर्तव्यमें विश्वास. (६) समाधान अर्थात जो विरुद्ध फुरना हो तो उसका मनमें समाधान होजाना. इन ६ का नाम षड्संपति हे. इन लक्षणोंमें कथनमात्र अंतर हे. अपने इष्ट (तत्त्वज्ञान ओर तदजन्य फल) प्राप्तिकी उत्कट (तिव्र—दृढ) जिज्ञासा, ईश्क वा मुमुक्षता कहाती हे. इनका विशेष प्रकार बस. में हे. विवेकादि साधनका अर्थ व्यावहारिक विषय प्राप्तिमेंभी लगता हे जिसका यहां प्रसंग नहीं हे. इसप्रकार अधिकारी हुये निरंकुश होके सत्संग कर्तव्य हे. यदि किसी गुरु विशेषसे प्रयोजन सिद्ध होता हो तो उसका संग करे. उपरजो सदाकरके मेंबर कहे हें वे त्यागीही हों एसा नियम नहीं हे अथवा शिक्षक, गुरु, कोई संन्यासीही होवे यहभी नियम नहीं हे किंतु गृहस्थ हो वा त्यागी हो परंतु उपरोक्त लक्षणवाला होना चाहिये ॥ ७१९ ॥ अन्यथा अर्थात उपरोक्त रीतिसे न करे किंतु मनमुखी होके करे वा अनधिकारी हुवा विश्वासमात्रसे करे तो अनिष्ट फल होनेकीभी संभावना रहती हे. अर्थात भ्रमित वा कुतर्की होजाय वा विश्वासमें रहके हानीका भोग हो पडे ॥ ७२० ॥ (अपनी अविवेकी, अहंकारमयी बुद्धिका वा एसी अन्यका) विश्वास अनिष्टप्रदभी होजाता हे ॥७२१॥ सच्चे ओर अच्छेमें सच्चे ओर अच्छे अधिकारीका सच्चा ओर अच्छा पूर्ण विश्वास—श्रद्धा हो तो लाभ होता हे, हानी नहीं होती. इससे उलटा हो तो वेसा विश्वास हानीकारक होजाता हे (विशेष मूलमें). इसलिये खूब विचारके समागम (सत्संग) करना चाहिये. अंध विश्वासवत् नहीं ॥ ७२१ ॥ वक्ताका उद्देश क्या हे ओर किसकी अपेक्षा लेके कथन करता हे, सामान्य बोध हे वा विशेष, वर्तमान देशकाल स्थितिसे संबंध रखता हे वा अन्य देशकाल स्थितिसे संबंध रखता हे, ओर उसका परिणाम क्या हे, इस रीतिसे विचारके वक्ताके आंतरिय सारपर दृष्टि रखना चाहिये. विवाद (जल्प, वितंडा) नहीं करना चाहिये[१] ॥ ७२२ ॥ क्योंकि जो जिस विषयका

[१] प्रकृति--मायाकी कार्यरुप जो बुद्धि, उसके तर्क कल्पनाकी सीमा नहीं बांधी जासकती, तो फेर मूल पदार्थोंके निर्णयके संबंधकी तो बातही क्या करना. अर्थात शंकासमाधानका अंत आना कठिन हे; इसलिये उसमें नहीं बहना ओर हितकारी सार सार ग्रहण करना चाहिये.

जैसा अधिकारी हो उसको उस विषयका उतना बोध कियाजाता हे, यह विद्वान अनुभविओंकी शैली होती हे. वे सबको सब प्रकारका उपदेश नहीं करते ॥७२३॥ यथा विद्यार्थीओंको शरीररक्षाका उपदेश होता हे. अधेडको शरीरमें अनासक्तिका उपदेश करते हें, कर्मके योग्यको कर्मयोगका, उपासनाके योग्यको ध्यानयोगका ओर ज्ञानके योग्यको सांख्ययोगका बोध करते हें. इसलिये उनके उद्देश ओर अपेक्षादिपर दृष्टि रखके सार ग्रहण करना चाहिये ॥ ७२३ ॥ जो एसा (उपर कहे अनुसार सत्संग) न होगा वा अधिकार देखे विना उपदेश होगा तो सद् (इष्ट) वस्तुकी अप्राप्ति रहे, एसी संभावना रहती हे; इसलिये पूर्व कहे अनुसार दृष्टि होना चाहिये ॥ ७२४ ॥ इस सदाकर प्रसंगमें सू. ५२९ । २३५ । ५६४ । ५६५ भी ध्यानमें लेना चाहिये. श्रवण मननका प्रकार बस. में लिखा हे ॥ ७२४ ॥ उपर कही हुई रीतिसे सत्संगका सेवन हो तो परस्परके श्रवण, मनन-शंकासमाधानरुप मथनसे सत् उपर आजाता हे—जेसे दही छाछके मथन करनेसे घी उपर तिर आता हे वेसे सत्का प्रकाश होजाता हे ॥ ७२५ ॥

दोषाभावमें नियमोंकी अर्थापत्तिसे—अन्य नियम ॥ ७२६ (द्विगुण) ॥ **प्रकरण प्राप्तिसेभी** ॥ ७२७ (अधिक) ॥ **ओर शांति परिणामभी** ॥ ७२८ (विश्रांति) ॥ **यथा नित्यकी नित्य योग्यता** ॥ ७२९ ॥ **तत्व दुःख रहित, अतत्व नहीं** ॥ ७३० ॥ **ओर तोभी क्या** ॥ ७३१ (संतोष) ॥

निर्णयके नियम अनेक ॥ ७३२ (निर्णायक) ॥ **वैद्यक ज्योतिष वत्** ॥ ७३३ ॥ **गोचर मतोंका निर्णय उक्तसेभी** ॥७३४ (नियमफल) ॥

अर्थ.—पुनरुक्ति, पूर्वापर विरोध, असंभव वा अन्य कोई दोषकी प्राप्ति न होती हो तो पूर्वोक्त उन नियमोंकी कि जिनको सृष्टिनियम वा जीवनियम कह-सकते हें उन नियमोंकी अर्थापत्तिसे (उतने—जितनी अर्थापत्तिहुई उतने) उन संबंधी उनसे भिन्न दूसरे नियम निकलसकनेकी संभावना हे ॥ ७२६ ॥ तद्वत् प्रकरण प्राप्तिसेभी उनसंबंधी उनसे भिन्न दूसरे नियम निकलआनेकी संभावना हे ॥ ७२७ ॥ ओर पूर्वोक्त नियमका शांतिपरिणामभी निकलआनेकी संभावना हे ॥७२८॥ (सू. ७२६, ७२७ ओर ७२८ इन तीनोंके उदाहरण वक्ष्यमाण सू. ७२९, ७३०, ओर ७३१ इन तीनों सूत्रोंमें यथाक्रम कहते हें). यथा—" नित्य द्रव्यों (तत्त्वों)में उनकी योग्यता (गुणादि)नित्य," यह नियम सू. २९६ ओर ३०३की अर्थापत्तिसे निकलआता हे ओर २८७ । १३७ । २८९ । ३३२-इनसे उ-

सकी सिद्धि होजाती हे. सारांश गुणका गुण उपादान २९६। उपादेय न इतर गुणसत्तावाला ३०३। इनकी अर्थापत्तिसे नित्यमें नित्य गुणाशक्ति, यह अन्य नियम निकलआता हे ॥ ७२९ ॥ तत्त्व वस्तुकी अवस्था नहीं होती ओर दुःख सुख अवस्था हें; अतः तत्वको दुःख सुख नहीं. अतत्वकी अवस्था होती हे, इसलिये अतत्व (मध्यम–मिश्रित) दुःख सुखावस्थावाला हे. यह नियमप्रकरणसे निकल आता हे (१४५ ओर ३५० देखो) ॥७३०॥ निष्फलताका अभाव हे (१२७) ओर प्रवृत्ति निवृत्ति स्वभावतः ओर स्थिति बदलनाही (३६७), इनकी अर्थापत्तिसे वा प्रकरणप्राप्तिसे " तोभी क्या " यह संतोष (शांति) प्रद परिणाम निकलआता हे (विवेचन अ. ४ में वांचोगे) ॥ ७३१ ॥

तत्व निर्णय करनेके अनेक नियम हों एसा मानसकते हें ॥ ७३२ ॥ जेसे के आर्य वैद्य ओर हकीम–कफ, पित्त, वायुके नियमसे ओर डाक्टर यंत्रोंकी गति ओर उनके वर्कके नियमपर दवाई देते हें ओर उभयका फल रोग निवृति होता हे. तथा आर्य ज्योतिष, पृथ्वीको केंद्र मानके ओर योरोपका ज्योतिष, सूर्यको केंद्र मानके गिणित करके ग्रहणादि बताते हें, उभयके सत्य होते हें. इसीप्रकार उक्तसे इतर नियमोंद्वाराभी निर्णय होसकता हो ॥ ७३३ ॥ तथापि मानवमंडलमें अद्यापि जितने दृष्टश्रुत मत पक्ष हें उनका निर्णय उक्त नियमोंसेभी होजाता हे ॥७३४॥ क्योंकि यह नियम, कारणवाद ओर उसके परिणामके शोधक हें, कार्यवादपर उनकी विशेष दृष्टि नहीं हे ओर व्यापक हें[१] ॥ ७३४ ॥

तत्व प्राप्तितक योग्य निष्काम कर्म ॥ ७३५ (निष्काम) ॥ **तद् अभावमें उत्तम सकाम** ॥ ७३६ (सकाम) ॥ **अन्यथा क्लेश तापका प्रवाह** ॥ ७३७ (क्लेश) ॥ **कर्म विना जीवन न होनेसे** ॥ ७३८ ॥ **अधिकारीको पूर्व वत् निर्णय** ॥ ७३९ (प्रवृत्ति) **निर्णितकी परीक्षा अनेकसे** ॥ ७४० (शैली) ॥ **अनेकत्वकी प्राप्तिसे** ॥ ७४१ ॥ **योग तंत्र वत्** ॥ ७४२ ॥ **सर्वका सिद्धांत फल एक** ॥ ७४३ (एक फल) ॥ **अनेकांतके अभावसे** ॥ ७४४ ॥ **सत्यमेव जयते न अनृतं** ॥ ७४५ (जय) ॥ **संशय भ्रांतिके नाश पूर्वक सत् दर्शन फल** ॥ ७४६ (फल) ॥ **परसे पर अपर पर नहीं, पर नहीं** ॥ ७४७ (श्रेय) ॥

अर्थ.—इष्ट तत्वकी प्राप्तितक योग्य निष्कामकर्म (फलकी इच्छा रहित

[१]अ. ३ में ईश्वरादि विषयका विचार देखो.

हुये कर्तव्य कर्म) करते रहना चाहिये; क्योंकि वे सर्व प्रकारमें उत्तम हें (विस्तार बस. ओर कर्मविवेक ग्रंथमें हे) ॥ ७३५ ॥ जो निष्कामकर्म न होसकें तो उत्तम सकामकर्म (फलकी इच्छा रखके जो कियेजावें वे उत्तमकर्म) कर्तव्य हें ॥ ७३६ ॥ अन्यथा अर्थात जो तीनों (तत्त्व प्राप्तिके साधन, उत्तम निष्कामकर्म, उत्तम सकामकर्म) न होसकें तो अविद्यादि पंचक्लेश ओर आध्यात्मिकादि तीन तापके प्रवाहमें रहना होगा (अब जेसी इच्छा हो सो करना) ॥७३७॥ क्योंकि कर्म किये विना जीवनही नहीं होसकता अर्थात उत्तम वा मध्यम वा कनिष्ट कर्म तो करने पडेहींगे ॥ ७३८ ॥ सार यह हे कि कर्ममें प्रवृत्त होना यह जीवकी प्रकृति हे इसलिये उत्तमके अभावमें यथेष्ट निषिद्ध गुणकर्मकी आपत्ति होनेसे क्लेश वा ताप (दुःख) का भोगी होना पडेगा. विपरीत बुद्धिको अविद्या कहते हें, दृष्टादृश्य एक, एसे प्रतीत होनेका नाम अस्मिता हे. किसीमें मोह वा आसक्ति होनेका नाम राग हे. अरुचीको द्वेष कहते हें. दुराग्रह वा भयको अभिनिवेश कहते हें. इन अविद्यादिका नाम पंचक्लेश हे ॥ शारीरिक दुःखका नाम आध्यात्मिक ताप, परकरके जो दुःख हो सो आधिभौतिक ताप ओर अकस्मात (विजली वगेरेका) दुःखको आधिदैविक ताप कहते हें; इन ३ का नाम तीन ताप हे (विशेष बसमें हे) ॥ ७३८ ॥

जिसको तत्व निर्णय करनेकी योग्यता प्राप्त हे, एसे अधिकारीको उपर कहे अनुसार (सदाकरद्वारा) निर्णय करना चाहिये ॥ ७३९ ॥ निर्णित याने जो निर्णय हुवा उसकी परिक्षा (मनन, निदिध्यासद्वारा वा अन्यथा) करना चाहिये. सो परिक्षा अनेक प्रकारसे होजाती हे ॥ ७४० ॥ क्योंकि परिक्षा करनेकी अनेक शैली देखनेमें आती हें ॥ ७४१ ॥ जेसे के योग वा कैमिस्तरीके तंत्रोंसे शरीरगत तत्वोंकी परिक्षा होजाती हे. वेसे पुरुष, प्रकृति (चिद्, जड) इन तत्वोंकी क्रियायोग (पातंजल दर्शनोक्त योग), ध्यानयोग वा सांख्ययोगद्वारा परिक्षा होजाती हे ॥ ७४२ ॥ शारीरिक साइंस, भूगोल साइंस, खगोल साइंस,–इत्यादि सब विषयोंकी साइंस (नियमपूर्वक प्रयोग, उपयोग) हे परंतु धर्मकी साइंस नहीं हे, क्यों? निष्पक्ष, तटस्थ ओर स्वतंत्र विद्वानोंने इसपर ध्यान नहीं दिया, एसा जान पडता हे. जो इन नियमोंपर ध्यान देके योजना चाहें तो धर्मकी साइंसभी होसकती हे. नमूना अ. ४ गत अशक्त शोधक प्रकरण (सू. ३०से १४२ तक) में वांचोगे. उससे जानपडेगा कि जो साइंसके अनुकूल नहीं वोह धर्मभी नहीं ॥ ७४२ ॥

तत्व संबंधि सब परिक्षाओंका सिद्धांत फल एक होना चाहिये वा हे (जीव, मोक्ष ओर ब्रह्म संबंधि सिद्धांतमें बहुत मतोंकी ऐक्यता हे, सो दर्शनसंग्रहमें वांच चुके हो ओर आगे वांचोगे.) ॥ ७४३ ॥ क्योंकि जो तत्व (ईश्वर, जीव, मोक्ष, प्रकृति वगेरे) हें उनमें अनेकांतका अभाव हे याने वे स्वरुपमें एकही प्रकारके हें अर्थात जेसे हें वेसेही हें (११७।११८।४५६ यादमें लीजे); वे अनिश्चित वा अनेक रुप वा बदलनेवाले नहीं हें. अतत्वही अनेक रुप बदलनेवाले होसकते हें, (तत्व नहीं होते) ॥७४४॥ जबतब जहांतहां सत्यकी जय होती हे, अनृतकी नहीं ॥७४५॥ क्योंकि सत्य, बनावट रहित स्वरुपतः स्वतः सिद्ध होता हे ओर असत्य,बनावटी होता हे, तथा परिक्षाकालमें उसका बाध होजाता हे ॥ ७४५ ॥ पूर्वोक्त रीतिसे निर्णय ओर परिक्षा होवे तो इष्ट विषय प्रसंगमें जो संशय वा विपरीत भावना (भ्रांति) हे उसका नाश होके सत्का दर्शन (तत्वदर्शन) यह फल होता हे ॥ ७४६ ॥

जो किसी (मन, बुद्धि, जीव वगेरे)का विषय नहीं इसलिये, जो किसीका आधेय नहीं इसलिये, जिससे आगे अन्य नहीं इसलिये, ओर जिससे वा जिसमें सब अवर (उरे) हें इसलिये, उसे **पर** कहते हें; उस **पर**से पर याने बुद्धिसे पर जो अव्यक्त ओर अपर याने बुद्धिसे अपर जो कार्यरुप प्रकृति, सारांश अव्यक्त (प्रकृति–माया) ओर उसके कार्य बुद्धि वगेरे यह उभय (पर, अपर) उस उपरोक्त परसे पर नहीं हें याने उस परमें सब अध्यस्त (कोई अकथ्य रुपमें रहे हुये) हें, वोह सबका अधिष्ठान हे, सबको व्याप्त करता हुवाभी उनसे पर हे ओर उस प्रकाश स्वरुपसे सब प्रकाशित होरहे हें; एसा कोई अलुप्त स्वप्रकाश हे. एसा प्रकाश प्रकाश्यरुप सिद्धांत सिद्ध होता हे (आधेय, आधार ओर प्रकाश अधिकरणकी अर्थापतिसे यह उपसंहार हे) ॥ ७४७॥ अंत्यम पदकी दोबार आवृत्ति यह अध्याय समाप्तिका सूचक चिन्ह हे ॥ सूचना प्रकरण समाप्त हुवा.

उपरोक्त सू. १ से लेके ७४७ तकका विशेष विवेचन लिखित ग्रंथमें हे ओर किसी किसी विषयका बस. मेंभी हे. यहां तो संक्षेपमें वृत्तिमात्र लिखी हे, एसा जान्ना चाहिये ॥ अ. २ सू. १ से ७४७ तक ॥

दूसरा अध्याय समाप्त हुवा.

नोट.

☞ अब यहांसे आगे पृष्ट ५१३ से दूसरी बुक (जिल्द) का आरंभ होगा. उसमें तीसरा ओर चोथा अध्याय होगा.

सूचना. (एक पंथ दो काज).

गुजराती भाषा ओर हिंदी भाषामें विशेष अंतर नहीं हे, क्योंकि वे दोनों परस्परमें बहेन (संस्कृतकी पुत्री) हें. हां, गुजराती भाषाका एक पुत्र नपुंसक हे ओर हिंदी भाषाके नपुंसक पुत्र (नान्यतर जाती) नहीं हे, यह अंतर हे किंवा कितनेक रौढिक नामोंमें अंतर हे; परंतु यह दोनों अंतर इस ग्रंथके आशय समझनेमें आडरुप हों एसा नहीं हे, क्योंकि ग्रंथ सीधी सरल भाषामें हे. इत्यादि दृष्टिको लेके कितनेक भद्रपुरुषोंने यह सूचना की कि गुजराती भाषा जान्नेवाले जो जिज्ञासु हों उनके उपयोगमेंभी यह ग्रंथ आसके एसी योजना हो तो ठीकही हे, इसलिये यहां ३ प्रकारके कोश शामिल किये गये हें. (१) शब्द कोश. (२) संयुक्त असंयुक्त शब्दोंका कोश. (३) प्रचलित द्विगामी शब्दोंका कोश ॥ यह हिंदि भाषावालोंको विशेष उपयोगी नहीं हें तथापि गुजराती भाईको सहकारी हो पडेंगे. इसी दृष्टिसे शुद्धिपत्रभी विस्तारवाला बनाया हे अर्थात जो हिंदी भाषावाले प्रसंगसे अशुद्धि जानके शुद्ध वांचसकते हें, उनको बाजी (४५) अशुद्धि वास्ते कोश देखना पडे एसी भूलें रही हें, तथापि गुजराती भाईको विशेष उपयोगी होगा, क्योंकि इस भाषामें क्रियापदोंमें नर नारीका संकेत नहीं हे इ. ग्रंथके अंतमें प्राचीन ओर अर्वाचीन हिंदीभाषाका वृतांत ओर उनका भेदभी दरसा दिया गया हे, उससेभी गुजराती भाषावालेको सहायता मिलेगी. उक्त ३ प्रकारके कोश हरेक भाग प्रति (तीनों बुकोंमें) योजनेमें आये हें.

(नं. १) शब्दकोष.

अन्यभाषाके जो शब्द हिंदीभाषा वा गुजरातीभाषामें दूधपानी जेसे होरहे हें उनको, जो शब्द प्रत्येकको परिचित हें उनको, जिन शब्दोंका अर्थ जहांका तहां लिखदिया हे उनको, ओर फारसी, उरदू वा इंग्रेजी भाषामें जो जो खास मनुष्य, पुस्तक वा पदार्थके नाम हें उन शब्दोंको छोडके कठिन ओर थोडे परिचित शब्दोंका कोश.—

अकसर—बहुधा--घणुं करीने.
अजायबघर—संग्रहस्थान=म्यूजियम.
अठसठा—एकन्दर--अंदाजा, अडसठा.
अदा—भजना, बयान करना, कर बताना.
अधेड—जवानी ओर बुढापेकी बिचली उमरवाला.

अनुभवा जाता हे—अनुभवमें आजाता हे.
अन्मेल—विरोध, प्रतिकूलता, असंप.
अनुवृत्ति—पेज ४७४ देखो.
अपस्वार्थी, आपस्वार्थी } केवलस्वार्थी, कुस्वार्थवाला.
अप्रमात्व--अयथार्थपना, भ्रमपना.

अफसोस–शोक, रंज.
अभ्यस्त–अभ्यासित-अभ्यास कियाहुवा
अमल–वर्तन, वर्त्ताव.
अर्थाअर्थी–अर्थार्थी, परस्परमें स्वार्थी.
अरस्तु–अरस्टोटल, सिकन्दर पादशाहका शिक्षक.
अरिवर्ग–कामक्रोधादि.
अल्लाह्–ब्रह्म.
अलबत्ते–हां, पण.
अवतिष्ठित–अवस्थित--विचित्रतासे रही हुई.
अशरफी–महोर, गीनी.
असल--मूल, खरी.
असर--प्रभाव.
आबादी--वसती.
आईडिया--भाव, आन्तरीयआशय.
आगमापायि--आने जाने वाला.
आफत--आपत्ति, दुःख, प्रतिकूल.
आमनेसामने--सामसामे.
आबहवा--पानी हवा.
आयन्दे--भविष्य.
आभारी. *(गु.)--उपकृत.
आलातचक्र--पृष्ट ७२ देखो.
इलजाम--आरोप.
इत्थम्--यूंही हे, निश्चित.
इफेक्ट--असर.
इनजीनियर--शिल्पशास्त्री.
इसराईली-याहूदी किरानी कुरानी-संसार.
इवॉल्यूशन (इवुलेशन) --विकास, उत्क्रांति. (पेज १२४ देखो.)
इम्प्रेशन--मगजकी अवस्थाविशेष, संस्कार.
इनकार--ना करना, अस्वीकार.
इम्यूलेशन, अन्युलेशन --अविकास, अनुत्क्रांति. पृष्ट १२४
इस्तविस्त--अनियामित, तित्तडवित्तड.
इस्तंजा--पेशाब करने पीछे माटीका टुकडा लगाना.
इच्छ--चाह, इच्छाकर.
इंतजारी–आशा, बाट देखना.
इमारत–मकान, इमलो.
इन्डीपेन्डेन्ट–स्वतंत्रमगजवाला.
इनसल्ट–अपमान, अनादर.
ईथर–शेषा वा हिरण्यगर्भका अमुक भाग.
ईरानी-पारसी धर्मवाले,इरान देशके निवासी
उद्भवी. (गु०)–व्यक्त हूई.
उद्देशित–उद्दिष्ट–उद्देश किया हुवा.
उमर–आयुष्य.
उम्मेद–आशा.
उदजन, हाईड्रोजन –पानी उत्पादक तत्व.
उद्भव–व्यक्त होना.
एमीबा–पेज १४६, एक प्राणि.
एटम (आइटम)–परमाणु, अणु.
एकदम–तुर्त, जल्दी, तुरंत.
एवोल्यूशन–पेज १२४, वि[illegible]स.
ओजरी. गु०–जठरामल, मेदा.
ओरीजनल–कल्पनाशक्तिवाला.
ओक्षिजन–गरमी उत्पादक तत्व.
ओर (और)–दूसरा, पुनः, च, अने.
ओपरेटर–मेस्मेरेझम करनेवाला.
ऑबजक्ट–कर्म, क्रिया.
औषजन, ओक्सिजन –गरमी उत्पादक तत्व. प्राणरक्षक वायु.
अन्दाजा–अनुमान, तोलन.
अन्दर--भीतर, मांहि.

*इस कोशमें गुजराती भाषाके ३५-शब्द हैं।

अंत्यम } छेवटका, आखिरका.
अन्तिम }
कतरे--बूंद, टीपुं.
कद--शरीर, माप, परिमाण, विस्तार.
कबर--मुरदेकी समाधि.
कमदरजे--छोटीपदवीवाला.
कमजोर--अशक्त.
कमजोरी--अशक्ति, निर्बलता.
कमज्यादे--न्यूनाधिक.
कमरा--कोटडी, ओरडो.
कमी--न्यूनता.
करीबन--लगभग, आसरे.
करजदार } ऋणी.
कर्जदार }
कर--लागा, जगात.
कर्तूत--कर्म, कुकर्म, कुकृत्य.
कल्मा--मुसलमानी महावाक्य.
कवायद--व्यूहरचनाकी पद्धति, सेनाका शिक्षण.
कहवाते--कहे, वा मानेजाते हैं, कहाते हैं.
कहमुकरनी--मेरे मुखमें जिव्हा नहीं. कहके इनकार करना-यह कह मुकरनी हे. (वा अलंकारी छल).
कानून } नियम, निती रीति सूचक.
कायदे }
कायम--स्थित, द्रढ, निश्चय.
काफी--बस, बहूत, घणुं.
कारभार--व्यवहार, वर्तन, आचार, प्रवृत्ति.
कारस्तानी--बनावट, पोलीसी.
किताब--पुस्तक, ग्रन्थ, बुक.
किस्मत--भाग्य, ईश्वर निर्मित.
किरानी--ईसाई, इसुमसीहका भक्त.
कुदरत--प्रकृति, शक्ति समूह, स्वभाव.
कुसंप--बनावटी (खोटा-झूठा) मेल.
कुरान--मुसलमानी धर्मपुस्तक.
कुरानी-मुसलमानीमतवाला, कुरान और नबीको माननेवाला.
कुल--पूर्ण, तमाम, समग्र,
केमिस्तरी--रसायणीयशास्त्र.
केमीकल--रसायणीय.
केमेरा--फोटो लेनेका यन्त्र.
कैसरी दरबार--मलिकाविकटोरीयाने जिस कोरोनेशनमें कैसरे हिन्दकी पदवी धारण की सो. बादशाही सभा.
कैसरीजंग--जरमनबादशाहकी लडाई (महाभारत).
कोशिश--उपाय, चेष्टा.
कोटवाल--पुलिसका अफसर, थानेदार, फोजदार.
कोर्टबाजी--केस करना, मुकदमे करना, कोर्टकी लडाई.
कोम--जाति, मंडल, नेशन.
कंडीशन--अवस्था.
कंटाला. (गु.)--अरुची, आलस.
क्लोरोफोर्म--मूर्छित करनेकी दवाई.
कोटेशन- अवतरण--दूसरेके वाक्य.
कंपौंड--विजातीयका मिश्रण, सावयव.
खराब--बुरा, विकारी.
खराबी--हानी, अव्यवस्था, बुराई, विकार.
खबर--ज्ञान, ज्ञात, समाचार.
खयाल--विचार, मान्यता.
खस्सी--वृष्ण विनाका (बधिया).
खाते २--खाते खाते (दो बार बोलना).
खामी--न्यूनता, अपूर्णता.
खास--विशेष, स्पेश्यल, केवल.
खिरसान--खेती करनेवाला, कृषिकार.
खुशबू--सुगन्ध.

खुदा--ईश्वर.
खुद--आप, पोते.
खुशामदपसंद -अपने सच्चे झूठे बखानसे प्रसन्न होनेवाला.
खुशामदिया. गु०--झूठे बखान करनेवाला
खुलासा--विवेचन, निर्णय.
खुरंद--खावें, भोगें.
खुश्क--सूका, कोरा, शब्दमात्र.
खूबी--सौंदर्य, अच्छापना.
खूराक--लक्ष्य.
खूब--अच्छा, बहूत, सुंदर.
खूबसूरत--सुरुप, सुंदर, रूपवंत.
खूनी--घातकी.
खून करना--प्राणीका बध, घात करना.
गम--शोक, खेद, सहन.
गलत--अशुद्ध, भूल, झूट.
ग्रामेटर--मगजका भाग विशेष.
गुजारा--निर्वाह.
गुजर--आवजाव, निर्वाह.
गुजरना--जाना.
गेरउपयोग. गु.--कुउपयोग, दुरुपयोग.
गिरदावरी--शोधनार्थ फिरना,उलट पलट करना.
गलेफ--खोली, मियान.
गर्जमंद--स्वार्थी.
गेंद--दडी, दडो.
गेस--हवाई.
घडत, घडित--बनाई हुई, कल्पा हुवा.
चचा--काका, बापका छोटाभाई.
चपटी (पेज १८५ देखो).
चन्दा--अनेकोंसे कुच्छ लियाजाय, फाला, उघराणुं.
चरम--अंतिम स्मृति, स्मृतिकी स्मृति.
चशमा--उपनयन.
चालबाजी,--छल, कपट.
चांस (चान्स)--भावी.
चींटी--कीडी.
चूका--भूला, गफलतकी.
चूसाना. गु.--चूसजाना.
चूंके--जोकि.
चोपगे--चतुष्पद, चोपदे, पशु.
जनरल--बड़ा, बडी, सामान्य.
जनाया--कहागया, बताया.
जनाते--कहते, बताते.
जनाना--ज्ञात कराना, बताना.
जबरदस्ती--बलात्कार.
जपापुष्प--गुढलका लाल फूल.
जमा--एकत्र.
जमाने--काल, समय.
जया--जपा वत्.
जरा--मात्र, किंचित.
जरूरतें--आवश्यक्तायें.
जरूर, जरूरी --आवश्यक.
जहांदीदः--संसारमें फिरा हुवा.
जाहिर--प्रसिद्ध, प्रत्यक्ष.
जात--स्वत्व, निजत्व, अमिश्रित, मुख्य स्वरुप.
जाती--संबन्धित्व, वर्ण, सामान्यप्रत्यय.
जानबूझके--जाणीजोईने, ईरादापूर्वक.
जारी--चालु, प्रवाह, चलताहूवा.
जालिम--अत्याचारी, अन्यायी.
जिन--भूत (क्षत्रिय स्वभाववाला प्रेत).
जिकर--चर्चा, वर्णन.
जिले--राज्यका विभाग.
जीओलोजी--भूस्तरविद्या.
जीओलोजिस्ट--भूस्तर विद्याका ज्ञाता.
जुगार. गु.--जूवा, द्यूत.

जुदाजुदा--पृथक् पृथक्.
जुजवी--थोडाक.
जोखम--हानि, भयकारी, विघ्न,द्रव्य,धन.
जोर--बल, सत्ता.
जोहर--अमिश्रिततत्व, सत्व.
जंगी--भारी, बडी, लडायक.
ज्यादा-अधिक, विशेष.
ज्वारभाटा--समुद्रकी भरतीओट.
झूठ--उच्छिष्ट, ऍंठुं.
झूट (झूठ)--असत्.
टोले--जूत्थ, मंडल.
टोच--शिखर, चोटी.
टोलरेशन--उपेक्षा, क्षमा, सहनशीलता.
ड्राफ्ट-असंशोधित लेख,मसोदा,मसव्विदः
डार्विन-एक अंगरेजका नाम.
डीग्री-दरजा, पदवी.
ड्यूटी-कर्तव्य, फर्ज.
ड्राईवर-रेल्वेका अंजन चलानेवाला.
तक्दीर--भाग्य, ईश्वरनिर्मित, भोग्य.
तकरारी--विवादित.
तकरार--विवाद.
तत्वफिलोसोफी--आध्यात्मिकविद्या.
तथाहि—औरभी, पुनः, वली.
तदबीर—उपाय, योजना.
तनजोरी—शारीरिक बलकी लडाई.
तनदुरस्ती—आरोग्यता.
तमाम—सर्व.
तरफ—दिशा.
तरजुमा—अनुवाद, दूसरी भाषामें उलथा.
तरीका—पंथ, मार्ग, रीति.
ताके—तो.
ताबे—आधीन.
तालाश—खोज, तपास.
ताकत—बल, शक्ति.

तालीम—शिक्षण.
तिब्बत—कैलासदेश, उत्तरखंडका देश.
तिलस्म—इंद्रजाल, तन्त्र.
तिरोधित—तिरोहित--दबाहुवा, लुप्त.
तुर्या—चित्तका चैतन्यमें लय होजाना.
तूफान—आन्दोलन, उथलपाथल, क्षोभ.
ते—मार्ग काटकर, चलके.
तेः—तेहे, तह.—-पड, थर, गडी.
थरमामेटर—गरमीमापक यंत्र.
थिर-स्थिर.
थीयरी--पद्धति, शैली.
थीओसोफी--देवता, ईश्वर माननेवाला-मंडल.
थीओसोफिस्ट—थीओसोफिकाअनुयायी.
थेंक्स्--शाबाश, स्तुतिपात्र, धन्यवाद.
दरियाफ्त--शोध, तपास.
दरेक (हरेक)--प्रत्येक.
दर—प्रति, यथा-बंसदरबंस, बीच, दरवाजा.
दरकार—आवश्यकता, संभाल.
दरमियान--बीच, वच.
दलील—युक्ति, तर्क.
दाना— ज्ञाता, विद्वान, बुद्धिमान्.
दाग--कलंक, डाम, जलाना.
दाखिल--प्रवेश.
दावा—प्रतिज्ञा, साध्य.
दाखला. गु.-दृष्टान्त, उदाहरण, प्रमाण.
दाखले. गु.-दाखलाका बहुवचन.
दिवाना-बावला, गांडो, उन्मत्त.
दिवस. गु.-दिन.
दीगरां-दूसरे.
दुनिया-संसार.
दूरबीन-दूरदर्शक यन्त्र.
देहली-दिल्ली नगर.

देखाना-दिखाना, बताना.
दोर (दोरा)-आगमन, चक्कर, प्रवाह, क्रम.
दोराजाता हे-विवश प्रवृत्त होताजाता हे.
धर्म-(पेज ५) कर्तव्य, ज्ञातव्य, प्राप्तव्य, ड्यूटि, (प्रचलित मत, पंथ).
धर्मशील-धर्म पालनेवाला.
नकल-उतारा, प्रत्याकृति.
नकशा-कोष्टक, आकृति विशेष.
नकशी-चित्रकारी.
नजदीक—समीप.
नजर--दृष्टि, भेट, दर्शन.
नतीजा--परिणाम, फल.
नमाज—ईश्वरप्रार्थना, बंदगी.
नमूना—वानगी, आदर्श.
नय—न्यायकी पद्धति.
नर—पुरुष.
नवीन—नूतन, नया.
नशे—मादक द्रव्य सेवनसे जो गरमी होती हे सो.
नसीब—नियत हुवा, ईश्वर निर्मित, प्राप्त, प्रारब्ध.
नाटकी--जो नटनी नाटक कर रही हो.
नाकाम--व्यर्थ, निकम्मा.
नाहक--व्यर्थ, अयोग्य.
नाराज--अप्रसन्न, अरुचि.
नापास--असिद्ध, परीक्षामें अपूर्ण.
नावाकिफ--अजान.
निशान--चिन्ह.
निसबत--संबन्ध.
नीब (नींब)—लींबडो.
नीयत--आन्तरीयभाव. इरादा.
नीव--मूल, पायो.
नीमांध—कूमदेखनेवाला, अर्धांध.
नेकबद—भला-बूरा.
नेशकर—ईक, साठा, गन्ना.
नेता--नियत करनेवाला.
नेगेटिव—रण, निर्बल, मनफी.
नेशन—पेज २४८ देखो.
नोट--सूचना, यादि.
नैयायिक--न्यायको जान्ने-मान्नेवाला.
पग--पेर.
पढो—वांचो, पाठ करो.
पड--ढंकना, गलेफ.
पन्थ--मार्ग, संप्रदाय, पेज ६ देखो.
पपैया--अरंडककडी, पक्षी विशेष.
पब्लिक—प्रसिद्ध, लोकमंडल.
परतोग्रह—परद्वारा (अनुमानसे) ग्रहण होना.
परतः प्रमाण—दूसरे द्वारा प्रमाण-(पेज १४६ देखो).
परवाह (प्रवाह)—अपेक्षा.
पस--निदान, सारांश, अतः, पीछे.
पसंद--अनुकूल, रुचिपात्र.
पाया } —मूल, नीव, थड.
पाये }
पंचतन—नबी वगेरे मान्य ५ पुरुष.
पावफुट-९ इंच.
प्लीडर-हाईकोर्ट वकील.
पुलिसमेन-राज्यका सिपाही.
पुद्गल-परिणामी, खिरने वाले अणु, द्वयणुक, त्र्यणुक.
पेगंबर-कासिद, ईश्वरकादूत, रसूल.
पेश-आगेकरना, बताना.
पेदा-उत्पन्न.
पेज-पृष्ट, सुफा.
प्रेक्टीस-अभ्यास.
प्रवाह (परवाह)—अपेक्षा, सिलसला.

प्रोटोपलाजम—पेज १४६ देखो.
प्रोटो—पेज १४६, १४९ देखो.
पोजीटीव – ध्रुव, बलिष्ठ, मुसबित.
प्रोफेसर-हेड, उपरी.
पोजीशन-स्थिति, आबरु.
फकृत-केवल, मात्र.
फर्ज-कर्तव्य, ड्यूटी.
फर्श-बिछानेकी जाजम.
फर्क-अन्तर.
फॉर्म / फारम } आकार, रुप, खेत.
फासला--अन्तर, दूरी.
फिक्स--निश्चित.
फिलोसोफी--मर्मविद्या, तत्वविद्या, कारणविद्या, ज्ञानकी चाहना, ज्ञानविद्या, सारविद्या.
फिकर--चिन्ता.
फ्रीथिंकर--स्वतंत्र, आजाद निश्चयकरनेवाला.
फिलोसोफर--ज्ञानका आशक, तत्ववेत्ता.
फिरश्ते—देवता.
फिलसुफा—तत्वविद्या, फिलोसोफी.
फीलिंग—लगन, लागणी.
फी—प्रत्येक, प्रति.
फुरसत—अवकाश.
फेसला—न्याय, निर्णय, परिणाम.
फोर्स—दबान, गतिप्रदशक्ति.
फोनोग्राफ—शब्दयन्त्र.
बकवाद—बडबडाट, व्यर्थ भाषण.
बढे—ज्यादे हो.
बदसूरत—कुरूप.
बधाना--बढाना, ज्यादे करना.
बंधारण. गु.--योजना, नियम.
बंद-बंध.
बंधाना. गु.--बंधजाना, बनजाना.
बमुशकिल--कठिनताके साथ, अतिश्रमसे.
बयान--वर्णन.
बल्के - किन्तु.
बलून - आकाशीवैमान.
बलिया. गु. - बलवान्.
बस-- विवश, बहूत.
बहाना - बनावट, कुहेतु, बाना.
बहेतर--अत्युत्तम, घणुं सारुं.
बावले. गु.- स्मारक, मूर्ति.
बात--विषय, वृत्तान्त.
बाह्य--बाहिर.
बाध--नाश, अभाव, पारिभाषिक शब्द (पृष्ट १७२ देखो).
बारीक--सूक्ष्म.
बाद—पीछे, पछी.
बाजे—किंचित्, कोइक.
बाजी— ,, (स्त्री).
बाइसिकल—पाद चलित यंत्र.
बाजार—विक्रयस्थान.
बाकी-शेष.
बाजू-दिशा, तरफ, भुजबन्ध.
बारूद-गोलीचलानेकी एक वस्तु, दारु.
बिगल-सैन्यबंसरी, रणवाद्य.
बिदून-विना.
बींटी-अंगूठी.
बुक-पुस्तक, किताब, चोपडी.
बुनियाद-मूल, थड, पायो.
बेखबरी-अज्ञानता, अजानपना.
बेजरुरी-अनावश्यक.
बेवकूफ-अज्ञ, मूर्ख.
बेहद--असीम, बहूत.
भगेर--दीपडा.
भंडोल. गु.--संग्रह, भंडार.

भार--बोझ.
मकान--घर, बिल्डिंग, इमलो.
मगज--मस्तिक, ब्रह्मरंध्र.
मख्फी--गुप्त रहा हुवा.
मजमून--विषय.
मजनूं--लेलेका आशक.
मंजूर--स्वीकार, कबूल.
मजबूत--दृढ, घट्ट, पुष्ट.
मजहब--पंथ, धर्म, संप्रदाय.
मजकूर--उपरोक्त, उपर कहा हुवा.
मजा--आनंद, मोज.
मंतक--न्याय, लाजिक.
मत--धर्म, पंथ, संप्रदाय.
मतलब--आशय, स्वार्थ, प्रयोजन.
मथवा--माथा चढजाना.
मदद--सहायता.
मध, मधु--शहद, शहेद.
मनाये--माने गये, मनाये गये.
मनस्--चित्त, बुद्धि, मन, अहंकार, अन्तःकरण.
मेम्बर--सभासद.
ममनून--उपकृत.
मृगजल--झांझवा, सुराब, मृगतृष्णिका.
मशहूर--प्रसिद्ध, नामांकित.
मशाल--हलाल.
मस्ती--मग्नता, ज्ञानउन्मत्ता.
मसोदा, मसव्विदा--असंशोधित लेख.
मसाला--सामाग्री, चटपट.
माईटइजराईट--जिसकी सत्ता उसका हक, बलियेके दो भाग.
मातम--मरे हुयेका शोक, मोकाण.
मालूम--ज्ञात, जो जनाया.
मादा, माद:--स्त्री जाति.
मात्र--तमाम, थोडाक, फक्त.
मातदल--समान, बिचला, सरदी गर्मी समभाग.
मार्तंड--सूर्य.
मिसर--ईजिप्त.
मीनीट--२॥ पल.
मीजां--जोड सरवालुं.
मील, माईल--आधी कोस.
मुकाबला--सामने करना, मिलाना.
मुफ्त--विना बदले, मुफत, निष्काम, व्यर्थ.
मुलतवी--पीछे करेंगे एसा भाव.
मुराद--आशा, आशय.
मुरदा--शब, मराहुवा.
मुरगी--कूकडी.
मुजावर--कबरोंके पंडे.
मुशकिली--कठिनता.
मुसकराके--मलकावीने.
मुसाफर--पंथाई, पथिक.
मुसाफरत--पंथ चलन, यात्रा.
मुमकिन--संभव.
मुशकिल--कठिन.
मुहब्बत--प्रीति, प्यार, दोस्ती.
मेहनत--काम, श्रम.
मेटर--उपादान, प्रकृति.
मेदान--विस्तृत, उजाड, वनस्पतिविनाका जंगल.
मेस्मेरीझम--तैजसविद्या.
मोशन--गति, धक्का.
मोजूद--विद्यमान--हयात.
मौका--अवसर, समय.

यानै--अर्थात, एटले.,
यथा--जेसाके, जेमके, जेसे, जेवुं.
यादगारी--स्मरण, संबन्ध.
याहूदी--मूसानबी, तोरेतको माननेवाले.
यार--मित्र, दोस्त, इष्ट.
याद--स्मरण.
येन केन प्रकारेण--जिस तिस प्रकारसे.
यूस--उपयोग.
रजू--सन्मुख, तरफ.
रद--निकम्मा, बाधित.
रबर--रबड.
रमत--खेल.
रमूज--मनोहर कटाक्ष, इशारा.
आशय, सेन, सनकारो.
रसम--रूढी, रिवाज.
राईट इज माईट--नीति-नियमका बल.
राज--भेद.
रिशवत--लांच.
रिजल्ट--परिणाम, फल.
रिवाज--रीति.
रीफॉर्मर--सुधारक, अगवा.
रीत्या--रीति करके, रीतिसे.
रीलिजीअन--मत, पंथ, धर्म, संप्रदाय.
रुख--तरफ, मुख.
रुपेण--रूपकरके, रूपसे.
रेडियम--एक प्रकाशमान पदार्थ.
रेगर--चमडे रंगनेवाला चमार.
रोज--दिन, नीलगाय.
रोशनी--प्रकाश, उजाला.
रोशन--प्रकाशित, प्रसिद्ध.
लायक--योग्य, योग्यतावाला.
लाश--शब, मुरदा.
लाईब्रेरी--पुस्तकालय.
लागु--लगना, संबन्ध, मुताबिक.
लियाकत--योग्यता.
लो--दीपककी ज्वाला.
वक्त--समय, काल.
वकील--प्रतिनिधि, जिसको सोंपा.
वक्ष्यमाण--आगे जो कहेंगे.
वर्नाक्यूलर--देशी इंग्रेजी.
वर्क--काम, वर्तन, कर्म करना.
वगेरे--इत्यादि.
वजह--कारण, हेतु.
वजन--तोल, गुरुत्व, गुरुत्वशक्ति.
वडील उपार्जित--बापदादाकी जायदाद.
वफादारी--दोस्ती पालना, मित्रभाव.
व्यवहारे. गु.--व्यवहारमें आजाते हैं.
वलन--वृत्ति, भाव, रुची.
वसूल--मिलाप.
वहेम--भ्रम, भ्रांति.
वांचोगे--पढोगे.
वांचना--पढना.
वारिस--दायभाग पानेवाला.
वॉल्युम--पुस्तक, भाग, जिल्द.
विषय--बात, बाबत, शब्दादि पंच विषय
विषे--में, अन्दर.
विषयी--ज्ञाता, द्रष्टा, भोक्ता, प्रकाशक.
विदून--विना, बगेर.
विल् पावर--इच्छाशक्ति.
विरसेः, वारिसा. }--दायभाग, बापोती.
विगत. गु.--सूचि, विस्तार, तफसील.
विकास--उत्क्रान्ति, पेज १४४ देखो.
वैराग्य--अरुचि, त्याग.
शकर--मिसरी, मिष्ट, शाकर.
शराब--मदिरा, दारु.
शृंखला-- (संकला) } एक पीछे एक जुडना, सांकली.

शामिल--मिलना, मेल, संयुक्त.
शायद--कदाचित्.
शायक--जिज्ञासु, शौकीन.
शिकारबाजी--मृगया करना, छल कपट.
शिकार--मृगया.
शिजरा--बंसावलीका झाड.
शिर्क--ईश्वर सिवाय दूसरेको मानना.
शिर्काभाव--ईश्वरसे इतरका अभाव.
शुतरमुर्ग--उंट वा गरुड जेसा बडा पक्षी, उसपर आदमी चढे तो लेजाय.[१]
शुकर--ईश्वरादिका धन्यवाद.
शूरा--कलमीशोरा, शूराखार.
शुष्क } सूका, कोरा, खुश्क.
शुषक }
शेतान--कुपुरुष, असुर, कुदेव.
शेषा--(पेज २७३ देखो).
शौक--दृढजिज्ञासा, मौज, आसक्ति.
शनैःशनैः--धीरेधीरे.
सख्ती--कठोरता, कठिनता.
सख्त--कठोर, कठिन.
सजा--शिक्षा.
स्पृधा--स्पर्धा, चढाचढी.
सफाई--शुद्धि.
सबूत--प्रमाण, पुरावा.
सबजेक्ट--विषय, कर्त्ता.
सबुर--संतोष, धीरज.
सबब--कारण, कॉज.
समझण. } गु. } समझन, बुद्धि.
समझन. }
सरेरास--मध्य, ओसत , एकंदर, प्रति.
सलाह--संमति, संमत.
सवाल--प्रश्न, शंका.
सर्वोपरी--सबका अधिष्ठाता.
सवेर--सवारे, सुबह, प्रातःकाल.
सहेना--सहन करना.
स्वतोग्रह--अपने आपमें आपसे ग्रहण होना
स्वतःप्रमाण-- ज्ञान होनेमें अपने आप साधन.
स्वीकारित--स्वीकृत, मानलिया गया.
स्वयंप्रमाण--अपने आप प्रमाण.
संप--एकता, साम्यभाव.
संकला--सांकलीसमान एक पीछे एक.
सहीसलामत--आबाद, ठीक.
साल--वर्ष, १२ मास.
साफ--शुद्ध, स्वच्छ, स्पष्ट.
साबित--सिद्ध.
सायंस--दर्शन, पदार्थविज्ञान. पेज ५.
साक्ष्य--साक्षीका विषय.
साक्षर--पढा हुवा, भणेल.
साइंटिफिक--युक्ति परीक्षायुक्त.
साइकोलॉजी--मानस शास्त्र.
सिर्फ--मात्र, केवल.
सिवाल--जलके उपरकी हरीकांजी.
सिलसिला--एक पीछे एक, संकला, प्रवाह.
स्टीम--अद्रष्ट वराल (भाप).
स्टीमर--अगननोका.
सुखेन. गु.--सुख करके, सुगमतासे.
सुफह--पेज, पृष्ट.
सुस्सा--शश, ससला.
सुलह--सन्धि, मेल, संप.
सुधारना. गु. (तरमीम)--शोधना, विकार निवारण करके उत्तम भाग ज्यादे करना.
सूफी--मुसलमानोंमें अद्वैतवादि मंडल--अहंब्रह्मवादि.

[१](बहावलपुरमें देखा था).

सूक्ष्मा--पेज. २७३ देखो.
सूझता है--जानपडता है.
सूचता है--बताता है.
सेन्टर--केंद्र, मगजमें गोलाकार बिंदु.
सेकंड--२॥ विपल.
सेल्स--कोष्टक. पेज १४६ देखो.
सोशियल--व्यावहारिक, लौकिक.
सोसाइटी--सभा, जनमंडल, जाति.
सोहबती.--सखा, साथी.
संगमरमर--श्वेत स्वच्छ पत्थर विशेष.
हकीकत--वृत्तांत, शोधित वृत्तांत.
हकदार--भागीदार, अधिकारी.
हक--अधिकार, सत्य, ईश्वर.
हद--सीमा.
हमला--परिहार, चढाई.
हमेशः--नित्य, अमुक कालतक नित्य.
हयाति--अस्तित्व, जीवन.
हरसाल--प्रत्येक वर्ष.
हर्ज (हरज)--हानी, आड.
हवाले. गु.--साक्षी, उदाहरण.
हालांके--जोकि, अभीतो.
हाइड्रोजन, (उदजन)--जल उत्पादक तत्व.
हिल--विश्वास वा टेवसे संबन्धी होजाना, (हली जवुं).
हिस्टरी--इतिहास, तवारीख.
हिमायती. --पक्षकार, सहायक.
हिन्दीप्रजा--भारतखंडमें रहनेवाले हिन्दु, पारसी, मुसलमान, ख्रीस्ति--वगेरे.
हिकमत--सायंस, युक्ति, पोलिसी, वैद्यक.
हिलचाल. गु.--आन्दोलन, चुलबली.
हिरण्यगर्भ--(पेज २७३ देखो).
हुकम--आज्ञा.
हूबहू--तद्वत्, ज्योंकात्यों.
हेरान--विकल, दुःखी.
होशियार--जिसके मन, इंद्रिये चपल और योग्य हों.
होजरी. गु. --जठरस्थान.

(नं. २) संयुक्त असंयुक्त पद्धति वाले--शब्द.

निम्नलिखित दो दो शब्द हें, वे संयुक्त ओर वर्त्तमानमें जुदजुदा लिखनेकीभी पद्धति हे:-

अवतारी के[1]	अवस्था मात्र[2]	इष्ट प्राप्ति	उस शक्ति
अपेक्षा विना	अविद्या शक्ति	इसी प्रकार	उत्तम कर्म
अज्ञ थे	अध्यारोप वाद	इस वास्ते	उत्क्रांति क्रम
असत् ख्याति	अध्यारोप अपवाद	ईश्वर वाद	कहना के
असाधारण धर्म	अचिद् प्रसंग	ईश्वर भक्ति	कार्य मात्र
अधिष्ठान चेतन	आरंभ वाद	ईश्वर भगति	कल्पना मात्र
अन्यथा प्रतीति	आकर्षण शक्ति	उसानुसार	कुछ न कुछ
अन्यथा कर्त्ता	आर्य दर्शन	उस अनुसार	कोई न कोई
अविकारी परिणाम	इष्ट परिणाम	उन्नति के	गति मान

[1]विभक्ति हे. [2]तमाम, यत्किंचित.

गति जन्य
गुण विशेष
गये थे
चेतन विशिष्ट
चाहिये के
चला जा
जल के
जल प्रलय
जीवों के
जीव पक्ष
जैन सिद्धांत
जेसे के
जेसे कि
जानते थे
जीवन रस
जीवन सुख
तीनों पक्ष
तत्व दर्शन[४]
तटस्थ लक्षण
दंडी स्वामी
देश सहित
दूध दही
देने थे
न होने
नहीं थी
नियम प्रसंग
प्रवृत्ति थी
पूर्व जन्य

परिणाम विशेष
परोक्ष विषय
प्रत्यक्ष प्रमाण
परिणाम जन्य
प्रवाही थी
प्रभास पाटन[३]
परखंड दर्शन
बंध मोक्ष
बुद्धि विना
भारत दर्शन
मानव सृष्टि
मूर्ति पूजा
माया के
मानो के
मगन लाल[४]
मातम प्रसंग
यथा कर्म[१]
यथा उपाधि
यथा देश
यथा शक्ति
यथा संस्कार
यथा प्रकृति
यथा सामग्री
यथा प्रसंग
यथा आकाश[२]
यथा अग्नि
युक्ति पूर्वक
योग्य मार्ग

युक्ति युक्त
योग्य संबंध
रहते थे
रुप ज्ञान
रक्त वस्त्र
रसायनीय संयोग
रसायन शास्त्र
लाल वस्त्र
ली जाती
ले सके
विवेक ख्याति
वर्ण भेद
विषय वासना
विशेष ज्ञान
वर्तते थे
वृक्ष वत्
वायु वत्
विधवा लग्न
विकास क्रम
वंध्या पुत्र
व्यवस्था नाशक
व्यावहारिक सुख
विरुद्ध धर्म
विरुद्ध गति
वृत्ति मात्र
विकारी ही
शुद्ध सत्व
शक्ति के

शैली के
शब्द प्रमाण
सूक्ष्म प्रकृति
सर्व शक्तिमान
सफल ही
सृष्टि नियम
सूक्ष्म शरीर
सम चेतन
सम अधिष्ठान
सामान्य ज्ञान
सर्प वत
सिद्धपुर पाटन[३]
स्वप्न सृष्टि
सहकारी कारण
संबंध जन्य
सरदार सिंह[४]
हो तो
हो भी
हरी ही
हुई थी
हुवा था
होती थी
क्षणिक परिणाम
एवं ग्रंथमें }
अन्यमी हें }

---

[३]नगरका नाम. [४]नाम, सामासिक.

[१]जेसा कर्म वेसा फल. इ. [२]जेसे के आकाश व्यापक हे. (उदाहरण—दृष्टांत सूचक).

(नं. ३) द्विगामी शब्दकोश.

प्राचीन हिंदी भाषा, मिश्रित होनेसे उसमें नीचे लिखेहुये शब्द लीपीमें दोनों प्रकारसे इस्तेमाल (वर्तन) में आते हैं.—

अकथ	अकथ्य
अणुओं	अणुवों
अटलांटक	आटलांटिक.
अद्भुद	अद्भूत
अनहुया	अनहूवा
अनहुयी	अनहूई
अन्युलेशन.	इम्यूलेशन
अनमीटी रीयल	इनमीटी रीयल
अफेरीका	आफरीका
अरस्टाटल.	एरिस्टोटल (अरस्तु)
अर्थाअर्थी	अर्थार्थी
अर्थात	अर्थात्
अवाच	अवाच्य
अवाध	अबाध
असत	असत्
असद	असद्
असंख	असंख्य
अस्ट्रेलीया	आस्ट्रेलिया
आगमापाइ.	आगमापायी
आद	आदि
आपति	आपत्ति
आर्य	आर्य्य
आवृत	आवृत्त
आवश्यक्ता.	आवश्यकता
इथर	ईथर
ईम्प्रेशन (एम्प्रेशन)	इम्प्रेशन

इवोलेशन (एवोलेशन	इवोल्यूशन
इश्वर	ईश्वर
इर्षा	ईर्षा
उत्पति	उत्पत्ति
उतेजन	उत्तेजन
उपनिषद	उपनिषद्
उपर	ऊपर
उपोदघात	उपोद्घात
उसानुसार.	उस अनुसार
उषण	उष्ण
एतिह्य	ऐतिह्य
एफ्रिका	आफ्रिका
एम्रिका	अमेरीका
एष्णा	एषणा
ओतपरोत	ओतप्रोत
औक्षजन	ऑक्षीजन
कलिष्ट	क्लिष्ट
कलेश	कूलेश
क्लेह कल्ह	कलह
कलार्क	क्लॉर्क
कबी	कभी
कालिज	कॉलेज
किस्तूरी	कस्तूरी
कुशती	कुश्ती
केवल्याद्वैत.	कैवल्याद्वैत
केंगरु	कांगारु

कंपौंड (कंपोड	कम्पाउन्ड
खावो	खाओ
खुराक	खूराक
खुशक पुशक	खुश्क
गई हें	गई हैं
गतिमान	गतिवान
घ्रत	घृत(घी)
चतुरमासा	चातुर्मास
चित	चित्त
चित	चित्
चिद	चिद्
चुबने	चुभने
चुही. चुहा.	चूहा
चेतन चेतन्य	चैतन्य
चरचा	चर्चा
चांस	चान्स
छटा	छठा (६ठा)
छुटाना	छुडाना
जगत	जगत्
जघे	जगह
जयापुष्प	जपापुष्प (एक लाल फूल)
जरुर	जरूर
जानुं	जानूं
जाना	जानना

जीवरस (पे.१४६	जीवनरस
झघडे	झगडे
झूठ	झूट
झुलती	झूलती
टौलेरेशन	टोलरेशन
डयूटी	ड्यूटी
डारवन	डार्विन
डीगरी	डिग्री
तत	तत्
तद	तद्
तत्व	तत्त्व
तदनुसार	तद् अनुसार
तिरोधित	तिरोहित
तिक्षण	तीक्षण
त्रपुटी	त्रिपुटी
दलीप	दिलीप
दुसरा	दूसरा
दुख	दुःख
दुध	दूध
दुर	दूर
देखाव	दिखाव
देखपडता	दीखपडता
द्रश्य	दृश्य
द्रष्टि	दृष्टि
दंडेव	दंडएव
ध्वंध	धुंध
नमुना	नमूना
नववार	नो ९ बार
ना	नहीं
ना का	नहीं का
निमित	निमित्त
निस्पृही	निस्पृह

नीम, लीम	नींब
नीती	नीति
नोधा	नव ९ धा
नैयायक	नैयायिक
पच्छम	पश्चिम
पछमी	पश्चिमीय
परिछिन्न	परिच्छिन्न
परिक्षा	परीक्षा
पाणिनी	पाणिनि
पुछते	पूछते
पुजा	पूजा
पुज्य	पूज्य
पुलिस	पोलिस
प्रघट	प्रगट, प्रकट
प्रतिती	प्रतीति
प्रथ्वी	पृथ्वी
प्रथिवी, प्रथवी	पृथिवी
प्रवाहिक	प्रावाहिक
प्रवाह	परवाह
प्राणियों, प्राणीओं	प्राणिओं
प्राक्रमी	पराक्रमी
प्राणि	प्राणी
प्रेन्स्पाल	प्रिन्सिपाल
प्रेयस	प्रेयस्
प्रोढा	प्रौढा
प्रोढि	प्रौढि
प्लेट	प्लॅट. प्लाट.
फारम, फोर्म	फॉर्म
फुल	फूल
फोरस	फोर्स

बछडा	वछडा, वत्स
बनमाणस	वनमानस
बन्ने	बनने
बनस्पति	वनस्पति
बरफ	बर्फ
बरफस्थान	बर्फस्थान
बरछी	बर्छी
बराल	वराल
बलात	बलात्
बलानुसार	बलअनुसार
बलुन	बलून
बस	वश
बसाता	वसाता
बसती	वसती
बस्ती	वस्ती
बस्तु	वस्तु
ब्यवहार	व्यवहार
बाइसकल	बाइसिकल
बात	वात
बाद	वाद
बादी	वादि
बाध	वाध
बार	वार
बारंबार	वारंवार
बारुद	बारूद-वारूद
बास	वास
बिकार	विकार
बिखर	विखर
बिचार	विचार
बिदुन	बिदून
बिदुषक	विदूषक
बिध	विधि
बिन	विन
बिना	विना

विवाद	विवाद
बेबलन	बाबिलन
बोद्ध	बौद्ध
बंस	वंश
बिन्दुक	बिन्दूक
बुझ	बूझ
भगत	भक्त
भगति	भक्ति
भरपुर	भरपूर
भुत	भूत
भूमि	भूमी
भुल	भूल
महऋषि	महर्षि
महतता	महत्ता
महततत्व	महत्तत्व
माखी	मक्खी
माटी	मिट्टि
मान्ना	मानना
मिंबर	मेम्बर
मुंह } मोंह }	मूंह
मृतका	मृत्तिका
योरोप	यूरोप
रवाज	रिवाज
रसायणी	रसायणीय
रीजील्ट	रीझल्ट
रीत (रीती)	रीति
रु	रू
रुप	रूप
रन्ध्र	रन्ध्र
रेल	रेल्वे
लोपामुद्रा	लोपामुद्रा
लीमुं	लींबु-नींबु
वर्णाकुलर	वर्नाक्युलर
वर्तमान	वर्तमान
वराल़	बराल
वशात	वशात्
वह } वोह }	व्है
व्यवहारिक	व्यावहारिक
वादी	वादि
वाध	बाध
विदुषक	विदूषक
विंदू	बिन्दु
विभुषक	विभूषक
विध	विधि
विधी	विधि
वैद्य	वेद्य
वैराग	वैराग्य
शद्व	शब्द
(लीपीमें)	
शनै शनै	शनैः शनैः
शारीरक	शारीरिक
शाम	श्याम (रात्री)
श्रेयस	श्रेयस्
श्लेषम	श्लेष्म
सत	सत्
सद	सद्
सतरज	सत्वरज
सता	सत्ता
साईंस	सायन्स
सिंदुक	सिंदूक
सीखुंगा	सीखूंगा
सूककर	सूखकर
सुत्र	सूत्र
सुखोप्ति	सुषुप्ति
सूरज	सूर्य
सेलस	सेल्स
स्पृधा	स्पर्धा
स्ट्रेलिया	आस्ट्रेलिया
स्फुर्ण	स्फुरण
स्वभाविक	स्वाभाविक
स्वाभावतः	स्वभावतः
स्थति	स्थिति
स्त्रीओं	स्त्रियों
सम्यक	सम्यक्
संकला	श्रृंखला
संतती	संतति
संबन्धनी	संबन्धिनी
संसारी	सांसारिक
हा	हां
हुयी	हुई
हुं	हूं

एवं ग्रंथमें अन्यभी होंगे.

(तत्त्व दर्शन) भाग १ का शुद्धिपत्र.

सुगमता हो इसलिये (१) सूत्रोंका (२) गणोंका (३) सूत्रोंके नामोंका (४) ओर चलते प्रसंगका एवं ४ भागमें शुद्धिपत्र लिखा हे. जिसपर एसा+ चिन्ह हो उसको सुधारके पढना, बाकी शुद्धि तो अभ्यास ओर प्रसंग आपही बता देगा. यथा कोइ पेजके फिगरमें अ. २ की जगह १ छपाया हे.

५६० पेजोंमें नीचे जितने शुद्धिपत्रका कारण क्या ? (१) टाइपोंमें भ। म। घ, ध। त, त। व, ब। ख, स्व। इतने अक्षरोंकी सूक्ष्म सदृशता संशयोत्पादक (२) साधनका अभाव (३) दहाईके अंकको डेढा करके इकाईका अंक पेदा करें ओर इन दोनोंको जोडें तो दहाईके अंकसे ढाईगुना होजावे, एसी उमरका ओल्ड मेन ड्राफ ओर साफ करनेवाला, वही प्रूफ सुधारनेवाला, तुर्रा यह के शरीर संततिमें गडबड . (४) प्राचीन हिंदीभाषामें ३० सालसे परिवर्तन. इसलिये क्षमा.

(१) अध्याय १ के सूत्रोंका शुद्धिपत्र.

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.	पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१	५	प्रसिद्ध	प्रसिद्धि	७५	२१५	स्वतंत्र	स्वतः
१४	४	अध्यो	अध्या	९४	२५४	अनुत्पति	अनुत्पत्ति
२४	२८	जीवत्व	ओर जीवत्व	,,	२६९	विनाधार	विना आधार
३१	३७	आवृत्ति	वा आवृत्ति +	९५	२७२	अद्भुतता	अद्भूतता
३५	४२	होनेसे	होनेसे ईश्वर	१०७	२८२	चैतन प्रेत	चेतन ओरप्रे
			विभु नहीं॥ +	१२४	३२६	मर्यादत	मर्यादित
३९	६२	अतः	अतः यथा +	,,	३२९	स्वख	सुख
४२	६४	आनिश्चित	अनिश्चित	१२७	३३७	अतिरिस्कार	अतिरस्कार
४४	७६	(अवभास	अवभास	,,	३४६	ही.	ही. इति.
४८	८६	अस्मर्थ	असमर्थ	१३८	३५३	एभिवादि	एमोवादि
४९	१२१	भोग	भोग्य	,,	३५८	पौषणादि	पोषणादि
,,	१३५	तदुद्देशित	तदुद्दिष्ट +	,,	३६२	स्पृधादि	स्पर्धादि
,,	१६७	शक्तिमत	ओर शक्तिमत	१८८	४२१	ध्यास्त	ध्यस्त
६७	१९५	अव्यस्था	अव्यवस्था	२२९	४५९	विदुपक	विदूषक
७५	२१०	भावना	धारण	,,	४६४	क्लेद	कलह

अध्याय २ के सूत्रोंका शुद्धिपत्र.

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२५७	११	उद्देश	अनुशासन
२८२	५६	दर्श	देशम
,,	६३	एतिह्म	ऐतिह्य
३२९	१३७	तिसकीअनुत्पत्ति.	अनुत्पन्न
,,	१३९	न नाश	अनश्वर
३६०	२४८	तदंगर	तदंतर

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३३६	१५९	अणत्रादि	अण्त्रादि
३६७	२८३	॥२८३॥	॥२८३॥ मृतिका कुलालवत् ॥२८४॥ +
४०७	३९९	प्रकाश	प्रकाशक +
४१२	४२१	तमाम सूत्र	व्हद्विधा परस्परमें बिलक्षण +

अध्याय २ के सूत्रोंके नाम (संज्ञा) का शुद्धि त्र.

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२६१	२१	संस्कार	संस्कारी
२९७	७८	७८	॥ ७८(प्रमेय)
,,	७९	(प्रमेय)	(प्रमाण)
३५८	२४५		(द्वि)
३९०	३६६	(अप्रसिद्ध)	(अप्रत्यक्ष)
३९६	३७६	(अभिन्न)	(अभिन्नत्व) +

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४१६	४३४	(सत्ता)	(यत्ता)
४२९	४६०	(साधक)	(असाधक)
४४१	४९८	(अननयोगी)	(अननुयोगी)
४७७	६३३	(प्रतिबंध)	(अनुत्पादक)
४९१	६७२	(सादृश्य)	(अवर्ति) +

अध्याय २ के गणपाठ पृष्ट २५४, २५५ का शुद्धिपत्र.

अशुद्ध.	शुद्ध.
१२६	१२९
१२२	२२२
आकांक्षादि	अर्थापत्यादि सं. ३ सू. ६२। आकांक्षादि+
अर्थापत्ति ३।६२	० + देशादि. (भूमिका ८। ५

अशुद्ध.	शुद्ध.
त्रिपुटी	जीवादि सं. ६। सू.४७ त्रिपुटी +
१२६	१२९
परिणाम ६	परिमाण ३ वा ६ +
आकारादि २२	आकारादि २४
कालादि ११	कालादि १२

शुद्धिपत्र भूमिका.

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१	११	श्यका	श्यकता
३	१२		हे (विशेष अ. ४ के

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
		तमाम पंक्ति	उत्तरार्द्धमें) ॥ ७ ॥
			, तत्त्वका निर्णय (याने

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
			अद्वितीय ब्रह्म चेतनही एक तत्व हे. नाना चेतन नहीं हें (अर्थात ब्रह्म ओर आत्माकी एकताकी सिद्धि) यह इस ग्रंथका विषय हे ॥ ८ ॥ +
३	१३	शांति	शांति (अवदल नित्य शांति-मोक्ष)+
४	३	मन	अन
५	३	शांति	शांति, तुष्टि +

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
५	६	विशय	विषय
५	७	२७७	०
८	२०	सु	०
८।१	११	हवा	हुवा
८।४	२१	ब्रह्य	भ्रम
८।७	४	ही	भी
८।८	२५	ब्रह्य	ब्रह्म
८।९	२७	जीव	जीव)
८।१०	५	धान	धन
८।१३	१	जा	जो
८।१५	२०	श्रो	श्रो

शुद्धिपत्र अध्याय १.

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
९	६	दशी	दशी, शंकराचार्य कृत १८ रत्न; गीता रहस्य (तिलक)+
,,	१४	बलेवरसकी	ब्लेवेस्टकी
,,	२६	(१९)	(१९) हिंदीके मिसूतरी +
१०	१०	३५५	३३५ +
११	८	३६९	३३९ +
११	८	जानेत	जानते
१२	१७	स्तार	विस्तार
१३	१७	दुख	दुःख
१७	१७	३६९	३३९ +
,,	२४	चेनन	चेतन
१८	४	टुकड	टुकडे
,,	८	विक्षिपत	विक्षिप्त
१९	२	हे	हे * +

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
	२०	अंतरभाव	अंतर्भाव
	२३	नोट	* नोट +
	२४	त्रियक	तिर्यक
२०	१३	न	०
२१	९	से	ओर उनकी शाखा उपशाखाओंसे +
२६	२८	सापुज्य	सायुज्य
२८	१३	आकर	आकारमें
,,	२१	करणदि	करणादि
२९	५	दि	दिके
३२	१	अविभाक्ति	अभिव्यक्ति +
,,	२	विभक्त	व्यक्त +
३३ } ५४	१४ } २५	वेद	अ. ३ गत मुक्ति प्रसंग ओर वेद
३४	७	न	०
३५	४	वा	ओर

पृष्ठ.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४१	८	तदंगर	तदंतर्गत
,,	१९ २०	त्रिस्कार	तिरस्कार
४२	४	विभुवा	वा विभु
	२१	(तमाम)	०
४३	७	मुश्किल	मुशकिल
४७	२	यन	य
५१	२५	वावले	बावले
५३	१४	हा,	हां, +
५६	८	उपकार करें।	उपकारक हैं+
,,	२४	साधरणों	साधारणों
६०	२१	वक्ष्माण	वक्ष्यमाण
६१	१७	सता	सत्ता
६१	२२	पक्षोंसे	पक्षोंमेंसे +
६३	२०	सुःखी	सुखी
६५	१५	देश	०
,,	२३	कैवाल्य	कैवल्य
६८	२१	लक्षणा	लक्षण
७०	१५	शनै[1]	शनैः[1]
७१	५	अद्भुता	अद्भुतता
७२	८	नही	भी नहीथी.
,,	५	बाध	बाध (प्रतीत कालमें भी नहीं)
७४	१४	शक्तिका	शक्तिको
७७	२७	सातवां	आठवां
७९	२६	लाधवता	लाघवता
८३	१०	ग्रभ	गर्भ
,,	२६	तारत्म्य	तारतम्य
८४	१२	जन्म	जन्य
,,	२०	कंपोड[2]	कंपौंड[2]
८५	१०	उन्मेषो	निमेषो
९५	१५	चर्म	चरम
९८	२५	तुचा	त्वचा
९९	८	सद	असद्
१०२	२	कर्ममीमांसा।	कर्मविवेक
,,	७	वां	वा
,,	१४	होनेसे	न होनेसे
,,	२४	हा	हां,
,,	२७	रतही	रहती
१०३	११	गुणदि	गुणादि
१०५	६	सिद्ध	सिद्धि
,,	१२	तदजन्य	तज्जन्य
,,	१५-२१	। समष्टि।	समष्टि
,,	२२	रसाया	रसाय
१०९	३	वरणन	वर्णन
११०	९	दशा	दिशा
११२	२२	प्राक्रमी	पराक्रमी
११३	२८	मूस्त्र	मूस्तर
११४	१७	आखडे	आ खडे
११४	२०	५	७
,,	२१	प्रलय हो	भी प्रलय हुई हों
११५	२६	त्रियक	तिर्यक

[1] पेज १०८, १२२, १४५, १६०, ४३६ मेंभी

[2] पेज १३५, १८६, ३४८ मेंभी

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
११८	२५	खस्ति	रिव्रास्ति
१२२	६	शिक्षव	शिक्षित
१२३	२९	निकाकले	निकालके
१२८	२८	अनिवारीय	अनिवार्य
१२९	२३	खणिज	खनिज
१३०	४	कशः	क्रमशः
१३३	४	कार्क	कार
,,	१२	मुकबला	मुकाबला
,,	१३	हे.	हेही
१३४	६	अपक्षा	अपेक्षा
१४१	८	इयुलेशन	इवोल्युशन
	०	इनयुलेशन	डीवोल्युशन. इनवोल्युशन
१४१	१४	ताणी	प्राणी
१४४	८	परिस्थ	परिस्थिति
१४४	११	कलार्क	कलॉक
१४६	१२	जीवरस	जीवनरस
१४७	६३	हाथ;	हाथ
१५२	३	रुतांपर	रुपांतर
,,	२७	जीवत	जीवित
१५६	२४	स्ट्रेलिया	आस्ट्रेलिया
१५८	२२	माणस	मानस
१६३	१	कौशल	कौशल्य
१६४	२५	तादात्म्यत्व	तादात्म्य
,,	२९	समचिन	समीचीन
१६६	१	प्रेमादादि	प्रेमादि
१७०	१०	घस	धस
१७४	१६	पोटका	प्रोटो०का
१७९	९	तृष्टप	त्रिविष्टप

पृष्ट.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१८०	२२	दशा	विचली दशा
१८१	१३	ठेरगा	ठेरेगा
१८५	१४	प्राकृतक	प्राकृतिक
१९१	१०	बाघ	बाध
,,	१३	सतादि	सदादि
,,	२७	संज्ञादी	संज्ञा दी
१९२	२१	सादृश्यत्व	सादृश्य
१९३	१	४ हे	४ से
,,	२०	लक्षा	लक्ष्या
१९४	१४	१३	११
,,	१९	दशा	दिशा
१९५	२०	उद्धर्ते	उद्धृत
१९८	१०	बाघ	बाध
१९९	१९	एक हे	एक एक हैं
२०२	६	तिम्र	तिमिर
२०३	१३	,,	,,
२०७	६	,,	,,
,,	२०	होसतका	होसकता
२१०	१२	अंतरक्ष	अंतरिक्ष
२१२	६	उसको	उनको
२१७	३	तुचा	त्वचा
,,	९	व्यापर	व्यापार
२२१	१६	बृहस्पिति	बृहस्पति
,,	२५	४ यह	५ यह
२३१	१९	परिणामी	प्रणामी
२२५	०	शिव .... दे	शिव .... दे
२३१	१	दृष्टि	दृष्टि

पृष्ठ.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
,,	१९	,,	,,
२३२	५	विभूष	विभूषक
२३३	१२	बालवान	बलवान
२३७	१९	बंद्	बंध
२४०	१२	तिवृत्त	निवर्त्त
२४२	८	अलबते	अलबत्ते
२४३	२४	जीवत्मा	जीवात्मा
२४७	६	सुगंधी	सुगंधि
,,	७	पुशक	खुश्क

शुद्धिपत्र अ. २.

पृष्ठ	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२५४	१४	१२२	५२२
२५५	१२	२९	१२९
	१३		
२५८	८	१२६	१२९
२६०	१४	कितनक	कितनेक
२६२	२५	फरत	करते
२६३	१३	कैवल्य	केवल
२६६	९	उपयागे	उपयोग
,,	१४	होताही	होता
२६९	१४	जीवा	चजीवा
२७०	२	थथार्थ	यथार्थ
२७०	३	वैराग्थ	वैराग्य
२७१	१७	ईम्प्रे	इम्प्रे
२७२	१८	स्वरुप हो	अधिष्ठानको +
,,	,,	अन्य	उसे अन्य
,,	,,	हो	प्रतीत करावे सो.
,,	२३	निवर्त्तो	विवर्त्तो +
२७३	२	खिंचाय	खिंचाव
२७५	१७	वतते	वर्तते
२७७	६	ह्रत्व	ह्रस्व
२७८	१५	सूत्रना	सूचना
२८०	७	वैमव	वैभव
,,	२२	मंज वा	वा मंतव्य
२८६	१०	विणक्षण	विलक्षण
,,	१३	शब्दमें	शब्द वा प्रत्यक्ष
,,	२६	वैद्यर्म्य	वैधर्म्य
२८७	२	लल्पना	कल्पना
,,	६	योग्ता	योग्यता
२८९	१८, २०।	सेंकड	सेकंड
२९०	५	अथार्थ	अयथार्थ
,,	११	छाज	छाछ
,,	२२	ऐक	एक
२९२	९	भौतिकी	भौतिक
		काही	संयोगही
२९४	२८	विप्रिय	विपर्यय
२९७	१	)का	)के
,,	५	प्रमति	प्रमिति
३०१	२८	स्वस्ति	स्विस्ति
३०४	१	रुन्ध	रंध्र
३१२	२८	मोमयायी	मर्मी
३१४	१	तेरा	तेरा १३
,,	८	उस	वहां उस
,,	२५	पान	पाने
३१५	२८	विशषे	विशेष

पृष्ठ.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.	
३१६	५	ईम्पे	ईम्प्रे	
,,	२७	प्रत्य	प्रत्यय	
३१८	२५	गुरुत्व	गुरुत्वरहित	+
३२०	१९	अनादि।	कालसे अनादि	×
,,	२४	असीम	ससीम	+
३२६	११	उमय	. उमय	
,,	२५	स्वयंया	स्वयं आ	
३३०	२७	धुसके	घुसके	
३३७	११	;इसलिये	इसलिये,	
३४३	२	*	(यहां प्रथम नोट वांचो)*	
,,	२८	उपादनों	उपादानों	
३४४	६	मृतका	मृत्तिका	
,,	९	न होता	होता	
३४७	८	स्तुत्थामा	अश्वत्थामा	
३४९	१९	अन्यतर	अन्यत्र	
३५०	२२	परामाणु	परमाणु	
३५५	६	ह वे	हैं वे	
३५८	१७	विना	विना वा ईश्वरद्वारा परंपरा संबंध हुये विना	
३५९	९	सयोग	संयोग	
३६१	१	धमंड	घमंड	×
३६२	२४	भाग	भोग	
३६४	१५	जीसकता	जी सकता	
३६८	२१	मगज वा	वा मगज	×
,,	२६	चंवुक	०	
३७१	३	जर्थात	अर्थात्	
३७९	२०	परिणामी	परिणाम	×

पृष्ठ.	सूत्रांक.	अशुद्ध.	शुद्ध.	
,,	,,	परिणामसे	परिणामीसे	
३८०	१	अवयवी	अवयव	
३८६	६	व्याव्य	व्याप्य	
३८९	१२	पुरुष	पुरुष	
३९२	२४	बिंदके	बिंदुके	
३९३	२२	२ क्षण	३ क्षण	
३९५	१३	समचीन	समीचीन	
,,	२६	तदतंर	तदंतर	
,,	२८	प्रश	प्रवेश	
३९९	२१	ओर गुण	ओर गुणी	×
,,	२९	होनीकी	होनेकी	
४००	२	व्यापक	व्याप्य	×
,,	९	अनिर्वच	अनिर्वचनीय	×
४०१	९	संयोग	साक्षात् वा परंपरा वा ईश्वरद्वारा संयोग	
४०५	२४	हे	हे (शं) अव्यक्त विषयोंमें स्वरुप प्रवेश होता होगा (उ.) नहीं. अ.४में वांचोगे.	
४०६	१४	अन्योऽभाव।	अन्योऽन्याभाव	
,,	२६	भेद	अभेद	×
४१३	२९	वाला	०	
४१४	२०	आमास	आभास	
४१५	४	परा	अपरा	
,,	२१	भी	०	
,,	२६	समवाय	समवायी	
,,	२७	उपादान	उपादानादि	
,,	,,	वस्तु	पदार्थ	
४१७	५	किभी	कभीभी	
४१८	१३	उत्तरके	उत्तर-बाध हुयें	